मुक्तिबोध रचनावली

मुक्तिबोध रचनावली

मूल्य : प्रति खण्ड रु 100 00
पूरा सैट रु 600 00

© शान्ता मुक्तिबोध

प्रथम संस्करण . 1980
द्वितीय परिवर्द्धित संस्करण : 1986

प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लि.
8, नताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली-110

मुद्रक : रुचिरा प्रिण्टर्स,
नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032

MUKTIBODH RACHANAVALI
Edited by Nemichandra Jain

তারাশঙ্কর

दूसरे संस्करण की भूमिका

इस संस्करण मे सबसे अधिक नयी सामग्री इसी खण्ड मे है। अप्राप्य पुस्तक 'भारत : इतिहास और संस्कृति', 'राजनैतिक तथा अन्य लेखन' खण्ड मे छह नये लेख और 'पत्र' खण्ड मे श्री नामवरसिंह, श्री माखनलाल चतुर्वेदी और विख्यात कम्युनिस्ट नेता श्री श्रीपाद अमृत डाँगे के नाम पत्र। इनमे से श्री नामवरसिंह को लिखे गये पत्र 'आलोचना' मे पहले प्रकाशित हो चुके हैं, बाकी अब रचनावली में पहली बार प्रकाशित हो रहे हैं।

विशेषकर श्री डाँगे को लिखा गया पत्र कई दृष्टियो से एक ऐतिहासिक और महत्त्वपूर्ण दस्तावेज है। उसमे हिन्दी मे प्रगतिशील आन्दोलन का बड़ा निर्भीक और दो-टूक मूल्यांकन है। साथ ही उससे साहित्य और सृजनात्मक कार्य के सम्बन्ध मे मार्क्सवादी चिन्तन के अनेक पक्षो पर मुक्तिबोध की बड़ी गहरी चिन्ताएँ भी सामने आती हैं। इस पत्र से प्रगतिशील आन्दोलन और मुक्तिबोध के बारे मे उत्तेजक और सार्थक चर्चा और विचार-विनिमय की शुरुआत होगी, यह आशा करनी चाहिए।

इस संस्करण मे मुक्तिबोध द्वारा मुझे लिखे गये पत्रो के क्रम तथा तारीखो आदि के बारे मे कुछ संशोधन हैं : कुछ फुटनोट्स भी जोड़े गये हैं। पिछले वर्ष जब मुक्तिबोध और मेरे बीच पूरा पत्र-व्यवहार प्रकाशित किया गया, उसी समय ये परिवर्तन और संशोधन सम्भव और जरूरी हुए थे।

जहाँ तक 'भारत : इतिहास और संस्कृति' का प्रश्न है, यह सन्तोष की बात है कि आखिरकार उसे रचनावली के इस संस्करण मे शामिल किया जा सका। जैसा सभी लोग जानते है, यह राज्य के विद्यालयों के पाठ्यक्रम के लिए लिखी गयी थी। किन्तु उस समय आकार बढ़ जाने के कारण उसके कुछ ही अध्याय पाठ्य-पुस्तक के रूप मे प्रकाशित हुए थे। यहाँ उस समय छोड़ दिये गये बाकी अध्याय भी शामिल करके पूरी पुस्तक प्रकाशित है।

दूसरी ओर, पाठ्य-पुस्तक के कुछ अंशों के बारे मे उस समय समाज के कुछ प्रभावशाली लोगो द्वारा आपत्तियाँ उठायी गयीं और पुस्तक के विरुद्ध आन्दोलन चलाया गया। परिणामतः सरकार ने पुस्तक पर प्रतिबन्ध लगा दिया। बाद मे जब प्रतिबन्ध के विरुद्ध उच्चन्यायालय मे याचिका प्रस्तुत की गयी तो न्यायालय ने प्रतिबन्ध को तो उचित ठहराया पर साथ ही यह भी कहा कि आपत्तिजनक अंशों



नेमिचन्द्र जैन के नाम एक पत्र का अंश

दूसरे संस्करण की भूमिका

इस सस्करण मे सबसे अधिक नयी सामग्री इसी खण्ड मे है। अप्राप्य पुस्तक 'भारत : इतिहास और संस्कृति', 'राजनैतिक तथा अन्य लेखन' खण्ड मे छह नये लेख और 'पत्र' खण्ड मे श्री नामवरसिंह, श्री माखनलाल चतुर्वेदी और विख्यात कम्युनिस्ट नेता श्री श्रीपाद अमृत डाँगे के नाम पत्र। इनमे से श्री नामवरसिंह को लिखे गये पत्र 'आलोचना' मे पहले प्रकाशित हो चुके हैं, बाकी अब रचनावली मे पहली बार प्रकाशित हो रहे हैं।

विशेषकर श्री डाँगे को लिखा गया पत्र कई दृष्टियों से एक ऐतिहासिक और महत्त्वपूर्ण दस्तावेज है। उसमें हिन्दी मे प्रगतिशील आन्दोलन का बड़ा निर्भीक और दो-टूक मूल्यांकन है। साथ ही उससे साहित्य और सृजनात्मक कार्य के सम्बन्ध मे मार्क्सवादी चिन्तन के अनेक पक्षो पर मुक्तिबोध की बड़ी गहरी चिन्ताएँ भी सामने आती हैं। इस पत्र से प्रगतिशील आन्दोलन और मुक्तिबोध के बारे मे उत्तेजक और सार्थक चर्चा और विचार-विनिमय की शुरुआत होगी, यह आशा करनी चाहिए।

इस सस्करण मे मुक्तिबोध द्वारा मुझे लिखे गये पत्रो के क्रम तथा तारीखो आदि के बारे मे कुछ सशोधन हैं कुछ फुटनोट्स भी जोड़े गये हैं। पिछले वर्ष जब [illegible] किया गया, उसी समय ये [illegible] है, यह सन्तोष की बात है कि आखिरकार उसे रचनावली के इस सस्करण मे शामिल किया जा सका। जैसा सभी लोग जानते हैं, यह राज्य के विद्यालयो के पाठ्यक्रम के लिए लिखी गयी थी। किन्तु उस समय आकार बढ जाने के कारण उसके कुछ ही अध्याय पाठ्य-पुस्तक के रूप मे प्रकाशित हुए थे। यहाँ उस समय छोड़ दिये गये बाकी अध्याय भी शामिल करके पूरी पुस्तक प्रकाशित है।

दूसरी ओर, पाठ्य-पुस्तक के कुछ अंशों के बारे मे उस समय समाज के कुछ प्रभावशाली लोगो द्वारा आपत्तियाँ उठायी गयी और पुस्तक के विरुद्ध आन्दोलन चलाया गया। परिणामत. सरकार ने पुस्तक पर प्रतिबन्ध लगा दिया। बाद मे जब प्रतिबन्ध के विरुद्ध उच्चन्यायालय मे याचिका प्रस्तुत की गयी तो न्यायालय ने प्रतिबन्ध को तो उचित ठहराया पर साथ ही यह भी कहा कि आपत्तिजनक अशो

के बिना पुस्तक को प्रकाशित किया जा सकता है।

इसीलिए यहाँ प्रकाशित पुस्तक मे भी वे अश छोड दिये गये हैं। इसकी पुष्टि मे राज्य सरकार का प्रतिबन्धकारी असाधारण राजपत्र और उच्चन्यायालय का आदेश परिशिष्ट के रूप मे दिय जा रहे है।

नेमिचन्द्र जैन

पहले संस्करण की भूमिका

रचनावली के इस छठे और अन्तिम खण्ड मे किसी हद तक विविध प्रकार की सामग्री है। पहले उपखण्ड मे मुक्तिबोध के राजनैतिक विषयो पर लिखे गये लेख है। ये अधिकाशत उन्होने 1956 से 1958 के बीच **सारथी** और **नया खून** नामक नागपुर के साप्ताहिको मे लिखे थे। अधिकाश किसी छद्मनाम से लिखे गये थे जिनका ब्योरा हर लेख के साथ दिया गया है।

ये लेख मुक्तिबोध के पत्रकार रूप को सामने लाते है और आज इन्हे पढकर बडा सुखद आश्चर्य होता है कि इनमे भी उन्होने वैसी ही अन्तर्दृष्टि और मौलिकता का परिचय दिया जैसा कि उनके साहित्यिक लेखन मे मिलता है। उनके-जैसे मनमौजी कवि-साहित्यकार के लिए हर सप्ताह अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओ अथवा देश की राजनैतिक, आर्थिक समस्याओ पर इतने आधिकारिक और अध्ययनपूर्ण ढग से टिप्पणी करना बहुत आसान काम नही रहा होगा। इन निबन्धो की भाषा भी अपने विषय के अनुकूल ही नही, बल्कि एक खास तरह की सूक्ष्मता का भी परिचय देती है और विविधता का भी।

जाहिर है कि इन लेखो की कोई पाण्डुलिपि मौजूद नही है और उन्हे यहाँ उनकी उपलब्ध कतरनो से सकलित करके प्रस्तुत किया गया है। आज के अखबारो की तरह, बल्कि शायद कुछ ज्यादा ही, उन दिनो भी मुद्रण की अनेक भूलें होती रही होगी जिसका प्रमाण इन लेखो की कतरनो मे भी बार-बार मिला। यथा-सम्भव उन्हे सशोधित करके प्रस्तुत किया गया है। किन्तु फिर भी ऐसे कई स्थल है जहाँ अर्थ स्पष्ट नही है [illegible] यक सिद्ध नही होता। जहाँ तक स [illegible] ही रहने दिया गया है, और यदि [illegible] अनुमान नही लग सका तो अर्थ [illegible] निबन्ध न सिर्फ मुक्तिबोध के लेखक-व्यक्तित्व का एक सर्वथा नया रूप उजागर करते हैं, बल्कि हिन्दी पत्रकारिता की भाषा को एक नया आयाम भी देते हैं।

राजनैतिक विषयो के साथ-साथ **सारथी** तथा **नया खून** मे मुक्तिबोध कुछ सामयिक साहित्यिक अथवा सामाजिक प्रश्नों पर भी अपने स्तम्भ म लिखते रहे थे। ऐसे लेख भी काल-क्रम से दे दिय गये हैं।

दूसरे उपखण्ड मे मुक्तिबोध के पत्र हैं। इनमे मुझे लिखे बहुसंख्यक पत्रो के अलावा श्रीकान्त वर्मा, वीरेन्द्रकुमार जैन, शमशेरबहादुर सिंह, भारतभूषण अग्रवाल, प्रमोद वर्मा, प्रभाकर माचवे, विष्णुचन्द्र शर्मा, आग्नेश्का सोनी, मलय और जगदीश को लिखे गये पत्र भी हैं।

मुक्तिबोध पत्र लिखने के मामले में बहुत तत्पर थे और निश्चित ही उन्होंने और भी अनेक लोगो को अनेको पत्र लिखे होंगे। पर उनके पुत्र रमेश मुक्तिबोध द्वारा अनेक पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से अपील करने के बावजूद और पत्र नही मिल सके। ऐसा लगता है कि या तो लोगो ने उन्हे सुरक्षित नही रखा या अपनी पुरानी फाइलों मे से ढूँढकर निकालने का काम उन्हें बहुत दुष्कर जान पडा। यह असम्भव नही कि रचनावली के प्रकाशन के बाद कुछ अन्य व्यक्तियो के पास भी और [illegible]

हैं [illegible]

कोशिश की गयी थी कि इनको हिन्दी मे अनुवाद करके छापा जाय। पर यह प्रयास बहुत सार्थक और उपयोगी नही जान पडा, इसलिए उन्हे मूल रूप मे ही प्रकाशित करना उचित समझा गया।

मुझे लिखे गये अंग्रेजी या हिन्दी के इन पत्रो का स्वर बहुत ही निजी और आत्मीय है और उन्हे प्रकाशित करने मे इस कारण मुझे सकोच भी होता रहा है। पर साथ ही यह भी अनुभव करता हूँ कि वे एक अत्यन्त संवेदनशील और संघर्ष-रत बेचैन व्यक्ति के आन्तरिक और बाह्य जीवन की उलझनो, परेशानियो और टकराहटो को बडी गहराई और सच्चाई से पेश करते हैं।

पत्रो को दो अलग-अलग उपखण्डो मे रखा गया है। एक मे मुझे लिखे हुए पत्र है, दूसरे मे बाकी अन्य लोगो को लिखे हुए। मुझे लिखे गये पत्रो मे सामान्यतया कालक्रम निर्धारित करने मे खास कठिनाई नही हुई, यद्यपि कई पत्रो की तिथियाँ उनमे लिखी गयी बातों के आधार पर तै करनी पडी। जहाँ भी ऐसी जरूरत हुई है, तारीखों को खडे कोष्ठको मे रखा गया है। अन्य लोगो को लिखे गये पत्रो का क्रम निर्धारित करने मे एक समस्या व्यक्तियो का क्रम निर्धारित करने की थी। इसके लिए आधार यह रक्खा गया कि व्यक्तियों का क्रम उनको लिखे गये प्रथम पत्र की तारीख के क्रम से हो—यानी जिनके पत्र पहले शुरू हुए उन्हे पहले रखा गया। किन्तु प्रत्येक को लिखे गये पत्र एक साथ और स्वतन्त्र कालक्रम के अनुसार रखे गये हैं।

इन पत्रो मे भाषा को एकदम ज्यो-का-त्यो रहने दिया गया है। भाषा-सम्बन्धी सम्पादन की कठिनाई अंग्रेजी पत्रो मे कुछ ज्यादा हुई, पर वहाँ भी एकाध अपवाद को छोडकर कोई शब्द बदला या जोडा नही गया है। जहाँ भी ऐसा किया गया है वहाँ उस शब्द को कोष्ठक मे रख दिया गया है।

कविताओ की भाँति पत्र भी मुक्तिबोध लम्बे-लम्बे ही लिखते थे। उनमे उनकी निजी समस्याओ के अतिरिक्त साहित्यिक, सैद्धान्तिक विषयो पर भी बहुत-सी चर्चा है और यह सामग्री निस्सन्देह उनके व्यक्तित्व और कृतित्व दोनो को अधिक आत्मीय और नये ढंग से उद्घाटित करेगी।

नेमिचन्द्र जैन

क्रम

राजनैतिक तथा अन्य लेखन

पत्र

अन्य पत्र

भारत इतिहास और संस्कृति

* ये अध्याय 'भारत इतिहास और संस्कृति' में पहली बार सम्मिलित किये गये हैं। पाठ्यपुस्तक के रूप में प्रकाशित कृति में ये शामिल नहीं थे।

राजनैतिक तथा अन्य लेखन

अतीत

किन्तु भूत पर हमारे मनोभाव अवलम्बित हैं। अतीत हमारी समालोचना है, वर्तमान हमारा गतिमान काव्य है, और भविष्य हमारी आशा है। भूत वर्तमान और भविष्य एक ही इतिहास के तीन भाग है, जिसका मध्य नितान्त छोटा है, पर महत्त्वपूर्ण है। भविष्य का सिनेमा बड़ा सस्ता है और भूत का इससे विपरीत। भूत का सिनेमा महँगा इसलिए है कि उसमें हमारा नायक और उसका मन दो भिन्न हो जाते हैं। भविष्य के रुपहले पर्दे पर नायक और उसका मन एक ही काम करते हैं। इस अर्थ में भूत ट्रैजेडी (दु:खान्त), कहा जा सकता है और भविष्य कामेडी (सुखान्त)।

भूत ट्रैजेडी तो है पर मनुष्य उससे दुख में भी सुख अनुभव करते हैं। जहाँ तक मेरा मनोविज्ञान कहता है, मुझे मेरे कहने में विश्वास है कि भूत हमारी मूर्खताओं से भरा हुआ एक चलचित्र है। क्या मैं अपने में ही सीमित रहूँ?

एक समय मुझे याद है कि, मैं पुराने मासिक किर्लोस्कर की फाइलें उलट-पुलट कर रहा था कि एक लेख पर मेरी दृष्टि पड़ी। लेख का नाम है 'फिरुन पाहिलें-तर'। लेखक शायद प्रो. दाडेकर हैं। मुझे सबसे बड़ी बात जो उस लेख में दिखायी दी वह है—उस लेख में वर्णित घटनाओं का मेरे जीवन की बातों से विचित्र साम्य। उसमें लेखक स्वयं ही घटनाओं का पात्र है। उसमें लिखा था, 'मेरा बचपन भूलों से भरा हुआ-सा दिखायी देता है, यद्यपि वर्ड्सवर्थ बचपन को आध्यात्मिक महत्त्व देता है और कहता है, कि बचपन सुखों की खान है, दैवी है, पर मेरे लिये यह बात नहीं।' मैंने कहा, 'बहुत ठीक'। मैं भी बचपन को अपने जीवन की भूलों का एक चित्र समझता आ रहा हूँ। बच्चों पर जो अत्याचार माता-पिता करते हैं, मुझे याद है, मैं उसका कितना प्रतिकार किया करता था अपनी जिद्द से, अपने सत्याग्रह से। मैं दाडेकर महोदय का कृतज्ञ हूँ—इसलिए कि उन्होंने मुझमें पीछे घूमकर देखने की अभिलाषा जागृत कर दी, जिससे वशीभूत हो मैंने एक समय आत्मचरित्र लिखने का निश्चय-सा कर लिया था, और तद्भव आनन्द दबा न सकने के कारण मैंने यह बात अपने एक गहरे मित्र को इस शर्त पर कही थी कि वह 'यह' किसी से न कहे।

सुदूर अन्धकार मे अपनी बात खोज निकालने के लिए किसी दैवी 'टार्च' की आवश्यकता नही है। अन्धा अपनी वस्तुएँ स्पर्शादि द्वारा खोज लेता है। मैं नही जानता, उसे आनन्द होता है या नही इस वृत्ति मे। पर, भाई, मेरे लिए अन्धकार तो आकर्षण है, अतएव मैं इस ध्वान्त को चीरकर उसके सौन्दर्य को नष्ट नही करना चाहता। मैं तो वस्तुओ को टटोलना चाहता हूँ, और उन्हे वैसे ही रखना चाहता हूँ जैसे कि वे मेरे हाथो को लग रही हैं। ना, आप आँख से मत देखिये, पर आपकी स्पर्शानुभूतिवाली अँगुलियो से टटोलिये। सम्भव है वे छिद जायँ। पर आपको इससे नुकसान नही होने का। अन्धकार मे यही मजा है। ध्वान्त मे कोई द्रौपदी अपनी साडी का आँचल फाडकर आपके घाव की पट्टी न बाँधेगी। आपकी अँगुलियो से रक्त बहता जावेगा और भार भी हल्का होता जायगा और आप वस्तु को पहचान लेंगे। आप उसके रूप से देख न सकेंगे लेकिन उसकी आत्मा आपकी गीली अँगुलियो को मिल जायगी। अन्धकार मे इतना पा लेना क्या कम है?

धूम की गहराई या घनापन इतना अधिक हो जाता है कि उसे छेद कर अपनी वस्तु प्राप्त कर लेना सरल काम नही। किन्तु छेदने की हिम्मत करना इतना आकर्षक-उन्मादक होता है कि प्रत्येक व्यक्ति हिम्मत कर ही नही सकता। शायद, लोगो के पास समय भी इतना नही है और, वस्तुत. भूत की ओर दृष्टि डालना इस क्रियाशील जगत का काम नही। अपने साध्य के साधन मे जगत् इतना तत्पर है कि न तो उसे भविष्य की चिन्ता है और न भूत पर विश्वास। यह तो प्रो दाण्डेकर और उन्ही की श्रेणी के लोगो के लिए है।

मैं इसके लिए आपको एक तरकीब बताऊँ। यह तो मानी हुई बात है कि भूत की ओर दृष्टि जमानेवाले व्यक्तियो की एक खास मनोवृत्ति हुआ करती है, वे स्वप्न-चर होते हैं। शायद इस दुखी जगत् मे वे ही सुखी रहते हैं, क्योकि सत्य स्वभावत' निष्ठुर हुआ करता है, और वे सत्य की उतनी परवाह नही करते जितने कि और सहजीवी। आप रात को नौ बजे सोया करते है। खैर, आप प्रयोग के लिए आठ बजे सो जाइए। सो जाने से मेरा मतलब बिस्तर पर लेटकर आँखें बन्द कर लेना है। आँखें बन्द कर लेना जरूरी इसलिए है कि आप स्वप्न-भग के खतरे मे बच जायेंगे। आप अपनी दृष्टि उस सुदूर पूर्व की ओर लगा दीजिए। यह तो एक सघन धूम्राच्छादित प्रदेश है, जहाँ आप, जमाना गुजर गया, रह चुके है। हाँ, देखिए यह कितना आकर्षक है। शायद, उस समय का वृत्तान्त आप अपने माता-पिता से पूछ सकते हैं, पर मैं तो कभी नही पूछूँगा। वह है ही ऐसा। यदि मैं पूछूँ भी तो विश्वास नही होगा। क्योकि जिस रीति से मैं उस अन्धकार को देख रहा हूँ वह स्वयम् ही एक सौन्दर्य लिये हुए है। वह अन्धकार कितना सुखद—कितना आकर्षक—है कि मेरे प्राण ही उस अन्धकार मे विचरण कर रहे हैं। ''यहाँ सघन अन्धकार है। अब धीरे-धीरे कम होता चलेगा, अब प्राण के साथ-साथ शरीर का अस्तित्व भी आता चलेगा। अब आपके कानो मे कोई ध्वनि गूँजती होगी, या कोई चित्र उभरता होगा। हाँ सम्भव है, यह आपका पहला चित्र हो। इसमे अब आप एक पात्र का काम करते होंगे। या, कोई कहता होगा—

गगा मन्नी आव आव।
रज्जो को दूध लाव लाव॥

हाँ, अब आपको सुख-दुख का अनुभव भी करते जाना होगा किन्तु यह चित्र तो

असम्पूर्ण है जैसे फिल्म बीच में से टूट गयी हो। पर देखो, वह तो फिर चालू हो गयी। 'हाँ, यह दृश्य ! पर, मैं कितना अल्हड़ था !! उसको गाली देने की आवश्यकता क्या थी ? पर देखिए तो, मेरे बाबा भी मुझे मार रहे हैं ! आह ! क्या मेरे बाबा इतना नहीं समझते, उनके बाबा उन्हें ऐसा मारते तो !' और फिल्म टूट गयी। आप अपने बच्चों को रोज पीटते हैं। और वे भी ऐसा ही खयाल करते हैं। उनके लिए तो आप एक रहस्य हैं। फिर फिल्म चली। 'हाँ, अब मैं आत्महत्या कर लूँगा, मेरा अपमान हुआ है सबके सामने ! मैं छत पर से कूद पड़ूँगा और मर जाऊँगा, फिर मेरे माँ-बाप रोयेंगे बिलख-बिलखकर ! पर, वाह ! मेरा गुस्सा तो करुणा हो गया। तो अब मैं मुँह नहीं दिखाऊँगा। इस मुँडेर के पीछे छिपा रहता हूँ। कभी नहीं उतरूँगा नीचे ! उँहुँ !!' हु हु वाह !! और मैं तो नीचे उतर गया ! कितना बेवकूफ था मैं !! सचमुच !!!

न मालूम कैसी कैसी घटनाएँ आपको याद आती होंगी ! आपको अपने स्नेहियों पर गुस्सा भी आता होगा, पर उनके दुखों को देख करुणा भी आती होगी। आप अपना भला-बुरा करने की इच्छा करते होंगे, पर कल्पना-सृष्टि के आँसुओं में आप स्वयं भूल जाते होंगे। आपको हँसी भी आती होगी !

इस भूत के सिनेमा में मन के दो भाग हो जाते हैं, एक तो वह मन जो नायक को सुख-दुख का अनुभव कराता चलता है, और दूसरा वह जो समय के प्रभाव में होने के कारण नायक की समालोचना भी करता है। यह भूत की समालोचना वर्तमान की धारा में बहकर भविष्यत की चट्टानों को अपने अनुसार बनाती चलती है।

*हमारा बचपन वर्ड्सवर्थ की बातों को नहीं समझ सकता। वर्ड्सवर्थ ने Ode On Immortality अपने बचपन में नहीं लिखी है। यह तो मानी हुई बात है कि बचपन में मनोभाव होते हैं, वे अविकसित और घने होते हैं। बच्चे अधिक ज्ञानग्राही होते हैं और संवेदनशील (Sensitive) भी। यह लेखक बचपन के मानस-विश्लेषण को अपना विषय नहीं बना रहा है। किन्तु यह कह देना आवश्यक-सा प्रतीत होता है कि वर्तमान की आँखों द्वारा भूत-गर्भ-शायी बचपन को जब हम देखने लगते हैं, तब एक बात जो सबसे अधिक खटकनेवाली मालूम होती है वह यह कि वयस्क पुरुष बच्चों को समझते नहीं हैं। उनकी स्वाभाविक प्रवृत्तियाँ रोक दी जाती हैं, निसर्ग-दत्त गुणों को दबा दिया जाता है, अपनी बनायी हुई 'लाइन' पर चलाया जाता है। बालक की शंकाओं को शान्त नहीं किया जाता, इससे वे यदि थोड़े हुए तो उनके मन दब जाते हैं, तेज हुए तो विद्रोही हो जाते हैं,—जो एक अच्छी बात है क्योंकि विद्रोह जीवन का चिह्न है। बालक का बड़ों से युद्ध सत्याग्रह ही कहा जा सकता है।

माता-पिता हमारे उस विकास-युग में अपनी जिम्मेदारी खाने-पीने कपड़े-लत्तों तक ही समझते हैं, जो अनुचित है। उनके मानस को तैयार नहीं किया जाता। तैयार करना अपने विचारादि को उन पर जबरदस्ती डालना नहीं है। पढ़ाया जाता है, माता-पिता देखते हैं। बच्चों का सिर इस 'देव-तत्त्व' को समझने में ही कितना असमर्थ है। वे तो दुनिया को अपनी दृष्टि से देखते हैं, आपकी दृष्टि से नहीं। उसे

* दूसरी किस्त

तो संसार रहस्य का और तद्भूत आश्चर्य का आगार है। बालक आपको नहीं समझ पाता। यही तो विग्रह की भूमि उर्वर है उसके सरल प्रश्न के उत्तर में आप हँस सकते है, सम्भवत किसी कारणवश रो सकते है, पर उसको सन्तुष्ट तो नहीं कर सकते। उसका प्रश्न इतनी विचित्र रीति से सरल होता है कि आप उसके भोलेपन पर मुग्ध होकर उसके प्यारे-प्यारे गाल, छोटे-छोटे होंठ, यानी सब अंग जो मिल जाएँ, चूम लेते है, और वह आपके इस आश्चर्यजनक व्यवहार पर न मालूम क्या सोचता है? यही सोचता है कि आप एक रहस्य है, एक पहेली है। आप उत्तर तो देने से रहे। या तो टाल देते हैं, या फटकार देते है। कुछ भी हो, बालक पर अत्याचार होता है।

हाँ, उस भूत के अन्धकार में हम बालक का हृदय लिये फिरते है। तब, हमें आज की बुराई अच्छाई मालूम देती है। यह तो मानस है। आज हमारा मन दूसरी तरह का हो गया हो, यद्यपि मौलिक गुण अब भी है। आज का हमारा युवक मस्तिष्क जिस बात को अच्छा कहता है, वृद्ध वही राजनैतिज्ञ की तरह कहने लगता है। साराश यह, कि यदि हम एक दूसरे का मानस समझने लग जाएँ तो उनमें इतनी अनुदारता न रहे।

और यह भूतकालीन चित्र क्या हमारे जीवन में कम महत्त्वपूर्ण है? मैंने तो कहा न, जीवन तो कार्यों का, विकारों का एक पुलिन्दा है और स्मृतियाँ उसकी सच्ची आलोचना हैं। हमारे आगे के जीवन के लिए भले ही उपयोगी सिद्ध हो पर उसका सच्चा महत्त्व इसमें स्थित नहीं। आगे के जीवन को बनाना क्रियाशील जगत् का कर्त्तव्य है। पर स्वप्नचर इन बातों से दूर है। वे तो इस हृदय का 'टानिक', समझते हैं, इसलिए नहीं कि उन्हें जीवन-नैया बहुत देर तक खेना है, किन्तु इसलिए कि 'टानिक' मीठा होता है और उन्हें लेने में आनन्द आता है। इन लोगों का जीवन पुष्ट जीवन है। वे तो कल्पना के मन्दिर में अनुभूति के उपासक हैं। यही उनका धर्म है। ये वे लोग हैं जो जगत् की क्षिणता पर हँस देते है, शाप नहीं देते। हाँ भाई, यही तो सच्चे सन्त हैं।

इन लोगों को अपनी मूर्खताएँ प्यारी लगती है, वे उनकी चीज है। उनको वे रोकर दुलारते है, उनके प्यार का यह भी एक अंग है। अधजली बीड़ी के धुएँ में वे अपने प्रासाद बनाते हैं, जहाँ उनकी प्राणप्रिया मजदूर रहती है और उनके इतिहास के दो भाग होते है, भूत और भविष्य। या यों कहिए कि एक भी भाग नहीं होता, और वह इतिहास, इतिहास नहीं रहता, वह वर्तमान हो जाता है।

भूतकाल ऐसे लोगों के लिए कितना महत्त्वपूर्ण होता है, इसे वे स्वयं अनजाने ही जान लेते हैं। जो अन्धकार को प्यारी चीज समझते है जो प्रकाश से डरते हैं, जिन्हें अन्धकार में ठोकर लगना अधिक अच्छा लगता है वही तो कल्पना के जीव है। भूत का अन्धकार उनका प्राण होता है, भविष्यत् उनके लिए मा का आशीर्वाद है वर्तमान उनके लिए नहीं होता। वे कर्तव्याकर्तव्य से बँधे नहीं हैं। वे जिस चीज से मुँह मोड़ना चाहते हैं, वह सामने आ गयी तो उसे भी ले लेते हैं, और उनको इसकी खबर भी नहीं होती। वे अपने में ही गायब है। वे सन्त और असन्त दोनो है। उन्हें जगत् की परवाह नहीं है। भूतकाल का अन्धकार इन लोगों को कितना प्यारा लगता होगा।

भूतकाल फिर कभी नहीं आने का। वे बातें, वे मूर्खताएँ जब हमारी सभ्यता

के आवरण मे ढक चुके हैं। हम युवक हैं। हमारे लिए कितना कार्म-क्षेत्र है। ये तो राजनीति की बातें हैं। बचपन राजनीति क्या जाने ? हाँ, अब हम कल्पना के पखों से उस ओर उड चलें, जहाँ हमारी मूर्खता अब भी बालक की हँसी हँस रही है। चलो, ना !!

[कर्मवीर, खण्डवा, 9 जनवरी और 16 जनवरी, 1937, दो किस्तो मे प्रकाशित। रचनावली के दूसरे सस्करण मे पहली बार सकलित]

आधुनिक समाज का धर्म

मैं कुछ शिकायतें करना चाहता था इस दुनिया के खिलाफ, लेकिन मैं रुक गया, सोचते हुए कि आखिर मैं अपने को दुनिया से अलग क्यो मान लूँ। दुनिया का खाकर, दुनिया का पीकर, दुनिया के मनुष्य म प्रेम कर, उससे अलग समझना अपने 'स्व को जरूरत से अधिक ऊँचा रखना है—दुनिया ने हमको बनाया, अब हमी दुनिया को बनायेंगे। लेकिन अपने (गिरे हुए) मकान को छोडकर एक विदेशी प्रासाद म विलास करना मुझे नही सुहाता।

मैं व्यक्तिवादी (egoist) नही हूँ। क्षमा करना। मुझे उससे अत्यन्त घृणा है। मेरा अन्तर तो विस्तार चाहता है—वह इतना बडा होना चाहता है कि सम्पूर्ण विश्व होगा उसमे समा जाये। परन्तु शायद इस जीवन मे यह सम्भव नही—मुझे कई दफा मरना होगा, तब समझ मे आयेगा कि जीवन क्या है ?

मैं साम्यवादी या समाजवादी भी नही हूँ। विश्व-समाज आजकल पतन के गहन गर्त म है, जिसका कारण है उनका गलत दर्शन शास्त्र—(false philosophy)। आजकल का समाज व्यक्ति की गुणमत्ता (genious) को कुचल देता है, केवल मूर्ख और पेटू majority के लिए। लोगो के मनो को निर्जीव और जडवत् समझ लिया गया है। उनको चाह जिस काम मे लाया जा सकता है। बुद्धिमान और गुणवान व्यक्ति उत्पन्न करना आज के समाज का इष्ट नही, यह मशीनमैन चाहता है।

समाज का धर्म बुद्धिवान और गुणवान (genious) मनुष्यो को पैदा करना होना चाहिए। हाँ, जो नही है उनका नाश इष्ट न होकर उनको अधिकाधिक सुयोग्य बनाना, उनकी शक्ति, मेधा और प्रतिभा को विकसित करना उसका ध्येय होना चाहिए। ऐसे गुणसम्पन्न व्यक्तियों से समाज बलिष्ठ हो सकता है। मैं degenerated समाज को, बुद्धि और गुणवान व्यक्ति को कुचलते हुए नही देख सकता।

मैं तो Trans-individualism मे विश्वास रखता हूँ। हम जब अपने लघु सामाजिक अह को पारकर विस्तृत जीवन के भागी होते है तभी हम sprituality के कूल पहुँच जाते है। विस्तार और गहराई ये दोनो Trans-individualism के

गुण हैं। मैं सच कहता हूँ कि दिन-दिन मैं अपने व्यक्तित्व मे विस्तार लाना चाहता हूँ। हम एक व्यक्ति को प्यार कर ससार से अलग क्यो हटें, हमे अपना अनुराग दुखी ससार पर बिखेर देना चाहिए। हमे ससार को कोसना नही चाहिए। मेरे लिए भी इमर्सन के अनुसार, 'One soul is the door through we reach other souls'। भाई, I can not stop at one soul. Sometimes I hear distant calls—vague but forceful I am very sensitive to that which is vague। लेकिन मुझमे will power की अत्यन्त कमी है। मैं जितना सोचता हूँ, उतना कर नही पाता।

जब मैंने यह जान लिया कि आधुनिक समाज या सगठन ग़लत तत्व-शास्त्र के आधार पर हुआ है, तो मेरा चिकित्सक मन ठीक दर्शन के शोध मे डट गया। इन दिनो खूब फिलासफी पढी जा रही है। लेकिन मुझे कल ही यह प्रत्यक्ष ज्ञान (direct realization) हुआ कि दर्शन किसी finished शास्त्र का नाम नही है। Philosophy is an eternal quest, यह 'सतत् सनातन अन्वेषण' है।

आजकल मैं विचित्र समस्याओ मे पडा हूँ। Highest experience धर्म मे ... ...ism कहलाता है। परन्तु philosophy का absolute और ... दृष्टि से God जो केवल एक ... नम्न कोटि पर है। यही ... तक कि उन्होने 'क्द्रा-

वादी हेगेल आदि जर्मन ... डिक्शन इन टर्म्स' सरीखी फैलेसी कर दी।

लेकिन, यदि मिस्टिक एक्सपीरिएन्स उच्चतम अनुभव है तो परमात्मा को ऐबसोल्यूट के नीचे रखना मानवता को असमर्थ समझना हुआ। मैं शीघ्र ही इस विषय पर कुछ लिखना चाहूँगा। मेरा विचार है कि प्रथम मैं कुछ फुटकर लेख लिखूँ, उसके बाद मेटाफिजिक्स, और उसके अनन्तर ऐथिक्स को लाऊँ। जीवन थोडा है, कार्य बहुत है और शक्ति अत्यन्त कम है, और चारो ओर अन्धकार ही अन्धकार है।

[कर्मवीर, खण्डवा, 1 अप्रैल, 1939 मे प्रकाशित। रचनावली के दूसरे सस्करण मे पहली बार सकलित]

भारतीय जीवन के कुछ विशेष पहलू

साधारण हिन्दुस्तान के बाहर यह माना जाता है कि यह एक दार्शनिको का देश है—या दार्शनिक देश है। देखा जाय तो जर्मनी और भारत—दोनो को महान दार्शनिक नेताओ को जन्म देने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। और दार्शनिक वातावरण मे, जिस तरह जर्मनी के विद्यार्थी हेगेल के पुजारी होना सुसस्कृत होना समझते हैं, बिलकुल वैसे ही भारतीय दर्शनशास्त्री शकराचार्य को अत्यन्त

विध्य के उदाहरण हैं। अतएव उसके लिए शंकराचार्य और हेगेल, कालिदास, और शेक्सपियर, प्रेमचन्द और गार्की, एक समान हैं।

हम भारत के हैं। और भारत हमारा होते हुए भी हमारी मर्यादा नहीं है। इसीलिए स्पष्ट है कि भारत को ऋषि-मुनियों का देश कहते हुए हम यूरोप को वैज्ञानिक सभ्यता का देश कहकर उसे नाछिा नहीं कर सकते।

चिन्तकों की बात जाने दीजिये, जिन पर दूसरों का प्रभाव बिना परिवर्तन के नहीं पड सकता, पर जन-साधारण पर वह वैसा ही पडता है। यूरोप का जन-समाज देशीय नैतिकता की दृष्टि से अत्यन्त हीन कोटि का हो परन्तु वह हिन्दुस्तानियों से अधिक सावधान है, यह निश्चित समझिये।

'भारत दार्शनिक देश है,' यानी भारत का अत्यन्त साधारण आदमी भी चाहे जितना व्यभिचारी, इन्द्रिय-लोलुप क्यों न हो, पुराने जमाने से चली आयी विचार-मालिका को दुहराता रहता है। 'जीवन क्या है ? मृगतृष्णा है,' 'जीवन क्या है ? आखिर मरना है !'—इस तरह के उद्गार यदि आत्मा की सफलता के चिह्न हैं तो उनकी कीमत भी है। परन्तु साधारणतः ये दार्शनिक वाक्य जन-साधारण के लिए ऐसे नहीं होते। इनका अर्थ अनुभूति द्वारा ग्रहण नहीं किया जाता। ऐसी परिस्थिति में ऐसी फिलासफी कभी भी जन साधारण को सत्पथ पर नहीं चला सकती, ऐसा मेरा खयाल है। जीवन में रहते हुए उसके आकर्षणों में लिप्त रहते हुए और उसके बाद कुछ न देखते हुए इन वाक्यों का पुनरुच्चार जीवन में व्यंग्य-सा प्रतीत होता है। उनके गहरे आध्यात्मिक अर्थ को समझने जाता कौन है ?

आलस्य और तज्जन्य स्थूल बुद्धि तथा सूक्ष्म दृष्टि के अभाव से उत्पन्न नैराश्य का झोंका लगने के साथ ही हम भारतीयों की आध्यात्मिकता जाग उठती है। यौवन छूकर बुढ़ापा आया और हरिभजन की आड में यमराज से छुटकारा पाने की तीव्र प्यास ने आत्मा को शिकार खेली। अरे ! यह सब क्या है ! क्या भावनाएँ सब कुछ हैं ! जब यौवन आया तो उसी को अन्तिम समझा। बुढ़ापा आया तो लगे हरिभजन करने ! भाई यह तो आध्यात्मिकता है नहीं।

जर्मनी की ओर देखो ! इंग्लैंड में ह्यूम के बाद डार्विन के सिवा कोई और हुआ ? क्या किसी ने गूढ पारलौकिक परब्रह्म (ऐब्सोल्यूट) में अपने को इतना लीन किया—उसकी खोज में इतना जीवन बिताया जितना कि जर्मनी के उन महान् प्यासे दार्शनिकों ने !

इस अनन्त प्रकृति और अनन्त प्राणों को संगठित करनेवाली इस आधिबौद्धिक अतीन्द्रिय सत्ता के उद्रेक के स्वरूप को किसने इतनी निकटता से समझा ? आप उनसे मतभेद रख सकते हैं क्योंकि दर्शन चिरन्तन प्यास को कहते हैं।'

कांट, फिश्टे, शैलिंग हेगेल, शॉपेनहॉर, और नीत्शे। कई हेगेल के अनुयायी, टीकाकार और आलोचक वैल्यू फिलासफर्स !

फिर भी क्यों जर्मन जाति का आदर्श भारतीय निराशावाद नहीं है ? जर्मनी

दार्शनिको का देश है, लेकिन दार्शनिक देश नही है।

समाज म जीवन पैदा करना उसे सत्पथ दिखाना यह फिलासफी का महान् धर्म है। लेकिन भारत मे सामाजिक जीवन मे श्रद्धा का स्थान निर्बुद्ध निष्ठा ने ले लिया है। फलत जीवन को माया का सर्वोत्तम उदाहरण मानकर सडक पर चलनेवाले साधारण बुद्धि के लोग अच्छा अध्यात्म पा लेते है।

इसमे, शायद है, भारतीय दर्शन का कोई दोष न हो और मुसलमानी शासन काल म स्वाभाविक नैराश्य ने इस दर्शन का आश्रय लिया हो, क्योकि हिन्दू धर्म के अधीन कई छोटे-मोटे धर्म है और इसी के अन्तरगत परस्पर विरोधी दार्शनिक प्रणालियाँ भी हैं।

श्रीमद्‌भगवत्‌गीता का कर्मयोग जन-साधारण के लिए अत्यन्त सुन्दर तत्वशास्त्र होते हुए भी, वे उस ओर न झुककर शकराचार्य के मायावाद और कबीर के दार्शनिक मतो के भ्रष्ट रूप पर अधिक जल्दी झुक्ते है। क्योकि आशावाद महान् कठिनाइयो, ठोकरो क सम्मुख रहते हुए, आत्मा की सबलता का चिह्न है और क्योंकि उनकी आत्मा इस तरह की कष्टपूर्ण परिस्थितियो मे दुख को सहनकर रास्ता खोजने के काम नही कर सकती।

अपनी कमजोरियो को दार्शनिक रूप म उपस्थित कर उसके उच्चत्व की माया मे अपन को भुलाना भारतीय जन साधारण की मनोवृत्ति का सूचक है। बिलकुल वैसे ही नैतिकता के भद्दे आवरण म अपनी निर्बुद्ध अ-सृजनशीलता और हृदय की नि सहायशीलता का परिचय दना भारतीय जीवन की एक खूबी है। इस अनिष्ट सामाजिक नैतिकता के पीछे कितने ही प्रतिभाशाली व्यक्तित्व अकुरावस्था म ही मिट्टी मे मिला दिये गये है।

इस हिन्दुस्तानी खराबी का कारण क्या? क्या भारतीय ऋषि मुनि गलत थ? क्या उनके आदर्श धोखेबाज थे? क्या बात है कि भारतीय साधारण समाज अपनी उसी पुरानी बौद्धिक अवस्था पर है जिस पर वह पहले स विराजमान है। इसका कारण हम जान लना बहुत जरूरी है।

भौगोलिक, ऐतिहासिक तथा आर्थिक आदि कारणो के अलावा कुछ ऐसे भी कारण है जिनको हम भारतीय विचारको की मूल वृत्ति कह सकते है। भारतीय कलाकार, चिन्तक तथा साहित्यिको ने अपनी व्यक्तिगत उन्नति को पराकाष्ठा तक पहुँचा दिया किन्तु अपने साथ वे समाज को न ला सके। इसका प्रधान कारण उनकी परमोच्च विचार-प्रणाली जो उनकी वैयक्तिक प्रवृत्तियो के अनुसार बनी। गांधी बाबा का अहिंसावाद, जैसा कि मेरे एक मित्र कहते हैं, इसी कोटि का है। यानी, आनवाले कल के लोगो को उसकी कार्य मे परिणति कठिन मालूम होगी। आज भी अहिंसात्मक सिद्धान्त राजनीति की दृष्टि से कहाँ तक ग्राम्य है, यह विचारणीय है।

साराश यह कि समाज म तरह-तरह के लोग होत है। उनका विकास कितना लघु होता है कि यदि उनको इन परमोच्च विचार-तत्त्वो का ज्ञान कराया जावे तो उसका अवाछनीय और गलत प्रयोग होने लगता है। आज भी कांग्रेस मे कितने लोग ऐसे है जो गांधीजी के तत्त्वो को आत्मसात कर चुके हैं?

अतएव जन-साधारण के लिए एक ऐसी फिलासफी की जरूरत होती है जो उन्हे जीवन के प्रति अधिक ईमानदार करे। साथ ही उनमे एक ऐसी नैतिकता का

जन्म हो जिसमें उनकी बुद्धि स्वतन्त्रतापूर्वक खेलती रहे। बाहरी दृष्टि से सत्पथ पर ले जानेवाली निर्बुद्ध निष्ठा कुमार्ग पर ले जानेवाली स्वतन्त्र बुद्धि की अपेक्षा अधिक हानिकारक होती है।

अतएव सबसे अधिक जरूरी बात यह है कि हम अपना दर्शन सामाजिक धरातल पर ले जायें, यानी अपने साँचे मे हम जगत को ढालने का प्रयत्न छोड दें।

यह सब इसलिए लिखा गया है कि देशप्रेम के नशे में हम अपनी कमजोरियाँ, बहुत जल्दी भूल जाया करते हैं। भारत से प्रेम करना यानी उसके गुण गाना नही है, भारतीय संस्कृति के उपासक उसके दोष देखना भूल जाया करते है।

[कर्मवीर, खण्डवा, 25 नवम्बर, 1939, मे प्रकाशित। रचनावली के दूसरे सस्करण मे पहली बार सकलित]

नव-भववाद

यह नया 'वाद' सुनकर हमारे पाठक चौकेंगे। जिस तरह कार्ल मार्क्स ने समाज-व्यवस्था के नये सिद्धान्त को प्रतिष्ठापित किया, उसी तरह यह भी कोई नयी दिमागी करतूत होगी, एसा आप समझेंगे। लेकिन ऐसी कोई बात नही है। यह नवीन वाद एक खास दृष्टिकोण लेकर चलना है और उसी दृष्टिकोण को समझ लेने की जरूरत है।

इस वाद का यह नाम महाराष्ट्रीय जरूर है, लेकिन उस प्रान्त की यह बपौती नहीं है। हर प्रान्त मे इसका प्रचलन है, थाडे-अधिक परिमाण मे। इस दृष्टिकोण को रखनवाले सब प्रान्तो मे मिलेंगे।

इसका इतिहास यो है

यूरोप म विज्ञान का हुआ अभ्युदय। भौतिकशास्त्र, रसायनशास्त्र, खगोल-शास्त्र, आदि की उन्नति क साथ ही पुरान धर्म से आस्था उठ गयी। 'फ्री थिंकर्स' का जन्म हुआ और ईश्वर का अनस्तित्व सिद्ध किया गया। साथ ही पुरानी सामाजिक नीति यानी धार्मिक विधि आदि के विरुद्ध विद्रोह होन लगा। भौतिकवाद (मैटीरियलिज्म) की उत्पत्ति हुई। और डार्विन की थ्योरी, विकासवाद का जन्म हुआ।

धर्म और ईश्वर के पतन के साथ ही लोगो का दृष्टिकोण अधिक वैज्ञानिक या बौद्धिक हो गया। इसका परिणाम समाज मे भी प्रकट हुआ। सामाजिक रूढियो का बहिष्कार किया गया। सामाजिक परम्पराएँ सडी-गली मानी जान लगी। उन दिनो धर्म ने समाज को बहुत दबा रखा था, अतएव समाज के प्रति विद्रोह धर्म के ही प्रति विद्रोह था। अब भी सामाजिक नीति (सोशल मॉरेलिटी) वैसी ही थी। उसके प्रति अब तक ध्यान नही गया था। कार्ल मार्क्स के वैज्ञानिक समाजवाद ने

धर्म के प्रति जिहाद किया था, लेकिन सामाजिक नीति पर उसने हमला नहीं किया था। इधर फिलॉसफी की उन्नति हो रही थी और मनुष्य का ज्ञान-भण्डार बढ़ रहा था।

सामाजिक नीति का भी पतन होने को था। विज्ञान की ओर से अब तक उसके प्रति कोई दुर्भावना पैदा नहीं की गयी थी। परन्तु वह काल भी शीघ्र आने को था।

यूरोप के मध्य भाग में आस्ट्रिया नाम का देश है। वहाँ के जगत्प्रसिद्ध नगर वियेना में सिगमण्ड फ्रॉयड नामक एक डाक्टर ने देखा कि कई रोगों की उत्पत्ति का कारण मन की इच्छाओं का दमन है। मनुष्य की कई इच्छाओं की पूर्ति समाज में खराब मानी जाती है, इसलिए मनुष्य उन इच्छाओं को बुरी तरह से दबाता है। वे इच्छाएँ दब तो जाती हैं, लेकिन अवचेतन मन (सब-कॉन्शस माइण्ड) में जाकर जोरदार हो जाती हैं। इसमें व स्वप्नों में विविध आकार धारण करके मन को उद्विग्न करती हैं। इन्हीं दबायी हुई इच्छाओं के प्रबल होने पर मन को कई प्रकार के रोग हो जाते हैं, जिसका एक उदाहरण हिस्टीरिया (स्त्रियों को होनेवाला मूर्छा रोग) भी है।

नर-नारियों में कामवृत्ति प्रधान होती है। जब समाज इस वृत्ति की तृप्ति रोक देता है, तब मनुष्य के मन में अनेक अप्राकृतिक (मॉरबिड) वृत्तियों का जन्म होता है, जिनकी पूर्ति असामाजिक है। कई मनुष्य अधिक क्रोधी, चिड़चिड़े और हिंसा में आनन्द लेनेवाले हो जाते हैं। इसका कारण भी कायिक है। सिगमण्ड फ्रॉयड की थ्योरी ने कई मनुष्यों के रोगों को दूर कर दिया। स्वप्न मीमांसा से गुप्त इच्छाओं को जाना जाता है, जिनको अवचेतन से चेतन में डालने से तीव्रता कम हो जाती है। स्टीफान ज्वाइग नामक ऑस्ट्रियन ग्रन्थकार ने उन्हीं मनुष्यों की जीवन-कहानियाँ लिखी जिनकी गुप्त वृत्तियाँ समाज ने दमन कर रखी थीं।

सिगमण्ड फ्रॉयड के बाद युंग और हैवलॉक एलिस ने भी मानस-विश्लेषण (साइको एनलिसिस) में विशेष प्रगति की। युंग ने मानसिक अवस्था का वर्गीकरण करके वर्ग ठहराये और एलिस ने 'स्टडीज इन दि सायकोलॉजी ऑफ सक्स' में मानसशास्त्र में क्रान्ति कर दी और कई मानसिक गुत्थियों को सुलझाया।

इस जगह हम इन सबका विशद वर्णन नहीं कर सकते। परन्तु इन सबकी खोजों से यह बात प्रमाणित हुई कि समाज का गठन दूषित है। हैवलॉक एलिस के बाद बर्ट्रेण्ड रसल ने समाज की रचना या संघटन पर विचार किया और सामाजिक विषयों पर सोचनेवाले, सारी दुनिया में, कई चिन्तक उत्पन्न हुए। अतएव लोग 'फ्री सेक्स' में विश्वास करने लगे और स्वैराचार आरम्भ हुआ। कुटुम्ब संस्था होने से स्वैराचार नहीं हो सकता था, इसलिए उस पर से विश्वास उठने लगा। आखिर चिन्तकों के सम्मुख तीन प्रश्न आये—(1) कामवृत्ति की तृप्ति के लिए किन-किन बातों के सुधार की आवश्यकता है? (2) इस अर्थ में, विवाह का महत्त्व क्या है? क्या वेश्या-व्यवसाय समाज-स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है? विवाह के बन्धन क्या हैं? विवाह का उद्देश्य क्या है। स्त्री के कौन-से मौलिक अधिकार हैं? (3) सन्तति-नियमन। इनसे लगे हुए और भी कई प्रश्न हैं किन्तु मोटे तौर से ये ही प्रमुख प्रश्न हैं।

उन दिनों महाराष्ट्र में जोरों के साथ सामाजिक सुधार हो रहा था।

महाराष्ट्र की दृष्टि प्रथम कुटुम्ब सस्था की ओर गयी। उसका साहित्य सामाजिक हुआ। व्यक्ति को वह समाज के सन्दर्भ से देखने लगा। इधर यूरोप मे हेनरिक इबसेन ने नाटक-परम्परा मे क्रान्ति उत्पन्न की, उससे प्रभावित हुए शॉ और गॉल्सवर्दी। नाटककार इबसेन का सामाजिक प्रभाव व्यापक है। अतएव साहित्य मे समाज-सुधार तथा स्त्री और पुरुष के सम्बन्धो पर चिन्तन सामयिक चीज बन गयी। महाराष्ट्रीय मस्तिष्क ऐसी बातो के लिए पहले से ही तैयार था। उसने बहुत बडा कदम उठाया। धडाधड उपन्यास, नाटक, निबन्ध निकलने लगे। कला की रक्षा के साथ-ही-साथ समाज-सुधार का प्रश्न सामने लाया गया। या यो कहे, महाराष्ट्रीय कला का उद्देश्य सामाजिक बुराइयो का नाश करना रहा, अतएव उसका जीवन के प्रति दृष्टिकोण बौद्धिक हुआ। इसमे वह कला इबसेन, शॉ और गॉल्सवर्दी मे प्रभावित हुई।

पुरानी प्रथाओ या सनातनी परम्पराओ के (जैसे विधवा का विवाह न करना) प्रति जिहाद बोला गया। धार्मिक विधियाँ, स्त्रियो की दासता, अन्ध ईश्वर-भक्ति, मूर्खता ठहरायी गयी। बन्धना वलीकडे नामक उपन्यास अत्यन्त लोकप्रिय हुआ। विधवा विवाह पर कई उपन्यास लिखे गये। मामा वरेरकर-जैसे लेखक इस क्षेत्र मे उतर आये। गीता साने, सौ नाशिककर, श्रीमती प्रभावलकर, पिरोज आनन्दकर, 'कृष्णाबाई', श्रीमती शिर्के, विभावरी शिरूरकर आदि वे उपन्यास और कहानीकार हैं जिन्होने सामाजिक विषय लिये।

इसके बाद कामवृत्ति का प्रश्न आया। सन्तति-नियमन या इस तरह के अन्य विषयो पर उपन्यास-कहानियाँ लिखी जाने लगी। प्रो ना सी फडके ने आशा आणि उद्धार आदि कादम्बरियाँ (उपन्यास) लिखकर इन प्रश्नो को लोकप्रिय बनाया। किर्लोस्कर और स्त्री नामक मासिक-पत्रो ने सामाजिक प्रश्नो को महाराष्ट्र के हर कुटुम्ब तक पहुँचाया।

लोगो ने कान फडफडाये, सावधान हुए, सचेत हुए, और सोचने लगे। 'सनातन' परिपाटी और व्यवस्था को नष्ट किया गया है, यह वे जान गये। पर नयी व्यवस्था क्या होनी चाहिए, वह क्या है, यह नया प्रश्न उपस्थित हुआ। अर्थात् महाराष्ट्रीय सामाजिक व्यवस्था सक्रमण काल (ट्राजीशनल पीरियड) मे है, यह सुप्रसिद्ध नाटककार अत्रे ने घोषित किया, और उनकी घोषणा की सत्यता सब लोगो के मन म एक नया प्रश्न उपस्थित करने लगी। वह यह है—हम चल तो रह है, प्रगति हो रही है, पर किस ओर? ईश्वर व्यर्थ है, माना, पर हमारे हृदय की भूख का क्या होगा? यह आन्तरिक क्षुधा तो है ही।

इसका उत्तर कही से नही आया। मराठी के सुप्रसिद्ध दार्शनिक और चिन्तक श्री वामन मल्हार जोशी से पूछा गया "क्या आत्मा अमर है?" उत्तर आया "सोचने पर मालूम होता है कि आत्मा की अमरता न मानने पर भी हमारे नैतिक मूल्यो (मॉरल वैल्यूज) मे फ़र्क नही पडता। जीवन का भार ढोनेवाली मानसिक दुर्बलता आत्मा की अमरता आदि विश्वासो की शरण लेती है।"

ठीक उत्तर न मिलने से महाराष्ट्रीय फिर भी अँधेरे मे रह गये। प्रो माधवराव अलतेकर ने भी कोई निश्चित मार्ग नही दिखाया। नवे मानव शास्त्र आणि नवी नीति (अलतेकर-लिखित) महाराष्ट्र के आधुनिक भाव का परिचय देती है।

इस प्रकार निरे बुद्धिवाद से भौतिकवाद (मैटीरियलिज्म) का जन्म हुआ

और भौतिकवादी दृष्टिकोण से शकावाद (स्कॅप्टिसिज्म) फैलने लगा। महाराष्ट्रीय चिन्तना की यह एक महत्त्वपूर्ण धारा है।

अब हम सामाजिक बुद्धिवाद या नव-भववाद की रूपरेखा देख लें .

1 धर्म और सामाजिक रूढियो को त्यागकर जीवन को अधिक व्यवस्थित बनाना होगा। पुरातन धर्म का दृष्टिकोण और सामाजिक दासता का दृष्टिकोण मध्ययुगीन है। आधुनिक समाज की स्वाभाविक आवश्यकताओ की पूर्ति मध्य-युगीन सघटन नही कर सकता, इसलिए पुरातन परम्परा का त्याग जरूरी है।

2 इसके अन्तर्गत स्त्रियो के मौलिक अधिकार, विधवा विवाह, पति के अधिकारो की मर्यादा, अन्तर्जातीय विवाह और घटस्फोट (तलाक) है। इसमे धर्म और रूढि के बन्धन का सर्वथा परित्याग है।

3 कामगत ज्ञान का प्रचार, काम-सम्बन्धी चर्चा मे सामाजिक बन्धन का उच्छेद, शिशुपालन का ज्ञान, सन्ततिशास्त्र का अध्ययन और सन्तति-नियमन।

4 भारतीय औद्योगीकरण, स्त्रियो को आर्थिक स्वातन्त्र्य।

उपर्युक्त विषयो पर ही **किर्लोस्कर** और **स्त्री** नामक मानसिक-पत्रो के पृष्ठ रँगे रहते है। ये विषय कितने लोकप्रिय है, इसका अन्दाजा इन पर निकलनेवाले उपन्यासो और निबन्धो से लग सकता है, तथा **किर्लोस्कर** और **स्त्री** मासिक की यथार्थ ग्राहक-सख्या से भी।

[**कमला**, खण्ड 2, सख्या 6, मे प्रकाशित। सम्भावित प्रकाशन-रचनाकाल 1941-42]

नौजवान का रास्ता*

पहाडो को तोडकर, चट्टानी दीवारो को काटकर, कगारो को ढहाकर, गूँजकर और गुजाकर, पहाडी क्षेत्र की धडकन बनकर, जो आगे बढ रहा है उसी को अपनी भाषा मे झरना कहते है।

यही झरना जरा दूर चलने पर पहाडी नदी बन जाता है। इस नदी के जलनाद की खोज करने पर पता चलता है वहाँ एक प्रपात है, धुआँधार है, जलधूम है।

अन्वेषक निकलते है। रिसर्च के विद्यार्थी निकलते हैं, इजीनियर्स निकलते है। उस स्थान की खोज करते हैं। प्रपात तक रास्ता बनाते हैं, उस पहाडी नदी की शक्तिशाली धारा की ताकत को बिजली की ताकत मे रूपान्तरित करने के लिए एक बिजलीघर बनाया जाता है। वैज्ञानिक अनुसन्धानकर्त्ता, कार्यकर्त्ता, कारीगर, कर्मचारी और कलाकार और मजदूर सभी इकट्ठा हो जाते हैं। दूरवर्ती क्षेत्रो मे सस्ती बिजली के जरिये सिंचाई होती है, कारखाने चलते हैं, और देश की धन-

* शीर्षक रचनावली के सम्पादक द्वारा।

धान्य समृद्धि बढ़ती जाती है। कवि और उपन्यासकार बिजलीघर के श्रमशील जीवन के चित्र उभारते हैं, उन्हें गाते हैं। पिछड़ा हुआ मुल्क उन्नति के इतिहास के मार्ग पर दनदनाता हुआ आगे बढ़ जाता है।

अगर नौजवानी की ताक़त का पहाड़ी नदी की शक्ति मान लिया जाय, तो यह निश्चित है कि नौजवान के दिलोदिमाग़ की ताक़त को, ज्ञान और बुद्धि तथा कर्म निश्चय की बिजली में रूपान्तरित करते हुए, देश निर्माण यानी मानव-निर्माण की ऊँची-से-ऊँची मंज़िल तक पहुँचाया जा सकता है, बंजर धरती ज़िन्दगी में इश्क़ और इन्क़लाब की रूहानियत की फसल खड़ी की जा सकती है।

ज़िन्दगी बड़ी ही ख़ूबसूरत चीज़ है, वह जीने के लिए है, मरने के लिए नहीं। अच्छे आदमी क्यों दुख भोगें—इतने नेक आदमी और इतने अभागे! दुनिया में बुरे आदमियों की संख्या नगण्य है, अच्छे आदमियों के सबब ज़िन्दगी बहुत ही ख़ूबसूरत चीज़ है, वह जीने के लिए है, मरने के लिए नहीं।

लेकिन नौजवानों के दिलोदिमाग़ की ताक़त को बिजली में रूपान्तरित करते हुए, देश निर्माण और मानव-निर्माण में लगाने के लिए, जिस बिजलीघर की ज़रूरत होती है, वह हिन्दुस्तान में नदारद है। अब देश की उन्नति हो तो कहाँ से हो और कैसे हो। जिस देश में नौजवान मारे-मारे फिरते हैं, बेकार रहते हैं, भूखों मरते हैं (बौद्धिक और हार्दिक विकास के सदय ही जहाँ गुम हैं) तो उस देश के नौजवान अगर अपनी ख़ाली जेब और भूख की यन्त्रणाओं को, अपने दुर्भाग्यों को, चवन्नी-छाप एक्ट्रेसों की सूरत देखकर दो मिनिट के लिए भुलाना चाहते हों, तो उन नौजवानों की तृषित आँखों का लोग भले ही ग़लत समझें, हम उनके बारे में किसी ग़लतफ़हमी में नहीं हैं, क्योंकि हमारा नौजवान बेहद सच्चा है। और बेहद अच्छा है। उसमें बड़ी आग है और बहुत मिठास है। वह दुनिया को उलट सकता है और उलटकर फिर पलट सकता है। लेकिन उसके दिलोदिमाग़ की ताक़त को मानवी बिजली में रूपान्तरित करनेवाला बिजलीघर कहाँ है? वह तो नदारद है। इसलिए अगर हमारे नौजवान में कुछ दोष हैं, कुछ ख़ामियाँ हैं तो अपराध उसका नहीं है। क्योंकि हमारा नौजवान बहुत सच्चा है और बेहद अच्छा है।

नौजवानी के गीत बहुत लोगों ने गाये हैं। हुस्नोइश्क़ और इन्क़लाब का काबा नौजवानी ही समझी गयी है। लेकिन जिन तकलीफ़ों में से नौजवान गुज़रता है, उनके बारे में क़लम चलाने का साहस थोड़े ही लोगों ने किया है। यथार्थ कुछ और है, और काल्पनिक लोक कुछ और। माना कि साधारण रूप से नौजवान अपने बाप के घर रहता है, बड़ों की छत्रछाया में पलता है। और दुनिया से लोहा लेने का जोश और उमंग उसमें भले ही रहे, उसके पास अनुभव न होने के कारण उसे पग-पग ठोकर खाना पड़ती है।

यह बात न भूलनी चाहिए कि वर्तमान स्थिति में जब कि पारिवारिक चिन्ताओं का वातावरण घर में ख़ूब घना हो जाता है, और क़ायम रहता है, हमारा साधारण नौजवान उन्नति की ओर अग्रसर नहीं हो सकता। नौजवानी में ज़िन्दगी को पंख फूटते हैं। लेकिन ठीक उसी समय घर का चिन्ताग्रस्त वातावरण उसके मन पर छा जाता है। एक ओर उमंगें और जोश लहरें मारता है, तो दूसरी ओर, ठीक उसके विपरीत, नौजवान के हृदय में चिन्ता और घर की उलझनें पुराने अभिशाप की छायाएँ-सी चक्कर लगाती हैं।

पुराने शहीदों का नाम लेकर, भगतसिंह और सुभाष बोस की कीर्ति-कथा सुनाकर, गदर पार्टी और अनुशीलन दल की यशोगाथा सुनाकर, नौजवान के दिल में देशभक्ति और प्रेरणा तो जरूर भरी जा सकती है, लेकिन उन कथाओं के जरिये उसकी अपनी उलझनों को दूर नहीं किया जा सकता है। हर पीढ़ी के अपने नये अनुभव होते हैं, इस प्रकार नये, कि जो न पुरानी पीढ़ी के थे और न आगामी पीढ़ी के होंगे। फलतः नसीहतों की झांझ बजाकर नौजवान की समस्या को हल नहीं किया जा सकता। सहानुभूति और मानवीय अनुभवमूलक ज्ञान की आवश्यकता अगर कहीं सबसे ज्यादा पड़ती है, तो वह नौजवान के दिल को समझने में। नौजवान में श्रद्धा का जो आवेग होता है, हृदय की जो तेज निगाह होती है, उन पर जिन्हें आप जिन्दगी के तजुर्बात कहते हैं (यानी सांसारिक दृष्टि) उसकी धूल-भरी परतें नहीं छायी रहतीं। फलतः, नौजवान यदा कदा आपको, अपने अननुभव के कारण मूरख प्रतीत हो सकता है। लेकिन यही उसकी अच्छाई है। जो नौजवान 19-20-21 साल में ही बूढ़ों की खूसट सांसारिक आँखों से ही दुनिया को देखने लगता है, समझ लीजिए कि उसमें साहस की प्रवृत्ति, नये अनुभव प्राप्त करने की जिज्ञासा और क्षमता, तथा जीवन के नव नवीन उन्मेष का नितान्त अभाव है। ऐसा नौजवान नायब तहसीलदार या आई ए एस हो सकता है। लेकिन वह देश के किस काम का!

वर्तमान स्थिति यह है कि नौजवानी के गीत गाने से दिल भले ही हलका हो जाये, दिमाग साफ नहीं हो पाता, रास्ता नहीं मिल पाता। नौजवानों की कठिनाइयों का एक विशेष स्वरूप होता है। सिर्फ यह कह देने से कि 'बढ़े चलो बहादुरो, रवाँ-दवाँ बढ़े चलो' कुछ नहीं होता। हर नौजवान को अपना रास्ता तै करना होता है। और वह उस रास्ते के मोड़ और गड्ढों के बारे में जानकारी चाहता है, लेकिन हमारे छायावादी इन्द्रधनुषी काव्य की नौजवानी बादलों में ही ले जाती है, जमीन पर फैला हुआ रास्ता नहीं बतलाती।

नौजवान का रास्ता! कितना कठिन प्रश्न है यह! हमारे उपन्यासों ने कभी इस प्रश्न पर प्रकाश नहीं डाला!! हमारे साहित्य ने कभी तत्सम्बन्धित मार्ग-दर्शन नहीं किया। हमारे बड़े-बूढ़े, हमारे आदरणीय बुजुर्ग, नौजवान के सामने 'नौकरी करो, पैसा लाओ' का नारा बुलन्द करते हैं। और नौजवान भी यह चाहता है कि उसकी पारिवारिक प्रतिष्ठा को चार चाँद लगें। लेकिन बेचारा!! लेकिन उसका सच्चा दिशा दर्शन किसने किया है!! किसमें वह ताकत है कि जो उसके जोश, उत्साह और उमंगों का भार अपने हृदय में झेल सके, उसके आदर्शवादी प्रेम और त्यागभरी श्रद्धा के समस्त अभिप्रायों को समझ सके! उन्हें अपने में रख सके! बहुत कम ऐसे लोग होते हैं, जनाब जिनमें यह ताकत, यह फौलादी सीना है। उम्र बढ़ने के साथ ही आदमी समझौते को बुद्धिमानी और प्रतिभा का

है!! और उसके जवाब!!

, अपने अस्तित्व को निर्णय-

ो जा रहे हों। अपनी काल्प-

ा-सही रास्ता बताना—और

जिसको रास्ता बताया जा रहा है, उसके सहचरत्व को स्वीकार करना—एक दूसरी बात है। इस लेख का लेखक एक मामूली आदमी है। अपनी बीती हुई

काम करने का हौसला नौजवान पूरा कर पाता है या नहीं और अगर नहीं कर पाता है तो उसकी कौन-सी दिक्कतें हैं, कौन-सी कठिनाइयाँ हैं, उनकी पूर्ति के लिए उन्हें कौन-सी सुविधा की जरूरत है—यह देखने का कार्य अनुभवी बुजुर्गों, विशेषज्ञों और अन्य प्रतिभाशाली लोगों का होता है, जो खुद दुगुने जोर से काम करते रहते हैं कि वे नौजवानों के सामने अपना उदाहरण रख सकें।

हिन्दुस्तान-जैसे देश में—जहाँ अनन्य भूमि है, रत्नगर्भा धरित्री है, और उर्वर वसुन्धरा है, निरभ्र आकाश है, भव्य गम्भीर मेघराज हैं, और उत्तरस्थ हिमालय नगाधिराज है, विद्युत्-शक्ति जल-शक्ति भूमि-शक्ति है—उस देश में अगर नौजवान के छाती की हड्डियाँ निकल आयें, चप्पल की कीलें पैर में लगातार छेद कर रही हों, चेहरे में बाल बढ़े हुए हों, और अगर वह एक पैसे की दो बीड़ी पीता हुआ किसी लड़की के मुखड़े को देख सिनेमा का एकाध फ़ोश गाना गुनगुना उठता हो, तो उसके दिल की कभी भभकती हुई तो कभी फफकती हुई तमन्नाओं के ज्वार को देख हमें गुस्सा नहीं आता। उस पर गुस्सा करनेवालों पर गुस्सा आता है। बल्कि उन शक्तियों की कमर तोड़ने की इच्छा होती है, उन काली ताकतों को हमेशा के लिए जमीन में गाड़ देने के लिए भुजा ऊँची उठ जाती है, जिन्होंने मनुष्यता के रत्नों, इन नौजवानों, को इस तरह फाँस डाला है।

हमारे साधारण गरीब मध्यम-वर्गीय नौजवान—जो पढ़ा-लिखा है—को भी अपना पेशा चुनने में बहुत बड़ी दिक्कतों का सामना करना पड़ता है। साधारण रूप से पेशा उनके मनोनुकूल होता ही नहीं, पेशे में उसकी उन्नति भी नहीं होती। किसी से पूछिए, 'आपका क्या हाल है?' जवाब मिलता है, 'बस घिसट रहे हैं!!' और फिर वही फीकी मुद्रा!!

इसका मतलब यह नहीं कि जिन्दगी हँसती नहीं। नहीं—वह अपने रोने में हँस पड़ती है। ठीक वैसे ही जैसे बरसती बदली में से चमचमाता सूरज निकल पड़ता हो!! वह तो रूह है जो खिलखिला उठती है!! और सिर्फ इसी रूहानी ताकत से, अनेक बाधाओं के बावजूद, जिन्दगी चलती जाती है। अगर इस रूहानी ताकत को डायनमो समझा जाय तो यह कहा जा सकता है कि ठेले के चारों चक्के गायब हैं और सिर्फ डायनमो चल रहा है। साफ है कि डायनमो चक्कों की सहायता के बिना अकारथ है, बेमानी है।

जो समाज और जो राज्य नौजवानों को सतत उन्नतिशील पेशा नहीं दे सकता, वह राज्य और वह समाज टिक नहीं सकता। इतिहास के विशाल हाथ इस वक्त उसकी कब्र खोदने के लिए बड़ा भारी गड्ढा तैयार कर रहे हैं।

ठीक यह दशा शिक्षा की भी है। महँगी शिक्षा का मतलब ही यह है कि गरीब अशिक्षित रहें। साधारण मध्यम-वर्गीय शिक्षित रहें, किन्तु ऊँची शिक्षा प्राप्त न करें और विशेषज्ञ न हों। सिर्फ ऊँचे घरानों के लोग ही सिद्धहस्त विशेषज्ञता प्राप्त करें, जिसके लिए वे ब्रिटेन जायें, अमरीका जायें!!

यह देखी-मानी बात है कि साधारण मध्यवर्गीय और अन्य गरीब वर्ग में ईमानदार और प्रतिभाशाली, जिज्ञासु और कार्योत्सुक, दुर्दमनीय और त्याग के लिए आकुल नौजवानों की कमी नहीं है, जिनकी मेधा, जिनकी प्रतिभा, जिनकी सूक्ष्म-दृष्टि, जिनका धीरज, और जिनकी गम्भीरता किसी सर्वोच्च देश के नौजवानों से बराबरी का मुकाबला कर सकती है। यहाँ हम बक नहीं रहे हैं।

बहैसियत एक तजुर्बेकार और जानकार आदमी के हम यह मान्यता आपके सामने रख रहे हैं!!

फिर क्या कारण है कि हमारे इन नौजवानों को अच्छी तालीम नहीं मिल पाती? क्या इन पंक्तियों का लेखक और उनका पाठक (दोनों) कुछ हद तक इस बात के दोषी नहीं हैं कि उन्होंने अब तक तालीम की माँग का नारा बुलन्द नहीं किया?

साक्षरता-प्रसार, समाज-शिक्षा, तालीम का स्थान नहीं ले सकते। तालीम के अन्तर्गत अपने पेशे का सिर्फ ज्ञान ही नहीं आता, वरन् दुनिया के सभी मुख्य विषयों की अच्छी-खासी जानकारी भी सम्मिलित है। आज जिस प्रकार की शिक्षा हमारे नौजवानों को दी जा रही है, वह एक तो महँगी है, और दूसरे, सिर्फ उसी वर्ग के नौजवानों के लिए है जो शासक वर्ग के समर्थक या समर्थकों के समर्थक धनी अथवा उच्च मध्यम-वर्गीय परिवारों में से आते हैं।

श्री राजगोपालाचारी मध्यम-वर्ग के सम्बन्ध में लिखते हुए यह कहते हैं कि इस वर्ग में साहस का अभाव है, वह बाबूगीरी पसन्द करता है। वे सलाह देते हैं कि जिन पेशों को नीचा समझा जाता है, वे वस्तुतः वैसे हैं नहीं। पेशा नीचा या ऊँचा नहीं होता। मध्यम-वर्ग को चाहिए कि वे नीचे पेशों को भी स्वीकार करें।

नसीहत और बेमाँगी सलाह देनेवाले काँग्रेसी उस्तादों को यह मालूम नहीं कि अगर मध्यम-वर्गीय लोग बाबूगीरी ही करते हैं तो इसका बहुत कुछ कारण पुश्तैनी है। चमार का लड़का चमार, बनिये का बनिया, और क्लर्क का लड़का क्लर्क, अपने पेशे के संस्कारों को लेकर आगे आता है। ये संस्कार उसकी कार्यक्षमता में सहायक होते हैं। और अगर उसका पुश्तैनी पेशा छुड़ा ही देना है तो क्या उसे नयी तालीम की जरूरत नहीं है?

और फिर, बाबूगीरी छोड़कर अगर वह चमारी का धन्धा करने लगे तो क्या चमारों पर आफत न आयेगी? अगर वे खेती करने लगें तो क्या भूमि पर जीविका चलानेवालों की तादाद संख्या में बढ़ती न होगी? लेकिन राजगोपालाचारी को तो नसीहत देना है, समस्या को सुलझाना थोड़े ही है!!

ध्यान रहे कि सिर्फ पेशा चुनने में और उसमें कार्य-कुशलता प्राप्त करने में हमारे नौजवान की सारी ताकत खर्च हो जाती है। वह जल्दी ही बुड्ढा हो जाता है। चिन्ता-व्यथा उसके भाग्य में लिखी हुई-जैसी लगती है। वह ऊपर से चाहे जितना हँसता रहे, उदासी घेरे रहती है।

किन्तु केवल उदासी ही उसको नहीं घेरती। हमारा नौजवान अब यह पूरे तौर से समझ चुका है कि जब तक वर्तमान शासक-वर्ग और उसकी कार्य-नीति, शोषण परम्परा और उसका दमन-चक्र, चलता रहेगा, तब तक उद्धार नहीं। वह यह भी समझ चुका है कि जनता के सम्पूर्ण उद्धार के बग़ैर उसका उद्धार भी असम्भव है।

लेकिन ज़माने-भर को गाली देने से, मात्र सामाजिक आलोचना से, व्यक्ति अपने को बुद्धिमान भले ही घोषित कर सके, वह अपने निज के सामाजिक और पारिवारिक, व्यक्तिगत तथा नितान्त आत्मपरक, कर्त्तव्यों और उत्तरदायित्वों से कभी भी बरी नहीं हो सकता।

आजकल केवल अपनी परिस्थिति और अन्यायपूर्ण शोषण-व्यवस्था तथा

शासन की शिथिलता भ्रष्टाचार, आदि-आदि को गाली देकर, अपन कमजोर अह के चारो ओर रक्षा पाँति खडी कर ली जाती है। किन्तु यह स्पष्ट है कि इन रक्षा-पाँतियो के अन्दर रहकर कमजोर अह सुदृढ नही हो सकता। अह से मेरा मतलब सिर्फ अपनी निजता की सत्ता से है। जिस प्रकार सिर्फ प्रस्ताव पास करके जनता का उद्धार नही हो सकता (एसी जनता जिसके हम स्वय एक अग हैं) उसी तरह सिर्फ गाली देन स, केवल बढ-बढकर बोलन स जनता विरोधी शक्तियो की रक्षा पाँतियाँ कभी नही टूटती। अतएव यह एकदम जरूरी है कि हम जनता के प्रति अपन सामूहिक और व्यक्तिगत उत्तरदायित्वो के निर्वाह की तरफ लगातार कदम बढायें।

लकिन, अपन लक्ष्य की ओर सही तरीके से हम अपन कदम तब तक नही बढा सकते, जब तक कि हम अपने स्वय के मन, वचन और काय की सही-सही आलोचना न कर सकें। अतएव शोषण व्यवस्था की निन्दा तथा प्रतिक्रिया वादियो के विरुद्ध आलोचना करने क साथ ही साथ हमारा यह आदि कत्तव्य हो जाता है कि हम आत्म आलोचन के हथियार से खुद पर नश्तर लगाकर व सब कमजोरियाँ दूर कर जो हमारे उत्तरदायित्व की पूर्ति के माग म बाधक हो रही है, या बाधक बन सकती है। अपनी गलतियो को पहचाने बगैर हम कोई सही कदम नही उठा सकते। इस मामूली सचाई को हम जितनी गहराई से समझेंगे,

म मुश्किल (इस लख का लेखक इस बात को खुद पहचानता है)।

इन बातो को दृष्टि म रखकर अगर हम अपने नौजवानो से कुछ निजी बातें करें तो अप्रासगिक न होगा।

यह सन्देह से परे है कि हमारा साधारण नौजवान आत्म-आलोचना के कठिन अस्त्र को ठीक तरह न प्रयोग करना जानता है न इतनी चेतन दृष्टि ही रखता है कि वह हर समय जागरूक रह सके। कुछ ऐसे नवयुवक भी होते हैं जो आत्म-भर्त्सना के आवेश मे आकर अपने खुद क बारे म न मालूम क्या-क्या सोच लेते हैं।। आत्मभर्त्सना कभी कभी सही भी होती है किन्तु अपन अन्दर प्रवृत्ति रूप में उनकी उपस्थिति, आत्मविश्वास को सुरग लगा देती है और फलत व्यक्तित्व को अन्दर से खोखला कर देती है। हम ऐसी आत्म-आलोचना के मार्ग की बात नही कर रहे हैं। आत्म-आलोचना का मार्ग इसलिए अपनाया जाता है कि भुजाओ म ताकत पैदा हो मस्तिष्क म अधिक तेज उत्पन्न हो जिससे कि जनता के प्रति अपने अनिवाय उत्तरदायित्वो की राह म आनेवाले रोडो की मार की वेदना हमारे हृदय और मस्तिष्क पर हावी न हो। जिन नौजवानो के सामन किसी-न किसी सन्दभ स किसी न किसी प्रकार किन्ही न किन्ही अशो मे जनता का यह लक्ष्य नही है उनकी तो यहाँ बात ही नही हो रही है।

हमारे नौजवानो मे कौन-कौन सी कमजोरियाँ हैं इसको गिनाना और उनका विश्लेपण करना सरल नही है। जरूरी यह है कि इस विषय पर प्रकाश डालन के लिए कुछ खास तरीके अपनाये जायें। यदि यह न करें तो कई बात हैं जो छूट भी सकती हैं जिन्हें हम छोडना न चाहेगे। अतएव पहले तो हम सरसरी तौर पर,

उन बातो को कहते जायेंगे जो जहाँ-जहाँ जैसी-जैसी दिखायी देती हैं। इसके बाद हम कमजोरियों को विविध क्षेत्रों—जैसे पारिवारिक, व्यक्तिगत, सामाजिक, आदि—में विभाजित कर अपने तई यह सोच लेंगे कि शेष कमजोरियों के विश्लेषण का काम हमारे नौजवान दोस्तों का है। (आत्म-आलोचना के बारे में ऊपर जो लिखा जा चुका है या अन्य सम्बन्धित विषयो पर लिखा जायगा, वह निश्चय ही सीमा मे बद्ध है। कमजोरियों के रूप परिस्थिति के अनुसार दिखायी देते हैं। चूँकि परिस्थितियाँ अनन्त हैं, इसलिए कमजोरियों के रूप भी अनन्त हैं। कमजोरियों की मर्दुमशुमारी का काम हमारा हर्गिज नहीं)।

हमारे नौजवान दोस्त, जो थोड़ा आगे बढ़े हुए हैं और एक विशेष क्षेत्र में मुख्तसिर असर रखते है, उनके सम्बन्ध मे पहले चर्चा कर लेंगे। साधारण रूप से हम कमजोरियों के क्षेत्र में तीन प्रकार के लोग यहाँ दिखायी देंगे। एक वे जो अपनी बातचीत के द्वारा, भाषण कला के द्वारा, लिखाई के जरिये, किसी-न-किसी प्रकार से असर कायम करते हैं, किसी-न-किसी रूप से, कहीं-न-कहीं, किसी विशेष स्तर पर, या साधारण रूप से, अहंकारी होते हैं। निश्चय ही, इस अहंकार का जनता के लक्ष्यों से असामंजस्य है। अहंकार से कुछ लोगों में रंग भले ही पैदा हो, उसके द्वारा दिलोदिमाग के दरवाजे बन्द हो जाते हैं। अहंकार से सूक्ष्म और स्थूल प्रकार की बेईमानी, बददयानती, अवसरवादिता, दादागिरी, रंगदारी, वाचालता, ढीली जबान, निन्दाप्रचार, असावधानता और जिज्ञासा का सर्वनाश, आदि दोष उत्पन्न होते हैं। एक जुर्म से दूसरा जुर्म पैदा होता है। व्यक्तित्व में ह्रास शुरू होता है। जिस प्रकार विकास की मंजिलें होती हैं, उसी प्रकार ह्रास की प्रक्रिया की भी अधोगामी सीढ़ियों का विस्तार होता है। अहंकारी व्यक्ति की बुद्धि की खूबी यह है कि सच में कितनी झूठ मिलायी जाय कि जिससे वह प्रभावकारी हो सके और रंग जमा सके। वह जानता है। इन्हीं बुद्धिमान अहंकारियों में से हजारों नौजवान लीडरी के क्षेत्र में आते हैं—वह लीडरी फिर चाहे जिस क्षेत्र की हो। देखा सिर्फ इतना जाता है कि खुद टोटे में न रहे। इस बचाव को खयाल में रखते हुए, फिर सभी गुण—जैसे, हार्दिकता, मार्मिकता, सूक्ष्मता, सत्योद्घाटन, सत्य-वचन, ऊपरी तौर की मेहनत, आदि बातें सामने की जाती हैं, कि जिसमें लोग उनकी अच्छाइयों (जिसको वे मानवता कहेंगे) को देख सकें। प्रभाव जम चुकने में उपरान्त, और अगर मुँहफट हुए तो प्रारम्भ से ही, दूसरों की निन्दा पान में लौंग-जैसी काम करती है।

दूसरे प्रकार के नौजवान वे होते हैं, जिन्हें व्यक्तिगत आकर्षण और प्रभाव सबसे ज्यादा अच्छे लगते हैं, भले ही उस आकर्षण और उस प्रभाव का सिद्धान्त से अथवा समस्याओं से कोई सम्बन्ध हो या न हो। ऐसे नौजवान अपने व्यक्तित्व का न सफलतापूर्वक विकास कर सकते हैं, न ही उन समस्याओं का ठीक तरह विचार कर सकते हैं जो उनके और उन्हीं सरीखे दूसरों के मन को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से उद्वेलित करती रहती हैं। स्वयं ईमानदार होते हुए भी, आकर्षण और प्रभाव के वशीभूत होकर, वे अन्ततः अपनी मौलिक शक्तियों का न [तो स्वयं] उपयोग कर पाते है, न उनका सामाजिक उपयोग हो पाता है। एक प्रकार का अनुगामित्व, अथवा अपने ही में बन्द रहने की प्रवृत्ति, तथा जिज्ञासा का अभाव, साहस का अभाव, आदि विशेष कमजोरियाँ इस वर्ग में निहित रहती हैं।

तीसरी श्रेणी के नौजवानों की प्रकृति ही अलग है। सजी हुई बैठक-कमरे की गन्ध, उनके मन में काम करती हुई, उन्हें ऐसे कार्यों की तरफ ही ले जाती है, जिससे जातीय सामाजिक भद्रता, आदि प्रतिष्ठित (रेस्पेक्टेबिल) वर्ग की कामनाओं की पूर्ति हो सके। उनके लिए अच्छी-खासी बड़ी-सी नौकरी, सुघर-सुन्दर बीवी, कोच, किताबों की एक खूबसूरत आलमारी, एक ट्रे चाय, सुघर चम्मच, दीवार पर सुरुचिपूर्ण तसवीरें, आदि सर्वाधिक प्रधान हैं। उनका अहंकार सिर्फ एक ही बात में तृप्त हो जाता है कि अगर कोई प्रतिष्ठित साहित्यिक, महत्वपूर्ण नेता, बैठकबाज उम्दा धनी व्यक्ति, यानी ऐसे भद्र जन [उनके घर आयें], जिनके आने से उनकी स्वयं की भद्रता और नगर में अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा को चार चाँद लग सकें। ऐसे नौजवान हमारे खयाल से जनता के दुश्मन न होते हुए भी दुश्मन-जैसे ही हैं। उनमें वे सभी दुर्गुण रहते हैं, जो उनके वर्ग में पाये जाते हैं—जैसे, फर्स्ट क्लास एम. ए. करना हो तो परीक्षकों पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से दबाव डालने के लिए समाज के ऊँचे वर्ग के प्रतिष्ठित लोगों से दोस्ती। खानदान का गर्व, परिवार की प्रतिष्[illegible] होती है।

नौजवान मौलिक हो[illegible]
मौलिक शक्तियाँ काम क[illegible]
फालतू की बकवास, व्यर्थ का फक्कड़पन, निस्सार बातें, गैरजिम्मेवाराना बर्ताव, आदि करते देखते हैं, तो लगता है कि क्या इसे नौजवान कहा जा सकता है!!

नौजवानी का कौन-सा चित्र हमारे सामने रहना चाहिए?

तर्कसंगत शुद्ध विचार-सरणि और जिज्ञासा, तथ्यों को पहचानने, उनको संगठित कर उनके निष्कर्ष निकालने की शक्ति,

उज्ज्वल आदर्शवाद, बेईमानी, दुर्मुँही बातें, उत्तरदायित्वहीनता, कामचोरी, मौखिक आदर्शवाद, घमण्ड, अहंकार आदि का अभाव,

ज्ञान के सामने, सत्य के सामने, हार्दिकता और मार्मिकता के सामने, प्रेम और त्याग के सामने, निरन्तर नम्रता और विनय,

मानव के सतत संघर्षमय विकास में आस्था, बुराइयों, बाधाओं, व्यवधानों, जनता के शत्रुओं पर मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्तिजन्य शुद्ध हृदय में विश्वास,

जनता के उद्धार में श्रद्धा, उनके संघर्षों की सफलता में आध्यात्मिक विश्वास, जनता की सृजनशील ऐतिहासिक शक्तियों की विजय का स्वप्न;

अपने अनुभवों से, दूसरों के तजुर्बों से, हमेशा सीखते रहने का जागरूक प्रयास और बेखटके और बेशरमाये अपनी गलतियों को सबके सामने स्वीकार करने की [illegible] और तर्कणों के—बशर्ते कि वे बहुत हानि-[illegible] पण का उदारतापूर्ण उत्तर-[illegible] की योग्यता, तथा व्यक्तिगत जीवन का संगठन आदि-आदि बातें [illegible] हैं और भी बढ़ाया जा सकता है: [आगे का हिस्सा अनुपलब्ध]

[नया खून, 1952, में प्रकाशित सम्पादकीय]

अंग्रेज़ी जूते में हिन्दी को फ़िट करनेवाले ये भाषाई रहनुमा

उस दिन जब सरकारी अफसर और सेक्रेटेरिएट के कर्मचारीगण सरकारी कामो मे हिन्दी मराठी के प्रयोग के सम्बन्ध मे डा वा ना पण्डित, डा रघुवीर और पण्डित रविशकर शुक्ल आदि के भाषण सुनने बैठे थे, तब आपका प्रतिनिधि अन्य उपस्थित पत्रकार-प्रतिनिधियो के साथ बैठा हुआ न केवल भाषण सुन रहा था, वरन् श्रोताओं के भावो को जानने के लिए विकलतापूर्वक इधर-उधर नजर फेर रहा था।

आपके प्रतिनिधि ने हजारो सभाएँ देखी हैं। किन्तु श्रोताओ म जो पथरीली चुप्पी और जडीभूत उकताहट वहाँ उसे देखने को मिली, उससे यह पता चलता है कि अगर सरकारी कर्मचारियो को सभा मे अनिवार्य रूप से उपस्थित होने का आदेश न होता तो शायद ही उस सभा में डेढ सौ आदमी इकट्ठा होते। आपके प्रतिनिधि ने न केवल सभा का एक हिस्सा बनकर विद्वानो और नेताओ के भाषण सुने, वरन् उस सभा के आस-पास कई चक्कर लगाये। यहाँ तक कि वह होटलो म यह देखने को गया कि वहाँ कितने सरकारी कर्मचारी सभा से उकताकर चाय पीने बैठे हुए हैं।।

कई बार जब वक्ता ऐसी कोई महत्त्वपूर्ण अथवा प्रभावकारी बात कहते, तो ताली पीटने के बजाय पीछे की तरफ बैठे हुए सरकारी कर्मचारी दबी हुई हँसी हँसते। किन्तु चूँकि सभी दबी हुई हँसी हँसते, इसलिए हँसी का एक सामूहिक कोलाहल तो हो ही जाता।।

सरकारी कर्मचारियो की दबी हुई हँसी, पथरीली चुप्पी और जडीभूत उकताहट को सिर्फ यह कहकर नही टाला जा सकता कि ये लोग देशभक्ति से हीन हैं और मात्र पेटपूजक उदरम्भरि हैं। वस्तुत, हिन्दी और मराठी के प्रयोग की सुविधा मे उन्हे कोई खुशी नही हुई। इसका कारण यह नही कि ये लोग अपनी मातृभाषा को अन्यो से कम प्यार करते हैं। इसका कारण यह भी नही है कि ये पशु हैं और मनुष्योचित स्फूर्ति और सद्गुणों का उनमे अभाव है। इसका कारण गहरा और बहुत गहरा है। और वह है मध्यप्रदेश मन्त्रिमण्डल की भाषा-सम्बन्धी नीति।।

एक बात यहाँ और भी स्पष्ट कर देनी चाहिए। वह यह कि सरकारी कामो मे हिन्दी मराठी के प्रयोग के प्रश्न मे साधारण पढ़ी लिखी जनता की भी दिलचस्पी है। अतएव यह समस्या केवल सरकारी कर्मचारियो की समस्या न होकर जनता की समस्या है।

सरकारी कामो म हिन्दी-मराठी का प्रयोग किसलिए? जनता की सुविधा के लिए या मन्त्रिमण्डल अथवा उसके प्रभाव म रहनेवाले सरकारी गैरसरकारी बड़े आदमियो की झक की पूर्ति के लिए?

नया खून अपनी भाषा-सम्बन्धी नीति के बारे मे यह कई बार स्पष्ट कह चुका है कि वह अग्रेजी को उसी प्रकार दफना देना चाहता है, जिस प्रकार मन्त्रिमण्डल और डा रघुवीर उसे खत्म कर देना चाहते हैं। हमको तो अग्रेजी भाषा

से बिलकुल प्रेम नहीं है। अंग्रेजी साहित्य से अवश्य है।

किन्तु, हम यह जानते हैं कि जो लोग हिन्दुस्तानियत और भारतीय संस्कृति के नाम पर, एक ओर, भाषा में प्राचीन संस्कृत शब्दों के समान नये शब्द बनाने पर तुले हुए हैं, ठीक वे ही लोग भारतीय जनता से इतनी दूर हैं कि वे न उसकी आवश्यकताएँ समझते हैं न उसे समझने की उन्हें कोई चिन्ता ही है।

इस काम करने के दो तरीके हैं (1) या तो उसे जनता की दृष्टि से किया जाय, (2) अथवा, जनता-विरोधी प्रतिक्रियावाद की दृष्टि से—इस दृष्टि को आप भारतीय संस्कृति का नाम दें या कोई और। ये दो तरीके एक-दूसरे से इतने अलग-अलग हैं कि उनमें कोई समानता नहीं है।

उदाहरणतः, हिन्दी की पारिभाषिक शब्दावली बनाने का काम अकेले मध्यप्रदेश का नहीं है। हिन्दी भाषा का ठेका न मध्यप्रदेश मन्त्रिमण्डल को दिया जा सकता है, न उसे ऐसा ही चाहिए। राजस्थान, पंजाब का कुछ हिस्सा, देहली, मध्यभारत, विन्ध्यप्रदेश, मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश, हिमाचल प्रदेश और बिहार—इन सब प्रदेशों की शैक्षणिक सांस्कृतिक भाषा हिन्दी ही है। अतएव हिन्दी भाषा की पारिभाषिक शब्दावली इन सब प्रान्तों के लिए एक साथ बननी चाहिए, तभी वह हिन्दी भाषा की सर्वमान्य पारिभाषिक शब्दावली होगी।

निश्चय ही, इन सब हिन्दी प्रान्तों के प्रसिद्ध हिन्दी विद्वानों की वैज्ञानिक प्रतिभा और सम्मति प्राप्त करने के लिए इन सब प्रान्तों की ओर से हिन्दी-भाषाशास्त्रियों की एक समिति का संगठन होना चाहिए, जो पारिभाषिक शब्दावली सम्बन्धी नीति निर्धारित करे। और जिसकी देखरेख में पारिभाषिक शब्द बनाये जायें।

ठीक उसी तरह मराठी भाषा-भाषी प्रदेश केवल बरार नहीं है, वरन् उसके अन्तर्गत मराठवाड़ा, खानदेश, कोंकण, गोआ, पूना-सोलापुर-बम्बई आदि प्रदेश हैं। अतएव उसके लिए जो भी पारिभाषिक शब्दावली बने वह इन प्रदेशों के मराठी विद्वानों की एक सम्मिलित गोष्ठी या समिति के तत्त्वावधान में और उसकी निगरानी में बने। तभी वह मराठी भाषा की शब्दावली होगी और सर्वमान्य हो सकेगी।

आज स्थिति यह है कि उत्तरप्रदेश ने अपने लिए अलग पारिभाषिक शब्दावली तैयार की है और मध्यभारत ने अलग। एक ओर तो यह कहा जाता है कि हिन्दी राष्ट्रभाषा इसलिए है कि वह सर्वजन-सुलभ है, किन्तु शासकों की वर्तमान नीति उसके राष्ट्रभाषात्व को खत्म कर रही है। इसका पहला प्रमाण तो यही है कि हर हिन्दी प्रान्त के लिए अलग-अलग शब्दावलियाँ बन रही हैं। फलतः जो शब्द उत्तरप्रदेश में प्रचलित होगा, उस पारिभाषिक शब्द को मध्यप्रदेशवाला न समझ सकेगा, और जो मध्यप्रदेश की पारिभाषिक शब्दावली होगी, उसे मध्यभारतवाले न समझ सकेंगे।

ध्यान में रखने की बात है कि पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग आजकल बहुत बढ़ गया है। देश की राजनैतिक-सामाजिक सांस्कृतिक चेतना की वृद्धि के साथ ही, इन पारिभाषिक शब्दों के प्रयोग-उपयोग में वृद्धि बहुत स्वाभाविक ही है। इसलिए किसी एक प्रान्त द्वारा अपने लिए विशिष्ट पारिभाषिक शब्दावली के प्रयोग से हिन्दी में ही भेद पड़ जायेंगे। मध्यप्रदेश की सरकारी हिन्दी उत्तरप्रदेश

की सरकारी हिन्दी न रह सकेगी। चूँकि सांस्कृतिक क्षेत्रों में आजकल पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग-उपयोग बहुत अधिक बढ़ गया है, इसलिए वे उसके लिए बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। जब उसकी पारिभाषिक शब्दावलियाँ इतनी भिन्न-भिन्न होंगी, तब हम उसमें एकता कैसे पैदा कर सकेंगे, यह समझ में नहीं आता। राष्ट्रभाषा वही है जिसकी पहुँच ज्यादा-से-ज्यादा आदमियों तक रहे। किन्तु हम तो हिन्दी की प्रेषणीयता को ही खत्म करने जा रहे हैं!!

पारिभाषिक शब्दावली को बनाते समय हम यह ध्यान में रखना चाहिए कि जो शब्द सदियों से हिन्दी में प्रचलित है उन्हें पारिभाषिक महत्त्व प्रदान किया जाये। अंग्रेजी ने भी यही किया है। उदाहरणत, 'पॉवर' शब्द को लिया जाय, तो उसमें हॉर्सपॉवर, इलैक्ट्रिक पॉवर, पॉवरफुल, फोर पॉवर कान्फ्रेंस, रिपरिच्युअल पॉवर, आदि विभिन्न अर्थ और आशय एक ही शब्द पॉवर में गूँथे गये हैं। अंग्रेजी में विभिन्न अर्थों के लिए एक ही शब्द का पारिभाषिक प्रयोग होता है।

किन्तु जहाँ वर्तमान प्रचलित भाषाओं में विशिष्ट अर्थवाची शब्द ही नहीं है, वहाँ निश्चय ही संस्कृत से ऐसा शब्द लेना चाहिए। जिसमें उच्चारण की सुविधा हो, उदाहरणत, मेड्यूला ऑब्लोगेटा, क्लिनिकल डेथ, आदि के लिए। यहाँ यह बात भी ध्यान में रखने की है कि दक्षिण की द्रविड भाषाओं में भी संस्कृत शब्दों का बहुत प्रयोग है। उसी तरह अन्य भारतीय भाषाएँ भी वैदिक संस्कृत से निकली हैं। अतएव वैज्ञानिक शब्दावली सभी भाषाओं में समान होनी चाहिए।

अगर हिन्दी लेखकों और विद्वानों ने पहले से ही बहुत-से पारिभाषिक शब्द बना लिये हैं तो उन्हें स्वीकार कर लेना चाहिए। हम एक उदाहरण लें। हिन्दी अखबारों ने 'शरणार्थी' शब्द गढ़ लिया है, अतएव पुनर्वास मन्त्रालय की बजाय शरणार्थी उद्धार मन्त्रालय बन सकता है। ऐसे शब्द आसानी से समझे जा सकते हैं। साहित्य, मनोविज्ञान, भाषाशास्त्र, इतिहास, भूगोल, गणित, ज्योतिष, आदि शास्त्रों और कलाओं की पारिभाषिक शब्दावलियाँ हिन्दी में बन चुकी हैं। अतएव उन्हें स्वीकार कर लेना चाहिए और उन्हीं के आधार पर अन्य शब्द बनाना चाहिए।

हिन्दुस्तान में एक हजार साल से मुसलमान रहते आये हैं। इस मध्य-एशियाई संस्कृति ने हमको बहुत-सी बातें दी हैं, जिसके उदाहरणस्वरूप हम अपने मध्य-युगीन हिन्दी साहित्य को ही रख सकते हैं। साथ ही उसने कानूनी शब्दावली भी दी है। यह कानूनी शब्दावली भारत के समस्त हिन्दी प्रान्तों और अहिन्दी प्रान्तों में प्रचलित है। आप उर्दू भाषा स्वीकार न कीजिए, किन्तु सदियों से भारत में जो कानूनी शब्दावली प्रचलित है, उसका तिरस्कार करना यह बतलाना है कि हम अपनी विरासत, अपनी परम्परा के प्रति मात्र सम्प्रदायवादी दृष्टि अपना रहे हैं, और 'भारतीय संस्कृति' के नाम पर सम्प्रदायवाद को न केवल जन्म दे रहे हैं, वरन् उसे लगातार बढ़ाते जा रहे हैं। यही कारण है कि यह सम्प्रदायवाद (1) विरासत में पायी हुई उर्दू पारिभाषिक शब्दावली का विरोध करता है, (2) हिन्दी अखबारों और हिन्दी लेखकों द्वारा बनायी हुई पारिभाषिक शब्दावली को उपेक्षा की दृष्टि से देखता है, (3) बोलियों में प्रचलित पारिभाषिक शब्दों को छूता तक नहीं है, जैसे, बिजली के निगेटिव और पॉजिटिव तार के लिए लखनऊ की तरफ प्रचलित शब्द हैं—ठण्डा तार, गरम तार, आदि, और (4) अन्य हिन्दीतर

भाषाओं में प्रचलित पारिभाषिक शब्दावली से सहायता लेने की बात तो सोची ही नहीं गयी। जैसे, बंगाली, तमिल, मराठी, गुजराती, आदि ने भी कई शब्द बना लिये हैं।

हिन्दी के इन प्रतिक्रियावादी भारतीय संस्कृतिवादी हिमायतियों के साम्प्रदायिक रूप के फलस्वरूप, आज बंगाली, मराठी, गुजराती, उर्दू, तमिल, तेलुगु के भीतर सम्प्रदायवादी विरोध पैदा हो तो इसमें आश्चर्य ही क्या है? यशपाल का यह कहना बिलकुल ही ठीक है कि रूस में अनिवार्य रूप से अन्य भाषाभाषी जन-समुदाय को रूसी पढ़ायी जाती है। लेकिन यह कब हुआ? ऊपर से थोपकर नहीं, भीतर से प्रचार करने के बाद। ठीक इसी तरह, आज वह हिन्दी भाषा, जो जनता की भाषा है, के सम्बन्ध में भीतर से अन्य भाषाभाषी जनता में जो प्रचार किया जाता है, उसके फलस्वरूप ही वह अखिल भारतीय भाषा हो सकती है, जैसे कि उसे होना चाहिए और वह है। अगर आप सरकारी विधानों द्वारा प्रतिक्रियावादी साहित्यिक मंचों से, हिन्दी के स्वाभाविक क्षेत्रों के बाहर अस्वाभाविक तरीके से, हिन्दी लायेंगे, तो वैसा विरोध भी होगा। जो छोटी अल्पसंख्यक भाषा है, और जिसके पास पूँजी की शक्ति नहीं है, उसमें व्यर्थ की आशंका और भय से उद्विग्न विरोध का होना वैसे ही स्वाभाविक है, जैसे पूर्वी बंगाल में उर्दू के विरोध में बँगला का विद्रोह।

जो भारतीय संस्कृतिवादी, एक ओर, हिन्दी को दुरूह-से दुरूह बनाने पर तुले [illegible] वली भी बनाते हैं। और दूसरी ओर, [illegible] पना की बात भी करते हैं। जनसंघ के [illegible] डॉ. रघुवीर में आखिर मौलिक अन्तर क्या है?

ये लोग भारतीय संस्कृति का नाम लेते हैं, किन्तु मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य की श्रेष्ठ परम्पराएँ इन्हें कोई प्रेरणा नहीं देतीं। ध्यान में रखने की बात है कि उन दिनों मराठी, गुजराती और मुसलमान कवियों ने भी प्रगल्भ भक्ति-रसपूर्ण कविताएँ हिन्दी में लिखी हैं। वह उस भक्ति-आन्दोलन का प्रभाव था। ईश्वर-भक्ति के आधार पर जिस प्रकार वह पुनीत एकतावादी परम्परा कायम की जा सकती थी, उसी प्रकार आज भी जनता की मुक्ति का लक्ष्य लेकर चलनेवाली आन्दोलन धारा से हिन्दी का विकास कर सकते हैं। निश्चय ही तब पारिभाषिक शब्दावली भी वैसी बनेगी।

ये लोग भारतीय संस्कृति की बात करते हैं। लेकिन वे अंग्रेजी में सोचते हैं जिसका अनुवाद वे हिन्दी में करते हैं। यही कारण है कि हिन्दी अखबारों में और हिन्दी के राजनैतिक क्षेत्रों में एड-हॉक कमेटी के लिए 'अस्थायी समिति' शब्द चलता है जिसके लिए इन भाषायी मूरखाओं ने 'एतदर्थ समिति' शब्द ईजाद किया है। ये लोग पाणिनि और पतञ्जलि की बात करते हैं, किन्तु मध्ययुगीन हिन्दी साहित्यिक परम्पराओं को भूल जाते हैं, हिन्दी की शब्द शक्ति को भूल जाते हैं, और हिन्दीभाषी जनता को भूल जाते हैं, तथा हिन्दीभाषी शिक्षित जनता द्वारा बनाये हुए शब्दों को भी नजरअन्दाज कर देते हैं।

यह है मध्यप्रदेश की हिन्दी-मराठी की वर्तमान पारिभाषिक शब्दावली के प्रेरकों का रूप, जो मध्यप्रदेश के खदानों में ब्रिटिश हितों को तो धक्का पहुँचाना

नहीं चाहता, किन्तु भारतीय के नाम पर बात करता है, अंग्रेजी में सोचता है और अंग्रेजी के बूट में हिन्दुस्तानी पैरों को ठूँस-ठाँसकर फिट करना चाहता है !!!

[नया खून, 11 सितम्बर 1953, में लेखक के नाम बिना प्रकाशित]

ज़िन्दगी के नये तकाज़े और सामाजिक त्योहार

किसी ज़माने में मैंने एडिनबरा (स्कॉटलैण्ड, ब्रिटेन) के बारे में किसी प्रसिद्ध इंग्लिश निबन्धकार का एक लेख पढ़ा था। अपने नगर के विकास के सम्बन्ध में लिखते हुए उसने यह कहा कि शहर का जो हिस्सा पुराना पड़ जाता है (एक ज़माने में वह नया था और उसमें बड़े-बड़े सरदार और धनी लोग रहते थे), उसमें अब गरीब लोग रहते हैं, और धनियों ने अपने मुहल्ले अलग बसा लिये हैं। जो मुहल्ला बहुत पुराना पड़ जाता है, गरीबों के पल्ले पड़ता है और नया धनियों के जिम्मे आता है। यह प्रक्रिया स्पष्ट होती है ठीक पचास सालों के दरमियान, लेकिन वह चलती रहती है सदा-सर्वदा।

हमारे नागपुर का भी ठीक यही हाल है। जो [illegible]
है वहाँ गरीब-गरीब
वर्ग रहता है। और
धनियों ने अपने लिए तथा धनी शिक्षित मध्यम-वर्ग के लिए नये-नये मुहल्ले बना लिये हैं, जैसे रामदास पेठ, न्यू कॉलोनी। एडिनबरावाला नियम लगता सब जगह है।

कहने का सारांश यह कि आजकल के शहरों में नयी बस्ती, पुरानी बस्ती, नया इलाहाबाद, पुराना इलाहाबाद, नयी देहली, पुरानी देहलीवाला सत्य सब जगह लागू है।

यह नये और पुराने का भेद असल में गरीब और अमीर का भेद है। एक ही शहर की दो संस्कृतियाँ हैं—एक गरीब की संस्कृति और दूसरी अमीर की संस्कृति। एक ही शहर में दो राष्ट्र हैं। एक राष्ट्र गरीब है, काम करता है, कुलीगीरी करता है, मजदूरी करता है, रिक्शा चलाता है, क्लर्की करता है, टाइमकीपरी करता है, दर्जीगीरी करता है। और एक दूसरा राष्ट्र है जो मेंगनीज की खदानें लेता है, अंग्रेज़ी, हिन्दी, मराठी अख़बार निकालता है, चुनाव लड़ता है, और सरकार चलाता है, और उद्योगों में पैसा लगाता है।

नागपुर-जैसे शहर के सम्बन्ध में बाहर के लोग यह कल्पना करते हैं कि यह एक बड़ा ही मॉडर्न अपटुडेट सुशिक्षित शहर होगा, किन्तु जुम्मा दरवाज़ा, महल इतवारा चौक और इनके आगे-पीछे की गलियों में घूम जाने पर उसे कई दृश्य दिखायी देते हैं, जिन्हें हम गरीबों की संस्कृति के प्रकट स्वरूप कह सकते हैं।

लगभग दो बरस की बच्ची, जो ज़ोर से 'माँ' 'माँ' करते हुए रो रही थी। उसकी वह बेतहाशा भयानक निर्विराम रोने की आवाज़ (पछाड़ खाकर रोते हुए निःसहाय दिल के झरने की तरह) सारी सड़क पर गूँज रही थी, और गैलरियों में लड़कियाँ, माएँ, बूढ़ी औरतें, और जवान स्त्रियाँ, माताएँ और बहनें इकट्ठा हो गयी थीं। उन एकत्र लोगों के फटे-फटे करुण चेहरों को देखकर, निचली मंज़िल के दरवाज़े पर खड़े क्लर्कों की, स्कूली लड़कों की, और फटी चड्डीवाले बहती हुई नाकवाले बच्चों की स्तब्ध व्यथित क़तारों को देखकर, मेरे मन में तड़ाक से यह बात आ गयी कि कोई माँ अपनी दुधमुँही बच्ची को छोड़कर चल दी है। (इस 'भारतीय संस्कृति' वाले हिन्दुस्तान में अब तक जो नहीं हुआ सो हो रहा है) और वह बच्ची शाम के साँवले करुण धुँधलके में धाड़ मारकर रो रही है। "माँ ···! माँ !··· माँ !···" वह बछड़ी आक्रोश करते हुए रँभा रही है अपनी गाय माँ के लिए। और गैलरियों में, निचली मंज़िल के दरवाज़ों में इकट्ठा माएँ, बहनें, बच्चियाँ और बच्चे फटे-फटे चेहरों से देख रहे हैं यह भयानक करुण दृश्य !!

कि इतने में नाटकीय आकस्मिकता से एक घटना होती है। म्युनिसिपैलिटी का एक ठेला ठहर जाता है। ठेले में एक मरी हुई गाय और एक कुतिया पड़ी हुई है जिसकी दुर्गन्ध सड़क पर फैल रही है। और एक अधेड़ व्यक्ति ठेले से उतरकर हम लोगों में शामिल हो जाता है। ज़ाहिर है कि वह कर्मचारी भंगी है। वह पाँच मिनिट यह दृश्य देखता है। और फिर सबकी एकटक नज़रों के सामने बच्ची को पुचकारता है, अधगीले गटर में से 'माँ-माँ' रोती हुई, उबलती हुई बिलखती हुई बच्ची को उठाता है। उसे कन्धे पर डालता है, पीठ थपथपाता है, पुचकारता है, और उस रोती हुई बच्ची को लिये वह मोटर ठेले के खुले पिछले भाग पर चढ़कर खड़ा होने को होता है कि उसकी ओर मेरी घूरती हुई नज़र से किंचित् विचलित होकर मुझसे कहता है, "पुलिस-थाने में रिपोर्ट कर आऊँगा, बाबूजी।"

उसके इस उद्‌गार से मेरा यह ख़याल हवा हो जाता है कि जिसके कारण मैं उसकी ओर घूर रहा था। मेरी नाराज़ी उससे इसलिए थी कि जब उसने उस बच्ची को उठाया तब मैंने यह समझा कि वह उसका बाप है !!

उसके उद्‌गार से आहत होकर मैंने जब जाते हुए म्युनिसिपल मोटर की तरफ़ देखा, तब मोटर ठेले के पिछले खुले आँगननुमा बाज़ू पर मरी हुई गाय और मरी हुई कुतिया के पास खड़े हुए उस भंगी के चेहरे को और उसके कन्धे पर बिलखती हुई उस बालिका को मैं अपने मन में यों उतारने लगा जैसे जो चीज़ सदा के लिए चली जायगी उसका थोड़ा-सा अक्स अपने मन में तो खींच लूँ।

यह एक सच्ची आँखों-देखी घटना है। इसी से अन्दाज़ लगाया जा सकता है कि इन अँधेरी गलियों में ज़िन्दगी के कितने विद्रूप चित्र हैं। और हमारे ये ग़रीब लोग कितनी अस्वाभाविक परिस्थितियों में रहते हैं।

अतएव, जब वे अपने अखाड़े के अस्त्रों का जुलूस निकालते हैं, और ढोलक की जुझार बेतहाशा बुलन्द तड़तड़ के छन्द में लाठियों के पैंतरों की हरकत के जोशीले दृश्य दिखाते हुए आगे बढ़ते हैं तब देखनेवाले धड़क जाते हैं और किसी अबूझे जोश की थिरकन उनके रोमों में बिंध जाती या हृदय की जितनी भावात्मक शक्ति है, मन के भीतर जितनी भी सृजनशील मनोवृत्तियाँ हैं, वे सब अपने रूप परिवर्तित कर मात्र शारीरिक अग्नि की शक्ति की धारा में बहती हुई पैरों की उछाल, भवों

की तनावट, कनपटी की गरमाहट और लाठियों के इन पैंतरों में दिखायी देती हैं।

ठीक है कि यह एक असांस्कृतिक रूप है। किन्तु इस सम्बन्ध में उनका भी क्या इलाज है। उसी तरह हमारे नागपुर में बाघ निकलते हैं। एक ज़माने में ताजियों के सामने वे नाच-नाचकर अपना जोशोखरोश दिखाया करते थे। लेकिन अब हिन्दू-मुस्लिम तनाव के बाद वे अलग से निकलते हैं। गरीब लोगों के साँवले नौजवान पुन अपने सारे शरीर को रँग लेते हैं। और वह रंग क्या है, पेण्ट है। सारे शरीर को रंग-बिरंगे पेण्ट से ढाँककर, और पीछे एक लम्बी कड़ी घुमावदार गुच्छेदार पूँछ खड़ी कर, वे सचमुच समझने लगते हैं कि वे बाघ हैं। अपने को पेण्ट कर वे एक डोज टिंक्चर चढ़ा लेते हैं। और फिर देखिए उनका जोशोखरोश!! शरीर पर किसी जगह लिखा रहता है, 'पेण्टर नागेश'।

निश्चय ही, यह गरीबों की संस्कृति है। ये उनके सांस्कृतिक कार्यक्रम हैं। हमें भले ही वे न रुचें, लेकिन उनकी अँधेरी जिन्दगी के ये ही सर्वोच्च क्षण हैं।

हर आदमी बहादुर बनना चाहता है, हीरो बनना चाहता है, अर्थात्, आधुनिक शब्दावली में, वह कुछ 'कर दिखाना' चाहता है। उसकी यह उमंग और उछाह उसके जिन्दगी के पहियों में तेजी भरती है। लेकिन, जिनकी खुद की जिन्दगी का ही तेल निकाला जा रहा है, उनके पास सिवा इस प्रकार बाघ बनने के, और रहा ही क्या है!!

फिर भी यह कौन न मानेगा कि उनके सांस्कृतिक कार्यक्रमों में सुधार होना चाहिए। सांस्कृतिक रूप में उनके पास उत्तम मानसिक खाद्य पहुँचने की ज़रूरत है। अच्छाई, ईमानदारी में इन लोगों का सहज विश्वास है। अतएव केवल सांस्कृतिक कार्यक्रमों से कभी भी वह बात पैदा नहीं की जा सकती जो कि जिन्दगी की परिस्थितियों के बदल देने से होती है। किन्तु सांस्कृतिक कार्यक्रमों का अपना महत्त्व तो है।

आश्चर्य तो इस बात का है कि कांग्रेस सरकार के अधिष्ठित होते ही, एक ज़माने में गणेशोत्सव, जो राष्ट्रीय-सामाजिक और सांस्कृतिक त्योहार माना जाता था उसमें अब बैण्ड-बाजे के बदले लाउड-स्पीकरों और सस्ते सिनेमा गीतों को लगाया जाता है। इसका वह पुराना सामाजिक सत्य अब नष्ट हो गया है।

गणेशोत्सव के वर्तमान स्वरूप से अब यह स्पष्ट पता चलता है कि नये युग के अनुसार इसमें नये परिवर्तन आवश्यक हैं। एक तो यह उत्सव दस दिनों तक चलता है। यह काफी लम्बा समय है। इस अवधि को अल्प कर, इसके द्वारा हम नवीन सांस्कृतिक-सामाजिक आन्दोलन का सूत्रपात कर सकते हैं।

अगर हमारे मध्यवर्गीय इस कार्य में सफल हुए तो निश्चय ही हमारे भिन्न वर्ग इस उदाहरण का अनुगमन करेंगे। आज तक हमारे पास सांस्कृतिक नेतृत्व रहा। अब उसमें ह्रास के चिह्न दृष्टिगोचर हो रहे हैं।

आवश्यकता इस बात की है कि हम नयी सामाजिक आवश्यकताओं के अनुसार, जनता के हित की दृष्टि से, अपने में और अपने सांस्कृतिक कार्यक्रमों में परिवर्तन करें।

[नया खून, 18 सितम्बर 1953, में लेखक के नाम बिना प्रकाशित]

परिषद तोड़ने की कोशिशें

किन्तु एक ओर ईडेन और बिदो अपने इस प्रस्ताव पर अड़कर जेनेवा कान्फ्रेंस को असफल बनाने की कोशिश कर रहे है, तो दूसरी ओर, डलेस युद्धवादी भाषण-पर-भाषण देते जा रहे हैं। फलत:, एंग्लो-अमरीकी इरादो पर रूस-चीन का विश्वास नहीं हो पाता, और वे यह माँग करते हैं कि यदि निरीक्षक-मण्डल का निर्णय दूसरे पक्ष को मान्य न हुआ तो उन्हें निषेधाधिकार के प्रयोग का अधिकार होना चाहिए। लाओस और कम्बोडिया से वियतमिन्ह सेनाएँ हटाने की कोई जरूरत नहीं, यह भी उनका विचार है। जेनेवा के भारतीय राजनैतिक समीक्षक लिखते हैं कि यद्यपि अमरीकी युद्धवादी धमकियों से, ईडेन की अमरीकी दलालगिरी से रूस चीन का रुख कड़ा हो गया है, किन्तु वे इस बात पर अड़े हुए हैं कि जेनेवा कान्फ्रेंस भंग न हो, और समझौते की बातचीत का महत्त्व देखते हुए समय पर पाबन्दी न लगायी जाये। इसके विपरीत ईडेन, अमरीकी प्रतिनिधि बेडेल-स्मिथ और फ्रांस के बिदो रूस-चीन से हाँ-या-ना में एकदम जवाब चाहते है। उनका कहना है कि जेनेवा परिषद जितनी खिंचती जायेगी, उतनी ही हिन्दचीन में वियतमिन्ह फौजो का सगठन तथा शक्ति बढ़ती जायेगी।

फ्रांस बेहद बीमार

परिणाम यह है कि हिन्दचीन की समस्या पर जेनेवा कान्फ्रेंस मे इस समय गतिरोध है। लेनिए सरकार के पतन ने इस गतिरोध को कलगी फुन्दे लगा दिये हैं। असलियत यह है कि फ्रांस इस समय 'यूरोप का बीमार देश' है। उसे गहरा बुखार है। फ्रांस अपने साम्राज्यवाद को लेकर जी नहीं सकता और वह जीते-जी साम्राज्यवाद को छोड़ नहीं सकता। उसके एंग्लो-अमरीकी डॉक्टर उसे दिलासा देते रहते है। लेकिन दिलासे से रोग दूर नहीं होता।

बहुत सम्भव है कि कुछ ही दिनों के भीतर लेनिए सरकार के स्थान पर नयी सरकार बने। किन्तु यह नयी सरकार भी तब तक कोई भी समस्या हल नहीं कर सकती जब तक वह कम-से-कम (1) अमरीकी युद्धवादी प्रलोभनो में नहीं फँसती, (2) हिन्दचीन से अपने शिकंजे उठा लेती है, (3) आर्थिक दृष्टि से स्वयंपूर्ण और स्वावलम्बी फ्रांस का विकास नहीं करती।

फ्रेंच साम्राज्यवाद की मौत निश्चित

उग्र दक्षिणपन्थी नयी सरकार यह कहाँ तक करेगी, यह अनिश्चित है। वामपन्थी नयी सरकार का स्थापित होना मुश्किल है। असलियत यह है कि फ्रांस भीतर से विभाजित है। उसकी सबसे बड़ी पार्टी कम्यूनिस्ट पार्टी है, जिसे सरकारी दल कभी अपने में शामिल नहीं करता। सोशलिस्ट पार्टी इस सबसे बड़ी पार्टी से संयुक्त मोर्चा स्थापित नहीं करती। यदि कम्यूनिस्ट और सोशलिस्ट पार्टियाँ आपस मे सहयोग करें तो वामपन्थी सरकार बन सकती है, जिसकी कि आज कोई सम्भावना नहीं। ऐसी स्थिति में फ्रांस में केवल दक्षिणपन्थी सरकार ही बनेगी और यह दक्षिणपन्थी सरकार अपने प्रतिक्रियावादी, साम्राज्यवादी हितों को ध्यान में रखते हुए फिर एंग्लो-अमरीकी रास्ते पर चलेगी, ठोकर खायेगी और मरेगी। असलियत

मे फ्रास देश को सन्निपात के झटके आ रहे है। ये झटके बढते-बढते साम्राज्यवादी फ्रास की मृत्यु के कारण होंगे, यह निर्विवाद है।

[नया खून, (सम्भवत जून 1954), मे 'अन्तर्राष्ट्रीय' स्तम्भ मे लेखक के नाम बिना प्रकाशित]

जेनेवा परिषद टूटते-टूटते कैसे बची ?

एग्लो-अमरीकी प्रतिक्रियावादियो का गणित गलत निकला। उन्होंने सोचा था कि फ्रास मे सरकार इतनी जल्दी नही बन सकती कि जेनेवा परिषद आगामी कुछ दिनो तक चालू रखी जा सके। उनकी योजना थी कि इस बीच जेनेवा परिषद समाप्त करते हुए, दक्षिण-पूर्वी एशियाई सयुक्त मोर्चे के सगठन को मूर्त्त रूप दे दिया जाये। तब तक अगर फ्रास की सरकार बन भी गयी तो उसे नये सिरे से काम शुरू करना पडेगा। आगे की आगे देखी जायेगी।

लेकिन, कुछ ऐसा हुआ कि एग्लो-अमरीकी सपने काफूर होने लगे। बडे भारी बहुमत से माँ दे फ्रास ने फ्रास मे अपनी सरकार बना ली। यह पहली राष्ट्रीय सरकार है जो अमरीकी गणित से अपना हिसाब नही बैठायेगी। एग्लो-अमरीकी गुट को यह एक बडा धक्का है। इसका अर्थ केवल यही है कि स्वार्थ से प्रेरित होकर लन्दन और वाशिंगटन यथार्थता को नही देख पाते।

इसका उदाहरण सामने है। जेनेवा परिषद मे ईडेन और बेडेल स्मिथ के कठोर रुख को देखते हुए, सोवियत रूस, चीन और वियतमिन्ह ने झुकना शुरू किया और काफी नरम और उदार प्रस्ताव रखे। ईडेन और बेडेल स्मिथ ने उन्हे 'रिक्त-वाक्य' कहकर टाल दिया, और अपने बिस्तरे गोल करना शुरू किये। इधर अमरीका के दक्षिण कोरियाई साथियो ने विस्फोटक भाषणो की गोलन्दाजी आरम्भ की।

इन सबका फ्रास के जनमत पर बहुत बुरा प्रभाव हुआ। न केवल यह, मोलोतोव और उनके मित्रो के जो नरम प्रस्ताव थे उन्हे लन्दन और वाशिंगटन के अखबारो ने छापा तक नहीं। वे तो तब प्रकाशित हुए जब माँ दे फ्रास का फ्रासीसी असेम्बली के बहुमत ने समर्थन करना शुरू किया।

साफ मालूम हो जाता है कि जेनेवा परिषद समाप्त कर डालने की जल्दबाजी के पीछे एग्लो-अमरीकी बदनीयत बोल रही थी। अमरीकी दबाव के मातहत काम करते हुए, ईडेन की आँखें उस आगामी बातचीत की ओर लगी हुई थी जो चर्चिल के साथ-साथ वे आइजेनहॉवर के साथ वाशिंगटन मे करनेवाले हैं। फलत, जेनेवा परिषद मे हाल मे ऐसा माहौल खडा कर दिया कि मानो अब सब कुछ समाप्त हो गया है और गैर-कम्यूनिस्ट देशो के सुदूर दक्षिण-पूर्वी एशियाई मोर्चे की तैयारियो का समय आ गया है।

किन्तु राजनीति मे कुछ ऐसी बातें भी होती हैं जिन पर किसी का नियन्त्रण नही होता। जेनेवा परिषद के मैदान म फ्रास का फिर से कूद पडना इस बात का साक्षी है कि फ्रासीसी जनमत एग्लो-अमरीकी स्वार्थों के लिए अपना हित बेच नही सकता। एक बात और भी कहनी होगी। रूस-चीन की कूटनीति ने जब यह देखा कि लेनिए सरकार का पतन होने जा रहा है, तब उन्होने खुद झुकना चाहा। यह झुकना, वस्तुत, फ्रेंच जनमत के सामने था। जहा तक हो सका, उन्होंने नये नरम प्रस्ताव रखे। अपनी पुरानी अडियल नीति म सशोधन किया। उन्होने यह इसलिए किया कि वे जानते है कि विश्व साम्राज्यवाद की सबस कमजोर कडी है फ्रास। जब वह टूटेगी तो सारा भवन धीरे-धीरे गिर पडेगा।

फलत, जेनवा परिषद म आज स्थिति यह है कि फ्रास (अभी बिदो जेनेवा मे विराजमान है) रूस और चीन के नये प्रस्तावो को बहुत आशा और स्वीकृति-भावना के साथ देख रहा है। कल तक के अडियल बिदो ने इस सम्बन्ध मे प्रशसापूर्ण उद्गार प्रकट किये। इनकी देखादेखी अब बेडेल-स्मिथ ने यह कहना शुरू किया कि चीन का नया प्रस्ताव 'विवेकपूर्ण, उदारवादी और ईमानदारी म भरा है।' एकाएक यह कैसे हुआ? यह परिवतन क्यो?

इसका कारण है फ्रास का जनमत। हालत यह है कि अगर फ्रासीसी जनमत

सचमुच सफल हो सकती है—काश, आगे भी वे ऐसा ही रुख अपना सकें!।

अब हम रूस-चीन-वियतमिन्ह के उन प्रस्तावो पर आते हैं जिन्हें आज एग्लो-अमरीकी राजनीतिज्ञ 'उदार' कह रहे है। पहले तो मोलोतोव ने यह कहा कि वियतनाम युद्ध विराम सन्धि के निरीक्षक मण्डल म कम्यूनिस्ट देशो के प्रतिनिधि के रूप म रहे, किन्तु अगर भारत को उसका अध्यक्ष बनाया जाता है तो मतभेद समाप्त करने के अन्तिम अस्त्र के रूप मे उसे निषेधाधिकार (वीटो) के प्रयोग का अधिकार दे देना चाहिए। यही सुझाव यूरोपीय न्यूज एजेन्सियो और पत्रो न नही छापा और बहुत देर म उसकी स्थिति के बारे म सकेत किया। पण्डित नेहरू की इस सम्बन्ध म यह प्रतिक्रिया हुई कि जब तक दोनो पक्ष एक साथ हमको आमन्त्रित नही करते तब तक हम इस झमेले मे न पड़ेंगे।

चीन का यह कहना है कि युद्ध-विराम सन्धि के बाद हम लाओस और कम्बोडिया स वियतमिन्ह की 'आक्रामक सेना' को हटा लेंगे। चीन ने यह स्वीकार किया कि यह सही है कि तीनो देशो, लाओस, कम्बोडिया और वियतनाम की स्थिति एक-सी नही है। उन्होने यह भी स्वीकार किया है कि इन तीन देशो को अपनी-अपनी सरक्षात्मक सेनाएँ रखने का फिलहाल, अधिकार है और होना चाहिए। मतलब यह है कि युद्ध-विराम की देखभाल के अवसर पर इन देशो के सम्पूर्ण निरस्त्रीकरण की जरूरत नही।

इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि (1) चीन वियतमिन्ह की श्रेणी मे लाओस और कम्बोडिया को नही रखता, (2) लाओस और कम्बोडिया अपनी-अपनी सेनाएँ रखेंगे, किन्तु वियतमिन्ह की सेनाएँ निकल जायेंगी, (3) तीनो देशो मे अन्तर्राष्ट्रीय तटस्थ नियन्त्रण मे सम्पूर्ण युद्ध-विराम और चुनाव होंगे।

किन्तु, इसके साथ ही, चीन इस बात पर सबसे ज्यादा ज़ोर दे रहा है कि जिस प्रकार हम सैनिक दृष्टि से समझौता कर रहे हैं उसी तरह हमें राजनैतिक दृष्टि से विचार कर लेना चाहिए। उसका इशारा यह है कि लाओस, कम्बोडिया और वियतनाम इन तीनों देशों की राजनैतिक रचना चाहे जो हो (अर्थात्, चाहे वे कम्यूनिस्ट देश हो जायें या सामन्ती ही रहें), उन्हें आपस में 'अनाक्रमण सन्धि' तथा 'मैत्री सन्धि' के दृढ़ पाश में बद्ध हो जाना चाहिए। चीन इस बात पर बिलकुल अड़ा हुआ है। उसका अभिप्राय यह है कि सन्धि हो चुकने के अनन्तर, लाओस और कम्बोडिया किसी विदेशी साम्राज्यवादी शक्ति के हाथ खिलौना बनकर अगर वियतमिन्ह के लिए खतरे की हालत पैदा कर दें, तो ऐसी स्थिति में संकट की निवृत्ति के लिए यह ज़रूरी है कि जेनेवा परिषद में अपनी राजनैतिक शर्तें मंजूर करवा ली जायें।

ध्यान में रखने की बात है कि इस प्रस्ताव का फ्रांसीसी जनमत ने स्वागत किया है, जिसके देखा-देखी आज बेडेल-स्मिथ भी इसे 'उदारवादी और विवेकपूर्ण' कहने को बाध्य हो गये हैं।

किन्तु यह भी निश्चित है कि अभी समस्याएँ हल नहीं हुई हैं। जितनी-जितनी वे निदान और समाधान के समीप पहुँचती जायेंगी, उतनी-उतनी उनकी सूक्ष्म शाखा-प्रशाखाएँ भी फूटती जायेंगी। यह काम बहुत धैर्य, मनोयोग और आदान-प्रदान की भावना की अपेक्षा रखता है। आवश्यकता केवल इतनी है कि विश्व का जनमत इन राजनीति-शिरोमणियों को परिषद की मेज से न उठने दे। उन्हें इस बात के लिए मजबूर कर दे कि वे सीधे-सीधे लेन-देन करें, एक-दूसरे के सामने झुकें और विश्व शान्ति को भंग न होने दें।

आगे चलकर और भी दिक्कतें आयेंगी। लेकिन इसके लिए तो तैयार रहना चाहिए। कोरिया की समस्या हल नहीं हुई है। दोनों पक्ष अपनी-अपनी बात पर अड़े हुए हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ की अध्यक्षता के अन्तर्गत उत्तरी कोरियावाले चुनाव नहीं करवाना चाहते। जब मोलोतोव ने यह आश्वासन माँगा कि ऐसी स्थिति में वर्तमान कोरियाई स्थिति को अक्षुण्ण और शान्तिपूर्ण रखा जाये तो एंग्लो-अमरीकी नेताओं ने चुप्पी साध ली। यह स्थिति खतरनाक है। दक्षिण कोरिया के नेताओं के विस्फोटक भाषण इस बात का सुबूत है कि सुदूर दक्षिण-पूर्व एशियाई मोर्चे में सिंगमन री और च्यांग काई शेक का क्या स्थान है। हमें युद्ध के इन 'देवताओं' से बचना होगा। जेनेवा परिषद की सफलता हमें शान्ति के राजपथ पर खड़ा कर देती है, इसमें सन्देह नहीं।

[सारथी, 27 जून 1954, में 'यौगन्धरायण' छद्मनाम से प्रकाशित।]

गेहूँ सस्ता क्यों हो रहा है ?

गेहूँ के भावो मे गिरावट से बाजार मे चिन्ता व्याप्त हो गयी है। अनाज व्यापारियो पर उसका बहुत बुरा असर हुआ है। जो लोग थोक माल अपने पास इकट्ठा करके रखते थे, और भावो के जरा चढने पर उसकी निकासी करते थे, उनकी दुश्चिन्ताओं का वारापार नही। गेहूँ के धनी उत्पादक भी फिक्र में पड गये हैं। इस सम्बन्ध मे बाजार में पूछताछ करने पर एक से जो बातचीत हुई वह मनोरंजक होते हुए भी बहुत सूचनात्मक है।

मैंने कहा, "कोरियाई युद्ध थमने के उपरान्त जो हल्की-सी मन्दी आयी उससे तो, जैसा कि तुम अभी कह रहे थे, कइयो के दिवाले निकल गये। फिर ऐसा अभी क्यो नही हुआ ?"

उसने हँसते हुए जवाब दिया, "पिछली मर्तबा जो मन्दी आयी वो तो कॉलेरा थी, कॉलेरा !! मर गये सो मर गये, रह गये सो रह गये ! जो कुछ होना था, झटपट हो गया। लेकिन अब की कॉलेरा नही है, तपेदिक है तपेदिक, यह बीमारी लम्बी होती है !!"

वह मेरी तरफ देखता हुआ हँसने लगा। मैंने ज्यादा गहराई मे उतरकर बाजार की गतिविधि उससे जानना चाही। लेकिन सिवाय भावो के उतार-चढाव की जानकारी के वह कुछ कहने मे असमर्थ था। वह सिर्फ इतना-भर कह रहा था कि भाव ढलान पर है, उतरते चले जायेंगे। जिन लोगों ने माल इकट्ठा करके रखा है, उन्हें कुछ दिनो मे उसको निकालना ही पड़ेगा। गेहूँ ऐसी चीज है, जो ज्यादा दिन तक सुरक्षित रखी नही जा सकती, नही तो सड जायेगी। गेहूँ सड जाने के डर से कल के बन्द गोदाम अगर आज बाजार मे खुलने लगें, तो गेहूँ का भाव और उतरेगा, इत्यादि-इत्यादि।

यह सही है कि गेहूँ के भाव उतरे हैं। पहले जो गेहूँ 20) मन के हिसाब से मिलता था, वह 18) क इर्द-गिर्द चक्कर काटता हुआ आज 15॥) के आस-पास [illegible] कर दिया है। हम यह [illegible] कट को [illegible] न्तु गेहूँ के भावो के क्रमिक उतार को सरकार भी रोक नहीं सकता। इसके निम्नलिखित कारण है।

(1) पहली बात तो यह है कि विश्व युद्ध का भय न होने के कारण, सकट-कालीन स्थिति मे वस्तु-दुर्लभता के फलस्वरूप, महँगाई से उत्पादकों और व्यापारियो को जो लाभ होता है, अब उसका कोई अवसर नही है। कोई भी देश उतनी तीव्र गति से युद्ध-वस्तु-सचय नही कर रहा है (कि जो युद्ध के लिए आवश्यक होता है) जितना कि वह पहले कर रहा था। उस युद्ध-वस्तु-सचय की कीमतों का अनुगमन बाजार के खाद्यान्न भी कर रहे थे। अर्थात्, युद्ध-सामग्री सचय, जैसे लोहा, टीन, रबर, मैंगनीज़, इस्पात, कपास आदि की ऊँची कीमतो का प्रभाव सामान्य वस्तुओं, जैसे खाद्यान्नो, पर भी होता था। अब वह प्रभाव नष्ट हो रहा है।

(2) दूसरे देशों से खाद्यान्न का आयात करनेवाले देश स्वयं आत्म-निर्भर बन रहे हैं, या बन चुके हैं। इसका नतीजा यह हुआ है कि वे देश अब दूसरे देशों से खाद्यान्न लेते ही नहीं, या बहुत थोड़े में काम चला लेते हैं। स्वभावतः, अमरीका, आस्ट्रेलिया, कैनेडा-जैसे खाद्यान्न बाहर भेजनेवाले देशों पर बहुत बुरा प्रभाव हुआ। कैनेडा में सन् 53-54 के फसल-वर्ष का 57 करोड़ 70 लाख बुशेल गेहूँ अन-बिका पड़ा है। उसका निर्यात पिछले वर्ष से इस वर्ष 25 प्रतिशत कम हुआ। संयुक्त राज्य अमरीका का खाद्यान्न निर्यात पिछले वर्ष से इस वर्ष 44 प्रतिशत कम हुआ है। आस्ट्रेलिया का 36 प्रतिशत कम हुआ है। इसका नतीजा यह हुआ कि गेहूँ की कीमत में लाचार होकर अमरीका और कैनेडा ने 10 प्रतिशत कमी कर दी। इस तथ्य से इस बात की तुलना कीजिए कि सन् 54-55 के फसल-वर्ष में अपने पिछले स्तर में 79 प्रतिशत अधिक गेहूँ का उत्पादन होनेवाला है। गेहूँ की माँग की कमी तथा इस खाद्यान्न की अधिकता को दृष्टि में रख अमरीका ने हाल ही में यह ऐलान किया कि अगले फसल-वर्ष में केवल 5 करोड़ 50 लाख एकड़ ज़मीन की ही जुताई होगी। किन्तु गेहूँ के उत्पादक स्वयं इस सम्बन्ध में मतभेद रखते हैं। उनका कहना है कि यह क्षेत्र आवश्यकता से अधिक है, उसे तो केवल 1 करोड़ 90 लाख एकड़ से अधिक नहीं होना चाहिए था।

हाल ही में लन्दन में अन्तर्राष्ट्रीय गेहूँ परिषद की एक बैठक हुई। उसमें भारतीय प्रतिनिधि से यह कहा गया कि आज की स्थिति में जो कम-से-कम कीमत हो सकती है उसे देकर भारत गेहूँ का शेष कोटा उठा ले। कहना न होगा कि दिल्ली सरकार ने अपने दोस्तों पर यह मेहरबानी नहीं की।

भला भारत ऐसा क्यों करे? ध्यान में रखने की बात है कि पहले कई बार अमरीका ने जान-बूझकर भारतीय कच्चे माल की कीमतें गिराने और गिरवाने का पार्ट अदा किया। उससे भारत को बहुत हानि हुई। हाल ही की बात है। भारत अमरीका के पास कागज माँगने के लिए पहुँचा। विश्व बाजार में कागज़ की जो स्थिति थी, उसी भाव के अनुसार अमरीका को भारत से कीमत वसूल करनी चाहिए थी। लेकिन भारत की मजबूरी देखकर उसने ज्यादा कीमत ली। फल यह हुआ कि भारत ने रूस से सस्ता न्यूज़प्रिन्ट लेना शुरू कर दिया, और जितने गरीब अखबार थे, उन्हें कम कीमत पर कागज मिलने लगा। ऐसी स्थिति में भारत अपने 'दोस्तों' पर मेहरबानी क्यों करे। अगर आज भारतीय अखबार इस सत्य का उद्घाटन करने पर तुले हुए हों कि गेहूँ के भाव में अमरीका ने जो गिरावट की है वह विश्व बाजार की स्थिति को देखते हुए यथार्थवादी नहीं है, यानी कि जो भाव उसने नियत किये हैं उनसे भी कम भाव उसे रखना चाहिए, तो भारतीय अखबारों के इस कार्य के सम्बन्ध में कोई आश्चर्य नहीं हो सकता।

(3) गेहूँ के भावों में गिरावट का तीसरा कारण भी है। और वह यह है कि विश्व बाजार में गेहूँ की मन्दी की स्थिति को देखकर, खाद्यान्न निर्यातक देशों में आपसी होड़ चली हुई है, व्यापारिक युद्ध चला हुआ है। ऐसा हर देश अपने-जैसे दूसरे देश की ही टाँग खींचकर, ग्राहकों की भीड़ अपनी ओर करके, ग्राहक फँसाने के तिकड़म में पड़ा हुआ है। आस्ट्रेलिया और अर्जेनटीना, कैनेडा और अमरीका के पीछे हाथ धो के पड़े हैं। जो गेहूँ इंगलैंड को अमरीका से खरीदना चाहिए था, वह उसने सीधे अर्जेनटीना से खरीदा। यह उसका एक उदाहरण है। आगे चलकर यह

व्यापारिक युद्ध और भी ज्यादा बढ़ेगा। (विश्व पूँजीवादी बाज़ार मे आज कम्यूनिस्ट देश भी घुस पड़े है, जापान और पश्चिमी जर्मनी की तो बात ही क्या।) ध्यान मे रखने की बात है कि गैर-कम्यूनिस्ट देशो मे खाद्यान्न निर्यातक देश कम नहीं, ठीक पैंतीस हैं, जिसमे यह होड़ लगी हुई है।

स्वय के वृद्धिगत खाद्यान्न उत्पादन और विश्व बाज़ार की इस स्थिति का भारत पर प्रभाव होना स्वाभाविक ही है। इस प्रक्रिया के फलस्वरूप, हमारे यहाँ भी मूल्य गिर गया है।

किन्तु भारतीय गरीबी को देखते हुए, गेहूँ जितना सस्ता होना चाहिए अभी उतना सस्ता नही हुआ है। **हिन्दुस्तान टाइम्स** अखबार का यह कहना सर्वथा उचित है कि सरकार को आवश्यक वस्तुओ के भावो के क्रमिक उतार के सगठन का अभी से प्रबन्ध कर रखना चाहिए। ध्यान मे रखने की बात है कि विभिन्न वस्तुओ के परस्पर मूल्य-सन्तुलन म हलचल न पैदा करते हुए, यदि सभी आवश्यक वस्तुओ के मूल्यो का क्रमिक उतार (जो कि अभी मे दृष्टिगत हो रहा है) आरम्भ हुआ, तो वह भारत की गरीब जनता के हित मे है चाहे वह जनता उत्पादक वर्ग की क्यो न हो। यह क्रमिक उतार (यदि विश्व युद्ध नही छिड़ता है तो जिसकी कि कोई सम्भावना नही) अवश्यम्भावी है। गेहूँ के भावो म उतार अमरीका, कैनेडा जैसे देशो म भले ही मन्दी का कारण साबित हो, हमारे यहाँ गेहूँ क भावो म कमी उसके बाज़ार को विस्तृत करेगी, अपने सम्बन्ध म दूसरी वस्तुओ पर प्रभाव डालते हुए उनको सस्ता करते हुए उनके बाज़ार को भी विस्तृत करेगी। इस प्रक्रिया से हमारा देशी बाज़ार अधिक सक्षम अधिक सक्रिय होगा। इस सस्ताई के अनुमान से उत्पादन का मूल्य कम होगा तथा उसी मात्रा म उत्पादित वस्तु का उपभोग भी विस्तृत होगा।

इस सम्बन्ध म केवल इस बात से सावधान रहना चाहिए कि मैंगनीज आदि वस्तुओ मे हमारे यहाँ जो मन्दी आयी है, उसके कारण भिन्न है। इस जिन्स के लिए हम निर्यातक देश हैं, जिसका बाज़ार विदेशो मे है, जहाँ हमारे कई प्रतिस्पर्धी मौजूद है। जहाँ तक गेहूँ और वस्त्र का सम्बन्ध है, हमारा मुख्य बाज़ार देशी है। इसी बाज़ार को लक्ष्य करके हमने यह कहा है कि यदि यहाँ मूल्य-सन्तुलन ठीक-ठीक रहा, तो सकटकालीन परिस्थितिवाली घबराहट की कोई जरूरत नही। प्रश्न इतना ही है कि क्या हमारी सरकार इस मूल्य-सन्तुलन की ओर जागरूक है?

[सारथी, 4 जुलाई 1954, मे लेखक के नाम बिना प्रकाशित]

फ्रांस किस ओर ?

यूरोपीय सुरक्षा-सन्धि से सम्बन्धित सशोधन, जो फ्रास के प्रधानमन्त्री मौं दे फ्रास ने ब्रूसेल्स परिषद के सामने पेश किये थे, वे नामजूर कर दिये गये। यह घटना

मामूली घटना नहीं है। इसका सम्बन्ध उस शक्ति-सन्तुलन से है जो ब्रिटेन और अमरीका यूरोप में कायम करना चाहते हैं। इस घटना के फलस्वरूप शक्ति-सन्तुलन बिगड़ गया। पश्चिमी जर्मनी और अमरीका में इससे खलबली मचना स्वाभाविक ही है।

यूरोपीय सुरक्षा-सन्धि के बारे में यह बात जानने योग्य है कि भावी अमरीकी तथा पश्चिमी जर्मनी की नीति की आधार-शिला के रूप में अब तक यह सन्धि देखी जा रही थी। यह कैसे? फ्रांस को पश्चिमी जर्मनी के पुनः सैनिकीकरण का जो डर था, उसे इस सन्धि के अन्तर्गत संयुक्त यूरोपीय सेना में भावी जर्मन सेनाओं का विलीन करके दूर कर दिया गया था। साथ ही सारी सन्धि की तोप का मुँह रूस आदि यूरोपीय कम्यूनिस्ट देशों की तरफ था। इस प्रकार इस सन्धि के द्वारा फ्रैंको-जर्मन सह-अस्तित्व और रूस, आदि कम्यूनिस्ट देशों के मुकाबले में पश्चिमी यूरोपीय देशों की स्पर्धात्मक शक्ति सन्तुलित की गयी थी। उत्तरी एटलाण्टिक सन्धि-संगठन उर्फ नाटो में पश्चिमी जर्मनी का प्रवेश नहीं था। दूसरे, उसके अन्तर्गत पश्चिमी यूरोपीय देशों का आर्थिक संगठन भी नहीं था। इस अभाव की पूर्ति यूरोपीय सुरक्षा-सन्धि में की गयी।

यूरोपीय सुरक्षा-सन्धि की इन विशेषताओं की कीमत चुकाना भी जरूरी था। इस सन्धि का मूल उद्देश्य था रूस आदि देशों से बराबरी की और मुकाबले की शक्ति को पैदा करना। मूल कल्पना यह थी कि 'यूरोपीय संयुक्त राज्य' कायम किया जाय, जिसमें, महत्त्वपूर्ण अंशों में, प्रत्येक राष्ट्र अपने सार्वभौम प्रभुत्व का बलिदान करे—यानी आर्थिक और सैनिक शक्ति को परस्पर संविलीन कर दे, और उसे प्रत्येक राष्ट्र के चुने हुए नुमाइन्दों की नयी पार्लमेण्ट और नये मन्त्रि-मण्डल को सौंप दे। तात्पर्य यह कि पश्चिमी यूरोप के राष्ट्र, स्वेच्छा से, अपने राष्ट्र से भी अधिक शक्तिशाली एक ऐसी अधिराष्ट्रीय (सुपरनेशनल) संस्था को आर्थिक और सैनिक शक्ति को सौंप दें। जिन चर्चिल महोदय ने 'यूरोपीय संयुक्त राज्य' की कल्पना का प्रचार किया, उन्हीं के ब्रिटेन ने इस प्रस्तावित अधिराष्ट्रीय सत्ता को अस्वीकार किया। जिन रॉबे शूमाँ महोदय ने 'यूरोपीय सुरक्षा-सन्धि' की कल्पना का रूपायन किया और उसे मूर्त बनाया, उन्हीं के फ्रांस ने उसका विरोध करना भी स्वीकार किया। ऐसा क्यों?

इसके जवाब की जानकारी के लिए हमें अपनी नज़र पीछे दौड़ानी होगी। द्वितीय विश्व युद्ध के उपरान्त पश्चिमी यूरोपीय कम्पनियों में अमरीकी पूँजी का प्रवेश विस्तृत हुआ। फॉर्बेन इण्डस्ट्री-जैसी जर्मन कम्पनियों में अमरीकी पूँजी का खूब प्रभाव हुआ। जर्मन माल की स्पर्धा का भय मूर्त हो उठा। जर्मन उद्योग-पतियों ने अमरीकी पूँजी का स्वागत भी खूब किया। दक्षिण जर्मनी के पुराने नात्सी-समर्थक कारखानेदार अपनी स्थिति के लिए अमरीकी महत्त्वाकांक्षा को उद्दीप्त करने लगे। यह बात फ्रांस से छिपी न रही। अमरीकी पूँजी ने शीघ्र ही जर्मन आर्थिक व्यवस्था को पैरों पर खड़ा कर दिया। इसके बदले में जर्मन नीति-विशारद अमरीकी महत्त्वाकांक्षा के फौजी दस्ते के रूप में देश को परिणत करने पर आमादा हो गये।

फ्रांस ने, इसके बदले, यह प्रस्ताव किया कि अलग-अलग राष्ट्रों की अलग-अलग स्पर्धाओं को समाप्त करके एक ऐसा आर्थिक संगठन कायम किया जाये जो

अनुचित मुकाबले को रोककर हर एक के लिए लाभदायक ठहरे। यह उन दिनों की बात है, जब फ्रांस को अमरीका से और अमरीका को फ्रांस से बड़ी-बड़ी आशाएँ थीं, तथा जब अमरीका ने पश्चिमी जर्मनी की पीठ थपथपाना शुरू ही किया था।

तब रॉबे शुमाँ की प्रेरणा से प्रथम (तथाकथित) 'आर्थिक सरकार' का आरम्भ हुआ और 'कोल पूल' की स्थापना हुई। इसी बात को अधिक तर्कानुमोदित निष्कर्षों तक पहुँचाते हुए, शुमाँ महोदय ने यूरोपीय सुरक्षा-सन्धि का समायोजन किया, जिसमें पश्चिमी जर्मनी के साथ हुई एक ऐसी सन्धि को भी जोड़ दिया गया, जिसका उद्देश्य यह था कि पश्चिमी जर्मनी की सेनाएँ संयुक्त यूरोपीय सेना में विलीन कर दी जायें। यह सोचा गया कि इसका फल यह होगा कि पश्चिमी जर्मनी की इच्छा भी पूरी होगी और उसकी सेनाएँ प्रभुत्व-सम्पन्न भी न रह सकेंगी।

किन्तु होनेवाला कुछ और था। राजनीति में एक विशेषता यह भी दृष्टिगोचर होती है कि विभिन्न-विभिन्न उद्देश्यों से एक ही लक्ष्य की ओर चलते हुए, एक ही मंजिल को हासिल करने के लिए प्रयत्न करते हुए, 'एक' और 'संयुक्त' दिखायी देते हैं, किन्तु विभिन्न उद्देश्यों की स्थिति के कारण उनमें नीति की विचित्रता, जिसका आधार स्वार्थभेद है, पायी जाती है।

फ्रांस के रॉबे शुमाँ ने यूरोपीय सुरक्षा-सन्धि के अन्तर्गत सैनिक तथा आर्थिक पारस्परिक सविलीनीकरण को मूर्त रूप इसलिए दिया था कि उन्हें आशा थी कि आर्थिक और राजनैतिक तथा सैनिक दृष्टि से ऐसे किसी संगठन में फ्रांस का प्रभुत्व कायम रहेगा। किन्तु 'कोल पूल' के अन्तर्गत ही यह देख लिया गया कि पश्चिमी जर्मनी बेलजियम से मिलकर फ्रांस को मात दे देता था। फिर भी अमरीकी प्रेरणा बड़ी बलवान थी, और आँखों में धुआँ था। जिस प्रकार कि प्रत्येक देश में, अमरीकी नीति के संघचालक और सर-संघचालक होते हैं, उसी प्रकार शुमाँ, बिदो, लेनिए, पिनै आदि लोग अमरीका का समर्थन करते रहे और उस देश के विश्वव्यापी उद्देश्य से तदाकार होते रहे। फल उसका यह हुआ कि हिन्द-चीन, ट्यूनिशिया, मोरक्को, आदि देशों में फ्रांस की स्थिति बिगड़ती गयी। उधर जर्मनी का अमरीका द्वारा समर्थन जोर पकड़ता गया।

फ्रांस के ये राजनीतिज्ञ यह चाहते थे कि अमरीका का पल्ला पकड़कर वे अपने साम्राज्य को टिकाये रखें और उसे मजबूत बनायें, और अमरीका की खुशामद के क्षेत्र में वे जर्मनी से मुकाबला करते हुए जर्मनी को मात दे सकें। ऐसे लोगों में फ्रांस की उग्र दक्षिणपन्थी सोशलिस्ट, एम आर पी तथा रैडिकल पार्टी का एक हिस्सा आज भी है। किन्तु इन अमरीका-समर्थक लोगों में भी पश्चिमी जर्मनी का बढ़ता हुआ अमरीकी सत्कार भयप्रद होने लगा। पुरानी किसी फ्रेंच केबिनेट के एक प्रधानमन्त्री रेने मेये ने यूरोपीय सुरक्षा-सन्धि को स्वीकार करते हुए, फ्रेंच असेम्बली के सामने अपने भाषण में यह कहा कि 'फ्रेंच यूनियन' (अर्थात् फ्रेंच साम्राज्य और फ्रेंच सेना) को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए, सन्धि-संगठन के अन्तर्गत नयी व्यवस्था करना जरूरी है। वस्तुतः, इस संशोधन का अभिप्राय है यूरोपीय सुरक्षा-सन्धि की अधिराष्ट्रीय विशेषता की समाप्ति। इन राजनीतिज्ञों की दृष्टि से इस तर्क का आधार यह है कि फ्रेंच साम्राज्य से प्राप्त लाभ और फ्रेंच

साम्राज्य की सुरक्षा के लिए आवश्यक सेना पचायती अधिकार में दे देना उचित नहीं। इसी आधार पर ब्रिटेन ने यह सब अपने लिए अस्वीकार कर दिया। ठीक उसी आधार पर, फ्रांस के साम्राज्यवादी राजनीतिज्ञ यह सोचने लगे कि पश्चिमी जर्मनी, बेलज़ियम, डेनमार्क, आदि छोटे देशों को उससे लाभ हो सकता है, फ्रेंच हित सुरक्षित नहीं रह सकते। लेकिन, बिदो, पिने आदि साम्राज्यवादी फ्रेंच द्रोणाचार्यों के समर्थन के बावजूद, उपर्युक्त स्थिति को ध्यान में रख, जनरल दगाल, मार्शल [illegible] पक्षों तथा इतर तत्वों ने ई. डी. सी. [illegible] भूलने की बात नहीं कि उनका मत [illegible] राष्ट्रीय सेना को अक्षुण्ण बनाये रखना है तो ई. डी. सी. (यूरोपीय सुरक्षा संघ) में शामिल नहीं होना चाहिए।

इसके विपरीत साधारण जनता तथा अन्य ईमानदार तत्वों में ई. डी. सी. विरोध के पीछे भावना यह थी कि जिस ज़ोरदार तरीक़े से अमरीका जर्मनी को हर तरह बढ़ावा देता जा रहा है, उसका अभिप्राय यही हो सकता है कि ई. डी. सी. में जर्मनी को शामिल कर इस संगठन को रूस, आदि पूर्वी यूरोपीय कम्यूनिस्ट देशों के ख़िलाफ़ युद्ध के अस्त्र के रूप में प्रयुक्त करे। ई. डी. सी. एक युद्धवादी संगठन है। उसमें शामिल होने से फ्रांस की भूमि पर युद्ध का ख़तरा बढ़ जायेगा। एटमिक अस्त्रों के प्रयोग का वह लीलाक्षेत्र बन जायगा। सशस्त्र जर्मन सेनाएँ इस संहार को नयी दिशाएँ देंगी। वे स्वयं फ्रांस की मौत से लाभ उठायेंगी। सैनिक पहल उनके हाथ में चली जायेगी। अमरीका और जर्मनी फ्रांस-भूमि में, युद्ध से लाभ उठायेंगे।

फ्रांस के ई. डी. सी. में शामिल होने पर वह देश अपनी स्वाधीन आवाज़ क़ायम न रख पायेगा, और उसके शासन 'अमरीका तथा जर्मनी' उसी के विनाश का कारण होंगे। देश में आर्थिक दुरवस्था पहले से ही है, अब वह और भी घनीभूत हो जायेगी।

इस प्रकार हम देखते हैं कि विभिन्न कारणों से फ्रांस के विभिन्न वर्ग ई. डी. सी. के विरोध में हैं। और इस विरोध की स्थिति की एक आधार-शिला है जर्मन-अमरीकी सैनिकवाद, जिसका उग्र रूप हमें आज पश्चिमी जर्मनी में देखने को मिलता है। न्यूयार्क टाइम्स के विभिन्न समाचारों के अनुसार, आज हिटलर और गोएरिंग फिर से पश्चिमी जर्मनी के राष्ट्र-पुरुष हो गये हैं। पुराने नाज़ी अधिकारी पुनः अपना आसन जमाये बैठे हैं। जिस प्रकार पूर्वी एशिया में सिंगमन राई गैंग और सिंगमन री अमरीकी नेतृत्व में तृतीय विश्व युद्ध के प्रारम्भ और संचालन की स्थिति को अपने लिए लाभप्रद और उद्धारकारक समझते हैं, ठीक उसी प्रकार तृतीय विश्व युद्ध को पश्चिमी जर्मनी के नीति-संचालक [illegible]

[illegible] रहा है। फ्रांस, ब्रिटेन और अमरीका, [illegible] विजेता देश है, उनकी सेनाओं के हटने पर, पश्चिम जर्मनी अपना 'विस्तार' करेगा, यह बतलाया जाता है। अतएव आज पश्चिमी जर्मन की स्ट्रेटजी है, विजेता

कि आगामी 25 वर्ष तक उक्त कम्पनियों का राष्ट्रीयकरण नहीं किया जायेगा, और अगर किया गया तो उन्हें मुआवजा दिया जायेगा।

आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि पण्डित नेहरू की पंचवर्षीय योजना में भी प्रति वर्ष 100 करोड़ रुपयों की विदेशी पूँजी निमन्त्रित की गयी है। पंचवर्षीय योजना के नाम पर औद्योगिकक्षेत्र में भारतीय पूँजीपति, विदेशी पूँजीपतियों (अंग्रेजों और अमरीकियों) से सांठ-गांठ किये हुए हैं। उदाहरणत, हिन्दुस्तान मोटर्स लिमिटेड, जो बिड़ला और ब्रिटेन के पूँजीपति नफील्ड की संयुक्त रियासत है, या प्रीमियर ऑटोमोबाइल्स, जो वालचन्द हीराचन्द और अमरीकी क्रिसलर कम्पनी की मिली-जुली कम्पनी है, उनको मोटर-उत्पादन में सर्वाधिक आश्रय दिया गया है। यही नहीं, इस्पात उत्पादन में शासन उस स्टील कॉरपोरेशन ऑफ बंगाल को आर्थिक प्रश्रय दे रहा है जिस पर ब्रिटिश पूँजी का एकाधिपत्य है। इस कॉरपोरेशन के एजेण्ट हैं मार्टिन बर्न एण्ड कम्पनी। साथ ही यह कॉरपोरेशन इण्डियन आयरन एण्ड स्टील कम्पनी पर अपना प्रभुत्व स्थापित किये हुए है। यद्यपि मार्टिन बर्न तथा इण्डियन आयरन एण्ड स्टील के अध्यक्ष एक भारतीय श्री बीरेन मुकर्जी हैं, तथापि पूँजी और व्यवस्था पर एकच्छत्र प्रभुत्व अंग्रेजों का है। उसे केवल (1) 30 करोड़ रुपया आर्थिक सहायता दी जायगी, जबकि टाटा 11 करोड़ रुपया म काम चला सकता है। अर्थात् योजना के अन्तर्गत इस्पात उत्पादन में 7 लाख टन की जो वृद्धि अपेक्षित है, उसका दो-तिहाई हिस्सा इस ब्रिटिश प्रभुत्वसम्पन्न कॉरपोरेशन में आयेगा। मतलब यह कि इस वृद्धि के फलस्वरूप पंचवर्षीय योजना के जरिये लोहा-इस्पात उद्योग के क्षेत्र म ब्रिटिश पूँजी सर्वाधिक शक्तिशाली हो जायगी। प्रश्न उठता है कि टाटा इसका विरोध क्यों नहीं करता? वह कर नहीं सकता, इसलिए कि वह अंग्रेज-अमरीकी कम्पनियों से मिलकर पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत अन्य औद्योगिक क्षेत्रों म भारत शासन से विशाल आर्थिक सहायता प्राप्त करता जा रहा है। यहाँ एक बात स्मरणीय है कि श्री बी एम बिड़ला इंग्लैण्ड जाकर ब्रिटिश पूँजीपतियों से नया इस्पात कारखाना खोलने की वार्ता कर रहे हैं।

इस सम्बन्ध में यह भी ज्ञातव्य है कि रूस जिन सुविधाओं को देकर यहाँ इस्पात कारखाना खोलने को तैयार है, उनको देखकर ब्रिटिश और उनके साथी-सम्बन्धी लोगों में घबराहट मच गयी है, जिसका कारण है स्वयं वे सुविधाएँ जो रूस द्वारा दी जा रही हैं। प्रथम इस्पात के कारखाने की मिल्कियत, वह भारत में स्थापित होने के बावजूद, जर्मन कम्पनी क्रुप्स की ही रहेगी, किन्तु रूसी प्रस्ताव के अनुसार कारखाना 18 महीनों में खड़ा करके उसका सम्पूर्ण स्वामित्व भारत सरकार को सौंप दिया जायेगा, तथा जो रूसी पूँजी लगी है उसको 15 किस्तों में अदा किया जायेगा, तथा सूद की दर अन्तर्राष्ट्रीय बैंक की आधी यानी केवल ढाई प्रतिशत रहेगी। हम यह आशा नहीं है कि भारतीय पूँजीपति या भारतीय सरकार के प्रभावशाली तत्त्व इस रूसी योजना को स्वीकार करेंगे। असलियत यह है कि भारत में विदेशी पूँजी, जो शासन पर दबाव डाला करती है, वह कभी यह सहन नहीं कर सकती कि रूसी प्रस्ताव को स्वीकार किया जाये, क्योंकि उससे अभी तक के उनके प्रभुत्व को ठेस पहुँचेगी, और भारत के नये ढंग से होनेवाले औद्योगीकरण की सम्भावनाएँ बढ़ जायेंगी। रूसी प्रस्ताव की बात सुनते ही घबड़ाकर जिस ढंग से

ब्रिटिश हाई कमिशनर भारत सरकार के उद्योग-व्यवसाय मन्त्रालय से मिले, उससे यही बात साबित होती है। यहाँ केवल इतना ही कह देना पर्याप्त है कि एकाधिकारवादी स्वदेशी पूँजी विदेशी आर्थिक स्वार्थों से बहुत हद तक मिल गयी है, जिसका फल यह है कि भारत में अन्य विदेशी पूँजी तथा ब्रिटिश पूँजी का शिकंजा ढीला होने के बजाय और अधिक कड़ा हो गया है। मजेदार बात यह है कि इसके बावजूद कोई भी साम्राज्यवादी देश मशीनें बनाने की मशीनें नहीं देता। भारत में अंग्रेजी पूँजी के खास दोस्त श्री बी एम बिड़ला ने इस तथ्य पर व्यंग करते हुए एक बार कहा कि एक साल में चेकोस्लोवाकिया जितनी मशीनरी चीन को देता है उतनी मशीनरी हम सभी साम्राज्यवादी देश मिलकर भी नहीं देते। इस प्रकार बुनियादी मशीनों से वंचित रखकर साम्राज्यवादी देश भारत को सदैव उन्हीं पर निर्भर रहने को मजबूर करते हैं।

भारत में विदेशी पूँजी कितनी है, इस सम्बन्ध में कई अटकलें लगायी जाती थीं। किन्तु अब रिज़र्व बैंक द्वारा प्रकाशित आँकड़ों से इस विषय पर काफी प्रकाश

माउण्टबैटन योजना के अमल में आने के कुछ पूर्व के अस्थिर वातावरण में कुछ अंग्रेजी पूँजी ज

रुपये ही थी।

ऐसे क्षेत्र की

करने का कोई अधिकार नहीं मिला। साथ ही यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि यह पूँजी भारतीयों को उस समय बेची गयी जब कि तिकड़मबाजी के जरिये शेयर्स के भाव, बनावटी तरीके से, पौने दो गुने से ज्यादा बढ़ा दिये गये थे। आज उन्हीं शेयर्स के भाव दो-तिहाई कम हो गये हैं। आजादी मिलने के दो साल बाद ही 10

पूँजी लगी है, वहाँ भी अंग्रेजी पूँजी का ही मुख्य स्थान है। ब्रिटिश पूँजी में से 82 प्रतिशत पूँजी प्रत्यक्ष रूप से (डायरेक्ट इन्वेस्टमेण्ट) लगी हुई है, यानी उन उद्योगों में लगी है जिन पर इंग्लैण्ड का ही पूरा नियन्त्रण है।

निम्नलिखित आँकड़े अंग्रेजी पूँजी का स्पष्ट चित्र खींचते हैं

(रकम रुपयों में)

उद्योग	कुल लगी हुई विदेशी पूंजी	इंग्लैण्ड	अमरीका	कुल पूंजी में ब्रिटेन का हिस्सा
कल-कारखाने	66 करोड 44 लाख	46 क 42 ला	4 क 93 ला	66 प्र श
व्यापार	85 क 32 ला	67 क 28 ला	5 क 18 ला	78 प्र श
खदान	13 क 3 ला	10 क 90 ला	18 ला	84 प्र श
यातायात (रेल आदि)	15 क 20 ला	11 क 25 ला	3 ला	74 प्र श
बिजली	20 क 58 ला.	18 क 53 ला	1 ला	80 प्र श

पूंजी दो प्रकार से लगायी जाती है। एक तरीका यह है कि पूंजी लगानेवाला सिर्फ मुनाफे का हकदार होता है। उसका उद्योग के नियन्त्रण पर कोई हक नहीं होता। दूसरा तरीका यह है कि उसमें पूंजी लगानेवाला न सिर्फ मुनाफा ही पाता है, वरन उद्योग की सारी व्यवस्था पर भी उसका अधिकार रहता है। इस तरीके को प्रत्यक्ष पूंजी लगाना, डायरेक्ट इन्वेस्टमेण्ट, कहते हैं। इस तरीके से लगायी पूंजी ज्यादा महत्त्वपूर्ण होती है, क्योंकि उसके द्वारा सारे उद्योग पर पूंजी लगाने वाले का कब्जा हो जाता है।

विदेशी पूंजीपतियों ने हमारे देश में अपनी अधिकतर पूंजी प्रत्यक्ष पूंजी के रूप में ही लगायी है। 253 करोड रुपये की विदेशी पूंजी, जो कुल विदेशी पूंजी का 80 प्रतिशत हिस्सा है, इसी तरह लगी हुई है। यानी इस पूंजी से जो उद्योग-धन्धे खोले गये हैं, उन पर अंग्रेजी पूंजीपतियों का ही पूरा नियन्त्रण है। कच्चे माल की खरीद और आयात से लेकर यन्त्र-विशारदों के बुलाने तक की पूरी व्यवस्था उनके ही हाथों में है। इस विदेशी पूंजी का हित इसमें है कि भारत को हमेशा उनके द्वारा तैयार माल का बाजार बनाकर रखा जाये। इसीलिए उन्होंने अपनी सारी पूंजी हमें आत्मनिर्भर राष्ट्र बनानेवाले उद्योगों में न लगाकर, केवल कच्चा माल तैयार करनेवाले उद्योगों में ही लगायी है। इस विदेशी पूंजी की दूसरी विशेषता यह है कि वह पूंजी ऐसे उद्योग में लगायी गयी है जो हमारे आर्थिक जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं और जिन पर हमारी राष्ट्रीय सम्पत्ति और उत्कर्ष अवलम्बित है। नीचे लिखे आंकडे इस बात को स्पष्ट करेंगे

उद्योग का नाम	लगायी गयी विदेशी पूंजी	इस उद्योग में लगी हुई कुल पूंजी का प्रति सैकडा	इस उद्योग में काम करनेवाली कुल कम्पनियों में से विदेशी कम्पनियों का प्रति सैकडा
जूट	15 करोड 47 लाख	88	80
चायबागान	51 करोड 62 लाख	86	81
कोयले की खदानें	4 करोड 94 लाख	62	69
अन्य खदाने	8 करोड	73	62
माचिस	अज्ञात	90	60
पैट्रोल	अज्ञात	97	75
बिजली	19 करोड 32 लाख	43	52
छोटी रेले	7 करोड 32 लाख	90	77

इन उद्योग-धन्धो के अलावा 85 करोड की विदेशी पूंजी व्यापार मे लगी हुई है, जिसके द्वारा आयात-निर्यात व्यापार पर उसने अपना एकाधिकार ही कायम कर रखा है। इसी प्रकार, उद्योग धन्धो मे लगनेवाले रासायनिक माल का उत्पादन भी आज विदेशी पूंजी के हाथ मे है।

[illegible] पूंजी करोडो रुपयो की भार- [illegible] किया गया है, जिसमे सर्वाधिक [illegible] मैनेजिंग एजेन्सी की पद्धति के अन्तर्गत, उस कारखाने की पूरी व्यवस्था इकरारनामे के अनुसार निश्चित सख्या के शेयर रखनेवाले व्यक्ति के हाथ मे दे दी जाती है। इस पद्धति के जरिये, 13 करोड की अंग्रेजी पूंजी ने कुल 80 करोड के लागत के कारखानो पर अपना कब्जा जमा रखा है। यानी यह 13 करोड की पूंजी 77 करोड भारतीय पूंजी पर अपना अनुशासन करती है। फल यह होता है कि इस व्यवस्था के अन्तर्गत भारतीय पूंजी को कभी भी पनपने का मौका नही मिलता। हिन्दुस्तानी पूंजी को सिर्फ इतना ही हक है कि वह अंग्रेजी पूंजी द्वारा घोषित मुनाफा ले और अपने घर बैठे। इस पद्धति के अनुसार, 18 विदेशी कम्पनिया ने हमारे देश की 601 कम्पनियो पर अधिकार कायम कर रखा है।

जहाँ मैनेजिंग एजेन्सी नहीं मिलती, वहाँ उस उद्योग-धन्धे पर अपना कब्जा जमाने का दूसरा तरीका यह भी है कि आधे से अधिक शेयर्स अपने कब्जे मे कर लिये जायें। इस प्रकार 28 करोड रुपये की विदेशी पूंजी ने हमारे देश की कुल 44 करोड रुपयो की लागत को 210 कम्पनियो पर अपना वर्चस्व स्थापित कर रखा है। कई बार तो यह होता है कि विदेशी पूंजी भारतीय धोती पहनकर सामने आती है। नाम भारतीय रख दिया जाता है, एकाध भारतीय पूंजीपति को डायरेक्टर बनाकर बिठा दिया जाता है। किन्तु अधिकाश पूंजी विदेशी होती है, और नियन्त्रण भी विदेशी कम्पनियों के हाथ मे रहता है। इस तरीके से कम नही, 150 कम्पनियाँ चलायी गयी हैं जिनमे लगी हुई 47 करोड की कुल पूंजी म 45 करोड पूंजी

विदेशी है।

उपर्युक्त पद्धतियों से तथा अन्य मार्गों द्वारा केवल 88 करोड़ की विदेशी पूंजी ने 97 करोड़ की भारतीय पूंजी को दबोचकर, 185 करोड़ की लागत के कारखानों पर अपना नियन्त्रण, अनुशासन और कब्जा कायम कर रखा है। अर्थात् यद्यपि कुल व्यापारिक पूंजी में विदेशी पूंजी 320 करोड़ रुपया, यानी 44 सैंकड़ा, ही है तो भी उसने 420 करोड़ रुपये की, यानी 60 सैंकड़ा, पूंजी को अपने पंजे में जकड़कर रखा है।

अब हम विदेशी बैंकों की तरफ मुड़ें। हमारे आयात निर्यात व्यापार को चलाने के लिए हमारे देश के सिक्के का विदेशी सिक्कों में भुगतान करनेवाली सिर्फ 15 विदेशी बैंक हैं। ये बैंकें प्रतिवर्ष 25 से लगाकर 30 करोड़ रुपया तक कमीशन मार ले जाती हैं। एक तो महत्त्वपूर्ण देशों में हमारी बैंकें हैं ही नहीं। दूसरे, वे साधारणतः अपनी पूंजी उद्योग धन्धों को चलाने में नहीं लगातीं। भारतीय बैंकों में कुल 770 करोड़ रुपया जमा है। इस कुल पूंजी में से 88 सैंकड़ा पूंजी सरकार को कर्ज देने में लगायी जाती है, और केवल 3.5 प्रतिशत पूंजी उद्योग-व्यवसाय में। इसके विपरीत, विदेशी बैंकें अपनी पूंजी उद्योग धन्धों को कर्ज देने में लगाती हैं, और, फलस्वरूप वे उन उद्योग-धन्धों पर, पर्याप्त अंश तक, नियन्त्रण कर लेती हैं। इस प्रकार विदेशी बैंक कम रुपये की लागत के बावजूद भी हमारे आर्थिक जीवन पर गहरा प्रभाव डालते हैं, और भारतीय बैंकों की तुलना में अधिक महत्त्वपूर्ण पार्ट अदा करते हैं।

रिज़र्व बैंक ऑफ इण्डिया द्वारा प्रकाशित आंकड़ों के अनुसार, हमारे देश से आज भी प्रतिवर्ष 100 करोड़ रुपया इंग्लैण्ड जाता है। यह आंकड़ा वस्तुतः कम है, इसलिए कि अन्य तरीकों से की गयी जायज-नाजायज लूट अथवा मुनाफे की रकम शामिल नहीं है। इसके अतिरिक्त 10 करोड़ रुपया प्रतिवर्ष आज भी इंग्लैण्ड के उन आला अफसरों को पेंशन के रूप में जाता है जिन्होंने हमारे यहाँ साम्राज्यवादी सरकार चलायी और जनता का खून चूसा। यह रकम, इंग्लैण्ड से पौण्ड पावने के रूप में हमें जो कर्ज लेना है, उसमें से बाला-बाला काट ली जाती है। इस प्रकार 110 करोड़ रुपया सालाना की हमें चपत दी जाती है।

भारत में इतनी विदेशी पूंजी के दृश्य को देखकर, स्वभावतः यह अपेक्षा होती है कि भारतीय पूँजीपति इस विदेशी शिकंजे का आर्थिक विरोध करेंगे। किन्तु यह अपेक्षा व्यर्थ-सी है। केवल कुछ अपवादों को छोड़कर ऑल इण्डिया मैन्युफैक्चरर्स एसोसिएशन ने कुछ दिनों पहले यह आवाज़ लगायी थी कि भारत में विदेशी पूंजी का आना बन्द हो। किन्तु उसकी आवाज निर्बल है, भारतीय सरकार पर उसका विशेष प्रभाव नहीं है। बिड़ला और टाटा विदेशी पूंजी के आमन्त्रण को भारत के लिए (यानी स्वयं उनके लिए) हितकर समझते हैं। बिड़ला महोदय स्वयं अनेक ब्रिटिश उद्योगपतियों से पूंजीबद्ध हैं, तो टाटा महोदय अमरीकी पूंजीपतियों से। अपने मुनाफे की वृद्धि के लिए भारत-शासन पर निर्णायक प्रभाव रखते हुए, वे साम्राज्यवादी पूंजी को बुलाते हैं, उस पूंजी के जूनियर पार्टनर की हैसियत से काम करते हैं और उनसे पूँजीबद्ध हो जाते हैं। पंचवर्षीय योजना ने उनको इस कार्य में अधिक उत्साहित किया है। स्पष्ट बात यह है कि ये कल के राष्ट्रवादी पूंजीपति आज भारत को केवल औपनिवेशिक क्षेत्र बनाये रखने की ओर ही कदम बढ़ा रहे

हैं, न कि उसके वास्तविक औद्योगीकरण की ओर।

किसी भी देश का औद्योगीकरण मशीनों को बनानेवाली मशीनों की स्थापना से ही शुरू होता है। किन्तु इस ओर न भारतीय सरकार ही काम कर रही है, न कोई प्रभावशाली राजनैतिक पार्टी ही आवाज लगा रही है। जिस साम्राज्यवादी पूंजी से हमारे उद्योगपति सम्बद्ध हो रहे हैं, वे साम्राज्यवादी देश हमें बुनियादी कारखाने खोलने नहीं देते। इस प्रकार भारत की औपनिवेशिक स्थिति को बनाये रखते हैं। जब तक हमारे यहाँ विदेशी पूँजी का राष्ट्रीयकरण नहीं होता, और बुनियादी कारखाने नहीं खुलते, तब तक यह कहना कि हम देश की पुनर्रचना कर रहे हैं, बिलकुल असंगत है। कहना न होगा कि भारतीय आर्थिक स्थिति, सच्ची आर्थिक स्वाधीनता, और साम्राज्यवाद से मुक्ति हमें तभी प्राप्त हो सकती है जब हम भारतीय बाजार का विदेशी शोषण बन्द कर दें। इस सम्बन्ध में आपका क्या खयाल है?

[सारथी, 3 अक्टूबर 1954, में 'यौगन्धरायण' छद्मनाम से प्रकाशित]

समाजवादी समाज या अमरीकी-ब्रिटिश पूँजी की बाढ़

कई लोगों से रास्ते चलते, घर बैठे, अन्दर-बाहर इस बात पर मेरी बातचीत हुई कि आखिर समाजवादी ढंग की समाज-रचना के क्या मानी है। असल में इसका एक मतलब लिया जाता है—दूसरी पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत सरकारी तत्त्वावधान में औद्योगिक क्षेत्र का विकास, कि जिससे प्राप्त मुनाफा सरकार द्वारा जनकल्याणकारी कार्यों में लगाया जाये, और देश के अर्थतन्त्र पर पूँजीपति का अधिकार न होकर जनता द्वारा चुनी हुई सरकार का कब्जा हो। यानी कि इस ढंग से, देश का बहुमत अर्थतन्त्र पर भी अधिकार बनाये रखे।

बात महत्त्वपूर्ण है, और केवल शब्द-जाल से इसको टाला भी नहीं जा सकता। निश्चय ही, देश के प्रगतिशील तत्त्वों ने इसका स्वागत किया है। किन्तु इससे कुछ लोगों में भ्रम भी पैदा हो रहा है कि देश का पूँजीवाद समाप्त होने की ओर है, और समाज-रचना में तबदीली होने जा रही है।

हम इस सम्बन्ध में अधिक ऊहापोह न करते हुए केवल कुछ बातों पर पाठकों का ध्यान आकर्षित करना चाहते हैं।

(1) पहली बात तो यह है कि अगर देश में पूँजीवादी समाज-रचना के स्थान पर समाजवादी ढंग की समाज-रचना लाने की ओर प्रयत्न किया जा रहा है, तो (यह महत्त्वपूर्ण बात है) देश के गरीब वर्ग अधिकाधिक गरीब और श्रीमान वर्ग अधिकाधिक श्रीमान क्यों होते जा रहे हैं। गरीब वर्गों और धनी वर्गों के बीच की खाई अब पहले से ज्यादा बढ़ गयी है। यहाँ तक कि मध्यवर्ग और निम्न-मध्यवर्ग

के बीच भेद की दीवार और न फाँदी जा सकनेवाली खाई पड़ी हुई है जो बढती जा रही है।

(2) भूदान आन्दोलन के बावजूद, मध्यप्रदेश मे तीन सौ तैंतीस ऐसे काश्तकार हैं जिनमे से हर एक के पास एक हज़ार एकड से अधिक जमीन है। राज्य के कुछ काश्तकारो के एक-बटा-पाँच हिस्से के पास एक या उससे कम एकड जमीन है। गाधीजी कहते हैं कि भारत ग्रामो म रहता है, तो असल मे जिनके पास एक हज़ार एकड से अधिक जमीन है, उन्हे अपनी जमीन से वचित किया जा सकता था, और उनकी जमीन सरकारी तौर पर किसान जनता को दी जा सकती थी, जैसा कि सीमित रूप से कश्मीर और इजिप्ट मे (इजिप्ट में और भी सीमित रूप से) किया गया या जैसा कि चीन मे हुआ। मध्यप्रदेश मे ऐसे काश्तकार जिनम से हर एक के पास एक हजार एकड से अधिक भूमि है, केवल तीन सौ तैंतीस है। उन्हे अपनी भूमि से वचित किया जाना असम्भव नही था।

जितनी भी सहकारी बैंकें हैं और प्राथमिक साख समितियाँ है, उनमें धनी किसानो का ही वर्चस्व है। किसान पहले साहूकार का कर्जदार था अब वह सरकार का कर्जदार और सरकारी कर्ज चुकाने के लिए सहकारी बैंको का कर्जदार और सहकारी बैंको का कर्ज चुकाने के लिए सरकार का कर्जदार हो रहा है। यानी जब कर्ज चुकाना बिलकुल असम्भव हो जाता है तब उसकी जमीन छिन जाना बिलकुल स्वाभाविक हो उठता है। असल मे, देश के खाद्यान्न उत्पादक के रूप म उसकी आर्थिक सत्ता उतनी ही नि सहाय है जितनी कि पहले थी। अन्तर इतना ही है कि पहले उसके जीने की मियाद कम थी अब वह बढा दी गयी है। सिर्फ इसलिए कि वह अपने जीने का प्रयोग करे और अन्तत मृत्यु के प्रति घुटने टेक दे। नही तो कोई कारण नही है कि भूमि पर जीनेवाले लोगो का एक-चौथाई हिस्सा खेत-मजदूर बना रहे और बढता रहे। ग्रामीण क्षेत्रो के किसी भी अनुभवी व्यक्ति स ये बात छिपी नही है कि इस किसान वर्ग म धनी और ग़रीब का भेद बढता जा रहा है।

(3) विकास योजनाओ के खर्चे के लिए घाटे के बजट और नयी कर-वृद्धि के ज़रिये, चाहे वह बहुसूची बिक्री कर ही क्यो न हो, अप्रत्यक्ष रूप से जनता से पैसा उगाहा जाता है। किन्तु जब सरकार को कर्ज चाहना होता है तब करोडो रुपये का कर्ज बडे-बडे धनी लोग एक या दो दिन मे पूरा कर देते है। यानी सरकार को दिये हुए कर्ज मे कर्ज देनेवाले [का] मुनाफा छुपा रहता है। अर्थात् जब धनी वर्ग सरकार को पैसा देता है तब उसे मुनाफा मिलता है, लेकिन जनता की जेब से जो पैसा चला जाता है उसका कोई हिसाब ही नही। सरकार को कर्ज देनेवाले लोगो मे श्रीमान वर्ग ही होता है।

यहाँ यह कहा जायेगा, जो कर जनता पर लागू है वह धनी वर्ग पर भी है। इसका जवाब यह है कि व्यापारी और औद्योगिक वर्ग अपना कर-समेत जीवन खर्च अपने व्यवसाय मे 'स्वय के श्रम' के अन्तर्गत लगा लेते हैं, और जो मुनाफा लेते हैं वह उससे पृथक् होता है। अर्थात् धनियो पर लगाया गया कर और अन्य भार अप्रत्यक्ष रूप से कई तरीको से जनता की जेब से खीचा जाता है। जनता सरकार और औद्योगिक तथा व्यावसायिक शक्तियो के भार के नीचे दब जाती है।

(4) वेतन मे ग़रीब और अमीर का भेद, कम-से-कम थोडा कम किया जा

सकता है, लेकिन वह नहीं हो रहा है। शिक्षा की ऊँची फीस रखकर ग़रीब मध्य-वर्ग को ऊँचे किस्म की शिक्षा से वंचित रखा जा रहा है। ऐसा क्यों?

(5) महत्त्वपूर्ण बात यह है कि श्रीमानों की कर्जदार सरकार पर श्रीमानों का वजन न हो, यह असम्भव बात है। दूसरे, देश की मुख्य बैंक (रिज़र्व बैंक) जो नोट और सिक्के बनाती और चलाती है, उसके डायरेक्टर देश के महत्त्वपूर्ण औद्योगिक और व्यावसायिक लोग हैं, यद्यपि उनमें सरकार के भी प्रतिनिधि हैं।

(6) ये बड़े-बड़े पूँजीपति ऊँची शिक्षा-प्राप्त मध्यवर्गीयों की सहायता के बिना राजसत्ता पर प्रभाव नहीं रख सकते। ये मध्यवर्ग, वस्तुत धनीवर्ग है, जिन्हें खुद के और अपने बाल-बच्चों के निर्वाह, शिक्षा आदि की कोई चिन्ता नहीं है। उनके बच्चे बड़े-बड़े अधिकारी, बड़े-बड़े विशेषज्ञ, बड़े-बड़े वैज्ञानिक, बड़े-बड़े अर्थ-शास्त्री, बड़े-बड़े राजदूत और राजनीतिज्ञ बनने के लिए ही पैदा हुए हैं। राजसत्ता चलाने-वाला वस्तुत यह वर्ग होता है।

(7) हमारे यहाँ राजसत्ता का वैज्ञानिक अर्थ नहीं समझा जाता। राजसत्ता प्रभावशाली श्रीमान (शासक अथवा अनुशासक) वर्गों के लिए समाज में उनकी दृष्टि से सन्तुलन स्थापित करने का एक अस्त्र होती है। सामन्ती समाज में सामन्ती वर्ग, पूँजीवादी समाज में उच्च मध्यवर्गीय और धनी लोग राजसत्ता को चलाते हैं। बहुमत से पार्लामेण्ट में चुनकर चाहे जो आये, राजसत्ता के सचालन और आर्थिक सन्तुलन का कार्य इसी उच्च-मध्यवर्ग को करना पड़ता है। ये वर्ग धनी, औद्योगिक और व्यवसायिकों द्वारा पोषित होकर उनकी संस्थाओं और पत्रों द्वारा ख्याति प्राप्त करता है। राजसत्ता के और अन्य केन्द्रीय महत्त्वपूर्ण संस्थाओं के कल-पुर्जों के रूप में यह वर्ग काम करता है। शासक और नियन्त्रक वर्गों के हित में, उनकी दृष्टि से समाज में सन्तुलन स्थापित करता है। इस सन्तुलन को स्थापित करने के दौरान में [उसे] देश की वस्तुस्थिति ध्यान में रखते हुए काम करना पड़ता है, यानी जनता की प्रवृत्ति को देखते हुए, उसे बहुत बार श्रीमान वर्गों पर भी नियन्त्रण रखना पड़ता है, जिससे कि वह वर्ग जनता के क्षोभ का शिकार न हो, साथ ही यह वर्ग अक्षुण्ण बना रहे। आजकल, अमरीका, फ्रांस और ब्रिटेन के पूँजी-पतियों पर भी वहाँ की सरकारों का नियन्त्रण हो गया है। अगर यह नियन्त्रण न रहे तो पूँजीपति के खिलाफ जनता फौरन ही क्रान्ति कर दे। वस्तुत यह क्रान्ति को रोकनेवाला वर्ग होता है। उसे रोकने के लिए बन्दूक की गोलियों और रियायतों दोनों का प्रयोग करना होता है। किन्तु धनिकों के मुनाफे के रेट न गिर पायें, इसकी वह पूरी व्यवस्था करता है।

(8) अब यहाँ के बारे में कुछ कहते हैं। भारत को आजाद हुए आठ साल हो रहे हैं। अभी देश के औद्योगीकरण के लिए आवश्यक धन अरबों रुपयों का चाहिए। हमारे यहाँ का औद्योगिक वर्ग इतना श्रीमान नहीं है कि वह अपने पैसों से औद्योगी-करण कर सके। यह बात स्वय बिड़ला ने स्वीकार की है। अपने एक भाषण में उसने यह कहा कि भारत में सरकार ही औद्योगीकरण कर सकती है। क्योंकि वह पैसा इकट्ठा कर सकती है, जनता पर उसका वजन है, वह जनता से पैसा ले सकती है। एकत्र किये गये इस धन से औद्योगीकरण हो सकता है। अर्थात् यह कार्य तीन ढंग से हो सकता है

(1) सरकार द्वारा अन्य देशों से प्राप्त औद्योगिक सहायता के जरिये,

(2) पूँजीपतियों द्वारा अन्य देशों से प्राप्त औद्योगिक सहायता के ज़रिये,

(3) प्रत्यक्षतः लगायी गयी विदेशी पूँजी के ज़रिये।

असल में भारत में पूँजी तीनों ढंग से लगायी जा रही है। अगर भारत में रूसी इस्पात कारखाना सरकारी औद्योगिक क्षेत्र में खुल रहा है, तो अमरीकी सहायता से टाटा अपने इस्पात कारखाने का बहुत बड़ा विस्तार कर रहा है। और बिड़ला ब्रिटिश सहायता से नया इस्पात कारखाना खोल रहा है। तीसरे, प्रत्यक्षतः विदेशी पूँजी भी भारत में आ रही है और आयेगी। हाल ही की खबर है कि भारत सरकार ने अमरीकी पूँजी की 'प्राइवेट ट्रीटमेण्ट-गैरण्टी-स्कीम' मंज़ूर कर ली है, यानी वह आगामी पच्चीस वर्ष तक अमरीकी पूँजी का राष्ट्रीयकरण न करने की गैरण्टी देगी। ये गैरण्टी देने पर, अरबों रुपयों की अमरीकी पूँजी निजी तौर पर भारत में लगेगी। ध्यान में रखने की बात है कि भारत के औद्योगिक क्षेत्र में 44 प्रतिशत हिस्सा ब्रिटिश है। उसका उन्मूलन तो हुआ नहीं, न वह करने की बात है। किन्तु अब अमरीकी पूँजी को भी खुली गैरण्टी दी जा रही है।

आपको याद होगा कि मैसूर की सोने की खदानों के राष्ट्रीयकरण की बात मैसूर सरकार और खदान-मालिकों के बीच चल रही थी। देहली की खबर है कि केन्द्रीय सरकार की सलाह से वह बातचीत खतम कर दी गयी है। अब राज्य सरकार उन खदानों के राष्ट्रीयकरण की बात ही न करेगी। यह क्या हुआ?

मतलब यह कि केन्द्रीय सरकार के सलाहकारों पर ब्रिटिश और अमरीकी पूँजी का बहुत बड़ा प्रभाव है। यह आकस्मिक बात नहीं है कि जनरल थीमय्या सरीखे सर्वोच्च फ़ौजी पदाधिकारी को अमरीकी खिताब मिले, और उनकी तारीफ़ में यह कहा जाय कि उन्होंने भारत स्थित अमरीकी फ़ौजी आगन्तुकों को सहायता दी है। हमारे पाठक इन सब बातों से स्वयं ही निष्कर्ष निकालें। समाजवादी ढंग की समाज रचना करने का तरीक़ा यह नहीं है कि भारत में अमरीकी पूँजी को पच्चीस वर्ष की गैरण्टी दी जाय और ब्रिटिश पूँजी के बारे में चूँ तक न किया जाय। इससे एक बात तो सिद्ध होती ही है। वह यह कि आगामी पच्चीस-तीस वर्षों तक के लिए समाजवादी ढंग टाल दिया गया है। तब तक भारत में और दुनिया में क्या परिस्थिति होती है यह आगे देखने की बात है।

[नया ख़ून, 1955, में बिना नाम के प्रकाशित]

मिस्र के विरुद्ध इतना रोष क्यों?

लन्दन के टाइम्स ने लिखा है कि चेकोस्लोवाकिया से मिस्र (इजिप्ट) ने शस्त्र-सम्बन्धी समझौता किया है उसका नतीजा इजिप्ट के लिए बुरा होगा। टाइम्स सिर्फ़ अख़बार है, कोई सरकार नहीं। फिर भी उसके इस 'वचन' में काफ़ी तथ्य हैं, यह नहीं भूलना चाहिए।

इसका कारण है। आज तक जिन छोटे या पिछडे हुए राष्ट्रो ने दूसरे विश्व-युद्ध के (दौरान मे नही) उपरान्त सिर उठाया, उन्हे मार खानी पडी। आपके सामने इतने राष्ट्र है—ईरान, ग्वाटेमाला और हाल का अर्जेनटीना। ईरान मे एंग्लो-ईरानियन तेल कम्पनी (जो ब्रिटिश कम्पनी है) के राष्ट्रीयकरण की शर्तों के बारे मे, ईरान के प्रधानमन्त्री डाक्टर मुसद्दिक और ब्रिटेन मे जो तनातनी चली, उसका परिणाम एक बडा भारी अन्तर्राष्ट्रीय कुचक्र, जिसमे डाक्टर मुसद्दिक की सरकार पिस गयी और उसके समर्थक गोली से उडा दिये गये। ग्वाटेमाला मे, अमरीकी फ्रूट कम्पनी की जमीदारी के विरुद्ध सरकारी कदमो की प्रतिक्रिया हुई—एक फौजी षड्यन्त्र, जिसके फलस्वरूप गृहयुद्ध हुआ और प्रेसिडेण्ट आर्बेन्ज [illegible]

षड्यन्त्रो के द्वारा उन देशो म हस्तक्षेप करने लग गये हैं, जिनकी उन्नति और विकास उन साम्राज्यवादियो के हितो के आडे आता है। ग्वाटेमाला म अमरीकी फ्रूट कम्पनी के सबसे बडे समर्थक स्थानीय रोमन कैथलिक पुरोहित थे [जिन्होंने] ग्वाटेमाला की राजनैतिक कार्रवाइयो को रोकना चाहा था। अर्जेनटीना ग्वाटेमाला से कही ताकतवर था। दुनिया के बाजार मे, अर्जेनटीना के गेहूँ, कपास और मास ने अमरीकी माल का दम घोट दिया था। औद्योगिक विकास के लिए, पेरो सरकार ने चेकोस्लोवाकिया, हगरी, रूस, आदि कम्युनिस्ट देशो से व्यापारिक समझौते किये थे। अर्जेनटीना मे कम्यूनिज्म गैरकानूनी था। किन्तु अमरीका-समर्थक जमीदारो, फौजी अधिकारियो, और रोमन कैथलिक पुरोहितो की मदद से, वाशिंगटन ने फौजी षड्यन्त्र के द्वारा सरकार पलट दी। पेरो सरकार यद्यपि तानाशाही सरकार थी, उसे साधारण जनता का समर्थन प्राप्त था।

ठीक उसी तरह, इजिप्ट मे भी फौजी तानाशाही है। ब्रिटेन की पार्लमिण्ट के जमीदार तत्त्वो की प्रधानता और उनके भ्रष्टाचार के विरुद्ध क्रामवेल ने इसी तरह की तानाशाहियत कायम की थी। वहाँ भी इजिप्ट की तरह फौजी तानाशाही थी। प्रगतिशील फौजी तानाशाही उस देश मे कायम होती है जहाँ प्रगति-विरोधी तत्त्व प्रबल होते हैं और उन्हे दबाकर ही प्रगति की जा सकती है। ब्रिटेन की उन दिनो की पार्लमिण्ट (जब जमीदार तत्त्व ही उसमे प्रबल थे) शाह फारूक के जमाने की मिली पार्लमिण्ट-जैसी भ्रष्ट पार्लमिण्ट थी। अर्जेनटीना और ग्वाटेमाला मे स्थिति कुछ दूसरी ही थी। फौज का एक हिस्सा जमीदारी तत्त्वो से मिला हुआ था। किन्तु ईरान और मध्य-पूर्व के देशो की पार्लमिण्ट इसी ढग की है। साराश यह कि प्रगति-विरोधी तत्त्वों की सहायता से, साम्राज्यवादी राष्ट्र उन देशो मे, जहाँ उनके हित खतरे मे पड जाते हैं, राजनैतिक षड्यन्त्र रचकर हस्तक्षेप करते हैं। उनकी सहायता और प्रोत्साहन द्वारा राजनैतिक नेताओ का कत्ल किया जाता है और सरकारें पलट दी जाती हैं। इजिप्ट मे इस प्रकार के षड्यन्त्र नही होंगे, इसकी क्या गैरण्टी है?

इजिप्ट मे कर्नल नासिर ने मुस्लिम ब्रदरहुड खतम करवायी, बडे-बडे जमीदारो को दबाया, व्यापारी तत्त्वो को प्रोत्साहन दिया, मुस्लिम धार्मिक न्यायालयों

को खतम किया, ईसाई कॉप्टिक पैट्रिआर्क की धार्मिक हुकूमत समाप्त की, ब्रिटेन का सुएज़-स्थित फौजी अड्डा सायप्रस हटवाया, अरब-राष्ट्रवाद का नेतृत्व किया, और सबसे बड़ा गुनाह यह किया कि मध्य-पूर्वी ऐंग्लो-अमरीकी संयुक्त फौजी कमान में अरब राष्ट्रों का सहयोग असम्भव करवा दिया। फलतः वह कमान बन नहीं पायी। उसके आगे एक कदम और बढ़कर उसने अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में तटस्थता की नीति अपनायी। अब वह एक कदम और आगे बढ़ा। उसने एंग्लो अमरीकी इच्छा के विपरीत, चेकोस्लोवाकिया से व्यापारिक समझौता किया, जिसके अनुसार उसे अब उस देश से शस्त्रास्त्र प्राप्त होंगे।

कर्नल नासिर के इतने बड़े-बड़े गुनाह! क्या आप समझते हैं कि एंग्लो-अमरीकी षड्यन्त्रकारी चुप बैठे रहेंगे? सफल हों या असफल, ये कुचक्र घटित होंगे ही। स्वयं कर्नल नासिर यह बात जानते होंगे कि अब आगे उनके विरोधियों को सशस्त्र बाहरी सहायता मिलेगी। यह मामूली बात नहीं है।

लेकिन चेकोस्लोवाकिया द्वारा इजिप्ट को शस्त्र दिये जाने पर एंग्लो-अमरीकियों को इतना रोष क्यों? कर्नल नासिर ने हाल ही में गाजा के निकट इज़रायल फौजी संघर्ष के बाद यह तै पाया कि फौजी दृष्टि से इज़रायल इजिप्ट से अधिक सुसज्ज है। लन्दन के टाइम्स ने यह स्वयं स्वीकार किया है कि इज़रायल को एंग्लो-अमरीकियों द्वारा अच्छे-से-अच्छे युद्धास्त्र दिये गये, जब कि इजिप्ट को उनसे वंचित रखा गया। कर्नल नासिर ने एंग्लो-अमरीकियों के रोष के विरुद्ध एक वक्तव्य में कहा कि इजिप्ट ने अच्छे युद्धास्त्रों के लिए ब्रिटेन और अमरीका के पास सिर पटका, लेकिन उसे वंचित रखा गया। (आखिर स्पेन से उसे झख मार-कर छोटे-मोटे युद्धास्त्र खरीदने पड़े।) लन्दन का **टाइम्स** लिखता है कि इजिप्ट के पास छोटे मोटे युद्धास्त्र बनाने का एक छोटा-सा कारखाना भर है। और कुछ नहीं।

युद्धास्त्रों की खरीद के सम्बन्ध में इजिप्ट का अपना एक इतिहास है। मिस्री फौज की, शाह फारूक के ज़माने से, यह शिकायत रही है कि अरब राष्ट्रवादी युद्धों में इजिप्ट को पुराने-धुराने टूटे-फूटे हथियारों से लड़ना पड़ा है। उन दिनों की मिस्री सरकार हथियारों के मामले में हमेशा एंग्लो-अमरीकी सरकारों पर निर्भर रही है। चूँकि ये साम्राज्यवादी अरब-राष्ट्रवाद के हमेशा से दुश्मन रहे हैं, और चूँकि सुएज़ में ब्रिटिश फौजी अड्डा रहा आया, इसलिए इन देशों ने अरब राष्ट्रवाद के नाते इजिप्ट को कभी भी उचित युद्धास्त्र नहीं दिये। जनरल नजीब, कर्नल नासिर आदि फौजी नेता इजिप्ट की इस पुरानी कमज़ोरी को जानते हैं। वे लोग इस कमज़ोरी को इजिप्ट की राष्ट्रीय सुरक्षा में बाधा मानते रहे हैं।

जब से अरब राष्ट्रों के प्रसार-क्षेत्र में इज़रायल कायम हुआ, तब से कमज़ोर अरब राष्ट्रों को यह भय हुआ (जो वास्तविकता पर आधारित था) कि उसके द्वारा एंग्लो-अमरीकी साम्राज्यवाद उन पर हावी हुआ जा रहा है। ईराक-जैसा राष्ट्र जो पाकिस्तान-तुर्की-ब्रिटिश-अमरीकी सन्धि में शामिल है, इस बात पर क्षुब्ध है कि इज़रायल के ज़रिये अरब स्वाधीनता खतरे में पड़ी हुई है। ईराक द्वारा इस सन्धि में शामिल होने के बावजूद, इजिप्ट आज भी ईराक में सम्मानित है। उसके प्रभाव का विस्तार मोरक्को से लगाकर यमन और साऊदी अरब तक है, यह नहीं भूलना चाहिए। **न्यूयार्क टाइम्स** का शुल्ज़बर्ग लिखता है कि इजिप्ट

का विश्वास उठता जा रहा है और वहाँ अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में तटस्थता की भावना घर करती जा रही है।

शुब्ज़वर्ग का रोना अरब राष्ट्रों की समझ में नहीं आता। यद्यपि वहाँ की सरकारें एंग्लो-अमरीकी हितों के विरुद्ध कदम बढ़ाने में हिचकिचाती नहीं, किन्तु वे इतना जानती हैं कि उन्हें सैनिक दृष्टि से कमज़ोर रखा जाता है, उनके औद्योगिक विकास में न केवल कोई सहायता नहीं पहुँचायी जाती, वरन् इस सम्बन्ध में कोई माँग उठने पर उसे दबाया जाता है। मोरक्को, अल्जीरिया, ट्यूनीशिया आदि के मामलों में ब्रिटेन और अमरीका फ्रांस के मित्र ज़्यादा साबित होते हैं बनिस्बत कि अरब राष्ट्रों के। यह सब तजुर्बे की बातें हैं। उन्हें इस प्रकार, आर्थिक रूप से निर्भर और सैनिक रूप से कमज़ोर क्यों रखा जाता है?

इसके दो कारण हैं। एक यह कि अरब राष्ट्र यदि सशस्त्र हुए तो पूर्वी भूमध्य सागर पर उनका दबदबा बढ़ जाता है। पूर्वी भूमध्य सागर पर एंग्लो-अमरीकी प्रभाव निर्णायक रहना ज़रूरी है, इसलिए कि एशियाई सागरों को जोड़नेवाला यही सागर है। इसी सागर से यूरोप का व्यापार एशिया से होता आया है। इसलिए जब तक एंग्लो-अमरीकी साम्राज्यवाद का बस चलेगा, वे भूमध्य सागर के किसी भी राष्ट्र को बलवान नहीं ही होने देंगे।

दूसरा कारण तेल है। अरब राष्ट्रों में पायी जानेवाली तेल की खदानों से यूरोप-अमरीका के हवाई जहाज़ और समुन्दरी जहाज़ चलते हैं। तेल से बिजली पैदा होती है। वे कभी यह न चाहेंगे कि उनके औद्योगिक मुनाफ़े के प्रमुख साधन तेल का अधिकार उनके हाथों से छूटकर अरब राष्ट्रों के पास पहुँच जाये। इसलिए वे अरब राष्ट्रों में ऐसी सरकारें बनाये रखना चाहते हैं जो उनके तेल की सुरक्षा करें और बढ़ते हुए अरब राष्ट्रवाद के हमलों से उसे बचाये रखें। अगर एंग्लो-अमरीकी चाहते तो अपने ही तेल की सुरक्षा के लिए वे उन राष्ट्रों की सैनिक शक्ति बढ़ा सकते थे, लेकिन बहुत पहले से ही उनकी नीति यह रही है कि वे उन देशों में अपनी विशाल फ़ौजी छावनियाँ बनाये रखें। पूर्वी यूरोप और पूर्वी एशिया में कम्यूनिस्टों के प्रभाव-विस्तार से तो उन्हें यह बहाना मिल गया कि घरेलू और बाहरी कम्यूनिज़्म को रोकने के लिए उनकी फ़ौजी छावनियाँ ज़रूरी हैं। ,[आगे का हिस्सा अप्राप्त]

[सारथी, 9 अक्टूबर, 1955, में 'अवन्तीलाल गुप्त' छद्मनाम से प्रकाशित]

नोंक-झोंक के नये दौर

विविध शक्तिशाली राष्ट्रों के विभिन्न उद्देश्यों के संघर्ष और समवाय से ही विश्व-इतिहास बनता-बिगड़ता है। इस संघर्ष और समवाय की प्रक्रिया के दौरान में प्राप्त अनुभवों के आधार पर, निर्धारित नीतियों में प्रथम अदृश्य रूप से, बाद में

प्रकट, परिवर्तन हुआ करते हैं। इस समय ये परिवर्तन इतने सूक्ष्म हैं कि उन्हें अधिक महत्त्व नहीं दिया जा सकता, किन्तु उनकी उपेक्षा करना खतरे से खाली नहीं है। ये सूक्ष्म परिवर्तन आगे चलकर दृढ प्रवृत्ति का रूप धारण करने की हैसियत रखते हैं।

हम अमरीका की ही स्थिति लें। क्या अमरीकी राजनीतिज्ञ अपनी वैदेशिक नीति से सन्तुष्ट हैं? नहीं। अमरीकी विदेश नीति एशिया की प्रचण्ड जागृति, शक्ति और प्रभाव का मूल्य न आंक सकी। इस असफलता का प्रभाव यह हुआ कि [illegible] समझा जाता रहा।
नीति म आवश्यक
श-नीति बहस का

अमरीका द्वारा एशिया के स्वतन्त्र विकास का महत्त्व न आंका जाना एक बात है। चूंकि ब्रिटेन फ्रास वगैरह एशिया-अफ्रीका म बदनाम है, इसलिए आवश्यकता से अधिक उनका साथ नहीं दिया जाना चाहिए यह दूसरी बात है। अमरीका की गलती यह थी कि उसन अपने बचाव की भावना स ब्रिटेन-फ्रास के झगडे म ज्यादा न पडना तो स्वीकार किया, किन्तु पिछडे देशो की राष्ट्रीय महत्त्वाकाक्षाओ का मूल्य और प्रभाव न समझने की ही कोशिश की। नतीजा यह हुआ कि वह इस क्षेत्र म सिर्फ उन्ही देशो की खुलकर मदद कर सका जिन देशा की सरकारे अत्यन्त [illegible] अमरीका ने बुनियादी
भी बुनियादी है। चूंकि
ना भी आवश्यक है।
किसी देश क कहने पर
नही चलता, वह विविध शक्तियो क विभिन्न उद्देश्यो क सघर्ष और समवाय का ही परिणाम है।

इन सफलताओ ने अमरीका को चौकन्ना कर दिया। भारतस्थित अमरीकी राजदूत शेरमैन कूपर द्वारा वाशिंगटन म भाषण देते फिरना कि भारतीय तटस्थता का वास्तविक अर्थ समझा जाय, इसी प्रवृत्ति को सूचित करता है।

अमरीका की विदेश नीति मे यहाँ-वहाँ जो सूक्ष्म परिवर्तन हो रहे है, उस ओर हमारा ध्यान जाना आवश्यक है। वह देश पश्चिमी एशिया म अरब राष्ट्रो का खुलकर विरोध नही कर रहा है। यही नही, उसने वर्ल्ड बैंक पर वज़न लाकर अस्वान बाँध के निर्माण के लिए इजिप्ट को बहुत बडा कर्ज़ दिलवा दिया। रूस और अमरीका की सहायता से ताकत प्राप्त करनेवाला इजिप्ट ब्रिटेन के परम्परागत बन्दूक-सगीन से लैस प्रभाव को समाप्त कर देगा, यह भी अनिवार्य है। अमरीका ब्रिटिश प्रभाव की अत्यन्त सवेदनशील और नाज़ुक जगह पर चोट कर रहा है, यह लन्दन की जानकारी के बाहर नही है। ठीक उसी तरह, पश्चिमी जर्मनी को जिस ढग से अमरीका ने सिर पर चढाकर रखा है, फ्रास की जिस तरह न केवल उपेक्षा की वरन् जिस तरह अल्जीरिया और मोरक्को के झगडो मे उस देश ने राष्ट्र-वादियो को सहानुभूति प्रदान की (और दक्षिण वियतनाम के डिएम को इतना ताकतवर कर दिया कि फ्रास को हाल ही मे वहाँ से अपनी सेनाएँ हटानी पड रही हैं), उससे फ्रास अमरीका के विरुद्ध चौकन्ना हो गया।

ब्रिटेन तो चौकन्ना था ही। लन्दन के विरुद्ध बुल्गानिन-ख्रुश्चेव के भीषण उद्‌गारों के बावजूद, यह लन्दन ही है जो पन्द्रह अप्रैल को उन नेताओं का स्वागत करने जा रहा है। यह लन्दन ही है जो मलाया को इसलिए आज़ादी दे रहा है कि वहाँ के टीन और रबर के शक्तिशाली ब्रिटिश इजारेदार चीन से सीधा-सीधा [illegible] जो भारत के अमरीका-विरोध को [illegible]. यह लन्दन ही है जो आज भी [illegible] हा है, जो अमरीकी चंगुल से निकलना चाहते हैं। गम्भीरतापूर्वक अगर अखबार पढ़ें तो पता चलेगा कि ब्रिटेन पर चारों ओर से आक्रमण हो रहा है। पश्चिमी जर्मनी और जापान के व्यापार ने ब्रिटेन को मजबूर कर दिया कि उसके निर्यात का माल इतना सस्ता किया जाय कि वह अमरीका को मिलाकर इन देशों के माल की होड़ कर सके। माल को सस्ता करने के लिए वह पौण्ड की कीमत गिराता है। कीमत गिराने से घर में आयात महँगा हो जाता है, चीज़ें महँगी हो जाती हैं। माल को सस्ता करने के लिए वह मजदूरी घटाता है, घर में सहायताएँ कम करता है। इस दिशा में कार्य करने से घर में विरोध, आर्थिक संकट, और बनावटी तरीकों से पौण्ड का मूल्य बढ़ाने गिराने, बैंक रेट कम या ज़्यादा करने से सरकार की अर्थनीति पर सार्वजनिक विश्वास उठने लगता है।

मुद्रा की स्थिरता देश की आर्थिक स्थिरता का सूचक है। उसकी अस्थिरता के कारण, न केवल घर के लोगों का विश्वास जाता रहता है, वरन् विदेशी व्यापारी भी, जो उस देश से तिजारत करते हैं, सन्देह की दृष्टि से देखने लगते हैं। नतीजा यह होता है कि एक दुष्प्रभाव को उलटने के लिए, जो तरीके अपनाये जाते हैं उनसे दूसरे दुष्प्रभाव उत्पन्न होते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि ब्रिटेन की अर्थनीति बीमार है।

इसका पहला कारण है अन्य देशों द्वारा, खासकर अमरीका द्वारा, उसकी तिजारत पर हमले। इतने हमले कि 'इम्पीरियल प्रेफरेंस' के क्षेत्र में भी उन देशों के माल की स्पर्धा।

अब राजनीति में आइए। क्यों साहब, रूस द्वारा इतनी गालियाँ प्राप्त रहने पर भी, ब्रिटेन पूर्वी कम्यूनिस्ट देशों से न केवल ज़्यादा-से-ज़्यादा तिजारत कर रहा है, वरन् रूस और चीन से ज़्यादा से-ज़्यादा तिजारत करने का वह ख्वाहिशमन्द है। पूर्वी जर्मनी से लेकर चीन के प्रशान्त महासागर तट तक जो विशाल निर्माण-कार्य चल रहे हैं, उनके लिए ब्रिटेन मशीनें आदि-आदि महत्त्वपूर्ण चीज़ें दे सकता है। इतना विशाल बाज़ार! माल खपाने का इतना विशाल क्षेत्र!!

पुराना बनिया ब्रिटेन इतने विशाल क्षेत्र को हसरत की निगाह से देखता रह जाता है टुकुर टुकुर। अमरीका उसे तिजारत नहीं करने देता। यह मत भेजो, वह मत भेजो। यहाँ पर पाबन्दी, वहाँ पर बन्दिश। दूसरी ओर, अमरीका और उसके नये तिजारती साथी उसके परम्परागत बाज़ार को चौपट कर रहे हैं।

ब्रिटेन के लिए यह अप्राकृतिक स्थिति है। दुनिया में ब्रिटेन ही एक ऐसा देश है, जो सिर्फ़ अपने व्यापार पर ज़िन्दा है। उसके घर में रोटी तभी सिकेगी जब वह मशीनें बेचकर प्राप्त हुए मुनाफ़े से बाज़ार में नोन तेल-दाल खरीदने जायेगा। ऐसी स्थिति न अमरीका की है, न फ्रांस की। उनके यहाँ खूब खेती होती है।

ब्रिटेन बहुत ईर्ष्या से पश्चिमी जर्मनी को देख रहा है। अमरीका और पश्चिमी जर्मनी का इश्क ब्रिटेन और फ्रांस से सहा नहीं जाता है।

अब कुल मिलाकर दुनिया का नक्शा देखिए। ब्रिटेन भी इस नक्शे को देखता है। उसके कूटनीतिक क्षेत्रों में इस बात का आम जिक्र है कि वाशिंगटन-बॉन ऐक्सिस तभी पलटा जा सकता है, जब लन्दन-मास्को ऐक्सिस कायम हो। लेकिन क्या मास्को पर विश्वास किया जाय? ब्रिटेन के सामने यह सबसे बड़ा सवाल है। दूसरा प्रश्न है, इसको कैसे और कब बनाया जाय।

इसकी शुरुआत की गयी है आर्थिक और सांस्कृतिक प्रतिनिधि-मण्डलों के आदान-प्रदान से, अमरीका द्वारा निषिद्ध समझे गये माल की खुली और ज्यादा तिजारत से, और निषिद्ध समझे गये माल की गुप्त आमदरफ्त की बढ़ती से। ब्रिटेन ये कदम तो बढ़ा ही चुका है। सबसे बड़ा कदम बुलगानिन-ख्रुश्चेव की अगली भेंट है। अमरीका के सम्बन्ध में उसकी कल्पना नहीं की जा सकती।

मतलब यह कि अगर ब्रिटेन को यह विश्वास हो जाये कि रूस उसके परम्परागत व्यापारिक हितों पर प्रहार नहीं करेगा, तो ब्रिटेन रूस से किसी-न-किसी किस्म की दोस्ती या दोस्ती का बहाना जरूर करेगा।

असल दिक्कत भीतरी है। पुराने पूर्वाग्रह, भय और आशंका पर आधारित विचारधारा ब्रिटेन को एक ओर ले जाती है जहाँ रूस-चीन से दुश्मनी ही-दुश्मनी है, किन्तु अपनी जिन्दगी के वास्तविक तथ्य और उनके तकाजे उसे रूस चीन की ओर ढकेलते हैं। इन दोनों के बीच में ब्रिटेन का मन कपटग्रस्त है।

लन्दन-मास्को ऐक्सिस केवल मेरी कल्पना नहीं है इस सम्भावना का जिक्र लन्दन के उत्तरदायी क्षेत्रों में हो चुका है। दुनिया के इतिहास का अगला अध्याय यह है कि लन्दन की कतिपय खतरनाक प्रवृत्तियों से घबराकर स्वयं अमरीका, लन्दन मास्को ऐक्सिस बनाये जाने की हर कोशिश को नाकाम करेगा। जितनी अधिक मासूम मुसकान से ब्रिटेन मास्को की तरफ देखेगा उतनी अधिक ताकत से न केवल अमरीका ब्रिटेन को लथाड़ेगा, वरन अधिक सस्मित होकर मास्को से वह आँखें लड़ायेगा।!

आज ये बातें केवल कल्पना-सी मालूम हो रही हैं। किन्तु इसके संकेत अभी से मिल रहे हैं।

क्या कारण है कि प्रदर्शनीय खुशी जाहिर करते हुए अमरीका ने रूस की यह बात स्वीकार कर ली कि वाशिंगटन और मास्को के बीच अधिक-से-अधिक सांस्कृतिक, आर्थिक और वैज्ञानिक प्रतिनिधिमण्डल आते जाते रहें! कल तक जहाँ रूस की छाया से डर लगता था, वहाँ आज रूस के विरुद्ध खूब भड़कायी गयी अपनी जनता के सामने, आइजनहॉवर इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लेते हैं और साथ ही खुशी जाहिर करते हैं। दूसरे, रूसी सरहद के भीतर अमरीकी बैलूनों के घुसने के विरुद्ध रूसी शिकायत पर अमरीका बैलून भेजना बन्द कर देता है। अमरीकी अखबारों में भी रूस के विरुद्ध जैसा प्रचार होता आया है, उसमें कुछ न-कुछ तो कमी हुई है।

असल में, ब्रिटेन-अमरीका की यह कवायद कुछ महत्त्वपूर्ण तथ्यों के स्वीकार का फल ही है। एक यह कि विश्वयुद्ध से सभी देश खफा होंगे, और जिस उद्देश्य को पूरा करने के लिए युद्ध किया जायेगा, वह युद्ध से फलीभूत नहीं होगा, वरन्

नष्ट होगा। दूसरे, ऐसी स्थिति मे किसी-न-किसी प्रकार का सामजस्य करना ही पडेगा, चाहे हँसकर कीजिए चाहे रोकर। हायड्रोजन-बम के युग मे अपने अस्तित्व की रक्षा का नियम सह-अस्तित्व का विकास है।।

किन्तु (यह बहुत बडा 'किन्तु' है) स्वय के स्वार्थ, भय और आशका की शक्ति सघर्ष की ओर ले जाती है। सघर्ष अच्छा है, बशर्ते कि स्वय की स्थिति दृढ हो। हायड्रोजन-बम के युग मे, अपनी स्थिति की दृढता की सबसे अधिक आवश्यकता है। यदि सघर्ष अपनी स्थिति को कमजोर करे तो विश्वविजयी सस्मित सौन्दर्य-माधुर्य ही सबसे अच्छी कूटनीति है।

साराश, लन्दन और वाशिगटन की नीतियो मे सूक्ष्म परिवर्तन हो रहा है। *यह परिवर्तन इस स्वीकृति का द्योतक है कि उनकी नीतियाँ यथार्थवादी नही है।* *यथार्थवादी नीति जितनी अधिक पक्की की जायेगी, उतनी ज्यादा शान्ति और* विश्व मे नया शक्ति-सन्तुलन उत्पन्न होगा। नये शक्ति-सन्तुलन के सम्बन्ध मे अभी से लन्दन मे अटकलें लगायी जा रही हैं। और उस शक्ति-सन्तुलन को प्राप्त करने के लिए फूँक फूँककर, छीक छीककर, इधर-उधर आँखें लडाकर कदम बढाये जा रहे हैं। जिस तरह शोरगुल मचानेवाली लडाकू औरतें, हाथ मटका-मटकाकर लडती हैं, किन्तु आवेश समाप्ति के बाद, फिर से घर-गिरस्ती मे लग जाती हैं, क्योकि वे एक-दूसरे का खून पी नही सकती (स्थिति ही ऐसी है), उसी तरह ये बडे राष्ट्र कभी नल के पानी के ऊपर झगडें, एक-दूसरे की हद मे कचरा फेकने के टण्टे, आदि-आदि दिलचस्प मसलो पर भले ही लड लें, किन्तु युद्ध नही कर सकते और ज्यादा दिनो तक ठण्डी लडाई भी चालू नही रख सकते। कारण यह है कि एटमिक युग के पूर्व तक ठण्डी लडाई युद्ध म बदली जा सकती थी, किन्तु जब हम जानते ही हैं कि कुश्ती नही हो सकती, तब हम कब तक जबानदराजी करेंगे?

आज के युग मे नये शक्ति-सन्तुलन की सूक्ष्म हलचलें शुरू हो गयी हैं। उनके विरुद्ध बहुत बडी-बडी हलचलें हैं। किन्तु सूक्ष्म लहरो का बडा भविष्य है, जबकि बडी लहरो का क्रोध नपुसक है। आज के युग की सबसे बडी विलक्षणता यही है।

-[सारथी, 26 फरवरी 1956, मे 'यौगन्धरायण' छद्मनाम से प्रकाशित]

पश्चिमी एशिया का चकमक पत्थर

किसी को भी इस बात की आशा न थी कि सयुक्त राष्ट्र सघ के सेक्रेटरी जनरल हैमरशोल्ड का मिशन पश्चिमी एशिया में इस ढग से सफल हो जायेगा। हैमरशोल्ड की सलाह इजिप्ट और इजरायल दोनो देशो ने इतनी तत्परतापूर्वक स्वीकार कर ली मानो उसके लिए वे तैयार बैठे हो। ऐसा क्यो हुआ? इसका कारण यह हो सकता है कि दोनो देश अन्तर्राष्ट्रीय पेचीदगी मे इस तरह जकडे जाना पसन्द न

करेंगे कि उनके छुटकारे के लिए बड़े राष्ट्रों को आना पड़े, क्योंकि वैसी स्थिति मे सहायता के लिए आये हुए बड़े राष्ट्र उनके सिर पर चढ़कर बैठेंगे। इसका दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि अरब-इजरायल का झगड़ा—जो आजकल चालू है—उस पर काफी बनावटी रंग है। हम इन्ही कॉलमो मे पहले लिख चुके हैं कि इस झगड़े से बगदाद-सन्धि के इरादो को और उसके भीतरी संगठन को चोट पहुँचती है। ज्यो-ज्यो इजिप्ट इजरायल के चकमक के पत्थर से चिनगारी निकलती है, त्यो-त्यो ईराक और जोर्डन इजिप्ट के बगल मे घुसते हैं। अमरीका बिलकुल यह न चाहता था कि वह दोनो मे से किसी एक देश का या ब्रिटेन का पक्ष ले। इसीलिए इस क्षेत्र मे शान्ति की स्थापना का कार्य उसने संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा करवाना चाहा। और अब रूस ने अमरीका के इस प्रस्ताव का, अपने ढंग से समर्थन करके पश्चिमी एशिया की शान्ति मे अपनी गहरी दिलचस्पी की सूचना दी।

असल मे, इस क्षेत्र मे रूसी प्रभाव का अस्तित्व स्वीकार करना ब्रिटेन और अमरीका दोनो के लिए बहुत कठिन जा रहा है। लेकिन बड़ी कष्टप्रद वास्तविकता यह है कि इस क्षेत्र मे एंग्लो-अमरीकी प्रभाव का एकाधिकार समाप्त हो गया है। अब रूस न केवल हथियार दे रहा है, वरन् औद्योगिक मशीनें और आणविक शक्ति भी प्रदान कर रहा है—जैसा कि उसने इजिप्ट में किया। यदि इस क्षेत्र में रूसी प्रभाव और दिलचस्पी का अस्तित्व घोषित रूप मे स्वीकार कर लिया गया, तो पश्चिमी एशिया मे एक नयी परिस्थिति पैदा हो जायेगी। वह परिस्थिति है—रूसी शक्ति अरब राष्ट्रवाद की उग्रता को सशस्त्र शक्ति से और लैस करके एंग्लो-अमरीकी स्वार्थों मे सख्त दस्तन्दाजी कर सकती है। एक बार रूसी प्रभाव स्वीकार किये जाने के बाद, इस क्षेत्र म रूसी कूटनीति, अरब औद्योगिक और सैनिक उन्नति के लक्ष्य को पूरा करने के लिए, इस क्षेत्र में स्थित तेल के कुँओ पर ब्रिटेन-अमरीका के अधिकार के विरुद्ध अरब राष्ट्रवाद को छू कर सकती है। आज नही तो कल, पश्चिम एशिया मे यह स्थिति पैदा होनेवाली है।

स्तालिन के जमाने म, ईरान में ट्यूडेह पार्टी, जिस पर कम्यूनिस्ट प्रभाव था, कटवा दी गयी। डाक्टर मोसद्दिक की पहली गलती ट्यूडेह पार्टी को कमजोर करवाना, दूसरी गलती ब्रिटेन विरोधी इस्लामवादी मौलाना कशानी के खिलाफ मोर्चा लेना है। ब्रिटेन-अमरीका के षड्यन्त्रो द्वारा कमजोर और सब तरफ स अकेले पड़ गये मोसद्दिक की गिरफ्तारी और राजनैतिक मृत्यु स अगर किन्ही देशो ने सबक लिया तो वह रूस और इजिप्ट ने। इजिप्ट ने सबक यह लिया कि अगर मोसद्दिक हिम्मत करके रूस से सहायता और मैत्री के बन्धन मे बँध जाता, तो रूस स्वयं ईरान मे ब्रिटेन और अमरीका के षड्यन्त्रो को नाकाम करने के लिए वह सारा तेल खरीद लेता, जो एंग्लो-ईरानी तेल कम्पनी द्वारा छोड़ दिया गया था, और जिसे खरीदनेवाला कोई इसलिए न मिल पाता था कि ग्राहक देश एंग्लो-अमरीकी प्रभाव मे थे और चाहते हुए भी खरीद नही सकते थे। मोसद्दिक ने एक ओर जल्दबाजी की, दूसरी ओर, आनेवाली कठिनाइयो के हल का प्रबन्ध न किया, जिसमे रूस से मैत्री भी शामिल है। रूस ने भी यह सबक लिया कि पश्चिमी एशिया मे वह तभी कामयाब हो सकता है जब एंग्लो-अमरीका विरोधी शासको के हृदयो को वह इस ढंग से जीते कि जिससे उनके मन मे उसके प्रति कोई दुर्भावना

या विकार न रहे। डाक्टर मोसद्दिक ने जिस ढंग से रूस पर अविश्वास किया, वैसा अविश्वास अब पश्चिमी एशिया में कोई भी देश उस पर न करे, इसका एहतियात बरतने की रूस ने भरसक कोशिश की। कर्नल नासिर को जब इस (रूस) का पूरा भरोसा हो गया, तब उसने ब्रिटेन-अमरीका से पटेबाज़ी शुरू कर दी। और इस नये घटनाक्रम से पश्चिमी एशिया के तटस्थ देशों में पहल-कदमी करने की ताकत पैदा हो गयी।

इज़रायल के विरुद्ध दुर्भावना एक बहाना भी थी, जिसकी आड़ में कर्नल नासिर ब्रिटेन को शह दे रहा था। यद्यपि फिलहाल, इजिप्ट और इज़रायल में शान्ति का वातावरण बनाये रखने का मन्त्र जपा जा रहा है, किन्तु, दूसरी ओर, इजिप्ट ने साऊदी अरब से मिलकर यमन के साथ फौजी सन्धि भी कर ली।

इस सन्धि का ढोल नहीं पीटा गया। इस सन्धि की संगीन इज़रायल के विरुद्ध नहीं, ब्रिटेन के खिलाफ है। दक्षिणी अरबस्तान का समुद्री किनारा, जिसका प्रमुख बन्दरगाह अदन है, अंग्रेज़ों के ताबे में है। इजिप्ट, साऊदी अरब, सीरिया, लेबनान और यमन का एकमात्र लक्ष्य यह है कि वे इस क्षेत्र में ब्रिटेन के उपनिवेश-वादी स्वार्थों को खत्म कर दें। इन देशों को रूस की सक्रिय सहायता और उनमें व्यर्थ की जल्दबाज़ी के अभाव से, ये देश एक लम्बे अरसे तक ब्रिटेन के विरोध में टिक सकेंगे। तब तक वे कम्यूनिस्ट देशों द्वारा दी गयी आर्थिक और औद्योगिक सहायता से अपने देशों में औद्योगिक विकास की नींव डालकर आत्मनिर्भर बनने की कोशिश कर सकते हैं। ये देश जितनी तेज़ी से अपनी आर्थिक पुनर्रचना कर सकेंगे, उतनी ही तेज़ी से उनका प्रभाव बगदाद सन्धिवाले देशों पर पड़ेगा। स्वयं अमरीकी तजुर्बा यह है कि तुर्किस्तान और ईरान का खजाना बिलकुल खाली है, रहा आया है, और रहेगा। जितने डालर सहायता के रूप में दिये गये या दिये जा रहे हैं, वे सब भ्रष्ट शक्तिशाली ज़मींदारों के पेट में चले जाते हैं। गरीब जनता की हालत सुधरने के बजाय और भी खराब होती जाती है। जनता में गहरे असन्तोष और ज़मींदारों में फैले हुए देश विरोधी भ्रष्टाचार के विरुद्ध न मालूम कितने ही लेख, न्यूयार्क टाइम्स और टाइम में प्रकाशित हुए हैं। मज़ा यह है कि एंग्लो-अमरीकी सहायता ठीक इन्हीं वर्गों को लगातार दी जा रही है। लेकिन ऐसा कब तक जारी रहेगा? यह वह प्रश्न है, जिसका उत्तर अभी भावी इतिहास से प्राप्त होना है। किन्तु यह सही है कि एक-न-एक दिन इस प्रक्रिया का चरम-बिन्दु आयेगा, और वह चरम-बिन्दु एंग्लो-अमरीकी स्वार्थों का सफाया कर देगा।

इस पूरे स्थिति-दृश्य और काल-दृश्य में, ब्रिटेन, अमरीका और रूस की पैंतरेबाज़ी का अध्ययन किया जाना चाहिए। पहली बात यह है कि रूस ने इस क्षेत्र में स्वयं होकर प्रवेश नहीं किया, वरन् इजिप्ट की प्रेरणा और इजाज़त से अन्दर आया है। इसलिए ब्रिटेन से मैत्री के मोह में वह उन देशों का त्याग नहीं [illegible]

[illegible] रूस के हटने का सवाल ही नहीं उठता। अधिक-से-अधिक यह हो सकता है कि 'विस्फोटक' स्थितिवाले क्षेत्रों के मामले संयुक्त राष्ट्र संघ में या उससे बाहर तै किये जायँ, रूस से मिलकर। अब एंग्लो-अमरीकियों के सामने स्थिति ही ऐसी है कि वे रूस को छोड़कर पश्चिमी एशिया में कोई मामला तै

करेंगे कि उनके छुटकारे के लिए बड़े राष्ट्रों का आना पड़े, क्योंकि वैसी स्थिति में सहायता के लिए आये हुए बड़े राष्ट्र उनके सिर पर चढ़कर बैठेंगे। इसका दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि अरब इज़रायल का झगड़ा—जो आजकल चालू है—उस पर काफ़ी बनावटी रंग है। हम इन्हीं कॉलमों में पहले लिख चुके हैं कि इस झगड़े से बगदाद सन्धि के इरादों की और उसके भीतरी संगठन को चोट पहुँचती है। ज्यों-ज्यों इजिप्ट इज़रायल के चकमक के पत्थर में चिनगारी निकलती है, त्यों-त्यों ईराक और जोर्डन इजिप्ट के बगल में घुसते हैं। अमरीका बिलकुल यह न चाहता था कि वह दोनों में से किसी एक देश का या ब्रिटेन का पक्ष ले। इसीलिए इस क्षेत्र में शान्ति की स्थापना का कार्य उसने संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा करवाना चाहा। और अब रूस ने अमरीका के इस प्रस्ताव का, अपने ढंग से समर्थन करके पश्चिमी एशिया की शान्ति में अपनी गहरी दिलचस्पी की सूचना दी।

असल में, इस क्षेत्र में रूसी प्रभाव का अस्तित्व स्वीकार करना ब्रिटेन और अमरीका दोनों के लिए बहुत कठिन जा रहा है। लेकिन बड़ी कष्टप्रद वास्तविकता यह है कि इस क्षेत्र में एंग्लो-अमरीकी प्रभाव का एकाधिकार समाप्त हो गया है। अब रूस न केवल हथियार दे रहा है, वरन् औद्योगिक मशीनें और आणविक शक्ति भी प्रदान कर रहा है—जैसा कि उसने इजिप्ट में किया। यदि इस क्षेत्र में रूसी प्रभाव और दिलचस्पी का अस्तित्व घोषित रूप में स्वीकार कर लिया गया, तो पश्चिमी एशिया में एक नयी परिस्थिति पैदा हो जायेगी। वह परिस्थिति है—रूसी शक्ति अरब राष्ट्रवाद की उग्रता को सशस्त्र शक्ति में और लैस करके एंग्लो-अमरीकी स्वार्थों में सख्त दस्तन्दाज़ी कर सकती है। एक बार रूसी प्रभाव स्वीकार किये जाने के बाद इस क्षेत्र में रूसी कूटनीति, अरब औद्योगिक और सैनिक उन्नति के लक्ष्य को पूरा करने के लिए, इस क्षेत्र में स्थित तेल के कुँओं पर ब्रिटेन-अमरीका के अधिकार के विरुद्ध अरब राष्ट्रवाद को छू कर सकती है। आज नहीं तो कल, पश्चिम एशिया में यह स्थिति पैदा होनेवाली है।

स्तालिन के ज़माने में, ईरान में ट्यूडेट पार्टी, जिस पर कम्यूनिस्ट प्रभाव था, घटवा दी गयी। डाक्टर मोसद्दिक की पहली गलती ट्यूडेह पार्टी को कमज़ोर करवाना, दूसरी गलती ब्रिटेन विरोधी इस्लामवादी मौलाना भशानी के खिलाफ़ मोर्चा लेना है। ब्रिटेन-अमरीका के षड्यन्त्रों द्वारा कमज़ोर और सब तरफ़ से अकेले पड़ गये मोसद्दिक की गिरफ़्तारी और राजनैतिक मृत्यु से अगर किन्हीं देशों ने सबक लिया तो वह रूस और इजिप्ट न। इजिप्ट ने सबक यह लिया कि अगर मोसद्दिक हिम्मत करके रूस से सहायता और मैत्री के बन्धन में बँध जाता तो रूस स्वयं ईरान में ब्रिटेन और अमरीका के षड्यन्त्रों को नाकाम करने के लिए वह सारा तेल खरीद लेता जो एंग्लो-ईरानी तेल कम्पनी द्वारा छोड़ दिया गया था, और जिसे खरीदनेवाला कोई इसलिए न मिल पाता था कि ग्राहक देश एंग्लो-अमरीकी प्रभाव में थे और चाहते हुए भी खरीद नहीं सकते थे। मोसद्दिक ने एक ओर जल्दबाज़ी की, दूसरी ओर, आनेवाली कठिनाइयों के हल का प्रबन्ध न किया, जिसमें रूस से मैत्री भी शामिल है। रूस ने भी यह सबक लिया कि पश्चिमी एशिया में वह तभी कामयाब हो सकता है जब एंग्लो-अमरीका विरोधी शासकों के हृदयों को वह इस ढंग से जीते कि जिससे उनके मन में उसके प्रति कोई दुर्भावना

या विकार न रहे। डाक्टर मोसद्दिक़ ने जिस ढंग से रूस पर अविश्वास किया, वैसा अविश्वास अब पश्चिमी एशिया में कोई भी देश उस पर न करे, इसका एहतियात बरतने की रूस ने भरसक कोशिश की। कर्नल नासिर को जब इस (रूस) का पूरा भरोसा हो गया, तब उसने ब्रिटेन-अमरीका से पटेबाजी शुरू कर दी। और इस नये घटनाक्रम से पश्चिमी एशिया के तटस्थ देशों में पहल-कदमी करने की ताक़त पैदा हो गयी।

इज़रायल के विरुद्ध दुर्भावना एक बहाना भी थी, जिसकी आड़ में कर्नल नासिर ब्रिटेन को शह दे रहा था। यद्यपि फ़िलहाल, इजिप्ट और इज़रायल में शान्ति का वातावरण बनाये रखने का मन्त्र जपा जा रहा है, किन्तु, दूसरी ओर, इजिप्ट ने साऊदी अरब से मिलकर यमन के साथ फ़ौजी सन्धि भी कर ली।

इस सन्धि का ढोल नहीं पीटा गया। इस सन्धि की संगीन इज़रायल के विरुद्ध नहीं, ब्रिटेन के ख़िलाफ़ है। दक्षिणी अरबस्तान का समुद्री किनारा, जिसका प्रमुख बन्दरगाह अदन है, अंग्रेज़ों के ताबे में है। इजिप्ट, साऊदी अरब, सीरिया, लेबनान और यमन का एकमात्र लक्ष्य यह है कि वे इस क्षेत्र में ब्रिटेन के उपनिवेशवादी स्वार्थों को ख़त्म कर दें। इन देशों को रूस की सक्रिय सहायता और उनमें व्यर्थ की जल्दबाज़ी के अभाव से, ये देश एक लम्बे अरसे तक ब्रिटेन के विरोध में टिक सकेंगे। तब तक वे कम्यूनिस्ट देशों द्वारा दी गयी आर्थिक और औद्योगिक सहायता से अपने देशों में औद्योगिक विकास की नींव डालकर आत्मनिर्भर बनने की कोशिश कर सकते हैं। ये देश जितनी तेज़ी से अपनी आर्थिक पुनर्रचना कर सकेंगे, उतनी ही तेज़ी से उनका प्रभाव बगदाद सन्धिवाले देशों पर पड़ेगा। स्वयं अमरीकी तजुर्बा यह है कि तुर्किस्तान और ईरान का खज़ाना बिलकुल खाली है, रहा आया है, और रहेगा। जितने डालर सहायता के रूप में दिये गये या दिये जा रहे हैं, वे सब भ्रष्ट शक्तिशाली ज़मींदारों के पेट में चले जाते हैं। ग़रीब जनता की हालत सुधरने के बजाय और भी ख़राब होती जाती है। जनता में गहरे असन्तोष और ज़मींदारों में फैले हुए देश-विरोधी भ्रष्टाचार के विरुद्ध न मालूम कितने ही लेख, [illegible]

एंग्लो-अमरीकी स [illegible]

कब तक जारी रहे [illegible] उत्तर अभी भावी इतिहास से प्राप्त होता है। [illegible]

[illegible] -बिन्दु

[illegible] में, ब्रिटेन, अमरीका और रूस की पैंतरेबाज़ी का अध्ययन किया जाना चाहिए। पहली बात यह है कि रूस ने इस क्षेत्र में स्वयं होकर प्रवेश नहीं किया, वरन् इजिप्ट की प्रेरणा और इजाज़त से अन्दर आया है। इसलिए ब्रिटेन से मैत्री के मोह में वह उन देशों का त्याग नहीं कर सकता, जिनकी आर्थिक-औद्योगिक उन्नति की, एक तरह से, उसने ज़िम्मेदारी ले ली है। इसलिए लन्दन में बुलगानिन-ख्रुश्चेव-ईडेन-चर्चिल बातचीत में पश्चिमी एशिया में रूस के हटने का सवाल ही नहीं उठता। अधिक-से-अधिक यह हो सकता है कि 'विस्फोटक' स्थितिवाले क्षेत्रों के मामले संयुक्त राष्ट्र संघ में या उनसे बाहर तै किये जायें, रूस से मिलकर। अब एंग्लो-अमरीकियों के सामने स्थिति ही ऐसी है कि वे रूस को छोड़कर पश्चिमी एशिया में कोई मामला तै

नही कर सकते। स्थिति के स्वीकार के लिए लन्दन और वाशिंगटन मे अभी से आवाज उठ रही है। एक बार पश्चिमी एशिया में रूस के बहाने इजिप्ट और इजिप्ट के बहाने साऊदी अरब और यमन, आदि देशो के पैर जमने पर, यह निश्चित-सा है कि दो प्रकार की प्रवृत्तियाँ एक साथ काम करने लगेंगी। एक, रूस बगदाद-सन्धिवाले देशो से शान्ति और मैत्री के नाम पर हाथ मिलाने की कोशिश करने लगेगा। यदि ब्रिटेन से रूस की थोडी-बहुत दोस्ती हो गयी, तो यह काम आसान हो जायेगा। दूसरी ओर, साऊदी-अरब और यमन, आदि देश अरब भूमि पर मौजूदा ब्रिटिश उपनिवेशो को अपने अधिकार में लेने की भरसक कोशिश करेंगे। इस काम मे तेजी आ जायेगी।

इतिहास जब इस ढग से करवट बदलने लगेगा तो पश्चिमी एशिया का शक्ति-सन्तुलन, नि सन्देह, तटस्थ देशो के अधिकाधिक पक्ष मे जायेगा, और इजिप्ट, अपनी प्राचीन कीर्ति के रास्ते पर चल पडेगा।

[सारथी, 29 अप्रैल 1956, मे 'यौगन्धरायण' छद्मनाम से प्रकाशित]

नाटो के नाटक का नया दौर

नाटो के देशो ने तीन बुद्धिमानो को खूब पैदा किया ! ! प्रस्तावित रूप से, ये 'तीन बुद्धिमान' हैं कैनेडा, नॉर्वे और इटली के विदेशमन्त्री।

कहानी कुछ इस ढग की है।

अमरीका को यह चिन्ता हो गयी कि नयी मैत्री की मुस्कानो के रूसी आन्दोलन से नाटो का सगठन ढीला पड रहा है। कैनडा के विदेशमन्त्री लेस्टर पीअर्सन ने अमरीका की फिक्र भाँपकर एक वक्तव्य दे डाला जिसमे उन्होंने कहा कि यह नाटो की दृढ एकता की परीक्षा का समय है। फ्रास के स्कूलमास्टर प्रधानमन्त्री गय माले को मजाक सूझा तो उसने निवेदन किया कि नाटो मे आर्थिक कल्याण का

... उपद्रुत अनुभव

...योजना का कागज

इस मजाक की पार्श्वभूमि यह है। नाटो सगठन को पहला जबर्दस्त धक्का रूस ने नही, फ्रास ने दिया। उत्तरी अफ्रीका की जनता के राष्ट्रवादी आन्दोलनो को कुचलने के लिए फ्रास ने नाटो की अपनी कई डिवीजनें यूरोप से हटाकर अल्जीरिया और मोरक्को मे ठूँस दी। उधर हॉलैण्ड और बेलजियम की पार्लमिण्टो ने नाटो के लिए नयी फौजें बनाने के लिए अनिवार्य फौजी भरती के प्रस्ताव ठुकरा दिये। पश्चिम जर्मन पार्लमिण्ट ने पेरिस सन्धि के अनुसार अनिवार्य फौजी भरती की प्रस्तावित सख्या को न केवल घटा दिया, वरन् ये प्रस्तावित जर्मन फौजें अभी तक सिर्फ कागज पर ही बनाये रखीं। पश्चिम जर्मनी मे यह बहस

बहुत ज़ोरों पर है कि अनिवार्य भरती इतनी बड़ी संख्या में की जाये या नहीं। पश्चिमी जर्मनी के प्रधानमन्त्री, श्री एडिनावर की लोकप्रियता इतनी घट रही है कि उनमें इतना साहस नहीं है कि वे इस मसले को पार्लमिण्ट पर थोपें। और तो और, नाटो के खर्च का वह हिस्सा जिसे पश्चिमी जर्मन देनेवाला था अब कौन देगा, यह भी एक प्रश्न है, क्योंकि पश्चिमी जर्मन पार्लमिण्ट ने नाटो के फौजी खर्च में हिस्सेदारी करने से इनकार कर दिया। इस प्रकार, नाटो को कई क्षेत्रों में और कई देशों से धक्का लगा। स्पष्ट है कि इसका मूल कारण इन देशों की जनता में नाटो के प्रति अविश्वास ही है। इसके फलस्वरूप नाटो के फौजी खर्च और सैनिक शक्ति कायम रखने का बोझ यूरोप के सिर्फ एक देश—इग्लैण्ड—और अमरीका के दो देश—संयुक्त राज्य तथा कैनेडा—पर गिरा। स्वाभाविक ही था कि ये देश चिल्ल-पों मचायें तथा अन्य यूरोपीय देशों को नाटो टिकाये रखने की नसीहत दें, दबाव लायें और प्रचार करें।

फ्रांस के स्कूल-मास्टर प्रधानमन्त्री को संयुक्त राज्य अमरीका, ब्रिटेन और कैनेडा की इस मनोवैज्ञानिक राजनैतिक खीझ का मज़ाक करने की सूझी, तो उसने कहा कि रूस से आर्थिक प्रतिस्पर्धा करने के लिए यह आवश्यक है कि नाटो के अन्तर्गत एक विशाल आर्थिक संगठन कायम किया जाये, जो सम्मिलित देशों को आर्थिक सहायता दे।

'भिक्षां देहि' का एकमात्र व्रत रखनेवाले चालाक ब्राह्मण का रोल अदा करते हुए, फ्रांस ने नाटो की परिस्थिति ही बदल दी। इस प्रस्ताव को सुनकर ब्रिटेन को लगा, यार, यह तो बड़ी अच्छी बात है, हमको अब तक क्यों नहीं सूझा!! ब्रिटेन की मौन सम्मति पाकर फ्रांस सन्तोष का रस प्राप्त कर ही रहा था कि, मूलत, नाटो के देशों के कान उमेठने के लिए और दबाव का प्रयोग करने के लिए बुलवायी गयी ग्यारह देशों की नाटो सभा में डलेस ने, आर्थिक सहायता-योजना के नाम पर, अपनी जेब में से कई साँप बिच्छू और केंकड़े टेबिल पर धर दिये।

फ्रांस ने आर्थिक सहायता का प्रश्न तो केवल इसलिए रखा था कि नाटो सभा में राजनैतिक दबाव की प्रक्रिया में कान उमेठे जाने के आसन्न संकट की बाज़ी उलट दी जाये। और वह उलट भी दी गयी। मामूली हिदायतों के अलावा, जारी किये गये संयुक्त वक्तव्य में कुछ भी नहीं है। आर्थिक सहायता का प्रश्न उठाकर फ्रांस ने अन्य सभी सवाल गोल करवा दिये। लेकिन उसे क्या मालूम था कि डलेस साहब दिये गये सुझाव इतने गम्भीरतापूर्वक लेंगे। नहीं तो उसे क्या पड़ी थी!!

नाटो सभा की टेबिल पर जब डलेस ने आर्थिक सहायता-योजना के नाम पर साँप-बिच्छू और केंकड़े सामने रखे, तो ब्रिटेन और फ्रांस भौंचक रह गये। तो डलेस साहब भी मज़ाक कर सकते हैं!! लेकिन ज्यों ज्यों वे डलेस की मुख-मुद्रा को ध्यानपूर्वक देखने लगे, तो उनके होश फ़ाख्ता हो गये।

डलेस का ढोल यह था कि फ्रांस और ब्रिटेन को सहायता तब दी जाये जब वे, यानी फ्रांस अल्जीरिया, ट्यूनीसिया, मोरक्को, आदि उत्तर-अफ्रीकी देशों को और ब्रिटेन अपने कामनवेल्थ देशों को, (नाटो के फ़ौजी संगठन में न सही तो कम-से-कम) नाटो के आर्थिक संगठन से किसी-न किसी तरह जोड़ दें। अब फ्रांस और ब्रिटेन की ज़बान सूख गयी। यह डलेस तो बड़ा पाजी निकला। यह आर्थिक सहायता है या कोई भयंकर जाल!! फ्रांस हरगिज़ नाटो में अपने उत्तर-अफ्रीकी

देशो को आने नही देगा। उसके वे अपने विशेष प्रभाव-क्षेत्र हैं। वहाँ उसकी विशेष अर्थनीति का राज है। फ्रास के स्कूल-मास्टर ने उत्तर-अफ्रीकी देशो की ओर देखा तो पाया कि ट्यूनीसिया का प्रधानमन्त्री बोरजीबा डलेस से आँखे लडा रहा है। अमरीका उत्तर-अफ्रीकी देशो के अरब राष्ट्रवादी आन्दोलन से सहानुभूति तो रखता ही था। अब डलेस ने नाटो के आर्थिक सगठन मे नये देशो की भरती के सुझाव द्वारा उत्तर-अफ्रीकी अरब देशो को खुला निमन्त्रण दिया कि वे यदि आर्थिक उन्नति करना चाहते हैं तो अमरीका के साथ चलें। फ्रास ने देखा कि अमरीका उत्तर-अफ्रीकी देशो को अपने प्रभाव मे तो लाना ही चाहता है, नाटो के सगठन का विस्तार करके वह पश्चिमी भूमध्यसागर को अमरीकी झील बनाना चाहता है। सब लोगो पर यह साफ जाहिर है कि अमरीका स्पेन को नाटो सगठन मे एक-न-एक दिन शामिल करके रहेगा। किन्तु वह उत्तर-अफ्रीकी अरब राष्ट्रो को नाटो मे शामिल होने का खुला सुझाव देगा, यह फ्रास की कल्पना के बाहर की बात थी। फ्रास पर इतना बडा बलात्कार ! ! ब्रिटेन बेचारा हतप्रभ था, किन्तु उसके पास तगडा आर्ग्यूमेण्ट था। भई, ये कामनवेल्थ आजाद देशो का समुदाय है। उन पर हम कैसे जोर-जबर्दस्ती करें ! ! जरा बताओ तो ! !

ब्रिटेन ने कोट के बटन लगाकर, यू-डी-कोलोन की सुगन्ध मे बसे रूमाल से मुँह पोछकर, पास बैठे फ्रास के घुटने को छूकर इशारा किया कि घबराओ मत, डलेस साहब अपने आदमी हैं, उन्हे जल्दी बेवकूफ बनाया जा सकता है। फ्रास ने आशका से ग्रस्त चेहरे पर सन्दिग्ध खुशी का इजहार करके डलेस साहब की तरफ देखा तो पाया कि सकट आने को अभी देर है, इस बीच बहुत किया जा सकता है। ब्रिटेन ने डलेस साहब से कहा कि यदि इतनी विशाल और विस्तारपूर्ण आर्थिक सहायता देना है, तो उसमे विशेष कार्यनीति होना जरूरी है। आखिर अमरीकी पैसा भी अपना पैसा है। वह व्यर्थ फुँक जाये इसे हम कैसे बरदाश्त करें ! ! फ्रास की तरफ देखकर ब्रिटेन ने कहा, 'क्या भाई, ठीक है न ! !'

स्कूल-मास्टर प्रधानमन्त्री ने फटी जेब मे हाथ डालकर ब्रिटेन की हाँ मे हाँ मिलायी।

ब्रिटेन ने अपनी पुरानी नीति इख्तियार की, या फ्रास के दिमाग की यह उपज है, कुछ कहा नही जा सकता। हुआ यह कि डलेस साहब को गम्भीरतापूर्वक यह सुझाव दिया गया कि रूस की विस्तारपूर्ण आर्थिक प्रतिस्पर्धा और व्यापारिक आक्रमण को रोकने का लक्ष्य पूरा करना निहायत जरूरी है। वह किस ढग से रोका जा सकता है, इसका निर्णय सभा मे बैठे बैठे इतनी जल्दी कैसे हो सकता है? 'क्यो भई, फ्रास !' जवाब मिला, 'हाँ भई, ब्रिटेन !' फ्रास और ब्रिटेन की एक राय देखकर डलेस ने कहा, खैर, कल तक कोई-न-कोई तरकीब करके निष्कर्ष निकाल ही लेंगे।

अब कहानी का एक नया अध्याय शुरू होता है। ब्रिटेन ने फ्रास से सलाह करते हुए कहा कि डलेस को ठगने की सिर्फ एक ही तरकीब है। वह है—रूस के आर्थिक आक्रमण का भण्डाफोड। बहुत जरूरी है कि इस आक्रमण को विश्वात्मक रूप दिया जाय। तब विश्वात्मक लक्ष्य और विश्वात्मक कार्यनीति तै करने के लिए तुम हम जो विश्वात्मक है नही, आगे नही आयेंगे। अमरीका विश्वात्मक अवश्य है। लेकिन शतरज मे चाल की बारी हमारी है। इसलिए चाल हम चलनी पडेगी।

फ्रास ने कहा, 'यार, विश्वात्मक शब्द का प्रयोग मत करो। अमरीका बुरा मान जायेगा।'

ब्रिटेन ने भौंहे चढाकर कहा, 'इसमे बुरा मानने की क्या बात है, हम अपने स्वार्थों ही से दबे हुए लोग है, हम काहे के विश्वात्मक !!'

फ्रास ने मुस्कराकर जवाब दिया, 'लेकिन हम दुनिया के हर खण्ड मे तो मौजूद है !!'

ब्रिटेन ने व्यग समझकर कहा, 'खैर, आजकल असल विश्वात्मक वे लोग हैं जो बिलकुल दिगम्बर भिखारी हैं। हम लोग तो एरिस्टोक्रैट है। नाटो मे सम्मिलित यूरोपीय देशो मे इटली और नॉर्वे ही इस श्रेणी मे आते है। अमरीका खण्ड मे से एक को, यानी अनिवार्यत कैनेडा को, तो लेना ही पडेगा !!' फ्रास ने ब्रिटेन की सूझबूझ की ठठाकर दाद देते हुए कहा कि 'ये "तीन बुद्धिमान" खूब ईजाद किये, भाई !!'

तब से नाटो मे 'तीन बुद्धिमान' शब्द चल पडा और दुनिया-भर के अखबार-नवीसो ने उसे उठा लिया। फ्रास ने ब्रिटेन से कहा कि '"तीन बुद्धिमान" खडे करने का श्रेय हम लोग क्यो ले। अमरीका को यह सुझाव रखने दो, और नॉर्वे, इटली तथा कैनेडा से इस सम्बन्ध मे बातचीत करने दो। अमरीका भी सोचेगा कि, भई, वाकई, ब्रिटेन और फ्रास हमारे खैरख्वाह हैं। हमारी सलाह दिये बगैर कोई काम नही करते।'

ब्रिटेन ने फ्रास को नसीहत देते हुए कहा कि 'सवाल को टालने का सबसे अच्छा तरीका यह है कि उसे ऐसी कमेटी के सुपुर्द कर दो जो काम मे काफी समय ले और जिसके फैसले मान लेने की जिम्मेदारी हम पर न हो।' फ्रास ने मुस्कराते हुए गर्दन हिलायी।

पैरिस, पाँच मई की तिथि-रेखा के अन्तर्गत रायटर के समाचार का हू-ब हू लफ्ज-ब लफ्ज अनुवाद इस प्रकार है

'यहाँ एटलाण्टिक कौन्सिल मीटिंग मे अगले दस वर्षों तक के लिए आर्थिक तथा राजनैतिक पश्चिमी कार्यनीति का नक्शा तैयार करने के लिए, "तीन बुद्धिमानो" की अमरीकी योजना के स्वीकार के कोरस का नेतृत्व ब्रिटेन ने किया। इसका उद्देश्य रूस की गैर-फौजी विदेश नीति उलट देना है।'

इसके बाद समाचार मे आगे कहा गया है, 'किन्तु ब्रिटिश फॉरेन सेक्रेटरी श्री सेलविन लॉयड ने कहा कि इन "तीन बुद्धिमानो" को व्यक्तिगत रूप से काम करना चाहिए, न कि अपनी-अपनी सरकारो के प्रतिनिधि के रूप मे।'

इस पर हमारी टिप्पणी यह है कि लॉयड साहब ने अन्तिम वाक्य खूब जोडा। शायद डलेस साहब को धोखा देने के लिए। नॉर्वे लगभग अर्ध तटस्थ देश है, इटली नाम मात्र के लिए नाटो मे है। इस स्थिति को आपने न माना हो, ऐसी बात तो हुई नही। योजना मे स्वीकार के कोरस का नेतृत्व करके, आपने अपनी खुशी भी जाहिर की। तो फिर इस शर्त की आवश्यकता क्या !! आवश्यकता सिर्फ यही है कि आप यह सूचित करना चाहते है कि ये भले ही नाटो के कच्चे समर्थक हो, हम पक्के समर्थक है। हमारी टिप्पणी यह है कि आप पक्के खिलाडी हैं।

[सारथी, 13 मई 1956, मे 'अवन्तीलाल गुप्त' छद्मनाम से प्रकाशित]

संघर्ष के सिंह-द्वार पर मैत्री

अगर फ्रास यह सोचता है कि यूगोस्लाविया द्वारा इजिप्ट और रूस से कहलाकर अल्जीरिया की समस्या का ताप कम किया जा सकता है, तो बहुत हद तक वह मात्र अनुमान के सहारे काम कर रहा है। फ्रास के इस नये कदम से अल्जीरिया की समस्या सुलझे या न सुलझे, उत्तरी अफ्रीका तथा भूमध्य-सागरीय देशो मे इजिप्ट और रूस को नया महत्त्व मिल जाता है। कम-से-कम रूस को तो यह स्वर्ण-अवसर प्राप्त हुआ है। अब तक उत्तरी अफ्रीका म रूस का प्रभाव बढने न देने की ही कोशिश की गयी थी। आज दृश्य यह है कि फ्रास रूस को सुझाव दे रहा है कि वह इजिप्ट पर यह दबाव डाले कि वह अल्जीरिया के उग्र राष्ट्रवादियो को न भडकाये।

बुलगानिन-ख्रुश्चेव की ब्रिटेन-यात्रा, ब्रिटेन के ज़रिये उनके द्वारा अमरीका से की गयी मैत्री की प्रार्थना तथा पेरिस स्थित रूसी राजदूत विनोग्रादोव द्वारा फ्रास से यह प्रार्थना कि रूस फ्रास की सहायता से अमरीका स अच्छे सम्बन्ध बनाना चाहता है आदि-आदि घटनाओ के साथ-ही-साथ डलेस का यह कहना कि रूस अधिकारि। । जनतन्त्रात्मक होने की राह पर है, और चर्चिल का यह कहना कि यदि रूस ईमानदार है तो यूरोपीय सुरक्षा-व्यवस्था म, यहाँ तक कि नाटो मे, रूस को शामिल कर लेना चाहिए—इस बात की ओर सकेत करता है कि ब्रिटेन अमरीका और रूस के बीच के परस्पर सम्बन्ध परिवर्तन के एक नये मैदान से गुज़र रहे हैं। यह परिवर्तन सघर्ष का एक दूसरा रूप है। अब शक्ति और सम्पदा की दृष्टि से रूस अमरीका के बराबर आ गया है और ब्रिटेन भी बहुत पीछे नही है। ऐसी स्थिति म केवल मनोवैज्ञानिक बाधाएँ थी जिन्ह रूस न दूर करने की कोशिश की। लेकिन इस कोशिश म रूस को भीतरी धक्के सहना पडे और उसने अपने देश मे ऐसी प्रक्रियाएँ शुरू कर दी कि जिनकी चरम अभिव्यक्ति बुलगानिन- ख्रुश्चेव के मौजूदा पद को खतरे म भी डाल सकती है। इस प्रकार कम्यूनिस्ट देशा मे इस समय वैचारिक आँधी दौड रही है। रूस ही नही वरन् दुनिया के बहुत से कम्यूनिस्ट देश इस मानसिक अशान्ति के दौर म से गुज़र रहे है। उसका मूल कारण स्तालिन के यश की सार्वजनिक हत्या है।

किन्तु, इस भीतरी अशान्ति के बावजूद, वैदेशिक नीति सफल हो रही है और रूस द्वारा बढाये गये कदमो से, यूरोपीय नाटो सगठन की आवश्यकता कम होती जा रही है। यानी, दूसरे शब्दो मे, रूस की सारी कार्यनीति नाटो को अर्थहीन बना देने म लगी हुई है। क्या यह सम्भव नही है कि अब, इसके बाद रूस यूनान-तुर्की मे अमरीकी एटमिक अड्डो और बगदाद-सन्धि को नाकाम करने की नये सिरे से कोशिश करे?

यदि सचमुच यूगोस्लाविया और रूस अल्जीरिया मे तनाव कम करने के लिए कोशिश करते है, यानी इजिप्ट को यह समझाने मे सफल होते हैं कि उसके नये इरादो को पूरा करने के लिए फ्रास की दोस्ती बहुत महत्त्वपूर्ण है, और यदि कर्नल नासिर रूस और यूगोस्लाविया की बात मान जाता है, तो पश्चिम एशिया म एक अजीब शक्ति-सन्तुलन पैदा होता है, जिसकी ओर हम पाठको का ध्यान आकर्षित करना चाहेगे। वह शक्ति-सन्तुलन इस ढग का है एक ओर, तुर्की, इराक, ईरान,

ब्रिटेन और अमरीका, तथा दूसरी ओर, रूस, फ्रास, यूगोस्लाविया, इजिप्ट तथा अन्य अरब देश। स्पष्ट है कि पश्चिमी एशिया मे इस ढग के शक्ति-सन्तुलन से सबसे ज्यादा डरने की जरूरत है ब्रिटेन को। अभी यूगोस्लाविया के टीटो रूस जायेंगे। उसके बाद फ्रास के प्रधानमन्त्री मय माले रूस जायेंगे। यह अनुमान करना बिलकुल सुसगत और सही है कि रूस से इन दो देशो की मैत्री और भी पक्की होगी। इतना मानकर चलने के बाद इजिप्ट का कर्नल नासिर पहल कदमी करने मे नही चूकेगा और उसके साथी अरब देशो को तथा स्वय को मजबूत बनाने के लिए, फ्रास, यूगोस्लाविया तथा रूस से अपने सम्बन्ध दृढ करता जायेगा। रूस से इजिप्ट के सम्बन्ध दृढ होने का रास्ता फ्रास ने और प्रशस्त कर दिया है। इजिप्ट का उद्देश्य सारे अरब विश्व को ब्रिटेन तथा अन्य साम्राज्यवादियो से मुक्ति दिलाना है। ब्रिटेन कर्नल नासिर को नम्बर एक का खतरनाक बदमाश समझता है और उसकी प्रत्येक गतिविधि बडे ध्यान से देखता है। जैसा कि आपको मालूम है, यद्यपि दुनिया मे तनाव कम होता जा रहा है, समस्याएँ ज्यो की-त्यो हैं। वे अपनी बलि तो लेंगी ही। हो सकता है, वे बलि लेने मे शीघ्रता न करें। किन्तु इसमे तो कोई शक ही नही है कि उन प्रश्नो की ताकत कम नही हुई है।

तात्पर्य यह कि नाटो को ढीला करने के बाद कूटनीतिक दाँव-पेंच और सघर्ष का मुख्य क्षेत्र पश्चिमी एशिया और भी मुख्य हो गया है। इस क्षेत्र मे रूस को सुविधा यह है कि वह यूगोस्लाविया और चेकोस्लोवाकिया के जरिये भी अपना काम पूरा करा सकता है और फ्रास से रूस की और मैत्री होने पर वह इस क्षेत्र मे फ्रासीसी कदमो को प्रोत्साहन दिलवा सकता है। फ्रास का इरादा अरब क्षेत्र मे अपना नैतिक और आर्थिक प्रभाव बढाना है। रूस का उद्देश्य सर्वविदित ही है। इजिप्ट का उद्देश्य ब्रिटिश-अमरीकी प्रभाव हमेशा के लिए खतम करना है। यूगोस्लाविया का उद्देश्य पूर्वी भूमध्य सागर मे अशान्ति के समस्त कारणो को दूर करने की प्रक्रिया मे अपना प्रभुत्व बढाना है। मजा यह है कि ये सब उद्देश्य एक-दूसरे के पूरक हो गये हैं। और उन सबने एक उद्देश्य, यानी इजिप्ट के उद्देश्य को बलवान बनाने का फैसला किया है। यह बिलकुल निश्चित है कि अपने आस पास की फौजी सन्धियों को नाकाम करने के लिए रूस फ्रास और इजिप्ट का अधिक से अधिक साथ देने की कोशिश करेगा।

लेकिन होगा सब मैत्री के द्वारा। तनाव, डाँट-डपट, धमकी और सघर्ष से जो उद्देश्य पूरा नही हुआ, वह अब मैत्री के द्वारा पूरा किया जायेगा। यानी, दूसरे शब्दो में ऐतिहासिक प्रक्रियाओ के मार्ग मे बनावटी अवरोध डाले न जाकर, उनकी गति और मुक्त कर दी जायेगी। उदाहरणत, कल मे अगर यमन-जैसा छोटा देश रूस से इस्पात का कारखाना माँगता है, तो वह उसे दे दिया जायेगा, भले ही थोडा कष्ट खुद को हो। औचित्य और न्याय के आतक से यदि फ्रास, यूगोस्लाविया और रूस तो क्या, इजिप्ट और पश्चिमी जर्मनी चल पडे, तो ब्रिटेन और अमरीका की नब्ज ढीली पडने लगेगी, जैसी कि वह ... [illegible]

[illegible]

... एक बार अल्जीरिया का ... बाद फ्रास की नीति अधिकाधिक सक्रिय, स्वाधीन और दुनिया मे नैतिक प्रतिष्ठा प्राप्त करने के लिए अग्रसर हो उठेगी। सह-अस्तित्व और आर्थिक

प्रतिस्पर्धा के इस युग मे वही देश टिक सकेगा, जिसके पास औद्योगिक तथा वैज्ञानिक शक्ति के चरम और परम चमत्कारो के साथ-ही-साथ, पृथ्वी के प्रत्येक भाग मे अधिक-से-अधिक हमदर्द और मित्र हो। जो बडा देश, इन बातो मे से एक भी बात मे पीछे रह जायेगा, उसका प्रभुत्व और प्रतिष्ठा भी घट जायेगी। यह नयी हालत आगे आनेवाले एक महान युग का सिंहद्वार है, जिसके बारे मे हम आगे कभी लिखेंगे।

[सारथी, 20 मई 1956, मे 'अवन्तीलाल गुप्त' छद्मनाम से प्रकाशित]

यांगटिसिक्यांग नील नदी से संगमोत्सुक

इजिप्ट द्वारा चीन को मान्यता एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण घटना है। जितना ज्यादा इस पर सोचा जायेगा, उतनी ही अजीबोगरीब सम्भावनाएँ ध्यान मे आयेंगी।

पहले हम कर्नल नासिर की स्थिति समझ लें। वह यह बखूबी जानता है कि ब्रिटेन-अमरीका इजिप्ट के खिलाफ खुद कोई लडाई शुरू नही कर सकते। अगर ऐसा करें तो विश्वयुद्ध होने की स्थिति उत्पन्न हो जायेगी। यह लगभग असम्भव है। इजिप्ट को कमजोर करने के लिए वे इज्राइल को बढावा देकर उसके द्वारा अपनी लडाई करवा सकते हैं। कर्नल नासिर ठीक इस सम्भावना के लिए अपनी तैयारी कर रहा है। साम्राज्यवादियो की सब पुरानी चालें उसे मालूम है, और उसका उद्देश्य अरब प्रदेश से समस्त विदेशी प्रभाव समाप्त करना है। कर्नल नासिर यह भी खूब जानता है कि इजिप्ट के बढते हुए प्रभाव को रोकने के लिए ब्रिटेन-अमरीका के पास कोई विशेष नीति नही है न कोई पैंतरा है। ब्रिटेन सायप्रस मे ठोका जा रहा है, अमरीका सिर्फ पीछे से इजिप्ट पर दबाव डालता है, तो पीछे से ही उसकी चिउँटी काट ली जाती है। कुल मिलाकर, ब्रिटेन-अमरीका इजिप्ट के बारे मे 'किंकर्त्तव्यविमूढ' है। इसीलिए इजिप्ट को पटेबाजी की इतनी सुविधा प्राप्त हुई है।

मिलाकर कर रहा
हाथ का खेल है।
रहा है।

इसका सबसे बडा सबूत कम्यूनिस्ट चीन को मान्यता देना है। पश्चिमी यूरोप के प्रति रूस का थोडा बदला हुआ रुख चीन को बन्धनकारी नही है। चीन के जरिये खाद्यान्नो से लेकर हवाई जहाज तक इजिप्ट को मिल सकते है। रूस को पश्चिमी यूरोपीय देशो की भावनाओ का थोडा-बहुत ध्यान रखना पडता है। चीन को ऐसी कोई आवश्यकता नही है। यूरोपीय देशो ने चीन पर कोई उपकार नही किया है। फारमोसा के प्रश्न तथा संयुक्त राष्ट्रसंघ मे चीन के प्रवेश के प्रश्न पर पश्चिमी देशो ने अमरीका का साथ दिया है। आज के युग मे, चीन इजिप्ट से इतना दूर भी नही है, जितना कि समझा जाता है। पीकिंग से काले सागर और बलगरिया तक

रेलगाडी है। मुख्य बात यह है कि इस दूरी के बीच विरोधी शक्तियो के कोई फौजी नाके नही हैं। माल और आदमी रेलगाडी और हवाई जहाज से सीधे-सीधे आ सकते हैं।

इतना ही नही, यदि कल से चीन पश्चिमी एशिया मे अपने विशेष हित बताने लगे, और इजिप्ट को तमाम वर्जनीय माल भेजने लगे, तो कोई क्या कर सकता है? अमरीका ने, और उसका पुछल्ला बनकर यूरोपीय देशो ने, चीन का इतना विरोध किया है कि वह उसके विरुद्ध प्रतिक्रिया के रूप मे, इजिप्ट को तथा उसके साथ-साथ अन्य अरब देशो को न मालूम क्या-क्या दे सकता है। यदि अमरीका सात समुन्दर पार अपने घर मे बैठे हुए, एक ओर पश्चिम मे इजिप्ट पर, तथा दूसरी ओर पूर्व मे जापान और चीन पर, अपना दबाव-प्रभाव आदि ला सकता है, तो चीन क्यो न करे!!

लन्दन और वाशिंगटन मे यह सवाल कि कर्नल नासिर को कब तक बर्दाश्त किया जाय, अहम हो उठा है। पश्चिमी एशिया में इजिप्ट और अन्य अरब देशो के खिलाफ ब्रिटेन-अमरीका द्वारा कोई आक्रमणात्मक कदम उठाया गया, तथा चीनी माल को इन क्षेत्रो [मे] जाने से रोका गया, तो इसकी प्रतिक्रिया फौरन पूर्वी एशिया म होगी। और वह प्रतिक्रिया काफी संगीन और प्रदीर्घ होगी। यह केन्द्रीय सत्य है। इस सत्य के द्वारा, वस्तुत, पूर्वी एशिया की परिस्थितियो और प्रश्नो को पश्चिमी एशिया की हालतो और सवालो से जोड दिया गया है। एक बार रूस ने जर्मन विभाजन के प्रश्नो को वियतनाम तथा कोरिया के विभाजनो से जोडना चाहा था, किन्तु उसे विशेष सफलता नही मिली। रूस बडा देश है। उसके पास हायड्रोजन बम है। हायड्रोजन बमवाले देश, फिलहाल, आपस मे लड नही सकते। लेकिन गैर-हायड्रोजनी मुल्को मे ठन सकती है। यानी कि चीन को पश्चिमी और पूर्वी एशिया मे, इस दृष्टि से, प्रत्याघात निषिद्ध नही है। दूसरे शब्दों में, क्रिया-प्रतिक्रिया के, आघात-प्रत्याघात के, रास्ते मे इन देशो के लिए इतनी पेचीदगियाँ नही हैं।

कर्नल नासिर ने यह खूब सोच लिया कि इजिप्ट तथा अन्य अरब देशों मे पहुँचनेवाले चीनी माल को रूसी और चेकोस्लोवियायी बनावट भी कोई हर्ज नहीं है। इसीलिए, वह फिर दहाडा कि इजिप्ट किसी राष्ट्र या राष्ट्र-समूह द्वारा निश्चित किये गये प्रतिबन्ध को कतई नही मानेगा और चाहे जिस राष्ट्र से अपने लिए हथियार खरीदेगा।

चीन को मान्यता प्रदान कर, नासिर ने ब्रिटेन-अमरीका को दुत्कार तो दिया ही, साथ ही रूस को उसने खुश कर दिया—विशेषकर उस समय जब कि रूस को अल्जीरिया मे राष्ट्रवादियो से फ्रास के समझौते के कार्य म फ्रास की मदद करने के लिए कहा जा रहा है। फ्रास के इस कदम से रूस को बल मिला और इजिप्ट को नया महत्त्व मिला। यह असम्भव नही है कि प्रारम्भिक अवस्था मे समझौते की बातें और कार्यवाहियाँ बिलकुल गुप्त हो। ये वार्ताएँ शुरू-शुरू मे काहिरा मे ही होगी। इजिप्ट, फ्रास, यूगोस्लाविया और रूस—ये चारों देश, अल्जीरिया के मामले को लेकर और भी समीप आयेंगे और यह बिलकुल ही स्वाभाविक है कि इजिप्ट समझौते के कार्य मे रचनात्मक दृष्टि रखे। असल म, यदि यह मसला इजिप्ट की सक्रिय सहायता से सुलझ जाता है तो इजिप्ट की राजनैतिक प्रतिष्ठा और शक्ति

मे चार चाँद लग जाते हैं। विश्वास करना चाहिए कि नासिर-सरीखा बुद्धिमान आदमी इस मौके को हाथ से न जाने देगा। क्योंकि इस क्षेत्र मे ब्रिटेन-अमरीका की प्रतिष्ठा घटाने का काम तब तगडा होगा, जब फ्रास खुले दिल से अरब आकाक्षाओं मे प्रतिनिधि इजिप्ट की सहायता करे और उसका दोस्त बन जाये। यह भी सच है कि इस काम मे बहुत-सी कठिनाइयाँ भी हैं, किन्तु फ्रास और इजिप्ट की सम्भावित मैत्री अरब देशो को मजबूत बनायेगी। ब्रिटिश और अमरीकी इज्जत पर यह सबसे बडा हमला होगा।

असल मे ब्रिटेन-अमरीका की सबसे बडी मुश्किल यह है कि पुरानी नीति कारगर सिद्ध नही हो रही है तथा नयी नीति का विकास नही हो रहा है।

नयी नीति के विकास के लिए जिस बौद्धिक हिम्मत और ऐतिहासिक बुद्धि से काम लिया जाना चाहिए, वह बिलकुल नदारद है। अमरीकी काग्रेस मे डॉक्टर सुकर्नो द्वारा दिये गये भाषण को अमरीका मे अत्यन्त शिक्षाप्रद कहा गया है। किन्तु क्या यह नसीहत मानी जायेगी? यदि सचमुच यह नसीहत मानी जाती है, तो फारमोसा चीन को वापिस दिया जा सकता है, गोआ भारत को मिल सकता है। कम-से-कम गोआ के बारे मे उसके द्वारा पुर्तगाल को डाँट पिलायी जा सकती है। कश्मीर के मसले पर पाकिस्तान को धमकाया जा सकता है। फारमोसा के पीछे अपने समर्थन को हटा लिया जा सकता है। जापान को ज्यादा राजनैतिक और आर्थिक आजादी दी जा सकती है। ब्रिटेन के साम्राज्यवादी उद्देश्यो को ललकारा जा सकता है। यदि अमरीका ने ऐसा किया तो दुनिया-भर मे रूस से भी उसकी प्रतिष्ठा और शक्ति बढ जायेगी। किन्तु वाशिंगटन तो फौजी सन्धियो से अपना समर्थन भी वापिस नही ले रहा है। इससे रूस का तो कुछ बनता बिगडता नही है, पिछडे देशो का चेहरा सख्त हो जाता है और वे अपनी आजादी का अमरीकी खतरा सूँघने लगते हैं।

असल मे, यूरोपीय समस्या दुनिया के लिए ज्यादा महत्त्वपूर्ण नही है रूस यह बखूबी समझता है। पिछडे हुए देशो मे उसका प्रभाव लगातार बढता जा रहा है।

वह उसकी ओर बढता जा रहा है। ब्रिटेन-अमरीका की हालत इतनी खराब है कि वे बढती हुई लोक-प्रवृत्तियो का उपयोग अपने लिए नही कर पाते। और उससे भी अधिक खराब बात यह है कि वे रूसी पैंतरो का सही-सही अन्दाज नही लगा पाते। वे अनिच्छित रूप से चलती बैलगाडी की रस्सी मे बँधे-बँधे पीछे खिचडते रहते है। असल मे रूस उनका ध्यान बराबर बँटा रहा है। कभी उसके कारण इजिप्ट की समस्या उठ खडी होती है, तो कभी पूर्वी एशिया की, तो कभी कोई और। वह उन्हे सोचने और एक यथार्थवादी विश्व-नीति का विकास ही नही करने देता। रूस जगह-जगह और देश-देश की परिस्थितियाँ बदलने मे बहुत होशियार है। कल से, मान लीजिए, रूस और फारमोसा के बीच कोई बात चल पडती है, तो क्या आप भौंचक नही जाइयेगा? और आज नागपुर मे बैठे-बैठे मैं यह कह रहा हूँ कि यह कतई असम्भव नही है। चीन और फारमोसा के बीच कितने विशाल पैमाने पर 'छुपा-छुपा'—जो सब पर प्रकट है—व्यापार चला हुआ है!! यह

हैं। वे पक रही हैं। कब कहाँ कौन कैसा पैंतरा बदलेगा, नहीं कहा जा सकता है।

[सारथी, 27 मई 1956, में 'अवन्तीलाल गुप्त' छद्मनाम से प्रकाशित]

अल्जीरिया की गुत्थी

अगर गय माले सरकार अल्जीरिया का सवाल ठीक ढंग से हल नहीं कर सकी तो फ्रांस की आन्तरिक शान्ति और सन्तुलन के अन्त का आरम्भ हो जायेगा। इसका कारण है। अल्जीरिया में बसे हुए फ्रांसीसी जमींदार सामन्ती वर्ग का गहरा सम्बन्ध फ्रांस की फौज और पुलिस के उन सर्वोच्च धनी परिवारों से है जिनके हाथ में देश का पूरा अर्थतन्त्र है। इस केन्द्रीय तथ्य को भूल जाना एकदम गलत होगा। अल्जीरिया में तैनात फ्रांस के प्रशासक लोग केन्द्रीय सरकार के अनेक आदेशों का पालन क्यों नहीं करते, यह बात अब स्पष्ट हो जायेगी। गय माले के पास माँ दे फ्रांस के सुझाव मानने की हिम्मत नहीं है। माँ दे फ्रांस का सुझाव था कि अरब राष्ट्रवादियों से सुलह और समझौता करने के पहले उनका विश्वास प्राप्त करना होगा। तभी तो समझौता हो पायेगा। इसलिए यह एकदम जरूरी है कि अल्जीरिया में विशाल सामन्ती फ्रांसीसी जमींदारियाँ पहले समाप्त की जायें। देश की तमाम म्युनिसिपैलिटियों पर इन जमींदारों का प्रभुत्व है। इसलिए उन्हें भंग किया जाये।

यह पहचानने की जब तक हालत पैदा नहीं की जायेगी, तब तक नरमपन्थी पहचान में और हाथ में नहीं आयेंगे, क्योंकि मौजूदा हालत में सभी नरमपन्थी उग्रपन्थियों में मिल गये हैं और अल्जीरिया में अभूतपूर्व एकता पैदा हो गयी है।

स्पष्ट है कि माँ दे फ्रांस का प्रस्ताव यह आवश्यक समझता है कि नरमपन्थियों के हाथ सत्ता की बागडोर सौंपने के पहले उनका उग्रपन्थियों से अलग हटना या हटवाया जाना जरूरी है। उन्हीं का कहना है कि यह तभी सम्भव है, जब अरब राष्ट्रवाद का विश्वास प्राप्त किया जाये जिसके लिए फ्रांस को कुछ निर्णायक कदम बढ़ाने पड़ेंगे। खून-खराबी, हत्या, आतंक और दमन का इतिहास अब इतना लम्बा हो गया है कि मैत्री को सिर्फ़ मुस्कान और समझौते की टेबिल पर पेरिस की शैम्पेन रखने मात्र से काम नहीं चलेगा। कुछ अरब राष्ट्रवादी त्याग करेंगे, कुछ फ्रांस करे। माँ दे फ्रांस अल्जीरिया और स्वयं अपने देश की हालत खूब जानते हैं।

इसीलिए उन्होंने केन्द्रीय तथ्यों को अपने देश के सामने प्रस्तुत किया है।

अल्जीरिया मे विशाल सामन्ती फ्रांसीसी जमींदारियों के राष्ट्रीयकरण का एक नतीजा यह होगा कि फ्रांस की सरकार और देश के अर्थतन्त्र पर हावी होनेवाले तत्त्व बहुत कमजोर पड जायेंगे। आज फ्रांस की सबसे बडी पार्टी कम्यूनिस्ट पार्टी है। अब जबकि मॉं दे फ्रांस के रेडिकल लोग इस उग्र कदम का स्वागत कर रहे हैं, तो यह स्वाभाविक ही है कि कम्यूनिस्ट और रेडिकलो की इस पंक्ति को देख, फ्रांस के उग्र दक्षिणपन्थी चौंक उठें। यह कतई असम्भव नही है कि उग्र दक्षिणपन्थी तत्त्व पार्लामेण्टरी या गैर-पार्लामेण्टरी तरीके से देश की सरकार हथियाने की कोशिश करें।

पण्डित नेहरू के अल्जीरिया-सम्बन्धी प्रस्तावों को फ्रांस के इस क्षेत्र ने जिस ढग से लिया है, उसी से यह साबित होता है कि उग्र दक्षिणपन्थी यह समझता है कि वह जीवन और मरण का सघर्ष कर रहा है। फ्रांस के पुराने राजनीतिज्ञ रेने इन प्रस्तावों को देख इतने बौखला उठे कि उन्होंने कठोर वचनों का प्रयोग करते हुए कहा कि भारत कैसा है (यानी कितना कृतघ्न है) जिसने यह नही सोचा कि फ्रांस ने बिना झगडे के फ्रांसीसी बस्तियाँ उसे सौप दीं, इसलिए उसके प्रति यथार्थवादी नीति बरती जाना चाहिए। रेने ने आगे कहा कि यदि फ्रांस कश्मीर के मामले मे दखलन्दाजी करने लगे और उसको लेकर भारत के विरुद्ध प्रचार करे तो कैसा हो। मोशिए रेने ही नही, अन्य राजनीतिज्ञो ने भी पण्डित नेहरू के प्रस्तावों को फ्रांस के मामले मे भारतीय दस्तन्दाजी के उदाहरण के रूप मे लिया। फ्रांस के उग्र दक्षिण-पन्थियों की यह पक्की (ऑथेंटिक) प्रतिक्रिया है। सोशलिस्टों की प्रतिक्रिया यह है कि पण्डितजी के प्रस्तावों को चर्चा का आधार बनाया जा सकता है। अरब क्षेत्रों से कोई महत्त्वपूर्ण प्रतिक्रिया नही हुई, क्योंकि इजिप्ट इस मामले म अभी चुप है, और वह समस्त अरब आन्दोलनों का प्रेरक और नेता है। उसकी जो अधिकृत प्रतिक्रिया होगी वह पक्की मानी जायगी।

अरब क्षेत्रों से अधिकृत प्रतिक्रियाएँ प्राप्त न होने का एक प्रमुख कारण यह है कि फ्रांस इस समय अल्जीरिया मे समझौते के लिए बेचैन है, किन्तु कृतसकल्प नही है। वह दूसरे देशों मे समझौते की अपनी तैयारी का ढिंढोरा तो पीट रहा है, किन्तु वह अरब राष्ट्रवाद के किसी भी प्रतिनिधि देश से बातचीत करना गवारा नहीं करता। उसने सोचा था कि यूगोस्लाविया और रूस के जरिये इजिप्ट पर प्रभाव डलवाकर काम बनाया जा सकता है। किन्तु इस कार्य मे उसे सफलता नही मिली। अगर फ्रांस थोडा बुद्धिमान होता तो अपनी भद्रतापूर्ण इज्जत का खयाल थोडा कम करके, वह सीरिया और लेबनान (जहाँ उसका थोडा प्रभाव अभी भी है) के जरिये इजिप्ट के पास पहुँचता। असल म, अल्जीरिया की समस्या तब तक हल नही हो सकती, जब तक इजिप्ट के मार्फत अल्जीरियाई अरब राष्ट्रवादियों से सम्बन्ध स्थापित न किया जाये। कर्नल नासिर कोई भावुक व्यक्ति नही है। कठोर सौदे-बाज है वह। इसी से फ्रांस उससे कतराकर समस्या का हल करना चाहता है। अच्छे-से-अच्छा फार्मूला लाइए, इजिप्ट की प्रेरणा के बिना उस पर चर्चा नही हो सकती। कर्नल नासिर और इजिप्ट की आज एक आँख अल्जीरिया और दूसरी अदन पर जमी हुई है। धीरे-धीरे वह वातावरण उग्र मे उग्रतर बनता जा रहा है। अरब राष्ट्रसघ (यद्यपि सघ रूप मे ऐसी कोई चीज नही है) दुनिया की एक

जबर्दस्त ताकत है जिसका लोहा ब्रिटेन मान चुका है। जब फ्रांस समझौते के लिए बिलकुल विवश हो जायेगा, तब कहीं समझौते की बातचीत वस्तुत: शुरू होगी। अब तक तो पण्डित जवाहरलाल नेहरू के प्रस्तावों पर चर्चा की तैयारी भी नहीं दिखायी दे रही है।

कहने का तात्पर्य यह कि अल्जीरिया में फ्रांसीसी जमींदारी हितों का सम्बन्ध फ्रांस के भीतर शक्तिशाली उग्र दक्षिणपन्थी तत्त्वों के साथ जुड़ा हुआ है। इतने प्रदीर्घ रक्तपात के बाद भी, *जब ये तत्त्व अल्जीरिया को सही-सही आज़ादी देने की बात सोच नहीं सकते, तो अनिवार्य ऐतिहासिक प्रक्रिया अपनी बलि लेगी।*

फ्रांस की दो लाख सेना आज छोटे-से अल्जीरिया में जमी हुई है। युद्ध का भार उस देश की अर्थनीति पहले से ही चौपट कर रहा है। गय माले की सरकार जनता को दिये गये अपने वादे तब तक पूरे नहीं कर सकती जब तक वह युद्ध शान्त न करे। क्या फ्रांस अल्जीरिया में युद्ध-प्रयत्नों को और तीव्र कर अपने घर में सुख की नींद सो सकता है? यह असम्भव मालूम होता है। फ्रांस के पचास लाख पार्टी-बन्द कम्यूनिस्ट, रेडिकल्स तथा अन्य स्वतन्त्र मतवादी लोग अल्जीरिया में फ्रांस द्वारा समझौता चाहते हैं—चाहे नहीं यदि देश को थोड़े त्याग करने पड़ें।

फ्रांस में वर्ग-विरोध—'क्लास-पोलराइज़ेशन' काफी बढ़ा-चढ़ा है। यदि कम्यूनिस्टों और रेडिकलों ने गय माले की सरकार का समर्थन करने से इनकार किया, तो अपनी सरकार टिकाने के लिए गय माले को उग्र दक्षिणपन्थियों का समर्थन प्राप्त करना पड़ेगा। सोशलिस्ट लोग, जो अब तक विरोध में रहे, शायद यह समर्थन प्राप्त करना गवारा न करें, क्योंकि उनसे फिर जनता का समर्थन जाता रहेगा।

तो विकल्प ये हैं

—उग्र दक्षिणपन्थियों की सरकार का बनना, किन्तु असेम्बली में इसे शायद बहुमत प्राप्त न हो।

—अधिक उग्र वामपन्थी सरकार का बनना, किन्तु इन पार्टियों में सुदृढ़ एकता नहीं है।

—दक्षिणपन्थी तानाशाही और चौथे फ्रेंच जनतन्त्र की समाप्ति।

—वामपन्थी तानाशाही और चौथे जनतन्त्र की समाप्ति।

[illegible]

हो। लेकिन यह सही है कि दक्षिणपन्थी तानाशाही की स्थापना की बात फ्रांस की राजनीति में चर्चा का विषय बन गयी है, जिसका मूल कारण यह आशंका है कि, सम्भवत, गय माले के असफल मन्त्रिमण्डल के बाद उग्र वामपन्थी सरकार आने की ही अधिक सम्भावना है। इस अधिक उग्र वामपन्थी सरकार को टालने के लिए, हो सकता है कि गय माले को और टिकाया जाये। किन्तु सवाल का हल टाला नहीं जा सकता।

फ्रांस की इस अन्दरूनी पेचीदगी की तरफ इजिप्ट आँख लगाये बैठा है। उसका

खयाल है कि जब तक दो-चार धक्के और न दिये जायें तब तक फ्रांस का मामला नहीं सुलझेगा।]

[सारथी, 3 जून 1956, में 'अवन्तीलाल गुप्त' छद्मनाम से प्रकाशित]

पश्चिमी राष्ट्रों की लँगड़ी नीति

अपनी फौजें कम कर चुकने के बाद, रूस ने उत्तरी कोरिया की ओर देखा। सोलह राष्ट्रों ने वहाँ का ट्रूस कमीशन यह आरोप लगाकर भंग कर दिया कि उत्तर कोरिया ने दक्षिण देश पर कई छिपे हमले किये, दूसरे, वह सरहद पर अपनी फौजी ताकत बढ़ाता जा रहा है। इसके दूसरे ही दिन उत्तरी कोरिया ने घोषणा की कि वह फौजों की संख्या में बड़ी कटौती करेगा। कोरिया सैनिक कार्यनीति की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण देश है। वहाँ की सेना में कटौती का अर्थ ही यह है कि उसके फलस्वरूप उस देशखण्ड की सुरक्षा में बाधा नहीं पहुँचती। उत्तरी कोरिया की सुरक्षा चीन और रूस की सुरक्षा से जुड़ी हुई है। इसलिए रूस की फौजी कटौती से उत्तरी कोरिया की फौजी कटौती मिलाकर देखनी होगी। इन देशों में, खासकर रूस में, ऐसा क्या हुआ है, जो वह आज कटौती करना अपने लिए नुकसानदेह नहीं समझता?

दुनिया के बड़े देशों के युद्ध-संचालनशास्त्री बड़े चक्कर में पड़े हुए हैं। डलेस ने तो यह कहकर बात उड़ा दी कि रूस ने फौज में इसलिए कटौती की कि वह अपने आणविक कल-कारखानों तथा अन्य उद्योगों में उन्हें फँसाना चाहता है, जिससे कि वह अपनी ताकत ज्यादा-से ज्यादा बढ़ा सके। आइज़नहॉवर ने भी लगभग इन्हीं शब्दों में यही बात कही।

किन्तु लन्दन और पेरिस के युद्धशास्त्र-विशेषज्ञों को उपर्युक्त दोनों वक्तव्य उथले मालूम हुए। उन्होंने रूसी फौज में कटौती का गर्भितार्थ निकालना शुरू किया। रूस का इरादा नेक है या बुरा, यह इस समय विवाद का विषय नहीं है। असल में, इस कदम के परिणामों से ही उसकी अनुकूलता या प्रतिकूलता का अन्दाज लगाया जा सकता है। इसलिए, पहले-पहल, यह देखना जरूरी है कि इस कदम के गर्भितार्थ क्या हैं?

रूस इतना गांधीवादी या इसके विपरीत इतना बेवकूफ देश तो है नहीं जो अपनी सुरक्षा खतरे में डालकर फौज में कमी करे। शान्तिवादी देशों में भी अपनी सैनिक सुरक्षा का भरसक इन्तजाम रहता है। दो महाद्वीपों के उत्तर-दक्षिण-पूर्व-[illegible] मील की सीमा, जिसको अनेकों देशों की [illegible] सजे विदेशी फौजी [illegible] की भूमि-सेना की विशालता का उद्देश्य इसी अति-प्रदीर्घ देश-सीमा की रक्षा करना था। अब क्या

कारण है जो उसने अपनी विशाल सेना में कटौती की?

सिवाय इस निष्कर्ष के और कोई दूसरा निष्कर्ष नहीं निकलता कि रूस ने अपनी सुरक्षा की ऐसी दूसरी तरकीबें निकाल ली हैं, जिनके होते हुए वह अपनी फौज में, देश की सुरक्षा के हितों को नुकसान न पहुँचाते हुए, कटौती कर सकता है। ये तरकीबें क्या हैं? युद्ध-संचालनशास्त्रियों के मतानुसार, ये वे हैं जिन्हें आणविक युद्धास्त्र कहते हैं, जिनमें एक मिनिट में कई हज़ार मील रफ्तार से जानेवाले नियन्त्रित राकेट-बाण आदि शामिल हैं। मतलब यह कि रूसी कदम का इसके सिवाय और कोई निष्कर्ष निकलता नहीं।

आज का युद्धशास्त्रविद् राजनीतिज्ञ भले ही न हो, उसके मत और विचार राजनीति पर निर्णायक प्रभाव डालते हैं। इस बात को ध्यान में रखकर रूसी कदम पर इतनी जोरदार बहस चल रही है।

लन्दन और पेरिस के सामने सबसे बड़ा सवाल यह है कि यदि रूस अपनी सुरक्षा को खतरे में न डालते हुए—बल्कि उसे और पुख्ता बनाकर—अपनी फौज में महत्त्वपूर्ण कटौती कर सकता है, तो वे देश स्वयं क्यों नहीं कर सकते, जबकि उनकी आर्थिक स्थिति का तकाज़ा यह है कि कल-कारखानों में और उत्पादन बढ़ाया जाये, जिससे कि रूसी औद्योगिक प्रतियोगिता का मुकाबला किया जा सके। स्वयं राजनीतिज्ञ यह मानते हैं कि रूसी खतरा सैनिक-क्षेत्र से हटकर आर्थिक-क्षेत्र में प्रबल हो उठा है। तो, ऐसी स्थिति में, पश्चिमी देशों की युद्ध-संचालन नीति को, अद्यतन वैज्ञानिक तथ्यों और उनकी विविध सफलताओं के प्रकाश में क्यों न परिवर्तित किया जाये?

यह निष्कर्ष बिलकुल सही है कि जिस आत्मविश्वास के ठाठ से रूस ने यह कदम बढ़ाया, वह ठाठ है ही ऐसा कि उससे युद्ध-संचालन नीति के मूल सिद्धान्तों पर सजग रूप से विचार करनेवाले युद्धशास्त्रविद् अपने लिए नतीजे निकालने की कोशिशें करें। युद्धशास्त्र विज्ञान के साथ ही एक कला है। किन्तु यह कला विज्ञान की विशेषताएँ, यानी बुनियाद, लिये हुए है। इस बुनियाद में हेर-फेर तब किये जाते हैं कि जब दुनिया के सामने कुछ ऐसे आविष्कार पेश किये जायें, जिनके द्वारा सारी पद्धति में परिवर्तन होना अवश्यम्भावी हो उठे। इन्हीं युद्धशास्त्रविदों के अनुसार, रूस ही पहला देश है जिसने इस परिवर्तन की अवश्यम्भाविता स्वीकार करते हुए उस ढंग के कार्य आरम्भ किये। प्रश्न यह है कि क्या ऐसे परिवर्तन ब्रिटेन और फ्रांस नहीं कर सकता? इसका जवाब साफ है। ब्रिटेन के पास अभी भी इतना बड़ा साम्राज्य है कि उसकी सुरक्षा के लिए पुराने ढंग के फौजी तरीके अमल में लाये जा सकते हैं। न केवल यह, अगर वह वहाँ नये आणविक तरीकों का प्रयोग करे तो उसी के आर्थिक शोषण के क्षेत्र नेस्तोनाबूद हो जायेंगे। यानी जिस तरह आज हवाई जहाज होते हुए भी बैलगाड़ी या ऊँटों की ज़रूरत रहा करती है, ठीक उसी तरह पुराने फ़ौजी तरीके ही ब्रिटेन के लिए उपयोगी हैं। ऐसी स्थिति में, ब्रिटेन को यूरोप के बाहर अन्य देशों में राष्ट्रवादी ताक़तों के विरुद्ध मोर्चा लेने के लिए फौजें रखनी ही पड़ेंगी। किन्तु लन्दन में सैनिक नीतिविद् यह पूछते हैं कि पश्चिमी जर्मनी में नाटो के अन्तर्गत जो ब्रिटिश फ़ौजें पड़ी हुई हैं उनकी ज़रूरत ही नहीं रह जाती, बशर्ते कि उनका उद्देश्य जर्मनी-विरोधी न होकर सचमुच रूस-विरोधी हो।

असल में, आज से लगभग दो साल पहले, यह सवाल दि गौड दैट फ्रेल्ड नामक रूस-विरोधी पुस्तक के ब्रिटिश सम्पादक रिचार्ड क्रॉसमैन ने पूछा था। किन्तु आज यही प्रश्न दुगुने ज़ोर से पूछा जा रहा है।

इसका कारण ही यह है कि फ़ौजें घटाने से न केवल आणविक उद्योगों को नयी श्रमशक्ति मिलती है, वरन् बड़े राष्ट्रों का संघर्ष आर्थिक क्षेत्र में स्थानान्तरित हो जाता है।

आणविक शस्त्रों का विकास युद्ध-नीति का पहला चरण था, जब यह सोचा गया था कि उनके प्रयोग द्वारा चटपट विजय मिल जाती है। उदाहरण के लिए, जापान पर अमरीकी विजय। उसका दूसरा चरण तब आरम्भ हुआ जब रूस और अमरीका दोनों ने हायड्रोजन बम का विकास किया और दोनों तुल्यबल हो गये। तुल्यबलता के फलस्वरूप यथास्थिति के कारण वातावरण में गतिहीन ठहराव आ गया। इसका तीसरा चरण तब शुरू होता है जब रूस, एक ओर, युद्धास्त्रों का विकास करता है, और, दूसरी ओर, ठहराव की यथार्थता स्वीकार करते हुए उससे आर्थिक और औद्योगिक लाभ उठाना चाहता है। साथ ही, ठहराव की यथार्थता से सैनिक निष्कर्ष निकालकर, फ़ौज में कमी करता है। दूसरे शब्दों में, रूस का यह भरोसा है कि यह ठहराव एक लम्बे अर्से तक बना रहेगा, क्योंकि वह तुल्यबलता के फलस्वरूप उत्पन्न हुआ है। इस तुल्यबलता का स्तर लगातार ऊँचा होता जायेगा। अमरीका या रूस, इन दोनों में से कोई भी, एक-दूसरे के पीछे नहीं रहेंगे। और आणविक शस्त्र तथा युद्धास्त्रों का विकास, दोनों देशों में बराबर-बराबर होकर, विश्व में उनके लिए प्रचण्ड तुल्यबलता की प्रगतिमान स्थिति बनाता रहेगा। यह अवधि प्रदीर्घ होगी, और इसके द्वारा सैनिक कार्य पद्धति की एक-दूसरे के विरुद्ध गतिविधि में ठहराव का सूत्रपात हो गया है, जो एक लम्बे अरसे तक बना रहेगा। इस स्थिति को आर्थिक लाभ की स्थिति में परिवर्तित करने के उपायों के फलस्वरूप फ़ौज में कटौती करके सैनिकों को आर्थिक औद्योगिक मोर्चे पर लगाया जा रहा है। रूस का यह निष्कर्ष बिलकुल सही है कि आणविक युद्धास्त्रों के विकास के साथ-ही-साथ मिलिटरी स्ट्रेटेजी भी बदल जायेगी। इस नयी फ़ौजी कार्य-पद्धति की आवश्यकताएँ, पूरी करना रूस ने शुरू कर दिया है।

यदि इन निष्कर्षों को स्वीकार किया जाता है, तो सैन्य-नीति के अनुरूप राजनीति भी बदलने लग जायेगी। इस मूलभूत तथ्य को सभी पश्चिमी देश जानते हैं। किन्तु वे यह स्वीकार नहीं करना चाहते कि वे इस तथ्य को बराबर पहचानते हैं। इसका कारण यह है कि उनके अर्थतन्त्र के एक हिस्सेदार युद्ध-सामग्री के प्रचण्ड शक्तिशाली उद्योगपति हैं। यदि उनकी सैन्य-नीति का वास्तविक उद्देश्य रूस को थामे रखना है, तो नाटो, सीटो, बगदाद-सन्धि बिलकुल बेकार हैं, क्योंकि वह इन दीवारों को चटपट फाँद सकता है। ऐसी स्थिति में यह स्वीकार कीजिए कि ये सन्धियाँ मुख्यतः रूस के विरुद्ध न होकर, उनका कोई और दूसरा प्रकट या अप्रकट उद्देश्य है। मतलब यह कि आधुनिक वैज्ञानिक विकास की दृष्टि से पश्चिमी यूरोपीय कार्य-पद्धति लँगड़ी हो गयी है।

किन्तु आज प्रश्न यह पूछा जा रहा है कि क्या यह दोष हटाया नहीं जा सकता? जब रूस सैनिक ठहराव से सैन्य-नीति-सम्बन्धी, आर्थिक विकास-सम्बन्धी,

तथा विश्व राजनीति-सम्बन्धी निष्कर्षों पर पहुँचकर, अपनी पुरानी नीतियों को प्रभावहीन जान, नयी प्रभावशाली [नीति] बरतता जा रहा है, तो पश्चिमी देश ऐसा क्यों नहीं कर सकते ?

इस प्रश्न का लगातार पूछा जाना ही आज के विकास-क्रम के लिए श्रेयस्कर है, क्योंकि उसके द्वारा विश्व राजनीति का नक्शा बदलने लगता है।

[सारथी, 1■ जून 1956, में 'अवन्तीलाल गुप्त' छद्मनाम से प्रकाशित]

अर्जेनटीना के विद्रोह की तस्वीर

दक्षिण अमरीका के अर्जेनटीना में वर्तमान विद्रोह को समझने के लिए हमें कुछ बातें ध्यान में रखना ज़रूरी है। सबसे प्रमुख बात यह है कि उस देश की लगभग तीन-चौथाई भूमि बड़े-बड़े जमींदारों के हाथ में है। जमींदारों में लगभग एक दर्जन ऐसे हैं जिनके पास हजारों एकड़ ज़मीन है। इस जमींदार-सामन्ती वर्ग में से आये हुए नौजवानों से फौज बनी है। इन्हीं तत्त्वों से प्रशासनतन्त्र बना है। फौज पर, प्रशासन-तन्त्र पर, शिक्षा-संस्थाओं पर, अखबारों पर, और यहाँ तक कि देश में छोटे उद्योगपतियों पर (बड़े उद्योगपति देश में हैं ही नहीं) इसी जमींदार-सामन्ती वर्ग का दबाव है।

इसी जमींदार-सामन्ती वर्ग से निकले हुए तालीम-याफ्ता लड़के पादरी बनते हैं। कैथलिक पादरियों का यह वर्ग अत्यन्त शक्तिशाली है। देहाती जनता पर उसका जादू चलता है। अनाथालय, विद्यालय और अस्पताल, आदि चलाने के लिए गिरजाघरों के पास सैकड़ों एकड़ ज़मीन है।

साधारण जनता अत्यन्त पिछड़ी हुई और गरीब है। असल में, दक्षिण अमरीका में जो स्पैनिश लोग (या पुर्तगीज़ जो लैटिन अमरीका के केवल एक देश ब्राज़ील में ही हैं) बसे हैं, वे यूरोप में सुधारवादी आन्दोलन छिड़ने के पहले ही दक्षिण अमरीका के निवासी हो चुके थे, इसलिए उनकी विचारधारा बड़ी ही दकियानूस और पुराने किस्म की है।

ध्यान में रखने की बात है, ऐसे लोगों पर कैथलिक पादरियों का असर बहुत गहरा है। अर्जेनटीना के भूतपूर्व शासक पैरों ने अपनी जिन्दगी की सबसे बड़ी ग़लती तब की जब उसने कैथलिक पादरियों की सत्ता पर एकाएक हमला बोल दिया। पैरों के अन्त के आरम्भ की गति इस हमले में और तीव्र हो गयी।

इसके साथ ही, यह भी जानना चाहिए कि देश का एक प्रशासक वर्ग है, जो इन्हीं वर्गों की सन्तान है। इस वर्ग का पेशा मन्त्रिमण्डल बनाना, जनरल और मार्शल नियुक्त करना, कूटनीतिक चालें तै करना, पैंतरे बदलना, आदि-आदि है। जिस प्रकार अमरीकी अध्यक्ष आइज़नहॉवर और विदेश सचिव डलेस, कई कम्पनियों और बैंकों, खासकर सुप्रसिद्ध यूनाइटेड फ्रूट कम्पनी के डायरेक्टर हैं,

यह अर्थतन्त्र तब तक बदल नहीं सकता, जब तक कि देश में औद्योगिक विकास का पाया मजबूत न हो। एक बार पाया जम जाने पर फिर सामन्ती जमीदारी अर्थतन्त्र की नींव ढाई जा सकती है। अर्जेनटीना का यह नवीन उत्थानशील वर्ग फिलहाल अपना पाया जमाने की कोशिश में है। जनरल पैरों की अध्यक्षता में इस दिशा में उसने काफी काम किया, और तुलनात्मक दृष्टि से वह पहले से अधिक मजबूत भी हुआ। इस वर्ग को इस बात की परवाह नहीं है कि यह उत्थान जनतन्त्र के अन्तर्गत ही हो, या तानाशाही के। असल में देश का औद्योगीकरण तथा सामाजिक उन्नति, यानी मार्क्सवादी शब्दों में, पूँजीवादी क्रान्ति अभीप्सित है।

नतीजा यह है कि देश में एक-न-एक ढंग से सामन्ती विचारधाराओं पर, और उनकी केन्द्रीय सामाजिक संस्थाओं पर, आये दिन हमले होते रहते हैं। कैथलिक पादरियों के खिलाफ पैरों द्वारा चलाया हुआ आन्दोलन इस बात का लक्षण था। [illegible]

की दुहाई देकर, मजबूत बनाने की कोशिश करता है।

अर्जेनटीना का प्रसिद्ध अमरीका-समर्थित अखबार **ला प्रेन्जा** जब पैरों द्वारा इस इल्जाम पर बन्द कर दिया गया कि वह कैथलिक गिरिजाघरों की शासन-विरोधी कार्रवाइयों का समर्थन करता है, तो अमरीका में पैरों के खिलाफ बड़ा धूम-धड़ाका हुआ। रायटर-जैसी समाचार एजेन्सी द्वारा इस 'भयंकर तानाशाही अत्याचार' के विरुद्ध, समाचार और टिप्पणियाँ दुनिया-भर में प्रसारित की गयीं। यहाँ तक कि **हितवाद** और **नागपुर टाइम्स**-जैसे दूरवर्ती अखबारों में भी **ला प्रेन्जा** बन्द होने का शोक मनाया गया। जुर्म आयद किया गया कि पैरों का वह कार्य जनतन्त्र के विरुद्ध था।

किन्तु आज पिछड़े देशों का राष्ट्रवाद अपनी औद्योगिक उन्नति के लिए तानाशाही संस्थाओं द्वारा कार्य कर रहा है। इजिप्ट इस प्रकार के महत्त्वाकांक्षी कार्यक्रम का एक सीधा-सीधा उदाहरण है। अर्जेनटीना की तानाशाही इसी किस्म की थी। किन्तु अमरीका—जो हमेशा अपने को जनतन्त्र का समर्थक मानता है—दक्षिण अमरीका के अनेक देशों के तानाशाहों का सक्रिय सैनिक समर्थन करता है। आज ग्वाटेमाला, कोस्टारिका, वैनेजुएला, पेरू, कोलम्बिया, बोलीविया आदि देशों में फौजी-सामन्ती तानाशाहियाँ हैं, जो केवल अमरीका के फौजी आशीर्वाद से चल रही हैं। ध्यान में रखने की बात है कि लैटिन अमरीका के एकमात्र पुर्तगीज भाषा-भाषी देश ब्राज़ील का तानाशाह वार्गास अमरीका के फौजी आशीर्वाद का पालितपुत्र था। आज एशिया में इराक, तुर्की और थाइलैंड-जैसे देशों की तानाशाहियतें अमरीकीपसन्द हैं। ऐसी स्थिति में, **ला प्रेन्जा** पर हुए आक्रमण को तानाशाही अत्याचार बताकर, जनतन्त्र का झण्डा बुलन्द करनेवाला अमरीका, रायटर की आँख से दुनिया को देखनेवालों की आँख में धूल झोंक सकता है, *अर्जेनटीना में होनेवाली तीव्र-गति सामाजिक प्रक्रियाओं को रोक नहीं सकता।*

आज अर्जेनटीना में अमरीका सामन्ती-जमींदार तत्त्वों—सुधार-विरोधी कैथलिक गिरिजाघरों तथा फौजी सेनानायकों—को अपनी ओर मिलाकर, देश की प्रगति की गर्दन मरोड़ने की हरचन्द कोशिश कर रहा है। लेकिन वह बिलकुल

नाकामयाब होगा।

वस्तुत. देश की उन्नति और प्रगति का आकांक्षी नया पूँजीवादी वर्ग इतना कमज़ोर नहीं है कि वह अपनी सत्ता पुन. स्थापित करने के सारे प्रयास स्थगित कर दे। फौज दो खेमों मे बँटी हुई है। सेना का एक हिस्सा देश की राष्ट्रवादी औद्योगिक-सामाजिक उन्नति का पक्षपाती है। दूसरा भाग सामन्ती सत्ता का समर्थक है। पढा-लिखा मध्यवर्ग और मज़दूर इस प्रगति का सक्रिय समर्थक है। इन्ही वर्गों के भरोसे पेरों ने अब तक राज किया था।

इस पूँजीवादी-राष्ट्रवादी प्रगतिशील संयुक्त मोर्चे का भविष्य देश की अग्रगामी उन्नति के साथ जुड़ा हुआ है। आज अर्जेन्टीना के सामाजिक गर्भ मे पूँजीवादी क्रान्ति का बालक पल रहा है। यह क्रान्ति ऐतिहासिक-सामाजिक विकास की एक अनिवार्य अवस्था है। अभी यह क्रान्ति पूरी पकी नही है, किन्तु भयंकर गति से परिपक्व हो रही है। यह सम्पूर्ण तथा सफल तब होगी जब वह समाज के सामन्ती मूलाधार, बडे-बडे जमींदार और उनसे संगठित कैथलिक गिरिजाघरों की ताक़त हमेशा के लिए समाप्त कर देगी, जैसा हमने भारत मे किया। इस समय जो विद्रोह हुआ है, वह इस क्रान्ति का लक्षण मात्र है। पूरी क्रान्ति अभी होना शेष है।

[सारथी, 17 जून 1956, मे 'अवन्तीलाल गुप्त' छद्मनाम से प्रकाशित]

कम्यूनिज़्म का संक्रमण-काल

कम्यूनिस्ट जगत् मे आज जो वैचारिक हड़कम्प मचा हुआ है उसके सम्बन्ध-सूत्र बड़े दूरगामी है। टीटो ने जिस आधार पर विद्रोह किया, ठीक उसी आधार पर चीन ने अपने ढंग की कार्य-प्रणाली और समाज-रचना खड़ी कर ली, और वह उसमे आवश्यक विकासकरता [illegible]। रूसी नेता यह कहेंगे कि अगर स्तालिन का बस चलता तो चीन भी विद्रोह कर देता। साम्यवादी समाज-रचना के दो बुनियादी सिद्धान्त—तमाम उद्योगों का समाजीकरण और खेतो का सामूहिकीकरण चीन मे लगातार होता जा रहा है, यद्यपि यह प्रक्रिया अभी पूरी नही हुई है। युगोस्लाविया मे समस्त उद्योग राष्ट्रीय अधिकार मे हैं, केवल उनकी व्यवस्था मज़दूरों के सहकारी संगठनो के अधीन है। वहाँ सहकारी खेती भी शुरू हो गयी है—जो सामूहिक खेती का प्रारम्भिक चरण है। सभी कम्यूनिस्ट देशो के विकास-मार्ग और विकास-दिशाएँ एक-सी हैं, इसीलिए वे कम्यूनिस्ट कहलाते हैं। जब तक पूरी खेती सामूहिक और पूरे उद्योगों का राष्ट्रीकरण नही होता, और निजी खेती तथा निजी उद्योगों का उनमें स्थान रहता है—चाहे वह कितना ही छोटा स्थान हो—तब तक कम्यूनिस्ट शब्दावली में उसे पीपुल्स डेमोक्रेसी कहा जाता है।

आज युगोस्लाविया तथा अन्य नये कम्यूनिस्ट देशो मे ऐतिहासिक तथा

भौगोलिक कारणो से भले ही थोडे-बहुत भेद पाये जायें, किन्तु वे मूलभूत नही हैं। उनमे मूलभूत समाज-विकास-सम्बन्धी एकता है। रूस ने जब यह देखा कि यूगोस्लाविया हजार लडाइयो के बावजूद भी, पूँजीवादी विकास की दिशा नही अपना रहा है, बल्कि इसके विपरीत, वह बराबर क्लासिकल कम्यूनिस्ट सिद्धान्तो के अनुसार समाज के विकास का सगठन करता जा रहा है, तो मजबूर होकर उसे यूगोस्लाविया की समाज-रचना को स्वीकृति देनी पडी। अतएव, यद्यपि अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि से, यूगोस्लाविया से मैत्री करके रूस का प्रभाव बढा, और अपनी समाज-रचना को कम्यूनिस्ट सिद्धान्तो पर आधारित रचना की मान्यता, रूस से दिलवाने मे टीटो की विजय हुई (जो निस्सन्देह महान है), फिर भी अन्तर्राष्ट्रीय कम्यूनिस्ट आन्दोलन के विकास मे टीटो का अभी कोई विशेष स्थान नही बना है। किन्तु इसमे कोई शक नही कि यूगोस्लाविया की कम्यूनिस्ट पार्टी को रूसी मान्यता मिलने का अर्थ ही यह है कि अन्य देशो की कम्यूनिस्ट पार्टियो का रूसी प्रभाव मे रहना आवश्यक नही रहा। इसके लक्षण अभी से दिखायी दे रहे हैं। चेकोस्लोवाकिया और पोलैण्ड मे रूसी प्रभाव को व्यापक पैमाने पर समीक्षक दृष्टि से देखा जा रहा है।

किन्तु रूसी प्रभाव के विरुद्ध गोली और ही जगह से दागी गयी। वह है इटली। वहाँ की कम्यूनिस्ट पार्टी के कर्णधार तोग्लियाती ने अपने एक वक्तव्य मे कहा कि रूस मे व्यक्तित्व-सम्प्रदाय अभी भी चल रहा है। फर्क इतना ही है कि पहले स्तालिन को सब गुणो से समन्वित किया जाता था, अब सब दोषो से समन्वित किया जाता है। तोग्लियाती ने पूछा कि ऐसा क्यो हो रहा है और सोवियत जनतन्त्र मे, जो मार्क्सवादी व लेनिनवादी सिद्धान्तो पर खडा किया गया है, ऐसी कौन-सी खराबी आ गयी जिसकी वजह से स्तालिन इतनी बुराइयाँ कर सका। उसने यह भी कहा कि माना कि स्तालिन के जमाने मे ख्रुश्चेव-बुलगानिन वगैरह चूँ भी नही कर सकते थे, लेकिन इस वक्त इन लोगो ने स्तालिन की तारीफो के इतने पुल क्यो बाँधे? और दुनिया को इतना क्यो बहकाया? इसका क्या जवाब है?

तोग्लियाती के इस वक्तव्य के छपने की ही देर थी कि चेकोस्लोवाकिया के सरकारी रेडियो ने यह वक्तव्य तो प्रसारित किया ही, साथ ही उसके समर्थन मे अपनी टिप्पणी भी प्रसारित की। पोलैण्ड क्यो चुप रहता! पोलिश कम्यूनिस्ट पार्टी गरजी। फ्रास और अमरीका की कम्यूनिस्ट पार्टियो ने भी तोग्लियाती के वक्तव्य का समर्थन करते हुए रूस की आलोचना की। और सबके अन्त मे ब्रिटिश कम्यूनिस्ट पार्टी की सर्वोच्च राजनीति समिति ने तोग्लियाती के समर्थन मे वक्तव्य देते हुए, रूस से जवाब तलब किया। चीन की कम्यूनिस्ट पार्टी पर स्तालिन का कभी कोई प्रभाव रहा ही नही। उनके लिए वह समस्या और समस्या से निकलनेवाली समस्या का अभाव रहा। वे इस झगडे मे पडे ही नही।

इस पर **टाइम्स आफ इण्डिया** ने हाल ही के अपने सम्पादकीय मे 'हार्ट ऑफ दि मैटर' शीर्षक से लिखा कि तोग्लियाती का यह सवाल कि रूसी समाज-रचना मे ऐसा कौन-सा दोष उत्पन्न हो गया जिसकी वजह से स्तालिनवाद सफल हो सका, एक बुनियादी प्रश्न है। हम भी यह मानते हैं कि यह बिलकुल बुनियादी और उचित है। तोग्लियाती ने बिलकुल ठीक जगह गोली दागी।

इस प्रश्न का महत्त्व आज और भी अधिक है। दुनिया के एक-तिहाई से ज्यादा भूखण्ड मे आज कम्यूनिस्टो का राज्य है। यह राज्य नया-नया है। किन्तु उसकी तेजस्विता सभी को दिखायी दे रही है। इसलिए यह सोचना उचित है कि रूस म जो गलतियाँ हुईं, वे इन देशो मे न दुहराई जाये। तोग्लियाती के प्रश्न का महत्त्व इस दृष्टि स और भी बढ जाता है।

मजा यह है कि जबकि एक ओर रूस का अन्तर्राष्ट्रीय प्रभाव बढता जा रहा है, और उसकी तुलना मे ब्रिटेन और अमरीका फीके पड रहे है, तो उस समय ठीक कम्यूनिस्टो के घर मे रूस का प्रभाव घट रहा है, क्योकि इसके कोई लक्षण नही है कि ख्रुश्चेव तोग्लियाती का जवाब शीघ्रतापूर्वक दे सकेंगे। इसका मतलब यह नही है कि रूसी प्रभाव समाप्त करके कम्यूनिस्ट देश कम्यूनिज्म त्यागकर पूँजीवादी हो जायेंगे। इसका अर्थ केवल इतना है कि प्रोलितेरियन डिक्टेटरशिप का स्वरूप मजदूर वर्ग की तानाशाही का स्वरूप (जो मार्क्सवाद की बुनियादी धारणा है) परिवर्तन की प्रक्रिया से गुजरने की कोशिश करेगा। चीन ने इस सम्बन्ध मे केवल इतना कहा है कि यह तानाशाही समाज को पीछे की ओर मोडनेवाले काउण्टर रेवोल्यूशनरीज के खिलाफ है, जनता के खिलाफ नही। चीन एक कदम आगे बढकर यह भी कहता है कि सोचने, सस्था बनाने और विचार प्रकट करने की जनता को पूरी आजादी होनी चाहिए और उस आजादी का सगठन किया जाना चाहिए। रूसी सुप्रीम सोवियत की तुलना चीनी पार्लमिण्ट, पीपुल्स कन्सल्टेटिव एसेम्बली से कीजिए। असेम्बली म सरकार की खुलकर आलोचना होती है, (पढिए भारतीय अखबार) जबकि सुप्रीम सोवियत मे केवल सरकारी समर्थन के रस्मी भाषण होते है।

निश्चय ही रूस पर कम्यूनिस्टो की ओर से ही हमले हो रहे हैं। यह सही है कि उनके द्वारा कम्यूनिस्ट पार्टियो की आजादी और देश की आजादी अधिक विकसित और बलवान होगी।

किन्तु कम्यूनिज्म मतभेदो की बुनियाद पर नही चलता, एकमत के आधार पर चलता है, क्योकि उन सिद्धान्तो के अनुसार कदम-से-कदम मिलाकर करोडो आदमियो को एक साथ चलना पडता है। कम्यूनिज्म के अन्दर मतभेदो की सक्रियता का उद्देश्य एक राय पर आना है। यदि इस दृष्टि [से] देखा जाय तो इस समय कम्यूनिस्ट विचारधारा एक सक्रमण-काल स गुजर रही है। पहले भी ऐसा हुआ था। मार्क्स एगेल्स के बाद लेनिन तक आते-आते कई प्रश्नो को लेकर विभिन्न मत आ-आकर चले गये, जिसमे लेनिनवाद ने प्रत्यक्ष कार्य द्वारा अपना सत्य स्थापित किया। आज स्तालिन के बाद यह विचारधारा फिर से कई रग पकड रही है। यह आगे के विकास का सूचक है।

असल मे, तोग्लियाती को अमरीकी समीक्षक वाल्टर लिपमैन ने ही जवाब दे दिया है। रूसी बोल्शेविक क्रान्ति, प्रदीर्घ वैदेशिक हस्तक्षेप-युद्ध तथा द्वितीय विश्वयुद्ध के वर्ष रूसी कम्यूनिस्ट राज्य-काल से निकाल दें, तो शान्ति के वर्ष केवल तेईस बचते हैं। इनम स युद्ध विध्वस को हटाकर मामूली जिन्दगी बिताने के लिए आवश्यक मामूली निर्माण के वर्ष कम से-कम तीन साल तो रखिए। रहे तीस वर्ष। इस अत्यन्त अल्पकाल मे स्तालिन ने रूस को दुनिया का एक अत्यन्त शक्तिशाली देश बना दिया—आर्थिक, औद्योगिक, वैज्ञानिक और सामरिक दृष्टि

से। निश्चय ही, स्तालिन को अपनी इस लक्ष्य की सफलता के लिए, कठोर दण्ड-नीति इख्तियार करनी पड़ी, और कई जघन्य कार्य करने पड़े। किन्तु सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि स्तालिन ने अपने उद्देश्य में शत-प्रतिशत सफलता प्राप्त की। मौजूदा रूस उसकी इस सफलता का प्रत्यक्ष प्रमाण है। वाल्टर लिपमैन आगे लिखता है कि स्तालिन ईवान दि टेरिबल और पीटर दि ग्रेट की परम्परा में आता है—उनकी सारी विकृतियों और उनकी समस्त महानता के साथ। इस सफलता के लिए, स्तालिन ने देश में कम्यूनिस्ट पार्टी की तानाशाही, और कम्यूनिस्ट पार्टी पर अपनी व्यक्तिगत तानाशाही, कायम की, और खुद की देख-रेख में अपनी लक्ष्य-सिद्धि के उपायों का कार्यान्वय करवाया। आज जब कि अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति बदल गयी है, और रूस स्वयं एक शक्तिशाली राष्ट्र हो गया है, तो घर के अन्दर तानाशाही की जरूरत भी नहीं रही। विशेषकर इसलिए कि एक ऐसी नयी पीढ़ी देश का काम-काज चलाने लगी है, जिसका सम्बन्ध पुराने विवादों, प्रश्नों, और संघर्षों से कभी रहा ही नहीं, और जो उन्हें समझती भी नहीं।

वाल्टर लिपमैन का यह विश्लेषण सही होते हुए भी अधूरा है। तोग्लियाती यह पूछता है कि रूस में शासन और समाज का जो ढाँचा खड़ा किया गया उसमें कोई मूलभूत दोष होना चाहिए, जिसके फलस्वरूप स्तालिन मनमानी कर सका। इसका जवाब साफ है। स्तालिन ने ऐसे प्रशासकीय यन्त्र पैदा किये, सरकार के भीतर और पार्टी के भीतर, कि जिसके एक बटन को हिला देने मात्र से सारी मशीनें चल पड़ती और कार्य सफल हो जाता। एक विशेष अवधि के बाद, जब कि देश में कोई राजनैतिक विरोधी बचा नहीं, ये सब यन्त्र निरुपयोगी हो जाना चाहिए थे। किन्तु अपनी व्यक्तिगत तानाशाही के लोभ में वे कायम रखे गये, और स्वाभाविक रूप से काम के सिलसिले में ही जो मतभेद खड़े होते हैं, उन्हें भी दबाया गया। मतलब यह है कि मूल दोष यह उत्पन्न हुआ कि पार्टी और सरकारी संगठन के कुछ महत्त्वपूर्ण यन्त्र बगैर जरूरत के कायम रखे गये (एक जमाना था जब उनकी जरूरत थी)। इन यन्त्रों के साथ समाज के विकास की बढ़ती हुई शक्तियों की मुठभेड़ स्वाभाविक थी। यन्त्रों ने विकास को दबा डाला, जिसमें रूस की हानि हुई और खूब बदनामी भी। पश्चिमी देशों के उग्रपन्थी समाजवादी भी कम्यूनिस्टों से हट गये और विश्व के मजदूर आन्दोलन में फूट पड़ गयी। यह दूसरे विश्वयुद्ध के पूर्व की बात है। स्तालिन का मामला दबाया भी जा सकता था, किन्तु युगोस्लाविया को निकालकर स्तालिन ने कम्यूनिस्ट विश्व की सबसे बड़ी हानि की। वह तो चीन को निकालने के लिए भी तैयार था। वह चीन को निकाल भी देता, किन्तु उस देश की प्रतिष्ठा इतनी बढ़ी-चढ़ी थी कि वह कार्य लगभग असम्भव हो गया। मतलब यह कि मार्क्सवादी सिद्धान्तों के अनुसार, कम्यूनिस्ट पार्टी के भीतर तानाशाही नहीं चल सकती। पार्टी की तानाशाही की संगीन का मुँह उन तत्त्वों की तरफ होगा जो कम्यूनिस्ट क्रान्ति को उलटने की कोशिश करेंगे, न कि साधारण जनता की तरफ। तोग्लियाती को इस विश्लेषण से जवाब मिल जाना चाहिए। चीन उसका साक्षात् उत्तर है। क्योंकि अगर सोवियत समाज ही यहाँ से वहाँ तक गलतियों पर ही आधारित होता तो उस देश की सर्वतोमुखी उन्नति न हो पाती। केवल एक आदमी की संगीन से उन्नति सम्भव नहीं हो

सकती। उसमे करोडहा जनता का स्वेच्छापूर्वक दिया गया योग शामिल होता है।

केवल इतना और कहना जरूरी है कि कम्युनिस्ट जगत् मे पैदा हुई यह हलचल कल्याणकारी है और ख्रुश्चेव को इस बात के लिए बधाई देना चाहिए कि उसने बडी हिम्मत का काम किया। ध्यान मे रखने की बात है कि स्तालिन लगभग ईश्वर के समान पूजे जाते रहे हैं, यहाँ तक कि उनकी मृत्यु के उपरान्त भारतीय पार्लमिण्ट मे पण्डित नेहरू ने जो भाषण दिया वह इस बात का सूचक है। जो उन्हे ईश्वर नही मानते थे वे भी उन्हे एक महान् राष्ट्र निर्माता तो मानते ही थे — जो कि वस्तुत स्तालिन स्वय हैं।

[सारथी, 1 जुलाई 1956, मे 'अवन्तीलाल गुप्त' छद्मनाम से प्रकाशित]

ज़माने के बदलते हुए तेवर

प्रत्यक बडा देश आज अपनी पुरानी नीतियो को या तो बदलने के लिए मजबूर हो गया है या बदलता जा रहा है। इनमे म अमरीका एक है। यह सही है कि उसम होनेवाले परिवर्तन महत्त्वपूर्ण होकर दिखायी देना स्वीकार नही करते। किन्तु वे हैं जरूर। अगर ऐसा न होता तो तटस्थ देशो के बारे म बहस न छिडती। दूसरे, राजनीतिज्ञो न जो जनमत तैयार कर रखा है, अब उसी से भय खाकर वे उसमे एकाएक परिवर्तन की बात सोच नही पाते।

ध्यान म रखने की बात है कि भारत को जो अभी सहायता देनी स्वीकार की गयी, यह प्रस्ताव अट्ठाईस के विरुद्ध साठ से भी अधिक वोटो से मान्य हुआ। ठीक

किन्तु क्या पता, पण्डित नेहरू और आइजनहॉवर की बातचीत का साराश, तात्पर्य, या निष्कर्ष रिपब्लिकन पार्टी की रीति-नीति के विरुद्ध-सा प्रतीत होता ता? यह वर्ष अमरीकी चुनाव का है। रिपब्लिकन पार्टी की घोषित नीतिया के विरुद्ध आइजनहॉवर ने घोषित रूप से तटस्थ देशों के महत्त्व को स्वीकार किया था। अपनी पार्टी के चुनाव-हित की दृष्टि से डलेस ने, भोंडे ढग से उसका विपर्यास करते हुए, तटस्थ देशों को 'अनैतिक' कहा। आप समझ सकते हैं कि अमरीकी जनमत कितना भ्रष्ट किया जा चुका है। ऐसी स्थिति मे, रिपब्लिकन पार्टी की मान मर्यादा ध्यान मे रखकर आइजनहॉवर-नेहरू मुलाकात टाल देना एक ढग से

ी का अमरीका
ले नही थे। वे
एक कम्यूनिके

निकालनेवाले थे। अगर वह कम्यूनिर्के, कुछ हद तक, रिपब्लिकन पार्टी को कमज़ोर करता तो ? ऐसी स्थिति में, चुनाव के बाद ही, अमरीकी अध्यक्ष और नेहरू की बातचीत अधिक फलदायी होगी, इसमें कोई शक नहीं।

ध्यान में रखने की बात है कि अमरीकी विदेश विभाग जिस ढंग से स्तालिन-विरोधी मुहीम में भाग ले रहा है, वह ढंग उद्देश्यों में सन्देह उत्पन्न करता है। एक ओर उसका लक्ष्य दुनिया की कम्यूनिस्ट पार्टियों को रूसी प्रभाव से अलग करना है, तो दूसरी ओर बुलगानिन-ख्रुश्चेव के मौजूदा शासनकाल से अपने लिए अधिक-से-अधिक फायदा उठाना है, क्योंकि स्तालिन-विरोधी अमरीकी मुहीम रूसी शासकों की मौजूदा रीति-नीति को ही मज़बूत बना रही है। साथ ही, अमरीकी जनता की रूस-विरोधी भावना को भी सन्तुष्ट किया जा रहा है। इस प्रकार, आप देखेंगे कि एक ढेले से कई पक्षी मारे जा रहे हैं। क्राइम स्टोरीज़ सनसनीखेज़ तरीक़े से आगे आनेवाली यह अमरीकी मुहीम बड़ा महत्त्व रखती है। नहीं तो कोई ... अमरीकी कम्यूनिस्ट पार्टी के ... जाता। हमारे खयाल ... निकट सम्पर्क स्थापित करने के लिए प्रवृत्त होगा।

कॉमनवैल्थ देश अपने विचार-विमर्शों द्वारा पण्डित नेहरू द्वारा प्रतिपादित कार्यनीति के अधिक निकट आ रहे हैं। उनकी युद्ध-कार्यनीति तथा औद्योगिक-आर्थिक नीति का उद्देश्य यदि रूस के बदले हुए पैंतरे का जवाब देना ही हो जाय, तो प्रतिस्पर्धात्मक सह-अस्तित्व का सिद्धान्त मानकर, ब्रिटेन अमरीका से जितने कदम अलग हटकर रूस की ओर जितने कदम आगे बढ़ गया, उतने कदम कॉमनवैल्थ भी बढ़ जायेगा। मतलब यह कि ब्रिटेन की नीति बहुत हद तक कॉमनवैल्थ की नीति में सामान्य रूप से संशोधन प्रस्तुत करेगी। सामरिक और औद्योगिक नीति के क्षेत्र में, ब्रिटेन के रुख में परिवर्तन एक विश्वव्यापी संक्रमण काल को ही सूचित करता है।

रूस जितनी शीघ्रता और तीव्रता से अपनी नीतियों में परिवर्तन करता जा रहा है, उससे ब्रिटेन के मन में यह बात जम गयी है कि उस भी अपनी आदतों में ... ख़ास तौर से ब्रिटेन ... -व्यापारिक ... म्बन्ध रूस ... गैर-हाज़िर ... स हुआ कि ज़माने के बदले हुए तेवर से समझौता कीजिए या इतिहास के अन्धकार में विलीन हो जाइए। मतलब यह कि ब्रिटेन अब यह समझने लगा है कि नीतियों में पूरा परिवर्तन न सही, कम-से-कम उसका जामा तो बदला ही जा सकता है। कॉमनवैल्थ में आगे चलकर गोल्डकोस्ट, केन्द्रीय अफ्रीकन संघ और मलाया के शामिल ... अपने अधीन देशों को इस प्रकार रिआयतें देकर अपनी ... नके विद्रोह के। यदि इसी ढंग ... ती, तो ब्रिटेन की इज़्ज़त हतक ... ज़रूर है।

किन्तु उसका यह भय निराधार था कि रूस पश्चिमी एशिया में तेल के उसके कुएँ हथियाना चाहता है। रूस इस बात से कुछ और भयंकर कर चुका है और कर रहा है। यह भयंकर कृत्य है, लेबेनान और यमन, सीरिया और इजिप्ट-जैसे देशों को अपने पैरों पर खड़ा होने के लिए प्रोत्साहित करना। एक बार मज़बूत हो जाने पर, कोई अनुकूल अवसर देख ये राष्ट्र खुद ही अपनी सम्पत्ति विदेशी हाथों से छीन लेंगे। ध्यान में रखिए कि बड़े राष्ट्रों में रूस ही पहला राष्ट्र था, जिसने बाण्डुंग सम्मेलन की दुहाई दी। रूस की इस तिकड़म को सभी पहचानने लगे हैं। किन्तु रूस कहता है कि ये तिकड़म वे खुद क्यों नहीं करते। बुलगानिन-ख्रुश्चेव ने भारत में पश्चिमी राष्ट्रों को कहा था कि वे मैत्री में प्रतियोगिता करें। इस प्रकार, हम देखते हैं कि दुनिया का दृश्य यह है कि दो गुटों के बीच के फ़ैसले की शक्ति क्रमशः तटस्थ राष्ट्रों की तरफ़ आती जा रही है।

युगोस्लाविया से निकली हुई यह विज्ञप्ति बिलकुल ठीक थी कि आगे आने-वाली नेहरू-नासिर-टीटो मुलाकात का प्रभाव केवल पश्चिमी एशिया और अरब सागर के क्षेत्र में ही सीमित न रहकर उससे बहुत आगे बढ़ गया है। रूस से नयी उलझन और सुलझन लेकर लौटे हुए टीटो की तटस्थता जब इतनी कामयाब हुई, तो नये कर्तव्य और उत्तरदायित्व भी दिखायी देने लगे। सक्रिय तटस्थता के प्रचण्ड रूप से सफल तीन राजनीतिज्ञ यह खूब पहचानते हैं कि दुनिया का शक्ति-सन्तुलन भंग करके नया शक्ति-सन्तुलन स्थापित करने की क्षमता केवल सक्रिय तटस्थ देशों के पास ही है। तटस्थ देश यह बात खूब पहचानते हैं कि उनके विकास की प्रक्रिया साम्राज्यवाद के अस्त की प्रक्रिया है। उनकी शक्ति, सम्पदा और श्री की वृद्धि से ही अन्य गुलाम, आधे-गुलाम, या भाड़े के टट्टू देशों की जनता सच्ची राजनैतिक और आर्थिक आज़ादी प्राप्त कर सकेगी। मतलब यह कि इस राजनैतिक प्रक्रिया की तीव्रता और प्रसार का क्षेत्र बढ़ता और फैलता जायेगा। रूस इन राष्ट्रों के इस महत्त्व को देखकर उन्हें बढ़ावा देता जा रहा है।

तटस्थ राष्ट्रों के इस बढ़ाये गये और बढ़ते हुए महत्त्व के प्रति ध्यान देने के लिए अमरीका को मजबूर होना पड़ा। इसीलिए, उस देश में भारत की तटस्थता के बारे में एक व्यापक बहस खड़ी हो गयी। बहस का अभी कोई नतीजा नहीं निकला। उगती हुई सुबह के पीले आसमान में डूबते हुए सितारों की तरह अमरीकी राजनैतिक प्रतिभा फीकी पड़ती जा रही है।

लेकिन, फिलहाल, अमरीका के पैर नहीं उखड़ेंगे। एक बार अन्तर्राष्ट्रीय मोर्चों पर रूसी नीति अत्यन्त दृढ़ हो जाने के बाद, रूस को अपने घर के भीतर भी झाँकना है। पंचवर्षीय आयोजन में संलग्न उसके नौजवानों की दृष्टि वह अधिक विचलित नहीं करना चाहता, इसीलिए वह स्तालिन-विरोधी सभी डोज़ एकदम नहीं पिलाना चाहता। आज उसे सिद्धान्त से अधिक व्यावहारिक लक्ष्यों की पूर्ति करना ज़रूरी है। इसलिए, वह वैचारिक क्षेत्र में पैदा हुई हलचलों से काफ़ी लापरवाह होकर काम कर रहा है।

लेकिन वह अधिक दिनों तक ऐसा नहीं कर सकता। एक बार उसे वैचारिक युद्ध में कूदना ही पड़ेगा। स्तालिन के साथी के रूप में, रूसी शासकों पर काफ़ी मूलभूत आरोप लगाये जा रहे हैं। अन्य देशों के सर्वमान्य कम्यूनिस्ट नेताओं की ओर से उन्हें इन आरोपों का जवाब देना ही पड़ेगा। यदि उन्होंने नहीं दिया तो

उनसे इतिहास दिलवायेगा। दूसरे, जो जनतान्त्रिक प्रक्रिया उन्होंने अपने देश और अन्य यूरोपीय कम्यूनिस्ट देशों में शुरू कर दी है, वह बीच में ही नहीं रोकी जा सकती।

लक्षण ऐसे हैं कि इस प्रक्रिया को मुक्त गति देने के लिए रूसी नेता आज तैयार नहीं हैं। (यह अवश्य कहा जा सकता है कि चूँकि आज वे अन्तर्राष्ट्रीय मोर्चों पर डटे हुए हैं, इसलिए भीतरी बातों पर ज्यादा ध्यान देने की, फिलहाल, उन्हें फुरसत नहीं है) । नहीं तो कोई कारण नहीं है कि वे इतालवी कम्यूनिस्ट नेता तोग्लियाती के वक्तव्य को प्रावदा या रूस के किसी भी पत्र में प्रकाशित न करें, (तोग्लियाती के वक्तव्य का महत्त्व इसलिए है कि ब्रिटेन, चेकोस्लोवाकिया, फ्रांस और अमरीका की कम्यूनिस्ट पार्टियों ने उसका समर्थन किया है), किन्तु संयुक्त राज्य अमरीका के एक कम्युनिस्ट नेता यूजीन डेनिस का एक लेख छाप दें। मतलब यह कि वे कम्यूनिस्ट दुनिया की हलचलों को अपने नौजवानों की आँखों से, इस समय, छुपाना चाहते हैं, जबकि वे असल में छुप नहीं सकतीं। आज नहीं तो कल, रूस और उसके बाहर यह आवाज खड़ी हो जायेगी कि रूस का कदम जब यहाँ तक जनतान्त्रिक किया गया है तो उसे और भी किया जाय। प्रश्न यह है कि इस प्रक्रिया का रूप क्या होगा। क्या यह शान्तिपूर्ण होगी या अशान्तिपूर्ण? क्या बुलगानिन-ख्रुश्चेव इसे सम्पन्न कर सकेंगे या उन्हें गद्दी छोड़ देनी पड़ेगी? आगे के वर्ष इसी प्रश्न का उत्तर देंगे। दुनिया की गतिविधि पर भी इन प्रश्नों के उत्तरों का प्रभाव पड़े बिना नहीं रहेगा।

[सारथी, 8 जुलाई 1956, में 'अवन्तीलाल गुप्त' छद्मनाम से प्रकाशित]

नेहरूजी की जर्मनी यात्रा का महत्त्व

पण्डित जवाहरलाल नेहरू की जर्मनी यात्रा यूरोपीय इतिहास की एक महत्त्वपूर्ण घटना साबित होनेवाली है। यद्यपि जर्मन चैंसलर एडिनॉवर और नेहरू की संयुक्त विज्ञप्ति केवल सामान्य रूप से ही निःशस्त्रीकरण तथा विश्व शान्ति की बात करती है, और यद्यपि इस विज्ञप्ति के पीछे इन दोनों की दृष्टियों में मौलिक मतभेद है, किन्तु इस ढंग की विज्ञप्ति निकल जाना, सरकारी तौर पर पण्डित नेहरू का जोरदार स्वागत होना, विश्वविद्यालयों द्वारा उपाधि-दान, बॉन में महात्मा गांधी स्ट्रीट बनाये जाने का प्रस्ताव, भारत को यान्त्रिक तथा अन्य वैज्ञानिक सहायता, भारतीय छात्रों को स्कॉलरशिप्स दिये जाने की घोषणा, तथा मान्य सरकारी नेताओं के भाषण—यह सूचित करते हैं, कि श्री एडिनॉवर ने जनता के सामने एक हद तक झुकने की बात अपना ली है। अगर जर्मनी में पण्डित नेहरू के भाषणों का, और उसी समय अमरीका में श्री वी. के. कृष्णा मेनन के भाषणों का, विश्लेषण किया जाय, तो पता लगेगा कि दोनों भारतीय कूटनीतिज्ञ

अपने-अपने स्थान पर अमरीकी नीतियों के विरुद्ध वातावरण तैयार करते जा रहे हैं। उस जर्मनी में, जिसे पूरा यूरोप अमरीका का एक आर्थिक-औद्योगिक उपनिवेश मानता है, और जिससे इस वस्तु-स्थिति से नाटो के सदस्य यानी फ्रांस और अमरीका तक सतर्क, सचेत और आतंकित रहते हैं—उस जर्मनी में पण्डित नेहरू द्वारा यह घोषणा करना कि संयुक्त राज्य अमरीका दुनिया को परस्पर-विरोधी खण्डों में बाँट देना चाहता है, एक खास मानी रखता है। पश्चिमी जर्मनी की स्थिति पर विचार करते वक्त इस बात को आँखों की ओट नहीं किया जा सकता कि यह देश नाटो का नहीं अमरीका का बहुत बड़ा गढ़ है। इस गढ़ में आकर, अमरीका पर ज़ोर करने का उद्देश्य जर्मन जनमत को एक विशेष प्रवृत्ति की ओर अधिक दृढ़ करना है। एडिनॉवर के मत-विचार जर्मनी के जनमत से बिलकुल दूर जा चुके हैं। अब स्थिति केवल यह है कि या तो एडिनॉवर जर्मन जनता के विचारों के सम्मुख झुककर नीति निर्धारित करेंगे, या व जर्मन सोशल-डेमोक्रेटिक पार्टी के नेता श्री आलेनहॉवर के हाथ मजबूत करते हुए सिंहासन त्याग करेंगे। वस्तुत, पण्डित नेहरू की स्वतन्त्र, सक्रिय तटस्थ-नीति ने यूरोप पर हमला बोल दिया—ऐसा आक्रमण जिसे जनता स्वयं स्वीकार कर रही है।

पश्चिम जर्मनी और पूर्व जर्मनी का एकीकरण तब तक सम्भव नहीं है, जब तक पश्चिमी जर्मनी के कर्णधार स्वतन्त्र बन्धनहीन तटस्थता की, तथा विश्व-शान्ति और आपसी समझौते की, नीति स्वीकार नहीं करते। इस अनिवार्यता की स्थिति स्वीकार करने में, पश्चिम जर्मनी के दक्षिणपन्थी नेता इस समय हिच-किचा रहे हैं। ऐसा न हो कि उनकी हिचकिचाहट खत्म होने के पहले ही वे गद्दी से उतार दिये जायें।

यूरोप में, पिछले कई दिनों से, पण्डित नेहरू की नीति के समर्थन का क्षेत्र अधिक-से-अधिक व्यापक होता जा रहा है। फ्रांस की सभी जनतान्त्रिक प्रगतिशील शक्तियों ने, जिनमें उस देश की सबसे बड़ी पार्टी कम्यूनिस्ट पार्टी भी शामिल है, अल्जीरिया-सम्बन्धी समस्या पर पण्डित नेहरू के सुझावों का घोषित रूप में समर्थन किया है। ब्रिटिश कॉमनवैल्थ कान्फ्रेंस को पण्डित नेहरू ने उचित दिशा की ओर मोड़ दिया और, अब पण्डित नेहरू जर्मन समस्या को उसके सुलझाव की दिशा में मोड़ रहे हैं।

जर्मन समस्या को उसकी सुलझन की दिशा में मोड़ने का अर्थ है एक ऐसी धारा को गति देना जो आगे चलकर यूरोपीय राजनीति का नक्शा बदल देगी। एक तटस्थ स्वतन्त्र और शान्तिप्रिय जर्मनी, यूरोप में नवीन स्थैर्य और सुख शान्ति का विकास करेगा ही, साथ ही विश्व के आर्थिक और औद्योगिक विकास में उसका बहुत बड़ा योग होगा। प्रश्न यह है कि जर्मनी अपना यह अनिवार्य भवितव्य किस ढंग से हासिल करेगा। समझौते के मार्ग से, युद्ध के मार्ग से, या गृह-युद्ध के पन्थ में? जर्मन एकीकरण प्रदीर्घ अवधि तक रुक नहीं सकता। अभी से ऐसी सम्भावनाएँ नज़र आ रही हैं जो उस क्षेत्र में आगे चलकर भीतरी अशान्ति के चित्र प्रस्तुत करेंगी। ऐसी स्थिति में, विवेक और बुद्धिमत्ता का तकाजा यह है कि जर्मन एकीकरण शान्तिपूर्ण हो और वह विश्व शान्ति में सहायक हो सके। किन्तु, जर्मनी के भीतर ऐसे शक्तिशाली तत्त्व हैं जो इस मार्ग में लगातार बाधा पहुँचा रहे हैं और पहुँचायेंगे। ऐसी स्थिति में, जर्मनी के सामने सिर्फ दो ही मार्ग बच जाते हैं। एक,

अमरीकी इशारे पर चलते हुए केवल यथास्थिति बनाये रखने में ही कर्त्तव्य की इतिश्री समझना। नम्बर दो, एकीकरण तथा तटस्थता के शत्रु इन तत्त्वों पर राजनैतिक अनुशासन करना, और उन्हें हमेशा के लिए कमजोर करना। दूसरे शब्दों में, पश्चिम जर्मनी तब एकीकरण प्राप्त कर सकेगा, जब वह अपने भीतर के विरोध को हमेशा के लिए समाप्त कर दे। यह कैसे होगा, अभी से नहीं कहा जा सकता। सिर्फ इतिहास ही बता सकता है—वह इतिहास जो आगे बननेवाला है।

इस बीच पश्चिम जर्मनी में पण्डित जवाहरलाल नेहरू के अभूतपूर्व स्वागत से अमरीकियों का हक्का-बक्का रह जाना स्वाभाविक है। आज जर्मन उद्योग में अमरीकियों का लगभग आधा पैसा लगा हुआ है। उसी के प्रोत्साहन से, जर्मन उद्योग दुनिया के बड़े बड़े देशों की तिजारत से होड़ कर रहा है। यही नहीं, दक्षिण अमरीका में आज जर्मन पूँजी फिर से प्रवेश कर रही है। यद्यपि नाटो के प्रति जर्मनी ने भक्ति-भाव दिखाया, किन्तु वह सिर्फ मुफ्त का शोर था, क्योंकि जर्मनी ने आज तक नाटो के अन्तर्गत, तथा उसके लिए प्रस्तावित जर्मन सेनाओं का सगठन नहीं किया है, जबकि यूरोप में ब्रिटेन तथा फ्रांस को नाटो का भार ढोना पड़ रहा है। साथ ही, पश्चिमी जर्मनी में पड़ी हुई ब्रिटिश अमरीकी फौजों का खर्च अभी भी पश्चिमी जर्मनी ने नहीं दिया है। ऐसी हालत में, फौजों और युद्धास्त्रों का कोई खर्च पश्चिमी जर्मनी के कन्धे पर नहीं आया। इस अनुकूल परिस्थिति से लाभ उठाकर पश्चिमी जर्मनी का उद्योग, जिसका एक बड़ा महत्त्वपूर्ण हिस्सा अमरीकी है, दुनिया में महत्त्व और प्रतिष्ठा प्राप्त करने लगा। आज जर्मन यन्त्रविद् और तन्त्रविद् स्पेन, पुर्तगाल, इजिप्ट, इराक, ईरान और अफगानिस्तान के विकास में सहायता कर रहे हैं। इस उन्नति का श्रेय लेनेवाले अमरीका में पश्चिमी जर्मनी के इस नेहरूवादी उत्साह के प्रति चुपचाप छुपी हुई आशंका प्रकट की जाय तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

असल में, युद्ध या अपने लिए युद्धोद्योग पश्चिमी जर्मनी के कारखानदारों की मर्जी के बिलकुल खिलाफ है। यही कारण है कि वहाँ के पूँजीपतियों का एक वर्ग एडिनॉवर-विरोधी तत्त्वों को पश्चिमी जर्मन नीति बदलने के लिए मजबूत करता रहा है। यही नहीं, वरन् पुराने फौजी नेता अब तटस्थतावादी नयी पार्टियाँ बना रहे हैं। एटमिक और हायड्रोजनी युद्ध सबसे पहले जर्मन कल-कारखानों का नाश करेगा। ऐसी स्थिति में, पश्चिमी जर्मनी के ऊँचे-से ऊँचे प्रतिक्रियावादी तत्त्व यह मानने लगे हैं कि पश्चिमी जर्मनी को तटस्थता की नीति ही अंगीकार करनी चाहिए।

लेकिन, वे ऐसा खुलकर नहीं कह सकते थे। इसका कारण स्पष्ट है। पश्चिमी जर्मन उद्योग में आज जो अमरीकी हिस्सेदारी है, वह एक मनोवैज्ञानिक गुत्थी बनकर एडिनॉवर जैसे राजनीतिज्ञों को सता रही थी। यह मनोवैज्ञानिक गुत्थी इस बात को स्पष्ट करती है कि पश्चिमी जर्मनी में तटस्थता की प्रवृत्ति अपने लिए एक विशेष रास्ता तलाश कर रही है, जो उसके इतिहास से सुसंगत हो। पश्चिम जर्मनी की पण्डित नेहरू की भेंट के दौरान में, एडिनॉवर ने कहा कि अमरीका और सोवियत यूनियन के बीच जितनी अधिक मैत्री बढ़ेगी उतनी ही हद तक पश्चिमी जर्मनी को सुख पहुँचेगा। दुनिया में शान्ति स्थापित करने के उद्देश्य से भारत जो काम करता आ रहा है, वह पश्चिमी जर्मनी के लिए अनुकूल है।

वस्तुत, एडिनॉवर का यह कतई नया थीसिस (सिद्धान्त) है। एडिनॉवर के मुँह से यह बात निकलना भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

सादी ज़बान में कहा जाय तो इसका अर्थ यह है कि हम तटस्थतावाद के खिलाफ और रूस के विरोध में आज तक जो शोर-गुल मचाते आये, वह तो हमें मचाना पड रहा था इसलिए मचाया, वरना ऐसा करने की हमारी कोई इच्छा नहीं थी। हम तो यह चाहते हैं कि रूस और अमरीका की दोस्ती हो जाय, जिससे कि हम *'यह पक्ष ले या वह पक्ष'* वाली चिन्ता से बरी होकर सारी दुनिया में जर्मन माल छा दें। इसी दृष्टिकोण से, विश्व शान्ति के लिए भारतीय प्रयत्न हमारे लिए मूल्यवान हैं। बाह पट्ठे भारत! हमको अमरीका के साथ रहने दो, किन्तु तुम दो लडाकुओं को थामे रक्खो, जिससे हमारे औद्योगिक उत्पादन में कोई विघ्न-बाधा न आये। हम तुम्हारी कद्र करते हैं। हम तुम्हें सहायता देंगे।

पश्चिमी जर्मनी में भारत का एकाएक सम्मान बढ जाना—यहाँ तक कि उस प्रदेश की राजधानी बॉन में एक सडक का नाम 'महात्मा गाधी स्ट्रॉस' रखा जाना—तब तक समझ में नहीं आयेगा जब तक हम इस तथ्य की ओर ध्यान नहीं देते कि आज भारत रूस का कान्फिदाँ (विश्वसनीय दोस्त, जिससे अपनी बात कही जा सके) और ब्रिटेन का एक महत्त्वपूर्ण साथी है और अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति की भारतीय व्यवस्था रत्ती मासा नहीं होती है। हम भारतीय जन पण्डित नेहरू और उनके साथियों की इस महाप्रगल्भ बुद्धिमता की सराहना करते हुए यह भूल जाते हैं कि भारत ने दुनिया के परिवर्तन में एक ऐसा योग दिया है, कि जिससे उसका यह उत्तरदायित्व दिन दूना और रात चौगुना बढ रहा है, जिसकी जिम्मेदारी हम पर भी है। पश्चिमी जर्मनी भारत से चाहता क्या है? इस देश में कारखाने खोलने की इजाज़त? हाँ, वह भी। लेकिन इससे भी बढकर वह यह चाहता है कि किसी-न-किसी तरह भारत उसकी समस्याएँ हल करने में सहायक हो सके। यह बहुत नाजुक और बडी जिम्मेदारी है। भले ही पण्डित नेहरू यह कहे कि उन्होंने समझौते कराने का पेशा इख्तियार नहीं [किया] है, किन्तु ध्यान रखिये, उनके नसीब में यह लिखा हुआ है कि उन्हें अन्य देशों की समस्याएँ हल करने में सहायक होना ही पडेगा।

पण्डित नेहरू की इस विशेष स्थिति को दुनिया मानती है, भले ही वे न मानें। आज पश्चिमी जर्मन नेता भारत से खुलकर बात कर सकते हैं। अपने दोस्त अमरीका से बात करते वक्त काफी लीपा-पोती करनी पडती है। जबर्दस्ती रूस-विरोधी आवेश लाना पडता है, वक्तव्य निकालना पडते हैं, डलेस के सामने डलेस का बाप बनना पडता है। कुल मिलाकर, परिस्थिति वहीं रहती है, जहाँ थी।

जर्मनी क्या करे !!

पश्चिमी जर्मनी अमरीका से अपने सम्बन्ध तोड नहीं सकता, किन्तु सोवियत रूस से अपने सम्बन्ध अच्छे कर सकता है। किन्तु उसे वैसा करने कब दिया जाता है। यदि उसने इस उद्देश्य से कदम बढाया तो वह अमरीका का विश्वास खो देगा। इसलिए पश्चिमी जर्मन यह चाहता है कि भारत सोवियत रूस और अमरीका के

बीच दोस्ती करा दे। बस, फिर उसके लिए चाँदी ही-चाँदी है। निश्चय ही भारत आज इस स्थिति में नहीं है कि अमरीका पर वह कोई दबाव ला सके। ब्रिटेन के द्वारा कहला सकता था, किन्तु अमरीका की विदेश-नीति पर पुर्तगालवालों का और स्पेनवालों का प्रभाव हो जाया करता है, किन्तु ब्रिटेन और फ्रांस का नहीं। ऐसी स्थिति में, जर्मनी की समस्या काफी मुश्किल है। रूसवाले सिर्फ इस बात की राह देख रहे हैं कि पश्चिमी जर्मनी के पूँजीपतियों में कब इतना आत्मविश्वास और औद्धत्य आता है कि वे अमरीकी नीति की मकड़ी के जाले से छूटने की तरफ उन्मुख हों। फिलहाल, वे सिर्फ एडिनॉवर की मृत्यु की राह देख रहे है, क्योंकि उन्हें यह मालूम है पश्चिम जर्मनी की सत्ता, एडिनावर के बाद, उनके विरोधियों के हाथ में पहुँचनेवाली है। ये विरोधी तबके, दो जर्मन खण्डों में किसी-न-किसी समझौते के वास्ते, रूस से समझौते के लिए अत्यन्त उत्सुक हैं। इस तथ्य ने एडिनॉवर के दिमाग में भी अपनी जगह जमा रखी है।

इसी तथ्य ने एडिनॉवर को प्रेरित किया कि वह भारतीय तटस्थता-नीति की, और विश्वविजयी शान्ति-नीति की, प्रशंसा करे। इससे यह स्पष्ट झलकता है कि स्वयं एडिनॉवर किसी-न-किसी ढंग की तटस्थता के लिए अकुला रहे हैं। वह तटस्थता कैसे स्वीकार की जाय, किस ढंग से वह घर के पूँजीपतियों और उनके अमरीकी दोस्तों को मान्य होगी, इसका कोई सही अन्दाज़ एडिनॉवर को नहीं है। उसने सिर्फ इतना बता दिया कि हम भी तुम्हारी ही भाँति विश्व शान्ति और तटस्थता चाहते हैं। अमरीका को यह एक इशारा है।

[सारथी 22 जुलाई 1956, में 'अवन्तीलाल गुप्त' छद्मनाम से प्रकाशित]

विश्व इतिहास की नयी रेखाएँ

रूस के एक मन्त्री मिकोयान की टीटो से एकाएक मुलाकात कूटनीतिक परम्पराओं के अनुसार नहीं है। इस आकस्मिकता के पीछे जो राज़ है, उसके बारे में अनुमान ही किया जा सकता है। असम्भव नहीं है कि उसका सम्बन्ध अस्वान बाँध से हो।

इजिप्ट का अस्वान बाँध, वहाँ की जनता की गहरी भावनाओं से सम्बन्धित हो गया है। समाचार था कि कर्नल नासिर के पास अस्वान बाँध के सम्बन्ध में रूसी सहायता की योजना है, जैसे कि उसके पास विश्व बैंक की सहायता तथा ब्रिटेन और अमरीका द्वारा सहायता की योजनाएँ भी मौजूद हैं। समाचार पत्रों में यह भी बताया गया था कि कर्नल नासिर को जिस देश की शर्तें उपयुक्त होंगी, उसकी सहायता लेना चाहेगा। किन्तु रूसी विदेशमन्त्री शेपीलोव के वक्तव्य से पता चलता है कि इजिप्ट ने रूस से इस सम्बन्ध में सहायता की बात तो चलायी, किन्तु वह अस्पष्ट रूप से थी, न उस सहायता पर नासिर ने कोई ज़ोर ही दिया था। शेपीलोव का वक्तव्य अगर गलत होता तो इजिप्ट के क्षेत्रों द्वारा उसका तुरन्त खण्डन हो जाता। चूँकि खण्डन नहीं हुआ है, इसलिए यह कहा जा सकता

है कि नासिर का उद्देश्य रूस से सहायता लेने की अपनी मुद्रा और भ्रू-भंगिमा बताना था, कि जिससे डरकर अमरीका और ब्रिटेन इजिप्ट की शर्तों पर सहायता देने के लिए तैयार हों।

एंग्लो-अमरीकी बनियों ने रूस की आर्थिक क्षमता का सही-सही अन्दाज़ करके यह निश्चय कर लिया कि रूस अस्वान बाँध जैसी विशाल योजना की सम्पूर्ण आर्थिक ज़िम्मेदारी अपने ऊपर लेने की क्षमता नहीं रखता। इस स्थिति से लाभ उठाकर, एंग्लो-अमरीकियों ने नासिर के पैंतरे की काट कर दी। पहली बार यह काट की गयी है इसलिए हमें एक ओर एंग्लो-अमरीकी कूटनीतिक बुद्धिमानी की याद दिलाना पड़ती है, तो दूसरी ओर, यह कहना पड़ता है कि एंग्लो-अमरीकी क्षेत्र मामूली कूटनीतिक विजय के लिए अस्वान बाँध से सम्बन्ध रखनेवाली मिस्री भावना की विजय, यानी इजिप्ट का दिल जीतने की कुरबानी दे सकने की मूर्खता कर सकते हैं। यह मूर्खता इतनी बड़ी है कि आगे चलकर इन क्षेत्रों को और पछताना पड़ेगा।

इजिप्ट की यूगोस्लाविया से दोस्ती, कम्यूनिस्ट देशों से अब तक ली हुई सहायता तथा आगे चलकर और मिलनेवाली सहायता, तथा भारत से मित्रता का क्षेत्र अब इतना बढ़ गया है कि इजिप्ट अब अपनी तटस्थता त्यागकर पश्चिम एशिया में एंग्लो-अमरीकी नीति का पुछल्ला नहीं बन सकता। यूगोस्लाविया के ब्रिआनी में नेहरू-नासिर-टीटो की संयुक्त विज्ञप्ति ही यह बताती है कि इजिप्ट और उस क्षेत्र के अन्य देशों की नीति क्या होगी और क्या हो सकती है। ऐसी स्थिति में भले ही एंग्लो अमरीकी राजदूत रोजमर्रा नासिर से मिलते रहें, वे न उसका विश्वास प्राप्त कर सकते हैं, न स्वयं उसके लिए विश्वासयोग्य ही हो सकते हैं।

टीटो से मिकोयान की मुलाकात कर्नल नासिर की औद्योगिक महत्त्वाकांक्षाओं से सम्बन्ध रखती है, भले ही यदि संयुक्त विज्ञप्ति निकाली गयी तो उसका विज्ञप्ति में ज़िक्र हो या न हो। एंग्लो-अमरीका द्वारा अस्वान बाँध के सम्बन्ध में इनकार, इसके तुरन्त बाद शेपीलोव का वक्तव्य, और उसके फौरन बाद मिकोयान की टीटो से मुलाकात, एक सूत्र में बँधे हुए हैं। मिकोयान रूस के आर्थिक विकास-विशेषज्ञ तथा व्यापार-विशेषज्ञ हैं, शेपीलोव से भी अधिक वे रूस की आर्थिक क्षमता जानते हैं। ऐसी स्थिति में, मिकोयान टीटो के ज़रिये इजिप्ट को रूस की पूरी आर्थिक बाज़ू और पूरा रुख समझाने के लिए ही ब्रिआनी आये।

इसका कारण स्वयं अस्वान बाँध और उसमें लिपटी हुई जनता की भावनाएँ हैं। यदि अरब जगत् ने यह धारणा बना ली कि रूस इस किस्म की बड़ी सहायता दे नहीं सकता तो उस महत्त्वपूर्ण क्षेत्र में रूस की प्रतिष्ठा की हानि और उसकी आर्थिक शक्ति का गलत अन्दाज़ा हो सकता है। इस अन्दाज़ से सहायता के लिए एंग्लो-अमरीकियों पर आर्थिक रूप से निर्भर रहने की प्रवृत्ति भी बढ़ जायेगी। इस सम्भावना को ध्यान में रखकर ही, मिकोयान ने एकाएक टीटो से मुलाकात की।

असम्भव नहीं है कि टीटो से बातचीत के दौरान में, इजिप्ट के आर्थिक विकास के बारे में, खास तौर पर अस्वान बाँध के सम्बन्ध में, एक नयी योजना सामने आये। वह योजना है प्रत्येक हमदर्द देश द्वारा उस बाँध के लिए, थोड़ी-थोड़ी सहायता। ऐसे देश कम नहीं। पूरे एक दर्जन होंगे, जिनमें कम्यूनिस्ट जगत् के

ग्यारह देश—जिनमें चीन और रूस तथा यूगोस्लाविया शामिल हैं—तथा भारत है। हो सकता है कि इसमें से बहुतेरे, केवल सवेतात्मक व प्रतीकात्मक मदद ही दे सकें। किन्तु यह निराला उद्योग होगा। असम्भव नहीं है कि आगे चलकर इस सयुक्त मदद में फ्रांस कुछ हाथ बँटाये, जिसके देखा-देखी कुछ और देश आगे आयें। निश्चय ही, ऐसी योजना एक ओर पिछड़े देशों की सयुक्त कार्यवाही का प्रतीक होगी, तो दूसरी ओर, इजिप्ट की जनता की निर्माणात्मक पहल कदमी के द्वारा उस जनता के हृदय में नवीन आत्मविश्वास और सामर्थ्य उत्पन्न करेगी। ध्यान म रखने की बात है कि इजिप्ट की जनता अपने अखबारों द्वारा यह ऐलान कर चुकी है कि वह स्वय अपनी ताकत से अस्वान बाँध बनायेगी।

जो हो, यह निश्चय है कि इजिप्ट किसी-न-किसी तरह अपनी राष्ट्रीय महत्त्वाकाक्षाओ को पूरा करेगा। ज्यो ज्यो उसकी पूर्ति का रास्ता खुलता जायगा, इजिप्ट अपने प्राचीन गौरव और सामर्थ्य को प्राप्त करेगा। निश्चय ही, इस पूर्ति का रास्ता खोलने मे यूगोस्लाविया को बहुत आगे आना है। वह देश अपनी ऐतिहासिक जिम्मेदारियो के प्रति पूर्ण सचेत भी है। इजिप्ट दुनिया का एक ऐसा क्षेत्र है, जहाँ इतिहास बन रहा है।

यूरोप मे [पूर्वी] जर्मन क्षेत्र भी एक ऐसा ही खण्ड है। उस देश के नेताओ ने खू्श्चेव मे इस बात का तोहफा पा लिया कि पश्चिमी जर्मनी एकता की बात करने के लिए तुम्हारा दरवाजा खटखटायेगा। रूस से लौटकर वहाँ के नेताओ ने बयान दिया कि हम पश्चिमी जर्मनी से समझौता करने के लिए [तैयार] हैं, बशर्ते कि [वह] जमीनो का किसानो म वितरण कर दे और एकाधिकारवादी तथा युद्धापराधी जर्मन उद्योगपतियो की सम्पत्ति का राष्ट्रीयकरण कर ले। निश्चय ही, ये दोनो शर्तें पश्चिमी जर्मनी को अमान्य होंगी। आज वह जर्मन खण्ड पूर्वी खण्ड को कोई मान्यता देता ही नही, इसलिए पश्चिमी खण्ड की सरकार उसे सुनेगी ही नही। ऊपर से ये शर्तें ऐसी मालूम होती हैं मानो उनके द्वारा समझौते के दरवाजे और बन्द हो गये। असल मे चूँकि पूर्वी क्षेत्र के नेताओ को यह मालूम है कि बातचीत तो उनसे कोई करेगा नही, इसलिए आज एकता की बात, पूरी परिस्थिति देखते हुए, उनके लिए उठती ही नही। ऐसी हालत म, जरूरी है कि वे अपनी कम-से-कम शर्तें पश्चिमी क्षेत्र की जनता के सामने रख दें, जिससे कि आगे चलकर उसे कोई गलतफहमी न हो।

पूर्वी जर्मन सरकार ने ये शर्तें, वस्तुत एडिनॉवर और उनकी समाजवादी पार्टी के सामने रखी है। इस पार्टी का वजन दिन-दूना रात-चौगुना होता जा रहा है। पूर्वी जर्मन नेता यह जानते हैं कि कुछ ही वर्षों बाद वह समय आयगा जब आज की शासक पार्टी जनता मे अपनी पूरी इज्जत खत्म कर चुकी होगी। आज की क्रिश्चियन डेमोक्रेटिक पार्टी वह वहाँ के बडे युद्धापराधी उद्योगपतियों और अमरीकियो द्वारा समर्थित पार्टी है। आज जब कि तनाव का वातावरण कम हो गया है, युद्ध की सम्भावनाएँ घट रही हैं, तो पश्चिमी जर्मनी मे बारह डिवीजनें बनाने के लिए आवश्यक युद्ध-सज्जा की दिशा म, अनिवार्य भरती के अतिरिक्त तीन सौ नब्बे करोड रुपयो की युद्ध-सामग्री का आर्डर ब्रिटिश कम्पनियों को दिया जा चुका है। ग़रीब पश्चिमी जर्मनी को, इसके अलावा, अपने क्षेत्र म पडी हुई

विदेशी फौजो का खर्च देना पड रहा है। ऐसी स्थिति मे, सम्भव नही है कि जनता बहुत दिनो तक एडिनॉवर की नीति का समर्थन करती रहे।

आज यह हालत हो गयी है कि पश्चिमी जर्मन क्षेत्र मे जो अमरीकी फौजें तैनात हैं, उनके खिलाफ भावनाएँ भडक रही हैं। इन फौजो पर जर्मन स्त्रियो के प्रति अनैतिक व्यवहार, गुण्डेशाही और अत्याचार के आरोप लगाये गये हैं। ये आरोप प्रान्तीय पार्लामेण्टो मे पास किये गये प्रस्तावो द्वारा केन्द्रीय सरकार और पार्लमिण्ट के पास भेज दिये गये हैं। अमरीकी फौज अब व्यर्थ का भार और गुलामी का प्रतीक मानी जा रही है। पश्चिमी जर्मनी मे पण्डित जवाहरलाल नेहरू के अभूतपूर्व स्वागत से ही यह सिद्ध हो जाता है कि उस क्षेत्र मे भविष्य के नेता कौन और भावी नीति क्या होगी।

इस स्थिति को देखकर, जनता का विक्षोभी चेहरा एकाधिकारवादी उद्योगपतियो और जमीदारो के प्रति उन्मुख करते हुए, पूर्वी जर्मनी ने यह सुझाव दिया कि इन्ही क्षेत्रो से एडिनॉवर की नीति को ताकत मिलती आयी है और यह कि तुम्हारी स्वाभाविक आकाक्षाओ के विरोध मे कोई है तो, वस्तुत, वे तबके हैं जिनका अभी उल्लेख किया गया। यानी कि इन प्रस्तावो का उद्देश्य पश्चिमी क्षेत्र की जनता और उनकी पार्टियो को एक नया रुख प्रदान करना है। यह स्वाभाविक ही है कि पश्चिमी क्षेत्र का तमाम पीडित मध्यवर्ग और निचला वर्ग इस दिशा को ग्रहण करे। निश्चय ही, पूर्वी जर्मनी का यह प्रस्ताव, एक तरह से, पश्चिमी जर्मनी के अन्तर्गत सामाजिक क्रान्ति की मनोवैज्ञानिक भूमिका तैयार करने का रास्ता है। यदि यह प्रक्रिया शुरू होती है, तो उसका अन्त जर्मन राजनैतिक और सामाजिक क्रान्ति ही है। चूंकि अभी यह होनेवाली नही है, इसलिए जनता की पीडित भावना को उस दिशा की ओर मोडने का यह प्रयास है। पश्चिमी क्षेत्र के लोगो मे यह दिशा कोई पूर्वी जर्मनी ने नही दी है, वहाँ की समाजवादी पार्टियो ने दी है।

जर्मनी मे मौजूद है।

पूर्वी एशिया मे नयी-नयी घटनाएँ सामने आ रही हैं। उनमे से एक है फिलिपाइन्स मे और जापान मे अमरीकी अड्डो के प्रति विक्षोभ। अमरीका ने फिलिपाइन्स से किसी-न-किसी तरह समझौता कर लिया है। किन्तु जापान के ओकिनावा द्वीप मे अमरीकी अड्डा के लिए विस्तृत क्षेत्र देने के सम्बन्ध मे जापान सरकार की बडी भर्त्सना की गयी। उस देश मे अमरीकियो की इज्जत गिरती जा रही है। जापान की व्यापार-सम्बन्धी तथा आर्थिक जितनी भी समस्याएँ थीं, वे ज्यो-की-त्यों बनी हुई हैं। किन्तु देश की हालत गिर रही है। हालत यहाँ तक गिर रही है कि आज जापानी फ़िल्मो, उपन्यासो, कहानियो, कविताओ और अखबारनवीसी का एकमात्र विषय, जनता की गरीबी, और सरकार की मौजूदा नीतियो के प्रति असन्तोष, हो गया है। यह आज जापान की राष्ट्रीय विचारधारा की मूल प्रेरक शक्ति बन गयी है। नतीजा यह है कि आज जापान या तो शान्तिपूर्वक परिवर्तन का रास्ता अपनाता है, या अशान्ति और गृहयुद्ध के द्वारा अपनी

कठिनाइयाँ हल करता है। यह स्थिति जापानी पार्टियो के नेताओ से छिपी नही है ऐसी स्थिति मे वे, एक ओर, अमरीका के प्रति स्नेहभाव व्यक्त करते हैं, तो दूसरी ओर, जनता की अमरीकी प्रभाव समाप्त करने की इच्छा के प्रति अपनी हमदर्दी जाहिर करते है। किन्तु इस तिकडम से ज्यादा दिनो तक लोकप्रिय नही रहा जा [illegible] नेताओ को आज यह भय हो [illegible] मे अवाछनीय घटनाएँ [illegible] किये जा रहे हैं। किन्तु रचनात्मक दृष्टि न अपनाये जाने के कारण आज हालत ज्यो-की त्यो बनी हुई है। जापान की यही ट्रैजेडी है।

[सारथी, 29 जुलाई 1956, मे 'अवन्तीलाल गुप्त' छद्मनाम से प्रकाशित]

सुएज़ नहर का राष्ट्रीयकरण

इजिप्ट के खिलाफ ब्रिटेन, फ्रास और अमरीका क्या कर सकते है? क्या ये तीनो मिलकर हमला बोल देंगे? मौजूदा अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति म यह लगभग असम्भव है। क्या किसी बहाने से इज़रायल को भडकाकर वे एक छोटा स्थानीय युद्ध करवाते हुए उसे बडा रूप देने की कोशिश करेंगे? यह हो सकता है, किन्तु इसकी भी सम्भावना कम है, क्योकि ऐसी स्थिति म पूरी अरब दुनिया और गैर-पश्चिमी विश्व यह सोचने के लिए मजबूर हो जायेगा कि पश्चिमी देशो ने जान बूझकर ऐसा किया। नतीजा यह होगा कि पश्चिमी एशिया के सारे अरब राष्ट्र जिनम सीरिया, लेबेनान, जॉर्डन और साउदी अरब, यहाँ तक कि इराक तक इजिप्ट के साथ हो जायेंगे, और सम्भवत ब्रिटेन, फ्रास वगैरह देश पूरे पश्चिमी एशिया म युद्ध के प्रसार को अपने लिए हितकर नही समझ सकते। वे यह चाहगे कि पहल इजिप्ट को अन्य देशों से अलग किया जाय और फिर, हो सके तो, मारा जाय। स्वय हमला बोल देने से या इज़रायल द्वारा करवाने से, अरब राष्ट्रो मे एकता और दृढ होने के अलावा, इसकी कोई गैरण्टी नही है कि वह विश्वयुद्ध मे, एक बड़े विस्तृत युद्ध मे, परिणत नही होगा।

दूसरे शब्दो मे, ब्रिटेन फ्रास-अमरीका सीधे-सीधे किसी युद्ध का सूत्रपात न कर सकते हैं, न करवा सकते है। हाँ, वे केवल दो मार्ग अपना सकते है। किसी उग्र किन्तु गुप्त षड्यन्त्र द्वारा कर्नल नासिर की हत्या करवा दी जाये और उसकी गद्दी पर कोई अपनी कठपुतली बैठायी जाये। किन्तु इसके लिए वक्त लगेगा। सम्भव है, इसके लिए एक और वर्ष लग जाये। किन्तु इस बीच राजनैतिक परिस्थिति भी बदल सकती है। दूसरे, यह सहज भी नही है। नासिर एक सैनिक पुरुष है। अन्तर्राष्ट्रीय कुचक्रो के क्लासिकल प्रदेश इजिप्ट को उसे पूरी जानकारी है। और इस सम्बन्ध म वह स्वय और उसके साथी अत्यन्त सतर्क और सावधान नही

होंगे, इसकी कोई गैरण्टी नहीं।

अब केवल इस दिशा में एक ही मार्ग शेष रह जाता है। और वह है—सुएज नहर से गुजरता हुआ कोई ब्रिटिश, अमरीकी या फ्रांसीसी जहाज जान-बूझकर कोई कारण पैदा करे, और इरादतन कम्पनी के नियमों को भंग करता हुआ एवं आग उगलता हुआ बवाल पैदा करे। इस भड़काये गये बवाल को दबाने के बहाने से, ब्रिटिश अमरीकी फ्रांसीसी सरकारें पुलिस ऐक्शन यानी फौजी दण्डनीति की अमलदरआमी करें। यह हो सकता है, और यह बिलकुल सम्भव है। दूसरे, ऐसा कोई बवाल खड़ा करके उसका दुनिया भर में खूब प्रचार किया जा सकता है, दुनिया के जनमत को अपनी ओर किया जा सकता है। और फौजी दण्डनीति को उचित ठहराया जा सकता है। यहाँ तक कि संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा भी ऐसा कराया जा सकता है।

ऐसी स्थिति में, हम यह जरूरी समझते हैं कि इजिप्ट अपनी सुरक्षा और अपने अधिकार के अन्तर्गत सुएज नहर की सुरक्षा के लिए अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्व के इस जल-मार्ग के निरीक्षण में अन्य देशों का सहयोग ले। उदाहरणत, उसी के समीपस्थ देश यूगोस्लाविया, यूनान, सीरिया, लेबेनान, साउदी अरब, भारत और हिन्देशिया के प्रतिनिधि, जो पिछड़े देशों की आर्थिक-औद्योगिक उन्नति के लक्ष्य से हमदर्दी रखते हैं, सुएज नहर की देखभाल के काम में सम्बन्ध में सलाहकार का रोल तो अदा कर ही सकते हैं। हमारा मतलब सिर्फ इतना है कि नहर के किसी-न-किसी तरह के अन्तर्राष्ट्रीय निरीक्षण से इजिप्ट के वास्तविक अधिकार को नया बल मिलेगा और नहर कम्पनी के राष्ट्रीयकरण का जो उसने कदम उठाया है वह और मजबूत होगा।

कोई नहीं जानता कि इस सम्बन्ध में इजिप्ट ने क्या सोचा है। अलबत्ता, यह अनुमान है कि रूस, यूगोस्लाविया और भारत के अत्युच्च तत्त्वों को यह मालूम रहा होगा कि इजिप्ट ऐसा कोई कदम उठाने जा रहा है। हो सकता है कि उन्हें यह न मालूम हो कि इजिप्ट ऐसा कदम कब उठायेगा। किन्तु कर्नल नासिर ने जिस ढंग से यह बात कही उससे तो यह साफ जाहिर होता है कि यह कदम उठाये जाने के सम्बन्ध में, इजिप्ट के राजनीतिज्ञों के बीच कई बार डटकर बातचीत हुई होगी। यह बात भी असम्भव मालूम होती है कि इस सम्बन्ध में रूस से या यूगोस्लाविया से इजिप्ट ने न पूछा हो। इन दो देशों के अग्रिम समर्थन के बगैर इजिप्ट ने यह कदम नहीं बढ़ाया है। कर्नल नासिर सिर्फ अवसर की ही राह देख रहा था। अवसर मिलते ही उसने चाँटा जड़ दिया। ध्यान में रखने की बात है कि यूगोस्लाविया में रेडियो और प्रेस, ब्रिआनी सम्मेलन के पहले, बार-बार यह चीख रहे थे कि ब्रिआनी बातचीत विश्व में एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान रखेगी। पता चल गया कि ब्रिआनी बातचीत महत्त्वपूर्ण क्या थी। अस्वान बाँध के निर्माण के लिए, रूसी सहायता के बजाय सुएज नहर का राष्ट्रीयकरण करके, इजिप्ट ने अपनी तटस्थता का पूर्व निर्वाह किया। इजिप्ट की इस हिम्मत ने अन्य अरब राष्ट्रों और पिछड़े हुए मुल्कों की छाती दूनी कर दी।

लेकिन ध्यान में रखने की बात है कि अंग्रेज चुप नहीं बैठेगा। ईरान से ब्रिटेन आनेवाले तेल के जहाजों का, तथा मलाया से ब्रिटेन जानेवाले माल का, एक मात्र रास्ता सुएज नहर है। ब्रिटेन की न केवल व्यापारिक सुविधा वरन् पूरे विश्व-भर

मे उसकी जो सुरक्षा कार्यनीति है, वह खतरे मे पड गयी। ध्यान मे रखने की बात है कि मलाया और सिंगापुर, आस्ट्रेलिया और सीलोन, अदन और सायप्रस तथा माल्टा मे जो ब्रिटिश फौजी अड्डे हैं, उनमे जहाजी सम्पर्क की जड काट दी गयी है। फास का तो केवल आर्थिक नुकसान ही हुआ है, अमरीका को लगभग कोई नुकसान नही हुआ। किन्तु ब्रिटेन का आर्थिक, राजनैतिक और सुरक्षात्मक नुकसान हुआ है।

तेरह साल के बाद जब कम्पनी का राष्ट्रीयकरण हो जाता—जैसा कि निश्चय किया गया था—तब भी वह नुकसान होता, इसमे कोई शक नही। किन्तु शायद, तब अन्तर्राष्ट्रीय हालत ऐसी न रहती जैसी कि वह आज है। सम्भव है कि तब का शक्ति-सन्तुलन आज के शक्ति-सन्तुलन से भिन्न होता। यानी कि आज कम्पनी का राष्ट्रीयकरण करके इजिप्ट ने ब्रिटेन को सबसे तगडी मार दी है।

फास, अमेरीका तथा ब्रिटेन के बीच जो बातचीत चल रही है, उससे इजिप्ट का और नुक्सान चाहे जो हो, यह फायदा होगा कि उसे इन साम्राज्यवादी देशो के बडे से-बडे और ताकतवर-से-ताकतवर झापड के स्वरूप का सही अन्दाज हो जायेगा। अगर यह झापड सिर्फ आर्थिक और व्यापारिक है, तो इजिप्ट एक अरसे तक अपनी बात निबाह लेगा। यदि वह सैनिक है, तो पूर्वी भूमध्यसागरीय क्षेत्र मे नये भूकम्प पैदा होगे। प्रश्न यह है कि इस क्षेत्र मे एक नयी सैनिक स्थिति पैदा करने म अमरीका किस हद तक ब्रिटेन का साथ देगा। ब्रिटेन को और इजिप्ट को भी पता चल जायेगा कि अमरीका कहाँ तक साथ देगा।

असल मे, इस क्षेत्र मे यदि अमरीका ने आज तक ब्रिटेन का साथ दिया होता तो, शायद, इजिप्ट को इतना ज़ोर न चढता। आज तक इस क्षेत्र म अमरीका ने ब्रिटेन का साथ नही दिया है। दूसरे, सुएज़ नहर का राष्ट्रीयकरण करके, इजिप्ट ने अमरीका की आर्थिक स्थिति को कोई खतरा नही पहुँचाया है। यदि अस्वान बाँध के लिए इजिप्ट रूस की बहुत बडी सहायता ले लेता, तो शायद अमरीका भयकर उग्र रूप से इजिप्ट का विरोधी बन जाता। असल मे, वैसा हुआ नही है और न किसी बडी अमरीकी सम्पत्ति पर हाथ साफ किया गया है। ऐसी हालत मे अमरीका इजिप्ट के खिलाफ किसी भीषण कदम या खतरनाक कार्यवाही का समर्थन करेगा, यह सम्भव नही प्रतीत होता। असल मे, यह क्षेत्र ब्रिटिश-अमरीकी आर्थिक स्वार्थों की लडाई का क्षेत्र है। इस क्षेत्र मे अमरीका चाहता ही यह है कि ब्रिटेन-फास लगातार कमज़ोर पडते चले जायें। इसलिए, औपचारिक रूप से और सतही तौर पर ही, ब्रिटेन-अमरीका साथ रहते हैं। किन्तु एक साथ मिलकर कोई काम नहीं कर पाते। असल मे, कर्नल नासिर ने पश्चिमी एशिया की इस स्थिति से खूब लाभ उठाया है।

बहुत पहले ब्रिटिश समाचार-पत्रो ने यह लिखा था कि ब्रिटेन को चाहिए कि वह इस क्षेत्र मे रूसी दिलचस्पी के तथ्य को स्वीकार करते हुए सीधे-सीधे रूस से बातचीत करे। किन्तु यह कभी हो नही पाया। ब्रिटेन को अपनी जात-बिरादरी का अमरीका ज्यादा पसन्द आया। उसी के नतीजे अब भुगते जा रहे हैं।

एक बात सही है और वह यह है कि कूटनीति का पहिया चाहे जिस तरफ घूमे, अब अरब राष्ट्रवाद की महत्त्वाकाक्षाएँ ब्रिटेन की आवश्यकताओ पर हावी

हो जायेंगी। ब्रिटेन की साम्राज्यवादी दृष्टि इस साधारण तथ्य को नहीं समझ सकती तो यह उसका दुर्भाग्य है।

[सारथी, 5 अगस्त 1956, में 'अवन्तीलाल गुप्त' छद्मनाम से प्रकाशित]

तटस्थ देशों को एक ज़बर्दस्त नया मौक़ा

केवल तटस्थ राष्ट्र ही, कम्यूनिस्ट राज्य नहीं, इजिप्ट को आसन्न संकट से उबार सकते हैं। आज यह एकदम आवश्यक है कि तटस्थों की कूटनीति प्रभावकारी हो।

परिस्थिति यों है। यदि रूस स्वयं इजिप्ट की ओर से दस्तन्दाजी करता है, तो अमरीका पूर्ण शक्ति के साथ लड़ाकुओं के साथ हो जायेगा। फिलहाल, उनसे किसी हद तक वह हटा हुआ है। इजिप्ट के पड़ोस में जो साउदी अरब है, वहाँ फौजी छावनी न सही, तो उसका तम्बू जरूर तना हुआ है। रूस से सहायता न लेकर, सुएज नहर पर अधिकार [कर-] के इजिप्ट ने जो नाम कमा लिया है, वह नाम तटस्थ राष्ट्रों पर, खासतौर पर अरब राष्ट्रों पर, असर डाल चुका है। अमरीका इस असर को ध्यान में रख लड़ाई का सवाल पैदा नहीं करना चाहता। किन्तु हमारा सवाल यह है कि क्या तटस्थ राष्ट्र, जिनमे अरब राष्ट्र भी शामिल हैं, अपनी भावनाएँ कार्यान्वित करने की दिशा में, इजिप्ट को आसन्न संकट से उबार सकते हैं? जितनी हद तक और जितने जोर से तटस्थ राष्ट्र इजिप्ट को बचाने की कोशिश करेंगे, उतनी हद तक और उतने जोर से, वे पश्चिमी एशिया के क्षेत्र में अमरीका को ब्रिटेन फ्रांस से अलग कर सकेंगे। ध्यान में रखने की बात है, इस क्षेत्र में अमरीका तटस्थ राष्ट्रों की दोस्ती कामना चाहेगा। मौजूदा परिस्थिति में इन राष्ट्रों की सहानुभूति रूस की तरफ ही है। रूस स्वयं अधिक-से-अधिक हमदर्दी सम्मान और लोकप्रियता प्राप्त करने की कोशिश करेगा।

इस सवाल के दो पहलू हैं। फ्रांस और ब्रिटेन की कटिबद्धता को देखकर, यह कहा जा सकता है कि वे किसी भी हालत में सुएज के प्रश्न पर कर्नल नासिर से समझौता नहीं करेंगे। आगामी बहुदेशीय सम्मेलन समाप्त होने के बाद, जो कि वस्तुतः असफल ही रहनेवाला है, यदि फ्रांस-ब्रिटेन स्वार्थान्ध होकर इजिप्ट पर चढ़ाई करते हैं, तो क्या तटस्थ देश इजिप्ट को बचा सकेंगे? यानी कि तटस्थ देशों के पास आज दो विभिन्न प्रकार की शक्तियों की आवश्यकता है। नम्बर एक, एड़ी-चोटी एक करके युद्ध न होने देना, और तमाम युद्ध विरोधी ताक़तों को एक करके फ्रांस ब्रिटेन की फ़ौजी कार्रवाई को वहीं-के-वहीं ठण्डी और नपुंसक बना देना। नम्बर दो, युद्ध होने की स्थिति में, पूरे विश्व में इस ढंग की प्रतिक्रियाएँ करना कि जिन्हें देखकर ब्रिटेन-फ्रांस के हाथ-पैर फूल जायें।

असल में, ये दो बातें एक ही प्रक्रिया की दो स्थितियाँ हैं। पहली स्थिति है—

युद्ध न होने देकर सच्चे अन्तर्राष्ट्रीय तरीके से, इजिप्ट के राष्ट्रीय और दुनिया के अन्तर्राष्ट्रीय हितों के अनुसार, सुएज की समस्या का निदान करना। उदाहरणत, (हम केवल उदाहरण ही ले रहे हैं) सुएज नहर पर अन्तर्राष्ट्रीय देख-रेख के कार्य मे सभी बाण्डुग-सम्मेलनीय राष्ट्रो की तथा अन्य अरब राष्ट्रो की प्रधानता स्थायी रूप से कायम करना। इसके पूर्व, इजिप्ट द्वारा मुनाफा-प्राप्ति-रहित अन्तर्राष्ट्रीय देख-रेख का सिद्धान्त स्वीकार करवाना, और पश्चिमी राष्ट्रो द्वारा सुएज पर इजिप्ट के राष्ट्रीय अधिकार के सिद्धान्त को स्वीकार करवाना।

तटस्थ राष्ट्रो की राष्ट्रीय कूटनीति इस सीमा तक जायेगी, यह कतई नही कहा जा सकता। इन तटस्थ राष्ट्रो मे इस समय मतैक्य है कि नही, यह भी एक विचारणीय प्रश्न है। केवल इतना सही है कि ये राष्ट्र इजिप्ट की राष्ट्रीय स्थिति कमज़ोर करवाना नही चाहेगे और उस क्षेत्र मे युद्ध न होने देने की कोशिश करेंगे।

इस कोशिश का काम जितना तेज़ होता जायेगा, उतनी ही हद तक उनकी धाक भी जमती जायेगी। जितनी अधिक उनकी धाक जमती जायेगी उतनी ही हद तक वे सुएज़ पर साम्राज्यवादी प्रभाव कम करके तटस्थ राष्ट्रो का प्रभाव बढा देंगे। इस प्रभाव-वृद्धि द्वारा वे पश्चिमी क्षेत्र मे ब्रिटेन तथा फ्रास का प्रभाव क्षीण करके उन्हे नामुराद कर देगे।

असल मे, तटस्थ राष्ट्रो को अपना प्रभाव बढाने का यह सबसे अच्छा मौका है। ऐसे मौके बार-बार नही आते। अब तक दुनिया मे सक्रिय युद्धवादी के नाम से मुख्यत अमरीका बदनाम होता रहा। अब ब्रिटेन हत्थे पर चढा है, और फ्रास उसके भरोसे पर अकड रहा है। इस पेचीदगी की एक विशेषता ऐसी है जो सायप्रस के सम्बन्ध मे न थी। और वह यह है कि सुएज नहर का प्रश्न एकदम अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्न हो गया। ऐसी स्थिति मे, वहाँ कोई युद्ध हुआ, तो, न सही बडे पैमाने पर, वह छोटे पैमाने पर अन्तर्राष्ट्रीय युद्ध ही होगा। ऐसी दुर्घटना टालने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय कार्रवाई करना जरूरी है। यह काम बहुत आसान नही, तो बहुत कठिन भी नही है। असल म, इस पूरे काम के दौरान मे, धीरे-धीरे, तटस्थ राष्ट्रो की शक्ति और मज़बूत होती जायेगी।

इस पूरे काम का मुख्य प्रभाव युद्ध टालने और इजिप्ट से मुनाफा प्राप्ति-रहित अन्तर्राष्ट्रीय देख-रेख का सिद्धान्त स्वीकार करवाने और पश्चिमी राष्ट्रो से सुएज नहर पर इजिप्ट के राष्ट्रीय अधिकार का सिद्धान्त स्वीकार करवाने मे परिणत होना चाहिए।

सफलता धीरे-धीरे मिलती है। पेचीदगियो का रूप भी बदलता जाता है। एक ही प्रक्रिया की परिस्थितियाँ बदलती जाती हैं। ऐसी हालत मे, यह सम्भव नही है कि तटस्थ राष्ट्रो को पूरी-की-पूरी सफलता मिले। हो सकता है कि युद्ध छिड ही जाय तो ऐसी हालत मे तटस्थ राष्ट्र केवल शान्तिवादी मन्त्र जप नहीं सकते। पश्चिमी एशियाई अरब देश युद्ध मे कूद पडेगे। यदि अमरीका ने ब्रिटेन और फ्रास की मदद की तो रूस अरब देशो की मदद करेगा। यदि अमरीका युद्ध में कूद पडा तो रूस स्वय कूद पडेगा या युगोस्लाविया को कुदवा देगा।

ऐसी हालत में, यदि तटस्थ देश सचमुच प्रभावकारी होना चाहते होगे, यानी कि वे ब्रिटेन के आक्रमण को रोकना चाहते होंगे, तो उनके पास केवल एक ही

उपाय है, और वह है, अपने-अपने क्षेत्र में लगी हुई ब्रिटिश सम्पत्ति का राष्ट्रीय-करण कर लेना। आज बर्मा, सीलोन और भारत में करोड़ों-अरबों की ब्रिटिश सम्पत्ति है। केवल राष्ट्रीयकरण की धमकी मात्र से ही, ब्रिटेन सुएज़ कम्पनी के अपने चवालीस फ़ीसदी हिस्से भूल जायेगा। ब्रिटेन को झुकाने के लिए इन तीनों देशों के पास अनेक उपाय हैं, बशर्ते कि उनमें साहस पैदा हो। फ़िलहाल, उनमें यह साहस नहीं है—जैसा कि वह हिन्देशिया के पास है।

प्रश्न यह है कि क्या ये देश अपनी वास्तविक शक्ति को पहचानते हुए, प्रभाव-कारी रूप से कदम बढ़ा सकेंगे? यदि ये कदम बढ़ते हैं तो एक नयी अन्तर्राष्ट्रीय हालत पैदा हो जाती है।

आज तक हमारे कूटनीतिज्ञ कहते आये हैं कि भारत की सरहद इजिप्ट को छूती है। क्या आप अपनी सरहद को, ब्रिटिश साम्राज्य के अधीन और अरक्षित देखना चाहेंगे? क्या आप यह चाहेंगे कि पूरा पश्चिमी एशियाई क्षेत्र ब्रिटेन का एक आँगन या मुहल्ला बन जाये? भारत का यह ऐतिहासिक कर्त्तव्य है कि वह मुस्तैदी के साथ (1) अमरीका को ब्रिटेन-फ्रांस से अलग करे, (2) सभी शान्तिवादी देशों द्वारा सक्रिय दस्तन्दाज़ी के ज़रिये उस क्षेत्र में युद्ध का कोई मौका न आने दे; (3) बाण्डुग-सम्मेलन के सभी प्रधान देशों को मुहैया करके ब्रिटेन को पश्चिमी एशिया के क्षेत्र से पीछे हटाय, और अन्त में, (4) सुएज़ नहर के राष्ट्रीयकरण के अन्तर्गत तटस्थ देशों तथा सम्बन्धित देशों को शामिल करके 'मुनाफ़ा-रहित अन्त-र्राष्ट्रीय देख रेख' की व्यवस्था कायम करवाये। इतिहास ने हमें जो यह मौका दिया है, [उसका] समुचित उपयोग करना हमारा कर्तव्य है।

[सारथी, 12 अगस्त 1956, में 'अवन्तीलाल गुप्त' छद्मनाम से प्रकाशित]

सुएज़ समस्या की नकेल

पंच राष्ट्र समिति की सलाहों में ऐसा कुछ नहीं है, जिन पर सोचने-विचारने के लिए कर्नल नासिर को चौरासी घण्टे लगें। फिर भी, इस सम्बन्ध में जिस तरह ढील दी जा रही है, वह इजिप्ट के लिए बड़ी हितकर है। इस दरमियान दुनिया को सुएज़ नहर पर मिस्री नियन्त्रण की आदत पड़ जाती है और रूप हो जाती है। साथ ही, नहर पर मिस्री प्रभुत्व के संगठन के लिए वक्त मिल जाता है। नासिर भी इस बात के लिए तैयार है कि इस जलमार्ग से आवागमन की मुक्तता सिद्ध करने के लिए उस एक या अनेक सन्धियाँ करनी होंगी अथवा अन्तर्राष्ट्रीय सलाह-कार बोर्ड प्रस्थापित करना पड़ेगा।

सुएज़ नहर की समस्या पर विचार करने के लिए शीघ्र ही पार्लमेण्ट बुलायी जा रही है। ब्रिटेन के पास कोई और चारा नहीं है, सिवाय इसके कि आत्मरक्षा के संगठन के लिए वह जिब्राल्टर, माल्टा और सायप्रस के अपने फ़ौजी अड्डे और

मजबूत करे। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए यह आवश्यक है कि माल्टा और सायप्रस की जनता को सन्तुष्ट किया जाये। एक अरसे पहले ब्रिटेन को यह सुझाव दिया गया था कि वह सायप्रस को सीमित स्वराज्य प्रदान करे, और उसे देने के बाद, उस स्वायत्त शासन से अपने एक समझौते के द्वारा, वह फौजी अड्डे बढ़ाये और सगठित करे। जब ब्रिटेन ने उन दिनो भी यह नही माना तो अब क्या मानेगा ! ! असल मे लन्दन को राष्ट्रवादी स्वाधीनता की प्रतिज्ञाओ पर विश्वास ही नही रहा है। वह सोचता है कि एक बार स्वाधीन होने पर वे द्वीप अनेक देशो से अपने सम्बन्ध स्थापित करेंगे और अपना प्रभाव बढाते हुए वे अपने क्षेत्र से ब्रिटिश अड्डे उखाड फेंकेंगे। ब्रिटेन का यह डर स्वाभाविक है। किन्तु उसे यह जान लेना चाहिए कि उसके सामने केवल दो ही विकल्प हैं। एक विकल्प यह है कि उसका साम्राज्यवाद धीरे धीरे मृत्यु-गति को प्राप्त हो। अपना टिकिट कटाने मे ब्रिटेन को अधिक समय मिल सकता है, किन्तु उस टिकिट को कटाना ही पड़ेगा। या तो वह तुरन्त कटा ले, अथवा वह अधिक समय ले।

सारांश यह कि टिकिट कटाने मे अधिक समय की प्राप्ति का तरीका वह नही है जिसे ब्रिटेन अपनाये जा रहा है। जरूरी है कि फिलहाल वह सायप्रस को स्वाधीनता प्रदान करे और उसके स्वाधीन शासन स फौजी समझौता करे। दूसरे, वह अरब राष्ट्रो से मैत्री स्थापित करे। यह मैत्री तभी स्थापित होगी जब ब्रिटेन इन अरब राष्ट्रो को उतनी ही (तेल के पम्प-मार्गों-सम्बन्धी) रायल्टी दे जितनी कि अमरीका द्वारा साऊदी अरब को दी जा रही है। जब तक वह रायल्टियो के वितरण मे विषमता बरतता रहेगा तब तक सीरिया और लेबेनान उसके दुश्मन बन रहेगे। और एक-न एक दिन वे अपने-अपने क्षेत्रो म से गुजरनेवाले ब्रिटिश तेल के पम्पो को आग लगा देंगे, और पश्चिमी एशियाई क्षेत्रो की समस्या उसके लिए फिर मे तरोताजा हो जायेगी।

उन्हे पडोसी एशियाई देशो द्वारा तैयार किये गये युद्ध प्रसग म कूदना पड़ेगा। ब्रिटेन से इस सम्भावना का जवाब केवल यही मिलना चाहिए कि वह तेलवाही अरब देशो को उचित रायल्टियाँ दे, और रगड का मौका कतई न आन दे। किन्तु ब्रिटेन के अडियल और सडियल तेल-पूँजीपति उन्हे एक कौडी भी ज्यादा देने के लिए तैयार नही हैं।

आये दिन घटनाओ ने यह सिद्ध कर दिया है कि घटना क्रम विकसित करने की शक्ति अब एग्लो-अमरीकी राष्ट्रो के पास नही रही !

कर्नल नासिर मेजीस समिति से मिले या न मिले, उसके पास फिलहाल तुरुप के कई पत्ते है। कर्नल नासिर उन पर सोच चुका है—उन्हे कैसे चलना चाहिए, यह जान चुका है। निराशात्मक आग-लगाऊपन के वशीभूत होकर यदि ब्रिटेन कोई दुर्घटना क्रम शुरू कर देता है, जिसका रूपान्तर एक स्थानीय युद्ध मे होता है, तो उस युद्ध के पैंतरे और मोर्चे क्या होगे, यानी बुनियादी शक्ति सन्तुलन क्या होगा ? ब्रिटेन फ्रास से इजिप्ट के इस सग्राम मे, अमरीका और रूस तटस्थ रहेगे ■

रूस इजिप्ट को तथा अमरीका ब्रिटेन को सहायता देगा। और इजिप्ट के साथ न केवल पूरी अरब दुनिया रहेगी, वरन् यूगोस्लाविया, रूस तथा अन्य देशों से कम्यूनिस्ट स्वयंसेवकों की सेनाएँ रहेंगी। ये सेनाएँ वैसी ही होंगी, जैसी कोरिया में चीनी स्वयंसेवक टुकड़ियाँ थीं, जिनके बल-बूते पर ब्रिटिश-अमरीकी फौजों से कोरियाई सेनाएँ लड़ सकीं, और फिर भी चीन पर हमला नहीं हुआ। उसी तरह इस क्षेत्र में भी कम्यूनिस्ट देशों पर हमला नहीं किया जा सकता, क्योंकि ब्रिटेन-अमरीका तीसरा विश्वयुद्ध नहीं चाहते। उनका तात्कालिक उद्देश्य केवल इजिप्ट को सबक सिखाना है। किन्तु इस सबक सिखाने के फौजी शौक के दौरान में, ब्रिटेन की सभी रगों और नाड़ियों पर हमला किया जायगा, जिनमें खून नहीं, मिट्टी का तेल बहता है। सवाल यह है कि क्या ब्रिटेन अपना इतना नुकसान करना और उसके फलस्वरूप कमजोर होना पसन्द करेगा।

इस ढंग का युद्ध सामरिक दृष्टि से ब्रिटेन की कमर तोड़ देगा और आर्थिक दृष्टि से उसके हाथ काट देगा। ब्रिटेन के अखबार इस सम्भावना पर इतना ज्यादा सोच चुके हैं कि वे यह कदम उठाने के सम्बन्ध में सरकार को लगातार अनुत्साहित करते जा रहे हैं।

ब्रिटेन के पक्ष में पाँसा तभी पलट सकता है जब अमरीका युद्ध में साथ दे। अमरीका युद्ध में तभी साथ देगा जब संयुक्त राष्ट्र संघ के तत्त्वावधान में लड़ाई हो। संयुक्त राष्ट्र संघ में मामला पेश होकर ऐसे किसी निर्णय पर आने के लिए एक लम्बा अरसा चाहिए। तब तक नील नदी में न मालूम कितना ही पानी बह जायगा। ऐसी स्थिति में, अमरीका की कोशिश यही है कि ब्रिटेन की इज्जत बची रहे और लड़ाई न हो।

किन्तु ये दोनों बातें साथ साथ नहीं रह सकतीं। ब्रिटेन की इज्जत तो पहले ही खत्म हो चुकी है। इसलिए ब्रिटेन के पास अब केवल एक ही तरकीब है, और वह यह कि वह इजिप्ट के विरुद्ध उस देश के अन्दर और बाहर उपद्रव संगठित करे, और ऐसा कोई मौका तैयार करे कि जिससे दुनिया को यह मालूम हो जाये कि आक्रामक देश ब्रिटेन न होकर इजिप्ट है। किन्तु यह करने के लिए भी वक्त चाहिए। यह इतनी जल्दी नहीं हो सकता। ऐसी स्थिति में, ब्रिटेन के सामने सबसे अच्छी तरकीब यही है कि वह ऊपरी तौर पर शान्ति और भीतरी तौर पर उपद्रव की नीति अमल में लाये और इजिप्ट के विरुद्ध आर्थिक दीवार खड़ी करे। इजिप्ट के विरुद्ध यह आर्थिक युद्ध एक हद तक सफल भी हो सकता है।

किन्तु इसके विपरीत, इजिप्ट सरकारी तौर पर यह घोषणा करके कि उसे भारतीय प्रस्ताव मंजूर है, उन पचास देशों का, जो सुएज नहर का उपयोग करते हैं, तथा उन देशों का, जिनमें उसके अच्छे सम्बन्ध हैं, एक सम्मेलन आयोजित करे, और वहाँ यह तै करवा ले कि सुएज नहर की सलाहकार समिति में कौन-कौन राष्ट्र रहेंगे, किस-किस ढंग से रहेंगे, और उनके प्रतिनिधित्व के नियम क्या-क्या होंगे। ज्यों ही यह नया सम्मेलन चल पड़ेगा, त्यों-त्यों ब्रिटेन फ्रांस-जैसे राष्ट्र असमर्थ होते जायेंगे। अगर आज नासिर बलशाली है तो [*इसका अभिप्राय*] *असल में यही* [*है कि*] सुएज समस्या की नकेल इजिप्ट के ही हाथ में है।

इजिप्ट की समस्या ने दुनिया के सामने यह उद्घाटित कर दिया है कि न केवल पिछड़े राष्ट्र औद्योगिक विकास के लिए बड़े देशों पर निर्भर हैं, वरन् यह कि

पश्चिमी एशियाई तेल-क्षेत्र से जहाज़ी आवाजाही का सम्बन्ध जोड़े।

इस सम्बन्ध में डलेस की योजना यह है कि ब्रिटेन तथा फ्रांस अमरीकी तेल पर निर्भर रहे। अमरीका अपना तेल-उत्पादन बढ़ाने की ज़बर्दस्त कोशिश करेगा। चूँकि ब्रिटेन तथा फ्रांस के पास डालरों का अभाव है, इसलिए अमरीकी तेल खरीदने की शक्ति उत्पन्न करने के लिए अमरीका ब्रिटेन फ्रांस को अधिक सहायता देगा।

इजिप्ट से युद्ध न करने की स्थिति में, ब्रिटेन के पास अपनी पुरानी और पौराणिक प्रतिष्ठा की भावना तृप्त करने का एकमेव उपाय यह है कि वह स्वयं सुएज़ नहर का बायकाट करे।

डलेस से इस सुझाव के बारे में औपचारिक रूप से ब्रिटेन ने, अब तक कोई प्रतिक्रिया नहीं की है। यद्यपि आज लन्दन में नहर बायकाट का समाँ बाँधा जा रहा है, फिर भी जिम्मेदार क्षेत्रों में इस सुझाव पर जो चुप्पी साधी जा रही है उसका अर्थ यही होता है कि ब्रिटेन इस कदम के पक्ष में नहीं है।

इस कदम के पक्ष में तो वह नहीं है, किन्तु उसके सामने कोई चारा भी नहीं है। अपनी प्रतिष्ठा बचाये रखने के लिए जब वह पहले से ही आर्थिक युद्ध कर रहा है, तो वह नहर का बायकाट भी कर सकता है। यदि उसने नहर का बायकाट नहीं किया, युद्ध भी नहीं किया, और संयुक्त राष्ट्र संघ तथा अन्य किसी संस्था की तिकड़म से, उसने इजिप्ट से समझौता कर लिया, तो यह समझा जायेगा कि ब्रिटेन की कूटनीति अन्धी नहीं हुई है, कि वह यथार्थवादी धारणाओं पर आधारित है। प्रस्तुत लेखक का भी यह ख़याल है कि यदि ब्रिटेन अपने हितों की रक्षा करना चाहता है तो प्रतिष्ठा के फेर में न पड़कर अपने मुनाफ़े की रक्षा के प्रति ध्यान देगा।

यद्यपि ऐसी किसी भी समस्या के बारे में यह कहना अनुचित होगा कि उसका इस ढंग से विकास होगा और उस ढंग से नहीं, फिर भी निःसन्देह है कि ब्रिटेन, फ्रांस तथा अमरीका द्वारा सुएज़ नहर के बायकाट से कई बिल्लियों के भाग से बहुत-से सींके टूटेंगे।

(1) पश्चिमी जर्मनी, नॉर्वे तथा अन्य देश यह देख ही रहे हैं कि यदि ब्रिटेन सुएज़ नहर से हटा तो उनकी जहाज़ी कम्पनियाँ फलेंगी फूलेंगी। एक बार ब्रिटिश प्रतिस्पर्धा ख़तम होने पर उनको अपनी व्यापारिक प्रतियोगिता का नया क्षेत्र मिलेगा। ठीक यही बात भारतीय जहाज़ी कम्पनियों के बारे में भी सही है। तब यूरोप और एशिया के बीच के सस्ततम मार्ग पर आवाजाही छोटे देशों के हाथ में आ जायेगी।

(2) ब्रिटेन द्वारा स्थायी रूप से नहर के बायकाट की स्थिति में, लाल सागर, अरब समुद्र तथा हिन्द महासागर पर ब्रिटेन का जो प्रभाव था, ख़तम हो जायेगा। इस प्रभाव की अनुपस्थिति में, ब्रिटेन की सैनिक सुरक्षा-नीति के कार्यान्वय में काफ़ी फ़र्क़ करना होगा। यह सही है कि ब्रिटेन, एक अरसे तक पश्चिमी एशिया में अपना प्रभाव जमाये रखने के लिए, उस क्षेत्र के देश में फ़ौजी अड्डे बनाये रखेगा। किन्तु नहर की हानि से उसकी प्रभावकारिता भी बहुत-कुछ कम हो जायेगी, इसलिए ब्रिटेन को अपनी सैनिक सुरक्षा-नीति पर पुनर्विचार करना पड़ेगा। इस पुनर्विचार का एक फल यह होगा कि बग़दाद-सन्धि का जितना मूल्य पहले था

उसमें लगातार कमी होती चली जायेगी।

(3) न केवल ब्रिटेन का तेल महँगा होगा, उसकी आवाजाही भी महँगी हो जायेगी, प्रवासियों को लाने-ले जानेवाली जहाज़ी कम्पनियों का मुनाफा घट जायेगा। पूरे एशिया से उसका जो आज तक व्यापारिक सम्बन्ध था, उसकी लाभ-प्राप्ति में फ़र्क आता जायेगा। नहर के बायकाट से, निःसन्देह, इजिप्ट को बहुत आर्थिक नुकसान होगा, किन्तु वह तात्कालिक रहेगा। अन्य देशों द्वारा ब्रिटिश जहाज़रानी का स्थान लिये जाने पर वह काफी हद तक घट जायेगा।

इसके विपरीत, ब्रिटेन को आर्थिक चोंट ज्यादा होगी, उसका नुकसान ज्यादा होगा, उसके राजनैतिक और सैनिक परिणाम भी ब्रिटेन के लिए काफी नुकसान-देह होंगे।

इसके अलावा, ब्रिटेन ने यदि अमरीकी सुझाव स्वीकार किया, और अमरीकी तेल की ख़रीद के लिए उस देश से डालर स्वीकार किये, तो वह आगे चलकर अमरीका पर आर्थिक दृष्टि से और भी निर्भर रहेगा। यह लगभग निश्चित बात है कि अपने मुनाफे की सुरक्षा के लिए ब्रिटिश तेल कम्पनियाँ एक ओर अपना तेल महँगा करेंगी, दूसरी ओर, अरब देशों को कम रायल्टियाँ देंगी। अमरीकी कम्पनी द्वारा दी जानेवाली रायल्टियों की तुलना में, अभी भी ब्रिटिश रायल्टियाँ बहुत ही अल्प हैं। जब ब्रिटिश कम्पनियाँ अपनी-अपनी रायल्टियाँ और भी कम कर देंगी, तो पहले से ही सुलगता हुआ असन्तोष का वातावरण विक्षोभ में परिवर्तित होगा। दूसरे, इस बात की कोई गैरण्टी नहीं है कि अमरीका अरब क्षेत्र में ब्रिटेन की इस दयनीय हालत का फायदा न उठाये। वैसे भी आज इस क्षेत्र में तेल को लेकर ब्रिटेन और अमरीका के बीच ज़बर्दस्त होड़ मची हुई है। इसीलिए डलेस साहब पहले आदमी थे जिन्होंने ब्रिटेन को सुएज़ नहर के बायकाट का सुझाव दिया। आप कह सकते हैं कि इस सुझाव से ब्रिटेन को कितनी तकलीफ़ हुई होगी।

क्या ब्रिटेन सुएज़ नहर के आर्थिक बायकाट का ख़तरा मोल लेगा? लन्दन के बहुत-से अख़बार डलेस ही के सुझाव का समर्थन कर रहे हैं। किन्तु जैसा कि हम पहले कह चुके हैं, सरकारी क्षेत्रों में इस सुझाव के समर्थन का अब तक कोई संकेत नहीं मिला है। ऐसी स्थिति में, संयुक्त राष्ट्र संघ और सिक्यूरिटी कौन्सिल में यह समस्या ले जाना सबसे अच्छा उपाय है। किन्तु इस उपाय की सीमा है। उससे यह आशा करना कि ब्रिटेन इजिप्ट के खिलाफ कोई 'कपत' बढ़ा सकेगा, और कोई 'सबक' पढ़ा सकेगा, नामुमकिन बात है। असल में ब्रिटेन इस स्थिति में है ही नहीं कि वह 'सबक' पढ़ा सके। दूसरे, नासिर चुप नहीं बैठा रहेगा। वह दूसरा सम्मेलन बुला रहा है। इस सम्मेलन से यदि वह समझौता कर ले तो क्या होगा? इस बात की पूरी सम्भावना है कि इस सम्मेलन में बहुत-से देश भाग लेंगे, और उनकी संख्या लन्दन कान्फ्रेंस के देशों से ज्यादा होगी। इस प्रकार यह सम्मेलन अधिक प्राति-निधिक होगा। यदि इस सम्मेलन से इजिप्ट का समझौता हो जाता है, तो ब्रिटेन की करारी राजनैतिक मात होगी इसमें सन्देह ही क्या है।

[सारथी, 23 सितम्बर 1956, में 'अवन्तीलाल गुप्त' छद्मनाम से प्रकाशित]

एशियाई-अफ्रीकी राष्ट्रवाद का संयुक्त मोर्चा

हिन्देशियाई प्रधानमन्त्री डॉ अली शास्त्रमिद जोजो का भारत आगमन हिन्देशिया और हिन्दुस्तान की मैत्री को दृढ़तर बनाता हुआ 'सीटो'-जैसे युद्धवादी समझौतो और सगठनो का विरोध तो करता ही है, साथ ही वह उन एशियाई देशो की तरफ आवाज़ लगाता है जिन्हें आत्म-रक्षा और आत्म-विकास के लिए विश्व-शान्ति की आवश्यकता है। शास्त्रमिद जोजो भारतीय ससद मे भाषण देते हुए कहते है कि हमारे लिए शान्ति चरम मूल्य है। चरम मूल्य का अर्थ ही यह है कि हम अपने छोटे-छोटे और तात्कालिक स्वार्थों के लिए देश के मूलभूत हितो का बलिदान नही कर सकते। जैसे भारत के लिए, वैसे हिन्देशिया के लिए भी, विश्व शान्ति एक चरम मूल्य है।

अगर हिन्देशिया की भौगोलिक स्थिति का हम अध्ययन करें तो पायेंगे कि वह हिन्दचीन की सग्राम-भूमि के अत्यन्त निकट है। फारमोसा तथा चीन के सम्भावी (और भावी) युद्ध के भी अत्यन्त समीप है।

सीटो समझौते ने हिन्दचीन के देशो को अपने कार्यक्षेत्र के भीतर लाकर पुराने साम्राज्यवादी देशो की युद्ध-लीला को न केवल अवसर प्रदान किया है, वरन् हिन्देशियाई सरहदो के आसपास उनका वजन भी बढा दिया है। पूर्व मे ब्रिटिश मलाया, उत्तर मे थाईलैण्ड और फिलिपाइन्स, फारमोसा, पश्चिम मे न्यूगिनी, दक्षिण मे ऑस्ट्रेलिया और न्यूजीलैण्ड है। ये सभी देश 'सीटो' के कार्यक्षेत्र के अन्तर्गत आते हैं। युद्धवादियो का प्रभाव इन देशो मे दृढ़ है। थाईलैण्ड, फिलिपाइन्स और आस्ट्रेलिया का तो यह कहना है कि सीटो मे 'दाँत' नही है। दाँत आवश्यक है, उनके अनुसार इन तीनो देशो मे अमरीकी हवाई अड्डे है, अमरीकी सेना है। ऑस्ट्रेलिया की उत्तरी भूमि मे अमरीकी हवाई पडाव और फौजे हैं। डच न्यूगिनी तो अमरीका को मानो दे ही दिया गया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि हिन्देशिया की सरहदो के आसपास बारूद की गन्ध है। (बारूद थोडी सुलगी है या नही सुलगी है, यह अलग बात है)। तटस्थ देश बर्मा हिन्देशिया से हटकर है, भारत और सीलोन दूर है, और चीन तो बहुत दूर।।

ऐसी स्थिति मे, हिन्देशिया, जो एक पिछडा हुआ, सैनिक दृष्टि से कमज़ोर, आर्थिक दृष्टि से कमोवेश गुलाम है, (आधी से अधिक सम्पत्ति वहाँ हॉलैण्ड निवासियो की है), तटस्थता के द्वारा स्वतन्त्र वैदेशिक नीति और अपनी स्वतन्त्र सत्ता का विकास करता है तो यह उसकी बहादुरी है, विशुद्ध वीरता है। साम्राज्यवादियो के घेरे से घबराकर, हिन्देशिया 'सीटो' मे शामिल हो सकता था। लेकिन वह नही हुआ। उसने उनसे सैनिक सहायता की याचना नही की, जैसी कि पाकिस्तान और ईराक ने की।

मेर्डेका नामक अर्ध-सरकारी हिन्देशियाई पत्र के अनुसार, अमरीका ने हिन्देशिया मे 90 सैनिक अड्डे कायम करने की इच्छा प्रकट की। इसका देश में ज़बर्दस्त विरोध हुआ। आखिरकार, पार्लमिण्टरी वैदेशिक कार्यसमिति के अध्यक्ष डॉक्टर रान्दोनुवु को समाचार-पत्रो मे यह सूचना प्रकाशित करवानी पडी कि

हिन्देशियाई सरकार अमरीकी अड्डो को अपने देश मे कभी भी कायम नही होने देगी। सन् 1952 मे अमरीका ने हिन्देशिया को पारस्परिक सुरक्षा सहायता के अन्तर्गत समझौता करने के लिए बाध्य करना चाहा। अमरीका की हमदर्द तत्कालीन सुकीमान सरकार ने इस समझौते पर दस्तखत भी कर दिये। ये हस्ताक्षर गुप्त रूप से हुए थे। योजना उजागर नही की गयी थी। लेकिन अखबारो ने किसी तरह इस चीज को सूंघ लिया। धीरे-धीरे एक आन्दोलन उठ खडा हुआ। फिर वह फौरन ही फैल गया। जब वह पराकाष्ठा पर पहुँचा तो सुकीमान सरकार को इस्तीफा दे देना पडा। इस प्रकार अमरीकी सहायता योजना असफल हो गयी।

हिन्देशिया मे रबर, टिन और तेल की अपार सम्पत्ति है। इन पदार्थों के विश्व बाजार पर अपने नियन्त्रण की शक्ति का दुरुपयोग करते हुए, अमरीका ने हिन्देशिया की इन वस्तुओ के दाम गिरवा दिये। पिछली मई के महीने मे, हिन्देशिया के उप-प्रधानमन्त्री ने व्यापारियो की एक सभा मे यह वक्तव्य दिया कि अमरीकी कीमत नीति "इस देश को मृत्युकारी खतरे का प्रतिनिधित्व करती है"। चीन के साथ वह व्यापार नही होने देती। रबर, टिन और तेल—ये तीनो पदार्थ अमरीका की दृष्टि से युद्धोपयोगी द्रव्य हैं। फल यह है कि हिन्देशिया को 100 करोड रुपयो का घाटा होता है। साथ ही, हिन्देशिया को पुरान डच शासन की क्षति-पूर्ति के निमित्त 430 करोड गुल्डेन (डच सिक्का) हर साल हॉलैण्ड को देना पडता है।

अमरीका हिन्देशिया मे बने हुए डच-कारखानो, डच-हितो और उनकी सहायता से चलनेवाली दारउलइस्लाम जैसी मुस्लिम आतकवादी तथा मस्जूमी

मे अमरीका का विरोध जनता की भावना का एक मूलभूत तत्त्व हो गया है। उसे यह मालूम है कि जब अपनी मुक्ति के लिए वह डच साम्राज्यवादियो से सशस्त्र युद्ध कर रही थी, तो ब्रिटेन, फ्रास और अमरीका-जैसे 'जनतन्त्री' देश डचो का समर्थन कर रहे थे। केवल भारत ही ऐसा देश था, जिसने न केवल उसकी आजादी की लडाई का समर्थन किया, वरन युद्ध को शमन की सलाह देकर देश मे शान्ति-व्यवस्था और शक्ति सगठित करने की दिशा की ओर सकेत किया। हिन्देशिया की विश्व शान्ति की इच्छा न केवल युद्ध न होने की स्थिति की अपेक्षा करती है, वरन् ऐसे वातावरण की अपेक्षा करती है जिसमे फौजी समझौता और सगठनो की स्थिति निराधार हो जाये। हिन्देशिया यह चाहता है कि उसकी सरहदें न सुलगें। इस-लिए, उसके सामने विश्व-शान्ति के दो पहलू हैं—जैसे कि वे हमारे सामने भी हैं।

निश्चय ही, पहली बात का उचित विकास और विस्तार बहुत ही जरूरी है। दक्षिण एशियाई देश जो तटस्थ हैं वे थोडे हैं। बर्मा, हिन्देशिया और भारत तटस्थता तथा युद्ध-विरोध के प्रति श्रद्धाशील हैं। सीलोन ऊपरी तौर से तो इन देशो के साथ

है, लेकिन भीतरी तौर से वह पाश्चात्य देशों के प्रति अधिक आकर्षित है। डॉ शास्त्रमिद जोजो द्वारा प्रस्तावित, तथा अब भारत द्वारा समर्थित, अफ्रीकी-एशियाई कान्फ्रेंस का एक परिणाम यह होगा कि नये मित्रो को प्राप्त करने की सम्भावनाएँ बढ़ेंगी, एकाकीपन दूर होने की स्थिति तक पहुँचा जा सकेगा, देश की अपनी सार्वभौम सत्ता को मजबूत बनाने और उसका विभिन्न क्षेत्रो मे, वैदेशिक नीति के जरिये, विकास करने की गुजाइश बढ जायेगी। साथ ही, नये कूटनीतिक कार्यक्षेत्र का आरम्भ होगा, जो शायद, अनुकूल अवसर प्राप्त करने पर मजबूत हो सके और कम्यूनिस्ट तथा पश्चिमी देशो की कूटनीति से अपनी स्वतन्त्र सत्ता प्रस्थापित कर सके। (ये सब सम्भावनाएँ भविष्य के गर्भ मे हैं। उनकी भ्रूण-हत्या भी हो सकती है, यह न भूलना चाहिए)। अफ्रीकी-एशियाई कान्फ्रेंस, वस्तुत, इस बात की द्योतक है कि एशियाई राष्ट्रवाद अब अफ्रीकी राष्ट्रवाद से अपने को परस्पर जोडने और एक-दूसरे मे गुँथी हुई स्थिति को उत्पन्न करने जा रहा है।

आज भले ही अफ्रीकी राष्ट्रवाद का दमन हो चुका हो, या हो रहा हो, वह इतना बडा ज्वालामुखी है जो पश्चिमी साम्राज्यवादियो की तानाशाही, रगभेद नीति, आर्थिक गुलामी की नीति को समाप्त करने की ओर प्रवृत्त है। कम्यूनिस्ट देश आपस मे गुँथे हुए हैं, पाश्चात्य देश, अपनी सारी भीतरी दरारो के बावजूद, उपनिवेशो के दमन के मामले म एकमन और एकीभूत है। केवल उपनिवेशो के राष्ट्रवादी आन्दोलन ही ऐसे हैं जो आपस म गुँथे हुए नही हैं। अफ्रीकी-एशियाई कान्फ्रेंस इस गुम्फन की प्रणालियो के मार्गो को, अगर चाहे तो, प्रशस्त कर सकती है। जो हो, यह निश्चित है कि अफ्रीकी-एशियाई कान्फ्रेंस अफ्रीकी राष्ट्रवाद को प्रोत्साहित करेगी।

अगर इस प्रकार भारत, बर्मा, हिन्देशिया, आदि देशो की स्थिति अगर वैदेशिक क्षेत्र मे मजबूत होती है, तो उसका एक विशिष्ट परिणाम निश्चित रूप से यह होगा कि न केवल विश्व-शान्ति की सम्भावनाएँ अधिक बढेंगी, वरन् उस विश्व-शान्ति के, और अपनी सक्रिय तटस्थता के, जरिये वे देश अपने घर की व्यापारिक और औद्योगिक उन्नति के राजपथ को प्रशस्त कर सकेंगे। जब तक भारत, वर्मा, हिन्देशिया जैसे देश औद्योगिक दृष्टि से सम्पन्न नही होते, राष्ट्र का औद्योगिक पुनर्निमाण नही करते, तब तक वे वस्तुत मजबूत नही हो सकते। सक्रिय तटस्थतावादी नीति का सीधा सम्बन्ध देश के औद्योगिक-व्यावसायिक विकास से है। यह कभी भी न भूलना चाहिए। वैदेशिक नीति देश की इस आर्थिक कार्य-नीति का पथ सुगम कर रही है, यही उसका लक्ष्य भी है, यह उसका अभिप्रेत भी है। जो देश हमे एक औद्योगिक राष्ट्र बनने की दिशा मे हमसे व्यापार कर सकते हो, हमे मशीनें और मशीनें बनानेवाली मशीनें देने के लिए राज़ी हो सकते हो, उनसे हमे यह लाभ प्राप्त करना ही चाहिए। सच्ची मजबूती हासिल करने का यही एक रास्ता है। और इसे प्राप्त करनेवाली वैदेशिक नीति ही आज का तटस्थतावाद है, नाम चाहे जो दे लो। इसीलिए हमे अपने 'पीस एरिया', शान्ति क्षेत्र, का विस्तार अभिप्रेत है, जिसके लिए कि भारत और हिन्देशिया के प्रधानमन्त्री कोशिश कर रहे हैं।

[सारथी, 3 अक्टूबर 1956 मे 'विन्ध्येश्वरी प्रसाद' छद्मनाम से प्रकाशित]

ब्रिटेन की नयी राजनैतिक प्रवृत्तियाँ

ब्रिटेन के राजनैतिक दलों में जो धीरे-धीरे भीतरी परिवर्तन हो रहा है, वह कई दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। उसका सम्बन्ध और प्रभाव केवल उस देश की आन्तरिक परिस्थिति से ही न होकर अन्तर्राष्ट्रीय हलचलों और हालतों से भी है।

आज तक न जाने कितनी ही बार ब्रिटेन की लेबर पार्टी ने राज्य-सत्ता प्राप्त की। किन्तु सिवाय पिछले मन्त्रिमण्डल के, उसने किसी भी तरीक़े से ब्रिटेन को प्रभावित नहीं किया। मैकडोनल्ड-सरीखे उसके ऐसे भी नेता रहे जो नाम मात्र के लेबरदली थे। किन्तु दूसरे विश्वयुद्ध के बाद, लेबर पार्टी ने कुछ निर्णय के कदम उठाना शुरू किये, जिसमें से एक था भारत, बर्मा तथा सीलोन को स्वाधीनता देना, और दूसरा, नाम मात्र के लिए ही क्यों न सही, इस्पात उद्योग का राष्ट्रीयकरण करना। लेबर पार्टी द्वारा भारत को आज़ादी दिये जाने का काम, सिर्फ यथार्थवादी कदम था, क्योंकि भारत किसी-न-किसी तरह आज़ाद तो हो ही जाता। रहा देश के भीतर इस्पात उद्योग के राष्ट्रीयकरण का प्रश्न, तो वस्तुतः वह राष्ट्रीयकरण था ही नहीं। पूँजीपति, कामगार और सरकार की एक मिली-जुली समिति के काम का नाम ही राष्ट्रीयकरण था। इसलिए कंज़र्वेटिव पार्टी के पदारूढ होने पर, समिति को तोड़ देने का नाम ही राष्ट्रीयकरण खण्डित करना हो गया। लेबर पार्टी के राजत्वकाल में पूँजीपतियों के मुनाफ़ों की दर बढ़ती ही गयी। पार्टी के प्रमुख हिस्सों में वामपन्थी विचारधारा बिलकुल क्षीण थी, जैसी कि वह आज भी है।

इस लँगड़ेपन के साथ एक लूलापन भी था। वह लूलापन कंज़र्वेटिव पार्टी की विदेश-नीति को अंगीकार करके उसे द्वि-दलीय नीति का नाम देने के कारण उत्पन्न हुआ था। लेबर पार्टी पर कंज़र्वेटिव पार्टी का यहाँ तक प्रभाव हुआ कि राष्ट्रीयकरण को बिलकुल नकली बनाकर स्वीकार किया गया।

बेविन का उदय

इसका परिणाम यह हुआ कि राजनैतिक कार्यक्रम में इधर-उधर फेर-बदल करने के अलावा पार्टी के पास कोई ऐसी सक्रिय फ़िलॉसॅफी नहीं रही जिसके आधार पर जनता में प्रेरणा और विश्वास तथा अपनी शक्ति में श्रद्धा उत्पन्न की जा सके। पार्टी की इस भीतरी लुंज-पुंज स्थिति का मूल कारण एटली और बेविन की दक्षिण-पन्थी नीति थी, जिस पर कंज़र्वेटिव पार्टी की विचारधारा का बड़ा प्रभाव था। ऐसी स्थिति में यह स्वाभाविक ही था कि लेबर पार्टी की सत्ता न रहे और कंज़र्वेटिव दल फिर से पदारूढ हो।

वामपन्थी बेविन के उदय में अमरीका का बड़ा हाथ है। इंग्लैण्ड में कई जगह अमरीकी फ़ौजी अड्डे हैं। इन अड्डों ने वहाँ के जनमत को तो ख़राब किया ही, अमरीकी फ़ौजियों के बर्ताव ने उसे उद्वेलित कर दिया। इसके अलावा, दुनिया-भर में अमरीका ने जो दुःसाहसपूर्ण कार्रवाइयाँ की, उसका ब्रिटेन में बड़ा विरोध हुआ। यह सही है कि ब्रिटिश पूँजीवादी क्षेत्रों में, उस देश को दी गयी अमरीकी सहायता की बड़ी तारीफ़ हुई, और ऐसा प्रतीत होने लगा मानो ब्रिटेन अमरीका के बग़ैर

जी नहीं सकता। किन्तु समय बदलता गया। इन दो देशो की आर्थिक स्पर्धा मे, ब्रिटेन को लगातार पीछे हटना पडा। यद्यपि उच्च राजनैतिक स्तर पर, दिखाने के लिए, इन दो देशो की एकता बनी रही, किन्तु यह सब पर प्रकट हो गया कि अमरीका दुनिया मे ब्रिटेन को कमजोर देखना चाहता है। कञ्जर्वेटिव पार्टी पहले आर्थिक हित को देखती है, राजनैतिक आदर्शवाद की बात बाद मे करती है।

बेविन और उसके साथी जिनमे रिचर्ड क्रॉसमैन और किंग्स्ले मार्टिन प्रमुख हैं, अमरीका के खिलाफ लठ लेकर पड गये। उन्होंने लेबर पार्टी के भीतर एक वामपन्थी गुट कायम किया। एटली वग़ैरह तत्कालीन पदाधिकारी अमरीका से इतने डरते थे कि वे चाहते थे कि उसके विरुद्ध बात भी न की जाये। किन्तु विश्व-भर मे अमरीका की बिगडती हुई बात का समर्थन करना भी तो मुश्किल था। दुनिया मे घटनाएँ कुछ यो होती चली गयीं कि मत अमरीका के विपक्ष मे और रूस के पक्ष मे होता गया। इन प्रवृत्तियो को देखकर बेविन ने आवाज लगायी कि हमे दो खतरो मे से एक को चुनना है—रूस पर विश्वास करने का खतरा या तत्काल एटमिक विश्व-युद्ध का खतरा। बेविन की बात लोगो को ज्यादा विवेकपूर्ण मालूम होती गयी।

उधर दुनिया की राजनीतिक ने कुछ यो पलटा खाया कि नाटो और बग़दाद-सन्धि धरी-की-धरी रह गयी और उसके क्षेत्र के बाहर ब्रिटिश साम्राज्य को जगह-जगह सुरगें लगने लगी। लेबर पार्टी माने या न माने, विश्व मे पण्डित जवाहरलाल नेहरू के आविर्भाव और प्रभाव से बेविन-वादियों के हाथ मजबूत हुए और वे एशिया और अफ्रीका मे बढती हुई शक्तियो का महत्त्व स्वीकार करने की ओर प्रवृत्त हुए।

इतिहास जल्दी-जल्दी बदलने लगा। फ्रेंच और ब्रिटिश साम्राज्यवाद के अत्याचार, मलाया मे, केनिया मे, मोरक्को मे, अलजीरिया मे तथा सायप्रस मे गजब ढाने लगे।

एटली-सरीखे दक्षिणपन्थी लेबर नेता को प्रकट हुआ कि उनका ज़माना बीत चुका है। पूँजीवादियो से समझौता करके रखनेवाला समाजवाद साम्राज्यवाद के बढते हुए सकट मे कैसे जीवित रह सकता है?

उधर, दक्षिणपन्थी लेबरदली और कञ्जर्वेटिव नेता ने देखा कि मजदूरों की माँगें बढती जा रही हैं। देश मे आर्थिक सकट है। किन्तु पूँजीपतियो का मुनाफ़ा भी खूब बढ रहा है। मुद्रा-स्फीति बढ रही है और सरकार दिवालिया हो रही है।

साथ ही, मजदूरो ने सामूहिक सघर्ष बडे पैमाने पर हो रहे हैं तथा ट्रेड यूनियनो की ताक़त दुगुनी-तिगुनी हो गयी है। बाहरी व्यापारिक प्रतिस्पर्धा, भीतरी आर्थिक सकट और साम्राज्य के विध्वस के बढते हुए अवसरो ने लेबर पार्टी के वामपन्थी गुट को और मजबूत बना दिया।

किन्तु, इससे भी एक बडी बात यह हुई कि वैदेशिक नीति-सम्बन्धी एक बुनियादी विचारधारा पैदा हुई, जिस पर आगे की नीति आधारित की जा सके और मौजूदा नीति पर विश्वास किया जा सके। रिचर्ड क्रॉसमैन, किंग्स्ले मार्टिन और बेविन ने इस ओर ध्यान दिया। इस विचारधारा की प्रमुख बातें हैं: रगभेद पर स्थापित भेद-भाव मिटाना, साम्राज्यवाद के विरुद्ध उठते हुए राष्ट्रवादों से समझौता करना, अन्धे ढग से कम्यूनिस्ट-विरोधी न बनना, अमरीकी पुछल्ला बनने

की कोशिश न करना तथा विश्व-युद्ध न होने देना। हमें ये बातें बहुत मामूली मालूम होती हैं, किन्तु ब्रिटेन के जनमत से साहसपूर्वक ये बातें मनवा लेना मामूली काम नहीं है।

क्योंकि यह फिलॉसॅफी पहले से तैयार ही थी, इसलिए नासिर द्वारा सुएज नहर के राष्ट्रीयकरण के कारण ब्रिटेन द्वारा दी गयी फौजी धमकी के विरुद्ध लेबर पार्टी ने मोर्चा लिया और सरकारी दल के जोश को काफी हद तक ठण्डा किया।

कंज़र्वेटिव पार्टी

कन्ज़र्वेटिव पार्टी बढ़ते हुए अमरीकी प्रभाव का मुकाबला करने में लगी हुई थी। उसकी नीति, साम्राज्यवादी स्वार्थों के कारण ही, अमरीका से पृथक् होती गयी, किन्तु देश के भीतर वह आर्थिक सुव्यवस्था पैदा न कर सकी। साथ ही, बाहर उसने उचित ढंग से काम नहीं किया। बग़दाद-सन्धि की स्थापना, सायप्रस पर अत्याचार और सुएज के सम्बन्ध में उसकी नीति असफल होती गयी, जिसका परिणाम यह होने जा रहा है कि आज कंज़र्वेटिव पार्टी स्वयं यह सोच रही है कि उसकी नीति में कहाँ-कहाँ कैसे-कैसे परिवर्तन किया जाये।

मौजूदा प्रधानमन्त्री ईडेन की बुरी हालत का कारण उस बुनियादी नीति का अभाव है, जिसके आधार पर निर्भय और निडर होकर काम किया जा सके।

एक ओर, रूस और अमरीका की प्रतिस्पर्धा में कंज़र्वेटिव पार्टी युद्धोद्योगों को खूब बढ़ावा दे रही है जिससे देश में आर्थिक संकट बढ़ रहा है, तो दूसरी ओर, आर्थिक संकट घटाने की जितनी भी कोशिश की जाती है, उतने ही नये-नये संकट उपस्थित होते जाते हैं।

मैकमिलेन की आर्थिक संकट दूर करने की एक योजना थी कि सुएज संकट उत्पन्न हो गया, जिसने नया आर्थिक संकट पैदा किया।

कंज़र्वेटिव पार्टी, एक ओर, ब्रिटेन में कल्याण राज्य की स्थापना में विश्वास रखती है, तो दूसरी ओर, वह पूँजीपतियों के मुनाफ़े की दर भी घटाना नहीं चाहती।

उसके पास केवल एक ही रास्ता है, और वह यह कि वह आर्थिक संकट के हल के लिए अपने साम्राज्य की जनता को न लूटे, वरन् देश में भारत की आर्थिक नीति की विशेषताओं को अपनाकर, उद्योगों का आधुनिकीकरण करे तथा स्वयं-चल उद्योग का अधिक-से-अधिक विकास करे। जनतन्त्र को सुरक्षित रखकर अर्थ-तन्त्र के विकास के लिए उसे अपने अर्थतन्त्र को ही बदलना होगा।

आज अमरीका में सरकार का पूँजीपतियों पर जितना ज़ोर चलता है, उतना ज़ोर भी ब्रिटेन में नहीं चलता। पूँजी की इतनी बड़ी स्वाधीनता ब्रिटेन को युद्ध के पन्थ पर ले जायेगी, चाहे वह युद्ध सायप्रस के खिलाफ़ हो या और किसी के।

कंज़र्वेटिव पार्टी स्वयं इस बात को समझ रही है। इसीलिए, आज उसमें ज़ोरदार तरीके से आत्म-निरीक्षण चला हुआ है।

[सारथी, 14 अक्टूबर 1956, में 'अवन्तीलाल गुप्त' छद्मनाम से प्रकाशित]

अमरीका में व्यक्तित्व-द्विभाजन की समस्या

न्यूयार्क टाइम्स के 30 सितम्बर, इतवार के अंक में, 'सार्वजनिक सेवा' के लिए, इण्टरनेशनल लेटेक्स कारपोरेशन द्वारा मिलवाकी जर्नल का एक पूरा-का-पूरा लेख उद्धृत करके छपवाया गया है। लेख का साराश यह है कि अमरीका के व्यक्तित्व का द्विभाजन हो गया है। एक ओर, उसकी हार्दिक सहानुभूति नये उठते हुए राष्ट्रों की तरफ है, तो दूसरी ओर, पहले और दूसरे विश्वयुद्धों में परीक्षित हुए उसके मित्र, फ्रांस और ब्रिटेन, का भी वह पल्ला छोड नहीं सकता। किसी भी सकट-काल में अमरीका का यह आत्म-द्वन्द्व तीव्र होकर उसकी नीति कमजोर और बेठिकाने की बना देता है।

इस बात का उल्लेख करके कि नये उठते हुए राष्ट्रों मे रूस की लोकप्रियता बढती जा रही है, लेखक, श्री एच रमेल ऑस्टिन, कहता है कि अविकसित देशों में रूसी मदद का मुकाबला करने के लिए, उस मदद से अधिक सहायता की व्यवस्था करने की अमरीकी इच्छा इस अमरीकी भावना से टकराती है कि मुकाबला सफलतापूर्वक करने पर भी उसका परिणाम सहायता की तादाद और मिकदार के बराबर नहीं मिल पाता।

इसी बात को आगे बढ़ाकर लेखक कहता है कि सहायता देने पर भी जब नये देशो से अमरीका को हमदर्दी नहीं मिल पाती, तो क्या यह अच्छा नहीं है कि नये दशों का मोह छोड़कर सुपरीक्षित पुराने मित्रों की सहायता की जाये और उन्ही के भाग्य से अपना भाग्य बाँधा जाये।

लेखक ने 'आत्म-द्वन्द्व' और 'व्यक्तित्व के द्विभाजन'-जैसी उच्च शब्दावली का उपयोग करके अमरीका के असली उद्देश्यों को छिपाने का प्रयत्न किया है। पश्चिमी एशिया में, आज से नहीं एक अरसे से, अमरीकी नीति ब्रिटिश तथा फ्रेंच नीति की प्रतिस्पर्धा में बढ रही है। इस प्रतिस्पर्धा के बावजूद, तीनों में एक बुनियादी एकता है। इस बुनियादी एकता का उद्देश्य यह है कि पिछड़े देशों की आर्थिक और औद्योगिक स्वाधीनता के सगठन के प्रयत्नों को नाकामयाब करना। इसका सबसे बड़ा प्रमाण ईरान है। तेल कम्पनी के राष्ट्रीयकरण के बाद, अन्य देशों में तेल भेजने और बिक्री की व्यवस्था करने के लिए आवश्यक जहाज आदि का प्रबन्ध करने में अमरीका ने ईरान की कोई मदद नहीं की। लाखो टन तेल एक अरसे तक ईरान में सडता रहा। अन्त में मजबूर होकर एक अन्तर्राष्ट्रीय कम्पनी को तेल का उत्पादन सौंप दिया गया। यदि डॉक्टर मोसद्दिक थोड़ी हिम्मत करके रूस से जहाज बुलवाते या उसी को अपना तेल बेचते, तो बात और थी। किन्तु तत्कालीन स्थिति में वे ऐसा न कर सके। डॉक्टर मोसद्दिक की इस बेबसी से फ़ायदा उठाकर, एंग्लो-अमरीकियों ने ईरान पर नयी अन्तर्राष्ट्रीय तेल कम्पनी लाद दी। यदि अमरीका को ईरान के प्रति थोड़ी भी सहानुभूति होती, तो वह राष्ट्रीय-कृत तेल कम्पनी के तेल की बिक्री के मामले में ईरान की मदद करता। राष्ट्रीय माँगों के बारे में अमरीका जो कभी-कभी सहानुभूति बताता है, तो उसका कारण यह है कि वे उसके खिलाफ़ नहीं होतीं। दूसरे, इस सहानुभूति के ढोंग के द्वारा, ब्रिटेन

आदि देशो पर रोब गालिब किया जाता है। अमरीकी सहानुभूति का यह अभिप्राय और यह राजनैतिक उद्देश्य ईरान मे खूब ही सफल हुआ। ब्रिटेन अमरीका के इस पैतरे को अच्छी तरह जानता है, लेकिन इस समय कुछ कर नही सकता।

अमरीका की एक अत्यन्त प्रधान प्रकाशन-संस्था ने सन् 1930 मे एक पुस्तक प्रकाशित की—**अमरीका कांकर्स ब्रिटेन (अमरीका ब्रिटेन को हासिल कर रहा है)**। पुस्तक के अन्त मे उसके लेखक श्री लुडवेल डेनी निम्नलिखित निष्कर्षों पर पहुँचे .

"एक जमाने मे हम ब्रिटेन के उपनिवेश थे। ब्रिटेन नष्ट होने के पहले ही हमारा हो जायेगा—सिर्फ नाम का उपनिवेश नही, एक तथ्य के रूप मे यथार्थ उपनिवेश। अब बेहतर मशीनें अमरीका को दुनिया और ब्रिटेन जीतने की शक्ति दे रही हैं।

"यह सही है कि अमरीकी विश्व-प्रभुत्व के बारे मे सोचना भी भयकर है। *किन्तु अमरीकी विश्व-प्रभुत्व ब्रिटेन तथा उसके पूर्व के विश्व-प्रभुत्वो से ज्यादा* बुरा नही होगा··।"

नेशनल इण्डस्ट्रियल बोर्ड ऑफ यू एस ए के अध्यक्ष श्री वर्जिल जॉर्डन, सन् 1940 के दिसम्बर 10 को इन्वेस्टमेण्ट बैंकर्स एसोसिएशन ऑफ अमेरिका की एक बैठक मे भाषण देते हुए कहते हैं .

"युद्ध का (दूसरे विश्वयुद्ध का) परिणाम जो भी हो, विश्व-कार्यों मे तथा अपने जीवन के सभी पक्षो मे, अमरीका साम्राज्यवाद के पथ पर चल पड़ा है। हमारी सहायता से इग्लैण्ड जीत भी जाय, किन्तु वह इतना लूला होकर निकलेगा कि वह विश्व पर अपना पुराना प्रभुत्व न फिर से पा सकेगा, न कायम रख सकेगा। अधिक-से-अधिक, एग्लो-सैक्सन साम्राज्यवाद मे ब्रिटेन एक जूनियर हिस्सेदार रहेगा, और आर्थिक साधन, सैनिक तथा जहाजी शक्ति अमरीका के पास पहुँच जायेगी। राजदण्ड अमरीका के पास जा रहा है।" (**कर्माशियल एण्ड फिनैंशियल क्रॉनिकल**, न्यूयार्क, दिसम्बर 21, 1940)।

सन् 1941 मे एटलाण्टिक चार्टर के सम्बन्ध मे सोचने-विचारने के लिए चर्चिल और रूजवेल्ट के बीच जो बातचीत हुई, उसे रूजवेल्ट के पुत्र ईलियट रूजवेल्ट ने शब्दबद्ध किया है। उस बातचीत मे ब्रिटिश साम्राज्यवाद के भविष्य का उल्लेख होते ही चर्चिल महोदय कहते हैं

"अध्यक्ष महोदय, मेरा विश्वास है कि आप ब्रिटिश साम्राज्यवाद नष्ट-भ्रष्ट करना चाह रहे हैं। *विश्वयुद्धोत्तर दुनिया की रचना के बारे मे आपका प्रत्येक* विचार यह सिद्ध करता है। किन्तु इस तथ्य के बावजूद, आप ही हमारी आशा के एकमात्र केन्द्रस्थल हैं और आप यह जानते है कि हम यह जानते है कि अमरीका के बगैर हमारा साम्राज्य टिक नही सकता।" (ईलियट रूजवेल्ट **एज़ ही सॉ इट**, 1946, पृष्ठ 41। ये उद्धरण श्री रजनी पाम दत्त के **ब्रिटेन क्राइसिस ऑफ एम्पायर** से लिये गये हैं।)

हमने सन् 30 से सिर्फ सन् 41 तक के उद्धरण दिये, जिनसे यह सूचित होता है कि दूसरा विश्वयुद्ध शुरू होने के पूर्व ही, अमरीका को अपने आगे के महत्त्व का बोध था। विश्वयुद्ध के बाद, ब्रिटेन भी जानने लगा कि यद्यपि अमरीका की आँख *ब्रिटिश साम्राज्य हड़पने पर लगी हुई है, किन्तु उस देश की सहायता के बिना वह* अपनी शक्ति टिका नही सकता। ऐसी स्थिति मे, ब्रिटेन के पास सिर्फ एक ही

उपाय है कि ब्रिटेन अमरीका को कम-से-कम रिआयतें दे, लेकिन उसे खुश रखे। और अमरीका ब्रिटेन से ज्यादा-ज्यादा रिआयतें ले, लेकिन उसे अपने मैत्री के चगुल से भागने न दे।

यह कार्य तभी सिद्ध हो सकता है कि जब ब्रिटेन सकट मे पडा हुआ हो, तभी उससे रिआयतें छीनी जा सकती हैं। ये रिआयतें छीनने के लिए, ज़ोर की आज-माइश का एक तरीका यह है कि अमरीका उठते हुए राष्ट्रवादो से अपनी सहानुभूति प्रकट करे, कि जिससे ब्रिटेन अमरीका की हलचलो से डरकर, उसे खुद ज्यादा-से ज्यादा रिआयतें देने के लिए मजबूर हो। यही वह तरीका है जिससे ब्रिटेन को धीरे धीरे पीछे हटाया जा सकता है। इन्ही तरीको से ब्रिटेन को पाकिस्तान और ईरान से काफी हद तक हटाया गया। किसे यह नही मालूम कि अमरीका सिर्फ उन्ही नये स्वाधीन देशो को निर्द्वन्द्व भाव से सहायता देता है, जो उसकी हाँ-मे-हाँ मिलाने के लिए हमेशा तैयार रहे—जैसे, पाकिस्तान, थाईलैण्ड फिलिपाइन्स, दक्षिण कोरिया, फारमोसा, आदि आदि। नये उठते हुए राष्ट्रवादो को अमरीका का, वस्तुत, कोई समर्थन प्राप्त नही है।

मिस्र की राष्ट्रवादी नीति अमरीका ने कभी पसन्द नही की। सुएज़ सकट के हल में डलेस न जो नरम नीति बतलायी, उसका यह कहकर बडा हल्ला किया गया कि अमरीका बढती हुई राष्ट्रवादी शक्तियो की सहानुभूति खोना नही चाहता। यदि ऐसा होता तो अस्वान बाँध के लिए कुबूल की गयी सहायता देने से इनकार नही किया जाता। असल मे, डलेस की नरम नीति का मूल कारण उस क्षेत्र मे रूसी प्रभाव तथा तेल की हानि का डर है। यदि वहाँ लडाई छिड जाती, तो एक तो, तेल-क्षेत्रो म आग लगा दी जाती, और दूसरे, रूसी प्रभाव अमिट रूप से स्थापित हो जाता। साथ ही, यह प्रादेशिक युद्ध किसी भी क्षण विश्वयुद्ध मे बदल सकता था। इन सब सम्भावनाओ को ध्यान मे रखते हुए, डलेस ने दूरदर्शिता-पूर्वक काम करते हुए, नरम नीति अपनायी। इस उदाहरण से अमरीका के व्यक्तित्व का न द्विभाजन सिद्ध होता है, न किसी ढग का आत्मद्वन्द्व। उसी इण्टर-नेशनल लेटेक्स कारपोरेशन के चेअरमेन श्री ए एन. स्पेनेल न्यूयार्क टाइम्स के पूर्व-उल्लिखित अक मे 'दि हिडन इशूज़' शीर्षक के अन्तर्गत लिखते हुए सलाह देते है कि [illegible]

और कारपोरेशन म यही फर्क है। एक को चारो ओर देखकर काम करना पडता है, दूसरा तुरन्त आक्रमण करना चाहता है।

हम और आप नही, उन्हें इतिहास ही सबक़ सिखायेगा।

[सारथी, 21 अक्टूबर 1956, मे 'अवन्तीलाल गुप्त' छद्मनाम से प्रकाशित]

साम्यवादी राष्ट्रों की नयी समस्या

रूस के ख्रुश्चेव ने अ-स्तालिनीकरण की जो प्रक्रिया शुरू की, वह बीच ही में नहीं रोकी जा सकती। पोलैण्ड की कम्यूनिस्ट पार्टी ने यह सिद्ध कर दिया है कि अ-स्तालिनीकरण का दूसरा पक्ष राष्ट्रीय स्वाधीनता तथा जनतन्त्रात्मक कार्य-नीति है।

इसके विपरीत, राष्ट्रीय विकास के लिए भारत को कर्ज देने के सम्बन्ध में दूसरे आयोजन में काट-छाँट और रद्दोबदल करने की सलाह देते हुए, जनतन्त्र की रक्षा और विकास के लिए निजी पूँजी को प्रोत्साहन देने का जो आग्रह किया [गया], उसके जवाब में हमारे प्रधानमन्त्री पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने कहा कि जनतन्त्र के साथ निजी पूँजी का समीकरण ग़लत है।

दूसरे शब्दों में, भारत जनतन्त्र के साथ समाजवाद के विकास के सिद्धान्त का व्यावहारिक समर्थन कर रहा है। पोलैण्ड और यूगोस्लाविया समाजवाद के साथ स्वाधीनता तथा जनतन्त्रात्मक प्रवृत्ति के विकास में योग दे रहे हैं।

एक दूसरे तिगड्डे पर खड़े होकर, जो दृश्य हमें दिखलायी दे रहा है वह यह है कि जनतन्त्र के महा प्रवक्ता ब्रिटेन और अमरीका के विरुद्ध जनतन्त्री क्षेत्र में रहने-वाला भारत, समाजवादी ढंग की समाज-रचना, यानी समाजवाद का नारा बुलन्द कर रहा है। दूसरी ओर, साम्यवादी-समाजवादी क्षेत्र का एक हिस्सा—यूगोस्लाविया और पोलैण्ड—समाजवाद के महा प्रवक्ता मास्को के विरुद्ध जन-तन्त्री प्रवृत्ति तथा स्वाधीन समाजवाद का सिद्धान्त निनादित कर रहा है।

दोनों प्रवृत्तियाँ यह सूचित करती हैं कि विश्व-शान्ति की प्रक्रिया ने एक ऐसा वातावरण तैयार कर दिया है जहाँ यह पृथक्ता स्थापित तथा विकसित की जा सके। विश्व-शान्ति ने जनतन्त्री प्रवृत्ति, समाजवाद तथा स्वाधीनता आन्दोलनों के विकास का क्षेत्र खुला कर दिया है। विश्व-शान्ति ने सामाजिक परिवर्तनों का रास्ता साफ़ कर दिया है, तथा अभेद और एकता के स्थान पर, इकाइयों के भेद, भिन्नता, पृथक्ता के स्वाधीन विकास की प्रक्रिया तीव्र कर दी है—चाहे वह इकाई समाजवादी राष्ट्र हो या सामन्ती, या वह एक भारतीय प्रान्त ही क्यों न हो। किन्तु ध्यान में रखने की बात है कि यह भेद अभेद के विरुद्ध नहीं। यह भेद अभेद से उत्पन्न हुआ है। अभेद पिता है, जैसे, बीज। भेद पुत्र है, जैसे, शाखाएँ, फल और फूल। भेद और अभेद के इस रिश्ते को न समझने के कारण, पूर्वी यूरोप के कम्यूनिस्ट देश तथा रूस में मतभेद पैदा हो गये हैं। भारत में भाषावार प्रान्त-रचना के बारे में मनोमालिन्य उसी का प्रतीक है।

ख़ैर, पूर्वी यूरोप की मुख्य विवाद-समस्या समाजवाद के अलग-अलग रूपों के प्रश्न पर हम मुड़ते हैं।

कम्यूनिस्ट दुनिया में 'समाजवाद के अलग-अलग रूप और उसे प्राप्त करने के अलग-अलग मार्ग हो सकते हैं' वाला सिद्धान्त स्तालिन के ज़माने से ही स्वीकृत रहा है। पिछले स्तालिन-प्रभाव काल में, चीन ने जिस ढंग से और जिन तरीक़ों से समाज का जो ढाँचा तैयार किया, वह सोवियत रूस के लक्ष्य और मार्ग से विप-रीत न सही, तो कम-से-कम पृथक् तो था ही। इस पृथक्ता को स्वीकार करना

पड़ा, क्योंकि चीन अपने पराक्रम से विकास कर रहा था।

इसलिए यह कहना कि भिन्न भिन्न देशों में समाजवाद के अलग-अलग रूपों और उसे प्राप्त करने के अलग-अलग तरीकों के सिद्धान्त को स्थापित करने का श्रेय यूगोस्लाविया के मार्शल टीटो का है, निराधार है, और ऐतिहासिक तथ्य के विरुद्ध है।

मार्क्सवाद के अनुसार समाजवाद की बुनियादी बातों में, खेती तथा उद्योगों का सामाजीकरण, और राष्ट्र के विकास के लिए बहुत आर्थिक आयोजन का काम शामिल है। एक बार इस बुनियादी लक्ष्य के तथ्य को स्वीकार करने के बाद, देश-देश की अपनी-अपनी परिस्थितियों तथा विकासावस्थाओं की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए स्थायी-अस्थायी अनेक प्रकार की सस्थाएँ और कार्यक्रम चलाये जा सकते हैं। यहाँ तक कि व्यक्तिगत उद्योग तथा व्यक्तिगत खेती तथा निजी सम्पत्ति तक को प्रश्रय दिया जा सकता है। चीन ने, एक ओर, सामाजिक सत्ता के अन्तर्गत पूँजीवाद को न केवल प्रश्रय दिया, वरन् उसका इस ढग से विकास किया कि जिससे वह सामाजिक सत्ता के बल को बढा सके और उसकी उत्पादित वस्तुएँ वही हो जिनकी आवश्यकता समाज को है।

भारत में सामाजिक—जिसे हम सार्वजनिक कहते हैं—क्षेत्र के अन्तर्गत मूल उद्योगों का विकास किया जा रहा है और निजी पूँजी का क्षेत्र और उसकी हदें निश्चित कर दी गयी हैं। यद्यपि इस समय तुलनात्मक दृष्टि से, अपने यहाँ निजी पूँजी का वजन सामाजिक पूँजी से बडा है। किन्तु दूसरी पचवर्षीय योजना की समाप्ति के बाद, तीसरे आयोजन की शुरुआत के साथ, एक ऐसी हालत पैदा हो जायेगी जब निजी पूँजी को सार्वजनिक पूँजी में क्रमश विलीन होते जाने के रास्ते खुल जायेंगे।

असल में, आर्थिक आयोजन का राष्ट्रीय सिद्धान्त समाजवाद की स्थापना की तरफ़ ही ले जाता है, बशर्ते कि राष्ट्रीय सकल्प और प्रण बीच में ही न टूटे।

इस विशाल राष्ट्रीय आर्थिक समायोजन का एक भीतरी प्राकृतिक नियम यह है कि राजसत्ता उत्पादन-प्रणाली का एक अविभाज्य और अटूट अग बन जाती है। उसकी हैसियत बहुधा उत्पादक विक्रेता और साहूकार की हो जाती है। यह सही है कि देश की दशा को देखकर ही समायोजन का क्षेत्र छोटा या बडा किया जायेगा। अथवा, दूसरे शब्दों में, पूरे देश को इकाई मानकर, उसके वर्तमान और भविष्य को दृष्टि में रखते हुए, समायोजन का जो रूप निर्धारित किया जायेगा, उस रूप में जनता की तात्कालिक आवश्यकताओं और भावनाओं को ध्यान में रख, ऐसे परिवर्तन किये जायेंगे जिनमें लोग खुश हों और उनका सर्जनात्मक बल तथा निर्माणात्मक शक्ति का उपयोग राष्ट्रीय निर्माण के लिए किया जा सके।

समायोजन का काम बडी ज़िम्मेदारी का काम है। उसमें यथार्थवादी सूझबूझ के साथ ही, देश की दशा और उसकी आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर, लक्ष्य पूरा होने तक के रास्ते में बीच की मजिलें ध्यान में रखना ज़रूरी हो जाता है।

देश-देश की विकास दशाएँ ही उनके यहाँ के समायोजन का रूप निर्धारित करेंगी, यद्यपि समायोजन का लक्ष्य हमेशा सामाजिक सत्ता के अन्तर्गत खेती तथा उद्योग को लाना ही रहेगा। इन विभिन्न विकास दशाओं के अनुसार, समायोजन के निर्धारित लक्ष्य पूरे करने के लिए विभिन्न कार्यक्रमों, सगठनों और सस्थाओं का

जन्म तथा विकास होगा। इन कार्यक्रमो, सस्थाओ तथा सगठनो की विभिन्नता को, यदि आप समाजवाद के भिन्न-भिन्न रूप कह दें, तो कोई हानि नही, लाभ ही लाभ है।

एक ही उद्देश्य के लिए कार्यक्रमो, सगठनो, सस्थाओ तथा कार्यनीतियो का रूप भी अलग-अलग हो सकता है। ब्रिटेन के एन्युरिन विवेन ने कहा है ब्रिटेन की तोपें मुँह बाये पडी रहती हैं और आग नही उगल पाती, किन्तु अमरीकी पैसे की पिस्तौल की छोटी-सी गोली कारगर हो जाती है। विवेन ने कहा कि इसीलिए अमरीकी साम्राज्यवाद महाभयकर है। प्रत्यक्ष अपने शासन के अन्तर्गत कोई साम्राज्य न रखते हुए भी, अमरीका आज सबसे शक्तिशाली साम्राज्यवादी देश है। साम्राज्यवाद की विभिन्नता आपके सामने है। यूरोपीय सामन्तवाद तथा एशियाई सामन्तवाद के रूपो का अन्तर भी हमारे ध्यान मे रहना चाहिए। उसी प्रकार, देश-काल-परिस्थिति के अनुसार, समाजवाद की रचना भी भिन्न-भिन्न प्रकार की हो सकती है। किन्तु महत्त्वपूर्ण बात यह है कि यह भिन्नता उस बुनियादी एकता और अभेद पर आधारित है जिसके कारण समाजवाद समाजवाद है, न कि पूँजीवाद या सामन्तवाद।

भेद और अभेद के इस रिश्ते को न समझने के कारण मतभेदो ने अपना सिर ऊँचा उठाया है।

कोई कारण नही था कि श्री ख्रुश्चेव वारसा जाकर अपनी नाक कटाते। किन्तु उन्होने दुनिया को यह भान करा दिया कि भाइयो की आपस में नही बनती। इस यात्रा की कोई जरूरत नही थी। आपसी बैर-भाव, और कुछ नही तो, किसी-न-किसी की नाक जरूर कटाता है।

रहा पोलैण्ड से जुडा हुआ रूसी सुरक्षा का प्रश्न, तो वह सैनिक सन्धियो से पूरा नही हो सकता।! रूस को हमदर्दी से देखनेवाले मित्रो का यह सोचना स्वाभाविक ही है कि उसने दुनिया तो जीत ली, लकिन घर मे हार गया।

रूस ने अपनी हार स्वीकार भी कर ली। 'मैत्रीपूर्ण मुँहफट बात' जब पोलैण्ड और रूस दोनो ने की, तब हम उस बात के मैत्री-पक्ष पर ज्यादा जोर देना चाहेगे। हम चाहते हैं कि दोनो देश बुनियादी अभेद को पहचानें लेकिन भेद को अपमानित न करें। विकास का अर्थ केवल वृद्धि नही है। एक मूलभूत अभेद के ढाँचे मे भेदोपभेदो के प्रवर्धन का नाम ही विकास है। तभी बीज फूलो पत्तियो फलो और शाखाओ मे परिणत होता है।

[सारथी, 28 अक्टूबर 1956, मे 'अवन्तीलाल गुप्त' छद्मनाम से प्रकाशित]

शापग्रस्त ब्रिटेन

जमाना एक अंधेरी सँकरी खतरनाक जलती हुई गली में से गुजर रहा है। इजिप्ट पर आक्रमण करके ब्रिटेन की खुशी हमेशा के लिए खत्म हो गयी।

कल क्या होगा, कोई नहीं जानता। इजिप्ट की भूमि पर से विदेशी सेनाओं के हटाये जाने पर भी पश्चिमी एशिया में शान्ति स्थापित होगी कि नहीं, यह एक सवाल ही है। अरब क्षेत्र में से गुजरते हुए तेल के नलों को तोड़ा जा रहा है, और उनमें आग लगायी जा रही है।

ब्रिटेन और फ्रांस के पास सिर्फ चीखने-चिल्लाने के अलावा कोई चारा नहीं है। यह सही है कि चीखना-चिल्लाना भी एक महत्त्वपूर्ण राजनैतिक कार्य है। किन्तु पहले से ऐसी राष्ट्रवादी प्रवृत्तियाँ जग उठी हैं, जो अब ब्रिटेन और फ्रांस की स्नायुपेशियों पर जहर का दाँत गड़ाना चाहती हैं। जब तक अमरीका पूरे तौर से स्पष्ट और साफ लकीर-सी नीति का अवलम्बन नहीं करता, तब तक ब्रिटेन-फ्रांस का रुख एक चिड़चिड़े आदमी की नपुंसक झल्लाहट से ज्यादा हो नहीं सकता।

ठीक है कि ईडेन जमेका चले गये हैं, जहाँ उन्हें, शिष्टता के नाते ही क्यों न सही, प्रेसिडेण्ट आइज़ेनहॉवर द्वारा बातचीत का निमन्त्रण दिया जा सकता है, लेकिन एक हारे हुए 'मित्र' के साष्टांग नमस्कार और गिड़गिड़ाहट से ज्यादा कुछ किया नहीं जा सकता। अधिक-से-अधिक, ईडेन कुछ रिआयतें हासिल कर सकते हैं। ये रिआयतें इतनी निर्णायक नहीं हो सकतीं कि वे पश्चिमी एशिया में ब्रिटेन के डूबते सितारे को आसमान में फिर से चढ़ा सकें।

ब्रिटेन इतना कमज़ोर है कि फ्रांस से मिलकर भी वह कुछ नहीं कर सकता। या तो उसे सोवियत रूस का बनकर रहना होगा, या अमरीका का। सही है कि उसकी सैनिक नीति का अब तक का हाल अमरीकी मायाजाल का ही अंग बनकर रहा। किन्तु जब से उसने स्वतन्त्र नीति अपनायी, तब से उसे यह अनुभव हुआ कि वह भीतर से कितना कमज़ोर है। राष्ट्र की एकता समाप्त हो गयी है। शासन करनेवाली कंज़र्वेटिव पार्टी खुद टूटी हुई है, नेताओं के मन में द्वन्द्व-युद्ध चल रहा है। ऐसी स्थिति में, समय और अवसर प्राप्त करने के लिए ब्रिटेन के सामने सिर्फ एक ही रास्ता है। वह यह कि वह तुरन्त राष्ट्रीय चुनाव आयोजित करे। इससे यह होगा कि दुनिया का ध्यान निर्वाचन की तरफ तो जायेगा ही, साथ ही नयी नीति के निर्माण की बला लेबरपन्थियों के सिर पर डाल दी जायेगी।

पश्चिमी एशिया में रूस के प्रभाव की बाढ़ रोक रखने के साथ ही शान्ति और मैत्री कायम करने की ज़िम्मेदारी लेबरपन्थियों के सिर पर आने के बाद, स्वयं उस पार्टी के और पन्थ के नेता अधिक कट्टर, अनुदार होने की ही ज्यादा सम्भावना है, विशेषकर रूस के बढ़ते हुए प्रभाव को रोकने के लिए। ध्यान में रखने की बात है कि भारत में ब्रिटेन के आर्थिक हितों की सम्पूर्ण रक्षा की सम्पूर्ण गैरण्टी राष्ट्रीय नेताओं से ले चुकने के बाद, लेबरपन्थियों ने भारत को आजादी दी। ठीक वैसी ही गैरण्टी अरब राष्ट्रों से ली जा सकती है, और वहाँ ब्रिटेन के प्रभाव का पाया मज़बूत किया जा सकता है।

कंज़र्वेटिव पार्टी की विदेश-नीति फ़ेल हो गयी। अब इतिहास लेबरपन्थियों

को शासन-सूत्र दिलायेगा। या तो कज़र्वेटिव तत्त्व सीधे-सीधे चुनाव करें, या सही दिशा मे अनिच्छापूर्वक अधूरे कदमो की घोर असफलता के दृश्य उपस्थित करें। कज़र्वेटिव पार्टी के रवैये से यह साफ ज़ाहिर होता है कि ब्रिटेन कुछ नये क़दम बढाना चाहता है, जिसके पहले वह अमरीकी रुख का अध्ययन करना पसन्द करेगा। जमेका मे ईडेन का निर्वासन, असल मे उन्हे जनता के मुँह-चिढाते चेहरो से दूर हटाने के प्रयत्न के साथ ही, अमरीका से नज़दीकी सम्पर्क स्थापित करने के लिए घटित किया गया है।

अमरीकी रुख आज, अनिच्छापूर्वक ही क्यो न सही, एफ्रो-एशियाई देशो के साथ है। लेकिन यह साथ क्षणिक और अस्थायी है। असल मे, अमरीका नही चाहेगा कि ब्रिटेन मे लेबरपन्थियो का राज्य हो। इसके कई कारण हैं, जिनमे से एक यह भी है कि स्वभावत लेबर-तत्त्व अमरीका का ज़बर्दस्त विरोधी है। दूसरे, यह कि अमरीका स्वय यह नही चाहेगा कि पश्चिमी एशिया मे समाप्त होती हुई ब्रिटिश छाया और विस्तीर्ण हो। ब्रिटेन की कज़र्वेटिव पार्टी अमरीका से सिर्फ दम-दिलासा नही चाहती। वह यह चाहती है कि ब्रिटिश आर्थिक हितो पर, उस क्षेत्र मे चोट होने की स्थिति मे, वाशिंगटन लन्दन की सहायता के लिए दौड जाये। पश्चिमी एशिया म जो आज हालत है, उसमे किसी भी तत्त्व ने ब्रिटेन के आर्थिक हितो को चोट पहुँचाने का कोई कार्यक्रम स्वीकार नही किया है। अमरीका ऐसी स्थिति मे ब्रिटेन को सहानुभूति और सम्पूर्ण सहायता का आश्वासन दे सकता है।

यदि मिस्टर ईडेन आइज़नहोवर से ऐसा दृढ आश्वासन पाते हैं, तो कज़र्वेटिव पार्टी उस क्षेत्र मे नयी नीति अपना सकती है—ऐसी नीति जो कुछ हद तक यथार्थवादी कही जा सके। किन्तु इस प्रकार के विशिष्ट और दृढ आश्वासन के अभाव मे, कज़र्वेटिव पार्टी को, आज नही तो कल, सिंहासन त्याग करना पडेगा। मेरे खयाल स, अमरीका ऐसा आश्वासन दे सकता है, इस शर्त पर कि ब्रिटेन अमरीका

को नीव फिर से मज़बूत करने के लिए नयी नीति इख्तियार करनी पडेगी, या लेबरपन्थियो को शासन-सूत्र सौंप देने होंगे।

ऐसा क्यो? यह इसलिए है कि ब्रिटेन के लिए यह क्षेत्र उसके जीवन-मरण का प्रश्न लेकर उपस्थित हुआ है। लगभग अगले पचास साल तक, ब्रिटेन अणु-शक्ति का इतना उत्पादन नही कर सकता है कि वह शक्ति तेल का स्थान ले सके। उसके लिए यह जरूरी है कि वह मौजूदा देशो से, चाहे वहाँ कोई भी सरकारें रहे, मैत्री-सम्बन्ध जोडे और उन्हे स्थायी आधार दे। यदि उसके तेल-क्षेत्र मे अनुल्लघनीय बाधाएँ उत्पन्न हुई, तो उसके पास सिर्फ एक ही रास्ता है। क्या वह सचमुच रास्ता है? वह पथ है—तेल के लिए अमरीका और वेनेजुएला की कृपा पर जीवित रहना। क्या ब्रिटेन अपने जीवन के लिए इन दो देशो पर, खासकर अमरीका पर, निर्भर रहे? फिर तो वही स्थिति हो जायगी, जिसकी एक बार भविष्यवाणी की गयी थी। आम तौर से अमरीका और ब्रिटेन म यह कहा जा रहा था कि ब्रिटेन अमरीका का उनचासवाँ राज्य हो जायेगा। ब्रिटेन यह हरगिज़ पसन्द नही करेगा।

ऐसी हालत में, उसके पास दो ही मार्ग हैं। एक, रूस से समझौता करना, और दूसरे, पश्चिमी एशिया में, उसके प्रभाव को रोकते हुए शान्ति और मैत्री का हाथ बढ़ाकर अपनी शक्ति और आर्थिक हित मजबूत करना।

क्या ब्रिटेन ऐसा करेगा? दूरगामी परिवर्तनों का मार्ग मुक्त किये बिना नयी नीति अपनायी नहीं जा सकती। इन परिवर्तनों के लिए तैयार रहने की मानसिक शक्ति, कन्ज़र्वेटिव पार्टी में न होने के सबब से ही ब्रिटेन इस समय उलझन में पड़ा हुआ है।

बुलगानिन ने अपने पत्रों तथा वक्तव्यों द्वारा यह स्पष्ट कर दिया है कि पश्चिमी एशिया में उसके कोई आर्थिक हित नहीं हैं। उसने निःशस्त्रीकरण प्रस्ताव भी पेश किये हैं, जिन पर ब्रिटेन की लेबर पार्टी तथा भारत की अनुकूल प्रतिक्रिया हुई है। रूसी नीति का एक उद्देश्य ब्रिटेन को अमरीका पर अवलम्बित न होने देना है, और, हो सके तो, उसे अपने पास खींचना है। रूस को अमरीका से ज्यादा डर है, न कि ब्रिटेन से। लेकिन, चूँकि ब्रिटेन अमरीकी नीति का एक जाना-माना समर्थक रहा है, इसलिए वह ब्रिटेन का भी प्रचण्ड विरोधी है। इस विरोध के बावजूद, ब्रिटेन के आर्थिक हितों की पश्चिम एशियाई भूमिका तभी सुरक्षित रह सकती है, जब वह रूस से किसी-न-किसी तरह का समझौता करे। रूस इस तथ्य को अत्यन्त घनिष्ठता से पहचानता है। वह आज नहीं तो कल इस स्थिति से लाभ उठायेगा। लेबरपन्थी लोग रूस से समझौता करने की, तथा निःशस्त्रीकरण सम्बन्धी और अन्य रूसी सुझावों पर सहानुभूतिपूर्वक विचार करने की, वकालत कर ही रहे हैं। रूसी नीति ब्रिटेन के जनमत को भी देख रही है। यदि हंगरी की समस्या न खड़ी होती तो रूस का रुख कुछ और होता, वह ज्यादा नरम रहता। असली सवाल अमरीका का ही है। अमरीकी नीति स्पष्ट होने पर ब्रिटेन की भावी नीति और स्पष्ट होगी। तब तक मामला ऐसा ही गोल रहेगा।

[सारथी, 2 दिसम्बर 1956, में 'अवन्तीलाल गुप्त' छद्मनाम से प्रकाशित]

अगले घटनाक्रमों की चिन्ता

आज विभिन्न शक्तियाँ विभिन्न घटनाक्रम उपस्थित करने में लगी हुई हैं। किन्तु वे एक-दूसरे से कट जाती हैं। इस चक्र काल की गति ज़रा धीमी हो गयी है। और हर प्रवृत्ति को ऐसा लग रहा है मानो वह पहले चारों ओर देख ले कि फलाँ प्रवृत्ति क्या-क्या कर रही है।

ब्रिटेन और फ्रांस इजिप्ट से शीघ्र फौजें निकाल लेने में हिचकिचा रहे हैं। वे क्या करेंगे, कुछ नहीं कहा जा सकता। इतना निश्चित है कि उनके सामने दो लक्ष्य हैं:

(1) अमरीका को किसी भी हालत में अपने साथ रखना। अगर कम्यूनिस्ट

दुनिया के नुकसान के साथ पश्चिमी दुनिया के नुकसान की तुलना करें, तो हानि पश्चिमी दुनिया की ही ज्यादा हुई है। प्रतिष्ठा के अलावा, उनकी पाँत में जो दरारें पड़ गयी वे बड़ी-बड़ी हैं। सोवियत की शक्ति से अगर किसी को ज्यादा भय है तो पश्चिमी यूरोपीय शक्तियों को ही। इस दरार को भरना जरूरी है। आज नहीं तो कल, टोरी पार्टी को यह तथ्य स्वीकार करना होगा।

(2) ब्रिटेन-फ्रांस का दूसरा लक्ष्य है, तेल क्षेत्र के अरब देशों को इतना कमज़ोर कर डालना कि वे एक तो इजिप्ट की कभी कोई सहायता न कर सकें, दूसरे, वे खुद भी इतने मजबूत न हो सकें कि जिस मजबूती से ब्रिटेन को भय रहे। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए यह जरूरी है कि अरब देशों को आपस में लड़ा दिया जाये, और उन अरब देशों में जहाँ उग्र राष्ट्रवादी सरकारें कायम हो गयी हैं वहाँ गृह-युद्ध की सशस्त्र तैयारियाँ करवायी जायें। ध्यान में रखने लायक बात है कि जब से इजिप्ट का युद्ध बन्द हुआ, तब से पाकिस्तान और ईराक अधिक सक्रिय हो गये हैं। सीरिया और इजिप्ट इस क्षेत्र में चलनेवाली कारंवाइयों के विरोधी हो गये हैं। जोर्डन और लेबेनान में इज़राइली और ईराकी हथियार पहुँच चुके हैं। यहाँ तक कि सीरिया उनकी कारंवाइयों से चिन्तित हो गया है। इन देशों के परस्पर युद्ध और गृह-युद्ध की तैयारियाँ बढ़ रही हैं। और वह समय शीघ्र ही आनेवाला है जब स्थानीय युद्ध भड़क उठेंगे। पाकिस्तान के प्रधानमन्त्री सुहरावर्दी ने बेखटके स्थानीय युद्धों की सम्भावना की तरफ इशारा भी किया है।

[illegible]

पर हावी नहीं हो पा रहा है। किन्तु वह उनके प्रभाव में अपने को पाकर छटपटा रहा है। वह चाहता है कि अंग्रेज़ों की मदद से पुनः शक्ति प्राप्त करे।

इस राष्ट्रवाद को रूस सक्रिय मदद देने के लिए आतुर है। रूस बराबर सीरिया को मदद देगा। शायद, वह अब तक काफी दे चुका है। आगे चलकर वह और भी देगा। मतलब यह कि रूस की स्थिति ही ऐसी है कि वह इन देशों को मदद पहुँचाये।

एक अरसे पहले, ब्रिटेन के प्रगतिशील राष्ट्रवादी अखबारों ने व लेबर दल ने सरकार को कई बार यह सुझाव दिया था कि वह अरब क्षेत्र में रूस की स्थिति से समझौता कर ले। इस क्षेत्र के उत्तर की ओर, तथा उत्तर-पश्चिम की ओर, रूस तथा कम्यूनिस्ट रूमानिया का तेल क्षेत्र भी है। बगदाद फौजी सन्धि की स्थापना के बाद रूस को, अपने तेल-क्षेत्र की सुरक्षा की चिन्ता हो गयी है। वह क्षेत्र बग़दाद फौजी सन्धि के अड्डों द्वारा हवाई मार के क्षेत्र के अन्तर्गत आ गया। इसलिए रूस का, इस क्षेत्र में, एकमात्र उद्देश्य यह निश्चित हुआ कि किसी-न-किसी तरह बगदाद-सन्धि को कमज़ोर किया जाये, और अमरीकी फौजी अड्डे निष्क्रिय बना दिये जायें। इस लक्ष्य से प्रेरित होकर एक अरसे से कम्यूनिस्ट देश अरब देशों को सहायता देते आ रहे हैं।

अमरीकी समस्या यों है - किस प्रकार अरब राष्ट्रवाद को रूसी प्रभाव से मुक्त करना चाहिए। अमरीका बहुत दिन तक चुपचाप बैठा नहीं रह सकता। एक समय आयेगा जब इस संघर्ष में उसके सम्भावित मित्र कौन होंगे, कौन शत्रु [यह

जाहिर हो जायेगा।]।

अमरीका आज पण्डित नेहरू से इस सम्बन्ध में बातचीत करना चाहता है। क्या भारत के लिए यह सम्भव है कि वह इस क्षेत्र में और सक्रिय होकर रूसी *प्रभाव का स्थान ग्रहण करे? यदि ऐसा होता है तो अमरीका बराबर* इस क्षेत्र में भारत की नीति के समर्थन के प्रश्न पर सहानुभूतिपूर्वक विचार करेगा। यह निःसन्देह है कि भारत के साथ रहकर अमरीका अपनी खोयी हुई प्रतिष्ठा फिर से प्राप्त कर सकता है, और उस हद तक अपना कार्य सिद्ध कर सकता है। इजिप्ट तथा सीरिया आइजनहॉवर-नेहरू मुलाकात को बहुत ध्यान से देख रहे हैं।

यह सही है कि अमरीका बगदाद-सन्धि के देशों की तरफ ध्यान देता है, और उनका मित्र भी है। किन्तु उन देशों का कोई विशेष असर न होने से, डूबती हुई नैया के साथ अपना भाग्य नहीं बाँध सकता। इसलिए भारत को इस बात से डरने की जरूरत नहीं है। अमरीका ने ज्यों ही भारत को चुना त्यों ही ब्रिटेन ने पाकिस्तान को चुन लिया।

टूटती-फूटती बगदाद-सन्धि को थामने के लिए ईराक ने पाकिस्तान और तुर्की को पकड़ने के लिए जितने ज़ोर से कदम बढ़ाया, उतनी ही हद तक ईराकी सरकार ने अपनी लोकप्रियता खो दी। वहाँ ब्रिटेन-विरोधी आन्दोलन और तेज़ी से चल पड़ा। इससे स्वयं पाकिस्तान को चिन्ता हो गयी। ब्रिटेन पश्चिमी एशियाई क्षेत्र में लड़ाई तो चाहता ही है। पाकिस्तान सहज ही उसे प्राप्त हो गया, और अरब क्षेत्र में निर्णायक रूप से सक्रिय रहनेवाले भारत को नीचा दिखाने के लिए ब्रिटेन और पाकिस्तान एक हो गये। कहना न होगा कि ब्रिटेन की शह पाकर, अवसर जान, पाकिस्तान कश्मीर का सवाल उठा रहा है।

चीनी प्रधानमन्त्री चाऊ-एन लाई पचशील का मन्त्र जपने के लिए भारत नहीं आये हैं। वस्तुतः, चीन बाण्डुग सम्मेलन का एक सदस्य होने की हैसियत से, उसकी आवाज़ अफ्रीकी-एशियाई क्षेत्र में सुनी जाने के अलावा, वह अलग ढंग से वाशिंगटन में भी सुनी जाती है। अमरीका संयुक्त राष्ट्र संघ में चीन को शामिल होने दे या न होने दे, वह यह जान चुका है कि दुनिया में उसका प्रभाव विशेष रूप से बढ़ गया है। जिस ढंग से चीन इजिप्ट की तरफ खिंचा, उससे यह प्रकट है कि उसके प्रभाव को कोई रोक नहीं सकता। जेनेवा में चीनी राजदूत से महीनों तक अमरीकी राजदूत द्वारा चर्चा क्या थी? ठीक है कि प्रकट रूप में वह चीन में अमरीकी बन्दियों की रिहाई के बारे में थी। किन्तु हाल ही में एक चीनी प्रवक्ता ने उसके बारे में अधिक कुछ न कहते हुए यह बताया कि चर्चा 'पचीदा और बात नाज़ुक' थी। चर्चा जब असफल हुई तो दोनों देशों में से किसी ने क्षोभ प्रकट नहीं किया, न आज चीन में अमरीका के खिलाफ कोई आन्दोलन है। इसका कारण क्या है?

इसका कारण है, सह-अस्तित्व का सिद्धान्त, जो असल में यथार्थवाद का तक़ाज़ा है, या मजबूरी का दूसरा नाम है। कोई भी राजनैतिक-निरीक्षक यह देख सकता है कि दुनिया में ब्रिटेन और फ्रांस का सितारा डूब रहा है, फिर कभी न उगने के लिए। लेकिन अमरीका दुनिया में रहनेवाला है, ग़ैर-कम्यूनिस्ट देश रहनेवाले हैं। सह-अस्तित्व का सिद्धान्त किसी देश की आत्म-रक्षा का एक उपाय है, किसी अन्य की मान्यता यथार्थ की स्वीकृति का एक रूप। यदि अमरीका चीन

को मान्यता दे देता है, तो चीनी-अमरीकी सहयोग के आगे के दरवाज़े खुल जाते हैं। किन्तु यह तात्कालिक बात नहीं है।

चाऊ-नेहरू मुलाकात का सबसे महत्त्वपूर्ण भाग तब शुरू होगा, जब वे दोनों नेता इस महीने के अन्त में फिर से मिलेंगे। यह हो सकता है कि चीन पाकिस्तान को थामे और किसी-न-किसी तरह उसे रोक रखे। लेकिन यदि वह नहीं थमा, तो युद्ध के बिना कोई उपाय नहीं होगा।

इन प्रश्नों के बारे में भारत-चीन नीति क्या होगी? क्या भारत चीन दोनों मिलकर एक [अमरीका] को और दूसरा रूस को अपनी-अपनी ओर खींचकर एक सतह पर ला सकेंगे? ये वे सवाल हैं, जिनका जवाब भविष्य ही देगा।

तात्कालिक बात है, अफ्रीकी-एशियाई देशों में पैदा हुई नयी पेचीदगियाँ, खास तौर से इजिप्ट का प्रश्न और पाकिस्तान का रुख। असल में, रूस और चीन पाकिस्तान के भी पड़ोसी देश हैं। भारत में किसी भी ढंग की गड़बड़ी या कोई खतरनाक कमज़ोरी उनको भी चिन्तित कर देती है, आज वे दो उत्तरी देश सन्तुष्ट और शान्त हैं। किन्तु यदि कल से भारत में कोई अप्रत्याशित युद्ध-स्थिति पैदा हो जाती है, तो रूस और चीन की दक्षिणी सीमाएँ खतरे में पड़ जाती हैं। इस भौगोलिक राजनीति की तरफ ज़्यादा ध्यान नहीं दिया जाता। एक पामीर पठार को छोड़कर, बमवाज़ हवाई जहाज़ बड़े मज़े में ठिगनी हिमालयी पहाड़ियों को पार कर रूस के पास के क्षेत्र और चीन के विकासमान अर्थतन्त्र को दगा दे सकते हैं। ध्यान में रखने की बात है कि रूस का एशियाई दक्षिण भाग उसके अर्थतन्त्र का एक महत्त्वपूर्ण खण्ड है। चूँकि पाकिस्तान बगदाद-सन्धि में प्रविष्ट है, इसलिए दोनों देश यह कभी नहीं चाहते कि कश्मीर पाकिस्तान में शामिल हो।

[*सारथी*, 9 दिसम्बर 1956, में 'अवन्तीलाल गुप्त' छद्मनाम से प्रकाशित]

अमरीका को दो ओर से खींचा जा रहा है

चाहने पर भी, ब्रिटेन और फ्रांस अब अमरीकी विश्वास का पूर्ण सम्पादन नहीं कर सकते। माना कि इस समय दोनों ओर से पश्चिमी एकता में पड़ी हुई दरारों को भरने की पूरी कोशिश की जा रही है, लेकिन वह दरार भरी नहीं जा सकती। इसका प्रधान कारण यह है कि ब्रिटेन तथा फ्रांस को अपने-अपने साम्राज्यों की रक्षा के लिए पश्चिमी एकता आवश्यक है, तो अमरीका को वह केवल रूस-विरोध के लिए। यद्यपि तीनों देश एकता चाहते हैं, किन्तु उद्देश्यों की पृथक्ता उनसे ऐसे कदम उठवाती है कि जो एकता की बुनियाद पर ही चोट करते हैं।

फिर भी एकता बनाये रखना उन्हें एकदम आवश्यक है, इसलिए आज ब्रिटेन

और फ्रास नाटो को बगदाद-सन्धि से और बगदाद-सन्धि को सीटो से जोडने के अमरीकी स्वप्न को फिर से जीवित करने के लिए उतावले हो उठे हैं। एग्लो-फ्रासीसी कूटनैतिक बुद्धि इस प्रस्ताव के द्वारा एक पत्थर से कई पक्षी मारने की फिक्र में है। इस सुझाव को उठाकर वे वाशिंगटन के सामने अपनी मातृ-भक्ति तो सिद्ध करना चाहते ही है, साथ ही वे ये सोचते है कि इस प्रकार की सैनिक जजीर उनके लिए काम की सिद्ध होगी। यदि नाटो-सन्धि चरमराती हुई बगदाद-सन्धि से जुड जाती है, तो विफल होती साम्राज्य-रक्षा की इच्छा कुछ हद तक पूरी की जा सकती है। यदि नाटो-सन्धि सीटो-सन्धि से जुड जाती है, तो सुदूर पूर्व मे फैले हुए ब्रिटिश साम्राज्य की रक्षा की एक दीवार खडी हो जाती है—ऐसी दीवार जिस पर नव-स्वाधीन देशो की साम्राज्यवाद विरोधी हलचलो के विरुद्ध तोपें रखी जा सकती हैं। राजनैतिक क्षेत्रो म इस सुझाव के महत्त्व को स्वीकार किया जा रहा है। यह असम्भव नही है कि उसे अमरीका के पास भी पहुँचा दिया गया हो। पश्चिमी देशो की एकता, जैसा कि पहले बताया आ चुका हू, पृथक्-पृथक् उद्देश्यो पर टिकी हुई है। यदि इन तीनो सन्धियो को जोडकर दोनो ढग के उद्देश्य सिद्ध किये जा सकें तो क्या बात है!

किन्तु, यह सुझाव प्रस्तुत करने का समय बडा बाँका है। आज अमरीका तटस्थ देशो को अप्रसन्न रखना पसन्द नही करता। इसीलिए, कूपर और डलेस आज भारत पर डोरे डालने की कोशिश कर रहे हैं। यदि अमरीका तटस्थ देशो का हृदय जीत सका तो उसकी स्थिति अभेद्य हो जायेगी।

इसके पीछे एक महत्त्वपूर्ण खयाल है। वह यह है

ब्रिटेन और फ्रास का साम्राज्य लुप्त होता जा रहा है। यह सही है कि ज्यो-ज्यो इन देशों का पजा ढीला होता जायेगा, त्यो त्यो अनेक राजनैतिक भूकम्प और, यहाँ तक कि, स्थानीय युद्ध की सम्भावना बढती जायेगी। यह भी सही है कि अमरीका इन देशो से पिण्ड नही छुडा सकता। अगर चाहे तो ब्रिटेन और फ्रास मिलकर अमरीका का काफी नुकसान कर सकते है। अमरीका स्वय इन देशो पर अपना प्रभाव कायम रखने के लिए थोडा-सा बलिदान करने की तैयारी रखता है।

किन्तु अमरीका, कम्यूनिस्ट देश तथा तटस्थ देश इस तथ्य को स्वीकार कर चुके हैं कि चीन, भारत, अमरीका, रूस, आदि देश बिना किसी मौलिक परिवर्तन के एक अरसे तक इस भू-भाग पर रहनेवाले हैं। ब्रिटेन, फ्रास तथा पुर्तगाल-जैसे देश अगले पचास वर्षों में क्षीण होकर अपनी देशी सीमा के भीतर सिकुड जायेंगे। और उन्हें इस प्रक्रिया की सारी पीडाओ मे से गुजरना पडेगा। भयानक उथल-पुथल का दौर उन्हे समाप्त तो करेगा ही, साथ ही दुनिया का एक नक्शा बनाने तक वे दूसरो को बहुत सी तकलीफें देन का कारण बनेंगे।

यह तथ्य आईने-जैसा साफ है। आज भारत और चीन, रूस और अमरीका, और अन्य देश यह सोचने के लिए विवश हैं कि उन्हे एक-दूसरे के लिए सह-अस्तित्व मानना जरूरी है। ब्रिटिश तथा फ्रासीसी साम्राज्यवाद से सह-अस्तित्व बनाये रखने के कोई मानी नही। वह तो नष्ट होनेवाली चीज है।

इस तथ्य को यदि हम केन्द्रीय सत्य स्वीकार कर लें, तो अमरीका को, चीन को, और रूस को, एक-दूसरे से सामजस्य स्थापित करने की आवश्यकता का महत्त्व

किन्तु अमरीकी एटमिक आक्रमणो के प्रधान अड्डे, जो पाकिस्तान से लेकर उत्तरी अफ्रीका के अरब देशा तक मे हैं, रूस को नीद नही आने देते।

अमरीका के खिलाफ, और उसके अनुपग से ब्रिटेन के विरुद्ध, रूस न पश्चिमी एशिया मे अपने लिए मजबूत जगह बना ली। जिस तरह और जिस ढग स रूस न अपने लिए यह काम किया, उतनी ही सफाई से अमरीका न हगरी मे रूस को मजा चखा दिया। रूस भन्ना गया और स्वय अमरीका को यह भय हुआ कि कही रूस गुस्से के वेकावूपन मे पश्चिमी एशिया या पश्चिमी यूरोप म इसका बदला न ले। नाटो की हाल ही की बैठक मे, न केवल डलेस ने, वरन् पश्चिमी जर्मनी के विदेशमन्त्री हर ब्रिन्टैनो ने, यह भय प्रकट किया कि पूर्वी यूरोपीय देशो पर 'आर्थिक' या नैतिक दबाव' रूस को उत्तेजित करते हुए तीसरी बडी लडाई का सूत्रपात करेगा।

इस प्रकार, ये दो महान् शक्ति-दैत्य, आज दुनिया के रगमच पर, एक-दूसरे को ईंट का जवाब ईंट से और पत्थर का जवाब पत्थर से दे रहे है। अमरीकी विश्व-नीति की सबसे प्रधान प्रेरणा रूसी शक्ति का सहार है।

पेचीदगियाँ

ब्रिटेन के गले मे हाथ डालकर अमरीका को जब अपने पैर भी उसके पैरो से मिलाने के लिए मजबूर होना पडता है, तो पैर एक-दूसरे मे अटक जाने की सम्भावना उत्पन्न हो जाती है। विलुप्त होते हुए ब्रिटिश-फ्रेंच साम्राज्य की चरमराती गाडी से तेज अमरीकी घोडा कब तक जुता रहे!! नतीजा यह कि नये उठते हुए स्वाधीन देशो के मनोबल का अपने लिए उपयोग क्यो न किया जाय। अफ्रीकी-एशियाई देशो की ताकत का महत्त्व रूस ने पहचाना, और अब अमरीका ने भी। लन्दन से हटकर दिल्ली की तरफ रुझान अपनी आवश्यकता की एक मजबूरी रही है।

सबसे बडी पेचीदगी, जिसका सामना अमरीका कर रहा है, यह है कि इन देशों की महत्त्वाकाक्षा का इसे पूरा पता नही है। पश्चिमी एशिया तथा उत्तरी अफ्रीका के अरब देशो पर उसका विश्वास नही है। लेकिन इतिहास ये देश ही बना रहे हैं। किसी-न किसी तरह, इन देशो के मनोबल का उपयोग अपने लिए करने के वास्ते, आज *अमरीका को भारत की आवश्यकता है।* वह भारत के जरिये कुछ काम कर डालना चाहता है। ऐसे कामो मे, पश्चिमी एशिया मे शान्ति, अरब-इजरायल दोस्ती, अरब-अमरीकी दोस्ती, आदि आदि बातें सम्मिलित हैं।

पश्चिमी एशिया मे अमरीकी नीति अपना उद्देश्य पूरा नहीं कर सकी। किन्तु अब वह नये सामजस्य की भरसक कोशिश करेगी। भारत का उद्देश्य वहाँ शान्ति *और मैत्री ही स्थापित करना है*—इसके अलावा कुछ नही। पश्चिमी एशिया भारत की सुरक्षा का परकोटा है। भारत स्वय यह चाहता है कि अमरीका शुद्ध उद्देश्यो से प्रेरित होकर वहाँ के राष्ट्रवाद की आर्थिक और औद्योगिक स्वाधीनता की महत्त्वाकाक्षा को पूरा करे। यह महत्त्वाकाक्षा केवल रूस की औद्योगिक शक्ति के भरोसे पूरी नही हो सकती। आज के राष्ट्रवाद की सबसे बडी आवश्यकता स्वावलम्बी औद्योगिक क्रान्ति है। क्या अमरीका इसमे सहायता नही कर सकता? आज भारत का विश्व-सन्देश औद्योगिक क्रान्ति और उसके लिए आवश्यक विश्व

शान्ति और विश्व-मैत्री है। इन उद्देश्यों से प्रेरित भारत इस क्षेत्र में सही नीति अपना रहा है। अमरीका इन उद्देश्यों से कहाँ तक फिट होता है?

अमरीका इन देशों से नये सामंजस्य की तलाश में है। यद्यपि यह नक्की नहीं है कि पण्डित नेहरू लन्दन से दिल्ली लौटते वक्त नासिर से मिलेंगे, किन्तु भारत से इजिप्ट की बातचीत होगी ही। कृष्णा मेनन काहिरा पहुँच रहे हैं। अमरीका पर इजिप्ट के विश्वास की पूर्व-भूमिका तैयार हो ही गयी है। पण्डित नेहरू ने आइजनहॉवर को ये तमाम उलझनें जरूर समझायी होंगी जिनके कारण अमरीका पर अरब देशों का विश्वास हो नहीं पाता। अविश्वास के कारण धीरे-धीरे ही दूर होंगे। इसमें अवश्य थोड़ा समय लगेगा। लेकिन उसके लिए आवश्यक समय देना, और जल्दबाजी न करना, निहायत जरूरी है।

पश्चिमी एशिया में अमरीकी दृष्टि से उसका प्रधान शत्रु रूस है। हंगरी में कादर सरकार के तत्त्वावधान में जो घटनाएँ हुई, उनका स्वागत यूगोस्लाविया ने हार्दिक रूप से नहीं किया। पूर्वी यूरोप में तथा पश्चिमी एशिया में रूस की कार्य-नीति और उसके उद्देश्य क्या हैं, यह अमरीका को जानना जरूरी है। पूर्वी यूरोप की घटनाओं के सम्बन्ध में भारत यूगोस्लाविया पर निर्भर करता है। यूगोस्लाविया अमरीका के पास आने के बजाय उससे और अलग हटा। यदि अमरीका पूर्वी यूरोप और पश्चिमी एशिया, खास तौर से पूर्वी भूमध्यसागरीय क्षेत्र में, सही नीति का अवलम्बन करना चाहता है, तो उसे यूगोस्लाविया की सलाह की आवश्यकता है। यूगोस्लाविया कर्नल नासिर और शेष अरब जगत् का दोस्त भी है।

इसके अलावा, उस देश में ऐसी प्रवृत्तियाँ भी दिखायी दी हैं, जिनका लक्ष्य पूर्वी यूरोप के कम्यूनिस्ट देशों को रूस से अलग हटाना है, और उन देशों का नये ढंग का संघ या फेडरेशन या एसोसिएशन स्थापित करना है।

मतलब यह कि अमरीका, रूस को उसके मित्रों और समर्थकों से अलग हटाने के लिए, यूगोस्लाविया की इस महत्त्वाकांक्षा को बल देना आवश्यक समझता है, जिससे कि रूस की शक्ति कम हो।

इन तमाम बातों को, अमरीकी दृष्टि से, मद्देनजर रखते हुए, यूगोस्लाविया का महत्त्व बहुत बढ़ जाता है। इस महत्त्व को ध्यान में रख, अमरीका टीटो को बुला रहा है। टीटो की बातें यदि अमरीका ने तथ्य के रूप में ग्रहण कर लीं, तो कम्यूनिस्ट पूर्वी यूरोप और पश्चिमी एशिया में अमरीकी नीति में काफी संशोधन होंगे। यद्यपि अमरीकी नीति अपने उद्देश्यों और लक्ष्यों को नहीं त्यागेगी, फिर भी वह लचीली हो जायेगी और वह जितनी लचीली होगी, दुनिया में तनाव उतना ही कम होगा।

टीटो के अलावा, अमरीका, आज नहीं तो कल, नासिर को जरूर बुलायेगा। निश्चय ही, नीति-पुनर्विचार की प्रक्रिया का यह चरम बिन्दु ही होगा। किन्तु इस नीति-संशोधन के दौरान में, और उसके फलस्वरूप, क्या-क्या अन्तर्विरोध और बाह्य विरोध उत्पन्न होंगे, यह अभी नहीं कहा जा सकता।

यह इसलिए नहीं कहा जा सकता कि ब्रिटेन और फ्रांस तब तक चुप नहीं बैठेंगे। वे अमरीका के कहाँ तक अनुकूल होंगे और कहाँ तक उसके रास्ते का रोड़ा नहीं बनेंगे, यह इतिहास ही बतायगा। इजिप्ट में मार खाने के बाद, दोनों की नीतियाँ फ़िलहाल अपने पैरों के घाव चाट रही हैं। किन्तु उन्हें भी शीघ्र ही अपनी

नयी नीति अपनाना है—ऐसी नीति जो कारगर हो सके। फिलहाल, इन दोनो देशो का दिमाग सुन्न हो गया, खास तौर से फ्रास का। किन्तु इतिहास मे बढते हुए अमरीकी कदम देख ये चुप नही बैठेंगे। ब्रिटेन नाटो से अपनी सेनाएँ हटा लेने की बात सोच रहा है। अगर कही ये देश अमरीका से उलझ पडे तो वाशिंगटन को बहुत मुश्किल हो जायेगी।

पूर्वी यूरोप मे रूस की घटती हुई ताकत और अफ्रीकी-एशियाई देशो मे, खास तौर पर दक्षिण-पूर्वी एशियाई देशो मे, रूस के घटते हुए प्रभाव को अमरीका की बढती हुई शक्ति और प्रभाव को मिलाकर देखिए। रूस के लिए अब यह आवश्यक हो गया है कि वह भी अपनी नीति पर पुनर्विचार करे—खास तौर पर वह ऐसे कदम बढाये, जिनसे वह दुनिया मे, या दुनिया के एक बडे भाग मे, विश्व-शान्ति और विश्व-मैत्री का अग्रदूत कहला सके।

हगरी से अपनी सेनाएँ हटाने या कम करने या सुरक्षा की अन्य कोई ऐसी व्यवस्था करने के साथ ही, उसके लिए यह जरूरी है कि वह नि शस्त्रीकरण की समस्या अपने हाथ मे ले—जैसे कि वह ले चुका है—और उसमे ऐसा चमत्कार उत्पन्न करे जिससे उसकी धाक ससार म फिर से जम जाये।

हगरी के मामले को लेकर दुनिया मे रूस की जो इज्जतहतक हुई है, उसको तो उसे दूर करना ही पडेगा। यह इज्जतहतक कम्यूनिस्ट शासनो के अधिकाधिक जनतन्त्रीकरण से ही दूर हो सकती है—खासकर रूस के भीतर जनतन्त्रीकरण करने से। यह सही है कि रूस की इस प्रक्रिया को हगरी से धक्का पहुँचा है।

चीन स्वय अब तक यह सोचता रहा कि रूस सही नीतियो का अवलम्बन हमेशा कर सकते रहने की क्षमता रखता है। यद्यपि चीन हगरी के मामले मे रूस का समर्थन करता है, फिर भी चीनी कम्यूनिस्ट दस्तावेजो को पढने से यह सूचित होता है कि उसे रूसी बुद्धिमत्ता पर अखण्ड विश्वास नही रहा। वह यह स्वीकार कर चुका है कि पूर्वी यूरोपीय कम्यूनिस्ट देशो से रूसी सम्बन्धो का आधार हमेशा उचित नही रहा। इस विश्वास के फलस्वरूप और दुनिया मे रूसी प्रभाव के ह्रास के कारण, चीन अब इस कोशिश मे है कि वह स्वय मास्को का विवेकपालक (कॉनशेंसकीपर) हो। इन शब्दो मे भले ही वह न सोचे, वह मास्को की सहायता, करना चाहता है, इस मामले मे। मतलब यह कि आज चाऊ-एन-लाई, हगरी के सम्बन्ध मे विश्व जनमत का महत्त्व समझाने के लिए मास्को जा रहे हैं। शायद यह नेहरू की प्रेरणा से हो। नेहरू की प्रेरणा महत्त्वपूर्ण है, यह रूस जानता है।

ऐसी स्थिति मे, रूस को नेहरू से प्रेरणा-प्राप्त चीन के दबाव मे आने के लिए तैयारी दिखानी ही पडेगी। यह लगभग अवश्यम्भावी हो गया है। इसी दृष्टि से, पीकिंग दिल्ली के लिए और भी महत्त्वपूर्ण हो उठा है। जब अमरीका मे नेहरू से पूछा गया कि क्या चीन और रूस एक ही गुट मे हैं, तो उन्होने कतई नकारात्मक उत्तर दिया।

मतलब यह कि रूस को भी अब नये सामजस्य की तलाश करनी है। यह कार्य सरल नही है। इसके लिए बडे आत्म-निरीक्षण और स्थिति-विवेचन की आवश्यकता होती है।

अमरीका आज भले ही पूर्वी एशिया के बारे मे सुचिन्त हो, किन्तु आगे चल-

कर उसे भी उस क्षेत्र मे अपनी नीति पर पुनर्विचार करने के लिए बाध्य होना पडेगा।

[सारथी, 30 दिसम्बर 1956, मे 'अवन्तीलाल']

पश्चिमी एशिया म अमरीका

पश्चिमी एशिया मे 'रिक्त स्थान-पूर्ति' के अमरीकी सिद्धान्त का भारत ने जो विरोध किया, वह स्वाभाविक ही था। पण्डित नेहरू के शब्दो मे, इस क्षेत्र मे रूस के खिलाफ फौजी कार्रवाई की अमरीकी योजना एक लम्बी तलवार है, जो चमकायी जा रही है। इसकी क्या गैरण्टी है कि रूस इसके विरोध मे म्यान से अपनी तलवार नही खीच लेगा!

हमारी दुविधा कुछ और है। वह यह कि रूस तो रूस, ऐसा न हो कि ब्रिटेन कही बीच मे मर जाय।

अमरीका इस क्षेत्र म रूस का विरोध किस आधार पर कर रहा है? वस्तुत, पश्चिमी एशिया मे रूस नही, रूस की छाया फैली है, और पश्चिमी साम्राज्यवादी इस छाया मे लडना चाहते हैं। यह स्वाभाविक ही है कि अरब राष्ट्रवाद इस अमरीकी प्रयत्न स चौंक उठे और अपनी रक्षा की उचित कार्रवाई करे।

ध्यान दीजिए इस तथ्य पर कि यद्यपि इस क्षेत्र के कुछ हिस्सो पर रूस की घनी छाया पडी हुई है—यानी कि यहाँ रूस मात्र छाया-रूप मे विद्यमान है, किन्तु स्वय अमरीका, ब्रिटेन और फास यहाँ छाया रूप मे नहीं, वरन् सुसज्जित अर्थ तथा सैन्य शक्ति के रूप मे उपस्थित हैं! ऐसी स्थिति मे छाया से लडनवाली फ़ौजो के मुँह जब तमतमा उठते हैं, तो अरब राष्ट्रवाद को, स्वभावत ही, डर लगता है, क्योकि यह छाया पश्चिमी साम्राज्यवाद के लिए रूसी छाया है, किन्तु अरब राष्ट्रवाद के लिए वह एक साक्षात् अरब-सत्य है।

चूँकि वह एक अरब-सत्य है, इसलिए वह पश्चिमी साम्राज्यवाद द्वारा उपस्थित की गयी परिस्थितियो के प्रति अत्यन्त सवेदनशील है।

अमरीका इस तथ्य को समझ नही पाता। इसलिए यह कहना मुश्किल है कि अमरीकी योजना का वही प्रभाव होगा जो इस योजना का उद्दिष्ट है। हमारे ख्याल से, इस उद्देश्य के विरुद्ध फल निकलने की ही सबसे अधिक सम्भावना है। सो कैसे?

हम यह कह चुके हैं कि इस क्षेत्र म रूसी छाया घनी-लम्बी फैली हुई है, और यह भी कह चुके हैं कि यह छाया वस्तुत एक भव्य अरब राष्ट्रवादी सत्य है। वह रूसी छाया दर्शाता है कि रूस का इरादा अरब राष्ट्रवाद के जरिये पश्चिमी साम्राज्यवाद का खात्मा करना है। वह अरब राष्ट्रवादी सत्य इसलिए है कि अरब देशों का उद्देश्य इस क्षेत्र म पश्चिमी साम्राज्यवाद का नाश करना है! अतएव,

पश्चिमी एशिया की पारिभाषिक शब्दावली में, रूस-विरोध का अर्थ और अभिप्राय अरब राष्ट्रवाद का ध्वंस ही होता है। इस महत्वपूर्ण तथ्य को समझना निहायत जरूरी है।

अब आगे बढ़िए। कोई हालत स्थिर नहीं रहती। आज अरब राष्ट्रवाद के दो प्रधान उद्देश्य हैं : (1) विदेशी तेल कम्पनियों का राष्ट्रीयकरण; (2) ईराक की मौजूदा सरकार का खात्मा। अरब अखबारों में ध्वनित-प्रतिध्वनित जो भाव-विचार प्रकट हुए है, उनका आशय हमसे ज्यादा लन्दन, पेरिस और वाशिंगटन समझते हैं। तमाम पश्चिमी यूरोपीय और अमरीकी अखबारों में यह छापा गया है कि अरब जनता विदेशी तेल कम्पनियों के राष्ट्रीयकरण की लगातार माँग कर रही है। यह सही है कि अरब सरकारों ने सरकारी तौर पर अभी ऐसी कोई बात नहीं उठायी है, किन्तु उनके द्वारा इस माँग का विरोध नहीं किया जा रहा है।

अरब वातावरण में जब से इस माँग की प्रतिध्वनियाँ गूँजी, तब से एक बात और हुई। वह यह कि विदेशी तेल कम्पनियों ने निर्माण की जो विस्तृत योजनाएँ बनायी थीं, वे त्याग दी गयीं। सुएज नहर बन्द होने से अरब देशों की रायल्टियाँ, जो इन कम्पनियों द्वारा चुकायी जाती थीं, घटती गयीं। तेल कम्पनीवाले, आखिरकार, व्यापारी लोग हैं। वे अस्थिर, अशान्त और सुरक्षाहीन आबोहवा में पनप नहीं सकते। जहाँ-जहाँ वे हैं, वहाँ की सरकारों का और उनका विरोध बढ़ता जा रहा है। ये तेल कम्पनियाँ मुख्यत: अंग्रेज हैं। प्रश्न यह है कि क्या इस आर्थिक धरातल पर अमरीकी तेल कम्पनी के कूटनीतिज्ञ अंग्रेज व्यापारियों का साथ देंगे?

स्पष्ट है कि अंग्रेजों और अमरीकियों में अधिक एकता नहीं है। इस बात की पूरी सम्भावना है कि ईराक, जो एक प्रधान तेल-क्षेत्र है, उसमें से अंग्रेजों को उखाड़ने की पूरी कोशिश की जायेगी।

असल में, अरब राष्ट्रवाद की रफ्तार बहुत तेज हो गयी है। ब्रिटेन खुद इस तेजी से बहुत घबड़ा रहा है। मान लीजिए कि कल से इस क्षेत्र में ब्रिटेन के खिलाफ और कोई साजिश बढ़ चले, और ब्रिटेन तैश में आकर स्वयं कोई और हमला कर बैठे तो?

सुएज का प्रश्न पूरी तौर से हल नहीं हुआ है। ईराक में वातावरण गरमाया जा रहा है। सीरिया में वामपक्षी सरकार बन गयी है। जोर्डन ने ब्रिटेन से मुँह फेर लिया है। लेबेनान अरब राष्ट्रवाद का उग्र सहचर न सही, विरोधी भी नहीं है।

ऐसी स्थिति में, खास तौर से ईराक में ब्रिटेन पर कोई और मुसीबत आती है, और वह खुद हमलावर हो जाता है, तो अमरीकी फौजें उस हमलावर को रोकेंगी या नहीं? इजिप्ट कहता है, सीरिया कहता है, कि अगर अमरीका का उद्देश्य ब्रिटिश हमले को रोकना होता, तो वह सुएज युद्ध में ब्रिटेन के खिलाफ लड़ाई में पड़ जाता। लेकिन उसने रूस की यह माँग भी ठुकरा दी कि वे दोनों मिलकर ब्रिटेन-फ्रांस का हमला रोकें। इजिप्ट और सीरिया के इस निजी तजुर्बे को कैसे भुलाया जा सकता है?

इसके साथ, कुछ बातें मिलाकर देखने की हैं। एक तो यह कि नाटो की भूमध्यसागरीय कमान अमरीकियों के हाथ चली गयी है, केन्द्रीय यूरोपीय कमान

के लिए जर्मन प्यासे हो रहे हैं। (भूतपूर्व चीफ-ऑफ-स्टाफ जनरल स्पीडेल इस कमान को अपने हाथ मे लेने की भरसक कोशिश कर रहे हैं) नाटो के माल्टा-स्थित फौजी अड्डे की कमान के लिए अंग्रेजो और अमरीकियो के बीच आपसी झगडे चल रहे हैं।

दूसरी ओर, ब्रिटेन मे अपने साम्राज्य की रक्षा की मांग ज्यादा-से-ज्यादा जोरदार हो रही है। ब्रिटेन नये-से-नये शस्त्रास्त्र बना रहा है, खासकर आणविक हथियार। उनका प्रयोग किसके खिलाफ होगा, यह इतिहास ही सिद्ध कर देगा, किन्तु दो-चार बातें ध्यान देने योग्य हैं।

एक तो यह कि नाटो की बैठक के बाद ब्रिटिश फ्रांसीसी तथा अमरीकी नेताओ की जो बातचीत हुई उसम यह बात जाहिर की गयी कि अगर ब्रिटेन-फ्रास का साथ अमरीका ने नही दिया, तो विवश होकर इन दो देशो को रूस से हाथ मिलाने पडेंगे। इसके सिवाय उनके पास कोई और रास्ता नही है। रूस से मिल जाने की यह धमकी कारगर हुई, और अमरीका ने, अरब राष्ट्रवाद के विरुद्ध रूस-विरोध के नाम पर, अपनी लम्बी तलवार म्यान से बाहर निकाल ली। यह तथ्य इजिप्ट और सीरिया से कतई छिपा नही है।

मतलब यह कि अमरीका, शक्ति-सन्तुलन मे गडबड न होने देने के लिए पश्चिमी एशिया मे कदम बढाने लगा। लेकिन प्रश्न यह है कि वह क्यों लन्दन और पेरिस के इशारे पर नाचना चाहता है, अरब राष्ट्रवाद को भी सन्तुष्ट रखना चाहता है, और शान्ति का मसीहा भी बनना चाहता है। इन तीन विभिन्न उद्देश्यो को वह पश्चिमी एशिया म एक साथ सिद्ध क्यो करना चाहता है??

पश्चिमी यूरोप मे जिस प्रकार उसने पश्चिमी जर्मनी को थाम रखा है, उसी तरह पश्चिमी एशिया मे किसी एक देश को अपना गट्टू बनाना चाहता है। काश ! इजिप्ट उसका साथ दे सके ! आज अमरीका दुनिया का सर्वशक्तिशाली देश है। रूस कमजोर है उसकी तुलना मे। रूसी गुट कमजोर है पश्चिमी गुट के मुकाबले मे। यह शक्तिशाली देश अपने हाथो मे और भी शक्ति केन्द्रित करने की तरफ प्रवृत्त है।

जरा ध्यान दीजिए। इजिप्ट की अर्ध-रेगिस्तानी मरुभूमि को सिंचाई के अन्तर्गत लाने की अमरीकी योजना पर, जो न केवल इजिप्ट मे सीमित रहना चाहती है, वरन् वह ब्रिटिश उपनिवेशो का भी अपने मे अन्तर्भाव करना चाहती है। आर्थिक प्रभाव, सैनिक शक्ति, और राजनैतिक दबाव अगर कही फेल हो रहा है तो अरब राष्ट्रवाद की इस क्रीडा-भूमि मे, जिसे हस्तगत करने के लिए अमरीका जी-तोड कोशिश कर रहा है।

इस कोशिश म बहुत-सी बातें सहायक हैं। मुसीबत आने पर ब्रिटेन-फ्रास अमरीका की सहायता प्राप्त नही कर सकते, किन्तु मुसीबत टल जाने पर वे ही देश अमरीका को अपना जमादार बना देते हैं। जमादार बनने पर अमरीका अपनी जमादारी करने पर ध्यान देता है। भूमध्यसागर से वह ब्रिटिश सैनिक प्रभाव का निष्कासन करने पर तुला हुआ है।

प्रश्न यह है कि प्रभाव बढाने की ये पेचीदा सीढियाँ अमरीका को कब तक [illegible]

उद्देश्य ब्रिटेन-फ्रास के अधिक अनुकूल हैं।

लेकिन उसके पेट में जो टुकडे पडनेवाले है, वे ब्रिटिश फासीसी उच्छिष्ट ही है। इसलिए वह हर देश के साथ एक डबल नीति, दुरंगा कौशल, अपना रहा है।

ऐतिहासिक क्षण एक विशेष क्षण होता है। तब जो बातें एकाएक सिद्ध और सम्पन्न हो जाती हैं, वे बातें अमरीका के अनुकूल ही होगी, यह नही कहा जा सकता। क्या होगा यह भविष्य ही बतायेगा, किन्तु इतना सच है कि अमरीका यदि ब्रिटिश-फासीसी बकरो को चारा-दाना डाल रहा है, तो उसका उद्देश्य उसके बच्चो को खा जाना और बाद मे उसी का जिबह कर डालना ही है।

ब्रिटेन फास इस तथ्य को स्वीकार करते हैं, किन्तु, फिलहाल, वे कुछ कर नही सकते। इसीलिए वे, अपने अन्तिम नाश का क्षण और आगे ढकेलन के लिए, जहाँ तक होता है अमरीका का फायदा उठा लेते हैं। आगे की कौन जाने।

[सारथी, 13 जनवरी 1957, मे 'अवन्तीलाल गुप्त' छद्मनाम से प्रकाशित]

अरब नीति में लचीलेपन की जरूरत

इतिहास मे यह कई बार देखा गया है कि सकटो को दूर करने का माद्दा उस दृष्टि पर काफी अवलम्बित है जिसे हम ऐतिहासिक विकास की दृष्टि कहते हैं। भारत को पूरी स्वाधीनता दे [illegible]
तो उसका ऐसे भी [illegible]
आजादी दे देने से, [illegible]
आर्थिक हितो मे लग [illegible]
चलता है, कि ब्रिटिश पूँजी स्वतन्त्र भारत मे खूब आती रही और खूब आ रही है। इस प्रकार ब्रिटेन ने भारतीय औद्योगिक विकास म कुछ-न कुछ योग दिया है। ब्रिटेन इस प्रकार की नीति अफ्रीका के गोल्ड कोस्ट तथा अन्य प्रदेशो को डोमिनियन स्टेटस देने मे प्रदर्शित कर रहा है। अपनी इस सुपरीक्षित और सफल प्रवृत्ति को वह इन दिनो मलाया मे स्वायत्त शासन स्थापित करने मे भी प्रदर्शित कर रहा है। यह सही है कि मलाया की स्वाधीनता मे उसने कई ऐसी बुनियादी शर्तें लगा दी हैं जिनसे उनकी आजादी केवल सीमित ही नही वरन् नकली भी हो जाती है। फिर भी उसने, आंशिक रूप से ही क्यो न सही, सही दिशा मे कदम बढाया है।

इतने अनुभवो और विचारो के बाद भी ब्रिटेन पश्चिमी एशिया मे सफलता का रास्ता अपना नही सका। किन्तु प्रश्न यह है कि क्या वह आगे भी अन्धा बना रहेगा, और केवल अमरीका की सहायता द्वारा अपने तेल-क्षेत्र की रक्षा करने की मरीचिका से पीडित रहेगा? यह लगभग असम्भव मालूम होता है। टोरी दल अथवा ब्रिटेन को नयी नीति का विकास तो करना ही पडेगा। किन्तु क्या वह

एकाध और धक्के की प्रतीक्षा कर रहा है ?

मैकमिलेन, जो अब प्रधानमन्त्री हो गये हैं, उन लोगो मे से हैं जिन्हे अपने देश को आर्थिक रूप से स्वतन्त्र बनाने की महत्त्वाकाक्षा सताती है। पश्चिमी यूरोप को एक स्वतन्त्र आर्थिक तिजारती तथा औद्योगिक क्षेत्र बनाने की ब्रिटिश योजना, जिसका उस क्षेत्र मे स्वागत भी हुआ था, एक ऐसी योजना थी जिससे इस क्षेत्र की अमरीका पर आर्थिक निर्भरता कम हो जाती। ध्यान देने की बात है कि वाशिंगटन में उस योजना का स्वागत नही हुआ। तात्पर्य यह कि ब्रिटेन ने, मैकमिलेन को प्रधानमन्त्री की गद्दी पर बिठाकर, अपनी आर्थिक तथा राजनैतिक कार्य-स्वाधीनता का अधिक विकास करने की तरफ ही पैर बढाये हैं।

नि सन्देह, मैकमिलेन की पहली परीक्षा पश्चिमी एशिया के क्षेत्र मे ही होगी। इस क्षेत्र मे अब वह परिस्थिति नही रही जो पहले थी। अमरीका को नाराज कर ब्रिटेन को अपनी पुरानी प्रतिष्ठा प्राप्त करने के लिए कुछ ऐसे कदम बढाने होंगे, जिनसे वह इजिप्ट की सद्भावना प्राप्त कर सके।

लेबेनान एक जमाने म फ्रासीसी प्रभाव के अन्तर्गत देश था। फ्रासीसी आर्थिक और सास्कृतिक प्रभाव वहाँ अब भी है। सीरिया, जोर्डन और इजिप्ट और साऊदी अरब—इन चार देशो से उसके सम्बन्ध भी अच्छे हैं। उसके विदेशमन्त्री डॉक्टर चार्ल्स मलिक की हलचलें यह सूचित करती हैं कि फास तथा अन्य मित्र देश इजिप्ट तथा ब्रिटेन के बीच के सम्बन्धो मे सुधार की कोशिश करना चाहते हैं। लेबेनान-जैसे देशो की इन कार्रवाइयो का महत्त्व बहुत अधिक बढ गया है। क्यो और कैसे ?

जैसा कि सीरिया ने बार-बार घोषित किया, हम तटस्थ राष्ट्र हैं और जो देश हमारी स्वाधीनता की रक्षा मे तथा औद्योगिक विकास म सहायता देगा हम सहर्ष वह सहायता स्वीकार करेंगे। लेबेनान सीरिया का पडोसी देश है। वह सीरिया की सक्रियता का मर्म समझता है।

अब हम इस क्षेत्र मे विशेष-विशेष हितों की पडताल करें। स्वय अमरीका जानता है कि इस क्षेत्र मे रूस के आर्थिक हित नही हैं। दूसरी ओर, डलेस कहते हैं कि रूस का इरादा इस क्षेत्र को अपने पास खीचकर पश्चिमी यूरोप को नष्ट कर देना है। पश्चिमी यूरोप नष्ट करने के लिए लन्दन और पेरिस पर आक्रमण की जरूरत नहीं। इस प्रकार, अमरीका यह कहना चाहता है कि यद्यपि रूस वहाँ अपने कोई आर्थिक स्वार्थ नही रखता, किन्तु पश्चिमी यूरोप को अपने कब्जे मे लेने के लिए वह उस क्षेत्र को अपने अधिकार मे लेना चाहता है।

मैकमिलेन-जैसे सजग राजनीतिज्ञ इतना तो समझते ही हैं कि यदि उस क्षेत्र मे अमरीका का आर्थिक और सैनिक प्रभुत्व हो जाता है, तो पश्चिमी यूरोप पर आक्रमण किये बिना ही अमरीका पश्चिमी यूरोप का अधिकारी हो जाता है। इस क्षेत्र मे, व्यावहारिक रूप से, प्रभावकारी स्थिति आज रूस की नहीं, अमरीका की है। माल्टा और सायप्रस मे विशाल अमरीकी छावनियाँ स्थापित होने पर, और अरब देशों मे डालरों की मिसौरी मिसीसिपी बहने पर, वहाँ रूस का नहीं, अमरीका का राज्य हो जायेगा। क्या ब्रिटेन इस स्थिति से आँखें मूँदे हुए है ? स्पष्ट है कि नहीं। अरब राष्ट्रवाद स्वय एक सक्रिय तत्त्व है। वह अमरीका के विरुद्ध ब्रिटेन को भिडाकर, सबसे फ़ायदा उठाते हुए, अपना कार्य सिद्ध कर सकता

है। और आज वह इस स्थिति मे है भी।

अमरीका पैसा देता है, लेकिन मशीनें नही, हथियार नही। रूस मशीनें देता है। अरब राष्ट्रवाद को मशीनें खरीदने के लिए पैसा चाहिए। इसलिए अपने विशाल क्षेत्र में कृषि-विकास और औद्योगिक क्रान्ति की गति और क्षेत्र बढाने के लिए, उसे, वस्तुत, अमरीकी तथा रूसी सहायता की अत्यन्त आवश्यकता है। इस सम्बन्ध मे भारत ने उन देशो के सामने एक नमूना भी पेश किया है। और अरब राष्ट्रवाद केवल रूस तथा अमरीका के ही भरोसे क्यो रहे? ब्रिटेन और फ्रास से मदद क्यो न ले?

कर्नल नासिर बगदाद सन्धि ध्वस करने की कोशिश तो कर रहा है, किन्तु वह तब तक टूट नही सकती, जब तक अरब राष्ट्रवाद, अपनी आर्थिक और औद्योगिक ताकत बढाने के लिए, अपनी कूटनीतिक दिशा म परिवर्तन नही करते। आवश्यकता इस बात की है कि इजिप्ट तथा सीरिया, ब्रिटन को ऐसा अवसर दें, जिससे कि वह अपनी रही-सही प्रतिष्ठा बचा सके। उसको ऐसा अवसर देने से इजिप्ट और ब्रिटेन की मित्रता फिर स कायम होने की भूमिका बन सकती है। साथ ही, ब्रिटेन सुएज़ नहर पर इजिप्ट का अधिकार मानकर उसकी मित्रता प्राप्त करने की कोशिश करे। यदि ब्रिटेन यथार्थवादी नीति अपनाकर उन घटनाओ को पहले से स्वीकार कर ले, जो वैस भी ब्रिटेन की इच्छा के बावजूद होने ही वाली हैं, तो सुएज़ नहर का किस्सा खतम हो सकता है। मतलब यह कि अरब राष्ट्रवाद को बहुत लचीली नीति अपनाकर अपना स्वार्थ सिद्ध करना होगा। तभी वह अपनी आज़ादी की आर्थिक और औद्योगिक नीव पुख्ता कर सकता है। उसे सभी साधनसम्पन्न राष्ट्रो की जरूरत है—जिसम ब्रिटेन और अमरीका भी शामिल हैं।

इसलिए अमरीकी योजना का आर्थिक पक्ष ठुकराने स काम नही चलेगा। हाँ, इस पक्ष को सद्भावना से स्वीकार करते हुए, और अमरीका की सैनिक नीति की भर्त्सना करते हुए, उस भर्त्सना के सिलसिले म रूसी शस्त्र तथा मशीनें प्राप्त करने की नीति भी अपनानी ही होगी। इस पूरे चित्र म ब्रिटेन कही-न-कही फिट होता ही है। उससे भी यह सहायता ली जा सकती है।

किन्तु बगदाद-सन्धि पर आज जो फ्रण्टल अटैक, यानी मोर्चे के केन्द्र पर जो मार चल रही है, उसस सामन्ती प्रतिक्रियावादी तत्त्व प्रगतिशील अरब राष्ट्रवाद से डरकर ब्रिटेन और अमरीका के पजे म और भी अधिक सिमटने की भरसक कोशि [illegible]
के अ [illegible]
विश [illegible]
कर [illegible]
सभी देशो से फायदा उठाने के अलावा, एक का दूसरे के विरुद्ध करते हुए अपने को अधिक-स-अधिक मजबूत बना सकता है।

इसलिए अरब राष्ट्रवाद को आज लचीली नीति की सबसे अधिक आवश्यकता है। क्योकि आज उसका प्रधान कर्त्तव्य अपने क्षेत्र मे आर्थिक-औद्योगिक स्वाधीनता

का भरसक संगठन करना है। यदि उसने इस संगठन की तरफ ध्यान नहीं दिया, तो वह 'ताश के घर' के समान एक फूंक में ढह सकता है, यह निर्विवाद है।

[सारथी, 20 जनवरी 1957, में 'अवन्तीलाल गुप्त' छद्मनाम से प्रकाशित]

इतिहास का अननुमानित

विश्व राजनैतिक गतिविधियों के पत्रकार-समीक्षकों से, साधारणतः, यह आशा की जाती है कि वे नियमित रूप से सम्बन्धित पत्रों में अपनी छानबीन मय ब्योरे के प्रकाशित करेंगे। आम तौर पर ऐसा किया भी जाता है। किन्तु बीच बीच में ऐसा भी समय आता है जब उनके पास कहने के लिए कुछ नहीं होता। वह विश्व गतिविधि की प्रधान धाराओं का ध्यान से निरीक्षण करते बैठते हैं, उसमें उन्हें मज़ा भी आता है, किन्तु फिर भी उनके पास शब्द न होकर केवल चित्र होते हैं, और वे यह सोचते हैं कि आगे चलकर इन चित्रों का सामान्यीकरण किया जा सकेगा, किन्तु इस समय वे इतने धुंधले हैं कि अभी उनके सम्बन्ध में कुछ न कहना ही श्रेयस्कर है।

इतिहास हर क्षण बदलता है। कहीं वह इस ढंग से बदल न जाय कि हमें हानि हो। हम सोचते हैं इस तरह का क़दम उठाने से बात हो जायेगी, किन्तु हमारे सारे चालाक और चतुर अनुमानों के बावजूद, विश्व-प्रवृत्तियों के अध्ययन के सारे हमारे आत्मविश्वास के बावजूद, जिस परिणाम के लिए हमने अपना कदम बढ़ाया, वह नहीं निकलता। और हमारे उद्देश्य के सर्वथा विपरीत कोई ऐसा अकल्पनीय फल, एक नयी परिस्थिति बनकर, हमें घूरने लगता है, कि जिससे लड़ने की हमारी तैयारी अधूरी और मनोबलहीन हो सकती है। आज दुनिया की प्रधान ताक़तें इसी उलझन में पड़ी हुई हैं। अमरीका, रूस और ब्रिटेन आज इस पेंच में हैं।

कुछ वर्षों पहले इस बात का अनुमान लगाना कठिन था कि तटस्थ देश अपनी तटस्थता के ज़रिये एक और शक्ति ग्रहण करेंगे, आलोक और अर्थ प्राप्त करेंगे, तथा इस रास्ते पर चलते हुए वे विश्व राजनीति में एक निर्णयकारी आवाज़ बन जायेंगे। कुछ हद तक, इन तटस्थ राष्ट्रों ने यह महत्त्व और महानता प्राप्त की है। और यदि पिछले कुछ वर्षों की प्रतिक्रिया पर ध्यान दिया जाय तो यह कहा जा सकता है कि भवितव्य यदि उन्हें कुछ और शान्तिकाल देगा, तो वे और भी बलशाली होकर अपने आस-पास की साम्राज्यवादी भूमि को भीतर से इतनी पोली कर देंगे कि बाद में हलकी-सी हरकत से एक के बाद एक सब शिलाखण्ड दूर किये जा सकते हैं।

ठीक यही बात अमरीका और ब्रिटेन की चिन्ता का कारण है। तटस्थ देश शान्ति पिपासा, राजनय और कूटनीति के द्वारा ऐसी सफलताएं प्राप्त कर रहे हैं,

जो तलवार के ज़ोर पर प्राप्त नही की जा सकती थी।

प्रतिक्षण बनते हुए इतिहास म, आज जिसका अनुमान करना कठिन है, वह अननुमाननीय इस तटस्थ प्रवृत्ति के हाथो मे है। जिस आत्मविश्वास के साथ, इजिप्ट सीरिया और जोर्डन से परामर्श करके साऊदी अरब के शाह आइज़नहॉवर-सिद्धान्त-योजना पर अरब निर्णय सुनाने के लिए वाशिंगटन पहुंच चुके हैं, वह साहसी आत्मविश्वास एक ज़माने मे कठिन था। यदि आइज़नहॉवर यह चाहते हैं कि पश्चिमी एशिया के राष्ट्रवादी प्रगतिशील राष्ट्र उनके साथ रहे, तो उनकी *सिद्धान्त-योजना* के न केवल *अध्याय उन्हें बदलना पडेंगे,* वरन् उसकी भूमिका बदल डालना पडेगी। असल मे, अमरीका सहायता की भूमिका ही सारी पेचीदगियो की जड है। यदि वह भूमिका न होती, उसका अभाव ही यदि उसका भाव होता, तो अमरीकी कूटनीति काफी हद तक सफल होती।

तटस्थ प्रवृत्ति की यह मनोदशा इतनी आक्रामक तथा सक्रामक हो गयी है कि पश्चिमी यूरोप की प्रधान राजधानियो म, पश्चिमी यूरोप के नाटो सगठन-क्षेत्र को नि शस्त्रीकृत प्रदेश मे परिणत करने की बात जोर पकड रही है। यह महान् प्रवृत्ति है, भले ही आज वह निर्णयात्मक रूप से बलशाली न हो। और उसका उद्देश्य समस्त पूर्वी यूरोप से रूसी सेनाएँ हटवाना, जर्मनी का एकीकरण करना, तथा आणविक शस्त्रीकरण की फ़िज़ूलखर्ची के स्थान पर तेलशक्ति के बदले आणविक शक्ति का अधिकाधिक तथा शीघ्र से शीघ्रतर और शीघ्रतम शान्तिकालीन उपयोग करना है, कि जिससे पश्चिमी यूरोप अपनी आर्थिक शक्ति समृद्धि के लिए न अमरीका पर अवलम्बित रहे, न पश्चिमी एशिया पर, जो उनके पजे से छूटता जा रहा है। अपनी भीतरी आर्थिक आवश्यकताओ के अनुसार परिस्थितियो को सुविधाजनक बनाने के लिए, पश्चिमी यूरोप आज एक नये सामजस्य की तलाश म है—एक ऐसा सामजस्य जो उसे एक ओर रूस के आतक से और अमरीका के मृत्यु-आलिंगन से बचाये रखे, और उस इतना समय दे कि वह अपनी बिखरी हुई शक्ति फिर से एकत्रित कर सके।

इतिहास का अननुमानित आज पश्चिमी यूरोप के हाथो मे भी है। इस भीतरी सामजस्य की तलाश म उसे, निश्चय ही, बहुत घुमावदार और पेचीदा रास्तो से गुज़रना पडेगा, और कभी-कभी या बहुत बार, अपने पुराने जडीभूत साम्राज्यवादी सस्कारो के कारण, उसे मुँह की भी खानी पडेगी। किन्तु जहाँ तक प्रवृत्ति का प्रश्न है, यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि वे बची खुची शक्ति के द्वारा अमरीका से सर्वथा स्वतन्त्र रहने की कोशिश करते हुए, अमरीका और रूस के बीच अपना एक अलग आर्थिक राजनैतिक क्षेत्र तैयार करने के लिए आतुर हैं। अपनी इस वाछित स्थिति की प्राप्ति के लिए, उन्हे कभी रूस के विरुद्ध जाना पडेगा, कभी अमरीका के। वे किन बातो पर किस ढग से कहाँ और क्या प्रतिक्रिया करेंगे, यह नही कहा जा सकता। किन्तु यह सही है कि वे स्वय भी बहुत डरते-डरते अपने मार्ग पर बढेंगे। लेकिन, बढेंगे अपने मार्ग पर ही।

समझने लायक बात है कि नि शस्त्रीकृत पश्चिमी यूरोप का आदर्श आज उनके लिए ज़बान से निकालना भी पाप है। किन्तु फ़ौजो का घटाव, फालतू शस्त्र उत्पादन मे कमी, और आणविक शक्ति का शान्तिकालीन प्रयोग, इनके अर्थतन्त्र के लिए जीवन-मरण का प्रश्न हो गया है। फ़िलहाल, वे पश्चिमी यूरोप का एकी-

कृत सामूहिक बाजार कायम करने में दत्तचित्त हैं। सैनिक उत्पादन और संगठन में कमी करके वे काफी पैसा बचा सकेंगे, और इस प्रकार वे बचे हुए धन से अपने अर्थतन्त्र का सुनियोजित विकास कर सकेंगे। किन्तु इस ढंग का विकास समय माँगता है, विश्व शान्ति माँगता है, और इत्मीनान माँगता है। जहाँ तक पश्चिमी एशिया में अमरीका इनकी ओर से लड़ाई लड़ता है, वहाँ तक तो ठीक है। किन्तु यदि वह नाटो को अपरिवर्तनीय मानकर चलता है, तो वह सबसे पहले जर्मनी से, बाद में फ्रांस से, और अन्त में ब्रिटेन से, धक्का खायेगा। किन्तु इस पूरी प्रक्रिया के विकास के लिए समय चाहिए। आखिरकार, जर्मनी का एकीकरण तो होने ही वाला है। किन्तु इस लक्ष्य की प्राप्ति का रास्ता साफ करने का काम पश्चिमी यूरोप के निःशस्त्रीकृत क्षेत्र से सम्बन्धित है। अर्थात्, आर्थिक कारणों से ब्रिटेन-फ्रांस आज इस बात के लिए राज़ी हैं, तथा आर्थिक-राजनैतिक कारणों से स्वयं पश्चिमी जर्मनी।

मतलब यह कि इतिहास का जो कुछ अननुमानित है, वह इन्हीं प्रवृत्तियों से उद्गत होकर दुनिया के सामने आनेवाला है।

किन्तु इतिहास की दिशा केवल प्रवृत्तियों और उनके आधार पर बनायी गयी योजनाओं से नहीं बनती। वह कुछ ऐसी घटनाओं से बनती है जिनका प्रभाव दीर्घ-कालीन रहता है। कभी-कभी घटनाएँ विश्व की सम्मिलित प्रतिक्रियाओं की गुत्थी के रूप में सामने आती हैं।

आइज़नहॉवर-सिद्धान्त-योजना सुएज़ नहर के प्रश्न के सन्तोषजनक और विश्वमान्य हल के पूर्व पेश की गयी है। मान लीजिए कि इजिप्ट इस योजना को तब तक अंशतः भी स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं है, जब तक गाज़ा पट्टी से इज़रायल को हटाया नहीं जाता, और नहर इजिप्ट को नहीं सौंप दी जाती है। स्पष्ट है कि इजिप्ट अथवा अन्य सम्बन्धित देश किसी नये घटना-क्रम का सूत्रपात कर सकता है। आइज़नहॉवर ने इस प्रश्न के हल के पहले अपनी योजना के लागू किये जाने का जो ज़ोर बताया है, उससे यह संकेत मिलता है कि अमरीकी योजना मान लेने पर इजिप्ट कुछ हद तक सुएज़ की समस्या को अपने हक में हल कर सकता है, कम-से-कम अमरीका की उसमें 'ना' नहीं रहेगी। मान लीजिए कि अमरीका, अग्रिम रूप से, अपने इस प्रकार के इरादों की कोई सकारात्मक सूचना (ब्रिटेन को ध्यान में रख) इजिप्ट को नहीं देना चाहता, तो वैसी स्थिति में इजिप्ट का अमरीका के प्रति अविश्वास घनीभूत होकर वह और अमरीका-विरोधी हो जायेगा। यदि अमरीका ने अग्रिम रूप से इजिप्ट को कुछ विश्वास दिला दिया, तो ब्रिटेन की नाराज़ मनोवृत्ति और अमरीकी-विरोधी हो जायेगी। मतलब यह कि सुएज़ का प्रश्न एक ज्वलन्त ज्वालामुखी है, और वह आगे चलकर इतिहास की प्रक्रिया को न मालूम कैसे-कैसे घुमाव दे।

ये प्रवृत्तियाँ राजनीतिज्ञों के भावसूचक आदर्शवादी लक्ष्यों से नहीं बनती। वे तमाम देशों की बुनियादी आवश्यकताओं और कार्यनीतियों से बनती हैं। उनका ग्राउण्ड-प्लैन अर्थात् बुनियादी रूपरेखा, राजनीतिज्ञों की कार्यशील नीतियों और वचनों में झलकती है, किन्तु वे वचन और नीतियाँ पूरी रूपरेखा को नहीं बता पातीं। क्योंकि इतिहास केवल एक देश की या कुछ देशों की नीति का परिणाम नहीं है, वह पूरी दुनिया की प्रगतिमान स्थितियों का परिणाम है। उसमें सभी का

योग है। कभी उसकी गति तेज हो जाती है और कभी धीमी।

इस समय यह गति कुछ धीमी हो गयी है। अपनी-अपनी नीतियों को और प्रभावकारी बनाने की दिशा में, कुछ महत्त्वपूर्ण देश अपनी नीति में इधर-उधर फेर-बदल कर रहे है। इधर-उधर किये जानेवाले इन सशोधनो का इतिहास मे क्या योग रहेगा, यह अभी से कहना जरा कठिन है।

[सारथी, 27 जनवरी 1957, मे 'अवन्तीलाल गुप्त' छद्मनाम से प्रकाशित]

बग़दादी राजनीति का चक्कर

इस बात की पूरी सम्भावना है कि पाकिस्तान, सुरक्षा परिषद के कश्मीर-सम्बन्धी प्रस्ताव से प्रोत्साहित होकर, सयुक्त राष्ट्र सघ में भारत के विरुद्ध कोई नया प्रस्ताव उपस्थित करे। यह सही है कि ब्रिटेन और अमरीका की हम इतनी बुद्धिमत्ता स्वीकार कर सकते है कि वे दो देश, शायद, भारत पर पाकिस्तानी हमले को मजूर न करें। किन्तु अन्तर्राष्ट्रीय शतरज मे मोहरे कुछ इस ढग से बैठे हुए हैं कि अमरीका और ब्रिटेन के लिए भारत को नीचा दिखाने और विश्व की जनता की नजरो से उसे नीचे गिराने का प्रयास करना आवश्यक-सा हो गया है, ऐसा उनका खयाल है।

ब्रिटेन और अमरीकी कार्यनीतियो मे एक सर्वसामान्य बात हमारी आँखो से ओझल नही होनी चाहिए। और वह यह है कि इन दशो के असली तरीके ताप-मान की सख्यात्मक वृद्धि पर विशेष जोर देते हैं। दूसरे शब्दो मे, तापमान की एक सुनिश्चित सर्वोच्च डिगरी के अन्तर्गत बुरा-से-बुरा खेल भी उनके लिए उचित होता है। उदाहरणत, मिस्र को फँसाने का प्रयास, उसे नष्ट करने के लिए तग करने की कोशिशे, गलत नही हैं—गलत यह है कि इन कोशिशो का तापमान इतना न बढ पाये कि युद्ध हो, और यदि युद्ध हो ही जाय, यानी तापमान सुनिश्चित डिगरी के ऊपर चढ जाये, तो तडाक-फडाक बीमार की मृत्यु हो जानी चाहिए, यदि मृत्यु नही हुई और बीमार जी गया तो अमरीका अपने साथी को अकेला छोड देगा।

ठीक यही सिद्धान्त भारत के लिए भी लागू किया जा रहा है। हाँ, यह सही है कि यहाँ आक्रान्ता ब्रिटेन न होकर पाकिस्तान है, इसलिए तापमान और बढाया जा सकता है। कार्यनीति-सम्बन्धी इस प्रकार के राजनैतिक सिद्धान्त की कमजोरी यह है कि वह किसी कदम को तब तक गलत नही समझता, जब तक वह अपने नियन्त्रण के अन्दर हैं। किन्तु मुश्किल यह है कि ज्यों-ज्यों तापमान बढता जाता है, नियन्त्रण छूटता जाता है, और स्थिति-परिवर्तन की प्रक्रिया नियन्त्रण से पृथक् होकर अपना मार्ग ढूँढने लगती है। इसीलिए, एग्लो-अमरीकी कार्यनीति हमेशा खतरनाक खेल खेलती-सी दिखायी देती है।

साफ है कि इस समय ब्रिटेन-अमरीका इस ढंग की कार्यनीति अमल में ला रहे हैं, जिससे भारत-पाकिस्तान आपस में लड़कर, भारत की शक्ति कमज़ोर हो।

यह सही है कि दस वर्षों बाद, अमरीका ने स्वीकार किया कि भारत सारे तटस्थ राष्ट्रों का मुखिया, उनका प्रधान चिन्तक और दार्शनिक है। विचारों के पंख होते हैं, और वे दुनिया में चारों ओर उड़ते-फिरते हैं। पण्डित नेहरू को उनके मसीहापन के लिए सज़ा देने का एक बेहद आसान मौक़ा कश्मीर ने खड़ा किया है। बग़दादी दोस्तों में तीन बड़े देश हैं जिनमें तुर्की और पाकिस्तान दो खूँट सँभालते हैं। ब्रिटेन-अमरीका क्यों न पाकिस्तानी क्रोध को उभाड़ें, और भारत को कमज़ोर बनाये रखें। तुर्की क्यों न सीरिया और जोर्डन की छाती पर चढ़ा रहे।

भारत के ख़िलाफ़ पाकिस्तान और सीरिया-जोर्डन के ख़िलाफ़ तुर्की को लगाकर, ब्रिटेन-अमरीका, वस्तुतः, तुर्की की स्थिति बहुत कमज़ोर कर रहे हैं। रूस इस हालत से ग़ाफ़िल नहीं है। और यह असम्भव नहीं है कि इस वर्ष स्वयं रूस तुर्की को भीतर से बेचैन रखकर, और बाहर से अपने ज़ोर-दबाव की आज़माइश करते हुए, उसकी स्थिति भीतर से बिगाड़ने की बुरी तरह कोशिश करे।

जब बग़दादी राजनीति पाकिस्तानी कुत्तों को भारत के विरुद्ध छू छू कराती है, तो रूस उसी बग़दादी सूत्र के दूसरे सिरे पर तुर्की के पीछे ज़रूर लगेगा। यह बिलकुल अनिवार्य ही समझिए। बग़दादी आवश्यकताओं से प्रेरित होकर ब्रिटेन-अमरीका ने सुरक्षा परिषद में पाकिस्तान का समर्थन किया, तो इसके विरुद्ध रूस न केवल भारत का हमदर्द बना रहेगा, वरन् इस सन्धि-संगठन को नष्ट करने की दिशा में, तथा सीरिया और जोर्डन की सहायता के लिए, वह तुर्की पर ज़्यादा-से-ज़्यादा ज़ोर-दबाव की आज़माइश करेगा।

यह बिलकुल सही है कि अपनी जनता के सामने बहादुरी बताना पाकिस्तान के लिए ज़रूरी हो गया है। ऐसी हालत में सरहदी उपद्रव और ज़्यादा बढ़ेगा और लड़ाई के बादल घुमड़ेंगे। यह ज़रूरी नहीं है कि वे बरसें भी। लेकिन वे घुमड़ेंगे भी खूब, और गरजेंगे भी खूब, और शायद वे इधर-उधर ओले गिरायें, बौछारें करें और आग के छींटे मारें।

किन्तु उलझन की जड़ ख़ुद बग़दाद-सन्धि है। यदि इस सन्धि ने पाकिस्तान को आत्मविश्वास दिलाया है, तो उलझनें भी ज़रूरत से ज़्यादा बढ़ गयी हैं। सन्धि के शत्रु न केवल भारत और रूस हैं, वरन् इजिप्ट और सीरिया भी हैं। इस प्रकार, यह सन्धि-संगठन चारों ओर शत्रुओं से घिरा हुआ है। यदि किसी बग़दादी देश का क़दम ग़लत पड़ा, तो ऐसी नयी पेचीदगियाँ पैदा होंगी, जिन्हें ये मुल्क बरदाश्त नहीं कर सकते। लम्बी लड़ाई के लिए, आर्थिक-औद्योगिक क्षमता और सैनिक शक्ति लगती है। इन समस्त देशों को यह ताक़त उधार मिली हुई है। वह भीतर से पैदा नहीं होती, बाहर से आयात की जाती है। मतलब यह कि बग़दादी राजनीति ख़ुदकुशी करने जा रही है। उसके द्वारा तीसरी लड़ाई छिड़े या न छिड़े, यह सही है कि भारत पर पाकिस्तानी हमले के साथ ही, बग़दाद-सन्धि के शत्रु उसे चारों ओर से कमज़ोर करने की लगातार कोशिश करेंगे। और यह कोशिश सफल भी होगी, क्योंकि इस सन्धि के किनारे किनारे के सभी देश, उसके शत्रु होने के अलावा, इस सन्धि का नाश इतिहास-पटल पर लिखा रखा है। आज सुरक्षा परिषद में वस्तुतः, कश्मीर प्रश्न को बग़दाद-सन्धि की आवश्यकताओं से मिला दिया गया है,

यह हमे नही भूलना चाहिए।

अगर आज रूस भारत के या चीन भारत के साथ है, तो इसका कारण केवल चीन या भारत की इच्छाएँ ही नही, वरन् वह महान् विश्व-ऐतिहासिक परिस्थिति है, जिसने ये इच्छाएँ जाग्रत की। इसलिए, हगरी के सम्बन्ध मे भारतीय विरोधी प्रतिक्रिया के बावजूद, रूस को भारत का साथ देना पडता है, और अमरीका से अलक्ष्य आशाएँ रखने के बावजूद, भारत को रूस या चीन ही का मुँह जोहना पडता है—खास तौर पर रूस का—चाहे प्रश्न कश्मीर का हो या दूसरे पचवर्षीय *आयोजन का*। इस हालत को पैदा कराने का श्रेय साम्राज्यवादियो का है।

मतलब यह कि इस वर्ष सुएज नहर का सवाल हल कराने की कोशिश की जायेगी या गाजा पट्टी का प्रश्न मिटाने का प्रयास होगा, और आइजनहॉवर-सैनिक-सिद्धान्त-योजना लागू करने का प्रयत्न होगा, तो भारत इन तमाम प्रश्नो पर वहाँ के तटस्थ देशो के हितो की दृष्टि से सोचेगा और उन्ही की बाजू से जोर लगायेगा। और अगर भारत के इस रुख से रूस को सन्तोष होता हो, तो वह उसे होने देगा, और अगर ब्रिटेन और अमरीका मुँह के बल गिरते हो, तो वह उन्हे और दो लातें जमायेगा। पाकिस्तानी सगीन से डरकर, भारत पश्चिमी एशिया के अपने मित्रो को वैचारिक सहायता देना बन्द नही कर सकता, क्योंकि सक्रिय तटस्थता की सच्ची परीक्षा भारत मे नही, पश्चिमी एशिया मे हो रही है। एक बार तो भारतीय विदेश-नीति की सच्ची परीक्षा सीरिया और इजिप्ट मे हो गयी। उससे हमने भी अपने लिए नतीजे निकाले। उन नतीजो से हमारी नीति और दृढ हो गयी। हमे उसे बदलने की जरूरत नही।

[सारथी, 3 फरवरी 1957, मे 'अवन्तीलाल गुप्त' छद्मनाम से प्रकाशित]

रूसी निषेधाधिकार

क्या सुरक्षा परिषद मे रूस उस प्रस्ताव को वीटो करेगा जिसका उद्देश्य कुल मिलाकर कश्मीर मे जनमत-सग्रह के लिए सयुक्त राष्ट्र सघीय मशीनरी क़ायम करना है?

यह प्रश्न महत्त्वपूर्ण है, इसका पूछा जाना स्वाभाविक है। रूस के प्रति भारतीय आकर्षण का एक प्रमुख कारण रूसी वीटो भी बताया गया है, और यह मत जनता मे भी काफी प्रचलित है। वह इतना प्रचलित है कि पण्डित नेहरू की कूटनैतिक चरम विजय का सार-तत्त्व उसमे माना गया है। ख्रुश्चेव जब भारत आये, तब इस समस्या के बारे मे उनके 'बोल' अभी भी लोगो को याद हैं।

साधारण जनता की दृष्टि से, वैदेशिक नीति की कसौटी कश्मीर प्रश्न का उचित निर्णय ही रहा है। सुरक्षा परिषद मे यदि रूस ने ऐसा कोई प्रस्ताव वीटो नही किया, तो उसका भारतीय जनमत पर प्रभाव तुच्छ हो जायेगा, और यहाँ

उसकी लोकप्रियता की बाढ़ खाली हो जायेगी।

किन्तु एक खतरा और भी पैदा होगा, जिस पर खयाल जाना जरूरी है। वह यह कि जनसघ-जैसे सम्प्रदायवादी दल तथा पी एस पी के नेता, चुनाव आन्दोलन के दौरान मे, यह कहते फिर रहे हैं कि नेहरू की विदेश-नीति असफल हो गयी है। ये दोनों ढग की पार्टियाँ काग्रेस से दुश्मनी करने मे कश्मीर की हालत के सम्भावित डाँवाडोलपन का फ़ायदा उठाने म कदापि न चूकेंगी। चूंकि हम तत्काल इस समस्या मे गहरी दिलचस्पी रखते हैं, और उसी के बिलकुल साथ कश्मीर प्रश्न मे भी उलझे हुए हैं, इसलिए सुरक्षा परिषद मे रूसी वीटो म सोचना भी जरूरी हो जाता है।

कश्मीर की यथास्थिति क़ायम रखने के उद्देश्य से सुरक्षा परिषद द्वारा पास किये गये प्रस्ताव पर जब रूस ने वोट नही डाला, न विरोध मे [न] समर्थन मे, तब तरह-तरह के विचार उठना स्वाभाविक ही था। किन्तु अन्त मे जब काग्रेस अध्यक्ष श्री ढेबर ने अपने भाषण मे यह कहा कि हमारे समर्थन मे रूसी मत न मिलने का कारण यह था कि हगरी मे हमने उसका समर्थन नही किया, तब स्वभावत ही यह लगा कि भारत मे मार्शल बुल्गानिन की उपस्थिति के बावजूद, मास्को और दिल्ली के बीच एक नयी दूरी पैदा हो गयी है, और यह दूरी हगरी के सम्बन्ध म भारतीय नेताओं के घोषित वक्तव्यो से पैदा हुई है। हाल ही मे पण्डित [illegible]

किसी वैसे प्रस्ताव का रूस वीटो कर देगा।

इसम कोई शक नही कि कश्मीर मे सयुक्त राष्ट्रीय फौजें भेजने का प्रस्ताव रूस द्वारा वीटो होने पर भी जनरल असेम्बली मे आ सकता है, अर्थात् आयेगा ही। सघ के अमली या क़ानूनी हस्तक्षेप से छुटकारा मिलना अब लगभग असम्भव है, जब तक कि कोई और विशेष घटना या प्रवृत्ति सघीय हस्तक्षेप मे हस्तक्षेप न करे। मतलब यह कि रूसी वीटो के प्रयोग के बावजूद सघ एग्लो-अमरीकी बहुमत के जरिये अपना काम करेगा। फिर भी रूसी वीटो का सवाल राजनैतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है, जैसा कि बताया जा चुका है। यदि उसका प्रयोग होता है तो कम-से-कम दुनिया के सम्मुख इतना तो सिद्ध हो ही जाता है कि कुछ देश इस प्रश्न पर हमारे समर्थक हैं।

यदि यह मान लिया जाय कि कश्मीर के प्रश्न पर, चेतन-अचेतन रूप से, रूस हगरी के सम्बन्ध मे हमारी नक़ल कर रहा है, तो यह ज्यादा ग़लत न होगा। कारण यह कि हमने, हगरी मे रूसी सेनाओ के हस्तक्षेप के बावजूद, पाकिस्तान के इस प्रस्ताव का डटकर विरोध किया था कि वहाँ, यानी हगरी मे, सघीय फ़ौजें भेजी जायें। मौजूदा हगरी सरकार को जब केवल 'हगरी के अधिकारी' कहा गया, तो हमने इसका भी खुला विरोध किया। मतलब यह कि यदि यह मान लिया जाय कि रूस हगरी के प्रश्न पर हमारी दृष्टि का प्रत्युत्तर दे रहा है, तब साधारण तर्क यह कहता है कि जिस मार्मिक जगह पर हमने हगरी का समर्थन किया और वहाँ सघीय फौजें भिजवाने का विरोध किया, ठीक उसी जगह पर रूस भी हमारा समर्थन करेगा, और इस प्रस्ताव का विरोध करेगा कि कश्मीर के मामले मे सघीय

हस्तक्षेप किया जाये।

इसके नैतिक मूलाधार से कहीं अधिक बलिष्ठ राजनैतिक मूलाधार है। हमको मध्य एशिया में और चीन से जोड़नेवाली थोड़ी-बहुत खुली पट्टी कश्मीर ही है। रूस कभी यह न चाहेगा कि कश्मीर दुश्मनों के दोस्तों के हाथों में पहुँचे।

इसके अलावा, एक बात और भी महत्त्वपूर्ण है। वह यह कि भारत, सभी दृष्टियों से, पाकिस्तान से अधिक प्रगतिशील है। सामन्ती दुनिया, एकाध अपवाद को छोड़, सिर्फ़ अन्तर्राष्ट्रीय साम्राज्यवाद के भरोसे ज़िन्दा है, चाहे वह मलाया हो या तुर्की या ईरान। ऐसी स्थिति में मार्क्सवाद के अनुसार ही कश्मीर का भारत में विलय एक प्रगतिशील कदम है। रूसी नेताओं के तथा अन्य कम्यूनिस्ट पार्टियों के उद्गार भी इस तथ्य पर ज़ोर देते आये हैं। मतलब यह कि यह विषय एक सिद्धान्त के अनुसार ही समर्थित है।

यदि एकाएक इस सिद्धान्त का असली हल रूस द्वारा सामने नहीं लाया गया, तो एक नया विवेक-संकट शुरू हो जायेगा, यह भी निर्विवाद है।

लेकिन यह भी सही है कि आगे आनेवाले प्रस्ताव की शब्द-रचना पर भी बहुत-सी बातें निर्भर हैं। एंग्लो-अमरीकी-पाकिस्तानी प्रस्ताव की शब्द-रचना ऐसी भी हो सकती है कि जिसके कई अर्थ निकलें और उसके फलस्वरूप प्रस्ताव को वीटो करना रूस को मुश्किल [हो] जाये। और जब प्रस्ताव का समर्थन या विरोध करना मुश्किल होता है तब वोट नहीं डाला जाता, न विरोध में न समर्थन में। पाकिस्तान तो खास तौर से यह चाहेगा कि प्रस्ताव का परिणाम इस प्रकार का हो जो रूस को पसोपेश में डाल दे। यह बिलकुल असम्भव नहीं है कि प्रस्ताव पर ब्रिटेन-अमरीका खूब एक्सरसाइज़ करें और सुरक्षा परिषद में अपने लायक दोस्तों की मैजॉरिटी के भरोसे उसे पास करवा लें। यदि प्रस्ताव गड़बड़ हुआ तो रूस को निःसन्देह उसे वीटो करना चाहिए। उससे इतनी बुद्धिमत्ता की अपेक्षा तो है ही।

[सारथी, 10 फरवरी 1957, में 'अवन्तीलाल गुप्त' छद्मनाम से प्रकाशित।]

दून घाटी में नेहरू

सुना है पण्डित जवाहरलाल नेहरू एक हफ्ते छुट्टी पर रहेंगे। 'आराम हराम है' का नारा देनेवाले नेहरूजी को स्वयं आराम की कितनी ज़रूरत है, यह किसी से छिपा नहीं। देश विदेश की हर छोटी-सी घटना उनके संवेदनशील मन को केवल प्रभावित ही नहीं करती, वरन् उन्हें योग्य कार्य करने के लिए संचालित भी कर देती है। इनका मानसिक भार उन लोगों से भी छिपा नहीं है जो सिर्फ़ चित्र में उन्हें देखते हैं। उनका कहना है कि नेहरूजी के चेहरे पर चिन्ता की रेखाएँ गहरी और कई गुनी हो गयी हैं तथा वे जल्दी-जल्दी बूढ़े हो रहे हैं।

जहाँ तक बुढ़ापे का सवाल है, हम नहीं कह सकते कि दार्शनिकता और चिन्ता

इस महाराष्ट्र धर्म मे महाराष्ट्रीय जनता की सारी भावनाएँ समाहित हैं। ये भावनाएँ सदियो पुरानी है। उन्हे अनुभव करके प्रत्येक महाराष्ट्रीय का हृदय आज भी व्याकुल हो उठता है।

यह महाराष्ट्र धर्म शिवाजी के उदय के पहले ही जनता के हृदय मे समा गया था। केवल एक वीर की और एक महान सन्त की आवश्यकता थी, जो महाराष्ट्रीय सन्तो के कीर्तन को राजनैतिक स्वाधीनता के वायुमण्डल मे चतुर्दिक् प्रसारित करे। शीघ्र ही वह समय आया और, शिवाजी के कुछ वर्ष पूर्व, महान राजनैतिक स्वप्न-द्रष्टा सन्त रामदास का जन्म हुआ। इस सन्त के पास अभूतपूर्व राजनैतिक दृष्टि थी। उसने शिवाजी को इस बात के लिए प्रेरित किया कि वह महाराष्ट्र धर्म की स्थापना, यानी मराठी-भाषी राज्य की स्वाधीनता का जयघोष करे। ब्राह्मण सन्त रामदास की ही प्रेरणा से, शिवाजी के पराक्रम की बाहुओ के रूप मे, निम्नवर्गीय जन सामने आये और सेनाध्यक्ष बने। डॉक्टर आम्बेडकर ने निम्न जातियो के लिए जो कुछ किया, उससे बहुत बडे पैमाने पर शिवाजी ने कर दिखाया। यह अपरिहार्य और अवश्यम्भावी भी था। निम्न जातीय सन्तो ने समाज मे अभूतपूर्व चेतना भर रखी थी। इन सचेत वर्गों मे से निकले हुए सेनाध्यक्षो ने अपने वर्गों को आत्म-विश्वास दिलाकर उन्हे एक वृहत्तर महाराष्ट्र धर्म मे विलीन कर दिया। यही कारण है कि आगे चलकर ब्राह्मण पेशवाओ के सिपहसालार भी गडरिये और अन्य निम्न जातिवाले रहे।

सारे भारत के इतिहास मे यह एक महान् घटना है। मध्ययुग मे, विदेशी केन्द्रीय सत्ता से जूझनेवाले सिर्फ तीन क्षेत्रो से आये—राजस्थान, पजाब और महाराष्ट्र। राजपूत विभाजित रहे और उनमे निम्न जातियो का महत्त्व कुछ न था। सिख तो जाति विशेष ही बन गये। किन्तु मराठो मे हीन जातियो को उनके पराक्रम के हिसाब से उनका आदर किया गया। महाराजा होलकर, गायकवाड इन्ही निम्न जातियो के मध्ययुगीन गौरव के अवशेष है। इस गौरव-प्रदान का एकमात्र लक्ष्य दिल्ली की विदेशी सल्तनत उखाड फेकना था। मराठो मे आपसी झगडे कम नही थे। किन्तु महाराष्ट्र भावना को धक्का पहुँचना उनके लिए बहुत मुश्किल था। इसीलिए, सम्भाजी के भाई राजाराम के मरने के बाद, और सम्भाजी के लडके शाहू का असर पैदा होने तक के अराजक युग मे भी, सभी सरदारो और पण्डितो को एक महाराष्ट्र भावना की अधीनता और एक राजनैतिक परम्परा की मातहती स्वीकार करनी पडी थी। इसी मातहती के कारण ही पूर्णत. स्वाधीन रहते हुए भी सिन्धिया, होलकर, गायकवाड आदि को पूना की सार्वभौम सत्ता के अन्तर्गत ही रहना पडता था।

ध्यान रहे कि उन दिनो राष्ट्रवाद का उदय भी नही हुआ था। फिर भी महाराष्ट्र के इस स्वाधीनता-युद्ध के प्रति पूरे देश की ईमानदार आत्माओ की सहानुभूति थी।

अंग्रेजो ने पेशवा राज्य खत्म किया और सबसे पहली बात जो उन्होने की वह थी कि ब्राह्मणो और निम्न जातियो मे झगडा लगवा दिया। फिर भी महाराष्ट्र भावना गयी नही। सन् अठारह सौ अठारह मे पेशवाई खत्म हुई। अठारह सौ सत्तावन मे महाराष्ट्रीय वीरो ने अखिल भारतीय स्वाधीनता युद्ध मे भाग लिया। उसके असफल होने पर उन्नीसवी सदी के अन्त और बीसवी सदी के प्रारम्भ के

वर्षों में वासुदेव बलवन्त फड़के ने शिवाजी के ढंग का गोरिल्ला युद्ध शुरू किया। किन्तु तब तक भारतीय समाज बदल चुका था और उसे छापेमार लड़ाइयों की नहीं, वरन् तिलक-जैसे नेताओं की आवश्यकता रही।

तिलक के जमाने में महाराष्ट्र की अभूतपूर्व साहित्यिक, सांस्कृतिक और सामाजिक उन्नति हुई। सामन्ती संस्कारों और मध्ययुगीन विचारों को उसने जबर्दस्त धक्का दिया। न्याय निष्ठुर विद्वत्ता और प्रखर बुद्धि के इस सामाजिक आन्दोलन के फलस्वरूप, महाराष्ट्रीय समाज में कुछ मूलभूत परिवर्तन हुए। किन्तु ज्यों-ज्यों महाराष्ट्रीय समाज की संचित सांस्कृतिक निधि बढ़ती गयी, त्यों-त्यों एक राष्ट्रवादी केन्द्रीय छत्रच्छाया के अन्तर्गत, एक पृथक् मराठी-भाषी प्रान्त बनाये जाने की भावना भी ज़ोर पकड़ती गयी। अंग्रेज़ों ने इस मराठी भाषी क्षेत्र को जानबूझकर, इरादतन, अनेकों पड़ोसी प्रान्तों में बाँट दिया था। अतएव यह महाराष्ट्र देश सिर्फ एक इकाई ही बनना चाहता था, चाहे उसके अधिकार कम ही क्यों न कर दिये जायें, किन्तु वह पूरा क्षेत्र एक इकाई बनकर रहे। आधुनिक युग में इसे 'महाराष्ट्र धर्म' का एक अविभाज्य अंग माना गया। कोई भी ऐसा महाराष्ट्रीय नहीं है जिसने बचपन में ही 'महाराष्ट्र देश आमचा' वाली कविता न पढ़ी हो। वह घुट्टी में पिलायी गयी है।

इस बात को ध्यान में रखना बहुत ज़रूरी है कि महाराष्ट्र धर्म भारतीय संस्कृति और भारतीय महत्त्वाकांक्षा का ही एक अत्यन्त सक्रिय रूप है। अपने इस रूप के कारण ही तिलक हों या शिवाजी, सन्त ज्ञानेश्वर हों या आधुनिक विनोबा, पूरे भारत को नेतृत्व देने में समर्थ हो सके। जिस प्रकार एक महान् सरिता जिस प्रदेश में बहती है उस प्रदेश की मिट्टी का रंग जल में प्रतिबिम्बित हो जाता है, उसी प्रकार भारतीय संस्कृति महाराष्ट्र में प्रवाहित होकर एक नया रंग ले आयी। इस रंग की एक विशेषता यह है कि वह सिर्फ अपने लिए एक अलग स्वायत्त प्रान्त चाहती है। और उसकी यह आकांक्षा आज की नहीं, बहुत पुरानी है।

कांग्रेस ने महाराष्ट्र की इस स्वाभाविक आकांक्षा को आज से नहीं, एक अरसे से स्वीकार किया। कांग्रेस-जैसे राष्ट्रीय संगठन से अपनी इस माँग की स्वीकृति पाकर, पूरा महाराष्ट्र इस विचार पर विश्वास रखता था कि आज़ादी के बाद उसका एक पृथक प्रान्त बना दिया जायेगा। किन्तु पणिक्कर-फ़ज़लअली-वाली राज्य पुनर्गठन समिति ने महाराष्ट्र को सबसे पहले धक्का दिया। महाराष्ट्र को विभाजित करने के सुझाव के साथ ही, महाराष्ट्र की जनता के बारे में समिति की रिपोर्ट में यह भय प्रकट किया गया कि लम्बे समुद्रीय किनारे का प्रान्त होने के कारण महाराष्ट्र को यदि एक इकाई बनाया गया तो वहाँ देश के लिए खतरा बढ़ जायेगा। इस प्रकार के मन्तव्य ने महाराष्ट्रीय जनता में न केवल उत्तेजना फैला दी, वरन् उसने केन्द्रीय नीति के कर्णधारों पर जनता के अविश्वास को जन्म दिया। आगे की घटनाओं ने इस अविश्वास को और भी घनीभूत किया और आन्दोलन बढ़ता चला गया।

यह निःसंकोच स्वीकार कर लेना चाहिए कि जनता का विश्वास केन्द्र से और केन्द्र का विश्वास जनता से इतना उठ गया कि बम्बई में पण्डित नेहरू मोटर से नहीं, हेलीकॉप्टर से घूमा करते थे। इतना दर्दनाक दृश्य किसी ऊँचे कांग्रेसी नेता को नसीब नहीं था।

हाँ, न्याय और औचित्य का यह तकाजा है कि हम यह स्वीकार कर लें कि केन्द्रीय नेतृत्व मे से लगभग सभी लोग महाराष्ट्र की माँग के प्रति सहानुभूति रखते थे। इसलिए आधुनिक इतिहास मे पहली बार, उन्होंने बम्बई के द्विभाषिक राज्य मे पूरे महाराष्ट्र को एक कर दिया। किन्तु महाराष्ट्र के बारे मे गलतफहमियो के आन्दोलन द्वारा, तथा बम्बई के उद्योगपतियो के मोरारजी भाई देसाई-जैसे उल्टी खोपडी के सलाहकारो द्वारा, अजीबोगरीब प्रस्ताव रखे गये, जिसमे एक प्रस्ताव जनमत-सग्रह का था। जब कश्मीर मे जनमत-सग्रह नही हो सकता, तब बम्बई मे क्यो? और जब बम्बई भौगोलिक दृष्टि से महाराष्ट्र का एक भाग है, तो सिर्फ सम्पत्ति-शक्तिशाली अल्पसख्यको के हित के लिए, महाराष्ट्र अपनी कुरबानी क्यों करे! मोरारजी भाई बिहार गये तो उन्होने नयी लडाइयां लडवा दी और वहाँ की काग्रेस की दरारें और चौडी कर दी।

केन्द्रीय नेतृत्व महाराष्ट्र से सहानुभूति रखते हुए भी मोरारजी भाई इत्यादि सलाहकारो के चक्कर मे आ गया। यही कारण है कि पण्डित नेहरू को अपने पर विश्वास नही रहा और उन्होंने अपने भाषणो मे भी यह कहा कि यदि केन्द्र की भूल हुई है तो वह हुल्लड और धूम मचाने से दूर नही हो सकती।

मतलब यह है कि केन्द्रीय नेतृत्व के हृदय और मन को बम्बई-काण्ड से बडा धक्का लगा, जो कि स्वाभाविक ही है। किन्तु उन्होंने सयुक्त महाराष्ट्र के आन्दोलन को पृथक्तावादी आन्दोलन कहकर उसकी बहुत-बहुत भर्त्सना की। जितनी वे भर्त्सना करते गये, वह उतनी ही आगे बढती गयी। उनका यह खयाल बिलकुल गलत था कि महाराष्ट्र आन्दोलन पृथक्तावादी है। 'पृथक्तावाद' इस शब्द से महाराष्ट्र को बहुत धक्का लगा। आज तक मराठो ने, मुस्लिम काल मे और ब्रिटिश युग मे, देश की आजादी की लम्बी चौडी लडाइयाँ लडी। कभी भी मराठा भूमि इस मामले मे शान्त नही रही। सघर्ष की इन लम्बी-चौडी सदियो के बाद भी, जब महाराष्ट्रीय आकाक्षा को अखिल भारतीयता के विरुद्ध पृथक्तावादी कहा गया, तब काग्रेस सरकार पर जो कुछ भी रहा-सहा विश्वास था, वह भी खत्म हो गया।

आज महाराष्ट्र मे खुले तौर पर यह कहा जा रहा है कि काग्रेस बम्बई के उद्योगपतियो के हाथो का खिलौना है।

हम यह जानते हैं कि केन्द्रीय नेतृत्व मे महाराष्ट्रीय आकाक्षा की हार्दिक सवेदना है। फिर भी चूँकि उनकी नीति असफल हो गयी और उसके बावजूद काग्रेस मन्त्रिमण्डल प्रतिष्ठित है, इसलिए भावना यह है कि हम विरोधियो के सामने क्यो झुकें। काग्रेस एक राष्ट्रीय सस्था है। इसलिए, सयुक्त महाराष्ट्र का प्रान्त बना देने से यद्यपि उसे तात्कालिक नुकसान होगा, किन्तु भविष्य मे उसके पल्ले लाभ ही लाभ होगा। ध्यान मे रखने की बात है कि काग्रेस इस ढग से यदि दूरदर्शी बनकर काम लेगी तो पूरा महाराष्ट्र उसका कृतज्ञ होगा और यह विशाल प्रदेश काग्रेस का एक जबर्दस्त गढ बन जायेगा।

सयुक्त महाराष्ट्र समिति रहे या जाय, उसके अन्तर्गत विभिन्न दल रहें या अलग हों, यह निश्चित बात है कि महाराष्ट्रीय जनता की आहत भावना उग्र होती जा रही है। कम्यूनिस्टो ने बम्बई मे कृष्णा मेनन के सामने ढीले पडकर बता दिया कि उनका एकमात्र लक्ष्य सयुक्त महाराष्ट्र नही है। पी. एस. पी, जनसघ वगैरह

न भी यही किया। किन्तु उनकी इस दलीय राजनीति से महाराष्ट्र भावना कमजोर होने के बजाय उग्रतर हुई।

बम्बई मे इतनी मारकाट हुई कि देश का दिल दहल गया। यह क्यो हुआ, कैसे हुआ, इसका जवाब यहाँ अप्रासगिक है। मतलब की बात यह है कि सयुक्त महाराष्ट्रवालो से अपील की गयी कि वे डेमोक्रेटिक तरीको द्वारा अपना उद्देश्य पूरा करें। अब आम चुनाव का नज्जारा हमारे सामने आता है।

काग्रेस के एक सदस्य श्री जगन्नाथ राव भोसले सयुक्त महाराष्ट्र समिति के एक गुजराती उम्मीदवार से बुरी तरह हारे। आम चुनाव मे काग्रेस को हराकर सयुक्त महाराष्ट्रवालो ने अपना दावा पूरा कर दिया। यह डेमोक्रेटिक तरीके से ही तो हुआ।

लेकिन असल झगडा तो बम्बई का था। बम्बई से विधान-सभाई सदस्यो मे ग्यारह सयुक्त महाराष्ट्र के चुने गये, तेरह काग्रेस के। उस वक्त उन्होने दावा किया कि बम्बई मे जो महाराष्ट्र अल्पमत है, केवल वही सयुक्त महाराष्ट्र चाहता है। बम्बई की शेष आबादी सयुक्त महाराष्ट्र के विरुद्ध है। बम्बई महानगरपालिका के चुनाव में बम्बई की जनता ही स्वय सयुक्त महाराष्ट्र की तरफ की हो गयी, चाहे वह जनता मराठीभाषी हो, हिन्दी अथवा गुजरातीभाषी। चुनाव मे सफलता प्राप्त करने के लिए काग्रेस ने कई हथकण्डे किये, जिसमें से एक था, पडोसी गाँवो को शहर के निर्वाचन-क्षेत्र मे मिला देना। लेकिन इन तिकडमो के बावजूद, जो होना था वही हुआ। सयुक्त महाराष्ट्र समिति बहुमत से आसन पर प्रतिष्ठित हो गयी। उसके नव-निर्वाचित अध्यक्ष श्री दोदे, चौवन के विरुद्ध सतहत्तर वोटो से चुने गये। पहली बार महानगरपालिका काग्रेस के हाथो से छीन ली गयी। इस पर द्विभाषिक बम्बई राज्य के समर्थक श्री अशोक मेहता ने भी यह कहा था कि डेमोक्रेटिक तरीके से लडे गये चुनाव के जो परिणाम निकले, उनसे निष्कर्ष कुछ और निकलता है। अशोक मेहता ने बात साफ नही कही, लेकिन जो बात वह कहना चाहते थे वह यह कि इन चुनाव-नतीजो ने बता दिया कि बम्बई की जनता सयुक्त महाराष्ट्र में बम्बई के विलय को स्वय सक्रिय रूप से चाहती है। डेमोक्रेटिक तरीके से किये गये काम ने यह सिद्ध कर दिया। लेकिन इस डेमोक्रेटिक नतीजे पर सरकार ध्यान नही दे रही है, यह दुख की बात है। बम्बई महानगरपालिका के चुनाव-नतीजे जाने दीजिए। शोलापुर, कोल्हापुर से भी इसी ढग की खबरें मिल रही हैं, जिनसे जाहिर होता है कि आग बुझने के बजाय ज्यादा भडक रही है। परिस्थितियाँ कुछ इस ढग से बन चुकी हैं कि यह जरूरी हो गया कि इसके बारे मे हम कुछ लिखें।

जब सरकार की ओर से यह कहा गया कि द्विभाषिक बम्बई राज्य एक बार आजमा करके देख लो, तो हम उक्त तजवीज के खिलाफ कतई नही रहे, न हमे रहना चाहिए था। केन्द्रीय अधिकार के अन्तर्गत बम्बई शहर के रखे जाने के प्रस्ताव का भी हमने स्वागत किया। किन्तु पिछले साल-छह महीने मे जो घटनाएँ हुईं, उनसे सरकार भले ही चल-विचल न हुई, हमे तो अपने विचार पर पुनर्विचार करने के लिए मजबूर होना पडा। सरकार माने या न माने, इन सब बातो को देखते हुए हमारा तो यह खयाल मजबूत हो रहा है कि वीस बरस बाद पृथक्ता-वादी प्रवृत्ति और बलवान हो जायेगी। हमे तो मद्रास की तरफ़ से आनेवाले

समाचार भी बेचैन किये डाल रहे हैं। जरूरी है कि केन्द्रीय सरकार इस प्रवृत्ति को बदलने के लिए रचनात्मक दृष्टि से काम ले।

ध्यान देने की बात है कि संयुक्त महाराष्ट्र के ग़ैर-मराठीभाषी अब यह चाहने लगे हैं कि संयुक्त महाराष्ट्र जल्दी-से-जल्दी बने। वे मराठीभाषियों की कटुता को दूर करना चाहते हैं और उनसे कन्धे-से-कन्धा भिड़ाकर, नये प्रान्त की स्थापना चाहते हैं। यह एक नयी किन्तु अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रवृत्ति है।

जब महाराष्ट्र ने डेमोक्रेटिक तरीके से अपना विचार प्रकट कर दिया, तो अब यह जरूरी है कि उस लक्ष्य के अनुसार कार्रवाई हो। अब तक की गयी भूल सुधारी जा सकती है। महात्मा गांधी हिमालय-जैसी ऊँची भूल किया करते थे, लेकिन अपने हिमालयन ब्लण्डर को सुधार लेने का नैतिक साहस भी उनमें था। क्या आज किसी में इतना भी साहस नहीं है? ध्यान रहे कि ऐसा न होने पर यह कड़ुआहट एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुँचेगी।

जरूरत तो इस बात की है कि मौजूदा पीढ़ी द्वारा उलझाया गया यह सवाल मौजूदा नेतृत्व द्वारा ही हल हो, क्योंकि एक बार वर्तमान नेतृत्व के जाने पर ये समस्याएँ और भी उलझ जायेंगी।

इस सच्चाई से आँख नहीं मोड़ी जा सकती है कि दक्षिण भारत, खास तौर से महाराष्ट्र, अपने ढंग से केन्द्रीय नेतृत्व को एक चुनौती दे रहा है। केन्द्र ने भी महाराष्ट्र की आत्मा को चैलेंज दे दिया। लेकिन परस्पर चुनौती एक ज़हरीली परम्परा का विकास कर रही है, यह नहीं भूल जाना चाहिए। नतीजा यह होगा कि अगर समय पर इस आग पर पानी नहीं डाला गया, तो यह भय है कि पृथक्ता-वादी प्रवृत्ति और भी बलवान होगी, जो कभी भी देश के लिए कल्याणकारी नहीं कही जा सकती। सांस्कृतिक दृष्टि से देखा जाये तो उत्तरापथ ने दक्षिणापथ को सभी कुछ दिया है, किन्तु दक्षिणापथ ने भी इस ऋण को लौटाया।

यदि उत्तरापथ फिर से दक्षिणापथ की मनीषा पूरी करता है, तो दक्षिणापथ ऋण को दुगुना लौटा देगा। महाराष्ट्र इसका अपवाद नहीं, यह इतिहास के किसी भी विद्यार्थी को मालूम है।

[नया ख़ून, 7 जून 1957, में सम्पादकीय।]

सांस्कृतिक आध्यात्मिक जीवन पर संकट

राष्ट्रीय आयोजन, उन्नति, निर्माण, प्रगति, तान्त्रिक विकास, सहकारिता, औद्योगिक क्रान्ति, वैज्ञानिक युग, कार्यक्षमता, विरोध, सह-अस्तित्व और पचशील की इस भारतीय भूमि में जिस आधुनिक सभ्यता का विकास हो रहा है, उसके बारे में बात करते हुए हमारे एक मित्र ने हमसे कहा, "अगर हम आदमी की ज़िन्दगी देखें तो पता चलगा कि उसे फुरसत ही नहीं है कि वह अपनी एक अलग आध्यात्मिक

दुनिया मे रहे।" मैंने पूछा, "आध्यात्मिक का क्या मतलब है ?" यह प्रश्न जरूरी था, क्योंकि भारत में गांधी और विनोबा का युग भले ही न हो, उनके नाम से रोटी खाने और अच्छे ढंग से पेट पालनेवालों की तसवीरें मेरी आँखो के सामने खिंच गयी। अभी श्री सन्त तुकडोजी मौजूद है, जिनके चरण मिनिस्टर भी पकडा करते थे।

इसीलिए मैंने पूछा, " 'आध्यात्मिक' से तुम्हारा क्या मतलब है ?" वह थोडी देर ठहरा। भौंहें सिकोडी, फिर फैलायी। और फिर गले से नहीं, वरन् अन्त करण से आवाज निकालता हुआ बोला, 'रूहानी जिन्दगी ! ऐसी जिन्दगी, जिसमें मनुष्य अपने से ऊपर उठकर कुछ, कोई बात, जीना और उसी मे मरना चाहता है।" मैंने कहा, "क्यों ? जिसे अपनी लगन लिये जीना और मरना हो उसे दुनिया से क्या मतलब ! वह तो ऐसा कभी भी कर सकता है।"

मित्र ने गम्भीर होकर कहा, "लेकिन उसकी लगन में किसी के प्रति अन्याय तो शामिल नहीं है। यदि माँ-बाप, बाल-बच्चे, सबके प्रति सच्चा और ईमानदार रहना चाहता है, तो उसे अपने को अपने काम-धन्धे के अधीन कर देना पडेगा। उसे सुबह पार्टटाइम वर्क, ट्यूशन, दूसरो के लिए लिखना या और कुछ दूसरे कार्य करने पडते हैं। मतलब यह कि उसे अपना आन्तरिक जीवन जीने का कोई समय नहीं मिलता है। उसकी जिन्दगी रूखी हो जाती है। वह सुबह से लेकर शाम तक काम-धन्धा इसलिए करता है कि वह उसे करने के लिए मजबूर है। लेकिन दरअसल, वह काम से जी चुराता है। वह बेदिली से काम करता है। मतलब यह कि उसका एकमात्र उद्देश्य है बाल-बच्चे पालना। चूंकि राष्ट्रीय औद्योगीकरण के जमाने मे साढे दस से साढे पाँच तक की नौकरी में पर्याप्त आमदनी मुश्किल है, इसलिए वह सुबहें और शामें व रातें बेचने के लिए मजबूर है। मैं पढे-लिखो की बात कर रहा हूँ।।"

उसके विचार मुझे भले मालूम हुए। इसलिए मैंने कहा, "हाँ, यह बात तो सही है।" उसने आगे कहना शुरू किया, "कुछ ही दिन पहले एक जमाना था, जब हमारे सामाजिक जीवन में सत्संग का बडा महत्त्व था। सत्संग से जीवन रसमय हो उठता था। मन में ऊँचे विचारों की भव्यता और हृदय में ऊँची गहरी भावनाओं की गरमी रहती थी। हम किसी एक दोहे या शेर की थाह में उतरकर अथाह हो जाते थे। ऐसे प्रतीत होता था मानो हम खुद के कद से भी ज्यादा ऊँचे हो रहे हों, खुद अपने कन्धों पर ही खडे होकर अपने व्यक्तित्व की आध्यात्मिक ऊँचाई की पहाडी से दुनिया का दृश्य विस्तार देख रहे हो। तब हम यह विश्वास करते थे कि शेर, दोहे, ग़ज़ल, चौपाई या श्लोक में जो बात कही है, वह मात्र काव्य-सत्य नहीं है, वरन् जीने की चीज है, अमल में लाने की बात है। वह मात्र रस नहीं है, वरन् सौन्दर्य भी है, और वह केवल सौन्दर्य ही नहीं, वरन् जिन्दगी जीने का एक रास्ता है, और वह सिर्फ़ रास्ता ही नहीं, वरन् एक मंजिल भी है। लिहाजा हम उस मंजिल या रास्ते या रस या सौन्दर्य या ज्ञान तक पहुँचने की कोशिश करते थे। जी हाँ, सिर्फ़ कोशिश ही करते थे, और इस कोशिश में एक बडा खिंचाव, एक गहरा आकर्षण, और एक गम्भीर सम्मोह था। इस आध्यात्मिक बुनियाद को पाने के लिए कोई सूफियों की तरफ, कोई गांधीजी की तरफ यहाँ तक कि कोई मार्क्स की तरफ़ जाता था, क्योंकि व्यक्ति के संकुचित बन्धनों की क़ुरबानी सभी जगह

जरूरी थी।

"इन बातो को पाने के लिए सत्सग से बडी क्या चीज हो सकती थी। जरूरी नही था कि साधुओ का सत्सग ही सत्सग कहलाये। आतकवादी महापुरुषो का सत्संग भी ऐसी चीज थी। इसका मतलब यह नही था कि कोई काम-धन्धे को कम महत्त्व देता हो, या अपने घरवालो की उपेक्षा करता हो। इसके विपरीत, हृदय के रस से और भीतर के ज्ञान की अनुभूति से काम-धन्धे को भी सहायता मिलती थी। अपना काम-धन्धे के पोर-पोर मे दिल जम जाता था और उसमे रस समा जाता था। आपत्ति और सकट के समय सत्सग-रस के मर्मज्ञ अपनी-अपनी सेवाएँ प्रस्तुत कर देते थे। फुरसत न होते हुए भी सत्सग के लिए सबको समय मिल जाता था और किसी को यह शिकायत न थी कि उसे इनके लिए समय नही मिलता। लोगो मे स्वभाव-रूप से ही उदारता न थी, वरन् मूल्य-रूप से भी उदारता थी। और उदारता को अमल मे लाने के लिए अच्छे लोग तरसा करते थे।

"काम-धन्धा खूब महत्त्वपूर्ण था। काम-धन्धे के सिलसिले मे न्याय बरतना, रिश्वत न लेना, बहुत ईमानदार रहना, मेहनत करना, और लोकप्रिय बनना जरूरी था, और उससे लोगो को बडी सामाजिक प्रतिष्ठा और लोकप्रियता हासिल होती थी। यह सब सत्सग का ही प्रभाव था।

"आज भारत की औद्योगिक सभ्यता के दूसरे पचवर्षीय आयोजन के दूसरे

. . . . . .

आधुनिक सभ्यता का अर्थ यदि आज के युग से है तो आपका कहना गलत है। अगर रवीन्द्र इतने धनी न होते, अथवा आइन्स्टाइन के पास हजारो रुपये बैठे-बिठाये न आते, तो ये दोनो बहुत कम सफलता प्राप्त कर सकते थे।" उसने कहा, "हाँ, लेकिन साधारण लोगो को तब जितनी फुरसत मिला करती थी, उतनी भी आजकल नही मिलती। यही तो रोना है। यन्त्रवाद ने आदमी को बैल बना दिया है।" मैंने कहा, "यन्त्रवाद नही, यह तो समाजव्यवस्था का दोष है।" उसने इतना ही जवाब दिया, "यह तो अपना-अपना मत है।"

उसके विचारो मे कुछ बातें महत्त्वपूर्ण हैं, यह समझकर मैंने आपके सामने उन्हे प्रस्तुत कर दिया।

[नया खून, 28 जून 1957, मे लेखक के नाम बिना प्रकाशित।]

सिंहासनों पर वृद्धों के मनोरंजक योगासन

अगर बेचारे मोलोतोव पद के निकाले जाने के पहले ही रिटायर हो जाते, तो उन्हे इस बुढ़ापे मे बदनामी और बदनसीबी का शिकार नही होना पड़ता। फ्रास के

स्वर्गीय मार्शल पेताँ अस्सीवें साल में बदनाम, पराजित, धिक्कृत और क्या-क्या नहीं हुए !! यह उनके बुढ़ापे की ही सूझ थी कि वे गुप्त रूप से हिटलर से मेल-जोल बढ़ाये रहे, जबकि देश इसके खिलाफ था। अन्त में विश्वयुद्ध में हार हुई और उनकी फजीहत।

इस बुढ़ापे में, महात्मा गांधी-सरीखे बहुत कम लोग हैं जिन्होंने अपने जीवन और मरण में इतनी महान् और व्यापक ख्याति प्राप्त की हो। लेकिन इसका कारण एक यह भी था कि वे किसी पद पर नहीं थे, यहाँ तक कि कांग्रेस से भी उन्होंने पद-वद के मामले में कोई ताल्लुक नहीं रखा। लेकिन ऐसे भाग्यवान और बुद्धिमान बूढ़े बहुत कम होते हैं। आज के अणु-युग में गांधीवाद अपरिहार्य हो गया है।

ऐसे बूढ़े बहुत कम हैं जिन्हें बुढ़ापे में पद की लालसा न हो। वे अपनी मौत की खाई पर प्रभाव के पुल से काम लेना चाहते हैं। *स्तालिन इसी का ज्वलन्त उदाहरण* है। किन्तु मौत होते ही उसकी कीर्ति की हत्या कर दी गयी। लेकिन रूस की मौजूदा प्रवृत्ति को देखते हुए कहा जा सकता है कि उसकी जिन्दगी में ही वह स्वयं अपनी पार्टी में लोकप्रिय नहीं रहा था। यह बुढ़ापे की खास कमजोरी है कि उसमें पद की लालसा तो भयंकर हो उठती है, लेकिन वह नयी पीढ़ियों की नयी तमन्नाओं को पहचान नहीं सकता।

बुढ़ापे में पद की लालसा का एक कारण तो यह है कि मनुष्य अमर बनना चाहता है, चाहे वह बाल-बच्चों के हृदय में क्यों न सही। इसीलिए भारतीय उस बूढ़े को बड़ा मानते हैं, जिसके लिए रोनेवाले बहुत हों। उनके हृदय में तो उसने अपना पद बना ही लिया है। उनके हृदय में पद बनाने के लिए अगर सरकारी पद का उपयोग हो सकता है तो क्या कहना ! फिर तो पद बिलकुल न छोड़ा जाये।

आज की दुनिया में बूढ़ों का राज है। पहले बूढ़े घर की हुकूमत करते थे, अब वे सरकार में हैं। पश्चिमी जर्मनी का चांसलर एडिनॉवर बहुत बूढ़ा है। उसकी तुलना में नेहरूजी जवान हैं। फ्रांस और ब्रिटेन की जल-थल-नभ सेनाओं में बूढ़े मार्शलों का बड़ा रोब है।

हम तो दुनिया से सिर्फ एक विश्व-प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ की दाद देंगे, जिसने बीच बुढ़ापे में पद छोड़ दिया। उसका नाम, मानो या मत मानो, चर्चिल है !! उसने तो पहले ही कह रखा था कि नष्ट-भ्रष्ट होते हुए ब्रिटिश साम्राज्य की अध्यक्षता करने के लिए पैदा नहीं हुआ है। ध्यान में रखने की बात है कि कितने ही बादशाह बुढ़ापे में भी सल्तनत पर जमे रहे तो उनके बेटों ने विद्रोह किया। शाहजहाँ का बुरा हाल आप जानते हैं। चर्चिल शाहजहाँ से ज्यादा सयाना था।

बुढ़ापे की यह कमजोरी बड़ी व्यापक है। वह अपने लिए अधिक-से-अधिक सम्मान चाहती है। यही वजह है कि बुढ़ापे में वर्ड्सवर्थ ने 'दरबारी शायर' बनना स्वीकार किया। वर्ड्सवर्थ की जिन्दगी में ही कवियों की कम-से-कम तीन निचली पीढ़ियाँ काम कर रही थीं—यहाँ तक कि शेली, कीट्स और बायरन समाप्त होकर, टेनिसन और उनसे छोटे ब्राउनिंग भी आगे आ गये। आखिरकार, विक्षुब्ध होकर वर्ड्सवर्थ के विरुद्ध ब्राउनिंग ने अपनी प्रख्यात कविता भी लिख डाली।

और आज नयी दिल्ली में बूढ़े पके-बाल साहित्यिकों का जमघट इकट्ठा हो गया। उनको स्वर्गवास नहीं वरन् दिल्लीवास हुआ। अर्थात् उनकी प्रतिभा की मृत्यु

हो गयी और उन्होंने लिखना-पढ़ना छोड़ दिया। अब वे प्रतिष्ठा और सम्मान के स्वर्ग में हैं, और उस स्वर्ग में वे अधिक-से-अधिक आदर-श्रद्धा और पद के लिए राजनीति करते हैं, सूत्र हिलाते हैं, किन्तु सूत्रधार होने के बदले, वस्तुत , वे विदूषक हो जाते हैं।

बूढ़ों की लड़ाई बहुत मनोरंजक होती है। दिल्ली की साहित्यिक मण्डली में इन लोगों का क्या कहना ! मुश्किल यह है कि दोनों एक-दूसरे की इतनी जानकारी रखते हैं कि जब गालियाँ देने पर उतर आते हैं तब इस बात का ध्यान भूल जाते हैं कि मैं मैथिलीशरण गुप्त हूँ, और मुझे इतना नीचा नहीं उतरना चाहिए ! दूसरा बूढ़ा उन्हें चिढ़ाने के लिए उनके नाम की व्याख्या इस प्रकार करता है—'मैं-थैली-शरण-गुप्त'। बिहार के दो बूढ़ों की लड़ाई प्रसिद्ध है, वे हैं श्रीकृष्ण सिन्हा और अनुग्रहनारायण सिंह। बेचारे अनुग्रहजी हमेशा के लिए पूरी पृथ्वी व बिहार की राजनीति से जल्दी यानी इकहत्तरवें साल रिटायर हो गये। नहीं तो और मजा आता।

यह प्रसिद्ध बात है कि दिल्ली के बूढ़ों और एक गांधीवादी बूढ़े विनोबा में बहुत ज्यादा खटक गयी है। उनमें नहीं बनती। बन नहीं पाती। दिल्ली के बूढ़ों ने मनाने की काफी कोशिश की। लेकिन विनोबाजी ने दिल्ली के बूढ़ों से डपटकर कह दिया कि वे राजनीति से रिटायर हो जायें।

विनोबाजी का यह भयानक वक्तव्य दिल्ली पर बम के रूप में फट पड़ा। भला इतनी बड़ी जुरअत ! ! बूढ़ों को उनकी गद्दियों से पृथक् करने की तजवीज ! ! भयानक, भयानक ! ! किन्तु इससे केरल में कम्यूनिस्टों की बन आयी। मसीहा के पद पर विनोबाजी का आसन तो जम ही गया है ! ! दिल्ली के बूढ़े यह तो कह ही नहीं सकते कि विनोबाजी रिटायर हो जायें, क्योंकि वे किसी पद पर नहीं हैं।

बूढ़े आदर-सम्मान और शक्ति के लाभ में यह सोच नहीं पाते कि उनसे आयु में छोटे जिम्मेदारी उतनी ही अच्छी तरह सँभाल सकते हैं जितने कि वे स्वयं। जब सरदार वल्लभ भाई पटेल बीमार होकर दिल्ली से बम्बई गये, तो अपने साथ अपने मन्त्रालय के महत्त्वपूर्ण काग़ज़ात भी साथ लेते गये। उन्हें पूरा यक़ीन था कि सम्बन्धित मामले इतने महत्त्वपूर्ण हैं कि उनके बग़ैर सुलझ नहीं सकते ! उनकी मृत्यु के बाद वे सब हल कर लिये गये ! !

लेकिन, मुश्किल यह है कि वृद्धों के राज में सबकुछ उनके टेस्ट और अभिरुचि से चलता है। उदाहरण के लिए, हिन्दी भाषा ही लीजिए। पारिभाषिक शब्दावली बनाने के नाम पर उन्होंने ऐसे-ऐसे शब्द ढलवाये जिनका उच्चारण भी कठिन [illegible] के लिए भू-राजस्व-संहिता, आदि-आदि। अब मजा [illegible] दुरुपयोग करके अपनी-अपनी रुचि के [illegible] की सरकारी हिन्दी का जानकार मध्य-प्रदेश की सरकारी हिन्दी के शब्दों को आसानी से नहीं समझ सकता। केन्द्र की सरकारी हिन्दी भी अलग चीज़ है। लेकिन बूढ़ों को यह नहीं सूझा कि जो शब्द हिन्दी में सदियों से प्रचलित हैं उनकी जगह दूसरे शब्द बनाने की ज़रूरत नहीं।

सम्मानसूचक पदवियाँ देते वक्त 'बहादुर' शब्द से बूढ़ों को शायद आपत्ति है इसलिए कि वह अहिंसा का सूचक नहीं है ! ! हमको तो यह समझ में नहीं आया कि

पद्मभूषण कहते किसे हैं, और इन दो शब्दों का कहाँ क्या किस तरह जोर है ! !
वैसे ही शब्द है भारतरत्न ! ! यह वह पदवी है, जो सर्वश्रेष्ठ समझी गयी । लेकिन हम देखते हैं कि ऐसी पदवियाँ तो पुरानी पण्डित सभाओं ने न मालूम कितनों ही को दे रखी हैं।

अगर पदवियों के लिए जोरदार संस्कृत शब्दावली की आवश्यकता थी तो वह भी मिल सकती थी। अगर 'बहादुर'-जैसे पुराने परम्परागत शब्दों पर एतराज था, तो प्राचीन आर्यों द्वारा सामन्तों, पण्डितों और कवियों को दी गयी उपाधियों का कम-से-कम अध्ययन तो किया जाता ! लेकिन बूढ़े हैं कि हमारे लिए कहीं-कहीं माननीय न होते हुए भी सम्माननीय हैं !

खैर, अभिरुचि का सवाल इतना बड़ा नहीं है, जितना इस बात का कि उन्हें नयी पीढ़ियों की विशेष हालतों, उनकी आकांक्षाओं, उनकी प्रवृत्तियों और विचारों का ज्ञान नहीं होता, और होता है तो बहुत ही विचित्र और विकृत रूप में।

इसमें वृद्धों का इतना दोष नहीं है जितना उनके बुढ़ापे का। उनके खयाल, उनके [illegible] ।

नेहरू [illegible]

बूढ़े बहुत धाड़ होते हैं।

[illegible] कि अपने पद से वृद्धा- [illegible] नयी परिस्थितियों में [illegible] क्या विनोबा की वाणी सुनकर दिल्ली के बूढ़े रिटायर होना चाहेंगे ! ! असम्भव ! असम्भव ! ! वे सिंहासनों पर बैठकर देश की सेवा करते-करते मर जाना पसन्द करते हैं ! !

[नया खून, 12 जुलाई 1957, में लेखक के नाम बिना प्रकाशित।]

साहित्य के काठमाण्डू का नया राजा

श्री ब्रिजलाल बियाणी ने [illegible] के हिन्दी साहित्य सम्मेलन का अखाड़ा मार दिया। वे अध्यक्ष चुन लिये गये। श्री भवानी प्रसाद तिवारी, जो प्रान्त के प्रतिष्ठित साहित्यकार हैं, सकुशल हार गये। हमारा खयाल है कि अगर श्री तिवारी कम-से-कम साहित्यकार होते और ज्यादा-से-ज्यादा मन्त्री होते तो वे अखाड़ा जीत जाते। पर वे दोनों नहीं हैं। तिवारीजी की हार से जब यह सिद्ध हो गया कि प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन सा[illegible] सा[illegible] की कुटिया ढहाकर साहित्य सम्मेलन का प्रासाद निर्माण करने में सफल जरूर होगा।

हमारा श्री वियाणी से अनुरोध है कि वे अब प्रान्तीय विज्ञान एकेडेमी, मध्य-प्रदेश कला निकेतन, आदि नयी संस्थाएँ कायम करें और उसके अध्यक्ष पद के लिए झूठमूठ का चुनाव लड़ें और जीत जायें। हम बियाणीजी को इस बात की याद दिलाने के लिए प्रवृत्त हैं कि अभी उन्हे डॉक्टरेट की डिग्री मिली नही है। वे शीघ्र ही इस ओर कदम उठायें। सागर यूनिवर्सिटी विद्यार्थियो का कत्लेआम भले ही कर डाले, मन्त्रियों को डॉक्टर की डिग्री मुफ्त प्रदान करने में उसमें कोई झिझक नहीं देखी गयी, जैसा कि मिश्रजी के बारे में देखा जा सकता है। बियाणीजी मध्य-प्रदेश के मन्त्रिमण्डल की स्वर्ण-परम्पराओं का पालन कर रहे हैं, यह बडी खुशी की बात है।

पहले तो, मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष पद के लिए श्री बियाणीजी का नाम सुनकर हमें आश्चर्य का एक धक्का लगा। और जब यह देखा कि अध्यक्ष पद के दूसरे उम्मीदवार अपना नाम वापिस लेकर श्री बियाणीजी के लिए खुली जगह कर रहे हैं, तो पता चला कि उन्हें असगत सम्मान दिलवाने का श्रेय हमारे तथाकथित हिन्दी साहित्यक स्वय अपने कन्धो पर चढाना चाहते हैं।

हमे इस बात का खेद है कि आज बियाणी की आलोचना करने के लिए मजबूर होना पड रहा है। हम यह सोचते थे कि अपने साहित्यिक व्यक्तित्व और तत्समान राजनैतिक व्यक्तित्व के मँझोले कद और ठिगने आकार को देखकर, श्री बियाणीजी हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष पद से स्वय इनकार कर देंगे।

हम बियाणीजी से यह पूछना चाहते हैं कि साहित्य-सेवा के नाम पर एक लेखक की हैसियत से उन्होंने क्या किया ? हम बियाणीजी के साहित्य से परिचित हैं, हम बियाणीजी की साहित्यिक लेखन-शैली से परिचित हैं, और हमने बियाणी के साहित्यिक व्याख्यान भी सुने हैं।

गोल बातों के हवाई विस्तार के अतिरिक्त, और सूक्ष्मता के नाम पर कुछ भी कह जाने अथवा लिख जाने की धीमी अतिभावुक नाटकीय शैली के सिवाय, बियाणीजी के पास कुछ भी नही है। कहने को उनक पास जो 'कुछ भी नहीं' है वह जो 'कुछ है' से ज्यादा व्यवस्थाबद्ध और सुथरा है। उनके 'कहने-को-कुछ-भी-नही-पन' की साहित्यिक अभिव्यक्ति(जो व्याख्यानो मे फटी पडती है) को देखकर, लोग उनकी उस गति-विधि को (कत्थक नृत्य के समान ही) भाषण-नृत्य की सज्ञा देते हैं ! !

किन्तु, बियाणीजी के साहित्य-सम्बन्धो का एक सराहनीय पहलू भी है। उनका मासिक-पत्र **प्रवाह** उदार दृष्टिकोण और सभी मत विचारो के प्रति समान रूप से आदर रखनेवाला एक मात्र पत्र है। हम इस तथ्य को बियाणीजी के स्वाभाविक औदार्य और लोक-सग्रह की प्रवृत्ति का परिचायक मानते हैं। और ऐसे पत्र के सम्पादन में हस्तक्षेप न करते रहने की उनकी नीति का समर्थन करते हैं।

किन्तु इस एक मात्र महत्त्वपूर्ण कार्य से कोई व्यक्ति हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के अध्यक्ष पद के लिए योग्य नहीं कहा जा सकता। बियाणीजी ने हिन्दी-साहित्य को वस्तुत: कुछ भी ठोस प्रदान नहीं किया है। **कृष्णायन** लिखकर, कम-से-कम पण्डित द्वारिका प्रसाद मिश्र साहित्यिक विवाद के विषय जरूर हो गये थे। साथ

हाँ, यह भी सच है कि उनके कृष्णायन को मध्यप्रदेश के कुछ साहित्यिक क्षेत्रो मे आदर की दृष्टि से देखा जाता था। फिर भी, पण्डित द्वारिका प्रसाद मिश्र ने हिन्दी साहित्य सम्मेलन की गद्दी पर बैठने का अनुचित और असगत कार्य नही किया। राजनीति के खिलाडी को साहित्य-क्षेत्र के ऐसे महत्त्वपूर्ण पदो पर बैठने का हक भी हासिल नही है।

हमने राजनीति मे, बडी हद तक, वियाणी का समर्थन किया था—और वह भी बहुत नाजुक मौको पर। हमारा अभिप्राय केवल यही था कि जिस मन्त्रिमण्डल मे कन्नमवार, दीन दयाल गुप्ता, शकरलाल तिवारी और नरेशचन्द्र सिंह-जैसे 'विद्वान' लोग बैठ सकते हैं, वहाँ वियाणी का व्यक्तित्व नि सन्देह सबसे ऊँचा है। हमने निर्भीकता और स्पष्टतापूर्वक वियाणी का समर्थन किया, जिसके कारण हम बहुत बदनाम भी हुए। लेकिन जब हमने यह देखा कि हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष पद के लिए खडे होकर, श्री वियाणी अपनी सीमाओ का अतिक्रमण कर रहे हैं तो निश्चय ही हमे अपनी आलोचना की गदा उठाने के लिए मजबूर होना पडा।

साहित्य में पूंजीपति

लेकिन सबसे मजेदार बात यह है कि म. प्र. हिन्दी साहित्य सम्मेलन के कर्णधार लोग ही वियाणीजी का इस प्रकार 'सत्कार' करने के लिए क्यो अकुला रहे थे। जी हाँ, हिन्दी साहित्य सम्मेलन यह सोचता है कि साहित्य और साहित्यिको की मजिल है चाय-पान, गोष्ठी और हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के लिए एक भवन। उस उद्देश्य की पूर्ति के लिए लाखो की रकम की जरूरत है। सो, हिन्दी सा. सम्मेलन ने पूंजीपतियो की एक प्रान्तीय जमायत इकट्ठी की और यह गिनने लगे कि कितनी नफरी हैं। मालूम हुआ कि इसमे गोपालदास मोहता तो है ही नही। गोपालदास मोहता से (हि. सा. स. के लिए भवन निर्माण को दृष्टि मे रखें) रकम उधेडने के लिए, (हमारे बेताब दोस्त) गोंदिया के मनोहर भाई पटेल को स्वागताध्यक्ष का जामा पहनाया गया। रवीन्द्रनाथ ठाकुर वट-वृक्ष के नीचे साहित्य-गोष्ठियो और समारोहो मे विश्वास रखते थे। हमारे हि. सा. स. के लोग भवन-निर्माण मे ज्यादा विश्वास रखते हैं, बनिस्बत कि साहित्य-निर्माण के और इसलिए कि धरती माता की गोद से पूंजीपतियो की पुरानी मासल गोद ज्यादा पसन्द करते हैं।

अपनी इन महत्त्वाकाक्षाओ के रास्ते पर चलकर ही, काग्रेस पूंजीपतियों की जातीय भ्रष्टाचारी सस्था हो गयी। हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने काग्रेस की विगत क्रान्तिकारी लोक परम्पराओ का अनुसरण तो नही किया, वरन् उसकी बुराइयो के रास्ते पर चले चलने का गम्भीर निर्णय जरूर कर लिया।

बडे आदमियो मे घूमने के शौकीन, हि. सा. स. के कर्णधारो ने क्या कभी यह सोचा कि साहित्य को मध्यप्रदेश की पिछडी हुई कष्ट-ग्रस्त जनता की सेवा मे लगाया जाए ? क्या हि. सा. स. ने कभी इस बात का जोरदार प्रचार किया कि मध्यप्रदेश की जनता की सही जिन्दगी के वास्तविक चित्रण को साहित्यिको द्वारा प्रधान लक्ष्य बनाया जाना चाहिए ?

अगर हि. सा. स. के कर्णधार प्रान्तीय अखबारो को पढ़ते हो तो उन्हे मालूम

होगा कि मध्य प्र के लुटे-पिटे किसानो, जनपद ग्राम पचायत के मास्टरों, छोटे-छोटे दुकानदारो, बीडी मजदूरो, खदान मजदूरो, आदिवासियों का जीवन कितना कष्टपूर्ण और भयानक हो गया है। क्या उनकी साहित्यिक कलम इस जनता के जीवन-चित्रण के लिए कभी अकुलायी? कभी यह सोचा कि गरीब मध्यवर्ग के उप-सम्पादको, हाई स्कूल के मास्टरो, म्युनिसिपल पाठशालाओ के टीचरो, कम्पाउण्डरो, क्लर्को और किरानेवालो की जिन्दगी किस कदर खराब उदास कठोर और साँवली हो गयी है? क्या उनकी कलम जनता के लिए साहित्य निर्माण के हेतु उठी? क्या साहित्यिक लक्ष्य का प्रचार किया गया? नही! नही! नही!

कहने दीजिए कि हि सा स का जनता से कोई ताल्लुक नही। भारतीय सस्कृति और हिन्दी साहित्य के नाम पर चलनेवाली वह एक नकली साहित्यिक

'जनता के लिए साहित्य' का आन्दोलन उठाये और म्युनिसिपल कन्दील के नीचे, बरगद के तले, और जहाँ-जहाँ उन्हें जगह मिल सके वे आपस म मिलें और यह तय करें कि उन्हें जनता का जीवन चित्रण करना है। कहानी, नाटक, उपन्यास, लोक गीत, मुक्तक-गीत, खण्डकाव्य, लेख, निबन्ध, रिपोर्ताज, स्केच, आदि लिखें

अपनी कलात्मक अभि-

ेली, छत्तीसगढी, आदि

रात कोशिश करते रहें।

ज उठें। साथ ही, शीघ्र ही किसी प्रकार सारे प्रान्त के जन-सेवी जन-द्रष्टा लेखको की एक छोटी सी परिषद बुलायी जाय, जिसमें निर्णयात्मक रूप स मध्यप्रदेश साहित्यिक आन्दोलन की दिशा मोड दी जा सके।

[**नया खून** मे प्रकाशित सम्पादकीय।]

अनुशासन का भोंथरा परशु

केवल अनुशासन के कुठार के प्रयोग से काग्रेस के भीतर का विरोध नही दबाया जा सकता और एकता पैदा नही की जा सकती। एकता टूटती ही इसलिए है कि लूट की एकता अथवा त्याग की एकता प्राप्त नही हो रही है। आज साधारण काग्रेस-जन ने पहले-जैसा त्यागी रहकर निर्द्वन्द्व होना स्वीकार कर लिया है। बहुतसो ने सन्त-गीरी का बाना धारकर बुराई से शिष्ट समझौता कर लिया है। वे अजातशत्रु बनने की कोशिश कर रहे हैं। दूसरी ओर, समाज के भ्रष्टाचारी वर्ग काग्रेस मे प्रवेश कर चुके हैं। अनेक काग्रेस समितियो पर आज उनका प्रभाव है। उनके मन

से स्कीमे बनती हैं, बिगडती हैं, अमल मे लायी जाती हैं या ठण्डी पड जाती हैं। ऐसे लोगो को काग्रेस कैसे निकालेगी ?

यह है बुनियादी सवाल। काग्रेस मे अनुशासन प्रस्थापित करने का प्रश्न इस सवाल से जुडा हुआ है। ध्यान रहे कि समाज मे बहुतरे दबाव-गुट पैदा हो गये हैं। मन्त्रिमण्डल इन दबाव-गुटो को सन्तुष्ट करने की नीति अपनाता है। ये ही दबाव गुट काग्रेस सगठन पर भी अधिकार करने जा रहे है, काफी हद तक कर चुके हैं।

ऐसी स्थिति मे जब वे काग्रेस के अन्दर भी हैं और बाहर भी, तो उन्हें चुप रखने के लिए, साथ ही अगले चुनावो मे उनसे पैसा लेने के लिए, तथा वोट लेने के उद्देश्य से उनके प्रभाव को उपयोग करने के वास्ते, मन्त्रिमण्डल उनके चक्कर मे रहता है। ये दबाव-गुट स्वय जनता नही है, जनता से बहुत दूर हैं। तो जिन काग्रेस-जनो का सम्बन्ध जनता से है, वे या तो हाथ-पर-हाथ धरे चुप बैठे रहे और विधायक कार्य करते हुए राजनीति से पेंशन ले लें, या वे उद्धत और निर्भय होकर मन्त्रि-मण्डल के रवैये का विरोध करें। इसके अलावा उन्हे क्या मार्ग है ? अगर ऐसे लोग पार्टी ह्विप की आज्ञा नही मानते और चोरी-छिपे अन्य पक्षो के सदस्यो को वोट दे देते हैं, तो उसका मतलब ही यह है कि उन्हे काग्रेस के नैतिक चरित्र पर विश्वास नहीं है।

लेकिन जब कभी ये दबाव-गुट आपस मे टकरा जाते हैं, तब एक-दूसरे के खिलाफ विष-वमन होन लगता है। जब तक हो सके तब तक दबाव-गुट काग्रेस के भीतर घुसकर वहाँ से अपना करता-कराता है, लेकिन जब वहाँ रहना असम्भव करा दिया जाता है तब वह विरोधी दलो के पास पहुँचता है, उन्हे उत्साहित करता है। कभी-कभी एक ही दबाव-गुट सरकार के बाहर और भीतर काग्रेस के बाहर और भीतर, दोनो जगहो से एक ही साथ पहल करते हुए अपना काम कराता है। दबाव-गुटो की ही यह महिमा थी कि एक-न-एक दबाव गुट से केन्द्रीय वित्त मन्त्रियो पर प्रहार होते रहे। अगर एक बार बिडला न एक वित्त मन्त्री मारा, तो दूसरी बार टाटा ने बिडला के चहेते वित्त मन्त्री को मार दिया।

इसीलिए आजकल गुटों का महत्त्व पहले से अधिक बढ गया।

क्या काग्रेस इन भ्रष्टाचारी दबाव-गुटो से अलग हट सकती है ? यही वह सवाल है जिसे काग्रेस-नेतृत्व टालता आ रहा है। काग्रेस की प्रतिष्ठा की हानि की जो घटनाएँ होती जा रही हैं वे तब तक नही रुक सकती, जब तक काग्रेस नैतिक रूप से शुद्ध नही होती और जनता की भावनाओ का सही प्रतिनिधित्व नहीं करती।

[नया ख़ून मे प्रकाशित सम्पादकीय।]

दीपमालिका

मध्य एशिया के सूखे बंजर पहाड़ो की तलहटियो मे भूरी गरम जमीन के विस्तारो और रेगिस्तान के प्रसारो को पार करती हुई एक जाति—एक गरीब जाति सदियो से चरागाहो की तलाश मे घूमा करती थी। उनके तन पर के फटे कपडे, सिले हुए चिथडो से बने हुए तम्बू, भेडो और घोडो का छोटा-सा समूह और जिन्दगी के लिए जरूरी थोडा-स सटर-पटर सामान—बस इतना ही उनका धन था। जहाँ भी जरा-सी भी हरियाली मिले—चाहे कँटीली झाडियाँ ही क्यो न हो—वहाँ वे रुक जाते और उनके पालित पशु अपना भोजन प्राप्त कर लेते। उनके दूध से उस जाति का खून बनता, जिन्दगी चलती। लेकिन ज्यादातर समय, बगैर भेडो के दूध के ही गुजरता। वे गरीब पशु अगर अधिक दिनो तक दूध न दे पाते तो मारे जाते। उनका ऊन तो उस जाति के व्यापार का अग था ही। उनका मास उस जाति के पेट की भूख को शान्त करता। किन्तु अपने प्यारे पालित पशुओ की हत्या का जब-जब प्रसग आता, तब-तब उस जाति के बूढे घवडाकर यह कहने लगते, 'अब हम पर कोई भयानक सकट आनेवाला है।' क्योकि सच्ची बात तो यह थी कि पहाडियो के सिलसिले मे ढँकी हुई आँखो से ओझल जमीन मे कम-से-कम कँटीली झाडियाँ तो मिल ही जाती थी, और सरदी मे जमी हुई बर्फ मे गरमी की शुरुआत मे जल की धाराएँ भी बह-बहकर एकाध जगह इस प्रकार एकत्र हो जाया करती कि वे पोखर तो बन ही जाती थी। लेकिन जब सूखा पड जाता, पशु तडप-तडपकर भूख-प्यास से मर जाते, तो वह जाति भूख और मौत के भयानक सपनो को देखने लगती। वस्तुत, वे उस जाति के सपने नही थे, उसकी वास्तविकता थी।

बच्चे अपने सपनो मे दूध की नदियाँ देखते थे, जिसके किनारे बैठकर वे अपनी अजुली से दूध पीते। नौजवान रात को नीद मे पहाडियो से घिरी हुई झीलें देखते जिनके रेशमी नीले पानी मे वे और उनकी सुन्दर मनभावन प्रियतमाएँ साथ-साथ क्रीडा करती हुई प्रेम की बातें कर रही है। और बडे-बूढे अपने चिन्ताग्रस्त सपनो से चौंक-चौंक उठते। उनके सामने आगे के सकटो का सामना करने की सम्भावित योजना घूमने लगती।

और, तब वे शाम को अपने कबीलो के सामने एक कहानी कहने लगते। कहानी का साराश यह था कि उनकी जाति एक अभिशप्त जाति है। उसे किसी बहुत पुराने जमाने मे किसी क्रूर बेवकूफ देवता ने शाप दे दिया था कि जाओ, तुम पानी, हरियाली और सुखी जीवन के लिए तरसते-भटकते फिरोगे। लेकिन उसी देवता के दल के विरोधी दल के किसी पुण्य देवता ने उस क्रूर शक्ति के विरुद्ध क्रोध करके उस जाति को यह वरदान भी दिया था कि जाओ, तुम्हारे इन पहाडो-पहाडियो, सूखे मैदानो और रेगिस्तानो के क्षितिज के उस पार छुपा हुआ एक स्वर्गलोक भी है। उस स्वर्गलोक को तुम खोज निकालो। वह स्वर्गलोक तुम्हे जरूर मिलेगा, इसलिए कि वह स्वर्गलोक इसी धरती पर है, तुम्हारे आस-पास ही है, सिर्फ खोज निकालना तुम्हारा काम है। तब से अब तक यह जाति इस स्वर्गलोक की तलाश मे ही घूम रही है। आज सैकडो सदियो से हम उसी आश्चर्य-लोक की तलाश मे ही घूम रहे हैं। और घूमना पडेगा।

इस कहानी को सुनते सुनते नौजवानों के कान पक गये। किन्तु उनमें से जो कवि और गायक थे, उन्होंने इस कहानी को और आगे बढ़ाया। उसमें न मालूम कितनी ही नयी करुण कथाएँ जुड़ गयी, कई वीर गाथाएँ आ मिली, कई दार्शनिक प्रसग आ मिले। और वह छोटी-सी कहानी लोगो की जबानी एक महाकाव्य बन गयी। महाकाव्य बनने के लिए उसे सदियाँ लगी, और सदियो के अनुभव उस कहानी मे गूँथकर जगमगाने लगे। सदियो ने जिन्दगी बदल दी, जिन्दगी ने सदियाँ बदल दी।

और, तब सदियो बाद, एक दिन किसी रेगिस्तानी पहाड़ी की तरफ से ऊँट पर बैठे हुए दो नौजवान आते दिखायी दिये। उनके चेहरे ठीक उसी जाति के चेहरो-जैसे ही थे। उनकी बोली भी थोड़ी-सी भिन्न होती हुई भी मिलती-जुलती ही थी। जब हमारे इन नौजवानो ने उनको देखा तो उनकी हत्या के इरादे से उन्होंने अपनी बन्दूकें चढ़ा ली। लेकिन उन मेहमान नौजवानों के 'शान्त-शान्त' का भाव प्रकट करते हुए उठे हाथ और मुस्कराते हुए चेहरो को देखकर बन्दूकें नीची कर ली गयी और तब उन लोगो की जो प्रारम्भिक बातचीत हुई उसका साराश नीचे दिया जा रहा है।

आगन्तुक नौजवानो ने कहा—हम फ़लाँ जगह से, जो यहाँ से तीन सौ मील दूर हैं, फलाँ नदी का बहाव मोड रहे है, और हम चाहते हैं कि वह नदी इन रेगिस्तानी मैदानो मे से होकर गुजरे। हम यहाँ जमीन की प्राकृतिक स्थिति, ताप-मान, आदि बातो का वैज्ञानिक अनुसन्धान करने के लिए आय है, और हमारे साथ करीबन पचास आदमी व तीन ट्रकें भी है, जो यहाँ महीने-भर रहेंगे। भोजन आदि की व्यवस्था भी हमारे पास है और हम तुम्हे कोई तकलीफ न होने देंगे। ट्रकें भी पीछे से आती होंगी।

नदी के बहाव को मोडने की बात सुनकर नौजवानो ने पहले तो विश्वास नही किया, लेकिन जब ट्रकें, खाद्य-सामग्री, मशीनें, साहित्य, ग्रामोफोन, रेडियो, आदि देखे, और उन आगन्तुको के दन का आपसी व्यवहार देखा, तब उन्हे सन्तोष हुआ। उन्होंने पाया कि वह जबानी गीतात्मक महाकाव्य कुछ विभिन्न और भव्य वृत्तान्तो से समृद्ध होकर लिखित और मुद्रित हो गया है, कि उनकी ही भाषा कुछ विभिन्न होकर लिखित और मुद्रित हो गयी है। इसका फल यह हुआ कि यह हमारी सारी जाति विश्वास और निष्ठा के साथ नदी की धारा को मोडने के लिए आवश्यक जमीन की खुदाई के सिलसिलो म कार्यरत हो गयी। धीरे-धीरे उन्हे नया अनुभव और नयी कार्यशक्ति प्राप्त हुई। नयी दृष्टि और नया विवेक मिला।

और फिर एक दिन उनका देश भी सरसब्ज हो गया। वहाँ विषमता न थी, भूख न थी, प्यास न थी। प्रेमी अपनी प्रियतमाओ के लिए सुघर वस्त्र खरीदते थे और बूढे चैन मे अपनी जाति के बीते हुए इतिहास को सुनाते थे। लेकिन नौजवान यह जानते थे कि यह स्वर्गलोक अपनी मजदूरी स, अपने श्रम से, बनाया जाता है, और अपनी इच्छाओ का विरोध करनेवाले का दमन कर बनाया जाता है।

आगन्तुक उन्नत जाति के मेहमानो के महाकाव्य मे यह लिखा था कि किस प्रकार जब उन्होंने समाज के शोषको को खत्म किया और नयी व्यवस्था क़ायम की, सत्ता अपने हाथ मे ली, और नवीन वैज्ञानिक उपायो से पशु-पालन, खेती और कारखाने चलाने लगे, तब कही वे नदी के बहावा को मोड सके, नये नगर, विश्व

के नये विद्या-केन्द्र स्थापित कर सके, देश को उन्नत किया, गरीबी, भूख-प्यास, पारस्परिक शोषण को सदा के लिए खत्म कर दिया। ठीक यही बात हमारी जाति के महाकाव्य मे न थी।

हमारे हिन्दुस्तान की जनता भी इसी प्रकार आज स्वर्गलोक के सपने देखती है, किन्तु फिलहाल वह केवल अपने दुख दर्द की कराह के अलावा निर्णायक रूप से कुछ कर नही पा रही है। निश्चय ही, यदि उसे भारत को स्वाभाविक मानव जीवन का स्वर्गलोक बनाना है, तो शोषण और अत्याचारो के पहाडो को चीरकर, नीचे के रेगिस्तानो मे अपार श्रम से नयी प्राण धारा बहानी होगी। तभी हमारे जीवन मे मानवोचित स्वाभाविकता और समृद्धि आ सकती है।

नयी दिवाली के दीपो का पुण्य प्रकाश हमे उसी ओर अधिकाधिक प्रेरित करेगा, यह हमारा विश्वास है।

[नया खून मे प्रकाशित सम्पादकीय।]

भारत का राष्ट्रीय संग्राम

आज से ठीक एक सौ साल पहले भारत मे विदेशी साम्राज्यवाद के विरुद्ध जो रक्तरंजित राष्ट्रीय संग्राम हुआ, उसने सारी दुनिया मे एक तहलका मचा दिया था। दुनिया की छाती पर मूंग दलनेवाले ब्रिटिश साम्राज्य को काट छाँटकर फेंक देने की जो बहादुर कार्रवाई इस मुल्क मे हो रही थी, उसकी तरफ दुनिया के तमाम स्वाधीनता प्रेमी लोग एकटक देख रहे थे। उठते हुए जनतन्त्रवाद के तत्कालीन दीपस्तम्भ—संयुक्त राज्य अमरीका—के अखबार इस घटना की ब्रिटिश व्याख्या का खण्डन करते हुए मार्क्स-जैसे निर्वासित-निष्कासित विचारक को इस घटना पर लिखने के लिए आमन्त्रित करते थे। हिन्दुस्तान के बारे मे उसने जो कुछ लिखा है वह सब उन दिनो अमरीकी अखबारो के लिए ही था, खास तौर पर न्यूयार्क हैरल्ड ट्रिब्यून के लिए।

वैसे ही तत्कालीन ज़ारशाही रूस के बहुतेरे विचारको ने भी भारत की इस महान् घटना की तरफ ध्यान दिया। उनका उद्देश्य मुख्यत इस व्याख्या का खण्डन करना था कि केवल धार्मिक अन्धविश्वासो पर आघात के फलस्वरूप, न कुछ तो बात पर, भारतीय ग़दर आरम्भ हुआ। रूसी जनतन्त्री आन्दोलन के एक प्रसिद्ध विचारक गेब्रोल्युबोव ने इस विषय पर कितने ही निबन्ध लिखे।

देनेवाले अकादमीशियन अब भारत की तलवार पर भी भरोसा करने लगे।

इन्ही दिनो पुर्तगीज गोआ के भारतीय ईसाई पादरियो ने पुर्तगाल मे गोआ-

मुक्ति-आन्दोलन चला रखा था। गदर से पाँच साल पहले लिस्बन की पार्लमिण्ट मे रेवरेण्ड फादर जेरेमियाह मेस्कारिह्वास ने गोआ की स्वाधीनता की पुकार की थी। भारत का स्वाधीनता आन्दोलन इतना जबर्दस्त था कि आखिर लिस्बन के एक गोआनीज़ लेखक फ्रासिस्को लुई गोमेज ने इस आन्दोलन पर एक उपन्यास लिखा, जिसका नाम है आस ब्राह्मनोज़। उपन्यास सन् अठारह सौ बासठ मे लिस्बन मे प्रकाशित हुआ, जिसका एक पात्र कहता है—अलेक्जेण्डर, तैमूरलग, डूप्ले और क्लाइव के हाथ मे पैसो की भाँति आती और जाती हुई मनु की यह मातृभूमि अपने प्राचीन स्वामियो के हाथ मे पहुँच जायेगी। भारतीय पैगम्बर स्वाधीनता का सन्देश दे रहे हैं।

प्रथम स्वाधीनता सग्राम की तिथि हमारे इतिहास मे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। उसके कुछ ही वर्ष पहले, मद्रास, बम्बई और कलकत्ते मे आधुनिक विश्वविद्यालय खुल चुके थे। और राजा राममोहन राय यूरोप पर प्रकाण्ड भारतीय प्रतिभा का रोब गालिब कर चुके थे। सारे यूरोप मे विद्वत्तापूर्ण बातचीत और बहस का विषय बने हुए इस भारत ने जब तलवार चमकायी तब अग्रेजो के सभी यूरोपीय और अमरीकी दुश्मन बेहद खुश हो गये और खुश क्यो न होते!

भारत के खून से ताकतवर होकर अग्रेजी पजे ने दुनिया के एक बहुत बडे हिस्से को अपना गुलाम बना रखा था। भारत जब स्वाधीन हुआ तो दुनिया भर मे अग्रेज-पजा ढीला हो गया। दुनिया मे पहली बार, इग्लैण्ड मे जो पूँजीवादी औद्योगिक क्रान्ति हुई, वह भारत की भयानक लूट और व्यापक शोषण से इकट्ठा की गयी पूँजी के बिना बिलकुल असम्भव थी। ब्रिटेन म खडे हुए कारखानो, मिलों और खदानो को भारत ने अपना खून ही नही, मास और मज्जा भी दी है।

सन् अठारह सौ सत्तावन का प्रथम भारतीय राष्ट्रीय सग्राम ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा भारतीय अर्थतन्त्र पर किये गये क्रूर अत्याचारो के विरुद्ध होने के साथ-ही साथ, जनता के उस व्यापक असन्तोष के फलस्वरूप था, जो कम्पनी द्वारा खुली और निर्दय लूट के सबब उग्र रूप से जनता के सभी वर्गों मे फैल गया था। वह केवल कुछ सामन्तो, कुछ कमज़ोर राजाओ और असन्तुष्ट नवाबो की बगावत नहीं थी, वरन् जनता के दिल की आग से पैदा हुई थी। चूँकि उस वक्त भारत का राजनैतिक नेतृत्व देशभक्त लडाकू राजाओ, नवाबो और सरदारो के हाथ मे था, इसलिए उसे केवल कुछ ही लोगो की फौजी कारंवाई कहकर टाला नही जा सकता।

प्रश्न उठता है कि उन दिनो ऐसी कौन-सी भयानक घटना हुई थी, जिसके विरोध में जनता के सभी वर्ग बेचैन हो उठे थे। ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने सबसे पहले हमारी ग्रामीण, सामुदायिक, पचायती अर्थव्यवस्था पर हमला बोला। उस अर्थव्यवस्था में बडी-बडी दरारें पड गयी। कारीगरो को नष्ट भ्रष्ट किया गया। हाथ की कारीगरी जबर्दस्ती खत्म की गयी। चूँकि भारत मे जमीन पर स्वामित्व व्यक्तिगत नहीं था, पचायती था, इसलिए अग्रेजी ढग का व्यक्तिगत भूमि स्वामित्ववाला विलायती सामन्तवाद स्थापित किया गया।

मुग़लों के ज़माने मे, जागीरदार या जमीदार गाँवो का रक्षक था, अधिपति था, ज़मीन का मालिक नही था क्योंकि ज़मीन पचायती थी, व्यक्तिगत नही थी। दूसरे, मुग़लों के जमाने मे किसी जागीरदार या जमीदार के मरने पर उसके गाँव

खालसा हो जाते थे। और यदि उसके वंशजों को वे ही गाँव सौंपना हो तो फिर से आदेश जारी किये जाते थे। इसके विपरीत अंग्रेज़ों ने इंग्लैण्ड के सामन्तवाद के तरीके पर, अपने से समझौता न कर सकनेवाले पुराने लोग खतम करके अपने पिट्ठुओं को ज़मीनें दीं। कभी भारत में ऐसा हुआ नहीं था, जैसा बंगाल में लॉर्ड वेलेज़ली ने, स्थायी इस्तमरारी बन्दोबस्त की स्थापना करके, बता दिया कि अंग्रेज़ी ढंग का सामन्तवाद कैसा होता है। तब से किसान एक छोटे-से ज़मीन के पट्टे के लिए ज़मींदार का वस्तुतः गुलाम हो गया। इस विलायती आर्थिक रीति-नीति का पूरे देश के अर्थतन्त्र पर बड़ा बुरा असर पड़ा।

भारत की पंचायती अर्थव्यवस्था को एक और विलायती तरीके ने खण्डित कर दिया। वह था व्यापार। हमारे पंचायती गाँव आत्म-निर्भर थे, उनके छोटे क्षेत्र में वे तमाम चीज़ें पैदा होती थीं जिनकी उन्हें ज़रूरत रहती थी। गाँवों की आत्म-निर्भरता तोड़ दी, क्योंकि यदि उन्हें आत्म-निर्भर रखा जाता तो देश में विलायती माल कैसे बिकता। इस प्रकार भारत सिर्फ कच्चे माल की खरीद की मण्डी ही नहीं बनाया गया, वरन् तैयार विलायती माल के बाजार का भी उसे रूप दिया गया।

भारत की इस बुनियादी अर्थव्यवस्था को योजनाबद्ध रूप से नियमपूर्वक खतम [illegible]

[illegible]

सन् अठारह सौ सत्तावन के जाँबाज बहादुरों की शौर्य-कथा के दुःखद अन्त को पढ़ते वक़्त हमारे हृदय में क्रान्तिकारी करुणा का संचार होता है। अन्तिम मुगल सम्राट बहादुर शाह ज़फ़र, रानी लक्ष्मीबाई, तात्या टोपे, अज़ीमुल्ला खान, मौलाना अहमदशाह, कुँवरसिंह, व नाना साहब पेशवा की कथाएँ आज भी हमारी आत्मा को झकझोर देती हैं। सन् सत्तावन की उस अत्यन्त भव्य और युगान्तरकारी [illegible] गोरिल्ला सेनानी [illegible] में कूद पड़े। [illegible] क्रान्तिकारियों के रक्त-रंजित संघर्ष से गुज़रती हुई, सुभाष बाबू की इण्डियन नेशनल आर्मी की फ़ौजी कार्रवाइयों से लेकर सन् उन्नीस सौ सैंतालीस में भारतीय जहाज़ी बेड़े के सिपाहियों द्वारा दागी गयी तोपों तक जारी रही।

किन्तु अंग्रेज़ों के समर्थक सामन्ती तत्त्वों को आज भी लाखों की पेंशनें मिल रही हैं, लेकिन झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई के वंशज तांबे महोदय की पेंशन हाल में बन्द कर दी गयी। नागपुर के भौंसले खानदान को कोई पूछनेवाला नहीं है।

आवश्यकता इस बात की है कि पहले देश में जहाँ-जहाँ भी अंग्रेज़ों की मूर्तियाँ हैं सब हटायी जायें, और वहाँ सन् सत्तावन के वीरों की मूर्तियाँ समारोह के साथ प्रस्थापित की जायें, तथा उन वीरों के वंशजों को राष्ट्रीय सम्मान प्रदान किया जाये।

यहाँ हम स्वातन्त्र्य वीर बैरिस्टर सावरकर को नहीं भूल सकते, जिन्होंने उस संग्राम का इतिहास लिखकर हमारे हृदय में हिन्दू-मुस्लिम एकता के दुर्दम दृश्यों के साथ संग्राम-चित्रों को प्रस्तुत किया। दिल्ली में सर्वदलीय समिति द्वारा उनका

स्वागत किया जा रहा है, यह स्वाभाविक ही है।

सन् सत्तावन का वह दुर्धर्ष काल हमारे हृदय मे हर तरह के अन्याय के विरुद्ध आग सुलगाता रहेगा, यह सन्देह से परे है।

[नया खून, 1957, मे सम्पादकीय।]

सन् पैंसठ तक हिन्दी केन्द्रीय राजभाषा बन सकती है

आज सारे भारत मे हिन्दी को केन्द्रीय राजभाषा तथा अन्तर्राज्यीय भाषा बनाने के सम्बन्ध मे जो बहस चल पडी है, वह अपनी वास्तविक सीमा को लाँघने लगी है। द्रविड भाषाभाषी भारतीय क्षेत्र मे यह सामान्य भावना है कि हिन्दी उन पर थोपी जा रही है। यह उत्तर भारतीय साम्राज्यवाद है और वे उसका डटकर मुकाबला करें। ध्यान रहे राजगोपालाचारी-सरीखे लोग जो अभी कुछ ही वर्षों पहले हिन्दी के समर्थक ही नही वरन् प्रचारक भी रहे हैं, उनकी भावनाएँ भी लगभग इसी प्रकार की हैं।

इसकी प्रतिक्रिया हिन्दी जगत् पर भी हुई है। हिन्दी का विरोध यानी जैसे उनका विरोध। केन्द्रीय भाषा हिन्दी बनायी जाये या नही, इन बहस मे उनकी भावनाएँ भले ही दुखें, किन्तु वास्तविकता यह है कि भाषा उनकी होने के फलस्वरूप वे इस बात के निर्णायक नही हो जाते कि केन्द्रीय अथवा अन्तर्राज्यीय भाषा हिन्दी ही होनी चाहिए। इसका निर्णय तो नि.सन्देह पूरा देश करेगा।

किन्तु देश तो वस्तुतः निर्णय कर चुका है। हिन्दी घोषित रूप से भारत की राष्ट्रभाषा ही नही, वह राजभाषा भी है। प्रश्न है उसके सर्वत्र क्रियान्वयन का।

तो, देश के सामने जो मूलभूत प्रश्न है वह यह नही है कि हिन्दी केन्द्रीय सरकार के व्यवहार अथवा अन्तर्राज्यीय व्यवहार की भाषा मानी जाय या न मानी जाय। बल्कि सवाल यह है कि अंग्रेजी के स्थान पर हिन्दी चालू करने का जो समय सन 1965 रखा गया है, वह आज की परिस्थिति को देखते हुए उचित है या नहीं।

असल मे, सारा वितण्डा इस बात को लेकर है कि हम हिन्दी इतनी जल्दी नही सीख सकते, इसलिए उसे सन् 75 या सन् 85 तक के लिए ठेल दिया जाये। यह भावना केवल द्रविड भाषाभाषियों मे ही है, ऐसा नही कहा जा सकता। बगाल और असम मे भी यही भावना है। अन्तर इतना ही है कि चूंकि दक्षिण भारत इस प्रश्न को लेकर आगे आ रहा है, इसलिए वे क्यों धमाचौकडी मचाकर बदनाम हो। मतलब यह कि जितने अहिन्दी भाषाभाषी क्षेत्र हैं, उनके सामने यह समस्या किसी-न-किसी प्रकार से उपस्थित है।

हिन्दी भाषाभाषियों के सामने नहीं, किन्तु अहिन्दी क्षेत्रो के सामने जो

दिक्कतें हैं, उन्हें बग़ैर समझे मूल समस्या का निराकरण नहीं हो सकता। पहली बात तो यह है कि एक बार हिन्दी राजभाषा होने पर तमाम कानून, समस्त विधान तथा विधेयक हिन्दी में हो जायेंगे। जो शब्द ढाले गये हैं, उनमें से बहुत ही थोड़े अभी प्रचलित हो पाये हैं। जो पीढ़ी इन दिनों सरकारी काम-काज चला रही है, उसके सामने ये सब दिक्कतें पेश होंगी। यह पीढ़ी अपनी अधेड़ अवस्था में ऐसी कठिनाई से मुकाबला करने के लिए तैयार नहीं है।

भारतीय स्वाधीनता को दस साल हो गये, किन्तु समस्त देश द्वारा स्वीकृत अभी कोई पारिभाषिक शब्दावली का भी गठन नहीं हो पाया। होना यह चाहिए था कि जहाँ तक पारिभाषिक शब्दों का प्रश्न है, इस बात की कोशिश होनी चाहिए थी कि ऐसे शब्द चुने जायें जो सभी भाषाओं में चलें। इसके विपरीत हुआ यह कि केन्द्र तो क्या, प्रत्येक हिन्दी प्रान्त ने अपनी भिन्न शब्दावली गठित की। इसका अर्थ ही यह है कि केन्द्र ने अपनी पारिभाषिक शब्दावली बनाने की तो कोशिश की, लेकिन इस सम्बन्ध में सारे देश को ध्यान में रखते हुए राज्यों का नेतृत्व नहीं किया।

इससे भी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि सरकार ने अगर पिछले दस वर्षों से कर्मचारियों को हिन्दी पढ़ाना शुरू किया होता, तो आज वे बहुत अच्छी तरह हिन्दी सीख गये होते। लेकिन हुआ इसके विपरीत। जो कुछ हिन्दी कक्षाएँ चलायी जा रही हैं, उनसे देश का यह आम सवाल हल नहीं होने का।

किन्तु इससे भी महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि प्राथमिक कक्षाओं से ही हिन्दी अनिवार्य बनायी जाती। हालत यह है कि आज भी हिन्दी अनिवार्य नहीं है। ऐसी स्थिति में नयी पीढ़ी भी हिन्दी के सम्बन्ध में उतनी ही अज्ञान है, जितनी कि पुरानी।

मद्रास के श्री राजगोपालाचारी का यह कहना बिलकुल ठीक है कि यदि केन्द्र की राजभाषा हिन्दी बनाना है तो आपको शिक्षा व्यवस्था में उलट-फेर करना पड़ेगा। लेकिन सरकार तो इस उलट-फेर के पहले ही हिन्दी को राजभाषा करना चाहती है। सरकार के इस कदम के विरोध में ही राजगोपालाचारी ने वक्तव्य दिया है। इसी को ऊपर से हिन्दी को थोपना कहते हैं।

यह है पूरी भूमिका जिसे हमें अच्छी तरह समझ लेना चाहिए।

दक्षिण की हिन्दी विरोधी भावनाओं में न बहकर केरल के मुख्यमन्त्री नम्बूदिरीपाद ने भी यह सन्देह प्रकट किया है कि सन् 1965 तक हिन्दी को केन्द्रीय राजभाषा बनाना शायद कठिन होगा। हाँ, एक बुद्धिमान व्यक्ति की भाँति उन्होंने यह भी कहा कि अंग्रेजी को राजभाषा के पद से जल्दी से-जल्दी हटा देना चाहिए। लेकिन व्यावहारिक दिक्कत तो सभी के सामने है, बावजूद इसके कि प्रान्तीय सरकार की ओर से हिन्दी प्रचार के मामले में केरल दक्षिण भारत में सबसे आगे है।

किन्तु वैसे मद्रास प्रदेश में स्वाधीनता-आन्दोलन के जमाने से ही हिन्दी का काफी प्रचार हुआ है। इसके बावजूद आज वहाँ हिन्दी विरोधी भावनाएँ खूब फैली हुई हैं। इसका एक कारण तो यह है कि मद्रासी लोग केन्द्रीय सरकार में डटकर भरे हुए हैं। उनके सामने हिन्दी पढ़ने का सवाल मुँह बाये खड़ा हुआ है। अपनी अधेड़ावस्था में वे ऐसा कोई काम नहीं करना चाहते, जिससे उनके आराम में खलल पहुँचे।

लेकिन साथ ही, उनके हक मे यह बात भी तो जाती है कि सारे भारतवर्ष मे इतने व्यापक पैमाने पर आठ साल में हिन्दी लागू करना काफी कठिन काम है, इसलिए सन् 1965 के बाद हिन्दी के साथ-साथ अंग्रेजी भी चालू रखी जाये।

हमे इस प्रस्ताव मे कोई बुराई नही मालूम होती। केवल हमे उसके शब्दो से आपत्ति है। हम उसी बात को यो रखेंगे कि केन्द्र की राजभाषा हिन्दी है, और सन् 1965 से हिन्दी मे ही सारा काम-काज होना चाहिए, लेकिन जो लोग ठीक तौर से हिन्दी मे अपने भाव प्रकट कर नही सकते, वे अंग्रेज़ी का सहारा ले सकते हैं। एक बार केन्द्र के राज-कार्यों मे हिन्दी चालू होने पर एक परम्परा कायम हो जायेगी। और फिर एक-दूसरे के देखा-दखी मद्रासी भी धीरे-धीरे हिन्दी का माद्दा बढाना शुरू कर देंगे। मतलब यह कि राज-काज के मामलो मे हिन्दी को अत्यन्त प्रधान बना दिया जाये और अंग्रेजी को गौण बना दिया जाये।

हिन्दी को राजभाषा का वास्तविक रूप तभी दिया जा सकता है, जब क़दम-ब-क़दम और मंज़िल-दर-मंज़िल आगे बढा जाये। क़दम ब-क़दम, मंज़िल-दर-मंज़िल—ये शब्द महत्त्वपूर्ण हैं। और मेरा यह विचार है कि यदि इस जगह घोटाला किया गया, और एक पटरी से काम नही किया गया, तो मामला बिगड जायेगा।

इसके साथ ही दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि विश्व के ज्ञान-विज्ञान की प्राप्ति के लिए हम अंग्रेज़ी ही नहीं वरन् रूसी, फ्रांसीसी और जर्मन भाषाओं का भी अध्ययन करना चाहिए। आज जब भारत म अंग्रेज़ी का व्यापक प्रचार है तो उसे कम करने की जरूरत नही, उसे बढ़ाने की जरूरत है। विशेषकर तब तक कि जब तक हिन्दी भाषा अंग्रेज़ी, रूसी और जर्मन के समान ही समृद्ध नही हो जाती।

[नया खून, 10 जनवरी 1958, में लेखक के नाम बिना प्रकाशित।]

हुएन-सांग की डायरी

रात भीगती जा रही है। नालन्दा के भव्य विहार मानो गहरी नींद मे सोये पड़े हैं। दिन-भर साहित्य, कला और दर्शन से गूँजता हुआ वातावरण इस समय शान्त, निःशब्द है। मेरे दीपक की लौ मन्द होती जा रही है। पर नींद मानो विदा ले गयी है। कल सबेरे···प्रत्यूष वेला में मुझे यहाँ से चल देना है। धर्मगंज, नालन्दा के विशाल ग्रन्थालय मे से छः सौ सत्तावन ग्रन्थों की अनुलिपि कर मातृ-भूमि चीन लिये जा रहा हूँ। जैसे कोई बालक-मन खिलौने देखकर मचल उठे, वैसे ही मैं धर्मगंज के तीन भवन—रत्नसागर, रत्नोदधि और रत्नरंजक—की ओर खिंचता चला गया। सचमुच एक-एक ग्रन्थ एक-एक रत्न है। पर नहीं, रत्न जाज्वल्यमान सा होता है, पर रहता तो जड ही है न! इनमें तो प्राण हैं। एक एक पुस्तक बोलती है—अपनी कथा कहती है। मूल ग्रन्थो के सर्जकों की मूर्तिमती साधना, भारत का

अन्तरिक्ष-यात्रा

मनुष्य हमेशा से यह कोशिश करता आया है कि वह प्रकृति के रहस्यों को ढूंढ निकाले, उनका उद्घाटन करे और प्रकृति पर विजय प्राप्त करे। केवल जिज्ञासा से ही नहीं, वरन विजयेच्छा से प्रेरित होकर, मनुष्य महासागरों के अथाह तले में उतरा बर्फिस्तानों के सर्द तूफानों से मुकाबला करता रहा और एवरेस्ट जैसे पहाड़ों की चोटियाँ फाँदी। आज मनुष्य उसी इच्छा से प्रेरित होकर अन्तरिक्ष-यात्रा के सामान जुटा रहा है।

प्राविधिक स्थिति

आज वैज्ञानिक जगत में तीन तरह की कोशिशें चल रही हैं—(1) अणु-शक्ति पर सम्पूर्ण नियन्त्रण, (2) रॉकेट-विद्या की समस्याओं का निराकरण, और अन्तिम, (3) स्वयंचल प्राविधिक प्रक्रियाओं को और अधिक विस्तृत करना, अर्थात् ऑटोमेशन का विकास। प्रथम का सम्बन्ध शक्ति के अगाध स्रोत उपलब्ध करने से है; दूसरे का सम्बन्ध-सवहन की गति अत्यन्त तीव्र करने से, तथा तीसरे का सम्बन्ध औद्योगिक प्रक्रियाओं को अधिकाधिक तीव्र-गति और स्वयंचल बनाने से है। ये कोशिशें अभी तक प्राथमिक अवस्था में हैं। विश्व के सभी महत्त्वपूर्ण वैज्ञानिक विचारकों का यह मत है कि हम प्रविधि-शास्त्रीय-टेक्नॉलॉजिकल-क्रान्ति के सिंह-द्वार के भीतर प्रवेश कर चुके हैं। वे कहते हैं कि क्रान्ति विश्व में गहरे सामाजिक और राजनैतिक परिवर्तन भी उपस्थित करेगी।

रॉकेट क्या है ?

प्रविधिशास्त्रीय क्रान्ति के इस लम्बे दौरान में, रॉकेट-विद्या की समस्याओं को हल करने के लिए जो कोशिशें की जा रही हैं उन्हें समझने के लिए, सबसे पहले यह *आवश्यक है कि हम रॉकेट को समझ लें, उसके विकास के इतिहास को जानें और* यह देखें कि उसके द्वारा हमारे सामने क्या-क्या सम्भावनाएँ उपस्थित होती हैं।

बिलकुल सरल शब्दों में, आसानी से समझ में आने लायक उदाहरण यदि दिया जाये, तो वह एक पटाखे का देना होगा। *पटाखा अपने पिछले हिस्से से रासायनिक* ज्वाला पैदा करता हुआ जिस प्रकार ऊँचाई फाँदता और चढ़ता जाता है, उसी प्रकार रॉकेट भी काम करता है। दीवाली अथवा शादी-ब्याह में आपने आतिश-बाज़ी देखी होगी। पटाखे, पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति को चुनौती देते हुए, काफी ऊँचे चढ़ जाते हैं, किन्तु उसके चंगुल से न छूटकर, फिर धरती पर गिर पड़ते हैं। रॉकेट के सिद्धान्त और पटाखे की इस प्रक्रिया में विशेष अन्तर नहीं है। अगर फर्क है तो वह अनुपात में, मात्रा में, तथा यन्त्रों के उलझाव में है। मनुष्य पटाखों का प्रयोग पुराने ज़माने से करता आया है। किन्तु, उसके सिद्धान्त को रॉकेट के रूप में प्रयुक्त करने का उसे अब तक अवसर नहीं मिला था।

ऐसा क्यों हुआ ? इसका उत्तर जानने के लिए, हमें विमान-विद्या की तरफ मुड़ना होगा। हमारे साधारण विमान हवा के आसरे से चलते हैं। यदि पृथ्वी पर वातावरण का अभाव हो, तो हवाई जहाज नहीं चल सकते। वे हवा में तैरते हैं,

उनकी मशीनें उन्हें आगे बढाती हैं। हवा के आसरे से चलने के कारण, विमानो को कई तरह के खतरों से बचना पड़ता है। पहले तो यह कि पृथ्वी के विभिन्न भागो मे हवा के दवाव की स्थिति भिन्न-भिन्न रहती है, साथ ही वह विभिन्न ऋतुओं मे बदलती जाती है, स्थानीय परिवर्तनो के कारण भी उसमे परिवर्तन होता रहता है। यदि, अनपेक्षित रूप मे, विमान उच्च दवाव के क्षेत्र से अकस्मात निचले दवाव के क्षेत्र मे आया तो वह ऊँचाई से निचाई मे गिर पड़ता है। यदि उसने सन्तुलन कायम रखा तो ठीक, और यदि उसका सन्तुलन जाता रहा तो भयंकर हानि होती है। पृथ्वी के समीप, लगभग दस मील ऊँचाई तक हवा की घनी परतें हैं। इससे आगे वायु विरल होती जाती है। वायुमण्डल, आगे चलकर बहुत ही विरल हो जाता है। ऐसा विरल प्रसार पृथ्वी से लगभग एक हज़ार मील तक फैला हुआ है। हवा की घनी परतो मे रहने की अनिवार्य शर्त के फलस्वरूप, साधारण विमान (1) बहुत ऊँचे नही उठ सकते, (2) हवा के प्रतिरोध के कारण अपनी गति मे तीव्रता नही ला सकते।

इस समस्या को हल करने के लिए, जेट हवाई जहाज का आविष्कार हुआ। जेट सिद्धान्त, वही 'पटाखे का सिद्धान्त' है। हम उसे अब पारिभाषिक शब्दावली मे प्रस्तुत करेंगे।

पार्श्व-प्रतिक्रिया

पटाखा ज़मीन से उठकर जब ऊँचाइयो मे उठता जाता है, तब वह पीछे रासायनिक धुआँ या ज्वाला फेंकता है और उसी के धक्के से वह ऊपर उठता जाता है। बन्दूक से जब गोली छूटती है,तब वह गोली उसे धक्का दे देती है, यदि बन्दूक मजबूती से न पकड़ी जाये; तो कन्धा टूटने का डर रहता है। तोप का गोला जब छूटता है तब वह, छूटते ही तोप को, पीछे, एक धक्का दे जाता है। तोप मे स्प्रिंग रहता है, इसलिए, तोप इस धक्के को सँभाल लेती है। आगे बढ़नेवाली शक्ति जब पीछे एक धक्का दे जाती है तो उसकी इस प्रक्रिया को, पारिभाषिक शब्दावली मे, 'पृष्ठ प्रतिक्रिया' या पार्श्व-प्रतिक्रिया कहते हैं। जेट, हवाई जहाज, इसी सिद्धान्त के आधार पर बने हैं। रॉकेट मे, विमान और तोप के सिद्धान्त, संयुक्त रूप से, कार्यान्वित किये गये हैं। इन सिद्धान्तो के फलस्वरूप, जेट हवाई-जहाज या रॉकेट को, ऊँचे उड़ने के लिए, हवा के आसरे की जरूरत नही होती। फलतः ये (1) कम हवावाले प्रदेशो मे, बिलकुल आत्मनिर्भर होकर, स्वयंचालित रूप से उड़ सकते हैं, (2) हवा के प्रतिरोध के सापेक्षिक अभाववाले क्षेत्रो मे उड़ने के कारण, उनकी गति बहुत तीव्र होती है। आज अमरीका मे, साधारण हवाई जहाजो के आवागमन के बदले, जेट हवाई जहाजो के आवागमन का पूर्ण प्रबन्ध किया गया है। इसके फलस्वरूप, दूरियाँ घट गयी हैं। दूरियाँ घट जाने से और गति तीव्र होने से दूरस्थ क्षेत्रो के घनिष्ठ सम्पर्क की सम्भावनाएँ प्रत्यक्ष हो उठीं। भारत, चीन, रूस, अमरीका जैसे विस्तृत देशो मे जेट हवाई जहाजो का असाधारण महत्त्व है। ये हवाई जहाज हवा की सघन परतो के पार जाकर, विरल-वायु के सतहो के भीतर उड़ते हैं, और वहाँ हवा कम होने के कारण उसके प्रतिरोध के अभाव के फलस्वरूप इन विमानो की गति अत्यन्त तीव्र हो जाती है।

जब जेट हवाई जहाज बहुत सफलतापूर्वक काम करने लगे तो प्रक्षेपास्त्र

निकालना भी सहज हो उठा। अन्तर केवल इतना है कि प्रक्षेपास्त्र रेडियो लहरों—इलेक्ट्रॉनिक तरंगों—द्वारा पूर्ण रूप से नियन्त्रित होते हैं, अर्थात् बहुत दूर से उनका नियन्त्रण किया जा सकता है और उन्हें अपने लक्ष्य पर गिराया जा सकता है। स्पष्ट है कि वे चालकहीन होते हैं, जबकि जेट हवाई जहाज उनसे बहुत बड़े होते हैं, और उनमें चालक रहता है, तथा उनका वेग भी प्रक्षेपास्त्रों से बहुत कम रहता है।

जेट-युग के आते ही प्रक्षेपास्त्र उपस्थित हुए, और एक बार जब (अमरीका से बहुत पहले) रूस ने अन्तर्महाद्वीपीय प्रक्षेपास्त्र आई. सी. बी. एम. निकाला, तो उसे पृथ्वी के आसपास प्रदक्षिणा करता हुआ उपग्रह निकालने में विशेष कठिनाई नहीं हुई।

रॉकेट वस्तुतः, एक प्रकार का विशाल प्रक्षेपास्त्र है। पिछले विश्वयुद्ध में, जर्मनी ने चालकहीन, स्व-नियन्त्रित रॉकेट निकाले थे, जिसे वी 2 रॉकेट कहते हैं। रॉकेट का इतिहास, पहले विश्वयुद्ध के पूर्व से ही शुरू हो जाता है। ब्रिटेन की जहाजी सेना वायु-यानों को संकेत देने के लिए समुन्दरी जहाजों से रॉकेट उड़ाया करती थी। सिद्धान्त, पटाखे का ही है। किन्तु, प्रक्षेपास्त्र और रॉकेट में तीन सिद्धान्त और मिल गये—(1) इलेक्ट्रॉनिक तथा रेडियो-विधि से दूर नियन्त्रण, (2) स्व चालन अर्थात् ऑटोमेशन, (3) पृष्ठ-प्रतिक्रिया। जब ये तीनों तरीके संयुक्त हो गये, एकीभूत हो गये तब प्रक्षेपास्त्र और उसका वृहत्तर रूप, आधुनिक रॉकेट, हमारे सामने आया।

रॉकेट का महत्व

रॉकेट के सम्बन्ध में, मैं इतना अधिक क्यों लिख रहा हूँ? इसके निम्नलिखित कारण हैं। पहला तो यह कि अन्तरिक्ष-यात्रा में, सबसे बड़ी सफलता यह नहीं है, हमने एक स्पुतनिक फेंक दिया, वरन् यह है कि हम ऐसा औजार तैयार कर सके जो पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण-शक्ति के चंगुल से निकल सकता हो। एक बार अन्तरिक्ष में पहुँच जाने पर आगे की यात्रा, यान्त्रिक ढंग से, सहज और निर्बाध चलती है। वह आप ही आप चलती जाती है, और वह तब तक चल सकती है जब तक हम किसी उल्का अथवा विशाल प्रस्तर-खण्डों से न टकरायें, अथवा अन्य ज्योतिष्पिण्डों के गुरुत्वाकर्षण के जाल में न फँस जायें। तो मतलब यह कि मुख्य बाधा पृथ्वी की तथा अन्य ग्रह-उपग्रहों की गुरुत्वाकर्षण-शक्ति ही है। एक बार यदि हम पृथ्वी के चंगुल से

शक्ति का हिसाब यह है कि वह एक सेकण्ड में सात मील की गति से किसी वस्तु को अपनी ओर खींचती है। यदि हमें पृथ्वी की इस शक्ति से एकदम छूट जाना है तो हमारा वेग एक सेकण्ड में कम-से-कम सात मील तो होना ही चाहिए। अमरीका या रूस के जितने भी उपग्रह पृथ्वी के आस-पास प्रदक्षिणा कर रहे हैं, उनकी गति पाँच मील-साढ़े पाँच मील है। ज्यों ज्यों उनकी गति कम होती जायेगी, उनकी ऊँचाई भी घटती जायेगी और वे जमीन पर गिर पड़ेंगे। रूस का रॉकेट, जो पृथ्वी और चन्द्र के गुरुत्वाकर्षणों को तोड़कर आगे निकल गया, वह सूर्य के गुरुत्वाकर्षण

से मुक्त स्वतन्त्र क्षेत्र में आ गया, और अब सूर्य की प्रदक्षिणा कर रहा है।

किन्तु, क्या एक अकेला रॉकेट पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण की शक्ति को धुतकार सकता है? रॉकेट-विद्या का अभी इतना विकास नहीं हुआ है कि वह इतना प्रचण्ड वेग प्राप्त
जाता है।
मालिका तैयार करके अपने उपग्रह आसमान में छोड दिये। रूस ने तीन बडे-बडे रॉकेटों को परस्पर सम्बद्ध करके उन्हें हवा में छोड दिया। पहला अर्थात् सबसे निचला रॉकेट कई मील ऊपर जाकर अगले रॉकेट को ज़ोरदार धक्का देते हुए नीचे गिर पड़ता है। उसके उपरान्त जो रॉकेट निचला होता है वह और कई मील ऊँचा दौडता जाता है और फिर अगले रॉकेट को ज़ोरदार धक्का देकर नीचे गिर पडता है। तब तक पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण-शक्ति काफी घट जाती है और बाकी बचा हुआ रॉकेट पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण-शक्ति के वेग से कई गुना अपना वेग बढाकर आगे दौड पडता है।

इस रॉकेट को, पृथ्वी की गति का भी वेग मिल जाता है। एक भौंरा लीजिए, उसको घुमाने के पहले उसे पानी से तर कर दीजिए। फिर, घुमाइए। वह भौंरा पानी छिटकारता हुआ घूमने लगेगा। इस पानी को कहाँ से वेग मिला? यह वेग, भौंरे के भ्रमण ने दिया। इस प्रकार, पृथ्वी का भ्रमण भी रॉकेट को अतिरिक्त गति प्रदान कर देता है। जो रूसी रॉकेट, सूर्य के आस पास मनुष्य निर्मित ग्रह बनकर घूम रहा है, उस भी, इसी प्रकार से अतिरिक्त वेग प्राप्त हुआ है।

समस्याएँ

रॉकेट-सम्बन्धी समस्याएँ, मुख्यत, दो प्रकार की हैं—(1) प्रचण्ड ज्वलन-शक्ति, अर्थात् विशेष ईंधन की ज़रूरत तथा उस ज्वलन शक्ति को सह सकनेवाले धातु की आवश्यकता, (2) अपने लक्ष्य पर पहुँचने के बाद, अपने स्थान पर फिर से वापिस आने की यन्त्र-विधि का अभाव। रूस ने यह दावा किया है कि उसने ऐसे रॉकेट निर्माण कर लिये हैं, जो निर्धारित लक्ष्य पर पहुँचने के बाद, अपने स्थान पर वापिस आ सकते हैं। किन्तु, अभी तक बडे पैमाने पर ऐसे रॉकेटों का प्रयोग नहीं हुआ है। यदि राकेटों का अणुशक्ति द्वारा चालित किया जाये, तो उसका वेग अपार हो जायेगा और कई रॉकेट एक साथ जोडने की तकलीफ न उठानी पडेगी। किन्तु अभी तक अणुशक्ति पर पूर्ण नियन्त्रण नहीं हुआ है। इसलिए, इस उद्देश्य से उस शक्ति का प्रयोग भी नहीं हो सका है। रॉकेट-विद्या वस्तुतः अभी अपनी प्राथमिक अवस्था पूरी नहीं कर पायी है।

ल्यूनिक

ल्यूनिक उस रॉकेट का नाम है जो सूर्य के आसपास, एक ग्रह के रूप में, चक्कर लगा रहा है। इस रूसी रॉकेट का वजन 250 टन से अधिक है। यह रॉकेट इस वर्ष की 2 जनवरी को, सम्भवत. स्टालिनग्राड के समीप से, छोडा गया। उसके अगले दिन (अमरीकी समय के हिसाब से) लगभग दस बजे शाम को, चाँद के 4,660 मील क़रीब से गुज़रकर, उसकी गुरुत्वाकर्षण-शक्ति के क्षेत्र को पार करता हुआ, आगे निकल गया। 14 जनवरी को वह, सूर्य के चतुर्दिक अपनी कक्षा के उस

बिन्दु पर पहुँच गया जो, तुलनात्मक दृष्टि से, सूर्य के समीपतम था। यह बिन्दु, सूर्य से 9 करोड 9 लाख 69 हजार मील दूर था। इस मानव-निर्मित ग्रह का मार्ग, पृथ्वी और मगल के बीच मे है। सितम्बर के महीने मे यह ग्रह अपनी कक्षा- [illegible] र स्थित है। रूसी [illegible] उसका वर्ष 15 [illegible] है, जबकि पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति के बन्धन से सम्पूर्णत छूटने के लिए केवल 25 हजार फी घण्टा की रफ्तार ही काफी होती है। ध्यान रहे कि रूसी उपग्रह स्पुतनिक-3 की गति, इससे एक चौथाई कम, अर्थात् 18 हजार 750 मील फ्री घण्टा थी।

ग्रह-कक्षा

जब ल्यूनिक पृथ्वी के गुरुत्वाकर्पण के क्षेत्र से भाग खडा हुआ, तब वह चन्द्रमा के गुरुत्वाकर्पण क्षेत्र को पार कर गया। इसका कारण था। चन्द्रमा पृथ्वी के आस-पास लगभग 2½ मील फी घण्टा की रफ्तार से, अर्थात् 5 हजार 5 सौ मील प्रति घण्टा के वेग से घूमता है। रूसी ग्रह का वेग चन्द्रमा के वेग से लगभग 5 गुना था। इसलिए, चन्द्रमा के निकट अर्थात् सिर्फ 4660 मील समीप पहुँचकर भी वह उसकी गुरुत्वाकर्पणशक्ति के पजे म नही आया। वह सीधे सूर्य के गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र मे पहुँच गया। ल्यूनिक की कक्षा पृथ्वी की कक्षा के पार भी जा सकती है। लेकिन यह कभी-कभी ही होगा। अमरीकी वैज्ञानिको के अनुसार, यह असम्भव नही है कि ऐसी स्थिति म वह चन्द्रमा अथवा पृथ्वी के गुरुत्वाकर्पण से प्रताडित होकर नयी ग्रह-कक्षा स्थापित करे अथवा उसकी गति इतनी धीमी हो जाये कि वह ग्रह से उपग्रह बनकर पृथ्वी के आसपास प्रदक्षिणा करने लगे। रूसी वैज्ञानिक कहते हैं कि यह नया ग्रह पृथ्वी पर कभी नही लौटेगा।

इस बात को, दस साल पूर्व के रॉकेटो के प्रकाश मे देखिए। तब रॉकेट, पृथ्वी से 250 मील से ज्यादा ऊँचे नही जा सकते थे।

सियोलकोव्स्की

अन्तरिक्ष-यात्रा का स्वप्न देखकर, उसका वैज्ञानिक कार्यक्रम बनानेवाले विश्व के सर्वप्रथम वैज्ञानिक रूस के सियोलकोव्स्की थे, उन्होने सन 1890 मे अन्तर्नक्षत्रीय यात्रा की एक रूपरेखा बनानी शुरू की। इस वैज्ञानिक ने अन्तर्नक्षत्रीय यात्रा के जो सिद्धान्त बनाये, उन्ही का अनुगमन, आज के रूसी वैज्ञानिको ने किया। कोन्स्तान्तिन एदुआर्दोविच सियालकोव्स्की (Konstantin Eduardovitch Tsiolkovsky) का जन्म सन 1857 म हुआ था। उसन आश्चर्यजनक पूर्वज्ञान से बताया कि रॉकेट के बिना अन्तर्नक्षत्रीय यात्रा सम्भव नही है। उसन गणित के द्वारा रॉकेट की आवश्यक गति भी निर्धारित कर दी। उसी रूसी वैज्ञानिक ने यह निश्चय किया कि रॉकेट मे रासायनिक प्रवाही ईंधन ही जलाया जाना चाहिए। अपन इन निष्कर्षों को उसने सन् 1898 म प्रकाशित किया। सन् 1898 मे हवाई जहाज भी नही था। मनुष्य अभी वायुमण्डल मे भी उड नही सका था।

गोडार्ड

इसके बाद, एक अमरीकी वैज्ञानिक रॉबर्ट हचिन्सन गोडार्ड ने सन् 1915 मे एक रॉकेट बनाया। इस रॉकेट मे ठोस ईंधन जलाने की व्यवस्था थी। स्मिथसोनियन इन्स्टीट्यूट से उसे 5 हज़ार डालर का पारितोषिक भी मिला। इस सस्था ने सन् 1919 मे गोडार्ड के निष्कर्षो को प्रकाशित किया। इससे गोडार्ड का नाम सब ओर फैल गया। किन्तु, उसके निष्कर्षों का कडा विरोध भी किया गया। न्यूयार्क टाइम्स ने लिखा था कि गोडार्ड की सबसे बडी भूल तो यह है कि वह यह विश्वास करता है कि रॉकेट वायुमण्डल के भी ऊपर जा सकता है। स्पष्ट है कि भूल गोडार्ड की नही, वरन् न्यूयार्क टाइम्स की थी। सन् 1925 मे गोडार्ड ने 11 फ़ोट लम्बा एक रॉकेट 90 फ़ोट ऊँचाई तक भेजा। उसके शोर से नागरिक बहुत क्रुद्ध हुए। इसलिए, उसे अपना शहर मैसाचूसेट्स छोडकर न्यू मेक्सिको जाना पडा। सन् 1935 मे गोडार्ड का रॉकेट 7500 फ़ोट ऊपर उठा।

सन् 1919 मे ही अमरीका, जर्मनी, ब्रिटेन आदि देशो मे रॉकेट के प्रयोग शुरू हो गये। इस क्षेत्र मे जर्मनी सबसे आगे बढा। दूसरे विश्वयुद्ध के दौरान मे, हिटलर ने स्व-चालित और सुनियन्त्रित रॉकेटो का प्रयोग किया था।

शून्यावकाश

शून्यावकाश की शून्यता मे भी कुछ खतरे हैं। रॉकेट को दो खतरो का विशेष रूप से सामना करना पडता है। एक—विभिन्न ग्रह-उपग्रहो के गुरुत्वाकर्षणो का चक्कर; दूसरे—किन्ही सम्भावित ज्योतिष्पिण्डो से टकराहट। एक का गुरुत्वाकर्षण पार करने के बाद, दूसरे किसी के गुरुत्वाकर्षण मे फँसने की सम्भावना को मामूली नही समझा जा सकता। इसके लिए, इन दिनो, विभिन्न गुरुत्वाकर्षणो के नक्शे बनाये जाते हैं और उसके अनुसार रॉकेटो की कक्षा निर्धारित की जाती है।

इन दिनो, मनुष्य की जिज्ञासा और अनुसन्धान-वृद्धि, चन्द्र और मगल की विशेष जानकारी लेना चाहती है। मगल के बारे मे ज्योतिर्विदो का यह विचार है कि वहाँ वानस्पतिक जीवन सम्भव है। किन्तु, अन्य ग्रह, जैसे बुध, शुक्र, गुरु, शनि आदि, प्राणियो के रहने लायक हैं ही नही; वे या तो अत्यन्त ज्वलन्त हैं या एकदम शीत। बुध सूर्य का समीपतम ग्रह है। उसका एक पक्ष अनिवार्यत. सूर्य के सामने रहता है। फलतः वहाँ प्रचण्ड गर्मी और दूसरे भाग मे अत्यन्त शीत रहता है। बुध के अनन्तर शुक्र आता है, वह जीवन-विरोधी द्रव्यो जैसे मिथेन, अमोनिया आदि जहरीली वायुओ के सघन पटल से ढँका रहता है। हम उसके धरातल के सम्बन्ध मे कुछ भी नही जानते। शुक्र के अनन्तर पृथ्वी का नम्बर आता है। पृथ्वी मे जीवनानुकूल वातावरण है। पृथ्वी के उपग्रह चन्द्रमा मे वातावरण का अभाव होने से, वहाँ जीवन-सम्भावना है ही नही। गुरु ग्रह अत्यन्त ज्वलनशील और शनि एकदम शीत है। यूरेनस, नेपच्यून और प्लूटो सूर्य से अत्यधिक दूर होने के फलस्वरूप, एकदम ठण्डे और हिमाच्छादित हैं।

अतएव, ज्योतिर्विदो का अनुमान है कि सूर्य-मण्डल मे पृथ्वी को छोड अन्य ग्रहों मे कोई प्राणी नही है। किन्तु, मनुष्य, प्राणियो को प्राप्त करने के लिए नही, वरन् प्रकृति के रहस्यो को खोज॰ निकालने के लिए साहस-यात्रा के मार्ग पर

अग्रसर है। अगले पन्द्रह वर्षों मे मनुष्य, इस दिशा मे, अनेक महत्त्वपूर्ण सफलताएँ प्राप्त करेगा, इसमे सन्देह नही।

ब्रह्माण्ड-किरण, गुरुत्वाकर्षण-शक्ति, सूक्ष्म-तरग-विकीरण और उनके द्वारा सूक्ष्माणुओ का विभजन आदि-आदि रहस्यो की तह मे मनुष्य अभी घुस नही सका है। रॉकेटो द्वारा शून्यावकाश मे प्रवेश कर मनुष्य उनका पता लगाने की आशा रखता है।

[*दिग्विजय महाविद्यालय राजनाँदगाँव की पत्रिका मे 1958-59 मे प्रकाशित।* रचनावली के दूसरे सस्करण मे पहली बार सकलित]

आत्मीयता के अखण्ड स्रोत : स्वामीजी

अगर कोई मुझसे पूछे कि स्वामी कृष्णानन्द सोख्ता की कौन-सी सबसे बडी विशेपता थी, तो मैं कहूँगा कि ऊष्मा, व्यक्तित्व की चतुर्दिक सक्रमणशील ऊष्मा। भावनाओ का ऐसा उष्ण, किन्तु मधुर आवेश उनमे भरा था कि उसमे सामने बैठे व्यक्ति को डूब जाना ही पडता था। जैसे कोई वेगायित विशाल समुद्र-तरग सूखे कगार पर पडे हुए कठोर टीले को जबर्दस्ती भिगो जाय, भिगोये ही नही, वरन् अपनी लहर-भुजाओ मे लपेटकर उसको अपने साथ बहा ले जाय, उसी प्रकार स्वामीजी अपने साथ बहा ले जाते थे। दूसरो को अपने व्यक्तित्व के प्रवाह मे डुबोकर उन्हें अपनी स्वय की दिशा मे गतिमान कर देने की उनमे अद्भुत क्षमता थी। यह क्षमता विशेप क्षणो मे प्रकट होती थी। वस्तुत वे क्षण के अधिपति थे। लोगो के मन तरगित होकर, कम्पित होकर स्वामीजी का साथ दे जाते थे। क्षण के शिखर पर खडे होकर, वे *विशाल, भव्य, शक्तिमान, गम्भीर और सस्मित हो* उठते थे। उस समय वे चाहे जो काम कर सकते थे—ऊँचे से-ऊँचा, कठिन-से-कठिन। मात्र गति देने की देर है कि कृति सम्मुख !!

सच तो यह है कि वे उन भावनाओ से प्रेरित थे कि जिनको हम 'व्यक्ति का मानवतावाद' कह सकते है, जो कोई *बन्धन नही मानता और अपनी इस बन्धनहीन* प्रचण्डता मे उस सस्कृति की रक्षा करता है जिसे हम समाज, राष्ट्र, जाति, दल और गुट की कृत्रिम दीवारो के परे, मात्र मानव का मानवतावाद कह सकते हैं। किन्तु उनकी यह भाव-दृष्टि केवल हृदय की चहारदीवारी की खिडकी मे से दुनिया को *झाँककर नही देखती थी, वरन् वह भाव-दृष्टि इस व्यावहारिक जगत मे* उनका पथ-प्रदर्शन करती थी। उनके लिए, कम्युनिस्ट भी उतना ही आदरणीय हो सकता था, जितना काग्रेसी, या हिन्दू या मुसलमान या हरिजन।

इसीलिए, स्वामीजी बहुतेरे लोगो को एकान्त क्षणो मे प्यारे हो उठते थे। कोई उन्हें *सुकरात कहता, तो कोई कहता वे कबीर हैं। कभी-कभी तो यह लगता*

कि वे सूर के अधिक निकट हैं। सूर इसलिए कि उनके हृदय में सूर की भावनाएँ संचित थीं—वात्सल्य था। बालकों से सचमुच उन्हें इतना अधिक प्रेम था कि वे वात्सल्य से अभिभूत होकर समाज, जाति, वर्ग, दल से अलग होकर राह चलते किसी भी बच्चे का प्रेम-सम्पादन कर लेते थे, उससे चुहल करते थे।

वे राजनैतिक व्यक्ति नहीं थे, नहीं ही थे। उनकी जो भी राजनीति थी वह उनके दोस्तों की तरफदारी थी। वैसे, वे राष्ट्रीय संग्राम के एक वीर योद्धा, किन्तु स्वतन्त्रचेता व्यक्ति रहे। स्वाँग करके उन पर रंग जमाना मुश्किल था। बड़े-बड़े व्यक्ति के दम्भपूर्ण पहलू को वे उघारकर रख देते थे। वे छोटे-से-छोटे आदमी से प्रभावित होकर उसे बड़ा आदमी बना देते थे, किन्तु बड़े-से-बड़े आदमी को आसन से खींचकर, राहगीर बनाने की अद्भुत क्षमता रखते थे। वे बहुत प्यारे दिलदार आदमी थे, जो दिल की आवाज़ को झुठलाते नहीं थे। उनका दिल नाज़ुक था, लेकिन निहत्था नहीं। वे अपने दिल के नज़दीकवाले छोटे-से आदमी से भी दब जाते थे, और बड़ी-से-बड़ी हस्ती के घमण्ड को मिटा देने का साहस और कर्तृत्व शक्ति रखते थे।

स्वामीजी एक अजीब आदमी थे—एकदम फक्कड़, बहुत दिलदार, पूरे इन्सान और ताकतवर। यह ताकत, भीतर से उठती थी, कर्म-शक्ति बनकर प्रकट होती थी, किन्तु, वे सांसारिकता के छोटे मोटे बन्धनों और स्वार्थों से परे थे। कर्मक्षेत्र में वे एक सिपाही की भाँति काम करते थे, न कि मापतोल करनेवाले बनिये की भाँति। व्यावहारिक जगत् में वे अव्यावहारिक थे और कर्म-क्षेत्र में अपने को खपा देते थे। कवि की उदात्त भावना और उसी की अव्यावहारिकता, सैनिक का त्यागपूर्ण संघर्ष-उत्साह और इन दोनों को एक बनानेवाली मनुष्यता उनमें थी।

वे एक मानववादी संस्कृति और परम्परा के अंग थे कि जो परम्परा अब लुप्त-सी हो गयी है। व्यक्ति से अधिक वे संस्था थे, व्यक्तित्व से अधिक उनमें संस्थात्व था। 'नया खून' पत्र तो बाद की चीज़ है, बहुत बाद की। परिस्थिति और परिवेश का इस संस्था पर बहुत प्रभाव होता था अर्थात् वह क्षमताएँ तथा सीमाएँ दोनों निर्धारित कर देते थे। इस स्थान के भीतर एक रोशनी जलती थी। सर्वत्र प्रकाश था। लोग तो यहाँ तक कहते सुने गये कि उन्हें सरस्वती का वरदान था, सरस्वती उनकी जीभ पर नाचती थी, सरस्वती ने उनके मन में एक वातावरण उत्पन्न कर दिया था।

उनकी न मालूम कितनी ही यादें आँखों के सामने तैर जाती हैं। सालों तक उनका मेरा साथ रहा। कभी सोचा भी नहीं था कि इस प्रकार उनकी मृत्यु हो जायेगी। हमारे घर-भर को दुख हुआ। मन के अतल में उनकी गाथाएँ सुरक्षित रहेंगी। उनका व्यक्तित्व मौलिक और असाधारण होते हुए भी, सामान्यों से इतना साधारण था कि सहसा उन पर प्रेम उमड़ आता था—बुद्धिजीवियों का तो ठीक है, साधारण लोगों का भी।

उनके बारे में न मालूम कितनी ही कहानियाँ लिखी जा सकती हैं। उनका व्यक्तित्व और जीवन, कथाकार के लिए तो एक शाश्वत स्रोत है प्रेरणा का और सामग्री का। संक्रमणशील युग की कई सारभूत विशेषताएँ उनमें थीं, भावना के स्रोत राष्ट्रीय अभ्युत्थान के उषाकाल के सांस्कृतिक वातावरण से आये थे। ऐसा

होने पर भी वे पुराणपन्थी नहीं थे, वरन् मानव-भविष्य के निर्माण के संघर्ष में योग देने की उनमें तत्परता थी। यद्यपि कुछेक सालों में मैं उनसे कुछ कटा-कटा-सा था, किन्तु उनकी याद, मुझे ही नहीं, सारे परिवार को आती थी। जब उनकी मृत्यु[1] का समाचार मिला, तो एक जबर्दस्त धक्का लगा। और, उनके (तथा मेरे भी) मित्र श्री मण्डपे तथा वयोवृद्ध डॉ बलीराम दुबे, श्री शैलेन्द्र कुमार तथा अन्यों के साथ रो लेने की तबीयत हुई। पर, ये लोग बहुत दूर-दूर थे। स्वामीजी की मृत्यु पर आँसू बहानेवाले इन मित्रों की तथा स्वामीजी की मूर्ति आँखों में तैरती रही, तैरती रही। किन्तु आँसुओं का भाग्य भी व्यक्ति के भाग्य के समान होता है। ऐन मौके पर दोनों गायब हो जाते हैं। किन्तु, हमारे घर का छोटा दिलीप, जो स्वामीजी के मुँडे सिर पर चढता था, और उनके भाई और उसकी माँ शोकमग्न हो गये। मेरे सबसे बड़े लड़के रमेश को तो उनकी मृत्यु का विश्वास ही नहीं हुआ।

नागपुर के मेरे जीवन के स्वामीजी एक आयाम हैं। उनके बिना मैं उस जीवन की कल्पना नहीं कर सकता। उनका मुझ पर अकृत्रिम प्रेम था। बीच-बीच में हमारी-उनकी छन जाती। ऐसा कई बार हुआ कि हम दोनों तन गये, एक दूसरे से। फिर भी, कुछ समय तने-तने रहने के उपरान्त हम फिर एक हो जाते। किन्तु, मुझे पता नहीं था कि अब जीवन में उनके कभी दर्शन हो न सकेंगे।

मेरे स्वयं के भीतरी विकास में उन्होंने बहुत योग दिया। सच पूछा जाय तो अखबारनवीसी और साहित्यिकता को संयुक्त कर कलम चलाने का अभ्यास उन्होंने करवाया। मुझ पर उनका अविरल स्नेह और कृपा रही। सच पूछा जाय तो वे मेरे जीवन के अंग हो गये। उन्हें भूल जाना बहुत मुश्किल है।

[*नया खून, (श्रद्धांजलि अंक) 1960* में और **समीक्षा की समस्याएँ (1982)** में प्रकाशित। **रचनावली के दूसरे संस्करण** में पहली बार संकलित]

माननीय अध्यक्ष महोदय तथा मित्रो,[2]

आज आपकी इस राजनीति विज्ञान-समिति के तत्वावधान में अपने कुछ विचार प्रकट करने का आपने मुझे जो अवसर दिया है, उसके लिए मैं आपका कृतज्ञ हूँ। स्पष्ट रूप से मैं यह कह देना चाहता हूँ कि मैं न राजनीतिशास्त्र का विद्यार्थी रहा हूँ, न राजनीतिक कार्यकर्ता, और न राजनीतिज्ञ। किन्तु, हम सब लोगों का जीवन-काल, जल्दी-जल्दी होनेवाले ऐसे राजनैतिक परिवर्तनों के दौर से गुजरा है कि

1. मई 1960 में स्वामीजी का निधन हुआ।
2. दिग्विजय कालेज, राजनांदगाँव में दिये गये भाषण का अंश—सं.।

जिन परिवर्तनों ने हमारे-आपके जीवन को प्रभावित किया है। बहुत-थोड़े लोग आज ऐसे हैं जो राजनैतिक घटनाओं के प्रति संवेदनशील न हों। आज हालत यह है कि राजनैतिक घटनाएँ—चाहे वे हमसे सैंकड़ों और हजारों मील दूर ही क्यों न घटी हों हमारे मन पर दबाव और हमारे मन में तनाव उत्पन्न करती ही हैं। पत्रकार जगत में एक लम्बे अर्से तक रहने के कारण, इन घटनाओं के दबावों और तनावों में रहने और उनमें साँस लेते रहने की मुझे आदत भी पड़ गयी है। प्रश्न यह है कि फलाँ देश में ऐसी घटना घटी तो क्यों घटी? वे कौन सी प्रवृत्तियाँ हैं जिन्होंने उस देश में जनमत का रूप धारण कर लिया? अगर हिटलर को जर्मन जनता का समर्थन प्राप्त था तो क्यों प्राप्त था? तो कहने का तात्पर्य यह है कि आधुनिक राजनीति में जनमत का प्रश्न उठता ही है, जनमत के मूलाधार के बिना, किसी देश में एक लम्बे अर्से तक न तानाशाही कायम रह सकती है, न जनतन्त्र। आज रूस, चीन, स्पेन, इजिप्ट, इराक, हिन्देशिया, और पाकिस्तान में अधिनायक तन्त्र अथवा प्राय अधिनायक तन्त्र हैं। इन देशों में से बहुतेरों ने अपार उन्नति की है। साफ बात है कि यह वैज्ञानिक और आर्थिक उन्नति जोर-जबर्दस्ती से नहीं हो सकती। आज अमरीका भी यह नहीं कहता कि रूस की साम्यवादी सरकार को जनता का प्रबल समर्थन प्राप्त नहीं है। अमरीका के विदेश सचिव डलेस ने भी हाल ही में यह स्वीकार किया कि चीन की मुख्य भूमि में साम्यवादी सरकार को जनमत प्राप्त है, और वहाँ गृहयुद्ध की कोई सम्भावना नहीं है। प्रत्येक राजनैतिक विद्यार्थी को यह ज्ञात है कि इजिप्ट और सीरिया में वहाँ की एकीभूत तानाशाही के पीछे प्रबल जनमत है। इसी जनमत के मूलाधार पर खड़े होकर जनरल फ्रैंको पिछले 22 वर्ष से स्पेन में अपना अधिनायक तन्त्र चला रहा है। तो कहने का तात्पर्य यह कि यह आर्ग्यूमेण्ट/तर्क कि तानाशाह सरकार, जनमत के बिना, और उसके सन्दर्भ से विहीन होकर, अपना काम करती है, ग़लत है। ध्यान रखिए कि ब्रिटेन के जनरल क्रॉमवेल ने, ब्रिटिश पार्लियामेण्ट को दरकिनार रखकर 11 साल तक अपनी सैनिक तानाशाही चलायी थी।

किन्तु, जब जनमत बदलने लगता है तो तानाशाहियाँ गिरने लगती हैं। उसी प्रकार, जब जनतन्त्र आगे नहीं बढ़ पाता तो तानाशाहियाँ कायम हो जाती हैं। आपके सामने, हाल ही में, फ्रांस और पाकिस्तान के उदाहरण हैं। फ्रांस की कम्युनिस्ट पार्टी के जनरल सेक्रेटरी ने हाल ही के अपने वक्तव्य में कहा कि हमेशा केवल कम्युनिस्टों को वोट देनेवाली जनता ने, अर्थात् साम्यवादी हमदर्दों ने, जनरल द गाल को वोट दिये, जो इन दिनों वहाँ का तानाशाह है। ध्यान रखिए कि फ्रांस की सबसे बड़ी पार्टी कम्यूनिस्ट पार्टी है। मतलब यह कि फ्रांस की जनता ने खुले तौर पर रेफरेण्डम द्वारा जनरल द गाल [को] अपना तानाशाह बनाया। इतिहास का एक बड़ा भारी तानाशाह, हिटलर, आम चुनावों में सबसे अधिक वोट प्राप्त करके ही जर्मनी का अधिनायक बना था।

[अपूर्ण। सम्भावित रचनाकाल 1960-61। रचनावली के दूसरे संस्करण में पहली बार प्रकाशित।]

समाजवादी निर्माण

कोई भी व्यक्ति जिसे अपने देश का जरा भी मान है, वह इस बात को खूब अच्छी तरह जानता है कि देश मे हमे अनवस्था के दृश्य दिखायी दे रहे हैं। क्या यह बात सही नही है कि हम सब आजकल देश की बिगडी हुई हालत पर सोचते हैं ? पिछडे-से-पिछडा हुआ व्यक्ति भी यह स्वीकार करता है कि देश की हालत अच्छी नही है। अलग-अलग स्वार्थ अपने-अपने अलग-अलग लक्ष्यो की ओर उसे खीचना चाहते हैं। स्वार्थ-परायणता, अनाचार और निन्दा-प्रचार का बाजार गर्म हो गया है। इसीलिए, भारत के राष्ट्रपति, महान् शिक्षक डॉक्टर राधाकृष्णन् ने कहा था कि देश मे आज क्राइसिस ऑफ कैरेक्टर—चारित्रिक सकट, और क्राइसिस ऑफ कलचर—सास्कृतिक सकट छाया हुआ है।

आज यह सकट और भी सघन होता जा रहा है। हमारा शिक्षक इस सकट की छाया मे रहता है। उसका भी हृदय है, उसका भी मन है। वह सवेदनशील होकर क्रिया-प्रतिक्रियाएँ करता है। वह अपनी और जगत् की हालत पर सोचने के लिए मजबूर हो जाता है।

यह एक सही बात है कि जीवन के विभिन्न क्षेत्रो म जो असगत आचार या अनाचार है—जिसे डॉक्टर राधाकृष्णन् ने चारित्रिक सकट कहा—उसकी तुलना मे शिक्षा का क्षेत्र इन सारी बुराइयो से बहुत कुछ हद तक अभी अप्रभावित है। शिक्षा का क्षेत्र एक पवित्र क्षेत्र है, यह सभी मानते है। विद्या दान पवित्र क्यो न होगा ? शिक्षक के हृदय-मन म विद्या के सस्कार होत हैं। अपने भौतिक जीवन के अतिरिक्त, उसका एक मानसिक जीवन भी होता है। किन्तु प्रेमचन्दजी की 'नमक का दारोगा' कहानी के प्रधान पात्र को सही बात, सच्ची बात कहने-करने का जो दण्ड मिला, क्या वैसा ही बदला शिक्षक को नही मिलता ! ! जिन्दगी ने शिक्षक के साथ अच्छा सलूक नही किया।

हमेशा कहा जाता है कि शिक्षक पर विद्यार्थियो के चरित्र-निर्माण का गुरुतर भार है। हमेशा यह कहा जाता है कि राष्ट्र के भावी नागरिको को उत्तरदायी बनाने का कार्य भी उसे ही करना है। यह बात सही है, एकदम सच्ची है। लेकिन नाकाफी है, अपर्याप्त है। उसमे केवल एक खण्ड सत्य है।

किन्तु वह खण्ड-सत्य होते हुए भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। उस खण्ड-सत्य के महत्त्व को कम करके नही आँका जा सकता। शिक्षक का गौरव और शिक्षक की गरिमा इसी मे है कि उसके विद्यार्थी, उसके शिष्य, समाज म अपने-अपने पदो पर पहुँच जाने पर भी अपने गुरुजी का नाम याद रखें, उनके प्रति पूज्य भाव रखें।

किन्तु यह केवल विद्या-दान से नही हो सकता। उसके लिए दृष्टि-दान करना

की पात्रता पर भी निर्भर है। विद्यार्थियो के स्तर अलग-अलग है। उसी हिसाब से यह काम हो सकता है। उसको प्रदान करने की विधियाँ भी अलग-अलग हो सकती हैं।

आज की जिन्दगी का नियम यह है कि [illegible] नहीं होगा।

नही होगा। केवल निराशाग्रस्त और अगतिक होकर बैठने से काम नही चलेगा। इसके विपरीत, जितना ही हम अधिक क्रियाशील होंगे, और शिक्षा के प्रश्नो के बारे म समाज को भी अपने विश्वास म लेने का प्रयत्न करेंगे, उतना ही प्रभाव शिक्षक-समुदाय का बढता जायेगा।

समाज मे शिक्षक-वर्ग का प्रभाव बढना अत्यन्त आवश्यक है, न केवल उनके वर्गीय हितो की दृष्टि से, वरन् समाज के अपने हितो की सुरक्षा के लिए भी यह आवश्यक है।

आज समाज म एक शिक्षक-वर्ग ही ऐसा है, जिसमे चरित्र-सम्बन्धी गौरव का भान अधिक विकसित है। ऐसी स्थिति मे, यदि शिक्षक-वर्ग अधिक क्रियाशील हो सके, और यदि वह अपनी क्रियाशीलता के फलस्वरूप देश मे एक नवीन सांस्कृतिक-नैतिक वातावरण उत्पन्न कर सके, तो इससे अधिक सुखकर कोई चीज़ नही होगी।

दु ख की बात यह है कि समाज की प्रधान गतिविधियो म बुद्धिजीवी वर्ग का विशेष भाग नही रहा है। बुद्धिजीवी वर्ग मे म जो लोग कुछ स्वतन्त्र व्यवसाय कर रहे [illegible]

रूप [illegible]

किन् [illegible]

त्मक उद्देश्यो की ओर प्रेरित कर सकते हैं।

मेरा अपना मत यह भी है कि शिक्षक-सगठन के अन्तर्गत, विभिन्न विषयों पर शिक्षको की विचार-गोष्ठियाँ भी हो और उनमे बाहर के लोगो को भी आमन्त्रित किया जाये। विचारो के आदान-प्रदान द्वारा नवीन बौद्धिक और आत्मिक जागृति अवश्य ही उत्पन्न की जा सकती है।

पण्डित जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व म, देश समाजवादी निर्माण की ओर चल पड़ा है। जो लोग यह सोचते हैं कि हम उस प्रवृत्ति को खत्म कर सकते हैं वे बड़े भारी भ्रम म हैं। देश ही नही, सम्पूर्ण जगत् मे जनता जाग्रत हो उठी है और अपनी चेतना के स्तर के अनुसार स्वय अपने मुक्ति मार्ग पर चल पड़ी है।

भारत पूरे जगत् का एक अंश है। अतएव, यह आवश्यक है कि शिक्षक-वर्ग भी परिवर्तन की शीघ्रतर होनेवाली प्रक्रिया को समझे और अपने कार्य तथा उद्यम से, समाज मे नवीन वातावरण उत्पन्न करने का प्रयास करे।

यह कार्य सरल नही है। किन्तु किसी भी ढग की निष्क्रियता और भी खतरनाक है। शिक्षक-वर्ग के हित देश-हित का अग हैं। देश-हित का अर्थ है, कोटि-कोटि जनता का हित।

इस विशेष अर्थ मे यदि हम शिक्षक-वर्ग के कर्तव्यो का निरूपण करेंगे तो हमे पता चलेगा कि विद्यार्थी के चरित्र निर्माण का क्या अर्थ है। उसका अर्थ है विद्यार्थी म सामान्य जनता के हितो का भान कराना, उसमे उस दृढता का निर्माण कराना जिससे कि वह वास्तविक जन-हित की कभी भी उपेक्षा न कर सके। आज हमे

डॉक्टर राधाकृष्णन् और पण्डित जवाहरलाल नेहरू का नेतृत्व प्राप्त है। यदि हम उन्ही के विचारो को हृदयगम करे उन्ही के विचारो का प्रचार-प्रसार कर सकें तो बहुत बडी बात होगी। सक्षेप मे, समाज के वातावरण को सुधारने का बहुत बडा काम यदि शिक्षक-वर्ग के हाथ से हो सके तो नि सन्देह उसकी उपेक्षणीय स्थिति दूर हो सकेगी और वह समाज मे पुन प्रभावशाली हो सकेगा।

सक्षेप मे, शिक्षक-वर्ग को, यानी हमे, अधिक जागरूक, अधिक उद्बुद्ध, अधिक क्रियाशील होना है। अपनी सास्कृतिक परम्परा को भी, आज की परिस्थिति के अनुकूल अधिकाधिक सार्थक और प्रभावशाली बनाना है।

शिक्षक वर्ग, नि सन्देह, एक उत्पीडित वर्ग है। इसलिए, उसकी चेतना भारतीय जन की सामान्य स्थिति को अधिक सूचित करती है। उसका उत्पीडन तभी दूर हो सकेगा, जब वह स्वय प्रभावशाली हो।

[शिक्षकों की एक सभा मे दिये गये भाषण का अश। राष्ट्रवाणी, जनवरी-फरवरी 1965, मे प्रकाशित।]

[1]

Atya's House
Indore
12 6 42

Dear Nemibabu,

I feel almost criminal about myself, when I find too irresponsible and irrelevantly occupied as I am in worthless jobs and thus undergoing an acute depression which is so very common to me And, you know, I never forgot I have to write to you, but still I was absolutely unable to do so Will you believe what I say ?

After a painfully wasteful period of twelve days of my useless stay at Ujjain, I came to this place hungry of soul thirsty for action And I immediately saw Mr Khandkar[1], had a discussion on various practical problems and came to decide upon all its aspects, thus hurling athwart on the disturbed sea of action—at least for the present time Yes, perhaps you don t like, as it is natural, the use of imaginative language But when I found myself too busy in so many things I felt like being hurled—of course, as I have had no experience of the sort

I am going to stay here for more than twelve days, and I tell you I am romantically attracted towards this new life My reading interest is slowly toning down My mind refuses to take interest in intellectual labyrinths unless it be for some practical purpose near at hand Oh ! how much I am indebted to you ! My dear Mr Milestone !

Especially because I have come to decide upon the psychological fact that I will have to share the responsibility with Dr Joshi , I am devouring all sorts of knowledge about tactics, approaches towards immediate problems, their theoretical as well as practical implications !

1. इन्दौर के एक कम्युनिस्ट कार्यकर्ता।
2 डा नारायण विष्णु जोशी, शुजालपुर में विद्यालय के प्रधान अध्यापक।

Almost a hysteric pain bursts through my heart ! And yet, I know well I *can't do accordingly The wife problem—greatest* of all—is a constant trouble to my mind Not less than a year or two will be required for its satisfactory solution And I claim your help advice, and critical sympathy !

The Indore friends are courteous and very good ! I am trying to make them feel their responsibility of Shujalpur I will write to you later about it meanwhile expecting your letter here at Indore

I simply couldn't pay your Rs 5 A shockingly unfortunate expenditure compelled to sacrifice even your necessities—I simply couldn t do otherwise But I promise to pay you Rs 3 at Shujalpur, and the next instalment for the rest Yes, I will do it

However late, accept my best regards to you. I am expecting your letter

Soviet Bhumi[1] has not reached me Perhaps, they have not sent it to you

After a long time, I had an intimate talk with Virendra[2] ... very cold ! Perhaps, for him, ... matter Psychologically he ... *He is so very good that I* don t know what to write about him Perhaps he is not prepared to pay Rs 32 He asks, Prabhagji[3] will publish the book then why bother, only some time is required On my behalf, I can say I am prepared to do so at any cost I want *publication badly*

Please write all and fully I am waiting for your letter And you know I trouble exactly those who are mine Of course, it is no excuse

Friend, I part

Yours truly
G M M

Bhagubai Dewaskar
Phadniswada
Juna Topkhana
Indore

1 राहुल साकृत्यायन की पुस्तक।
2 कवि वीरेन्द्रकुमार जैन, तारसप्तक के शुरू मे प्रस्तावित कवियो मे से एक, जो बाद मे कई कारणो से नही रह पाये।
3 प्रभागचन्द्र शर्मा तारसप्तक के शुरू में प्रस्तावित एक अन्य कवि मित्र। ये भी बाद मे उस योजना मे नही शामिल हो पाये। यहां तारसप्तक के प्रकाशन के लिए प्रस्तावित कवियो द्वारा सहकारी आर्थिक साझेदारी की ओर इशारा है।

Freeganj, Ujjain
18 10 42

Dear friend and comrade,

Mr. S N Vyas[1] has not given me any definite answer Tomorrow I will drop a letter to you wherein you will find something pushing towards the making of a final decision, as far as *Vikram* is concerned As to the other one, (though the Seth has come) our war officer is sick and thus the matter is pending But it is earnestly hoped that you will get some answer, some reply from them as late as the 22nd of this month and definitely at that time

It has been pretty well not to send your book, because, first of all, I was so very busy in doing nothing that I could not finish it Secondly, I had a premonition that, any way, you are not leaving the place so soon The soil is sticky and also productive and as such Shujalpur finds no reason as to why it should not stick to you, if you don't want to stick to it Any way, rest assured you will get the book without finding any reason for impotent exasperation Will you tell me or rather assure me friend, that you will always be writing to me, off and on As you know, I am a peculiar sort of man, and always in need of one whose feeling beneath his dear advices and intimate criticism creates a glow in me—the glow of a passionate love and a passionate imagination I remain cold and even seemingly indifferent, as my mental make up is not based on strong organisational basis. But I assure you, friend, that I pine for a real feeling. Feelingless, I am cold as a clod

The life of action I am leading, that is why I am not even able to concentrate on other serious stuff The life of action— life that is guided by action, that s all Don't think I am fairly doing that

Any way, good-bye, I shall be able, yes, no doubt, to tell you those things which I would never mention in your

---

1 सूर्यनारायण व्यास, विक्रम पत्रिका के संस्थापक/सम्पादक और उज्जैन के प्रतिष्ठित साहित्य प्रेमी।

presence Perhaps our letters will be, as far as I am concerned, heart-opening and dear

Bye-bye That's all

Yours god-knows-what
G.M Muktibodh

[3]

Mashir Manzil, Freeganj,
Ujjain
12 3 43

Dear Nemibabu,

Some five days before I had posted a letter to you, which I hope you could not have received The address was perhaps wrong I don't know, of course, that the address on the present letter is right You did not in your last letter, write it And therefore all the trouble

If you at all get this latter, I shall be highly benefited, because it is important I don t know in what mood you are We bourgeois and petit bourgeois are moody I say this with special reference to myself No offence to you But you will do me good if you unlike myself, reply to me as soon as possible In the present case time factor counts much

What I am going to,tell you is this, that after the 15th of May I am thinking of leaving this place for good Now my purposes are two Firstly, I shall leave this friendless place , secondly, I will be able to get better atmosphere for the medical training of my wife Therefore I am searching a big place and a handsome job and I hope I shall get one

I think always of the extreme The question is answered by me in this way I will join Ordnance Factory I shall get not less than Rs 60 and in that I shall be able to maintain a servant to relieve my wife of her house work This is my last choice

I am attracted to this job in more than one way I shall do a new work, a new life and perhaps a hard struggle I want all this, with my wife getting on well with her education.

But there is a new difficulty which I could not solve as yet I have been again made a P M [1] I have got to do certain

fixed duties, and it is a happiness to do them In an ordnance factory I shall lose this More than that I shall have to resign from the Party And I cannot even bear the idea of this, sentimentally speaking, though I am prepared to do this if the Ordnance Factory is the only choice , because in this way I shall solve an otherwise life-long question, and I shall sacrifice my sentiment to this objective question But, I wish, I should not do this, because I shall lose touch of the outer world. I can not read even *People's War* [2] there, unless I exercise my cunning But don't think, that I am afraid of this

On the other hand, I have created a field here If I could stay next year, one could see the beginnings of a regular student movement, and the beginnings would have been promising But I am really unfortunate in that I cannot reap the fruit of my own seed

So the straight question to you What is your suggestion about this ? Can you exercise your influence in U P or Bihar for some remunerative job ? If I get a non government job, I can retain my touch with the Party Otherwise all is lost No P M [1] can accept a government job

This is the difficulty

You have not written to me since long Why I have not replied to your's I shall tell you afterwards What way do you lead your daily life ? I have left tea and smoking altogether I get up early in the morning take physical exercise and a cold water bath My children and wife are healthier and brighter

I am really very very anxious to know about you, about your movements and activity, your daily life and your thoughts

Here, as I am in a room of Bimal Hospital with a sick comrade, I cannot write to you a good letter Therefore please excuse me I wanted to write to you a lot

How is Bharat Bhushanji with his Bindu ? There are three B's and bees How are you getting on with your scheme ? My B C to Rekhabai and love to Rashmi

Yours truly,
G M Muktibodh

---

1. Party Member (कम्युनिस्ट पार्टी का सदस्य)
2 कम्युनिस्ट पार्टी का साप्ताहिक मुखपत्र

21 4 43

P S This is ■ letter written days before I think there is no choice left now I have to decide in favour of Ordnance Factory The best thing is that I shall be paid highly Due to my extravagances and reckless life (I have left tea and smoking only nominally, though I have resumed physical exercise), there is a heavy debt over my shoulders I have to pay 25 rupees to the school And I am bankrupt What a situation I I lose self-confidence before such heavy debts and I am in worst moods You should not leave Calcutta now, only for subjective reason You have been acting highly subjectively since the Doctor left Shujalpur You can get a service in Model High School on Rs 50 next year But I think you should not like this I have decided to resign from the Party, though I have not yet expressed it No one know this as yet

Still if possible, will you see some post for me not in big centres like Calcutta but in the interior, in small towns? Inform me and advise me on this subject

I got your address from Mr Machwe Hence delay My novel is going to be a big one

I hope you are well Write to me an exhaustive letter How do you find the place, etc ?

You must be on with your work as far as your wife s education is concerned The world outside awaits you

Rest is O K I am friendless here But I ought not to require them

Will you write to me soon ? I have called back my matter from Adneya [1]

Yours sincerely
G M Muktibodh

[4]

आगामीकल कार्यालय
खडवा
14-7 1943

अत्यन्त जरूरी

प्रिय नेमि बाबू,

मजे से आ गया। बहुत आराम मिला ट्रेन में। आज ही जा रहा हूँ।

1. अज्ञेय

प्रभाग को टाइपराइटर की घोरतम आवश्यकता है। मेरे जाने के समय तुम भारतजी से टाइपराइटर की बात कर रहे थे न? डा० चतुर्वेदी के पास है या उनके किसी पहचानवाले के पास यही तो कह रहे थे। सो उसे जमवा दो। कीमत और कम्पनी के बारे में लिखो प्रभाग को। चाहे जैसे उसे तय करवा दो। शायद 100 रु० ही तो कीमत कह रहे थे। सौ से ऊपर की गुंजाइश नहीं। पर फिर भी कोशिश करो और 100 तक न आओ। और इसके बारे में जल्दी से-जल्दी पत्र लिखो। प्रभाग की कविताएँ लिये जा रहा हूँ।

Syt Nemi Chand Jain M A
203 Chitteranjan Avenue
Calcutta

तुम्हारा अपना
ग० मा० मुक्तिबोध

[5]

Yashwant Bhawan
Freeganj
Ujjain
20 [illegible] 45

Dear Smt Rekhabai

You will be surprised to see my letter It is so unexpected and urgent

On the 1st of June I had been to Barwa Sagar with Nemi babu He told me he would stay there for a fortnight or so and then would proceed to Lucknow and stay there He was not quite definite That is the trouble

I am sending him a very urgent letter on Barwa Sagar address hoping that it would be redirected wherever he is Still I want to know definitely as to which place he has gone and chosen for a month s or a fortnight s stay Will you very kindly let me know all this ?

I had gone to Bangalore and come back intact I wanted to see you at Bombay But monsoons prevented me

This is my first letter to you I am certain you will respond to it *immediately* My best wishes and regards And hope you are quite well I wish we should have talked more

Yours truly
G M Muktibodh

Com Rekhabai Jain
of Central Squad
The Headquarters of the Communist Party of India
People s War Office
Raj Bhawan
Sandhurst Road Bombay No 4

21 4 43

P S This is a letter written days before I think there is no choice left now I have to decide in favour of Ordnance Factory The best thing is that I shall be paid highly Due to my extravagances and reckless life (I have left tea and smoking only nominally, though I have resumed physical exercise) there is a heavy debt over my shoulders I have to pay 25 rupees to the school And I am bankrupt What a situation ! I lose self-confidence before such heavy debts and I am in worst moods You should not leave Calcutta now, only for subjective reason You have been acting highly subjectively since the Doctor left Shujalpur You can get a service in Model High School on Rs 50 next year But I think you should not like th s I have decided to resign from the Party, though I have not yet expressed it No one know this as yet

Still if possible, will you see some post for me not in big centres like Calcutta but in the interior, in small towns ? Inform me and advise me on this subject

I got your address from Mr Machwe Hence delay My novel is going to be a big one

I hope you are well Write to me an exhaustive letter How do you find the place, etc ?

You must be on with your work as far as your wife s education is concerned The world outside awaits you

Rest is O K I am friendless here But I ought not to require them

Will you write to me soon ? I have called back my matter from Adneya[1]

Yours sincerely
G M Muktibodh

[4]

आयामीकल कार्यालय
खडवा
14 7-1943

अत्यन्त जरूरी

प्रिय नेमि बाबू

मज़े से आ गया। बहुत आराम मिला ट्रेन मे। आज ही जा रहा हूँ।

1 अज्ञेय

प्रभाग को टाइपराइटर की घोरतम आवश्यकता है। मेरे जाने के समय तुम भारतीजी से टाइपराइटर की बात कर रहे थे न? डा० चतुर्वेदी के पास है या उनके किसी पहचानवाले के पास, यही तो कह रहे थे। सो उसे जमवा दो। कीमत और कम्पनी के बारे में लिखो प्रभाग को। चाहे जैसे उसे तय करवा दो। शायद 100 रु० ही तो कीमत कह रहे थे। सौ से ऊपर की गुंजाइश नहीं। पर फिर भी कोशिश करो और 100 तक ले आओ। और इसके बारे में जल्दी से जल्दी पत्र लिखो। प्रभाग की कविताएँ लिये जा रहा हूँ।

Syt Nemi Chand Jain M A
203 Chittaranjan Avenue
Calcutta

तुम्हारा अपना
ग० मा० मुक्तिबोध

[5]

Yashwant Bhawan
Freeganj
Ujjain
20 6 45

Dear Smt Rekhabai

You will be surprised to see my letter It is so unexpected and urgent

On the 1st of June I had been to Barwa Sagar with Nemibabu He told me he would stay there for a fortnight or so and then would proceed to Lucknow and stay there He was not quite definite That is the trouble

I am sending him a very urgent letter on Barwa Sagar address hoping that it would be redirected wherever he is Still I want to know definitely as to which place he has gone and chosen for a month s or a fortnight s stay Will you very kindly let me know all this ?

I had gone to Bangalore and come back intact I wanted to see you at Bombay But monsoons prevented me

This is my first letter to you I am certain you will respond to it *immediately* My best wishes and *regards* And hope you are quite well I wish we should have talked more

Yours truly
G M Muktibodh

Com Rekhabai Jain
of Central Squad
The Headquarters of the Communist Party *of India*
People s War Office
Raj Bhawan
Sandhurst Road Bombay No 4

Freeganj,
Ujjain
21 6 45

Dear Nemibabu,

You will be surprised to see this letter coming as it does from this place of attrition The events which lead to this inevitability are briefly as follows

When I came here on my way to Bangalore I had a serious *talk with Shanta on the issue of placing her on some place* for education and so on Out of the bewildering mess of pathetic reactions of hers I could gather that she is not prepared, due to an extreme lack of self confidence, to live without me for any number of months till she gets the necessary *primary education which would put her on her footing I gave* her the assurance that I would try to keep her at Bangalore and will try to do the best for her, circumstances permitting I realized her difficulty which was of a deeper psychological character A woman living under home repression without *education and without socialized self, who had led an almost* abnormal life of mental tension, cannot but feel herself imbecile and invalid as she did She cannot live without protection' till she stands on her own legs, that is gets education to some extent

I was *quite confident* that *I would be hiring a room for* her in Bangalore and will face all the difficulties successfully which would crop up in its course of fulfilment

But the life at Bangalore was unique in its lack of freedom There was not a single chance of going out of the area for months together No question of contact with people outside It was only after a special application that one got the permission The time at the disposal was certainly quite insufficient Moreover there was *absolutely no scope* of writing all these and other difficulties to you or to any other person on earth *Any contemplated change in (the) place of Shanta was* impossible, due to lack of any explanation of difficulties on

my behalf (which was forbidden) thus making my words unconvincing and disturbing I hope you understand the whole situation The only way was to get out of the whole mess and I got out And came here via Bombay

And I dont know how will you take the whole thing, whether you will understand the whole situation I am not quite sure If the main purpose of going to Bangalore could not be fulfilled no use it was to stay there I did not go for money only

On my way back to Ujjain I stayed for some three hours at Khandwa While talking with people at the *Agamikal* office I spoke out, 'Why not call me here, and I shall be an asset to you Get me a job of Rs 80 and I come' And they were overjoyed at this commitment of mine Prabhag was not there otherwise things would have taken some shape They assured me that a job was a certainty

I thought two things, first it would be a nice experience to be an editor the possibility of my name appearing on a magazine It would involve me in some serious writing work and contact with people—sympathetic people And I would come in contact with literary luminaries And thus my isolation would slowly be broken

Secondly, it would certainly be a necessary and right first step to independently organize my life—family life at Khandwa—Khandwa entailing less troubles as far as the material side is concerned Though Khandwa has its own disadvantages, it has got advantages of its own too Personally speaking, I would be better able to devote my attention to her and see that she at least finishes her primary education. She will have more time less worries And that her first social intercourse will not entail many complications The life at a very big city will do two things first, I will have not much time and energy to spare for her Secondly, she will not be able to push on with her social life without necessary primary education, economic burden apart

The first experience of healthy independent family life at Khandwa will vitalize us and this first fulfilment will give

greater self-confidence and open new horizons for her Khandwa will only serve as a *springboard* for the new attack

So taking into consideration the present situation, I am in favour of Khandwa Khandwa will be that [for me] what Shujalpur was to you

This is my idea What do you think ? Please write me back as soon as possible

There are two outstanding questions which are continuously troubling me since I came here The first is that I must quit this place within a month anyhow Secondly, your M O of Rs 150

I must get money as soon as possible so that my final liberation may be accomplished This lingering business gets on my nerves

I know you are hard pressed and not in a proper mood, particularly because of your unsettled condition

But this final push requires your force, moral and material As a matter of fact, you don t know how I depend upon you for this purpose This is the most critical and decisive hour of my life

Will you give me your golden companionship, your blessings ? I am entering a new golden land—the land of liberation, where I have got new tasks and new hopes

I don t know where you are, at Lucknow ? or Barwa Sagar ?

I am writing a letter to Rekhabai for the information

When you write me a reply please make it a point to write all the necessary details about your movements

I hope you are quite well I could not see Rekhabai at Bombay because I stayed there for so short a time and I had no umbrella It was raining very heavily

Well, your reply is as necessary as air and water, and your M.O. the stick to beat the enemy out

I do not want to express the emotions which I feel at this time because they are about you And you don't like praise from your friends

I hope you will soon send the reply

Yours truly,
G M M.

[7]

Freeganj
Ujjain
23 6 45

Dear Nemibabu

A few days back I wrote to you that I have a mind to choose Khandwa as a springboard for future onslaughts But on deeper consideration I find that it would be far better to be in the midst of a long bitter struggle for final achievement as the short skirmishes don t go very far towards the solution of my problems

Leaving metaphors apart Khandwa entail ng lesser struggle hasn t got those advantages which would play an important role in economic or intellectual development of my family This idea leaves me where I am and I am bound to think twice before I choose one for the other

I *wish to go that place which would offer me scope for* both economic and intellectual development of my family

Don t you th nk Agra will be a suitable place for me ? After the settling of dust and din I might even think of appearing in M A which I so much desire

I am so very anxious to receive your letter Any job would do It does not matter if it is a low one for the time being If it is possible to get a good job—from 100 to 150—why not stick me up there ? If it is not possible the other course is open

But things ought to move with greater swiftness and certainty The longer is the stay here the greater are the complications And I have had much of them

The final push the final thrust requires an almost superhuman force

I am unable to write anything that is personal in a deeper colourful way

Shanta received Rekhabai s letters and you can guess what it was to her A *sunshine* of course

I am slipping down the slope of progressivism (as a phenomenon of Hindi l terature) on the plains of modernism

And I find that though not as a theory but as an accomplished attempt, Hindi 'progressivism is imbecile, narrow and much more hypothetical than real At best, it is a new desire healthy in itself but unable to be too forceful, as it is not backed, supported and transmuted by a wide field of artistically humanizing experience and knowledge Nowadays I am thinking of literature more seriously Last seven or eight years were, in one way or the other, an impediment towards this But now I think I must be on with it

It was with a new confidence and joy that I returned from Bangalore I still possess that But God forbid, I may not fall into the ditch that is Ujjain

Shanta is so happy that we are leaving this place

There is an angelic spirit that is guiding both of us, which is behind us, before us and the best it is that it is *with* us. We feel its loving breath in the murmurings of the neem tree And that angelic spirit does not want to leave us !

And you know the name of it ? No, I won t tell you And you know that you know it

Rest O K , friend

Your letter is an urgent necessity

Before parting—

We have bathed, where none have seen us,
In the lake and in the fountain,
Underneath the charmed statue
Of the timid bending Venus,
When the water-nymphs were counting
In the waves the stars at night,
And those maidens stared at you
Your limbs shone through so soft and bright
But no secrets dare we tell,
For thy slaves unlace thee
And he who shall embrace thee,
Waits to try thy beauty s spell

(Beddoes)

Leave the voluptuous colouring of this bit and take it in a

more suitable spiritual sense Substitute 'angelic spirit' for Venus and you have got it

Adieu

Yours truly
G M Muktibodh

[8]

Freeganj,
Ujjain
1.7 45

Dear Nemibabu

Some seven days back I had written to you on Barwa Sagar address hoping you to be there In the meanwhile I have information from Rekhabai that you are either at Hathras or at Agra and by now you must be on your way back to Agra So I am now sending a copy of this letter on Agra address

When we meet together you will know the full account of my Bangalore life and the conditions that led me to take those steps which ultimately gave me discharge from that place. This is not the place to expatiate upon that point, nor it is advisable because in that case this letter might not reach you at all Any way, rest assured that it was for the best that I had to consciously unmake what I had made

But the question remains and now more forcefully and with the urgency of averting a possible tragic situation *I must get a job any job in the immediate future* Does not matter if it is a not satisfactory one, at present Let that be a spring board for future attacks If I get a good job certainly it won t matter But if I don t and get only an ordinary one, certainly it should not be rejected

But time factor is important I want to leave this place *as soon as possible* The whole situation warrants this Other wise, the same attrition and now with an added force

In addition to this there is the question of money Had I stuck to the former post at Bangalore 150 would have done the trick But now it appears that it won t Any way I wish it should not be an impediment in my way Will you be able

to send 200 ? Will you be able to send at all ? These are the questions which are a source of great anxiety to me

But if nothing can be done, you must send as much as you can I will leave other debts as they are and will try to remove them afterwards. *No more continuation of Ujjain life*

How good it will be if you send 150 at least. Otherwise I will appear a tragic fool in my own eyes and in the eyes of others

After a cool reflection I have rejected the Khandwa possibility If you can get me a job of teachership, it does not matter, at least for the time being Personally, Agra seems a suitable place from all points of view

I don't know anything of you Have you decided to live at Agra ? Your letter is a great urgency I must hear from you as soon as possible I am passing my days in extreme anxiety, and not keeping well at all

I hope you remember that I have given intimation of my resignation to the school long before

Machwe is not here I wrote a letter to Rekhabai and got reply in due time *Wish to see you now Call me at Agra as soon as possible* Get me a job there—any job I think it should not be below 80 at any cost or my income should not be below 80 I will take my wife and child with me But please, QUICK

Waiting for your reply [1]

Yours affectionately,
G M M.

[9]

D 53/66, Luxa
Benares
8 10 45

Dear Nemibabu

I am simply ashamed to appear before you now Your

1 इस पत्र के बाद और नेमि के अगले, बम्बई से लिखे 29 8 45 के पत्र के बीच के एक-दो पत्र शायद गुम हैं। इस बीच मुक्तिबोध बनारस पहुँच गये थे और नेमि जुलाई के अन्त या अगस्त के शुरू मे बनारस होते हुए बम्बई। नेमि के आगरा या बरुआसागर रहने अथवा मुक्तिबोध के आगरा मे कोई काम लेने की योजना छोड दी गयी थी।

anxious loving letter (seemingly) I ignored But, I hope, you have not felt yourself hurt, though I know you have been anxious (unconsciously, if not consciously) to know my reactions about your decision

To tell you the truth, the very first reaction was rather unpleasant, because, in spite of myself I imagined you in U P. to be very near me I had come in *your* province This idea had stayed in the secret corner of my mind

But the next thought corrected me Your plan of staying in Barwa Sagar with your father might be an example of petit-bourgeois wisdom but the categories of life of that line would have 'clipped your wings After all, aren t we Hamlets of the neo Shakespearian age guided by some ghost of an ideal of the father image and avenging upon the seducer of our mother—the class from which we sprung, the social reality of which we are the product ? Aren t we battling with the seducer, i e the bourgeois reality and its fiance the conspirator mother, the tender petit bourgeois reality of *Samskaras* ? if you just try to know the spirit of Hamlets aren t we as possessed of the spirit of Hamlet s father as he himself was ? And from the absolute subjective point of view on the subjective side, aren t we as tragic and dark and gloomy ? I know that over and above personal tragedies there is the great epic of greater movements begotten by nature flowing in the sociological categories And I happen to be the advocate of that elemental optimism over and above the dark shadows of the subjective world

That is why the poem I took down from you in Benares was in a peculiar way of my own unpleasant The Barwa Sagar life had done the whole thing—a beautiful poem and frustration

Just these thoughts convinced me that your Bombay life would be far higher and happier and a just solution I am certain you are doing some writing work also and find yoursself cheerful and healthy spiritually

I hope Rekhabai is doing well and learning what is to be learnt That way also your stay at Bombay is full of substance and significance Perhaps if my expression is right, you are happy at musical efforts and experience

[10]

वही स्थान और वही टेबिल[1]
7 11 45

प्रिय नेमि बाबू,

न, नेमि बाबू, इस प्रकार से तो काम नही चलने का। आखिर frustration है तो रहे, वह इतनी बुरी चीज नही जितना उसका gloom। न, इसको दूर करना ही पडेगा। यह नही कहता कि आप हमेशा इसी mood मे रहते होगे। पर जरा सोचिए तो सही। कि जिन्दा रहने का हक तो हमे है ही। और यदि लोग हमारी वैलिडिटी नही मानते तो न मानें। अभी हमने किया ही क्या है। हम अभी पुस्तक के भाव हैं—अलिखित पुस्तक हैं। अभी से उस पर आलोचना कैसी ? अभी से यदि हम निश्चयात्मक आलोचनाएँ भोगने लगें, या लोग करने लगें तो हमारे सबसे बडे magnum opus की भ्रूण-हत्या ही हो जायेगी। न, बाबा, ऐसी गलती न करो।

हमारी सबसे बडी विपत्ति यह नही कि हममे frustration है, वरन् यह कि उसकी जैसी परिस्थिति हमे चारो ओर से घेरे है। यदि उचित परिस्थिति रहे, बने, या हम बनायें तो frustration के काले नाग की फन हम मरोडकर तोड देंगे।

बात यो है कि हमने अभी अपनी निजी जिन्दगी बनाना शुरू नही किया है। हम अभी तक वायवी आदर्शवाद से ही प्रेरित हैं, यानी हमारे thoughts विचार नही, वरन् मात्र मानसिक प्रतिक्रियाएँ है। और हम एक अर्थ मे जरूर बह जाते हैं बाहरी परिस्थिति के प्रवाह मे, परिणाम—हमारा अपना काम यो ही अधूरा रह जाता है। कम से कम मेरे अपने बारे मे तो यह सोलह आना सही है, और इसके प्रतिक्रियास्वरूप उत्पन्न होती है घोर ग्लानिपूर्ण अन्तर्मुखता जिसे आप frustration कहते है।

इसके लिए आवश्यक है हम अपनी जिन्दगी को ठीक-ठाक जमा लें एक स्थान पर, और फिर अपने मन की पूरी एकाग्रता से ऐसा कार्य हाथ मे लें और पूरा कर डालें। आखिर frustration वही व्यक्ति अनुभव करता है जिसका कोई निश्चित जीवन-कार्य (mission) है, और उसके आरम्भ करने मे आन्तरिक और बाह्य

---

1 सरस्वती प्रेस, बनारस कैण्ट। यह पत्र वास्तव मे 26 10 45 और 30 10 45 के पत्रो के बाद मे लिखा गया था। पर उन्हे तब अलग से नही, इसी पत्र के साथ एक ही बडे पैकेट मे भेजा गया, जिसका जिक्र इस पत्र के अन्त मे है।

अनेक बाधाएँ हो। गलती हमने यह की है कि पूरे बनने के पहले ही प्रकाश में आ गये हैं। यानी, हमारी शक्ति से लोग अपरिचित हैं और गुण-दोष से परिचित। अब उन्हें हमारी शक्ति का भी परिचय हो जाना चाहिए। अपनी अन्त शक्ति का यों अपमान न कीजिए, नेमि बाबू।

क्या यह सही नहीं है कि शक्ति की एकाग्रता और वैज्ञानिक ईमानदारी हमसे सबकुछ करा सकती है? इसका अभाव हममें निश्चित रूप से नहीं है, जो भी बहुत बार हम उसे स्वीकार कर लेते हैं। हमारी अनेकों आत्मवंचनाओं में से यह भी एक है। हमारी गलती यही है—महान अपराध भी यही है कि हम अपने निजी कार्य को स्थगित कर देते हैं, postpone कर देते हैं।

बस, अब जाने दो। आप मुझसे अधिक सशक्त हैं और इन बातों को जानते भी हैं। परन्तु बम्बई की जिन्दगी आपको ठीक नहीं पड़ती, यह सच है।

अब वास्तविक परिस्थितियाँ बतलाइए, यानी यह बतलाइए जो घेरे है, जो काबू में नहीं आ रहा है। और कि भविष्य के बारे में आपने क्या सोचा है? रेखा-बाई के future programmes क्या हैं और उनके साथ आपके क्या होंगे?

पिता बनने का मेरा आयोजन बस समझ लीजिए कि एक आपत्ति है। और अन्तिम आश्रय तो अपना धैर्य है ही। यदि जिन्दगी में ठिठुरते ही रहना है तो इसके सिवा कि रोओ और कोई चारा तो है ही नहीं। इसलिए, अब तो बिल्कुल petit-bourgeois दृष्टिकोण, यानी दो हँस के मीठी बातें कर लो, परस्पर का सौहार्द और स्नेह जता लो, और अधिक से अधिक दो कप चाय पी लो, इससे अधिक और कुछ तो है ही नहीं। न हो सकता है। इधर रमेश काफी बीमार था और मैं भी। लेकिन उसे उज्जैन नहीं भेजना चाहता। जैसा है वैसा चलेगा।

जैसे आप बिल्कुल अकेले पड़े हैं, वैसा मैं भी। निःसंगता अखरती है। आप अपने पत्र में भी सचमुच बहुत दूरता से बोलते हैं। मालूम होता है मेरे पहले पत्र से आपको तकलीफ हुई, काफी। शायद, इसीलिए आप किसी abstraction का सहारा ले रहे हैं, या आपने बहुत भारी, सघन अवस्था में पत्र लिखा है।

कविताएँ सुधारते-सुधारते नाक में दम आ गयी है। कैसी विपत्ति मोल ले ली। पर अब तो करना ही पड़ेगा। रास्ता ही वह है। अपनी नकेल को खुद हाथ में लेकर ही अब चलना पड़ेगा।

देखिए, फुरसत तो आपको मिलती ही नहीं, सो तो मिलना ही मुश्किल है, पर पत्र की आवश्यकता कम नहीं होती, वरन् वह बढ़ती ही जाती है। आखिर एक ही तो भार हलका करने का उपाय है। जानने बूझने और पाने-पहचानने का एक ही तो मार्ग है। फिर उसकी इतनी अवज्ञा क्यों?

और आप कुछ नही लिख पाते, तो पत्र तो लिखिए। इस बहाने से ही मुझे पत्र आया करेंगे। देखिए कितना स्वार्थी हो गया हूँ, जैसे बच्चा स्वार्थी हो।

बस अब आपके पत्रो की ही आवश्यकता है। साथ, दो पत्र[1] और है, मेरी झक के नवजात पुत्र हैं। शेष बातें विस्तार के साथ लिखिए और नियमित रूप से अवश्य लिखें। श्री रेखा बाई को प्रणाम।

आपका सस्नेह
ग मा मु

पुनश्च—अभी पत्र दूसरी बार पढा और genius वाली बात मन मे अटक गयी। हे नही और समझते हैं genius। वास्तविकता यह है कि हम genius है यानी वह शक्ति बीज रूप मे है परन्तु हम उससे इनकार करते हैं। अपने प्रतिदिन के चलने-वाले जीवन मे। यानी उसका assertion नही करते, अर्थात् हम उसके विकास और प्रसार के आग्रही उचित मात्रा तक हो नही पाते। क्यो? इसलिए कि उस शक्ति के विकास के लिए हम प्रयास नही करते, दृढ निर्धारण। परिणाम, हम अपनी जमीन को छोडकर दूसरे की कुर्सी पर जा बैठते हैं। और फिर? आस्था और विश्वास खो बैठते हैं। यह है एक दुष्ट वर्तुल (vicious circle)। साकृत्यायन को कोई bourgeois या feudal क्यों नही कहता? क्योकि जिस जमीन पर वे खडे हैं वहाँ कोई टकरा नही सकता। हममें भी त्याग की, सहनशीलता की, कार्य की, बुद्धि की और लेखनी की शक्ति है। क्यो नही हो सकती? वह है ही।
The opinion *we have of ourselves is more important than* what others think of us Yes, most certainly so

And why I am writing you all this! Because I feel that we are just all beginners, that we have got the greatest advantage of being so observing all and doing what our *reason* best tells us

We have not even taken any serious work in our hands, we have not thrown full weight over it Then what reason have we to pay greater *homage and unconscious* respect [redacted] those who hold offices at the present time, particularly when we know that Tolstoy was not made in [redacted] day, that Rome was

---

1 *26-10-45* और *30-10-45* के पत्र। रचनावली के पहले सस्करण मे ये दोनो पत्र कालक्रम से दिये गये थे। पर अब यहाँ इस पत्र के बाद मे दिये जा रहे हैं क्योकि यद्यपि ये लिखे पहले गये थे, पर भेजे गये 7 11 45 के पत्र के साथ ही एक पैकेट मे।

not built in a moment that *Ramayana* was not written with in a moment s notice Perhaps all the greater figures in world literature were regarded and disregarded only in this way ! No, man, have *patience*, we are meant for a greater future !

You know I am more pessimistic than you, gloomier, darker and unhappier A dethroned king I am But what of that ! We must never be pessimistic about some fundamentals at least And must build up by work an incorrigible faith in our victory, final destination

The romantic boyhood life with all its glooms and gleams had really begun with a fundamental hope Is that going to have the [fate] of Tarim river in the desert of Sinkiang ?

You have raised me from the abysmal inhuman depths of Ujjain and I am not going to lose you so easily I have made a clean breast become naked totally, before you and I am not going to let you ever think of committing some fallacies on first fundamentals

You have got the weakness for music, I have for scientific abstract subjects and tea and other vulgarities, and Lenin had for chess-board, hunting and Latin, but he left all knowing his life work would suffer And so now we have got to do the same That is all Either this way or no way

Just it was a sort of monologue I was talking to myself, fighting with a shadow and a reality We must accept one and reject the other

Waiting for your reply I am far happier here than [at] Ujjain and can face many difficulties, many more only some encouragement and inspiration is necessary

Rest is O K Your letter an urgent necessity as usual And wish you happy musical experiences

Yours affectionately
G M M

N B

The letter has become very long And I am putting two others I hope they are not a weight to you Any way please do reply earlier

Yes, again, about my fatherhood It was all so peculiar

and strange For first two months perhaps we did not pay any attention We, packing and unpacking, changing houses every now and then Then came the idea I personally took many troubles to get some medicine or other Many assured me, but to no result The result was I resigned myself And now like a good petit bourgeois gentleman I am seeing my own way Funny history, is nt it!

Affectionately yours
G M M

[11[1]]

सरस्वती प्रैस,
बनारस कैन्ट
26 10 45

प्रिय नेमि बाबू,

आपका पत्र नही। समय का अभाव नित्य से अधिक ही होगा। पर, याद आपकी आती रहती है। आजकल धूप बहुत अच्छी खिलती है और मन तैर-तैर उठता है, और आपकी याद भी इसी सुनहल रास्ते से उतर आया करती है।

गो मैं यह सोचता हूँ कि यह सब गलत है। दिन के बँधे हुए कार्य को अधिक बाँधकर करने के पक्ष मे रहते हुए भी कामचोरी से दिली मुहब्बत टूट नही पाती। मैं मानता हूँ कि कर्त्तव्य ही सबकुछ है। पर उसके न करने का उत्तरदायित्व मानो मैं अपने ऊपर नही लेना चाहता। क्य। जरूरी है कि कर्त्तव्य किया ही जाय, और उस समय आनेवाली आपकी याद को बाहर ही खडा रख मन के दरवाजे को बन्द कर दिया जाय। कर्त्तव्य के फलसफे की बात ज्यादा समझ म नही आती।

इसी कर्त्तव्य ने तो लोगो को पगु कर दिया है उनके हृदय के पख तोडकर उसे अधिक सामान्य बना दिया है। सरदी की पारदर्शिनी, हल्की हल्की चोटें करनेवाली यह धूप और उसका उष्ण स्पर्श मानो मुझे जगा देता है। मन दैनिक नीद से जाग उठता है। वृक्षो के पत्र-सभार पर फलकर उनके गाढे हरियाले अन्तराल मे छाया-प्रकाश उत्पन्न करनेवाली यह धूप मन मे सपने जगा देती है। कोई विलास-स्वप्न नही वरन् विजय-स्वप्न। जिन्हे देख ल पुराने मकान की जीर्ण मुंडेर पर बैठकर दूसरे के आँगन मे ताकनेवाले लोग—कर्त्तव्य के पुराने मुहल्ले के बाशिन्दे।

सचमुच अब सारे कर्त्तव्य से आजादी चाहता हूँ। चाहता हूँ मात्र कार्य, अपने

---

1 मुक्तिबोध द्वारा अपने 7 11 45. के पत्र के साथ ही भेजा गया।

अनुकूल। यह नहीं कि Petit bourgeois कर्त्तव्य चलते ही चले जायँ और मैं उसमें फँसता हुआ ही चला जाऊँ।

अब मैं जिन्दगी के प्रति उदास नहीं हूँ। पहले उसकी शिकायत थी। अब तो उससे तकाजा है, माँग है।

रोज़ लिखने की सोचता हूँ। लिखता भी हूँ, पर बहुत थोड़ा। आप विश्वास नहीं करेंगे, एक कविता को दुरुस्त करने के लिए छह घण्टे लगते हैं। मैंने कई सुधार भी दी हैं। कई तो सुधारने की प्रक्रिया में परिवर्तित हो गयी हैं। पता नहीं कब तक मैं कविताओं को यों सुधारता बैठूँगा।

आपसे बड़ी-बड़ी शिकायतें हैं। पर अभी इस समय नहीं। बाहर बहुत नरम धूप खिली है और इस समय सोचने का कोई उत्साह नहीं। यदि आप यहाँ होते तो आपको पकड़कर मैं रेस्तराँ में ले जाता और काम की और अपनी ऐसी तैसी करता।

यह बतलाइए कि आपने इधर कुछ लिखा? लेकिन फुरसत तो आपको भी नहीं मिलती होगी, जो भी आपका समय खूब मज़े में कट जाता होगा।

वाकई अब बनारस छोड़ने की इच्छा हो रही है। दो दिन के लिए ही सही। कुछ जरूरी मालूम होता है। मैंने भी शादी क्या कर ली, अपने को धोखा दे दिया, आज़ादी का मुहताज हो गया। और अब शक्ति होते हुए भी शक्तिहीन और सामर्थ्यहीन मालूम होता हूँ, खुद को ही बेवकूफ-सा लगने लगता हूँ। घर-गिरस्ती भी एक बला है। सचमुच उज्जैन में मैं काफी आज़ाद था (जो भी यहाँ सुखी अधिक हूँ)। ईश्वर करे कोई लेखक अब शादी न करे, और करे तो घर गिरस्ती के चक्कर से खुदा उसे मुआफ रक्खे। घर गिरस्ती भी एक बला है, जिसके दो सींग हैं, जो गधे के होते हैं। बाल-बच्चेदार आदमी सोलह आना गधा होता है। इसमें शक नहीं।

दुनिया के करोड़ों गधों में से मैं भी एक हो गया हूँ, लेकिन अभी नया हूँ। दुलत्तियाँ झाड़ देता हूँ। और अभी पूरे तौर से गधे का फलसफा—उसका बोना आदर्शवाद—आत्मसात् नहीं कर सका हूँ। पर इससे तकलीफ तो होती ही है।

डाक्टर साहब के क्या हाल हैं? उनसे भेंट होती है? मैं उन्हें अभी तक लिख नहीं सका। वे नाराज़ तो होंगे ही।

मेरे कविता-संग्रह की भूमिका के बारे में क्या सोचा? आप क्यों नहीं लिख देते? अब तक बड़े-बड़े लोग ही लिखा करते हैं, अब यह बात भी सही। उत्तर जल्दी दीजिए। पुस्तक के नाम वाम के चक्कर में नहीं पड़ता। कुछ तो भी रख दूँगा। पर छायावादी नाम नहीं रक्खूँगा।

मेहनत करें तो लेखन से पैसे मिल सकते हैं। इसमें सन्देह नहीं। पर साहित्यिक श्रम जितना अधिक आवश्यक है उतना ही अभाव है समय का। दुनिया के सारे कार्यों से निवृत्त हो, थकी हुई पीठ और बोझिल मस्तिष्क ले, टिमटिमाते कन्दील के धुँधले प्रकाश में क़लम चलने तो लगती है पर खुद को कोसती हुई। इस मेहनत को देखते हुए, मुझे हर कविता के पाँच रुपये प्रकाशक से charge करना चाहिए।

पर अब साहित्यिक श्रम मुझे करने ही पड़ेंगे। हिन्दी सुधारने की कोशिश शुरू हो गयी है। छोटी-सी phrase, कोई चुस्त ज़बान-बन्दी झट नोट कर लिया करता हूँ, बिल्कुल शॉ के लेडी ऑफ़ दि डार्क[1] के शेक्सपियर की भाँति।

इसके पहले, मैं हिन्दी के साहित्यिक प्रयासों के सिवाय, कभी भी लिखा नहीं करता था। मेरे अत्यन्त आत्मीय विचार मराठी या अंग्रेजी में निकलते थे, जिसका तर्जुमा, यदि अवसर हो, तो हिन्दी में हो जाता था। इसीलिए जानबूझकर यह पत्र हिन्दी में लिख रहा हूँ। मेरा ख़याल है कि मेरी भाषा सुन्दर न भी हो सके वह सशक्त होकर रहेगी, क्योंकि उसके पीछे अन्दर का जोर रहेगा। बतलाइए, क्या मेरा सोचना गलत है? इसके बारे में आप जरूर लिखिए। मुझे साज-सँवार की प्रतिष्ठित बोली पसन्द नहीं। चाहता हूँ कि इसके विषय में आप मत-प्रदान करें। क्या मैं अपनी हिन्दी सुधार सकता हूँ? उसे सक्षम, सप्राण और अर्थ-दीप्त कर सकता हूँ?

पत्र आप लम्बा लिखें, देखिए, मैं आपके बारे में कुछ भी नहीं जान रहा हूँ, और अभी साल कटना है जिसके बाद आप मुझे मिलेंगे। यह भी लिखें कि पत्र की भाषा कैसी है। और और सब लिखें। मेरे लिए किसी भी तरह से दो घण्टे निकाल लें, शीघ्र ही।

शान्ता स्कूल जाया करती है। शायद मैं उसे अब अधिक प्यार करता हूँ। कुछ, आप ही-आप, अन्दर से तब्दीली हो गयी है। मुझमें और उसमें भी। परन्तु, मेरी आँखों के सामने घर-गिरस्ती को देखकर काले सपने आया करते हैं। मैं वज़न सम्हाल नहीं पाया, और हर महीने की बीस तारीख के बाद दिवालियापन सताता रहता है—शुद्ध प्रेत-सा। और अब सरदी आ गयी है।

बबन साहब ने स्कूल छोड़ दिया है, और वह वकालत करने लगे हैं। दादा (हमारे पिता) के पत्र नित्य आते रहते हैं। बड़े ही विह्वल पत्र। सचमुच वात्सल्य भी आपत्ति है। ईश्वर करे, मुझे न सताये यह रोग। वत्सी सबसे अच्छी। श्रीरत रायजी जयपुर गये हुए हैं, उन्तीस तक वापस आ जायेंगे। अज्ञेयजी को एक पत्र

1. बर्नार्ड शॉ का नाटक 'दि डार्क लेडी ऑफ़ दी सानेट्स'

लिखा था अर्थहीन nonsensical पत्र। जिसका उत्तर था कि मैं कलकत्ते पर जानेवाली ट्रेन पर उन्हें मिलूं। मिला था। देख भर लिया। बातचीत होती ही क्या!

श्रीमती रेखाबाई की क्या स्थिति है? और आगे का कार्यक्रम क्या? क्या ही विवेक-बाह्य (irrational) तृषा है कि जिन जिन लोगों से आपको लगाव है उन्हें मैं भी जानूं-पहचानूं और निकट आऊं। यही कारण है कि भारत भूषणजी के प्रति नित्य से अधिक उत्सुक रहता हूं।

आजकल कुछ उर्दू कविताएं मन में ठहर गयी हैं। उसके कुछ शेर :

फकीराना आये सदा कर चले
मियां, खुश रहो हम दुआ कर चले
व' क्या चीज है आह जिसके लिए
हरयक चीज से दिल उठाकर चले
कोई नाउम्मेदाना करके निगाह
सो तुम हमसे मुंह भी छिपाकर चले
दिखाई दिये यूं कि बखुद किया
हमें आपसे भी जुदा कर चले
जबीं सिजदे करते ही करते गयी
हकेबन्दगी हम अदा कर चले
परस्तिश की यां तक कि ऐ बुत तुझे
नजर में सभों की खुदा कर चले
गयी उम्र दर बंद फिक्रेगजल
सो इस फन को ऐसा बड़ा कर चले
कहें क्या जो पूछे कोई हमसे 'मीर'
जहां में तुम आये थे क्या कर चले।

हकेबन्दगी अदा करते हुए

आपका सस्नेह
ग मा मु

[12[1]]

हमारा दफ्तर
30 10 45

प्रिय नेमि बाबू

सहसा आपकी याद आ रही है मीठी बयार के औचक जगानेवाले झोंके सी।

1 मुक्तिबोध द्वारा अपने 7 11 45 के पत्र के साथ ही भेजा गया।

जैसे जाग उठा हूँ अपनी समस्त चेतना लेकर। समस्त चेतना अपने अन्तर्विश्व की। मन के वे ज्ञान के और प्रेम के झिलमिलाते स्वप्न, हृदय की अनुभूतियों के विकास के स्रोत क्षण भर के लिए जग उठे हैं। अभी क्षण भर के बाद ही वे सो जायेंगे और धुंधली जिन्दगी का मटमैला स्पर्श उन्हें सुला देगा कि सहसा आपका ख़याल आ गया।

याद है, आपकी बहुत बड़ी जिम्मदारी है। आपने एक व्यक्ति के साथ नाजुक खेल खेला है। उसे कम्यूनिस्ट बनाया, दुर्दम घृणा के उत्ताप से पीड़ित। और उसकी स्त्री के प्रति उसका रुख पलटा। अधिक सहनशील भावनामय उसे बनाया। यह काम बहुत बड़ा ही नहीं, नाजुक भी है।

और इन क्षणों में, जीवन के विचित्र तर्क प्रवाह के द्वारा, आज, जबकि क्षण-भर के लिए ही सही, मैं जाग्रत हो उठा हूँ तो सहसा यह वाक्य निकल आता है—*Lo, there is born a man with a distrubed soul—disturbed with* the highest desires of age and the greatest weaknesses of his times हाँ, मैं अपने को यही समझता हूँ। इस विशाल व्यक्तिवाद की विशालतम tragedy को शब्द-बद्ध कर सकूँ तो मेरा जीवन-कार्य समाप्त हो जायगा। क्योंकि न सिर्फ मैं अपनी राह को खोजता हूँ बल्कि वह भी मुझे खोजती है, और इसी में सारी उलझन की बदमाशी है।

दैनिक जीवन के पूर्ण रूप से आबद्ध कार्यक्रम में आदर्शवाद की यू तक नहीं रहती। वहाँ मन का विस्तार नहीं हो पाता। और सहसा like a flash याद आ गया कि विवाहित जीवन का आदर्शवाद मनुष्य की समस्त चेतना को सुलाने का काम करता है। इस आदर्शवाद के विरुद्ध मैं तर्क के द्वारा बगावत नहीं कर पाता परन्तु मैं सोचता हूँ कि मन के सारे अधूरेपन, व्यक्तित्व के सारे बौनेपन की जड़ यही है। जिन्दगी के एंजिन के लिए लोहे की पटरी यानी विवाहित जीवन। दिन-भर अधिक प्रयास का frustration और रात में बेआराम, सपनों से टूटती जुड़ती जिन्दगी। अब बतलाइए, *मनुष्य का वास्तविक सामर्थ्य और उसकी* शक्ति—जिसकी कमी मैं अपने अन्दर कभी नहीं अनुभव करता हूँ, मात्र सो जाती है। शरीर और मन दोनों को चैन कहाँ?

फिर अध्ययन और लेखन की वह चिन्तनशील मादकता, और राजनीति का वह उत्साह जैसे काफूर हो जाता है। मन में एक द्वन्द्व होने लगता है—पारिवारिक loyalty *और आन्तरिक विकास-बुद्धि में। इन दोनों में मानो सामजस्य* होनेवाला ही नहीं। और मैं अपने से, जिन्दगी से और इस विश्व से नाराज हो उठता हूँ।

किन्तु आज सहसा मैं अपनी जगह आ गया था क्षणभर के लिए ही सही, मैं अपने से चेतन हो उठा। मेरी ज्ञान-तृषा, सौन्दर्य-भक्ति तथा मुक्त हृदय दान

तथा स्वानुकूल कर्मण्य-शक्ति का मानो मुझे, क्षण-भर के लिए ही सही, दोष हो गया जिसकी आग अभी-अभी राख हो जायेगी। जिस ज़िन्दगी को जीने का मुझे आदेश मिला है, वह कुछ दूसरी ही थी। यह नहीं। परन्तु, फिर भी, यही चाहता हूँ कि मैं इस दलदल को भी पार कर जाऊँ। सचमुच मुझे ज़िन्दगी की तब्दीली की बहुत बड़ी ज़रूरत है।

फिर भी नैराश्य के गीत लिखना मैंने बन्द सा कर दिया है। और जो भी चमकीले गीत मैंने इधर लिखे हैं उनमें मात्र क्षोभ और उत्ताप की अग्नि-ज्वालाएँ हैं। इन नये गीतों से भी मैं नाराज़ हूँ, और आधुनिकतावाद के गीतों में भरी हुई सर्दी की ठिठुरन से तो अब ऊब उठा हूँ।

परन्तु आज की वास्तविक परिस्थिति के आदर्शवाद को सही समझते हुए भी बार-बार लगता है कि जब तक मैं अपने को पूर्ण रूप से स्वतन्त्र नहीं कर लेता, और अपना तन-मन धन एकाग्र नहीं कर लेता तब तक ज़िन्दगी गधे की चाल में चलती रहेगी। रहेगी न?

आपका पत्र न आना एक विपत्ति ही है। फ़ुरसत का अभाव तो हम-आपको है ही। परन्तु कभी-कभी जब मन बहक जाय, मुझे याद कर लिया करना। जैसा कि मैं आपको कर लिया करता हूँ।

देखिए, मैं न मालूम क्या-क्या कह गया और मुझे अब डर लगने लगता है कि कहीं आपको मैं सता न बैठूँ। पता नहीं क्यों, पर आपसे संकोच ज़रूर होता है। जैसे सारी बातें कह जाऊँ तो आपके मन पर प्रतिकूल परिणाम हो। कभी-कभी अविवेकपूर्ण तर्क उठने लगते हैं आपके बारे में। लगता है कि जैसे आप ख़ुफ़्त हों। बन्द हो जाते हैं। जैसे कि हम एक-दूसरे से झेंपते हैं, खिंचे चले आते हैं, पर दूर भागने की तैयारी करके, अवचेतन रूप से निस्सन्देह। पता नहीं क्या बात है! पर अन्दर की उष्ण मदिर धारा एक दफ़ा फिर खुल ज़रूर जाती है और मन के सारे पाप गलकर धुल जाते हैं। इससे अधिक और क्या कोई चाह सकता है।

श्रीपतरायजी की बातचीत से पता चला—मैंने सूँघा—कि आप मेरे बारे में उत्सुक—यदि कहूँ चिन्तित तो ठीक होगा – रहते हैं। पर क्या याद है आपको कि आपने कोई विस्तृत चिट्ठी नहीं भेजी है?

साँझ हो रही है। पुराने मकानों की वीरान छवा और उड़े रंगों की दीवारों से ढलती हुई। घर की मीठी सुगन्ध यहाँ तक आ-सी रही है। और चाहता हूँ कि पैर चलने लगें।

मेरा पत्र अब सम्पूर्ण हुआ चाहता है आधी बात ओठों में दबाकर। और पूरी बात 'फिर कभी' के लिए रखें। इसके पहले कि प्रणाम करूँ—

याद आती है तुम्हारी तैरती सी,
राह से जिस
कभी कोई आ नही सकता
न माता, पुत्र या पत्नी, पिता।

मेरी बेसब्र बेकाबू जिन्दगी जब किसी की ज़रूरतमन्द हो उठती है तो पहले वह आपको ज़रूर याद कर लिया करती है, ध्यान न देते हुए, मात्र अवचेतन रूप से।

कहते है जो कहता है वह करता नही है, यानी ये बाते कहने की नही। पर मन है कि कर बैठता है, जिन्दगी है कि जी बैठती है। श्री रेखा बाई को प्रणाम।

बस अभी इतना ही।

सस्नेह आपका
ग मा मु

[13]

Benares
1 1 46

Dear Nemibabu,

The New Year has begun, with all its bloddy struggles and hopes I wish you a happy New Year— a newer year with all its spring and blossoms The shadows of the autumn are passing away and we welcome the New Year

You must have received my previous letter with all its idiosy and obstinate subjectivity And I hope you must have received it coldly, as it ought to have been In the meanwhile nothing new has taken place except an ever lingering anxious worry for a reply of yours, manifesting itself in four unsent letters which outgrew one another in many an aspect, your continued silence bringing home the utter subjectivity and stupidity of their contents, and convincing me of my anarchic mind

Among many of the misgivings, the only one which disturbed me more than often is that (perhaps) my (questionable) outburst was improper and was wrong in a subtle sense which I cannot express I find I am guilty of that offence But perhaps I dealt it as if it was my own problem and so the outburst, as some kind [of] consolation, came to take place That can be one of the plausible explanations

I earnestly want to know what *were* your *first* reactions to that letter of mine, not because I am very fond of my blessed idealism (I may be very fond of my illusions), so that I may learn and not repeat certain mistakes

In this world of today what we most need is mutual sympathy That I got more from you And I could not do the same to you, perhaps Yes, that is true I am sure my soul s capacity is very low And I have been taking more than giving This is the one persistent thought continuing as a melancholy strain in my life

I can t visualize what sort of life you are leading and how I should feel a sense of mutual cooperation with you—the sense of proximity and a deep concrete affinity expressed in our daily life Perhaps you can t guess this problem But it has been 'The Question' before me

These days a very strange feeling is creeping into my mind and that is, that I have been in a dark unknowable way cut off from the people 'Uprooted, that is the word In a more introvert language, it is that I *have been incapacitated to* 'realize, to fully feel the lives of others, the concrete emotions of their life, as if I am unable to feel them, as if I cannot partake, emotionally, in their life Feeling has been one of my points And, all the same I want to kill this sort of new feeling of incapacity Yes, that I am already doing In Ujjain, never did I feel that But perhaps it is due to a change of emphasis Now 'practical points—the points of self protection and self defence, are underlined and all others are subordinated to it But, any way, if it is a loss, it is an extremely great loss

Shanta is to be kept in Kamla Nehru Hospital, Allahabad And her delivery is minimising the importance of all other things I have not yet completed my book, that means not given the finishing touches And I have not yet sent your book No use of assuring you of

Really do write to me, kindly Your silence has completely demoralised me After all, if you are annoyed with me, why not express your annoyance why keep it to yourself and excuse me if I committed such a wrong thing But write I know you must be feeling awfully of my subjectivity But

please write I solicit an early reply B C to Rekhabai

Don t forget to mention all the things of your mind kindly let not your pen bypass them More than often you must have felt my stupid expressions awfully So I believe it is not a new thing to you and so, you will excuse me and write

Do you get letters from B B or not ? Do you know what Doctor Sahib is feeling nowadays ? Please write me something about him

I earnestly hope you will not sleep over this letter Yes, by the way, what does Shripatji say about me ? At least, I know this much that he cannot be impressed by me or my work I am trying my best to work properly But yet I cannot hope that he would be satisfied

These lines are the expressions of an anxiety The work I am doing can be done by thirty-rupee non matric clerk, and he is paying me Rs 60 more He is very kind to me, personally speaking An ordinary graduate is worthless man from earning point of view and so this anxiety And don t want to be a burden on him

I had written a letter to Adneyaji And as a reply we met on the station for two minutes How is he feeling nowadays ? Will you tell me something about him also ?

Rest O K Wish to hear from you How is Rekhabai ? Is she going on tour ? And will you accompany her ?

You don't know the depth of my worry at your devilishly *long silence* Please write to me sooner than ever I hope you are well Are you ?

Yours affly,
G M M

[14]

Benares
5 5 46

Dear Nemibabu,

Your letter has come as a boon and it is an event I had left *all hopes of receiving* any from you in the near future But what a relief You must have observed in your boyhood days the dusty winds bringing clouds of the First Rains on the

horizon What a deep fragrant hot dust it is—dust that nourishes the soul of a child Just that hot fragrant dust of friendship has risen again, and lo! there are clouds on the horizon the clouds of love they are How does it matter if our problems are slightly differently posed, but what a deep soulful fragrance ! Let others see it and get ashamed of their petty worldly wisdom

I so much desired to see you in the evening too at Allahabad But you know there was that eternal symbol of oppressedness and emotional privation, the perpetually humiliated soul of a non understanding wife [to] whom I am still a foreigner in her own domain as she is to me I had not exchanged even a few hearty words with her the whole day except some pithy remarks characteristic of prophetic wisdom Her whole figure reflected a silent complaint Brutal as I had been to her, egoistic in relation to her tenderness I have never reconciled myself to her universe And thus that bitter conflict of two worlds colliding against one another into terrible explosions has reduced me to a profound sympathy for the fundamental needs of a human soul Still, in staying back and not coming to you there lurked not this desire so much as another consideration which far outweighed any sympathy for her, because in point of fact I did not talk with her for more than 20 minutes

And it was this I had no real contact with my host who was *richer* and kind to me Kindness is an investment many times and an interest or the claim of an interest at least is to be recognized That is particularly urgent not so much with regard to men but with women of richer and so superior category I had to sacrifice our meeting at the altar of this necessity alone

When you come back to us I will tell you many interesting facts bringing into relief the essential meanness (in its far subtler and unconscious motivations) of middle class egoism though I must conf ss I was not at all a prey to their selfish motives due to certain other factors operating to neutralize their effect In one sense it has been a great tragedy that I was inclined to take their help—the help of the family of women and subservient men (It is true only in a very subtle sense).

You said you can t give self-expression and that leaves you suffocated But you don t know, *more than yourself* it is a great loss to me How I pine for drinking deep into the *subterranean fountain of the dark valley* of your soul ! I am a demolished castle and every brick, every stone loosened and fallen away from its structure wants to get reunited into a newer form of great construction But the greater the ruination, the bigger the debris, the greater the fiery desire, and lesser the will to power and strength This is my *mental* condition This is my personality which hungers for inspiration, which *requires an urging push, a pressing and continuing* emotion to stand up again in a well-cemented structure, in a *well constructed whole And for this,* an unconscious desire, a blind inclination leads me to you To tell you a central truth of my personality, I need a master of my soul But I find, for reasons of your own, you elude me That is because you have heart-rending problems of your own

I told you I am a demolished castle of romantic associations Every wall, every brick, every part of this huge glorious *and gloomy structure has been brought down My* personal growth in order to be healthy ought to have been very *different Thus the one single indivisible, and now fierce* consciousness is that of an elemental destruction of all that I loved and liked *to love My passionate impulsive and romantic* nature was not of a delicate type having an intellectual strain I am more of a hunter and barbarian than you can ever be, loving sensual and sensuous enjoyments in the caves of the paleolithic mountains This essentially barbaric, crudely egoistic and yet passionately loving soul it is that sometimes flutters in my breast The non-fulfilment of this barbarism *has led to a deep frustration* within Yes, that crudeness I do like even today But the intrusion of a woman in my life had *sped up that frustration And so all the* brutal wrath of non-fulfilment of that barbaric life has found Shanta an easy prey And you don t *know what a wild beast I am to her, not only* sexually in the past, but in more than one aspect She did not bring love so much as the frustration of love She has been the prime force of moulding my life in a way that suited frustration best And you (my next greatest influence, Oh, historic friendship ! and damn you for that) brought Reason,

concrete idealism and devotion The two contradictory factors razed me to the ground Humiliated in my own eyes, insulted by my own self and bruised by family quarrels, I am reduced to two drags of human qualities—one an idealistic self-muttering thought and the other a group of selfish impulses, that are of the most private variety Between these two poles swings an emotion—created by the tension—an emotion taking various forms and yet remaining one—an emotion of profound thirst

But from among the debris of the razed castle are growing new flora and fauna new herbiage Into the private chamber of passionate enjoyment has sprung up a Pipal tree with its naked thighs and full breasts Everywhere in and out, new trees are growing, making the ruins of the castle more wild and beautiful A new Muktibodh appears to grow, at least let me believe that

Oh, what foolish things I wrote just in a sudden impulsive vein !

One thing more And then let me finish my mad talk The nature of your romantic soul is much more human, kinder, not at all impulsive and having very significant quality or a capacity of determined systematic and steadily mounting self-sacrifice, of which you can be very well proud I am not ashamed to tell you that I ought to have known many women, drunk deep into the childish fragrance of their souls and should have forgotten them soon afterwards With the greatest intensity I should have loved them and with the greatest negligent urge I should have left them Life ought to have been an Arabian war steed to me to ride on

That is exactly the point I can t fight well the circumstances around me They are so mean Believe it or not, but I am trying to probe into them for the sake of their worth, their content and their meaning

The acid vapours rising from the cauldron that is your soul brought about all these thoughts into my head Association psychology that is called And you can t imagine how profoundly spiritually grateful I am to you when you say you remain anxious for me Let me confess, in this respect I am more fortunate than you, not that I don t remain anxious

about you For that you ask *my soul and you will get the* reply But there is the question of degree and that matters, as it should

When I see dark rings round your eyes I realize, your suffering is not only deeper and profounder, it is, primarily, on a finer and *higher personal level and restricted within your* breast And what a contrast within you (I don't say contradiction) that of such a fine—extremely fine subtleties and your sharp practical way (I don't use 'practical' in a vulgar sense)

And my dear friend, is it not very unfortunate for me that I don t as yet possess any authentic knowledge of the actual emotional struggles going on in your breast ? I am not satisfied—no, I am not clever enough to understand—the reality by a semi-expressed allusion Might be, it is my fault, as I think it is almost certain that it is so And when I see the limitlessness of my self love, I just get stunned and breathless And my capacity for a real sympathy and concrete realization *is abnormally low But I don't blame myself, nor the stark* bare circumstances That is my heredity

But what a tragedy ! My dearest friend, I don t know what true love is It is a vital truth about me, a fundamental fact of my personality if I have any—and it is on this platform—*basis—I say I am a hunter and barbarian and that too of* counterfeit morality

I don't believe in the ethics of confession It is the refuge of the intellectual debauches and escapists, a cloak for the sinful continuation of a profound and sophisticated selfishness, *a medium of playing with* one's self with a greater intensity than any phallic experience, and with a pleader-like subtlety

And so mine is not a confession I am not whipping myself at all I have passed already from the stage of self-hatred Self, circumstances and heredity go to make a complex It is this complex which can be responsible

You need not have mentioned those words—patronizing and pitying etc—I just can't see how you can do that And if you are conscious that I might think that, my soul is not great enough to stand in your comparison—I am talking here, much

more like a scientist and on that ground—have been committing myself You need never worry of my feelings

But my dear man is not merely sorrow and wretchedness he ■ something else too I am too weak I confess The best and the biggest part of my day is spent in those things which don t help me But I will tell you a thought persists in my mind like ■ lingering woeful tune and that is I am not coming up to your expectations while I must rise upto that level grow and grow and justify my friendship with you justify my very existence (in your eyes in the eyes of the world last of all in my eyes too)

But I wish to add I like an encouraging soft hand ■ soft nectar like smile ■ warm hand of friendship And how much so ever difficult the circumstances might be I can stand again and fight them out

It is a good news that you are taking greater interest in your literature We are emigres in relation to it It has almost become a private affair—just like some sweet memories of longlost fatherland What I heartily wish is that you should develop an earnestness for the same Do copy out all of your poems and collect the critical essays and get them published

Nowadays publication is not as difficult only ready manuscripts are required Kindly let me know how far you have proceeded with your own

I have submitted my book of poems to Pradeep Karyalaya Moradabad Adneya has agreed to write preface to the book

I am making another collection of short stories which has interested ■ publisher I am selling its copyright I am also thinking of collecting all the remaining poems into one book.

I don t get time to be myself Different types of diversions I return to my writing at 9 30 in the evening nerve wrecked and exhausted An anxiety about my own health overpowers me

I could not reply to your earnest letter earlier Every one of this little family except myself was sick and continues to be so now only in a slightly less developed form

I had asked for Rs 50 from B B and he sent them immediately

your child s sake Any way when you didn t I chose to do it myself

Rashmi is to go to Bombay Binduji was telling me that in case she does not get an escort for Rashmi, she would take her to Hathras What do you think should be done ?

I wanted you to apply for a job of lecturership in Kashi Vidyapith But before my writing to you it was filled up Do you still think you will like to accept any such job whenever it is brought in your view ?

I had already taken Rs 50 from B B I have again requested him for another sum of Rs 100 One of my books of poems has been accepted by Pradeep Karyalaya Moradabad on an advance royalty of Rs 100 I have just signed the form As soon as i get my royalty I will send the sum to Bharatji But publishers take time and I can t allow things to drift in this way Perhaps this is the worst month for me in Benares My father thinks of coming here As a retaliatory measure I am thinking of sending my wife and children to Ujjain for some months Then perhaps I might leave this service and join Pradeep Karyalaya Moradabad

I had a vague feeling that any taxing on B B on my part is a taxing on you ultimately *Is it not true* ? No I shall be very brisk in sending him back his money

Please write to me oftener at least once in two months If possible without fail Do you understand ?

Rest O K

My best regards to Rekhaji Tell her she can write to me anything for Rashmi and that would be done

Love to you my dear

Affly yours
G M M

P S Do you get *Hans* regularly ? Your poem appearing in it was very much liked by Shripatji Have you prepared your Ms of poems ? Please write to me a detailed letter of what you think and feel and intend to do

An early reply will be extremely helpful to me

Benares
Vijayadashami
5 10 46

Dear Nemibabu

Accept my greetings on this occasion I hope you are physically and spiritually blooming particularly when you are in the company of all the members of your little family I hope Rashmi s safe arrival in your midst I so much wished you to write to me—no matter how short the letter But you kept silence or dead silence if you don t mind

But the desire for intimate moments can not be obliterated though it can be ignored by passed even jeered at Or and that too happens we are afraid of a moment of feeling and that upsets our plans of writing

Any way it is absolutely true I miss you very much these days And a chit a short communication is one of my pressing requirements Not because I have to communicate something special to you But like a lonesome desolate castle I feel myself to be and wish some intimate human voice to hear

I told you perhaps that one of my books is already taken by Pradeep Press and Adneyaji agreed to write a preface to it I am giving a second book of poems containing all the previous ones Have you begun preparing your Ms ?

I am trying to concentrate attention on literature but as perhaps it is the case with all the few moments that I get are already the fading period of the day s energy And so on

Just today I read your poems of *Tar Saptak* again and I found the mellow tone of your writing the perfect harmony of sound and sense and the depth of your feelings Genuinely sincere in its art bereft of poetic snobbery your writing is Yes lack of poetic snobbery ! And it does not mean lack of feeling and imagination It is only by the way that I took up *Tar Saptak* and picked up your poems

Rest O K Dear ! When we meet we move round and round what we feel is the core—the main theme to be communicated of what we have been intending to say The crux

the central point we often fight shy of and ramble into wilderness of other things

So either through letters or through personal contact we want to unburden *ourselves But do we do that ? Really ?*

As a matter of fact how happy would it be to have your company at least for a week I don t know when that time would come God alone knows

My love to Rashmi and best regards to Rekhaji

Yours affly,
G M M

[18]

Address—D N Jain High School
Jubbulpore
Between 7 to 9 November, 1946[1]

Dear Nemibabu,

I received your letter and poem in due time and it needs no telling no one could be more profoundly moved with its overwhelming tone, its highly native intimate touch And I am proud of myself You don t know why and how I know that my low cellar life has made me darker, gloomier and more cynical than perhaps people imagine ~ e to be And cynicism is more wicked than sentimentalism which I hope you know But in spite of the debasement of the sense of human values, I have begun to understand that in spite of myself, in spite of what I think of myself to be, I excercise a different kind of influence which I very rarely note due to the extreme self-accusing morbid tendency, kept working since childhood

This is not a reply to your letter But merely passing utterances of a melancholy enigmatic mind

And I have a reason to be so Just imagine I received your

1. रचनावली के पहले सम्करण मे इस पत्र की तारीख 10 नवम्बर के तुरन्त बाद दिखायी गयी थी। पर नेमिचद्र जैन के एक 10 10 46 के पत्र के सदर्भ मे और इसी पत्र मे Another letter follows वाक्य से स्पष्ट है कि यह पत्र 10 नवम्बर के अगले पत्र से पहले ही लिखा गया था।

letter and was all afire for a neat reply, and yet I had to postpone it Do you know why ? Here are some of the facts

Firstly, I was in a great hurry to leave for Jubbulpore on 23rd I had to manage, re-manage and arrange things and as usual in such periods I don't keep self-poise.

Secondly, while in the train, Baby and Shanta chose to be ill which state continued to exist for the next fifteen days to the extremely critical point when Shanta passed through the inexperienced experiences of a half an hour delirium and after that an absolute unconscious state of coma People outside the room began to howl, children began to weep, though I myself was not convinced of the physiological genuineness of her departure

It was such a scene, you don't know It is horror, helplessness, extreme wretchedness

Thirdly, the economic ruin, very important and ultimate

I have no penny in my pocket and I beg to request you to try any trick, beg borrow or steal, do what you can do in this direction But don't say 'no' This is not the occasion to give a negative or half-negative reply

I am calling my mother and it's a fact that I am ashamed [to] show my household to her I don't want to show my face to her, yet I have to I can t risk other s lives for my feelings That's all Do you understand ?

Never was I in such a hopeless and hapless lonely moneylessness and social shame

Please wire if and when you can manage how much.

Another *letter follows.*

But don't be scared I hope to cure Shanta perfectly She is suffering from pneumonia The two doctors who took her into their care could not diagnose this simple thing They kept on making new hypotheses for fifteen days First it was influenza, then malaria, and then rheumatic fever After the state of coma I had to change the doctor, who diagnosed and found her suffering from pneumonia

Kindly reply

Affly yours,
G M M.

P S Your poem With *Hans* I will write to you about all that later on B C to Rekhabai Love to Rashmi

I hope you are not offended by my obstrusive imposition on you

G M M

[19]

Address—D N Jain High School
Goal Bazar
Jubbulpore
10 11 46

URGENT

Dear Nemibabu

I hope you are in Bombay Your previous letter unusually overwhelming could not but make me yearn now all the more intensely for your affectionate company I was so abominably lonely and so dejected throughout that the only cure the only warm ray of encouragement in that low dungeon life of mine, could only come through you Even any moral resurrection—a regeneration of my spirit I always imagined to have to come from your glorious company Yes your touch is necessary otherwise I am weak—that has been my childishly despondent and hapless mind s longing It is no use underrating it

I could not reply to your letter earlier not because I couldn t write it but because I was too engrossed in shifting to Jubbulpore I was postponing I was too timid for this sweet moment

And yet this is not a sweet moment I am writing to you And my object is not so much to reply to you as to tell you something else

I have not yet got any house here Baby was getting fever even in the train and lo ! to my utter surprise and disillusionment I find Shanta suffering I thought as usual an ordinary fever, high temperature fever though doctor thought it is influenza and after some days he said malaria and today declared it is rheumatic fever and *probably* tomorrow he would say it is typhus So no diagnosis in these last fifteen days He suspects typhoid and tomorrow he would definitely tell me

I am living in the worst of the rooms here a silly damp

Your M O was very necessary and I was much relieved by it A unique experience it (her sickness) was and my mental and physical strength has proved to be absolutely unreliable (though I think I have done my best) I don t know why I always fail to approximate the picture of ideal man, i e, right type of man that I have cherished in my mind You don't know, perhaps the most pathetic figure I was particularly in my own eyes My conscience on the one hand minutely inspecting every activity, every thought It was a great moral suffering to me You don t know how much I wanted you yes desired you, almost pined for you every moment It is an almost primaeval childish, say infantile disorder whatever you may choose to call it

I will just recall an event—a remark Some few days back a genteel creature—an aristocratically inclined little intellectual was, I suppose, correct when he almost passionately told me that I appear to be a tragic hero and that anyone of the wayside would observe this character if he chooses to I was not stunned though for all intents and purposes I vehemently protested at the cost of his friendship while I heard this remark Once long long before I think I had written to you rather vaguely that we including you and many others, are of Hamlet s ilk—too self-conscious to have any real personality according to A Huxley I am sorry to include you though there is no reason for me to do so Yet at such moral junctures only one person flashes across my mind and it is you It is no exaggeration, no sentimentalism It is the judgement of a long matured experience I can be rich, happy well off—only when I am lifted from this marsh of reckless, careless, egoistic, anarchic self indulgence or self demolition You will laugh at it—at its apparent unreality but just think [for] a moment the problem is of abysmal profundity and depth It is not my sentimentalism again I want to be a smart, devoted and proud man Energetic and absolutely devoted As a matter of fact, dear, I want to dance attendance on an absolutely fascinating being Let that force be a moral entity I want transformation I am hellishly sick of myself Even in these past days I have gone to the depth of suicidal ideas I want your company for my own self for my guidance Guidance is a bad word, I am afraid you are sick of my hopeless and hapless spirituality I

don t know what to tell you Is it possible for you to see me ? Why can t we live together ? But please don t give me clerical job again I am mortally sick of it. But perhaps I have fallen in your very eyes

What I mean to say, can we live together do something together in one place and do that which would build us up This ramshackle construction that is my being should be replaced by something that is positive I so much crave for it

These have been my thoughts, self-eating, self paralysing and suicidal, presenting a pathetic picture of myself And unfortunately I have been the seer and I have been the seen, both object and subject both a slave and a master It is funny and absolutely tragic

Therefore, I could not write to you anything Just imagine wife the patient suffering patiently (she has been so good and so dear) and I the introvert, paralysed by inner problems, showing the most tragic disruption of the self The child worked in that little hole like a good devoted boy And my anxiety, my internal unsystematic work troubled both of them I laugh at myself to my own disgust

Any way, let me stop this matter It does no good leaves man where he is to his utter bewilderment

But all these thoughts prevented me from writing to you created a deadlock So sorry, friend I am no good friend no good husband, no good father and no good son I am horrified at my own prospects when I remember one Stepan Petrovitch of *The Possessed* Literature is just a justification (including a bit of idealisation too) chosen to justify my existence After all an illusion is necessary and therefore real and profound If literature is an illusion with me, I don t care If someone proves to me that I am not a literary man, I shall be a better man, perhaps a happier man

Shanta is not here and Ramesh has gone and baby, it is reported from Ujjain is better God bless their souls Either I should not have come to this world or should have been a bachelor throughout Love for me has become a source of tragedy that is life When I think of my death which, to confess a fact, I many times extremely like (it is a cowardice for outsiders), I do think of my wife and Ramesh I so much

love them but unfortunately can't maintain them according to their desires It is a petit bourgeois fact. but let me admit it that I picture their condition *after me, particularly Shanta's* and I get horrified at my own dream

So sorry to have pestered you with all this gloomy nonsense. You never expected this dark torrent But let me by the way say that these are the thoughts combined with their *sources which separate me from you from all, from the world,* from myself That is why I feel a distance from you A conflict in mind abstracts the world All are abstracted except a concrete conflict

My B C to Rekhabai She was so good to us when she came to Benares

Father and brothers are calling me to Ujjain to join M H [1] *I don t know what to do I have refused their proposal,* protested against their insistence Mother wants me to take *care of my father, vaguely reminded me of my duties towards* them Father pines for me, as they say, and all that. I do want to go and see them once But there is the question of *finance, particularly that of at least some clothes Brothers are* well off I as an elder don t want to be a poor lead before their gold So I am not going Don't think I am indirectly suggesting you to do something in that direction No, not that, dear I am just writing to you to unburden myself *Telling you my worries, with vengeance* What do you think, should I accept their proposal ? Should I ?

I think Rashmi has gone to Benares Is she better now ?

Your letter an urgency I promise to reply promptly My B C. to Rekhabai and others

Can you see me ? Letter please !

Yours affly,
G M M

Dear friend,

I am so sorry to have entirely forgotten your existence as human whole in relation with the world I don t want that you

1. माडल हाई स्कूल।

should forget writing to me about yourself, particularly about *your self*

It is only for a short interval that we met at Allahabad I am thinking of going to Benares in Xmas holidays for some work (Govindji s) Can you come here ? I think not Can I come to you ? I think not

By the way, do you think you can manage for me in cine line ? I am not sure whether I would fare well there But still let us try What do you think ? There are many things that I can do if I get them New companies—aviation—are opening in Delhi perhaps If I can get I will go, so I think now Don t like to carry on this petit bourgeois drudgery that s all Escape, you see, want some escape

Yours affly
G M M

[21]

D N Jain High School
Jabbulpore
[Between 19 12 46 to 29 1 47]

Dear Nemibabu,

I am so sorry to have embarrassed you with my prev letter Really, according to my habit I wrote many more to you and as usual they are lying in the dusty corners of my room like orphans They definitely are healthier children

You should forgive me for the gloomy nature of mine guided more by moods than fixed principles of thought and action A fickle minded person I am sure I am And so my moods of joy and colour are as swift to emerge as the gloomy ones.

But the worst of it is that I kept you awkwardly silent for such a long time and showed that tremendous egoism which is a characteristic of children An infantile disorder has set in my character I need not enlarge upon this point You know so much of it already I remember your words communists don t die like rats and let me add those who die like rats are not communists The conclusion is a hard fact I must confess I am not a communist in the sense I should like to take It is a sheer problem with me And as usual I acquiesce in the

not known ness of the knowns There is a solution of the problem But it appears getting solutions does not suit me creating problems suits me eminently instead

I do not want to condemn myself that way It is [an] atrocity Because I am not convinced that I can be a rat Any way Communism does not suit me because it suits me eminently That is—I am a rat in the struggle of my private existence But a dog in public quarters And it is a fact that I have no enthusiasm to carve out a beautiful existence for me

And yet I am choosing the same I am more or less isolated from the party since Benares or since Ujjain Home problems, decency petit bourgeois security, affections for home people some money in bank better clothes—my mind revolves round these things only

Another Machwe perhaps Your letter an urgent necessity, I feel so isolated so bitter And the constant feeling is that I am not what I should be

Like a monotonous whining siren this feeling persists in my mind

When it becomes unbearable I vomit myself out to you

And yet I realize I have never partaken in your life—in any one s life

This is my curse

Such people are doomed to eternal unhappiness

I remember you My B C to Rekhabai

Rest O K

Yours affly
G M M

[22]

D N Jain High School
Jubbulpore
29 1 47

Dear Nemibabu

Read your poems in *Hans* liked them very much particularly 2nd of Nov issue and the other in Dec issue I have a

profound admiration for the latter Have you written some more ? The last one so like yourself It represents the romantic density of your nature

After Shanta departure to Ujjain I was also straining my pen and wrote four crude unchiselled poems of some length No one would dare publish them So modernist they are I liked B B s poems very much His little pieces are full of beautiful expressions Very neat pieces

I hope you are well and keeping cheerful When do you mean to come to this side ? I hope there is some chance of seeing you say within few months Are you really coming to this side ?

You did not inform me of Rashmi s Have you really sent her away ? Is she keeping well ? My best regards to Rekha bai I hope you have received both of my letters Did you receive any letter from Shripat Rai ?

I hope you will write to me soon

Yours Affly,
G M M,

Syt Nemichand Jain
C/o Communist Party Office
Opp State Printing Press
Baroda

[23]

URGENT

D N Jain High School
Jubbulpore
16 2 47

Dear Nemibabu,

Is it a fact that you are going to join *Prateek* with Vatsya-yanji ? Kindly let me know your future plans immediately. Your silence awful though I realize you can not possibly do anything else but this I am so sorry I have done nothing to know your personal life these days I read your poems in *Hans* and was so delighted that I wrote to you my impressions Let me tell you I know how difficult it is to write letters yet I cannot but entreat you for a few lines whenever you find time

What do you think of my intentions to join Model High School, Ujjain and live separately, independent of my parents?

Please write to me immediately My B C to Rekhabai

Are you thinking of visiting Barwasagar and Agra some times ?

Yours Affly
G M M

Com Nemichand Jain,
Madan Building,
Periera Hill Road,
Andheri,
Bombay

[24]

D N Jain High School,
Jubbulpore
28 2 47

Dear Nemibabu,

It was yesterday that I received your letter I never knew you suffered from so many ailments within such a short time as that, and I wish you to take utmost care of your physique not only for your sake but for my sake also It is such a good news that after all you have decided to lead a 'normal life' and have chosen to finally come in the literary life which has been waiting for you since long It is one of the best news I have heard recently

I will certainly see you at the station Seventh eighth and ninth are Holi holidays I may not be able to come to Allahabad though I will ask you to stay for a day or two with me if you are not in an abnormal hurry to reach Allahabad on a fixed date Yet I may not be able in your company to lay bare some of my deep considerations about my present and future course I tell you I get almost nervous before your steady vigour of argumentation which overpowers me And therefore I will let you know what I think of myself just now

As a matter of fact I shun the idea of going to Ujjain But sometimes I do think I shall be happier there so far as social

and Party life is concerned Though from personal point of view I may not gain much I have not decided anything as yet

The most important other consideration is that of a remunerative job It is not literary or intellectual frustration that is at the bottom of my troubles It is nothing if not economic And I am trying for several jobs here which are more remunerative I have applied for the post of Food Procurement Inspector carrying a salary of Rs 130/- plus 1-14-0 per day touring allowance The work is not heavy and there is much leisure, so esssential for brooding and musing literary ends (If I don't get this job) I am simultaneously trying for the post of Ration Inspector which will give me Rs 92/- per month and much leisure It is for leisure that I pay so heavily Meantime I will prepare for my M A You will laugh at the idea, but to tell you the truth I so much wish to become a lecturer somewhere If I can only do that Well, I will get rid of unhappy thoughts You said Dr. Joshi is a worldly-wise man But it is such a great misfortune I am just the opposite of it And now I certainly don t any more want to lead a bed-raggled existence—an existence of an eternally condemned man Just imagine, I can't move in society simply because I feel I am not neat and clean enough to be worthy of more equipped junta What I now want is equipments, qualifications, money to fulfil my social and personal obligations, an ordinarily decent home, an ordinarily decent dress, and over and above all this and in addition to this I want money to fulfil social obligations That is quite true It is no use hiding this fact My father and mother whom mentally I could not foresake, pity for my troubles and don t want their pity I can't go to them, can t see them because I am oppressed by my own feelings about my low existence And I do want to see them, show them that I too can earn money Leave them, I want money for my sake also, want good dress—the bare minimum for any civilized existence That is why I don't like the idea of going to Ujjain in such condition

I try to suppress these petit bourgeois thoughts—call them अमूर्त, स्वप्न, लालसा, दबी तृषा But is it really so ? I don't think I do justice to myself when I say this I have written a whole

poem condemning this attitude Eventually, it is one of m good poems But the main trend is wrong fundamentally so

I don't think I shall get better post in Allahabad Let me prepare first for a more civilized existence The greatest joy in Allahabad is that of your proximity Undoubtedly, that is a great positive factor But I think in order to have confidence should get rid of all those petit bourgeois thoughts It is a morass Let me pass my M A next year I shall appeal to you next year, though you may not be able to do anything in that direction I will try my best to procure money for my exam I am preparing two Mss for publication I am selling one by copyright which is a book of poems The other is a critique of Prasad's literature The two books I hope to finish by the coming July This is my side and now let me hear from you as soon as possible Kindly wire the exact time of your arrival here

Shanta, Ramesh and Jayashri are at Ujjain, Tai[1] had taken them away to her place I am about to call them back here my new job is settled, they will be here

My best regards to Rekhabai If she passes through this place (to Allahabad) let me know when she would do that

All what I have written in this letter has no absolute finality about it So please don't make them absolute Secondly, send me immediately a post-card about your health

Love

Yours affly,
G M M

[25]

J B P
29 3 47

Dear Nemibabu,

I am including herewith an application in accordance with an advertisement appearing in Amrit B Patrika of 28 3 47. Kindly see if something can be done And in case they have not received my application please give them *this* application

---

1 माँ।

I have already sent an application of service to them Your personal care is necessary

I shall soon write to you in detail

Yours affly,
G M M

The post carries a salary of Rs 100 plus Rs 20 as dearness allowance and provident fund

Please write to me as soon as possible B C to Rekhaji

[*ANNEXURE*]

To

The Manager,
Indian Press Ltd,
Allahabad

Sir,

Being given to understand that you need an Arts graduate having experience in teaching and publications line, I beg to offer myself as a candidate for the same

I have passed my B A exam in II Division from Agra University in the year 1938 Since then I have been a teacher in various high schools in Central India and C P & Berar

I was in Saraswati Press, Benares for more than a year, and edited many novels and other things before they were finally taken up for publication It was after my approval that Shripatraiji the proprietor of the Saraswati Press, used to give them to the press

I am also a writer, and some of my poems are included in *Tarsaptak*—Agyeyji's publication My articles, stories and poems usually appear in major literary monthlies

If given a chance under your kind control, I hope to prove myself entirely to your satisfaction

Thanking you in anticipation I beg to remain Sir

Your most obedient servant
Sd/- Gajanan Madhav Muktibodh

D N Jain High School
Goal Bazar,
Jubbulpore
28 3 47

J B P
14 4 47

Dear Nemibabu

I am so sorry I could not write to you earlier nor sent the poem After a few days of self complacence and truantry I had to face new managements in connection with Shanta s arrival She has come here Baby has improved a lot and thus engulfed in family atmosphere I couldn t prop myself up to find a little t me for doing that I like best that is writing a few lines to you Meanwhile I received Bharatji s letter and was so glad to read it He was right regarding his poem खोदो पोसो खोदो, don t know why you fail to like it Perhaps you have not gone through it carefully so I think

Anyway, to tell you the truth I have not been able to muster up all my strength for the new discipline which life demands And so once again I have to depend upon my moods rather than upon a plan of work That s the reason why I could not send you the poem nor could finish the arti cle on Prasad

What about my other two poems which I have left with you ? I am sure you have not liked them Anyway why don t you like them or to be precise it is not enough for you to say that you don t like them The why is also a responsibility Kindly tell Bharat Bhushan his poems are liked by many unknown people here

What about the story not meant for *Prateek* ? Have you gone through it ? It s a juvenile little bit Do send it back to me It is so funny to have kept it with you for *Prateek*

I had sent an application to you Did you receive that envelope ?

Kindly do write to me by return of post how far you have proceeded on with your literary work Did you get any letter from *Shivdan Singhji ? Have you written to him ?*

Do write to me all what you have been doing and thinking all these days And don t ask me what I have been doing

I heard Rashmi has come How is she ? Are you thinking

of bringing Urmila[1] there ? I hope you are well and carrying on your work with perfect confidence and energy

I may get my vacation pay, but I don t think it is advisable for me to go either to Ujjain or to Alld I will be here and write out a few things

Mukul Chatterjee[2] had come here and through him I got a faint idea that I P T A [3], is also absorbing your attention

Feel so lonely, so terribly isolated amid the unresponsive self-important mediocrities whose only business is covert or overt philistinism Philistines ! That s the word for them But they are honourable people you know Too honourable to be genuine Neither a candlestick for God nor a poker for devil Middlers

Kindly send me the photo that I best liked, comprising you and Rekhabai, where both are laughing Take permission from her, please, and do send it

And write to me My B C to Rekhaji and to Bharatji

With love, dear,

Yours affly,
G M M

I am writing separately to Bharatji

[27]

[जबलपुर,
सम्भवत. जून 1947][4]

प्रिय नेमि बाबू,

आपका पत्र मिला। अन्यत्र आधा उत्तर तो लिख ही दिया है। विस्तार-

---

1 नेमिचन्द्र जैन की बडी बेटी उर्मि।

2 इलाहाबाद मे जन नाट्य संघ के कर्मी और अभिनेता।

3 Indian People's Theatre Association
(भारतीय जन नाट्य संघ)

4 इस पत्र पर कोई तारीख नही है। रचनावली के पहले संस्करण मे इस पत्र की तारीख (1948) दी गयी थी। मगर लगता है कि यह नेमिचन्द्र जैन के 20 [illegible] 47 के पत्र के सन्दर्भ मे ही लिखा गया है। इसलिए इसे यही रखा जा रहा है।

पूर्वक लिखूँगा। यह न समझो कि आपका पत्र हल्के ले रहा हूँ।
स्नेहालिंगन दोस्त।

पत्र मैं एक या दो दिन में भेज दूंगा (निश्चित रूप से)। यह तो सिर्फ तुम्हारा पत्र acknowledge करने के लिए है। और इतने उदास न हो। जितने isolated समझते हो उतने feeling की दृष्टि से होते हुए भी वस्तुत हो नहीं। हम हैं तुम्हारे साथी सह-यात्री।

आपका
सस्नेह
ग मा मु

[28]

550, Observatory Road,
Wright Town
Jubbulpore
[Probably last week of June 1947][1]

Dear Nemibabu

Love I am really so sorry I could not write to you earlier than this Your letter was so earnest that it required an immediate response These responses have continued only to reverberate in my mind And, as usual, I wrote out at least twice what I have been feeling about your problems One thing is that they are so near to me They are quite similar I don t want now to dote over them The cause which operates to fructify into that problem—the problem of evading tasks, and self-killing—is not an uncommon one How can I share those very causes when they actually have gone a long way off to build up an unhappy sort of personality of myself

As this letter has been to grossly late I am feeling that a sentimentally worked up reply I cannot possibly give, most certainly I should not And therefore a complete cleaning of my breast

2 नेमिचंद्र जैन के 26 6.47 के पत्र के उत्तर में लिखा गया है, यद्यपि इस पत्र पर तारीख नहीं दी हुई है। रचनावली के पहले संस्करण में इसे 1948 में कभी लिखा माना गया था, क्योंकि तब नेमिचंद्र जैन के पत्र का संदर्भ भी मौजूद नहीं था।

I can only enlarge upon the picture of your personality and its course To contrast it with the present actuality of yourself and myself and thousands of other honest and earnest souls I can say in a sentence that those who can really do a great thing in the world—who have got such life stuff to continue them to be a dignified discoverer and engraver—I mean a writer—should not present an inner condition unsynthesised and disparate Let us not underrate our significance It is supreme and immense When I look at Hindi literary thought I feel your mind to be enough great and active—you have been actually and genuinely responding all the while—to achieve the spectacle of a complete transformation of the Hindi literary world to lead it to a higher stage I am not paying you unjustified compliments, neither idealizing you I have been gleaning your significant (though minute but subtle) discoveries all the while So depend upon me when I say that I am a genuine observer and my judgements on characters are based upon factual knowledge Kindly realize your own possibilities your own role and your own aim And make a complete renunciation to it Unless and until you do it, you will never feel contented, and no one can achieve any thing You very badly require an achievement Do you understand ?

Perhaps I am telling you nothing new Certainly that is so Any way that is a very important thing

You wrote to me that I have thought you always great and so you never got the opportunity of my sharing of your troubles I was conscious of that And to that extent certainly I was blind Yet I had many times complained to you against your silence

When I was with you in Allahabad you were equally gloo my I tried to talk out my own problems with you in order to get your things from you but as usual you evaded One thing is certain, you simply must talk out your things to me It is a great injustice to me, and it is a serious loss as well In which words should I persuade you to be more intimate ?

It is very good that you have started your own press You must simply do it Kindly don t leave it then As a matter of fact these wanderings of yours have been a curse Yes, I think

that And if you can have a monthly magazine of your own. And then stick to it. Stick and persevere, that is the motto

There is a scheme of a monthly here too Anchal is also on the editorial board I am also there Of course it goes without saying that there can be no truck with him I am interested in the paper as far as I am to get Rs 50/- or Rs 60/- as honorarium I don't think the work will be more than 2 hours a day Do you like it ?

Please call me at Allahabad if possible for radio I feel that *Girija Kumar is prejudiced against me Is it so ?*

The actual position here is very low and far from satisfactory—economically worse off That is why I have had to join the local daily And as usual there is debt I am keeping up my writing work Poetry is getting too costly an affair I always think of prose and write poetry But now I have to change the course I must write four novels this year and pass M A anyhow I am preparing my mind for a very hard work

If possible can you send some money to me ?

I hope as promised your reply will be prompt

B C to Rekhabai

Yours affly,
G M M

Baban has joined Maharashtra High School here

[29]

समता[1]
साहित्यिक सांस्कृतिक मासिक पुस्तिका
प्रबन्ध सम्पादक वसंत पुराणिक

सम्पादक
नन्ददुलारे वाजपेयी
रामेश्वर शुक्ल 'अंचल
शिवदानसिंह चौहान
डा नारायण विष्णु जोशी
गोपीकृष्ण प्रसाद
गजानन मुक्तिबोध

1. छपा हुआ लैटरहैड ।

Dear Nemibabu

I am so sorry to note that my previous letter was not to my satisfaction I had written so many of them in my round about way that ultimately I failed to express what I actually wanted to convey Such a storm of ideas so many simultaneous reactions when I had gone through your letter that it was very difficult for me to cull them and put them in their proper perspective Most probably the letter you received would have had an unpleasant reaction something that was not wanted In case it is so I am inclined to suspect my own human capacities of soulful communion with my partners of life You have complained against my self accusing tendencies But let me not fall into another trap that of parading arrogant interpretations of my behaviour And if I fail to understand even such limitations of mine I don t know what will happen to me afterwards

It is this And I have told it out to you Let me know what exactly were your reactions to my previous letter

Meanwhile *Samata* is appearing It is not a very hopeful game Provincial Party was consulted And it is good that I am there It will do some good I mean And I *Want your poems* the best you have got I mean which you love

By the way just aside and my embrace When I recollect your poems those which I had heard last time I begin to dream of a beautiful world So they are

I could do nothing for *Prateek* I am so ashamed of my self

The time is as rare as money and very ordinary difficulties knock me down Small worries make me look tragic And I am ashamed to tell you that I can t manage exactly the small things the ordinary harassments It requires a superhuman will to regiment your body and soul to manage your thoughts and to open out and blossom forth with a colourful suddenness into a happier life which is at one s heart Here is the rub All thoughts all feelings require the science and the skill of an engineer to be machines of progressive destiny And I, a contradiction cannot resolve a contradiction

Though I had taken money from you last time in Allahabad can t it be managed again ? Of course I am not pressing you

But if it is possible I shall be able to see you at the time of P W A [1] Conf in Sept A radio programme can also be managed (I believe I) Can something be done in this direction ? Do write to me about it

And kindly persevere in the printing press business Have you purchased it ? I want to see you, hear from you so much that I cannot simply remain patient at your long stark silence

My love friend Do write to me as soon as possible You had asked me to write on छायावादी कल्पना and all that And simply I cannot grasp the subject matter now And don t get offended and *do send your poems* by return of post

Yours affly,
G M M

[30]

समता
साहित्यिक सांस्कृतिक मासिक पुस्तिका

601, गोलबाजार
जबलपुर
16 7 47

Dear Namibabu

I am so sorry I could not write to you earlier Won t you write to me ?

Kindly send your and B B s poems by return of post

Do Love to you

Yours affectionately
G M M

Can t you come here for a few days ?

---

1 प्रगतिशील लेखक संघ (Progressive Writers Association)

2 छपा हुआ लेटरहेड ।

inform me My best compliments to Rekhaji and Binduji Love to Rashmi Rest O K

My love to B B

Do write to me by return of post and wire you are sending money Kindly do

Yours affly
G M M

[32]

Wright Town
JBP
27 9 47

Dear Nemibabu

Your letter was a very great solace I am not yet formally appointed in the school They want me to give an undertaking that I would not for a day take casual leave or leave without pay I am making overtures to them This being the middle of the session, there is no place for any hope in other High Schools Any way the situation is not tense And your money has been a great relieving factor to me

I am compelled to write to you so many things and I write a few of them The immediate future of mine is full of desper ate struggles And I don t know where will they lead me I had to resign to my fate in calm helpless cynicism The only thing that I now can do is to pass my M A I simply connot appear this year There are hundreds of odds against me Moreover, the ability for organized life being absent, I create my own difficulties at each step Apart from this psychological observation the fact stands that darkest thoughts assail me and there are they regular feature of my daily life I can t simply mete out my expanses of month The debt had swollen to such an intolerable degree that a few months back I had to put the only gold (it is worth Rs 100/- only) that I had with a *bania* And with it went two silver pots and one नथ This is the greatest hurdle of the year And yet every month it goes on swelling The other expenses i e clothes, sari medicines, railway fare, (and particular clothes) are conspicuous for their ugly absence Of course, I have got to go [to] Ujjain this

very Diwali I must at least have Rs 30/- for there Whence it would come ? Well, let it go to hell And a man who can t earn money is a fool And apart from this, how am I to recover my things ? How ? By writing a novel And I an trying to do it Estranged from my people, I feel like going to Ujjain again and help them out of their economic worries by giving them my full pay When you don't keep a house and live jointly the expenses are much less Here there is neither स्वार्थ or परमार्थ So has been my line of thought If I want to live away from them, I must go twice a year to them and give them at least Rs 10/- a month This is the minimum that I should do for them It is not they who feel estranged from me It is myself who feels estranged from [them]

I am ashamed to write to you all these things But I will write one thing more and that is, that you please see that next year I appear in the M A exam It is of course a question of a round sum of Rs 200, [at] least 150/ I will try to manage that sum But if I am unable to, do make it a task to get me out of this mire Once M A, there are chances I may be appointed lecturer somewhere My income must not be less than Rs 100/- in any case Once I am appointed a lecturer I shall get Rs. 100/- at least and with higher sort of job ahand, my mind bent on more valuable work than that at present

Well, it is so bad after all This is the underworld. This is the *Patal* I don t know how I have written to you all these things They are like subterranean snakes crawling on the trunk of my soul All sorts of complexes, maladjustments, hurt pride, subdued and benumbed spirituality when get into a human form, are more like a ghost walking on Down with this pessimism I am not pessimistic at this moment And your letter so loving at that

The only thing that worried me more in your letter is your unrecuperated health and the tremendous waste of human energy for very trivial things of life And yet one has got to I *sincerely advise you* to take leave for a few days from work And rest as a duty—as a Party duty Without that you will very seriously damage your health And this not wanted in

1947 So please take compulsory leave and leave going to other people for organizational work

My B C to Rekhaji She has been so kind to me when I was at your place My B C to Binduji And Bharat Bhushan ! Has he gone to Hathras ? Don't find any job for me at Alld My B C to Bharat Bhushan After writing all the above said things I am feeling more cheerful And that is very valuable

Love, Dear

Yours affly,
G M M

[33]

550, Observatory Road,
Wright Town,
J B P
24 1 48

Dear Nemibabu,

I am so sorry to learn that a misfortune has overtaken you and completely shattered your plans It is a blow

I was thinking of writing to you from so many days I came to know through Anchal[1] that you had been to Bombay for a few days That news had no foreboding of this development, though he had mentioned your face bore a tired look But then we had a ready explanation

You don't know how sorry I am to see this sudden chaos in your life, though I hope you will get some job at Allahabad But then it will not be quite economically satisfactory So I suppose What do you propose to do then ? Are you thinking of going back to your father ? That you won t do

Kindly write to me about all that I have heard from A Rai,[2] particularly about your newer plans But of course I will like to tell you one thing Living on mere translation and other literary work is a precarious affair, and undependable sort of thing You can take help of it, but cannot depend upon it I don't know how you will like the idea of getting in journa-

1. कवि रामेश्वर शुक्ल 'अचल' ।
2. अमृतराय ।

lism for which, to my mind, there is ample scope in Allahabad Anyway, kindly don t depend on merely translation work That is my advice, though of course you are a better judge of your circumstances

This year I am appearing in M A I have already filled up the form And taking leave without pay from the Ist of February The examination is somewhere in the month of April Had I not been doing so, I would have liked to send a sum of Rs 50/- to you, at least this time I know you don t expect anything from me But I do expect myself to do, that Sometimes I begin to feel that I should not appear this year And now this landslide again prompts me to do that

Anyway, please write clearly about your whereabouts, your new job if any, your schemes and ideas

I am sending your books with A Rai Love to Rashmi and B C to Rekhabai Expecting an early reply

Yours affectionately,
G M Muktibodh

[34]

550, Observatory Road
Wright Town
Jubbulpore
26 2 48

Dear Nemibabu,

I should say if you are not callous you are pro callousness Let me be angry with you a bit Why, sir, you don t write to me ! I have not returned your books Very good I accept very meekly the charge of callousness against me But this is no reason why you should be so silent This is awfully painful As a matter of fact how much I am involved in you, you don t know That is why this sheer lack of responsiveness is painful (I mean, of course, in the form of communications)

Other complaint there is not any I must simply get your reply, I must get your words hear from you But I should not be angry with you This is not the time As a matter of fact how can I be so It is just feigned A fake anger In a nutshell,

dear, you ought to have been more kind to me, ought to have told me of the mess you are in Is not my claim, my demand justifiable ?

And so without further delay please do write and lose no time in doing so

And I want a fuller letter, giving details, the progress you have made in getting a sort of foothold in Allahabad Are you depending only upon your writing ? What have you decided, what you are doing ?

Bharat Bhushan is a wiser man, I must say so He is more practical in all senses But the present trouble is not the result of your mistakes of either omission or commission There is something like chance in the world The chance element is not at all to be forgotten And I am so sorry to note that such an ill luck has spoiled your plans

But man has to girdle up his loins for a battle The feeling is to be transformed into a steel weapon No more a sensitive bayonet against oneself, but against enemy The logic of sensitiveness of feeling is always a tragic affair—more so nowadays When hearts rent, tears no more represent the catastrophe And yet there are people who bore it They could not do anything else of course But the existence of an element of bravery is also to be appreciated

And why I am writing all this I don t know You are wiser than I You have a greater strength in your limbs, have greater light in your eyes than what I have And so you don t need it from outside This I have to say in order to stick off the feeling that I should say you don t really need these words I hope in spite of all odds in spite of all difficulties and worries you are well on with your work, with your moods I hope the frequent visitations of darker moods are stoppped completely And let me also hope you are completely by yourself

Dear friend, I know you won t tell me things in detail You don t get pathetically lyrical over your own troubles Only sometimes—very rarely—that too on my desperate insistence you open your heart before me Those are moments priceless for me And you know your letter opens a flood gate of moonlight That is its value, its significance

Anyway I shall be waiting for your letter And then will go my very very prompt reply My B C to Rekhabai How much I feel at home with all the members of your family, mutual friends Tell Bharat Bhushan that I remember him very much B C to Binduji And my love to naughty naughty kid Rashmi I am feeling so lonely and so bad

Yours affectionately,
G M Muktibodh

[35]

550, Observatory Road
Wright Twon,
Jubbulpore
23 3 47 [48]

Dear Friend

Now I won t complain against your silence My previous letter to you was an anxious enquiry I got a letter from B B Though he has mentioned almost nothing about you except that you are carrying on well my doubts and fears are allayed

This letter of mine has a very specific purpose Can you remain in touch with vacant jobs around you? I am absolutely in need of one at least for a coming period of 3 months Journalism will suit Any will suit but surely it must bring me a some of Rs 125 *at least* My experience you know I must simply pay off my debt by the end of June My vaca tion begins from 15th of April I may stay here for 15 days more But after that I wish you should immediately try for me I didn t write to you earlier you yourself were in great difficulties you still are But you may keep an eye on this also May be you may secure for me one or two radio calls That will also do But remain in touch of a few jobs if there be any I am not expecting your letter My love to you and B C to Rekhabai Hope you are well

Yours affly,
G M M

Syt Nemichand Jain
146 Allen Ganj
Allahabad

550 Observatory Road
Wright Town
Jubbulpore
[Probably mid April 1948]

Dear Nemibabu

I was so glad to receive your letter I almost intuitively knew that it is your gloom that is causing this disturbance in the execution of a letter Anyway I also suffer from the same and don t very much blame if I cannot at that very moment sympathise [with] one

How can I foreget you ? As a matter of fact one way or the other you always had been in my mind To be very sure I always looked towards you in my difficulties and distress And of course it is no use acknowledging openly the fact it is only because of you that I don t feel like a refugee here

This year had its joys and jerks Jerks affect the fundamentals joys not so often and overtly The long and short of the old tale is its lingering effect that eats into vitals I was to appear in M A After having filled up the fees sending Shanta her home in the month of December the school refused to accomodate me Later on the school refused to pay all the teachers their full pay Their difficulties were genuine and so were ours

Afterwards nothing happened to better the situation in my favour We were paid by the school something between 30 to 40 rupees With the help of a tuition or two I carried on Shanta was away I was studying for my M A all the while And it is perhaps in the month of March that your scheme went to pieces It is from Amrit Rai that I heard it I had pinned my hopes on you But you yourself were in great difficulty I had to leave the idea of going to Nagpur More over at least two months leave was necessary It was destined to be without pay and in continuation with it there was the big dirty yawn of vacation without pay Thus it came to 4 months without pay which I could not afford And so left the idea

Under the shadow of the impending without-pay vacation I wrote to many including Shripat Rai But [up] to now

it has not been of any avail One post in that Socialist Publication Company (I am forgetting its name) at Bombay was referred to by A Rai It was a good post bearing a sum of Rs 350/-. To my application there was no reply back In the same way in some foreign embassy at Delhi a post was referred to by me But unfortunately that too passed away It was a big affair, a salary of Rs 450 But somehow or the other I couldn t get it Afterwards I tried locally at *Jai Hind* The anti communist enmity is a big obstacle I have heard in *Lokmat* a daily at Nagpur, there is a post I may get it.

When I was expecting a letter from Nagpur, I got another letter just today And it ended in big worry to me Shanta is—I am terribly ashamed to say—but no shame before you, again pregnant I never expected that because she did not show any such sign when she was here I am afraid of her frail health She has not written to me anything as yet But my mother won t tell me a lie She did not inform me expecting I would worry and that would be a disturbance in my study

I am so sorry I have perhaps damped your spirits again by this melancholy affair But to be sure, it is upto you now to suggest a way out The problem is that of 'money' The slogan is money

Kindly call me at Allahabad and get a novel from me I can t ask you for a loan now, though I would certainly wish a big sum from you , by hook or crook And moreover it is a question of two months

But if I come to you won't I be a burden on you ? A big burden But if you can get me a job and a novel, it will [be] very good Kindly write to me immediately

I am so sorry to have disturbed you so badly. You were already so gloomy

Before the new letter from home I had a mind to write to you in detail my first reaction to your letter But now I can't

My B C [to] Rekhabai and love to Rashmi

Your affectionately
G M Muktibodh

P S Your Maxim Gorky I am trying to recover As soon as I get it, I will send it to you without fail

[37]

550 Observatory Road
Wright Town
Jubbulpore
26 6 48

Dear Nemibabu

I hope you have received my first[1] letter My Allahabad period was nonetheless very inspiring I want to pen it down Let me see how I do

The same old despondency and gloom prevails The ambivalence—loving and not fully loving hating and yet not doing so The situation is contradictory you see And this is its amusing and yet profound reflection I am referring to my family affections here

For the last two or three days I have been working at my Ms *Three to four poems have been given a new life* A poem on T S Eliot is in offing I will finish it soon Really there are very many unfinished poems Some of them I like very much I will most *definitely finish them in this week*

Any way it is ■ good thing—to be lost in one s own work The world is bad too bad Let our work be the chief interest Everything will fade into insignificance—*all those troubles* and hapless situations

People feel powerful because more or less they are the slaves of their instinct The self confidence that they exhibit is nothing but a pure fiction fostered by their slavery and rationalized by their material success in life Bur they are the 'hellow men and the stuffed men

Any way this knowledge has beaconed me not to be on the defensive with people of this sort They too are empty, you know

Amrit ■ here He has full sympathy with our 'ideology I *had related to him my very sharp differences with Rambilasji* He said His is an anti writing attitude, and I added It is an

1 उपलब्ध नहीं

anti life attitude Any way the attack is going to come We will face it Please do tell me your literary programme for this month And don't dump your poems by your side Please send your new ones to *Hans* on A Rai's name I had a talk with him on your returned poem He said it was sent back by mistake, perhaps nobody ≡

Tell me the date you leave for Agra By the way, I still think it is better for you to stick on to Alld and carry on your writing work which should suffer on absolutely no account

And kind y write to me Shamsher was a subject of discussion with A Rai last night My best regards and love for him Has he sent his *Udita*[1] to his publishers ?

My B C to Rekhaji

Yours affly,
G M M

I don t know what to do—whether finish my half-written poems or go forth with the already finished ones Well, I will launch full steam in my new direction

Poems I am sending Have you sent my poem to *Hans* ? I am sending you my new ones Some of them should also go to *Parijat* and if possible in *Janawani*[3] or if you please, send a list of addresses I am troubling you, you know as I have been doing since long

Have you finished your article ?

[38]

J B P
2 9 48

Dear Nemibabu,

I am so sorry, dear, I could not write to you The one which I have begun would soon be completed and be sent to

---

1 शमशेर का एक कविता-सग्रह 'उदिता के नाम स प्रकाशित होने की बात थी, जो प्रकाशित नही हुआ। बहुत बाद म जगत शखधर ने शमशेर का एक सग्रह कुछ कविताएँ नाम से प्रकाशित किया।

2-3 उस जमाने म प्रकाशित होनेवाले साहित्यिक मासिक पत्र।

you in a day or two Meanwhile let me be sure you won t take it ill that I have been so awfully negligent though truely speaking I wasn t As the warmth of love (of a newly acquired love) secretly turns into rosy dignified consciousness which betrays to others nothing but its chaste joy similarly a personal letter bearing feelings native to the writer turns into a beautiful consciousness of an acquisition a fulfilment the contours of which are invisible to others But the possession of that consciousness is itself a consciousness though rather of a different sort Similarly the consciousness of your personal letter Negligence is that which turns its stone eyes to it It is cross eyed you know Anyway well ! I always felt I have to write to you But the nearer are the persons the greater is their proximity to the inmost rings of the disturbed soul the smaller are the chances of a quick reply back

Anyway important things you must have had in your mind How far have you proceeded with your work ? Did you cancel *outright the idea of the acquisition of Sahitya Ratna Bhandar?* I don t hope you didn t do I have seen your poem in *Adarsha* [1] Please don t leave them I have also read your article in *Hans* Now you can t afford to be out of picture Your serious writings must be one of the main tasks That fellow—Dharmavir Bharati in *Sangam* has written something which is highly confusing and debunks the progressives I am so anxious to know your literary activities As a matter of fact one way or the other I have been almost dependent on you for persistence of clarity and efforts plus other things which I need not mention

As for me the life has been as worthless as ever Cares cankers conflicts then the solution the escapes Mother comes and with her the grim shadows of the past and future and present Then brother goes to Nagpore on his (remunerative) job All the two months borrowing hunt has been the order of the day But it was as usual without result without joy Evenings were spent with those whose company tempted me to foster an illusion—and they themselves tantalized me in an extraordinarily systematic way—that they would be my

1 दिल्ली से प्रकाशित होनेवाला साहित्यिक मासिक।
2 इलाहाबाद से प्रकाशित होनेवाला साप्ताहिक पत्र।

sheetanchor in these days of troubles and tremors Those eve nings and those hapless and hopeless walks back home on the muddy streets sinking my soul in the muddy waters of the sub'erranean bitterness to which I am so accustomed Even the memories leave my mouth sour But I suffer from sour mouth A terrific and tragic useless and stupendous grim and gloomy egocentrism—that colossus with feet of clay—walks with a philosophy of its own and poses to the provincial gen try its absolute consciousness of all universal values But the periphery of the consciousness has dark fringes There it is sooty It has a border of soot

But you will admit the relevance and inevitability of the figures engraved with pains and patience on that sooty border of the glass which ■ consciousness Yes that sooty border does contain among its dismal neighbours—the eroded and corroded centre—some highly beautiful figures with a sugge stive grace and promise There are dark rings round the eyes of Hope the goddess as she has too long masturbated herself And the snouts of the heavenly gods are bleeding as their own philosophies struck back on their faces snapped at them w th terrific force But the life is not so bad as I paint it My imagination is a trouble It paints ■ world for me And exaggerates where defence of life demands exactitude Scie nce cannot be replaced by sorcery Imagination cannot reply where action is a demand Fruitlessness is something that obscures the traces of intelligence rationality and wisdom in man leaves him cold as a coal simmering painfully under the loss of its heat a minute before And yet I am not so hopeless Moreover I don t want that you should by any means take an (obscurest) chance of secret derision at me for the nonfulfil ment of the bulky promises I made about things As ■ way out of immediate difficulties I most hopelessly took two tuitions (periods) of Logic They are classes in ■ regular tho ugh private and unrecognized college And the worst there are girls and their mocking eyes bemoan the hopelessness of the affa r I have clean forgotten all Logic whatsoever There fore I have to prepare for teaching Had I done so much for my literary work I would have been next to any damn boosted up fallow (of course boosted up fellow I can toutrea ch) And the

*

worst, there is a dead weight on my soul that I have to prepare for Logic tomorrow From morning seven to evening five there is nothing but a fruitless busy-ness The girls seem to be ghosts when I have to do so much labour for their Logic and my non logic for only 25 chips given grudgingly to a teacher with an unshaven face and careless collars on an indifferent sort of a coat With pity and pathos and a mock, the prophet dances a Bhil dance of pain in my soul which I have often found to be quite a convenient sort of playground for such creatures to take summersaults from one thought centre to another without any apparent continuity of purpose

Now work *

What about my novel ? Please immediately sell it away (or send it back to me ?) And about my book of poems now My poems are all idealistic And I am ashamed to send them I want to be progressive, you know !

But should I send all sorts of them—good, bad, indifferent? The best of them I have sent to *Tar Saptak* So my enthusiasm has almost damped No ! But I will send you Please write to me immediately if I can still get money from Sahitya Sat [Sahityakar Samsad]

I will send it Sure ! But your letter, dear ! You must write to me You must do it immediately Please do

G C to Rekhaji and Love to Rashmi She must have come back by now,

Yours affly,
G M M

[39]

J B P
13-9 48

Dear Nemibabu,

It will be good if you write to me earlier As a matter of fact I had really wanted an immediate effort on your part to sell the Ms away at whatever cost The new development is that I was called for interview at Nagpore for the post of a journalist in a Govt deptt I may get it perhaps quite soon My absolute pennilessness will be deepened (with the new turn) in the coming months particularly when my wife is to

come within this week The Govt post carries a salary of Rs 125 plus 30 as allowance I may get it

Yours afly,
G M M

P S 14 9 48

I am getting less confident of the service above said, be it known Warmest love to you dear friend

Syt Nemichand Jain,
146, Allenganj,
Allahabad

[40]

J B P
21 9-48

Dear Nemibabu,

I hope you have received both of my letters Sorry to say this chit will rather trouble you As a matter of fact, it is impossible now to escape the crisis No breathing space available *to muster up strength and courage The economic sources are* already completely exhausted to the utter rout of my capabilities if there be any I Just don t know how would move the time with me For every new task you are required to have a previously stored physical and economic energy But there ins t any

Can I not get something *immediately* from the possible sale of my novel? Can it be done? Please do manage It is a hopeless case—this life of ours, incurable! But I won't spoil your moods I don't care for the present ills But past debts, past misfortunes still continue to beleagure me And this affair is so monstrous that the mouth becomes sour, taste disappears from the tongue Generally, I postpone writing to you about these things, but the acme they reach force me to force you to do something immediately for me And therefore you get melancholy and monotonous shocks from me emanating from the petit-bourgeois life which describes a vicious circle between being and non being

Had I got something from the novel in the month of August,

I would have concentrated on a different project But now it appears I have lost all power

I am prepared to sell it away for Rs 50 if I get the money immediately by return of post What is the value of money if it does not help you in your sore needs, if it comes afterwards when the men are already dead I am absolutely desperate now Don t be angry with me that I am so impatient, so bad and what not

Kindly sell the novel immediately and get me Rs 50 without delay Please do

And write to me by return of post what you have done Otherwise I am done for

My B C to Rekhaji

Wife is coming today or tomorrow

Yours affly,
G M M

[41]

Dear Nemibabu,

I am so sorry I could not write to you so long The amount I duly received and I ought to have sent a note to you I received your letter[1] too Very moving (indeed !) it was—the only one which made tears well up in my eyes The more therefore was the urgency of communicating with you But alas ! nothing could waken me up to a sense of communicative longing

And, then after a long period of two months, I get a small chit from a certain gentleman which makes me sit up and see where I am And I decide to write to you as soon as I get a breathful respite

Nearly about the same time when my wife came down from Ujjain, I get a call for interview and after a fortnight a letter of appointment—the salary being 125+30 The amount certainly was tempting The needs were growing There was the additional responsibility of lending Rs 20 to my parents —my father being deprived of his job due to State merger,

1 उपलब्ध नहीं ।

Personally speaking, I was disinclined to come to Nagpore, because I knew that the shifting of family would entail expenses which I could not do My wife along with two children is still at Jubbulpore and the mortgaged articles are still there waiting liberation from the oily box of the *Sahukar* I had already taxed you beyond imagination And my story from my departure from Allahabad is one of uniform gloom And the gloom is not spiritual

It is in a sense good that you got a job[1] I do not know if it would really do you good Whenever I imagined of you, thought of you, I felt you should have owned a press of your own An independent flourishing business of this type on a small scale is the only remedy After all how long would all this run The phychological and social barriers should be pondered down Had you had a Weekly of your own, or say a Monthly, you could have had your own standing by now The jobs that you undertake here and there are frankly speaking barren and unproductive Any way, the job may be a very good makeshift arrangement, and so I favour its acceptance by you I had perchance seen your photograph in *Maya*[2] along with your story The photograph makes you aged You look very serious in photographs as usual I should say the characteristic smile on your face has dissolved in to the general seriousness

What have you been writing uptill now? Please tell me and what have been and is your programme Please let me know I should be angry with you for withholding this news

Kindly let me know three things 1 Has *Tarsaptak* scheme accepted my name *finally*? I heard the *scheme has* undergone some change In that case I am lucky I want all those for my संग्रह If the scheme is unchanged and my name is still there I have nothing to say

Kindly inform me if all those poems can be included in my

---

1 माया प्रेस, इलाहाबाद द्वारा प्रकाशित बच्चा के मासिक पत्र मनमोहन के सम्पादन का काम।

2 इलाहाबाद से प्रकाशित होनेवाली कहानियों की मासिक पत्रिका।

collection Kindly ask Agyeyji for that Will you ? Please do it immediately

2 Who is my publisher who sent me 110 rupees ? I don t think there is any It is you who sent me the amount If you got one for me, what is his name and when he is going to publish my novel ?

3 Can you write to Bharat Bhushan Agrawal for a radio call and force him to do that ? Nagpur Radio Station doesn t know my name Not only that I want introduction, I want from B B, that he should *without affecting* my dignity introduce me to the abovementioned Radio Station Meanwhile you must simply arrange for me a Radio call at Allahabad or Lucknow Please do Will you?

Please tell me all about yourself I always pester you with problems of mine And I am so sorry for that. Really I How I wish I should be more an asset to you than liability

Machwe is expected here everyday He has become a Programme Assistant A I R Nagpore

My best regards to Shamsher Where is he ? What is he doing these days ? Is he living with you ? Kindly tell him my best regards

My best compliments to Rekhaji and Rashmi

I am waiting for your reply

Baban's *namaste* to you

Love to you, dear

Yours affly,
G M. M

[42]

Deptt of Information & Publicity
Civil Secretariat
Nagpore
8 12 48 (12 O clock night)

Dear Nemibabu

I hope you have received my previous letter , and as usual I am afraid it would have told upon your equanimity What a poor fellow this Mukt bodh is, you would have thought, who

is always whimpering, cannot administer a rap on the knuckles to his circumstances A ne'er-do-well old fool who has always been a liability, not to think of his ever being an asset

Probably you have not thought of me like that Possibly it is mine own self-derogatory shadow which converses with me in the above manner Whatever it be, substance or shadow, one thing is certain, I have not brought you any happiness Worries, cankers—these have been my gifts to you And blessed are those who accept them in such a forthright way

There is something like anxiety neurosis in the world And though you may laugh at it when I say I am suffering from it, I certainly must confess it to you—though as far I am concerned I should also add I should have been more neurotic than what I am sometimes When I return to what I call home—a wifeless, childrenless home—I am haunted by strange premonitions Ghastly and ghostly, the present and the future take various appearances In an unwordly, unhumanly dance they galvanize my spirit in their mad orgy Let my mind not travel their black way It is so bad, it is so bad

Yet I eat take tea, attend office, desire sex, see *cinema*, laugh heartily, criticize jocundly and chit chat merrily the time away But the dull tomtom, the ugly thud, the gurgling of the dark subterranean rivulet keeps me awake, my eyes dilate any try to look at, to gaze at the disturbing factor

Well, I am not in a good mood In a cheerful frame of mind I am not This is 11 O clock It is wintery night I could not sleep at home Came here in this drab restaurant Have taken three cups of tea Yet I am not feeling well Had brought pen and paper to write to you a few words

When I started from home to come here, I had a clear mind to be clouded again I had, clearly, neat sentences to write to you To be with you for a few minutes, and to tell you some thing which is very difficult with me

Any way, let me tell it to you You have sent me Rs 110/-

I got your hundred ten before two months I am so sorry to tell you that very neatly the sum went to fulfil the previous big rents big holes in the economy Then I came here It is a good job, you know, But how to bring wife and children How to wrest from the moneylender the नथ etc Why can t you sell my novel right away ? It should be sold say at least for a sum of rupees 250 I can yet get Rs 140 If I can get, why can't you get me them I shall be awfully happy Then kindly enquire with Vatsyayanji if he is going to include me in neo- *Tarasaptak* If he doesn t, so much the better I shall include all those peoms in my new collection Please do this for me And, last of all why not write to Bharatji for one or two calls for me at A I R Lucknow That can solve my problems

My wife along with two very young kids is alone and ill, *as usual And I have not a single farthing No Kopek in* my pocket

As God wish it And kindly don t be angry with me Please don t

Yours affly
G M M

My [illegible] C to Rekhaji and love to Rashmi

Addendum (after coming home)

What a selfish fool I am to have pestered you with these gloomy questionings There are knaves in the world And perhaps I am one of them A person who can t maintain his children, cannot keep his wife happy or more correctly keeps her on doles, is a being who is almost contemptible But what can I do ! I am, personally speaking, not afraid of poverty But no one who sees dark and ever dark rings round the eyes of his dear people can congratulate his existence My curse are those eyes They suggest no, they forebode

And, oh my heart sinks, at their deep impress At their profound accusation (against me, presumable) I tremble And so *I accuse myself And in my abject spiritual misery, mental tor*tures, I come to you I do so only when the things become

hopelessly unmanageable for me, when I can no more sleep when there is [no] more hope for me

And, to be sure, to a sane person like you it appears bewilderingly 'unbalanced affair Perhaps a perversion I don t know I don t know But I don t want you to think poor of me There are others to do that you know Those who get on well with things think they are really courageous and gifted people Brave ones But that is not always so The successful ones pity those who are havenots

But, you know, I am very stiff towards them They think I am almost an egoist, and rank and hopeless individualist Stiff and stiff necked I am with them I try snobbery with snobs But there is an anxiety within There is a request within, there is a quest within Who would be my god now, who would be good to me (and I have never been good to any one uptill now), who would just hear my case

The career and the tenure of life ! But these are big ideals I can t make a career when I can t make two ends meet I am so sorry for myself and for my friends who are pestered by me I never enquire about their worries I have never partaken in any of their troubles And when they solve my troubles the time of my rest begins and I don t drop a single chit to them

Dear, I don t want th s sort of gloomy drab letter should exist in your drawers Won t you tear it away ? It is so morbidly gloomy It is so nervously written that I don t myself like it to exist on your table Can t you tear it away

And, this letter of mine has created deep disquiet in your heart.

You will forgive me, dear
Good bye
You will write to me of course

You affly
G M M

No ref. to anyone about this letter please

Deptt of Information & Publicity
Civil Secretariat
Nagpore
[December 1948 end or early January 1949]

Dear Nemibabu,

So sorry to have kept silence over your earnest utterances But can t help The feeling of inferiority that I experience so *many times* is *not merely due to the fact that I am not economically* well off, but due to a certain mistake—I may like to say 'guilt in my off the guard moments—at the very bottom of my reality I wish to draw your attention to a *very common characteristic* of our—rather my—existence that is that we cannot manage our family economy balanced A certain rational outlook is needed to keep the two ends always met, a certain amount of feeling is needed to sense the irrationality of the whole affair Old philosophers were obviously wrong in declaring that knowing is being It is not so Rationality does not consist in merely recognising a spade a spade (That is very elementry) That is mere perception on conceptual plane We have been doing that all along And nothing fundamental has come out of it as *yet This merely aggravates the situation* Knowledge—a mere recognition of a necessity—does not necessarily lead a man to change it And this defect with some *variant elements* has been found out in petit bourgeois parasitical modes of life That may be ultimately traced to the social quanta But the fact remains that theoretically the 'ultimates' may remain important and may have umblical relations with the discrepancies in human existence, yet the responsibility is an immediate factor in practical life And so this responsibility of the discrepancies immediately involves the man concerned Why this defect ? The man explains his position He points out to a weakness in him He feels that he is reponsible for it —for all the chaos that he has created, that he is not proving equal in stature to the *difficulties he is attended by* That makes him feel inferior The continuation of the crisis makes him feel all the more desperate ! Here is the spring of his morbid feeling of *inferiority*

I may not—and should not—have mentioned the above,

but I felt inclined to disagree with you Many times I wondered what makes people so elite—so hopelessly self important, I ▪ bold inspite of the very obvious shortcomings that they share with their own breed And I found that they were very blunt, and at the worst toy lions Anyway, to keep this boring discourse ▪ finished, I should say that in the light of above reflections, I should improve my conduct and be an honest family man

And why I am forced to write this ? Don t ask me that It is a sorry story—a foolish affair

And, the last that has kept me nervous all along is to write the most embarrassing thing that a man has to do which for all practical purposes he so boldly does nonetheless

I did not write to you that because I could not do so It is not I but my better half who has asked me to seek your help She has been living at JBP since Sept And the doles that I have been giving out to her does not go long way to finish the burden of debt It will take many more months And today my hands are too full to take any other work I have been busy writing a biographical sketch of Muhammad Paighamber which would be finished in this month Then alone I can take any other work in hand The money the present work would bring is no less than Rs 300/ , but not now, after 8 months This is bureaucracy, it is going to be published by Social Education Department I have had to take it Imagine then the condition In February, I shall finish my book of poems That would bring me money in March or April That too when I won't take any hack work This can only be done in that condition Hack work is needed for immediate needs, and that does not give me more [than] 10 or 15 chips In 3 months I got one Radio call from Nagpore AIR paying me Rs 20 which I have not yet received That means I can not for all practical purposes call her here before April or at the worst May This is too much And if she or I insist on you to send at least Rs 100/- immediately, it is not unnatural To tell you the truth the situation is extremely delicate, and desperate enough Only some major catastrophe—some calamity, has not taken its toll, which I would move you to action But the way the avalanche is coming down the descent ▪ a sure enough sign I can t say more than this. The rest is upon you

to realize Yes, I morally force you to do something immedia tely Had I stuck to JBP, I would not have bothered you I have already given you more than enough reason to get exas sperated with me *After all, why should you be poundered* [sic] when I do not take into consideration your own position There can; truly be so many position against me And more over why, should I feel I should force you to accept a moral burden to provide me with Rs 100 immediately These are questions I cannot answer In the light of your own terrific difficulties, you may turn down my request ! And I can never in my heart of hearts blame you for that But the thing stands that when [I] lose all hope from others that I turn to you, and secondly you can if you will procure the sum if you feel des perate Only desperately trying you will definitey get the sum for me

I don t want to write to you anything more at peresent At some later date

I heard there was some criticism against me in the P W Conference at Allahabad Will you tell me what was that ?

My B C to Rekhaji and love to Rashmi

Please write to me immediately I hope you will I am waiting for your reply

Yours affly
G M M

(44)

Deptt of Information & Publicity
Civil Secretariat,
Nagpore
5 2 49

Dear Nemibabu

You must be very busy in the affairs of the impending IP-TA Con [1] And that is why I suppose your silence I have already sent you an usually troublesome letter, which should

1 भारतीय जन नाट्य सघ का दूसरा अखिल भारतीय सम्मलन इलाहाबाद म मार्च 1949 म हुआ—29 मार्च की प्रस्तावित रेलवे हड़ताल की आतकपूर्ण पृष्ठभूमि म। नेमि उस समय भारतीय जन नाट्य सघ के सयुक्त सचिव और इस सम्मलन के सयोजक थे।

have sent anyone in private rage against the unwholesome writer And now this another bullet from the pop gun

I had seen your photograph in *Maya* What do you think is the impression one gets of it? As for me I should say I like it though the aesthetes may quarrel with me on this point My contacts with Machwe here were fewer The regular hum drum life has a way of its own Sometimes I wonder how I became a Govt servant But I should say it is a new experience And its ruggedness has its own charm Here the charm is more fantastic than romantic But any how, the *clipped wings are understanding the way wings are* clipped

There is a dull tomtom in mind which is heavier with the passing of time This is perhaps an experience which the fallen angels feel when among bad company, they enjoy carouse and yet have the black objectivity of seeing the carousal

In spite of tremendous odds and rust and rot, I go on taking tea and smile at myself And aspire for a higher remunerative job The difficulties are the same and faults are identical with the circumstances which always make one s life appear difficult in one s eyes and faulty in those of others and barren in any case The books that come to one pry into one s deep faithless eyes and fathom the depths of cynicism that is one s heart and then with a jerk and with meaningful squeaking laugh they thrust there hooked claws into the petit-bourgeois flesh of the pumping heart, and perch on it and caw and sing This act of the books is interpreted by the sophisticated conscious mind as inspiration, genuineness, honesty and what not As a matter of fact they are wild birds who catch hold of and don t leave the cynical noses of the intelligentsia

I am so sorry my scribbling does not entertain you They either bring trouble to you or make you gloomy

But don't you know I am gleeful I am not at all conscience-stricken If you don't like my letters, please tear them off

Rest is O K.

Yours affly
G M M

(45)

Nagpore
8.2.49

Dear Nemibabu,

Will you write to me ? I hope you have already received two scribblings of mine.

Hope this letter finds you in cheerful frame of mind

With love and best regards

Yours affly,
G.M M

Shri Nemi Chand Jain,
144, Allenganj
Allahabad

(46)

Deptt of Inf & Publicity,
Civil Secretariat
Nagpore
[13 2 49]

Dear Nemibabu,

I have already sent you two letters And you remained very silent. I think it may be due to your IPTA affair Any way please answer the following

I. Can you immediately arrange for an offer of translation of some stories ?

II Can you arrange for an offer of translation of some book ? The translations may be done from Bengali and English language

Please reply.

Yours affly
G M M.

Sh Nemi Chand Jain,
144, Allenganj,
Allahabad

(47)

Nagpore
3 5 49

Dear Nemibabu

So, you are extremely annoyed with me beyond remedy What is the explanation after all of such consistent spell of unhelpful and helpless silence to be fortunately (and sweetly enough) broken by the gentle and beautiful handwriting on a packet of paper which I duly receive Never have your uncommunicative moods reached such dimensions

As for me, I am quite well here better than what I was at Jubbulpore At least, so it seems I am not yet settled-like here and other things too are not yet so As for my writings, I should say I have written a few significant poems *though these may not be good* I want to hear from you so much that I do not know what to do

What about my dear Shamsher, that angelic spirit ? Is he still your neighbour ? If not, what is his address ? How much I wish to be in your company again As a matter of fact how much isolated do I feel here Since I became Govt servant, the sense of fruitlessness has been unbearably heavy You people live in finer atmosphere and have your nerves intact while I have already lost them This much about me And you won t hear anything from me now on, unless you tell me your own Then I shall write a longer letter Please do devote a few minutes to scribbling out a few lines to me

My B C to Smt Rekhaji and love to Rashmi. Wishing to hear from you as soon as possible I wish I should be more fortunate in this respect

Love to you,

Yours affly
G M M

Shri Nemichand Jain
144, Allenganj
Allahabad

Civil Secretariat
Nagpur
6 8 49

Dear Nemibabu

I have been equally irresponsible as regards a reply to your letter received a month or so back The main reasons for my worries about your silence were of course very many one of them being the possible arrest and detention and the news escaping me Moreover since I left Jubbulpore I had almost a morbid inkling that your disapproval of my present job may idealist cally turn into a bit of distance Moreover the changes that have taken place in your and mine life have warranted friendly and of course independent courses of life a tenure The old sentimentalism with its warm intellectual rim and ph losophical colour has to my knowledge vanished and more practical pursuits have taken initiative in their hands Now these practical pursuits have a way of their own to blunder into big satisfactions the common form of which is over busy ness conspiring against the person but confusing him to let him feel that after all there is a physical joy in doing and getting things done and so passing the day cheerfully Now these practical pursuits have a way of keeping people apart or rather to tell you in active voice one becomes enclosed in his own forewalls of work You perhaps come cheered up and sleep soundly I on the other hand get fed up with these things When I begin to think how am I related to these so-called practical pursuits the answer is plain and simple No At least the present and omnipresent practical routine things to be laboriously done require greater compensation in the form of either invested significance or ideal colour which somehow the things lack Our social life and the means of livelihood have gone poorer Yet their claws have plunged deeper into our souls We can t help it We have to accept what has been laid before us as already selected for us by other forces

Mine is a philosophy of cynicism and defeatism The wisdom if there be any consists only in the formulae of evading the unhappiest by passing the non inevitable and

facing the small but innumerable privations worries and insults emanating from familiar and unfamiliar sources The darkened walls of my mind know only a faint light coming from say a friendly letter, an encouraging smile, and indulgent attitude But, on the whole, I should confess I am a hopelessly weak fellow physically and mentally

But, when I think of weakness, I begin to be really cynically disposed What, after all, can I do ? I cannot be joyous when there are material factors which cannot be overwhelmed, outwitted and destroyed And I cannot therefore but advise myself to exercise simple silence and patience As for myself, I go on exercising it But these circumstances are not silent lifeless things They are living devils They go on growing and they damnedly kill you and even after your death pursue others with hopeless steadiness as they have been pursuing you like a nightmare

And, exactly, this is my life I should say, I am afraid of you, because I think I have over-exploited you and claimed on you many unwarranted things And when I write to you I always mention and enlarge upon a tale of woe, which generally people don t, shouldn t like That is not manly either And this problem of manliness makes me neutralised, I get at a fix And so I don t write to you But I murmur things to you while on way somewhere

But how the problems are to be solved ? I have stopped all correspondence with my father I can t send him anything And nowadays they are worse off But this 'no correspondence' of my own, recoils on me and I emotionally suffer and suffer No one knows how a son can suffer for his father, for his mother The more I become irresponsive towards them, the greater is my hopelessness and craving and pining

And, though I shouldn t have mentioned, Shanta in her agonised moments, had delivered hard blows home to me Anyway, what I wanted to assert is the plain truth that when I state that you would be angry, I do not mean that you have an apathetic cynico egoistical purblind core, which fails to realise the troubles of others When I write to let you suspect that I fail to drive home the meaning of the word 'angry' In

our petit-bourgeois egoistic culture, the 'pitiable' self expression of the actual conditions is supposed to do two things (i) it exposes the victim to the amused smiles of others with half-sympathetic half mocking twinkle in the eyes the repeated 'self-expression would, therefore, be the cause of concealed and half concealed anger, (ii) ■ would embitter the victim all the more not because of the cynical smiles of others but through sheer self consciousness and make him angry with himself

I think it is the latter that through self projection invents that you would be angry with me This piece of analysis I suppose, would lead you closer to the understanding of the very private and special and perhaps agonised sense in which the word 'angry is used and stuck to you Then please don t become angry now

I was extremely worrying about your silence, not knowing your new occupations *I thought, may be you had left Alld*, or possibly you are under detention Detention would certainly be longer Moreover, the darkness that enveloped your movements naturally made me very restive

At Nagpore, I feel alone isolated and amputated One side of my life has been completely paralysed My voice is stifled And the circumstances are all the worse There is no cheer in life, and dread outside service makes me helpless I am economically and mentally a chronic case

And, then, your previous letter flew me in ■ sudden impulse of joy, which, of course was soon exhausted The news that my novel is being printed was more than important It bucked me up Since then, I suppose I have written a few new poems A few pages more were added to my new novel, and my mind is moving more and more to the right direction But, alas ! I have no time for these mental pursuits If seen from the time mapping view it would be known to anybody that unlike serious writers, literature is given the last place in life And then fatigue demoralizes and I am no more as a living creating soul

But I could not appreciate—I am a subjective person, you know—the over-busy-ness that you are undergoing Though the bookshop work may cheer you up, I do not think it will

give you substantial money And this over busy ness may last only till Rekakji is at home province I don t know how can you manage your business when she comes up Any way, as I do not know all the pros and cons of the affair, I can t say anything Have you really become the owner of the book-shop ? If so well, I am very glad About your new mischief I should say you have quite sufficient scope so far as this thing ■ *concerned only once* But it would be a disaster after that As for me, I am thinking of getting myself operated upon Well, I suppose Rekhaji is quite allright And perhaps you may be thinking of going once there When would you be undertaking the pleasant journey home? Will you tell me ?

I so much wish to come to Allahabad I am ■ Govt servant, you know, and don't get leave at my convenience I will let you know when I will Perhaps in the month of September or October that I may see you

The purpose of this letter has been very different Dear Nemibabu, I won t tell you now what my troubles are The very profound desperation had led my wife the other day to write to you She showed me the terrible piece and I tore it into pieces I promised her to write to you personally Though it is always difficult, painful and shameful to mention the dark gloomy depths of everyday life, one cannot really but keep murmuring to oneself of writing out to you, if in practice one may not, through sheer horror at the unmanliness I have been hunting in the preceding months a *Pathan* who would lend me a sum of Rs 200 And look at the forewalls of the culture, I am unable to find one, though I may, but when one cannot say I am prepared to pay an interest of Rs 30 p m only if I can get the sum If my mind remains free from worries, I can write, and pay off the real sum to the contemplated *Pathan* At least half of the sum would go to my mother whom I have not seen, the letters of whom I have not responded to Stopped all correspondence But I am not finding the sum Every month the salary as a whole is distributed, not ■ farthing remains for food, and then small borrowings with due sprinklings of insults and humiliations, keep the two young ones, wife and myself No one even stops to wait for a few months for repayment Even a single rupee must be paid up on the

1st of every month Naturally, *small borrowings are paid up* but what of big ones

I have left passing through those streets where the blessed physician the grocer, the tea-shopwalla watch the debtors for a good hunt We passed last 3 months in this condition, changed doctors for want of money, used all *tricks and tactics* to keep them away After all I can t write, sell books in this condition I am prepared to pay say Rs 30 p m on debt, but not the whole sum

My wife is at daggers drawn with me and has the slightest respect left for me now She says it openly and, as a last measure, had managed to write to you which I checked in time Quite true I have not given her any happiness But I too am exremely unhappy If I smoke *Bidis* and take 3 cups of tea daily outside, I can t help I get away from my home at 9 A M , on foot to cross 4 miles in an hour to the Secretariat, and come *back on foot again and reach home at 6 30 to be* only sent here and there for house purposes with crazy crossness She remains alone, at home, in privations, along with her two whimpering children What can I do ? I can t help I have no peace of mind, I can t write, I can t earn, I can t beg *from* my brother That would be the greatest punishment to me and this repeated reference to my tea *bidi* indulgence makes me awfully brutal And I get horrified at my roused passions

I really wonder why people think me idle, while on the other hand I am awfully busy doing this and that People say, I have no zeal, I am pessimistic, egoistical, undisciplined and desperate clumsy fellow I wish them to leave me alone They often drive home to me that I am a stupid person All tormented people sound stupid I can t help

But perhaps, the worst of it all, is this that I can t complain against *anybody, because all, in their fatuous material or* psychological success and well being, are wise, because they feel themselves wise, prudent and what not

Leave them to hell What have I to do ? Away, away from the world I wish I am so grown up now that I have no zeal for imagining of self immolation of which suicide is the kind

Why can't you send some money to me ? If you have not, you may borrow on my behalf You cannot believe I shall send you Rs 30 p m But please don t drive me mad

Again a feeling is coming up Why should I have written to you all this Prudence demanded and wife s exhortations drove me to ask you for two hundred I have no gold and no silver to pawn Had it been so, I would have long done that But why should I have written to you all this ? At any other moment of the sort, I would have uttered 'please don t be angry'

I can go to the length of murmuring to myself, 'Please borrow for me, you don t believe me, but I shall repay you Please request from your father, if possible If I get money, I shall be able to write novels and earn money Some investment here too is wanted I shall certainly repay you in cash'

8 8 49

You may not believe these murmurinds and mutterings as a piece of rationality, and even if you take them earnestly, you may find your own position too highly precarious to advance a loan of such a big sum But it is requested that an attempt on your part has got to be made at any cost The idea of a *Pathan* is creeping in my mind like a steady deadly worm and I wish it should be materialised The confess on of the coldly and actually proffered harassment, coming as it is from me, will harass you all the more I am sorry to find myself a source of constant trouble to you Be it as it may, I am sure you would, initially, write to me by return of post, i e , don t avoid or postpone writing for reasons known and unknown

Let this mad chatter stop here Let me assume a more balanced and manly pose I was to come to you on the 2nd of August but then some fear and some anxiety prevented me from doing so

Kindly tell my B C to Bharat Bhushan Agrawal I often hear him I have not seen him since ages Will his writings *see light of the day ?*

Have you become father of new child ? Is Rekhaji keeping well ? I hope she does

When are you going to Barwasagar? *Sincere congratulations* for your new fatherhood

Pay my respects to our dear Shamsher I hope he keeps well My next letter would not be so taxing to you as this one

And again, please don t be angry and excuse me for the use of this well meaning nonsense

My B C to Rekhaji I hope you are keeping well

With love

Yours affly,
G M Muktibodh

[49]

Nagpur
3 9 49

Dear *Nemibabu*,

My previous letter, it seems, has shocked you to such an extent that perforce you had to keep silence I shall be the last man to misunderstand you in any way, I perfectly know your limits and liabilities and thus, I can never, even in dream, think of you otherwise What I feel is that I have been such a gloomy idiot as to expect that I would receive delightful letters for those dark spasmodic communications of mine I feel ashamed sometimes to go to such naked length, without happy pride and felicitious prejudice which a man of won t harbours and should harbour I very well realize, that my letters find a deep (though sometimes monotonous) echo in your soul

I wish to hear from you and shall be happy, very happy in doing so

Yours affly,
G M M

Shri Nemi Chand Jain,
146, Allenganj,
Allahabad

Nagpur
29 10 49

Dear Nemibabu,

Your silence some how suggests to me some vital changes in your moods and conditions Our friend Machwe in his post-card had written to me something which simply was literary He wrote you are leading a 'hunted life these days In these days of political inquisition, it is not surprising to find you in such a condition (and he referred to that) What makes me rather pensive on this score is an irrational intuition suggesting some disbalance in your condition I cannot explain myself well But I feel you know what I say

My previous letters, unanswered as they are, have been gloomy as usual and perhaps not worth natural reply That I myself feel But that is no reason why I should be shut out from the knowledge regarding yourself and Shamsher

So much water has flown since I met you last, and a new friend of mine has hitherto been tempting me to take to farming in an interior corner of this backward jungle province Though it is almost psychologically certain that I won't be unpsychological in choosing the new profession, I am yet uncertain whither I should now drift I am scenting some change is in the offing

I have been going through some very dark passages and the cheer of life was present only in the sense of a forced smile I need not mention what, why and how

My literary life has not been quite barren, though I must sincerely confess I have risen in my eyes only to find depressing deficiencies in my attempts, all the more so because I neither have enough time nor physical and mental energy and of course no purse to concretise the plans and pictures that I harbour in mind When I feel and realise others' *success*, I feel almost suffocatingly wretched, and have nothing to bank upon except another idealistic determination to wake up early in the morning and ply myself to work

with the greater self confidence and faith in the ultimate success of my works

A thing which I wanted to express—I would have done so skilfully had you been bodily near me—is that something see these in me to take up bigger questions and put them in art form These pious hopes of mine will naturally lead me to hell if not put into action Some very beautiful thoughts and plans have been hunting me and I wish I should put them in black and white as soon as possible

I am really eager to know what you and Shamsher have been at Naturally some writing (as I have done) must have come out in spite of all the toilsome and moilsome work ■ day humdrum that one has to face In the previous passages mentoin of my writing has been made deliberately to take out from you the knowledge regarding what and how much you have done I also desired to be informed about the writer■ difficulties which he has been encountering upto now

These are intimate questions and I want to be intimately enlightened about them Now when you would be writing to me after a lapse of so many months I wish I should be taken into greater confidence for a longer span of writing spell I feel so lonely my dear friend without you that I am bored with myself to death and shut out from all that I am intimately interested in

Allahabad has almost become ■ heaven for my restless soul The other dearest Place is of course Ujjain where my parents reside A helpless and pelfless creature like myself has no other fate than keep himself shut out from all those whom he most subjectively most intimately loves The logic of life is such a relentless movement that estrangement is the cost one has to proffer for the escapist defence of his self-esteem This [is] particularly true with regard to relations with my parents I wish to almost see everything of yourself expressed in thought and action and of whatever category that may be

Will you tell me without forgetting how many pages of my novel have been printed ? Please do tell me about that I am so keenly aware of your erstwhile troubles given on my

part that I have almost gone selfish with regard to you And, yet, I beseech that you kindly see that the book be duly printed and published as soon as possible I am personally highly indebted to our dear Shamsher for his self denying pains with regard to the publication for the novel Please do write to me about this

Only if you can assure me that a book of my poems can be published here and now, I shall be soon collecting all sundry poems of mine and sending them to you within a fortnight Before this, of course, a letter from you is highly necessary and that shall of course be a tonic to my slumbering spirits

Please convey my love and warm greetings to Shamsher and write to me in detail as soon as it is possible and convenient to you

And my love to your new child Is it a 'he' or 'she ? And what about your eldest child ? In what class is she reading now ? And Rashmi—that glorious intelligence, what about her, is she keeping well ?

And Rekhaji, I suppose, must and should be well She has increased her responsibility perhaps, more than yours psychologically

I am allright Lights are dying out, the winged insects from the filthy lane have invaded the room

Good bye

Affectionately yours
G M M

(51)

H N 86 Vishnu Daji Gali,
Circle No 2,
Nai Shukrawari,
Nagpore
[9 1 50]

Dear Nemibabu,

If you still live in Allenganj, Allahabad, kindly write me back, or if this little card gets the favour of your attention,

please let me know about you I have been suffering from typhoid, now I am well B C to Rekhaji Rest O K

Your affly,
G M M.

Shri Nemi Chand Jain,
146, Allenganj
Allahabad

[52]

Nagpore
3 3 [50]
Date of despatch 13 3 [50]

Dear Nemibabu,

Your previous letter brought solace and happiness to me I was, as a matter of fact at a loss to know your whereabouts and my mind conjured up images that were in line with the common happenings that befell people of our ideology and walk of life Through Machwe I came to know first that you were O K and that he had conscious unconscious reasons to suppose that you have grown a Neta, that your busyness keeps you away from him no mention of the distance of Allahabad, space that is between his and your places of work and living Your letters had brought tears to my eyes Really, I am rich when I am with you , though I feel I am alone—alone in spite of the People who live around me Jubbulpur and Nagpur life of mine has been a banishment And I lead the life of an exclusive exile—morose, cynical and sceptic The only benefit that I drew is the convergence of all the forces within (on the point of the bayonet of the suffering mind) on literature Literary thoughts, literary anxieties and literary worries have been the characteristic of an otherwise passive life of mine here Extremity too has taken much of my vitality Typhoid left me decrepit in health and the mountimg troubles and worries impoverished my soul As a matter of fact, I have not yet recovered my former healh whatever you may call it Yet seemingly everything is O K At least, it is seemingly

so is a matter of no less satisfaction. Wife and children are allright

You do not know how much I wish to see you I may manage to take a few days casual leave and come over to Allahabad But the point is—and It is an important point—will you have any spare time to indulge in You are extremely busy in your affairs My arrival would only divert your atten tion And the worse of it is that I am a liability to you I am almost tempted to come to Allahabad But I wish you should not be inconvenienced a bit Burden of life is as big for you as it is to me and others

Rekhaji s letter to my wife has completely overtaken—I mean overwhelmed—both of us How much profoundly moved were we can only be guessed Personally speaking I feel immensely grateful to her—not a formal but an emotional gra tefulness I often appear to myself realizing what and how much has been her contribution to me in the form of freedom that I exercise in relation to you—the contribution that is you or a part of you—and an important one at that I salute her with all the humbleness that I am feeling just now Convey to her Shanta s and mine respectful regards Shanta s letter to her is proceeding shortly

Had her letter not come I would have perhaps slept over your previous letter for a longer while My last postcard to you had done its duty It had brought an almost immediate reply—the reply that had made me so happy and confident—confident of myself Her letter gave a picture while yours had supplied the meaning The picture of a meaning and meaning both are equally important It is through her letter that I came to know what I owe to one That means I came to realize how much trouble you had taken for my sake when I was suffering from typhoid The success or unsuccess is meaningless in re lation to love and affection that is so precious

I admit your prev letter called for an immediate say urgent reply But as it is my undesirable wont the moment my anxie ties were allayed I took matters easily i e I grew unconscious of the tumult in your mind about me This egocentric eccen-tricity has always done much harm to me though I must for

the sake of fairness even to me, should say that I always remembered I have to write a letter to you and that I must do it, within no time And yet somehow, I could not move myself to undertake the task Even two words would have spoken much, had they been penned But, alas! such ■ the human frailty that howmuchsoever you will a thing the will fails you The less written about it, the better ■ is

In what words should I express myself to you The shadow of troubles have grown denser And the will to resist is an instinct to one and acquired habit to another Yet in spite of personal weakness and external impediments I am carrying on though it seems to be almost a thankless job

My best regards and love to Shamsher How much I wish to see him and exchange glorious smiles with warm shakehands Kindly convey that I remember him so much, so much

Will you very kindly let me know without forgetting as to what has happend to my novel, how for the printing has progressed Please do

Even if money does not come up it is—so I have begun to think—desirable that a book of poems of mine should be published in the very near future Don t take me to be ■ selfish careerist Yet, to confess I have begun to think in terms of a literary career I crave for some kind of success, otherwise it seems I shall be drowned along with the dregs of self confidence that have been scantily at my disposal I hope you understand that I am prepared to sell away the whole lot of poems for Rs 200 only, if one is prepared to take it and publish it in near future Kindly ask Shamsher to be of this help to me Even if one does not give a single farthing I think the publication of the book is necessary Kindly let me know about yourself

Will you tell me what have you been thinking all along in literature ? I have written a few more poems You must simply tell me all about that I must hear that from you I know you don t get much time I know your are hard up Yet you must have written many things.

I am awaiting your letter with eager interest and anxious mind My love to Rashmi and the little one

With love and embraces

Affectionately yours
G M M

Nagpur
Again 13 3 50

I am despatching this letter after exactly 10 days I have gone through it all over again and feel that much has not been written much that troubles me in my private hours much that concerns you and me I cannot even realize what is seething in my mind behind and within the forewalls of my breast except that I have not known enough of you enough of your thoughts and troubles enough of Shamsher and all that that makes Shamsher live and move Yet I wish I should through some rat onal or mystical process live and breathe all that I want to know and do about persons and things which I love to identify myself with within But this is a mad raving

Hoping to be excused and as ever awaiting yours and if possible Shamsher s letter

Convey my best regards and respects to Rekhaji and love to children

Yours affectionately
G M M

[53]

Nagpur
9 7 50

Dear Nemibabu

Awful is your silence And yet I think not you won t *write* to me How long then this uncommunicative spell of silence would be ?

I am O K Just as usual No less and no more Though perhaps the katablic process has crept in—in mind as well as in physique one wonders why it has not overtaken me I am still alive though to confess th ngs straight I should say I am living in order to die Very good No drama and no melodrama Yet I should not be cynical And I can t help being otherwise

Today ın the office, I dıscoverd an old file of *Agamı Kal* and I paused upon a poem, which ran like this तुम बुझो न मेरे प्राणा की आलोक किरण It s yours I still happen to like it. And yet I struck a dissident note Somehow, I began to argue with myself is the poem true? The persuasive music, the deep softflowing lines, the limpid content comparable to the ray-kissed golden flow of a rivulet all encouraged me to take an exalted view of the matter Though the content reflects the tormented personality of the writer and in that sense is no more comparable to the limpid rivulet, but to a dark flow of an underground water rushing into the subterranean bosom of a volcanic land I should still say that the first line pinned my attention to [redacted] fact (supposed so by me) that the line ought to have run like this

'प्राणो मे है कही नही आलोक किरण,
मै कभी खोलता कभी बाँधता रहा मान अपने बन्धन"

Now this attempt on my part is funny indeed ! But the *question is deeper Why should the first line leave me,* completely dissatisfied? The reply is clear, like a cathode ray or a bullet if you please I am dissatisfied with it because th it In other *is slowly giv-* n really getting , if not organi cally, compromised with the situtation outside that I prefer *curtailment of freedom if there be any, that I am a journalist* to the Govt of M P and the work of gagging free opinion is better than starvation that all is good that gives bread and butter That s why the deeply personal, the true and the golden sounds flase to me But, God forbid it only happens sometimes and I congratulate myself that before such dark forces, I still have the courage and audacity to think of myself otherwise

So long as I am not unhappy, I am happy, I don't get money enough to keep body and soul together *of others* I take profounder interest in tea and smoke away the smoke-screen of self satisfaction, that I sometimes raise in myself for sheer self defence Rest is Okay

It is useless to be wise when your wisdom only makes you hesitant, brooding and moody That [redacted] a high road to a demented existence A self analysis in the ordinary course [redacted] a tortuous process, a devitalising factor even if the results reached are true and truthful A progressive, a Marxist looks at self analysis not so much from a different angle—only his angle is wider and his understanding deeper—as with a diffe-

rent attitude He wants to analyse in order to paralyse the dark forces and not to get himself in a fix, to improve his actual conduct in relation to himself and the progressive humanity In other words, those who want to do something reach concrete results of thought first The concreteness of the thought result becomes a point in the daily agenda of their work, the pivot of their daily conduct

But those who have not learnt Marxism—not understood the spirit of it—make self-analysis in order to satisfy an urge—the dark self eating happiness they get Like moribund capitalism, they make capital out of their worries, a super profit in the form of increasing parasitism, i e paralysis Therefore idealistic depths of self-analysis only leaves one where he was, only to find himself sink deeper in the quagmire of his urges, instincts, and intents all confused Therefore, it is useless to self-analyse that way

And, therefore, you will be glad to know I have left that contemplative habit I just don t want to know myself, when I know I can t arrive at correct results And I wish to assure you, you shall no more find my letters gloomy Blissfully idiotic though one may think of me greater warmth and sun are now entering the chinks of my door

I am not stilled into a silence of grave And I wish you to like me more for that What a line of wishful thinking I I wish to cut a more impressive and significant figure when I meet you in future But that is subjectivism

I got a new Mrs Jain here A good figure, a good lady I like her She is an Indian Anna Kerranina She has read that novel and likes it very much Those people don t like me mentioning much of you and Rekhaji precisely because they think I am much more given to other fellows—the fact is, if you do not feel embarrassed, I fly into a rage of admiration of some people who are N C Jain and Mrs N C Jain And, somehow or other, this does not seem right to them, rather indiscreet Yet, I like her And you too will like her They are [illegible] relation (not in bad sense) [illegible] I am a desolate dunce [illegible] ration and disgust in this hovel of my house

No matter, I wish all happiness to all (because I can t do anything for anyone)

My best compliments to Rekhaji I hope she is all right Kindly convey my regards to her

My dear Sir, I know you won't write to me. And, therefore, you won t mind a few angry words from me which are boiling

in my heart And yet I can t express them due to sheer habit of putting up gentlemanly appearances *Really,* I wish to be extremely angry with yoJ, genuinely enraged and yet these lines tremble on my lips

हम हैं मुश्ताक और वो बेजार
या इलाही ! य' माजरा क्या है ।

Rest Okay which means blissfully Idiotic

Yours affly,
G M M

[54]

समता[1]

साहित्यिक सांस्कृतिक मासिक पुस्तिका

601 गोल बाजार
जबलपुर
ता 9 9 50 नागपुर

प्रिय नेमि बाबू,

प्यार ! आप इस तरह चुप हैं जैसे शून्य निर्विकार आसमान !! खैरियत तो है न !

मेरी दो चिट्ठियाँ अनुत्तरित पड़ी होंगी आपकी दराज म । भला आप क्या फिक्र करने लगे !! यह नि सन्देह कि मेरी याद आपको आती होगी जैसी कि हम यह सताती है । किन्तु मात्र एकान्त पलो की स्मृति दीप्ति भी किस काम की अगर वह हमारे पथ को आलोकित न कर सके, अगर वह एक दूसरे के हाथ-म-हाथ दिये ज़िन्दगी म साथ चलने का बल न दे पाये । वैसे, आपकी मर्ज़ी । जब फुरसत हो, तब लिखिए । अपनी खैरियत के समाचार देते रहिए ।

रेखाजी [को] सस्नेह [illegible] और [illegible] को प्यार [illegible]जी ने बच्ची का नाम क्य [illegible] ? भारतभूषण और विन्दुज [illegible] । शमशेर को हमारी पहली चिट्ठी मिल गयी थी ? लिखें ।

आपका सस्नेह,
ग मा मुक्तिबोध

Shri Nemi Chand Jain
146 Allenganj
Allahabad (U P)

[55]

Nagpur
9 11 50

Dear Nemibabu

This is tenth month since I received your previous

---

1 छपा हुआ पोस्टकार्ड ।

'‑nuary
you a
u are
and
ncern

Though I have no reason to expect an early reply, if any, from you, I can not but write to you if only to disturb your new atmosphere Old habit Can't help

(Has the printing of my novel made any progress?) Wishing you best of regards

B C to Rekhaji and Shamsher Love to children

Yours lovingly
G M M

Shri Nemichand Jain,
146, Allen Ganj,
Allahabad, (U. P)

[56]

Nagpur
16 2 51

Dear Nemibabu,

I have every reason to be angry with you But that's not going to bring me your news

Shamsher's health, according to a sketch in N S [1] which unfortunately I haven't yet got, is shattered That is the impression left on the reader s mind, it is reported I am so sorry, I cannot contact you people and do my own b t to wards mutual service and assistance

I crave news from you Isolated beyond measure, I stand like a ruined castle in the arid wastes Only the high winds blowing through, bring smells and sounds that are familiar and dear Write to me urgently please, and help me out of the present morass into a sense of intimate active relationship

Convey my heartfelt regards and anxious enquiry about his health to Shamsher and ask him to write to me, if possible

Shri Nemi Chand Jain
146, Allenganj
Allahabad

Sender's name and address[2]
G M Muktibodh Nagpur

1 नया साहित्य, लखनऊ से प्रकाशित साहित्यिक मासिक ।

2 इनलैंड लैटर । पत्र पर मजमून के साथ हस्ताक्षर नहीं हैं, भेजनेवाले के नाम के साथ हैं ।

[57]

URGENT
H No 86, Vishnu Daji Gali,
Nai Shukrawari, Circle No 2,
Nagpur,
[31.10 51]

Dear Nemibabu,

You had once told me that your friend Sunil Janah had got himself psycho analysed in a clinic at Calcutta You had also said I quite clearly remember, that it was the only place in India where psycho analytical therapy is practised

There is a very serious and desperate case here, needing psychiatric treatment *The patient is suffering from neurosis,* not insanity

Looking to the urgency of the matter, I believe, you would *immediately write me back giving full details*

I remember you very much Love to children Warm regards to Rekhaji

Yours affly,
G M M

Shri Nemichand Jain,
Adhunik Pustak Bhandar,
7, Albert Road,
Allahabad

[58]

Nagpur
6 2 [52]

Dear friend,

Your letter was a sweet surprise and yet it was only a materialization of my own wish to write to you (or to Smt Rekhaji) I have been remembering you so often and so *sadly—I thought you have now completely left me, to say* the least—yes, I felt almost stranded and alienated ! ! And at the same time the counter thought was there I knew how busy you are and how difficult it is to switch mind on to other subjects in a business like manner, particularly in such a matter

as this I almost visualized your own peculiar—what you call 'drift And therefore there is nothing worthwhile to be said about, so far as writing to me was concerned I had ■ mind to contact Rekhaji and enquire about She writes well and gives concrete details and as such has more reason to be proud about letter-writing I wish she should be a good prose-writer I still remember her last communication So far as you and I are concerned we have yet to relinquish our love for abstractions

One way, your silence deepened a crisis in me I was less self reliant and almost emotionally dependent on you and most foolishly indulged in fantastic dreams of getting material help from your purse This was almost a psychological mania Let me confess by the way, that when with you I used to steal a few annas from your purse, when I needed money and never felt any prick of conscience I never felt I was doing any wrong The only feeling that I sometimes had was that when discovered what would you feel about it But to my sweet surprise you never looked into your pocket How foolish of me first to steal and then to laugh at your beautiful self

My first two years of Nagpur life were almost a nightmare It was ■ painful and dirty experience It was at that time that [illegible]

that way I don't think, I have left the habit Yet, since a year some material change has come over me First that one tooth has deserted its place and eyes have grown dim (I don t wear spectacles) Other teeth are thinking of resigning their posts I have grown a bit oldish too At the same time physical weakness has come to dwell permanently

But to my utter surprise, as things would have it, I have grown more self-reliant and have developed and hope to develop further my own connections People now think me much of a 'shrewd diplomat, and 'accomplished' journalist Yes, my real journalistic career has begun at Nagpur Very few people know me, one way And yet I am being 'delightfully' read every week by some five thousand people My paper has the highest circulation and is the best political weekly in the State This accident has given me a measure of self confidence and some influence I sometimes flatter myself by secretly laughing to myself saying that 'well, I am almost a secret force here'. This success may be evanascent

and illfounded, yet it has much to say, so far as a real gain in self confidence is concerned

The other item is a woeful tale of failures And that item is WOMEN The most interesting thing about them is that they make approaches, rouse the absent minded man from his emotional slumbers, play with his feelings with a wilful persistence and, when not attended to feel sad and gloomy and what not ! But, after such a long long time, when the man begins to show signs of life and develops affection, they just don't care to ! ! ! Just look at a person like myself who is extra reluctant and timid in such matters and is almost grotesquely foolish and absent minded to an extent of seeming coldness to their advances ! ! Look at a person like this and imagine

Since you left me—(it appeared to me like that, in spite of absolute faith in your and mine inseparability After all, *physical distances do count Moreover, circumstances develop* a sort of their own singularity, which pre supposes a logic peculiar to itself This 'peculiar to itself-ness always involves a sort of distance from all that is extra and external to it After all, it is a vortex Anyway, you follow, I don t want to *rationalize the feeling of separation in distance developing an* exclusiveness)—there was most definetly a void in me—a feeling that there is not a single family in the world which can now be claimed as one of my loving nests The distance from your place, the physical and material exclusiveness of your *circumstances, the singularity of logic of your further develop*ment, etc , made me sometimes feel like that

And, then came these Woe women The first in whom I was not interested—never interested as a lover—was working under my influence and I gained her absolute trust to an extent that she never felt any embarrassment in exposing her most intimate and private aspects of life And then, suddenly after contact of a year and half she thought it fit to fight shy ... ather, I wonc ... her—though ... tremely fond of her and she claimed my house as one her own And, then suddenly what happened God knows It was a very real loss to us—an emotional loss She is at Nagpur and we have not seen each other since ages

... Came like ... way like ... personality. ... d her own

feelings and wanted me to do so, and, when done by me, blamed me as if I misunderstood her And then, with a sudden shift of blame on her I thoroughly exposed her duplicity and her fear of her feelings, her anxiety towards her own self She [illegible] feeling almost martyr- [illegible] hin air I allow her to [illegible] gentle words and feel a pang of separation and yet we persist in our attitudes

Both of them created a drag in my life, spoiled months and years, distorted vision, and postponed my other duties, and made me lonely, nervous and isolated and alienated

It is at this psychological hour—at this crisis that your letter came Like heavenly dew, its every word sparkled, a vision arose and a hope bubbled forth My lost friend came back home running

8 2 52

I have already got over many of these crises I have mentally given these women up And so a story is finished or a few chapters closed I am trying to get back to a firmer grip of realities

[illegible]

substantial I wish to devote at least a few hours of week in this direction People are again forcing me to appear in the M A examination next year I think I should shall fill up the form and attend the examination That s all People think that Govt Postgraduate Diploma of Journalism is also worth while Let me see what happens

Father had been here a few months before got ill A famous surgeon declared he was suffering from cancer A new calamity loomed large on the horizon Father later on recovered But is always ill due to one reason or other I have not sent him money since 3 months He always comes in my dreams I always feel his presence here there everywhere I pine for him and wish to get back to him at least for a fortnight God knows when shall I be able to see him

My monthly income is rupees hundred and eighty-two That is all Nagpur is very dear, very dirty, very hot Epidemics are general Sun and air do not greet the walls of our house It is a regular den, with no water-tap or well Water is supplied from at a distance

The only advantage that Nagpur seems to afford is the approachability of its politicians, leaders, editors and other public men, boasts of 3 Hindi, 2 Marathi and 2 English Dailies

and some 50 c
blackmailing
unionists anc
rers The Marathi literary team is better than the Hindi one I have many friends and foes here Gandhian quack doctors make news sometimes in the papers Nagpur can boast of a good Marathi intelligentsia also

You had talked of some punishment for your past silence What punishment should I give ? Is it ever possible ? The only thing I ever wished and always wished from you is help, hopes and inspiration And I have always got that

tting my case before
you ll death till the last
mor corner for me also
ungrudgingly and without reservation

As ever, I need money badly Not for myself but for my

conditions are very very hard But I am determined to improve them

[illegible] of Rs 60

Even if you don t send me the book, please send me money If you like I shall pay you back Rs 30/- on the first next instalment on the next first DEPEND UPON ME FOR RE PAYMENT I have grown a little of gentleman these days

B C to Rekhaji Love to children

REPLY SOON

Yours affly,
G M M.

[59]

Nagpur
22 5 52

Dear Nemibabu,

I am so sorry I put you in a very embarrassing position I know it is very *difficult for you to reply* to such a letter as that of mine Now you know, dear, your silence costs much It costs my *patience Why then not send a few words* expressed straight away.

I had read your article[1] in Alochana of this month It is a very good article, but for the fact that it is couched in a language that reminds one of that honest sensibility which is called 'literary purism' in the modern technique I am thinking of writing a महाभाष्य on the same subject—of course, couched in a very different terminology Would you publish it? I don't know how far would I be able to do justice to your thoughts—I mean your implications and their sub implications where I may differ But still it would be a good effort, and moreover your article would serve as a backbone to my structure You shouldn t mind if like Shanker s *Mahabhashya* my thoughts may [ ] from the original article that is interpreted by me I fancy, it would be a grand success Moreover I shall be able to beat down a few of my erstwhile critics

Please write me back about this would be undertaking of mine And if you can make some other publisher pay for it, I shall take this in hand very seriously Any way your reply is needed

Rest is O K

With love to children, my B C to Rekhaji

Yours affly,
G M M

[60]

Nagpur,
21 2 54

Dear Nemibabu

Writing to you presents a difficulty One likes to tell you so much that as soon as one gust of emotional ideational

almost foolishly lunatic (others are descreetly lunatic, for that *matter*), *that is my* lunaticism has crossed the *frontiers of discreet* behaviour

---

1 'आधुनिक साहित्य के मूल्यांकन की समस्याएँ' (आलोचना, 3 अप्रैल, 1952) । इस लेख का एक अश नेमिचद्र जैन की पुस्तक बदलते परिप्रेक्ष्य म 'अनुभूति की प्रामाणिकता' शीर्षक से प्रकाशित है ।

And, therefore, this fresh attempt with a will to succeed

You talked[1] of *trivialities that linger and pester* Yes, that is so But they form a part of the natural course of life They can't be shunned at They should not be made the target of, unnecessary ire *They are there for you and for me, for* others None can evade them, avoid them because they are necessary and contributive Therefore, let us respect them Let us not *insult them That would amount to slapping on* our own cheeks Insulting them is insulting ourselves How does it matter, if you can t write to me, oftner But you are *a good man, a true man, a genuine person, a patriotic spirit* having a basic urge for objective truth, a loving father, a loving husband, and a genuine writer And you maintain this *human dignity with sustained effort, at the cost of petty* gains And you are my very dear friend and comrade This is enough This should be sufficient You need not write to me oftner, *if you cannot It is all right to have higher spiritual* ambitions But, from their viewpoint, to lose perspective on 'trivialities' is wrong and fundamentally harmful One need *not be a Colombus to discover New Worlds in ordinary things* of life And more than I, you realize it You need not be told

Mind you, *again, one need not discover a new continent* to be called a discoverer The fight for goodness and truth is going on relentlessly in every sphere, at all stages and at all levels And *you partake in this struggle Let us completely* identify ourselves with this fight And then, if we are not firm (we are not infirm and weak) our steps though faltering lead us in the *same direction Direction is the primary require*ment and every thing follows next

I wrote this out to you, because I felt that there is some *amount of suffering—quite* a lot of suffering on account of certain wishes not fulfilled some mode of life not chosen and yet desired It is this that pains you, troubles you haunts you And, sometimes quite rightly so But what can you do? Can you really *disown and demolish the significances* of what you are doing of what you have been doing? No Sir This is going from one extreme to another It is the froth of frustrated individualism

---

1 जिस या जिन पत्रों का सदर्भ यहाँ है, वे उपलब्ध नही हैं ।

And you say, you have a feeling that you are growing old Very good, my dear It is a blissful age You have a matured spirit ■ father, husband, a son—all combined in one soul It is a lovely age, you are respected You get wiser, your love becomes deep, many sided and most democratically human This ■ the age when one should try to be a national poet Yes there are new responsibilities, new worries greater burden But, why, you are also more alert and more hard working more honest more faithful, having a greater grip over realities Love these responsibilities, my dear Love these burdens, and kiss your children, oftener, oftener They are the flowers of your life You are an aged tree Let them adorn your soul like flowers and leaves conspiring with heavenly winds Abandon yourself to your wife There is no contradiction between domestic love, socialist cause or literary spirit One leads to another They are aspects of the same It is basically a question of human perspective I didn't like your expression 'Rekhaji and Co' It may be an amusing way of putting things But, it distorts fact

And lastly, my dear friend do not be over critical to yourselves It is useless harmful, basically wrong and involves masochistically your own soul That is bad I had suffered from this illness this malaise This leads one from one blind alley to another Don t insult yourselves, kindly do not, for my sake, for the sake of your wife and children and for yourself Look humanly to yourself to your own soul This is needed this is what should be done because this is right As you know yours is not self criticism this is self damning And please, don t do it Don't suffer Unnecessary suffering degrades man It has degraded myself

There is 'glamour' in the literary and political achievements These gains are necessary, they are contributive and they are also of great service to the people, to your own people from which you sprang We owe a debt to them Let us return that debt Let us be humble servants of the people Let us identify with our faces that are people s faces Rise, my friend go to your desk do something in their name, for them They are our very dear ones Can you live without them ? But, if we can t identify our hearts with them there is no use of writing Stop writing then Let us not form a part of literary fame hunters and careerists Let us not be poets at all

Escaping from writing and then trying to be a good man and an intellectual person a patriotic spirit is to disown our people I have done that I am a fool to do it But, let us muster courage And we can really serve our people, if we really *write and publish writings* We may not be great, but we are honest An honest writer is a great thing in life Let us be honest writers sir!

I have not been an honest writer motivated by the defence [of] people s lives The image of their faces does not menifest itself in rigorous and glorious colours in my literature I am conscious of it But I shall overcome this defect and shall produce more, because I feel I am emotionally attached to them And, you perfectly realize, you are also emotionally attached to them This deep emotional attachment to the people should be the source of our writing and also our capital. Without this life is not possible, it is meaningless

Medieval saint poets had a place in people s lives They had very kind hearts They used to be moved by others sufferings They had genuine human emotions, they really *loved* people Their romantic love had less froth but greater faith They knew dignity, the moral grandeur of love And dear friend, if you feel empty hearted, I recommend love to you Abandon yourself again to romanticism, if you like

My letter is gettin · · · jetting stranger and stranger · ıatic ? Perhaps not, perhaps I am getting demogogic I shun the business

And lastly, don t think I have written all this with an air of superiority You referred to my self confidence' I refuse to accept this compliment because it is baseless and without foundation It does not tally [with] facts of my life

Perhaps, you think that the engrossment in the struggle of life—one s bare survival—is the business of the individual concerned You never give details of that struggle to me, as if I am not interested in them But this is far from being true

In these days of 'pleasant company formula, the bondless bond of free individuals who are also *free from* each other cannot be termed friendship A lovely informality blossoming forth into direct expression of ideas with and to each other can hardly be compared with that friendship which is a partnership of responsive intimacies responsible to one another And, if your strength begins to fail these free individuals have nothing to contribute either to your strength or to its failure But let us have faith in life It will not fail us It is healing power and regenerative spirit

Kindly don t be hurt if I have begun in a slightly different tone this letter of mine I never meant it to be so And if it hurts you I am ashamed of myself and humbly beg your *pardon*

Please advise me if writing in Alochana is really not good The point is I never meant my review on Machwe s book to be published in that paper It is *he who* told me later on that he had sent it there I don t want to play in the hands of others And therefore this querry from you *Please do write to me about it if you can find time*

My B C to Rekhaji and love to children

Yours affly
G M M

[61]

Nagpur
13 11 54

Dear Nemibabu

Congratulations [1]

I hope you really like the job [1]

I doubt if you really remember me

Yours affly,
G M Muktibodh

Shri Nemi Chand Jain
Sangit Natak Academy
Regal Building
New Delhi

[62]

18 4 55

Dear Nemibabu

Came here[2] to see you I would be going today to Nagpur, probably If I stay on tomorrow I shall see you here in the morning

Yours affly,
G M M

---

1 1 नवम्बर 1954 से नेमि ने इलाहाबाद स्थायी रूप से छोड़कर दिल्ली में संगीत नाटक अकादमी में नौकरी शुरू की थी। यहां उसी काम की तरफ इशारा है।

2 यह पत्र दिल्ली में ही लिखा गया था। मगर अचानक ही जिस समय मुक्तिबोध दिल्ली आये, नेमि के उन दिनों इलाहाबाद गये होने के कारण उनसे भेंट नहीं हो सकी थी।

नागपुर
27 4 55

नेमिजी,

रुह मंडरानी रही, वहाँ जहाँ आप बैठते हैं। ऐसा ही होता है।

इलाहाबाद में आपको अधिक समय तक रहना जरूरी हो गया, मन में कुशंका उठी 'कहीं ऐसा न हो कि किसी उलझन या आफत में फँस गये हो।' आजकल जो न हो जाये सो थोड़ा।

अभी भी जब कोई रिक्शा मेरी गली के मुहाने सहसा खड़ा होता सा दीखता है, मन सोचता है—हो-न-हो, आप ही उस रिक्शे से उतर रहे हैं। आजकल साक्षात् मिलन का कार्य मानसिक विभ्रम ने अंगीकार कर लिया है।

तनाव और दुराव की दुनिया में मन दूर भागता है और पासवाले आदमी को दूर से पकड़ लाता है। मन का यह लम्बा सफर व्यर्थ नहीं जाता, लेकिन शक्ति तो क्षीण होती ही है। और यह क्षीणता, क्या साधारण मनुष्य के मन में 'दर्द का कीड़ा' नहीं बन जाती?

जमाना गलत है, ये कहने पर भी आदमी गलत नहीं होता। इसलिए गम गलत करने की कोई जरूरत नहीं।

खैर, अब नहीं, और कभी होगी। ह

सुना है, आपने खूब कविताएँ

जाने।

जो कविताएँ यहाँ वहाँ देखने को मिलीं वे बहुत अच्छी लगीं—एक हंस में और दूसरी कवि भारती[1] में। यहाँ के लोगों को भी पसन्द आयीं।

आपकी भाभी और रमेश आपको सस्नेह नमस्ते कहते हैं।

बेकारी में नौकरी की जरूरत होती है। क्या यह दिल्ली में या और किसी जगह सम्भव है?

इस तीस के आगे बन्देशरीफ बेकार हैं। बड़ी इज्जत बख्शी है यारों ने। किस कदर 'अवांछनीय' समझा गया ! !

बाकी सब बुरी तरह कुशल है। कुशल के फल-फूल खूब सड़ाये गये हैं। उनके fermentation से नयी ठर्रा शराब पैदा हो रही है। हम यहाँ देसी माल लेते देते हैं।

रेखाजी का क्या हाल है? किस तरह क्या चला हुआ है? अब तो ये है कि बैलगाड़ी में जुड़े हुए हैं। पति—एक बैल, दूसरा बैल—पत्नी। गाड़ी में बच्चे-बच्चियाँ, माँ बाप। बुद्धि-विवेक, आवश्यकता, मोह, हृदय, किसी को भी गाड़ीवान बना दीजिये। गाड़ी चल रही है। कभी चढ़ान पर, कभी उतार पर, कभी सपाट मैदानों पर। खेद इसी का है कि कोई नहीं कहता—'बारे पट्ठे होशियार, बढ़ते जाओ होशियार।'

---

1 सुमित्रानन्दन पन्त, नगेन्द्र और बालकृष्ण राव द्वारा सम्पादित आधुनिक हिन्दी काव्य का एक संकलन।

अपने बारे मे लिखिए। कुछ इतिहास का भी महत्व होता है। भावनाओ का भूगोल तो याद कर चुके। इसलिए, जरूरी है कि अपने सम्बन्ध मे कुछ वार्ता करें।

जहाँ तक मेरी बात, सब कुछ अनिश्चित है। पता नही कहाँ, क्या, कैसे होगा ! ! अगर सुविधा से प्राप्त कर सकें तो चित्रकार रामकुमारजी और वात्स्यायनजी का पता लिख भेजें।

बच्चो को प्यार, रेखाजी को सादर नमस्ते।

सस्नेह
ग मा मुक्तिबोध

आपने पिछले पत्र मे अपना पता नही लिखा था। माचवेजी का पत्र जिसमे वह था, खो गया था। इसलिए आपको पत्र नही लिख सका अब दिल्ली जाकर पता लेते आया।

[64]

नया खून, जुम्मा टैंक रोड
नागपुर-2
[1956 के अत या 1957 के शुरू
मे कभी]

प्रिय नेमि बाबू

समय और स्थान की दूरी चाहे जितनी हो, रास्ते चलते आपका चेहरा सामने खिल ही उठता है, और उसमे मन घुलता है ! ! अगर पख होते मैं तो उडकर चला आता आपके पास ! !

अपने से ही बातचीत का पुराना अभ्यासी होने के नाते, मन के भीतर के छाया-दृश्य यदि एक जमाने से आपको समेट चुके हैं तो अगर कभी-कभी इसी ढग की चित्र-वार्ता हो जाये तो वह स्वाभाविक ही है।

सिर्फ इसी नाते मैं यह चिट्ठी लिख रहा हूँ।

मैं जब दिल्ली पहुँचा, आपके कार्यालय के दस बार चक्कर लगाये, लेकिन मुलाकात नसीब न थी।

आप कामकाजी आदमी हैं या नही, मुझे नही मालूम, किन्तु आपको कभी चिट्ठी लिखने की फुरसत नही मिलती। शायद पत्र लिखना अस्वाभाविक मालूम होता होगा। ठीक है जमाना सगदिल है तो वह अपनो के घेरे को छिन्न विच्छिन्न क्यो करे !

वैसे कभी-कभी आपके साहित्यिक व्यक्तित्व की भी झलक पड जाती है। तब ·

कविताओं की भी। क्या आप अपनी चीजों के offprints मुझे भेज सकेंगे ? भेजोगे तो बहुत अच्छा होगा।

इन दिनों मैं एक स्थानीय साप्ताहिक[1] का सम्पादक हो गया हूँ। लेक्चररशिप की बुरी तरह तलाश है। क्या आपको वह पत्र मिलता है ?

मैं चाहता हूँ कि आपकी अकादमी की सम्पूर्ण सेवाओं का वृत्त उसमें प्रकाशित कर सकूँ। अतिरंजना नहीं यह वस्तुस्थिति है कि एक हिन्दी साप्ताहिक की हैसियत की दृष्टि से उसका circulation अच्छा है—साढ़े तीन हजार से बहुत ऊपर। मेरी इच्छा है कि वह प्रादेशिक क्षेत्र को पार कर एक अखिल भारतीय पत्र हो। क्या अपनी अकादमी का आप एक वृत्त पत्र भेज सकेंगे ?

यह पत्र मध्यप्रदेश में सर्वाधिक circulation वाला है तथा उसे प्रांतीय तथा केन्द्रीय सरकारों से विज्ञापन प्राप्त होते रहते हैं।

यह तो हुई अकादमीवाली बात ! !

डर-डरकर कह रहा हूँ आप कुछ अपनी चीज भेजियेगा ? वैसे आपकी मर्जी ! आग्रह मेरा है बशर्ते कि आप मानें।

इधर मैंने भी काफी लिखा है। समय का अभाव, शक्ति की क्षीणता और मन का अस्वास्थ्य— सारे कार्यक्रम चौपट कर देता है। फिर भी किसी न किसी तरह घिसटता चलता है।

नयी कविता पर आपका लेख और कविताएँ तथा खूब-सी कविताएँ मेरे पास भेजें तो मैं अवश्य उन सब पर लेख लिखना चाहूँगा। जरूर लिखूँगा।

लेकिन इसकी क्या गैरण्टी की आप पत्र का उत्तर देंगे ! ! यदि अधिक कष्ट न हो तो अवश्य उत्तर दें ! मैं राह देखूँगा।

रेखाजी को सादर स्नेहपूर्वक हम सबका प्रणाम कहें ! बच्चों को प्यार ! ! पिताजी आप ही के पास हैं क्या, या बरुवासागर रहते हैं ? अब तो वे बहुत वृद्ध हो गये होंगे। आपकी जिम्मेदारियाँ भी खूब बढ़ गयी होंगी। आप लोग सब स्वस्थ और अच्छे भले चंगे तो हैं न ! !

विस्तारपूर्वक सब बातें लिखिए। मैं शीघ्र ही उत्तर दूँगा।

सस्नेह
आपका ही
ग मा मुक्तिबोध

नया खून
हिन्दी साप्ताहिक
जुम्मा टेंक रोड नागपुर-2

1 नया खून।

230, भारती भवन
तेलघानी रोड
गणेश पेठ
नागपुर
[जून 1957][1]

प्रिय नेमि बाबू,

आपका पत्र क्या मिला, आप आये मिल गये। कितनी ही बार उसे पढता रहा। मैं दिल्ली आने के लिए बिलकुल तैयार हूँ। लेकिन, सच तो यह है कि मैं बगैर ठीक-ठिकाने के कैसे रह सकता हूँ। अब यह नामुमकिन-सा है। अगर ऐसा ही होता तो मैं यूँ ही कई बार दिल्ली आ जाता। वैसे मेरा यहाँ भी कोई ठौर नही। मौजूदा नौकरी सवा दो सौ देती है। वह बिल्कुल नाकाफी है। और सोच तो यह रहा हूँ कि आमद के सुनिश्चित जरिये पैदा किये जायें, लेकिन अब तक हो नही पाया है। दिल्ली मे ढाई सौ मुझे बहुत ही कम होंगे। अगर कोई तीन सौ, साढे तीन सौ की नौकरी आपके ध्यान मे आये तो जरूर सूचित कीजियेगा।

वैसे, मेरा जी दिल्ली आने को ललक रहा है। मैंने यहाँ यह रंग बाँधकर रखा है कि दिल्ली मे मैं नौकरी की कोशिश कर रहा हूँ। लोगो को विश्वास है कि मैं जल्दी ही वहाँ निकल जाऊँगा। लेकिन, असलियत मैंने आपको लिख दी।

आपने बहुत-सी बातें लिखी, जिसमे 'बस मिस' करने की बात भी थी। मैं तो यह कहता हूँ कि आपके लिए स्पेशल बस आयेगी। आखिर, जो बस पर चढ ही गये थे, और आगे बढ गये, उन्होने कौन-से तीर मार लिये ! ! हाँ यह सही है कि उनके नाम बजते हैं (गूंजते तो क्या हैं ! !)

मैंने नयी कविता के सम्बन्ध मे आपका लेख पढा था। बहुत शक्तिशाली लेख था। हमारे यहाँ उसे, मुझे शामिल करके, कई लोगों ने पढा और सबको पसन्द आया। मुझे जो मजा आया वह और किस्म का था।

आपके पुराने गद्य से नया गद्य कोई मुकाबला नही रखता। नये गद्य मे हार्दिक ओज है जिससे शैली मनोहर हो उठी है। भाव-तत्परता और चुटीली वैचारिक वेदना के साथ, विश्लेषण गम्भीर हो उठा है ! ! लगता है कि अगर आप कलम उठायें और लिखते चले जायें तो विचारों और भावों को गंगाएँ और नर्मदाएँ बहा देंगे ! ! अब इस ओर आपको जुट जाना चाहिए। यह आवश्यक नहीं है कि कवि का पद अनिवार्य रूप से विचारक के पद से बडा ही हो। मेरा तो ख्याल है कि आज हिन्दी को अच्छे विचारक की जितनी अधिक आवश्यकता है उतनी कवि की नही। प्रकृति और वेदना से जो व्यक्ति कवि होकर परिस्थितिवश विचारक हो जाता है, उसकी वह यात्रा जो उसने काव्य से लेकर विचार तक की है, अत्यन्त महत्वपूर्ण और मूल्यवान है और उसकी अभिव्यक्ति अत्यन्त आवश्यक है। पुराने कवि-

1. इस पत्र पर तारीख नहीं है। पर इसके कथ्य से स्पष्ट हो जाता है कि यह नेमि के 1. 6 57 के पत्र का उत्तर है। रचनावली के पहले संस्करण मे इस पर [1956] अंकित है, जो ठीक नहीं है।

व्यक्तित्व के प्रति आपका मोह होना अत्यन्त मानवीय है, किन्तु कवि से लेकर विचारक तक की यात्रा मे आपने जो कुछ मानव-सत्य पाये हैं उनका महत्व बहुत अधिक है। अगर यह देश अधिक उन्नत और सुशिक्षित होता तो आप देखते कि उन विचारों द्वारा आप कितने प्रथित-यश हो गये हैं। अब हिन्दी मे जमाना आ रहा है कि जो विचारो को बहुत महत्व देता है। विचार का सम्बन्ध, आपके लिए, जितना आन्तरिक है, उतना ही वह प्रभावशाली भी है।

आजकल मे नयी कविता सम्बन्धी आपने लेख को पढकर तबियत बहुत खुश हुई थी। मैंने उस लेख के notes भी लिये थे। किन्तु, आपकी ओर से response के अभाव की सम्भावित स्थिति मे मैंने उस पर अपने विचार लिखकर नही भेजे। दो-एक जगह मुझे लगा कि आपके observations ठीक नही हैं, और अगर वे ठीक हैं तो उनका ठीकपन बहुत सीमित है। तभी से मुझे यह प्रतीत हुआ कि विचारो के क्षेत्र में हम सब लोगो का co-operation बहुत आवश्यक है।

कुल मिलाकर, मुझे उस लेख की attitude बहुत पसन्द आयी। भाषा-भाव और शैली का तो क्या कहना ! ! आपने फूल बरसाये हैं।

All India Radio की नौकरी मैं न छोड़ता, लेकिन monthly contract पर मैं भोपाल जाने के लिए तैयार न था। अगर आपको Gvernment Department अथवा University मे कोई अच्छी नौकरी दिखायी दे तो मुझे जरूर सूचित कीजियेगा। वैसे मुझे Lecturership की भी तलाश है, लेकिन उसमे पैसे इतने कम मिलते हैं यानी 150+30 कि अब प्रतीत होता है इतनी कम तनख्वाह मे मैं गतप्राण हो जाऊँगा। सब जगह एम. ए फर्स्ट क्लास या डाक्टरेट माँगते हैं। मैं मात्र सेकण्ड क्लास हूँ। वैसे लेक्चररशिप के लिए मेरा जी अभी भी ललकता है।

और यहाँ सब कुशल है। मेरी लिखाई यहाँ चल रही है जैसी-तैसी ! !

आपसे मिलने की इच्छा बहुत अधिक है। और मुझे प्रतीत होता है कि हम लोग अवश्य शीघ्र ही मिलेंगे। वह योग निश्चित है। देखिए, आगे क्या होता है ! !

वैसे, मन शिथिल है। ग्लानि और अवसन्नता वैसे ही स्वभावजात है, अब मित्रहीन और साधनहीन होने के कारण, अधिक अवसन्नता है।

श्री श्रीकान्त वर्मा से मिलकर आपके बारे मे जो बातें हुईं, उनसे ऐसा लगा कि बस अब आपसे मिलना अवश्यम्भावी सा है।

रेखाजी से सस्नेह प्रणाम कहिए। बच्चो को प्यार ! ! पिताजी कहाँ हैं ! ! आपके पास हैं या और कही ! !

आशा है पत्र आप जरूर लिखेंगे।

आपका ही
ग. मा. मुक्तिबोध

[66]

[नागपुर]
[सम्भवतः जून 1957][1]

प्रिय नेमि बाबू,

पत्रोत्तर तो मैंने बहुत बहुत पहले लिख दिया था, लेकिन भेजने मे देर हो

1. इस पत्र पर कोई तारीख नही है। इसमे नेमि के पत्र के उल्लेख से यह लगता है

गयी। ग्लानि और शिथिलता का एक युग सा बीत रहा है। पिछले लगभग डेढ दो महीनों मे, विश्वास कीजिए, एक दर्जन से ज्यादा पत्र अनुत्तरित रहे हैं। पिताजी को तो मैंने यह कहकर क्षमा माँग ली कि दिन रात चाहते हुए भी उनके लिए एक सतर लिख नही सका। हाल ही मे उन्हे पत्र भेजा है। आप विश्वास कीजिए, नमि बाबू, इन्ही दिनो कई बार आपसे स्वप्न मे भेंट हुई ! ! यह कहना भी शायद मुझे शोभा नही देता ! ! इस आधुनिक बौद्धिक युग मे ड्राइगरूम का महत्व बढा है, घर की छोटी सी बैठक का नही जहाँ घनिष्ठ बातें होती हैं। पत्र लिखना मुझे बहुत अच्छा लगता है और पत्रोत्तर देन मे, वस्तुत, मैं बिल्कुल शिथिलता नही बरतता। किन्तु, कभी कभी कोई चीज़ सर पकड लती है। आपको लिखा पत्र भी इसी तरह पडा रहा। लेकिन यह मरी आदत नही है। आजकल मैं अपने पास अलग से चिट्ठी-पत्री का सामान रखता हूँ। और यथासम्भव उत्तर जल्दी दे देता हूँ।

यह मैं इसलिए कह रहा हूँ कि पत्रोत्तर म मेरी ओर से देर का कही मुझे दण्ड न मिले यानी आप मुझे देर से उत्तर न दें।

इसलिए, मैं यह सोचता हूँ कि कम-से-कम आप मुझे जल्दी उत्तर दें और बतायें कि हम क्या करना चाहिए क्या नही, साहित्य के क्षेत्र मे भी, अन्य क्षेत्र मे भी। एक बात मुझे याद आयी। आपने लिखा था कि कविता की एक लाइन लिखते वक्त आपको मानो तकलीफ होती हो ! ! किन्तु मेरा ख्याल है कि जब खूब कहने का मन हो निबन्ध के क्षेत्र मे, तब शायद कविता न लिखी जा सके। एक बार विचारों का उद्वेग निकल जाने पर फिर कविता को भी नयी गति और दिशा तथा क्षेत्र मिल जाता है ! ! मेरा ख्याल है कि असल मे आपके लिए यह एक मोड है। मोड से निकल जान पर राह सुथरी-साफ दिखायी देती है।

पत्रोत्तर शीघ्र दें। मैं राह देखता रहूँगा। और सब बातें विस्तार से लिखें।

सस्नेह
आपका ही
ग म मुक्तिबोध

[67]

नागपुर
24 7. 57

प्रिय नेमि बाबू,

आपको मेरा पहला पत्र मिल गया होगा। वसुधा, जबलपुर के सम्पादक श्री हरिशकर परसाई की चिटठी मेरे पास आयी थी। उसमे लिखा था कि नेमिजी का प्रस्तावित लेख उनके पास अभी तक नही आया है। आपके लेख का प्रस्ताव

कि शायद यह 1 6 57 के पत्र के उत्तर मे ही लिखा गया था और इसके पहले ही दिये हुए पत्र के साथ ही भेजा गया था। जिस तरह के कागजो पर यह लिखा हुआ है, वह उस पत्र के कागजो जैसा ही है। दूसरी ओर, इसके कुछ सन्दर्भ, विशेषकर मूह 21 2 54 के पत्र से मिलता-जुलता लगता है। रचनावली के पहले सस्करण मे ये दोनो ही पत्र 1956 म लिखे माने गये थे। मगर मौजूदा कालक्रम अधिक सगत जान पड़ता है।

व्यक्तित्व के प्रति आपका मोह होना अत्यन्त मानवीय है, किन्तु कवि से लेकर विचारक तक की यात्रा मे आपने जो कुछ मानव-सत्य पाये हैं उनका महत्व बहुत अधिक है। अगर यह देश अधिक उन्नत और सुशिक्षित होता तो आप देखते कि उन विचारों द्वारा आप कितने प्रथित-यश हो गये हैं। अब हिन्दी मे जमाना आ रहा है कि जो विचारो को बहुत महत्व देता है। विचार का सम्बन्ध, आपके लिए, जितना आन्तरिक है, उतना ही वह प्रभावशाली भी है।

आजकल मे नयी कविता सम्बन्धी आपके लेख को पढकर तबियत बहुत खुश हुई थी। मैंने उस लेख के notes भी लिये थे। किन्तु आपकी ओर से response के अभाव की सम्भावित स्थिति मे मैंने उस पर अपने विचार लिखकर नहीं भेजे। दो एक जगह मुझे लगा कि आपने observations ठीक नही हैं, और अगर वे ठीक हैं तो उनका ठीकपन बहुत सीमित है। तभी से मुझे यह प्रतीत हुआ कि विचारो के क्षेत्र मे हम सब लोगो का co-operation बहुत आवश्यक है।

कुल मिलाकर, मुझे उस लेख की attitude बहुत पसन्द आयी। भाषा-भाव और शैली का तो क्या कहना ! ! आपने फूल बरसाये हैं।

All India Radio की नौकरी मैं न छोड़ता, लेकिन monthly contract पर मैं भोपाल जाने के लिए तैयार न था। अगर आपको Gvernment Department अथवा University मे कोई अच्छी नौकरी दिखायी दे तो मुझे जरूर सूचित कीजियेगा। वैसे मुझे Lecturership की भी तलाश है, लेकिन उसमे पैसे इतने कम मिलते हैं यानी 150+30 कि अब प्रतीत होता है इतनी कम तनख्वाह मे मैं गतप्राण हो जाऊँगा। सब जगह एम ए फर्स्ट क्लास या डाक्टरेट माँगते हैं। मैं मात्र सेकण्ड क्लास हूँ। वैसे लेक्चररशिप के लिए मेरा जी अभी भी ललकता है।

और यहाँ सब कुशल है। मेरी लिखाई यहाँ चल रही है जैसी तैसी ! !

आपसे मिलने की इच्छा बहुत अधिक है। और मुझे प्रतीत होता है कि हम लोग अवश्य शीघ्र ही मिलेंगे। वह योग निश्चित है। देखिए आगे क्या होता है ! !

वैसे, मन शिथिल है। ग्लानि और अवसन्नता वैसे ही स्वभावजात है, अब मित्रहीन और साधनहीन होने के कारण, अधिक अवसन्नता है।

श्री श्रीकान्त वर्मा से मिलकर आपके बारे मे जो बातें हुईं, उनसे ऐसा लगा कि बस अब आपसे मिलना अवश्यम्भावी सा है।

रेखाजी से सस्नेह प्रणाम कहिए। बच्चो को प्यार ! ! पिताजी कहाँ हैं ! ! आपके पास हैं या और कही ! !

आशा है पत्र आप जरूर लिखेंगे।

आपका ही
ग. मा मुक्तिबोध

[66]

[नागपुर]
[सभवत जून 1957][1]

प्रिय नेमि बाबू,

पत्रोत्तर तो मैंने बहुत-बहुत पहले लिख दिया था, लेकिन भेजने मे देर हो

---

1 इस पत्र पर कोई तारीख नहीं है। इसमे नेमि के पत्र के उल्लेख से यह लगता है

गयी। ग्लानि और शिथिलता का एक युग सा बीत रहा है। पिछले लगभग डेढ़ दो महीना मे, विश्वास कीजिए, एक दर्जन से ज्यादा पत्र अनुत्तरित रहे हैं। पिताजी को तो मैंने यह कहकर क्षमा माँग ली कि दिन रात चाहते हुए भी उनके लिए एक सतर लिख नही सका। हाल ही मे उन्हे पत्र भेजा है। आप विश्वास कीजिए, नेमि बाबू, इन्ही दिनो कई बार आपसे स्वप्न मे भेंट हुई ! ! यह कहना भी शायद मुझे शोभा नही देता ! ! इस आधुनिक बौद्धिक युग मे ड्राइगरूम का महत्व बढा है, घर की छोटी भी बैठक या नही जहाँ घनिष्ठ बातें होती हैं। पत्र लिखना मुझे बहुत अच्छा लगता है और पत्रोत्तर देने मे, वस्तुत, मैं बिल्कुल शिथिलता नही बरतता। किन्तु, कभी कभी कोई चीज सर पकड लेती है। आपको लिखा पत्र भी इसी तरह पड़ा रहा। लेकिन यह मेरी आदत नही है। आजकल मैं अपने पास अलग से चिट्ठा-पत्री का सामान रखता हूँ। और यथासम्भव उत्तर जल्दी दे देता हूँ।

यह मैं इसलिए कह रहा हूँ कि पत्रोत्तर मे मेरी ओर से देर का कही मुझे दण्ड न मिले यानी आप मुझे देर से उत्तर न दें।

इसलिए, मैं यह सोचता हूँ कि कम-से-कम आप मुझे जल्दी उत्तर दें और बतायें कि हम क्या करना चाहिए क्या नही, साहित्य के क्षेत्र मे भी, अन्य क्षेत्र मे भी। एक बात मुझे याद आयी। आपने लिखा था कि कविता की एक लाइन लिखते वक्त आपको मानो तकलीफ होती हो ! ! किन्तु मेरा ख्याल है कि जब खूब कहने का मन हो निबन्ध के क्षेत्र मे, तब शायद कविता न लिखी जा सके। एक बार विचारो का उद्वेग निकल जाने पर फिर कविता को भी नयी गति और दिशा तथा क्षेत्र मिल जाता है ! ! मेरा ख्याल है कि असल मे आपके लिए यह एक मोड है। मोड से निकल जाने पर राह सुथरी साफ दिखायी देती है।

पत्रोत्तर शीघ्र दें। मैं राह देखता रहूँगा। और सब बातें विस्तार से लिखें।

सस्नेह
आपका ही
ग म मुक्तिबोध

[67]

नागपुर
24 7. 57

प्रिय नेमि बाबू,

आपको मेरा पहला पत्र मिल गया होगा। वसुधा, जबलपुर के सम्पादक श्री हरिशंकर परसाई की चिट्ठी मेरे पास आयी थी। उसमे लिखा था कि नेमिजी का प्रस्तावित लेख उनके पास अभी तक नही आया है। आपके लेख का प्रस्ताव

कि शायद यह 1 6 57 के पत्र के उत्तर मे ही लिखा गया था और इसके पहले ही दिये हुए पत्र के साथ ही भेजा गया था। जिस तरह के कागजों पर यह लिखा हुआ है, वह उस पत्र के कागजो जैसा ही है। दूसरी ओर, इसके कुछ सन्दर्भ, विशेषकर मूल 21 2 54 के पत्र से मिलता जुलता लगता है। रचनावली के पहले संस्करण मे ये दोनो ही पत्र 1956 मे लिखे माने गये थे। मगर मौजूदा कालक्रम अधिक संगत जान पड़ता है।

व्यक्तित्व के प्रति आपका मोह होना अत्यन्त मानवीय है, किन्तु कवि से लेकर विचारक तक की यात्रा में आपने जो कुछ मानव सत्य पाये हैं उनका महत्व बहुत अधिक है। अगर यह देश अधिक उन्नत और सुशिक्षित होता तो आप देखते कि उन विचारों द्वारा आप कितने प्रथित-यश हो गये हैं। अब हिन्दी में जमाना आ रहा है कि जो विचारों को बहुत महत्व देता है। विचार का सम्बन्ध, आपके लिए, जितना आन्तरिक है, उतना ही वह प्रभावशाली भी है।

आजकल में नयी कविता सम्बन्धी आपके लेख को पढ़कर तबियत बहुत खुश हुई थी। मैंने उस लेख के notes भी लिये थे। किन्तु आपकी ओर से response के अभाव की सम्भावित स्थिति में मैंने उस पर अपने विचार लिखकर नहीं भेजे। दो एक जगह मुझे लगा कि आपके observations ठीक नहीं हैं, और अगर वे ठीक हैं तो उनका ठीकपन बहुत सीमित है। तभी से मुझे यह प्रतीत हुआ कि विचारों के क्षेत्र में हम सब लोगों का co operation बहुत आवश्यक है।

कुल मिलाकर मुझे उस लेख की attitude बहुत पसन्द आयी। भाषा-भाव और शैली का तो क्या कहना ! ! आपने फूल बरसाये हैं।

All India Radio की नौकरी मैं न छोड़ता, लेकिन monthly contract पर मैं भोपाल जाने के लिए तैयार न था। अगर आपको Gvernment Department अथवा University में कोई अच्छी नौकरी दिखायी दे तो मुझे जरूर सूचित कीजियेगा। वैसे मुझे Lecturership की भी तलाश है, लेकिन उसमें पैसे इतने कम मिलते हैं यानी 150+30 कि अब प्रतीत होता है इतनी कम तनख्वाह में मैं गतप्राण हो जाऊँगा। सब जगह एम ए फर्स्ट क्लास या डाक्टरेट माँगते हैं। मैं मात्र सेकण्ड क्लास हूँ। वैसे लेक्चररशिप के लिए मेरा जी अभी भी ललकता है।

और यहाँ सब कुशल है। मेरी लिखाई यहाँ चल रही है जैसी तैसी ! !

आपसे मिलने की इच्छा बहुत अधिक है। और मुझे प्रतीत होता है कि हम लोग अवश्य शीघ्र ही मिलेंगे। वह योग निश्चित है। देखिए आगे क्या होता है ! !

वैसे, मन शिथिल है। ग्लानि और अवसन्नता वैसे ही स्वभावगत है, अब मित्रहीन और साधनहीन होने के कारण, अधिक अवसन्नता है।

श्री श्रीकान्त वर्मा से मिलकर आपके बारे में जो बातें हुईं, उनसे ऐसा लगा कि बस अब आपसे मिलना अवश्यम्भावी सा है।

रेखाजी से सस्नेह प्रणाम कहिए। बच्चों को प्यार ! ! पिताजी कहाँ हैं ! ! आपके पास हैं या और कहीं ! !

आशा है पत्र आप जरूर लिखेंगे।

आपका ही
ग. मा. मुक्तिबोध

[66]

[नागपुर]
[सम्भवत जून 1957][1]

प्रिय नेमि बाबू,

पत्रोत्तर तो मैंने बहुत-बहुत पहले लिख दिया था, लेकिन भेजने में देर हो

1. इस पत्र पर कोई तारीख नहीं है। इसमें नेमि के पत्र के उल्लेख से यह लगता है

गयी। ग्लानि और शिथिलता का एक युग-सा बीत रहा है। पिछले लगभग डेढ़ दो महीनों में, विश्वास कीजिए, एक दर्जन से ज्यादा पत्र अनुत्तरित रहे हैं। [illegible] को तो मैंने यह कहकर क्षमा माँग ली कि दिन-रात चाहते हुए भी उनके लिए एक सतर लिख नहीं सका। हाल ही में उन्हें पत्र भेजा है। आप विश्वास कीजिए, नेमि बाबू, इन्हीं दिनों कई बार आपसे स्वप्न में भेंट हुई ! ! यह कहना भी शायद मुझे शोभा नहीं देता ! ! इस आधुनिक बौद्धिक युग में ड्राइंगरूम का महत्व बढ़ा है, घर की छोटी-सी बैठक का नहीं जहाँ घनिष्ठ बातें होती हैं। पत्र लिखना मुझे बहुत अच्छा लगता है और पत्रोत्तर देने में, वस्तुतः, मैं बिल्कुल शिथिलता नहीं बरतता। किन्तु, कभी-कभी कोई चीज सर पकड़ लेती है। आपको लिखा पत्र भी इसी तरह पड़ा रहा। लेकिन यह मेरी आदत नहीं है। आजकल मैं अपने पास अलग से चिट्ठी-पत्री का सामान रखता हूँ। और यथासम्भव उत्तर जल्दी दे देता हूँ।

यह मैं इसलिए कह रहा हूँ कि पत्रोत्तर में मेरी ओर से देर का कहीं मुझे दण्ड न मिले यानी आप मुझे देर से उत्तर न दें।

इसलिए, मैं यह सोचता हूँ कि कम-से-कम आप मुझे जल्दी उत्तर दें और बतायें कि हमें क्या करना चाहिए क्या नहीं, साहित्य के क्षेत्र में भी, अन्य क्षेत्र में भी। एक बात मुझे याद आयी। आपने लिखा था कि कविता की एक लाइन लिखते वक्त आपको मानो तकलीफ होती हो ! ! किन्तु मेरा ख्याल है कि जब [illegible]

[illegible] कि असल में आपके लिए यह एक मोड़ है। मोड़ में निकल जाने पर राह सुथरी-साफ़ दिखायी देती है।

पत्रोत्तर शीघ्र दें। मैं राह देखता रहूँगा। और सब बातें विस्तार से लिखें।

सस्नेह
आपका ही
ग. म. मुक्तिबोध

[67]

नागपुर
24. 7. 57

प्रिय नेमि बाबू,

आपको मेरा पहला पत्र मिल गया होगा। वसुधा, जबलपुर के सम्पादक श्री हरिशंकर परसाई की चिट्ठी मेरे पास आयी थी। उसमें लिखा था कि नेमिजी का प्रस्तावित लेख उनके पास अभी तक नहीं आया है। आपके लेख की प्रस्ताव

कि शायद यह 1. 6. 57 के पत्र के उत्तर में ही लिखा गया था और इसके पहले ही लिखे हुए पत्र के साथ ही भेजा गया था। जिस तरह के कागजों पर यह लिखा हुआ है, वह उस पत्र के कागजों जैसा ही है। दूसरी ओर, इसके कुछ सन्दर्भ, बीकानेर मुहर 21. 7. 54 के पत्र से मिलता-जुलता लगता है। रचनावली के पहले संस्करण में ये दोनों ही पत्र 1956 में लिखे माने गये थे। मगर मौजूदा क्रमानुक्रम अधिक संगत जान पड़ता है।

हमी लोगो ने किया था। उनका ख्याल था कि श्री श्रीकान्त वर्मा, प्रस्तावानुसार, लेख भिजवा सकेंगे। हाँ, यह तो सही है कि बगैर आगा पीछा देखे हमने आपके किसी लेख का जो controversy पैदा कर सके वचन दे दिया। क्या आप ऐसा कोई लेख लिखेंगे? एक तो निश्चय है, आपके पास समय बहुत कम और हजार व्यस्तताएँ हैं। लेकिन यदि आप ऐसा लेख लिख पायें तो हमारे यहाँ एक चीज़ चल पड़ेगी और हम कई लोग उस पर लिखेंगे। कृपया उत्तर दीजिए। पत्रोत्तर की प्रतीक्षा कर रहा हूँ। बच्चो को प्यार, रेखाजी को स्नेह-नमन।

आपका अपना
ग मा मुक्तिबोध

परसाईजी का पत्र आपके पास पहुँचा होगा।

श्री नेमिचन्द्र जैन,
22, क्वीन विक्टोरिया रोड
नई दिल्ली

[68]

नागपुर
1 8 57

प्रिय नेमि बाबू,

आपका पत्र मिला। 'साहित्य के बदलते मूल्य' पर आप अवश्य लिखियेगा। लेख ज़रूर बहुत अच्छा रहेगा। हिन्दुस्तान साप्ताहिक-वाली आपकी टिप्पणियाँ मैं अवश्य पढ़ूँगा और पढवाऊँगा। यदि आपके पास उसके कटिंग हो तो आप उन्हे भेज सकेंगे? मिले हुए बहुत दिन हो गये और हम सबको आपकी बहुत बहुत याद आती है और उससे जी फिर हरा-भरा हो जाता है। शान्ता और हम सभी आपसे, बच्चो से और रेखाजी से मिलने के लिए उत्सुक हैं। मुलाकात ज़रूर होनेवाली है। लगता है कि जैसे योग शीघ्र ही आयगा। अपनी कविताएं आपके पास ज़रूर भेजूँगा। लेकिन, आपकी भी देखना चाहूँगा, उन पर लिखने का अधिकार तो मेरा है। आशा है आप कुशल से हैं!! रेखाजी को प्रणाम कहियेगा। बच्चो को स्नेह।

आपका
ग मा मु

श्री नेमिचन्द्र जैन
22, Queen Victoria Road
New Delhi

[69]

[9 1 58]

प्रिय नेमि बाबू,

नये वर्ष की शुभकामनाओ का आपका पत्र मिला।

याद मे भी बडी अगाध शक्ति है। कल्पना इतनी उत्तेजित हो जाती है कि नये-पुराने चित्र फिर से उभर आते हैं और लगता है कि मैं आपके सामने खड़ा

हूँ और फिर वैसी ही बात कर रहा हूँ, उसी ढग से जैसे कि इलाहाबाद मे या और जगह।

योगायोग की बात कि मैं दिल्ली गया और आप मिले नही। इलाहाबाद गया और फिर उन्ही गलियो और सडको से गुजरा और बार-बार आपकी याद आती रही। अच्छा होता आप इलाहाबाद आते। समय मुझे लिखने-पढने के लिए भी नही मिलता। अगर humdrum life किसी भी ढग की यानी आर्थिक ढग की भी पूर्ति करती हो उसमे सुख होता, लेकिन वह भी नही है। अभी तक स्थायी नौकरी का भी निश्चय नही हो सका है और अब तो आयु चालीस वर्ष की गलत बाजू की तरफ जा रही है।

ऐसी सारी परिस्थिति मे उन लोगो की, जिनके लिए जी अकुलाता है, याद आते ही, जिन्दगी से ज्यादा मुहब्बत हो जाती है। लगता है कि जैसे I am about to fall in love with life again

सुबह है, धूप कमरे मे आ रही है, बाल-बच्चे पढने बैठे हैं, मैं आफिस जाने की जल्दबाजी मे हूँ, लेकिन यह सोचकर कि इस सुनहली धूप के साथ जिन प्रिय जनो के मेरे मानसिक चित्र बँधे हुए हैं उन्हे नमस्कार तो कर लूँ कि मैं पत्र लिखने बैठ गया।

आशा है, आप सानन्द हैं और बालक बालिकागण मजे मे हैं। श्रीमती रेखाजी को हम सबका सादर नमन कहिए।

इतना ही।

सस्नेह
ग. मा. मुक्तिबोध

श्री नेमिचन्द्र जैन
सगीत नाटक अकादमी
70, रीगल बिल्डिग,
नयी दिल्ली

भेजनेवाले का नाम और पता[1]

गजानन माधव मुक्तिबोध
230, भारती भवन
तेलघानी रोड
गणेशपेठ, नागपुर

[70]

नागपुर
4.3.58

प्रिय नेमि बाबू,

बहुत परेशानी मे पड गया हूँ। एक ओर आपसे मिलने की हार्दिक इच्छा और आपके निरन्तर सम्पर्क का लाभ दूसरी ओर आज तक के अनुभवो के आधार पर बनी मनोवृत्ति—दोनो मुझे दो विपरीत दिशाओ की तरफ खीच रहे हैं।

राजनांदगांव कालेज मे मेरी नियुक्ति हो चुकी है। वहां के लोग मुझे चाहते

1. इनलैण्ड लैटर

हैं। वहां एक दल का दल है, जो अपने यहाँ अच्छे-अच्छे आदमियो को बुलाना चाहता है। बढता-उभरता हुआ कालेज है। कुछ ही वर्षो मे, समीपवर्ती रायपुर मे एक विश्वविद्यालय खुलनेवाला है। इस बात की पूरी सम्भावना है कि मुझे वहाँ लाभप्रद स्थान मिले। अब मैं आयु मे प्रौढ़ हो जाने के कारण नयी पीढी के लोग मुझे हर तरह प्रोत्साहन देते रहते हैं। मेरे प्रति इस क्षेत्र मे बहुत प्रेम और आदर है। शायद मैं ऐसे स्थानो मे ही अपने को अधिक उपयोगी सिद्ध कर सकता हूँ।

इसके विपरीत वह लगभग एकान्त स्थान है। एक या दो साल के भीतर ही, यहाँ से मेरा मन उकता जायेगा। किन्तु, साथ ही, वहाँ आराम से आमदनी हो सकती है। वहाँ के लोग चाहते हैं कि मैं अधिक-से अधिक कमा सकूँ।

दूसरे, पिछले कई दिनो से मेरा स्वास्थ्य जर्जर है, रगें कमजोर हो गयी हैं। दवाओ से विशेष लाभ नही हो पाया। शरीर आराम और शान्तिपूर्ण व्यवसाय माँगता है। शरीर पर अधिक बोझ पड़ते ही, मानसिक थकान और अवसन्नता आ घेरती है। फालतू की झझटो से मन पर भार रहने के फलस्वरूप लिखाई होना बहुत मुश्किल हो जाता है। मुझे आशा है कि राजनांदगांव पहुँचकर मुझे कुछ आराम मिलेगा और स्वय के साहित्यिक कार्य के लिए कुछ फुरसत मिलेगी। शहर छोटा होने के कारण जिन्दगी का अस्तित्व बनाये रखने का सघर्ष भी कुछ कम होगा। नेमि बाबू, मेरी कहानी बड़ी उदास है; कहने से क्या लाभ!!

नौ वर्ष की सरकारी नौकरी ने कुछ नही दिया, तोहमत दी, राजनैतिक और सामाजिक तोहमत। प्राइवेट कम्पनियो की नौकरी पर भी अब भरोसा नही रहा। माया मिली न राम! ऊपर से मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य चौपट हो गया। मैंने कभी किसी से झगड़ा-झाँसा नही किया, साथ ही अपने अधिकारियो को खुश रखने की अजहद कोशिश की, फिर भी, हानि की हानि।

इसी पार्श्वभूमि मे आप मेरा राजनांदगांव जाना देखिए। वहाँ के लोगो ने—छोटे-छोटे लोगो ने—मेरी नियुक्ति के लिए बड़े-बड़े प्रयत्न किये। वहाँ की लेक्चररशिप छोटी ही सही, किन्तु अपेक्षाकृत शान्तिपूर्ण है। सघर्ष भी कम tortuous होंगे। दूसरे, एक अर्से से लेक्चररशिप की मेरी इच्छा रही है, वह भी पूर्ण हो जायेगी। यह भी बिलकुल ठीक है कि राजनांदगांव मे मैं अधिक दिनो टिक नही पाऊँगा। मैं अभी से कहे देता हूँ। किसी काम से जल्दी ही उकता जाने का मेरा स्वभाव है। इसी भावना मे जब मैं डूब रहा था कि आपका पत्र आया और उसने मेरी इस कमजोर जगह पर चोट कर दी और मैं दिल्ली की तरफ जाने का सपना देखने लगा। लेकिन, तजुर्बा दूसरी तरफ खींच रहा है। आज तक मैं अपनी क्षमता और सीमा का गलत अन्दाज लगाता रहा। यदि मैं दिल्ली के सघर्ष मे फँस जाऊँ तो मैं वहाँ नागपुर का बृहत्तर सस्करण हो जाऊँगा। ढाक के पत्ते तीन, चौथा कहाँ से उगे।

मेरी पत्नी दिल्ली जाने के लिए अकुला उठी है। बड़ा लड़का रमेश राजनांदगांव prefer करता है और मैं दोनो के बीच डाँवाडोल हो रहा हूँ।

फिर भी मेरा ख्याल है कि एक-दो साल के लिए आप मुझे छोटी जगह रहने दें। इसका मतलब यह नहीं है कि मैं *उन्नति के अन्य क्षेत्रो से* मुँह मोड़ रहा हूँ। मैं कमजोर आदमी हूँ और आपका स्नेह, सहायता और सक्रिय सहानुभूति का

चिरन्तन अभिलाषी हूँ। यदि इस बीच मेरी एक-दो पुस्तकें निकल सकें तो मेरी नौकरी में तरक्की की सम्भावना भी बढ़ सकती है। साथ ही मैं अब कुछ प्रकाश भी चाहता हूँ।

आज तक मैं केवल वानस्पतिक जीवन बिताता रहा। लिखूँ कैसे !! अगर मैं परिस्थिति के अनुसार काम न करूँ तो नैया एकदम डूब ही जायेगी !! फिर बाल-बच्चों का और मेरा क्या होगा। मैं अपने परिवार को भाइयों के भरोसे एक महीने-भर भी रख नहीं सकता। यह असम्भव है। बेकारी के दिन मैंने अपने घर पर बिताये। थोड़ा-सा काम धन्धा करता रहा। कुछ आमदनी की। उन्हीं दिनों बच्चों की बीमारियों ने जोर आजमाया। नहीं तो मैं वैसी हालत में भी खुश था।

इन कामों में यहाँ की माध्यमिक शालाओं की पाठ्य पुस्तकें लिखना भी शामिल है। जुलाई के अन्त तक पूरा काम हो जायेगा। मैं हिन्दी में लिखता हूँ, उसका अनुवाद मराठी में होता है और अनुवादित पृष्ठ प्रेस जाता है। इस प्रकार हर रोज मेरा लिखना, लिखे का प्रतिदिन अनुवाद और अनुवाद का प्रतिदिन मुद्रण होता रहता है। इस काम को अधूरा छोड़ने का अर्थ प्रकाशक को हजारों का नुकसान है। मैं उस कैसे धोखा दूँ !! एकदम दिल्ली कैसे चला आऊँ !! उसी के पैसों के बल पर मैं अपने परिवार को राजनाँदगाँव स्थानान्तरित कर सकूँगा। ऐसी आशा है कि आगे भी मुझे इस प्रकार का काम मिलता रहेगा।

मैंने अपनी बात आपको बता दी। शायद, मैंने अत्यधिक प्रगाढ़ स्नेह आपसे किया, और एक और व्यक्ति से जिसके बारे में मिलने पर ही बातचीत हो सकेगी। वह भी अत्यन्त गहन और प्राणान्तक स्नेह था। इसीलिए जब कभी मैं आपसे बात करने लगता हूँ तो एक खास तरह की मूड सवार हो जाती है। और, न मालूम क्या-क्या कहने लगता हूँ। लेकिन, फिलहाल, मेरी स्थिति निराशाजनक नहीं है। यह सोचकर कि आप तथा अन्य मित्र मेरे बारे में सोचते रहते हैं मैं आत्मविश्वास स्नेह और तेजस् से भर उठता हूँ। मुझे लगता है कि मेरा भी मूल्य है, महत्त्व है और उपयोगी क्षमता है।

मैं जिन्दगी से पेनशन नहीं ले सकता। शायद, कभी नहीं। इसीलिए दूर रह कर भी आप लोगों से जीवित सम्पर्क बनाये रखना चाहता हूँ।

मैंने आपका काफी वक्त ले लिया। मुझे मालूम है कि आप बहुत व्यस्त रहते हैं और आपके आस-पास चौमुखी कार्यधाराएँ भँवरें बनाती रहती हैं। मुझे आपसे मिलने की बहुत इच्छा है इसलिए मैंने यह तजवीज की है कि मैं अगली गरमी की छुट्टियाँ आपके आस पास बिताऊँ। इसके लिए बहुत पहले ही से मैं तैयारी करता रहूँगा।

रेखाजी को स्नेहपूर्वक प्रणाम कहिए और बच्चों को प्यार।

आपका अपना
ग. मा. मुक्तिबोध

[71]

नागपुर
28 5 58

प्रिय नेमि बाबू,

आपके सब उपहार, पुस्तकें और प्रिय शब्द—सब, सब मिल गये। हम लोगो के लिए तो आप, रेखाजी, बालवृन्द एक किंवदन्ती बन गये हैं—किंवदन्ती, जो मनोहर है, यथार्थ है और यथार्थ का इल्यूज़न भी। शायद, नही पक्का, इन्ही महीनो मे ठीक दस वर्ष पूर्व, मैं आपके साथ इलाहाबाद मे था। यादें पीछे की ओर दौड़ जाती हैं, मन दिल्ली की ओर भागता है। आपकी, आपके निबन्धो की (जो मुझे पढ़ने को नही मिलते), आपकी अन्यान्य गतिविधियो की चर्चा निकलती है। और, हम लोग, श्रीकान्तजी व मैं, उसके रस मे डूब जाते हैं।

किन्तु, न-कही-हुई ज़िन्दगी की धारा मे अनेक बार आपके चित्र उभरते रहते हैं, याद आती रहती है। यह किसे कहे !! आप एक अपना फोटो और एक बाल-बच्चो सहित फोटो हमारे पास भेजिए न ! कम-से-कम, चेहरा तो दिखा करेगा !!

आपका अनुवादित उपन्यास मैंने आधा पढ लिया है। अनुवाद खूब अच्छा हुआ है। लेकिन, लगता है उसे रिवाइज़ नही किया गया था।

आप तो कुछ अपने सम्बन्ध मे लिखते ही नही। दिल्ली से आने-जानेवालो से ही आपके हालात मालूम होते रहते है।

अब जल्दी ही अपना निबन्ध सग्रह प्रकाशित करवाइए और कविता सग्रह भी। आप फिजूल अपनी कविता के बारे मे बेरुखी रखते हैं। कविता का मूल्य क्षणस्थायी नही हुआ करता।

जब श्रम ही करना है तो imaginative labour ही क्यो न किया जाये ? क्यों नही आप एक उपन्यास लिखते !! इतनी सामग्री है आपके पास कि तीन-चार उपन्यास लिख सकें।

बाकी यहाँ सब कुशल है। स्थानान्तर की सम्भावनाएँ बढ गयी हैं। बाकी सब श्रीकान्तजी बतायेंगे। सब ठीक होगा।

आपका अपना
ग. मा. मुक्तिबोध

[72]

Rajnandgaon
21 June [62]

My dear dear friend,

I am so sorry I could not write to you earlier I was not here The College session is about to start

Our meeting ■ itself ■ celebration, I am looking forward to it, earnestly keenly

Pachmarhi ■ about 200 miles from this place This place is on Bombay-Calcutta route, via Nagpur It's a railway station. If you come here, we go to Bhilai.

Don't ask me to come to Pachmarhi (or any other place) You know the reasons

You come here, come here at any cost I am waiting for you From Pachmarhi you go to Jabalpur and from Jabalpur you can come to Rajnandgaon via Gondia At Gondia there will be a change of trains Gondia and Jabalpur are connected by a small gauge railway line In first class compartment, the journey will not be difficult—on this gauge From Gondia, eastwards there is no difficulty in travelling

I know you will be put to a lot of trouble on account of me But, had I the necessary wherewithal, I would have joined you at some place And, moreover, my wife and Ramesh—all of them want to see you After all, remember, you are a legend here

Please do write me back and somehow manage to come here

Your letter was such a pleasant surprise We are so near and so very far !! We, who together did so many things, are so apart now Nothing is sadder than that

So many things remain to be done You who started me on a particular path, should not leave me in the lurch I always felt that

Anyway, you are burdened with your own worries And, perhaps, I am taking much of your time

No, I don t think I can leave your shadow—your 'former' shadow—the time cannot change the much of inner man Of course ours would be a strange meeting—strange in the romantic sense of the word—

Let me dream a bit while writing to you There had always been a dream experience when penning words

Don t say that I am not undertaking a journey to see you, because I am somehow not inclined Not that And, you know it

Please do me the favour of coming over here and spend some time with me

Yours own
G M M.

[73]

राजनांदगांव
14 नवम्बर [1963]

प्रिय नेमि बाबू,

कितनी बार आपसे बात करने की तबीयत हुई। कल्पना में प्रकाशित आपकी कविताएँ खूब भायी, इनमें से एक, जिसमें मुक्ति की बात की गयी है, बहुत ही अच्छी लगी। मेरे सामने इस समय वह अंक नहीं है, नहीं तो शीर्षक देकर बताता। पिछले अंकों में प्रकाशित आपके लेख भी बहुत अच्छे लगे। कविताएँ आप अधिक-

माखनलाल चतुर्वेदी के नाम

[1]

मध्यभारतीय लेखक परिषद कार्यालय,
फ्रीगंज, उज्जैन
22 1 43

श्रद्धेय दादा, नम्र वन्दे !

मुझे, आपको यह प्रथम पत्र लिखते समय न मालूम कैसी हिचकिचाहट-सी हो रही है कि कहीं मैं दु साहस तो नहीं कर रहा हूँ। सालो बीत गये, जब आपके संवेदनापूर्ण सम्पर्क म आन का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ था। पत्र के द्वारा आपके सम्पर्क म आन की इच्छा भी बहुत दिनो से थी, परन्तु जब आज सचमुच लिखने का समय आया तो हिचकिचाहट हो रही है।

आपके ही लगाए हुए साहित्यिक अकुर आज सघनच्छाय वृक्ष हो गये हैं। हम यहाँ एक मध्यभारतीय लेखक परिषद का आयोजन करने जा रहे हैं और हमारे बीच म आपको पाने की अनिवार्य इच्छा जाग उठी है।

क्या आप हमारी प्रार्थना स्वीकार करेंगे ? पत्रोत्तर शीघ्र मिले। आपकी प्रकृति कैसी है, इसकी सूचना मिलनी चाहिए। आप हमारे आग्रह को नहीं भूलेंगे, ऐसा विश्वास है।

आपका विनीत
ग मा मुक्तिबोध

[2]

मशीर मजिल, फ्रीगंज, उज्जैन,
5 4 43

श्रद्धेय दादा,

आपके पास हमारे यहाँ के नवयुवको की रचनाएँ भेज रहा हूँ। आपके स्नेह-जल से कई अकुर वृक्ष हो गये हैं। सम्भवत आप इनको भी वृक्ष बना दें, वृक्ष रूप म देख लें। मध्यभारत की साहित्यिक तरुणाई के विकसन का श्रेय **कर्मवीर** को प्राप्त है, जिसम मैं साला तक पनपा। आपको मैंने लेखक परिषद् के अवसर पर पत्र लिखा था, आपने **कर्मवीर** मे उसका हार्दिक समर्थन कर अपने स्नेहमय व्यक्तित्व का एक बार फिर से परिचय दिया।

समय और स्थान की अनेक बाधाओ के कारण आपसे मिलने का अवसर बहुत दिनो से प्राप्त नही हुआ। फिर भी यह याद करके कि खण्डवा मे अपना 'एक भारतीय आत्मा' पडा हुआ है, मन मे सुख रहता है।

आशा है, आप स्वस्थ होगे। यह तो फारमल सा हो गया, परन्तु आपका स्वास्थ्य कैसा है, यह जानने की बहुत इच्छा है।

आपका विनीत
ग. मा. मुक्तिबोध

एक बात देखी न, कि मध्य भारत मे ऐसे कई काम हैं, जो हम दो विरोधी मतधारा के माननेवाले साथ-साथ कर सकते हैं। हम दो बहुत दूर तक साथ जा सकते हैं।

इसलिए विश्राम अब नही, भाई। और सब कुशल तो है? भाभी? भाभी के अध्ययन के बारे मे कुछ करना ही चाहिए। इस समस्या को छोड नही सकते। अपने विचार इसके बारे मे तुम लिखना। नही तो आगे की उन्नति रुकना स्वाभाविक हो जायेगा। कलाकार को सौन्दर्य और अनुभव का वैविध्य चाहिए, तभी उसका मन सर्वाश्लेषी होगा।

अपने दो शिशु तो ठीक है न? मेरे भी यहाँ सभी ठीक है। तुम दिसम्बर की छुट्टियो मे यहाँ आ रहे हो न? आन की तारीख शीघ्र लिखना।

तुम्हारे पत्र की राह है। काम होना चाहिए।

आपका अभिन्न,
ग. मा मुक्तिबोध

[2]

सरस्वती प्रेस, बनारस
15 3 1946

प्रिय वीरेन्द्र,

जिन्दगी की द्रुत-
ामने सरक गयी।
ुलाकात हुई और
बात म तुम्हारी
जिन्दगी की कई बातें कही।

मुझे दु ख है कि मैं तुमसे बिछुड गया हूँ। यह इस हद तक आ पहुँचा है कि तुम कहाँ हो, क्या हो, किस तरह हो, इसकी जानकारी भी किसी अमूल्य धन की तरह अलभ्य हो गयी है। इन पिछले वर्षों मे न मालूम कब मैं तुमस मिला था। आज यह सालो का गैप, यह मुँह-चौडी खाई मेरे सामने एक कटु सत्य की भाँति खडी है।

मैं चाहता हूँ कि तुम चगे हो जाओ। एक हरे वृक्ष की भाँति। फिर से वही मीठी उदासी से भरी शाम तुम पर उतर आये, और तुम स्वस्थ वृक्ष की टहनियो से मर्मर गान मे फूट पडो। यह मेरी हार्दिक कामना तुम्हें अच्छा कर दे।

मैं यहाँ हूँ हस मे। मजे मे। बीच मे तुम्हे पत्र लिखने का प्रयत्न भी किया था। परन्तु अधूरा रहा।

भाभी जी को नम्र प्रणाम। बच्चो को चुम्बन।

तुम्हारा अपना,
ग. मा मुक्तिबोध

[3]

नागपुर
20.9.52

प्यारे वीरेन्द्र भाई,

स्नेहालिंगन स्वीकार करो।

अर्सा हो गया तुम्हारी मुलाकात हुए। बवन के पास तुम्हारी चिट्ठी पहुँची। संदेसे भी, एक तरह से आते रहे। लेकिन रोजमर्रा जिन्दगी कुछ यूँ हावी है कि मन की अपनी अधूरी बात दूसरे से कहकर पूरी की जाने की सहूलियत वक्त नहीं पाती। मिलने, घण्टों बात करने की मन में ऐसी हविस है, पता नहीं तुम्हारी भेंट कब हो सके। जिन्दगी में तुम अपने तजर्बे से गुजरे हो, मैं अपने। अपने-अपने स्वभावों को लेकर तजर्बे अलग-अलग होते हुए भी, वर्तमान असामान्य परिस्थितियाँ सबकी एक हैं—यक-साँ भले ही न हों।

हालत तो खराब है ही, पर जिन्दगी में बड़ी जानदारी है। इसी के सहारे, जहाँ बनता है, दुलत्तियाँ झाड़ देता हूँ। भौतिक असफलताओं की चट्टानों पर टकराकर भी, हिम्मत नहीं हारा हूँ। खुदा की फज्ल से चार बच्चे हैं। सबके प्यारे हैं। लिखाई खूब चल रही है डटकर, भले ही प्रकाश में न आये।

और कहो, कैसे हो? मेरा अब नागपुर में मन नहीं लगता। पता नहीं क्यों, बार-बार यह लगता है, यहाँ मैं कुछ ही दिनों का मेहमान हूँ। गाड़ी किस तरह किधर लुढ़केगी, कह नहीं सकता। बड़ी नौकरी चाहिए। कम-से-कम साढ़े तीन सौ तक की। मध्य भारत पूछता नहीं, उसकी तो बात ही छोड़ो।

आशा है, तुम्हारा स्वास्थ्य अच्छा है, बाल-बच्चे मजे में हैं। तुम्हारे उपन्यास के बारे में काफी चर्चा सुनी। पढ़ने को नहीं मिला। लेख भी पढ़े। लगता है, तुम किसी नये सश्लेषण के चौराहे पर आ रहे हो। मेरी चीजें तो शायद तुम्हें कहीं पढ़ने को मिली न होंगी।

बम्बई की तुम्हारी जिन्दगी कैसी होगी, इसकी तो कल्पना ही की जा सकती है। करीब-करीब सभी अपने दोस्तों से मेरा सम्पर्क छूट गया है। वैसे इधर, जिन्दगी में तल्खी भी काफी कम हो गयी है। मन में उत्साह है, लेकिन परिस्थिति तो बदले। श्री हरि व्यास (मेरे घनिष्ठ) से मुलाकात होती है? उन्हें नमस्कार कहना। डाक्टर जोशी से? उन्हें भी।

तुम्हारे सम्बन्ध में जानने के लिए उत्सुक हूँ। फुरसत मिलते ही पत्र लिखना। बच्चों को प्यार।

लो गलबहियाँ लें।

सस्नेह,
ग. मा. मुक्तिबोध

[4]

नागपुर,
ता. 12.2 54

भाई वीरेन्द्र,

'गीतों की सम्राज्ञी' बहुत पसन्द आयी। 'देह विदेह हुई जाती है' वाली बात तो तुम ही लिख सकते थे, और कोई नहीं, कोई नहीं।

और, ध्यान रखने की बात है कि जो व्यक्ति अपने भीतर ऐसा रस समेटे हुए है, वह अपनी सारी महानता के बावजूद, उस छोटे-से मुक्तिबोध का भी दोस्त है —भले ही उसके सम्पर्क के कारण वह छोटा हो जाये।

और शब्द 'सम्राज्ञी'। वाह रे भाई। यह शब्द भले ही आपका हो—उसका भाव तो हम सब लोगों का है—और शब्द ही क्यों न हो।

जियो, दोस्त! खुश रहो। हम उस कविता पर फिदा हैं। अत्यन्त नम्रता-पूर्वक यह आपका पुराना मुक्तिबोध आपसे इस रस का, इस रस-प्राप्ति का वरदान माँगता है।

उस कविता को देखकर मन में आया, मैं भी कुछ छापने के लिए भेजूँ बशर्ते कि एक पाठक मित्र के नाते इस सम्बन्ध के बहाने कुछ चर्चा हो जाये।

जिन्दगी बहुत तल्ख है, लेकिन इस तल्खी के बीच मिठास के अपने अमर क्षण भी हैं।

अपनी कविता भेज रहा हूँ, आपके पढ़ने के लिए और छापने के लिए भी। आशा है, धर्मयुग में उसको स्थान मिलेगा और आपकी मुरव्वत।

आपका सस्नेह,
वही पुराना
मुक्तिबोध ग. मा.

[5]

नागपुर,
ता. 10.3.54

प्यारे वीरेन्द्र भाई,

तुम्हारा पत्र पाकर कितनी खुशी हुई, और आश्वास पाया, यह बात अगर सामने होते तो बतलायी जा सकती थी।

जिन्दगी बड़ी तल्ख है, लेकिन मानव की मिठास का क्या कहना। जी होता है सारी जिन्दगी एक घूँट में पी ली जाये।

बहुत-सी बातें कहने की हैं, बहुत-सी तुम से सुनने की। अगर कन्धे-से-कन्धा मिला रहे, बाँह-से-बाँह मिली रहे और मन-से-मन, तो फिर क्या बात है। फिर कुछ झेला जा सकता है। और तुम्हारा पत्र पाकर ठीक ऐसा ही लगा।

तुम्हारा जिक्र मैंने पत्नी से किया था। वे दिन भी क्या थे! बहुत ही अपने! तुम्हारे बारे में वह बहुत कुछ पूछ रही थी।

यह बात जानकर बहुत खुशी हुई कि कविता तुम्हें पसन्द आयी और उसे छाप रहे हो।

और सब तो ठीक है? वैसे यह सवाल ही बेकार है। जिन्दगी जरूरत से ज्यादा 'माँगती' है, देती है बहुत कम। वह तुम्हारे साथ भी होगा।

भाभी को सस्नेह नमस्ते कहिए और बच्चों को प्यार। सबको एक बार देखने की इच्छा होती है। दखिए, कब बम्बई आना होता है।

और, प्यारे भाई, अब विदा। जब जी चाहे और सुविधा हो, तब चिट्ठी देना। जवाब अवश्य दूँगा। मेरी ओर से देर नहीं होगी। प्रगाढ़ स्नेह।

तुम्हारा अपना,
ग. मा. मुक्तिबोध

[6]

राजनांदगांव
31.8.58

भाई वीरेन्द्र,

स्नेहालिंगन। मिलने की बहुत इच्छा है। एक-दूसरे की सूरत तो देख लें कि हम कैसे हो गये हैं। ज़माना पलट गया, हम भी बदल गये होंगे, सूरत-शक्ल में भी फर्क आ गया होगा। याद आती है पिछले दिनों की, आपकी, आपकी बातों की, हमारे आपके सम्मिलित जीवन की। पिछले दिनों इन्दौर गया था। मकान और रास्ते, मोड़ और गलियाँ, धूप और पेड़ों के नीचे हरी-साँवली छाया, आपकी याद दिलाती थी। लगता था, हम उन दिनों एक अत्यन्त स्पृहणीय कमनीय सौन्दर्यलोक में रहते थे। क्या वे दिन वापिस नहीं आयेंगे? अथवा दूसरे शब्दों में, क्या उल्लास और सौन्दर्य से स्पन्दित जीवन पुन स्थापित नहीं हो सकता? हमारे लिए ही नहीं, सभी लोगों के लिए।

ऐसी ही बातें करने की आपसे तबीयत होती है। लगता है कि एक बार फिर से मिला जाये। इतने में सुना कि मेरे मित्र श्री शरद कोठारी बम्बई जा रहे हैं। मैंने उनसे आग्रह किया कि वे मेरा सदेशा वीरेन्द्र भाई तक पहुँचा आयें। सो, वे राजी हो गये और यह चिट्ठी आपके पास तक पहुँचाने आये। यह उनकी कृपा है।

मैं समझता हूँ कि भले ही ज़माना बदल गया और हम भी बदल गये हों, किन्तु हममें ऐसा कुछ अभी बाकी है कि जो नहीं बदला, जो नहीं बदल सकता। वह है स्नेह!! आपकी एक कविता मेरे हाथ लग गयी। वह आप ही के हस्ताक्षरों में लिखी हुई है। वही पुरानी इन्दौरवाली कविता, जिसमें लावण्यभरा वातावरण और नेटिवेटी है!!

चीत होती थी।

अब मेरा हाल सुन लो। ज़िन्दगी में काफी ठुकाई पिटाई के बाद, अब राजनांदगांव आ पहुँचा हूँ। यहाँ का कालेज नया-नया है। सभी लोग सहयोग की भावना से प्रेरित हैं। काफी आराम से हूँ। पिछली कशमकश और मानसिक तनाव अब यहाँ नहीं है। इसलिए यहाँ का वातावरण सुखद है। सोचता हूँ, राजनांदगांव मुझे लाभप्रद होगा।

आपका हाल कैसा है? विस्तारपूर्वक लिखें। मैं भी लिखूँगा। श्री शरद कोठारी टाइम्स आफ इण्डिया प्रेस देखना चाहते हैं। आपसे मिलने के लिए स्वयं अत्यधिक उत्सुक हैं। आप उन्हें अपना सा जानें, अपना-सा पहचानें। वे अपने परिवार के ही हैं। यहाँ के कालेज के प्रतिष्ठाता सदस्य हैं। साहित्य, राजनीति आदि विभिन्न विषयों में गहरी दिलचस्पी रखते हैं और एक पाक्षिक पत्र सबेरा चलाते हैं। आपसे मिलकर उन्हें बहुत खुशी होगी।

आशा है, पत्र का उत्तर देंगे। कुशल समाचार लिखना। बाल-बच्चों का हाल

लिखना। अपना उपन्यास अथवा अपनी अन्य प्रकाशित पुस्तकें भेजना। मैं उन्हें पढ़ना चाहता हूँ।

आपका अपना,
ग. मा मुक्तिबोध

जगदीश के नाम

हंस, हिन्दी मासिक
बनारस,
15 8 46

प्रिय जगदीश,

तुम्हारे लेख के बारे में और अन्य प्रयत्नशील लेखकों के विषय में उदासीनता सब जगह है, यहाँ भी है। दूसरे, रहा मेरा व्यक्तिगत सवाल कि मैं कहाँ तक अपने साथी लेखकों के लिए यहाँ लड़ सकता हूँ, यह तो तुम देख ही रहे हो कि मैं असफल हूँ। मेरा व्यक्तिगत प्रभाव यदि है तो लेखक की हैसियत से हो सकता है। सम्पादकीय विभाग से मेरा सम्बन्ध नहीं-सा है। दूसरी भी अन्य बाधाएँ हैं। मुख्य बाधा सम्पादकों की उदासीनता ही समझिए। मेरी चीजें अब भी नहीं छपती हैं, और उनके अनुकूल चीजें लिखकर रुपया कमाना नहीं चाहता।

हाँ, मैं *कामना के लिए लिख सकता हूँ।* सम्मति वम्मति का झगड़ा मेरे पास न रक्खो और उसके लिए मजबूर न करो। कविता भेज सकता हूँ। कविता भेजूँगा लेकिन एक शर्त पर। उसका पुरस्कार मिलना ही चाहिए। हंस मुझ देता रहा है। दूसरे, मुझे उसकी आवश्यकता है। तीसरे यह कि बिना पुरस्कार के मैं कहीं छपवाता नहीं हूँ। न चाहता हूँ। अच्छा तो यह है कि तुम मेरे साथ हमेशा करो यही।

आगामी कल में निकले तुम्हारे लेख में जो तुमने मुझ पर लिखा वह कुछ *अंशों तक सही है। मुझे आश्चर्य हुआ कि तुम उसे कैसे लिख गये*—क्योंकि तुम्हारी भावनाएँ मेरे साथ होने पर भी मैं नहीं सोचता था कि इतने विश्लेषण की आवश्यकता है। दूसरे, उस लेख में अन्य कवियों पर कम आलोचन विवेचन हुए हैं, फिर भी वह लेख अच्छा है।

पत्र लिखो। स्नेह।

तुम्हारा,
ग मा मु

[1]

Nagpur
7 7 50

My dear Shamsher,

What should I say I don't know I have many times attempted a letter and yet I failed What should I write to you ?

And you would ridicule me for that Say you will, why try then when you haven't got anything to say But I would like to reply You will excuse for my confusion, for my silence, for utter lack of words which has struck me so inopportunely

There are stars in the sky which are so far and yet so friendly, so pure in their twinkling light that poets, muddle-headed as they are, associated them with their beloveds.

Friends are a different species They are no poets when they are friends they are realists and hard-headed thinkers and soft hearted fools, yes, folly is a good thing You are a prey to it So am I, same is the case with Nemichandji

And I am reminded of stars, so distant, so far away, so pure For nautical purposes they are still the guiding light

One can't talk with stars unless one is demented And I can't tolerate myself called demented And yet one can measure stars, their topography. Once get to the stars we can talk with them.

But a petit-bourgious of the year nineteen fifty has slender means to achieve such outstanding results—getting to the stars ! Good God ! How difficult

My best regards to you, my love and embrace if you don't mind And my ending line

My angelic Shamsher, good night

affly yours
G.M M.

घर न० 86, विष्णु दाजी गली,
नई शुक्रवारी, सरकल नं० 2
नागपुर

प्रिय शमशेर,

कुछ दिन पूर्व श्री प्रभाकर पुराणिक को लिखे पत्र मे आपने जो मुझे याद फरमाया उससे प्रेरित होकर ही यह वन्दा दस्तावस्ता हाजिर हुआ है। भूले न होंगे आप कि कुछ महीनो पहिले नेमिचन्दजी को मेरे लिखे एक पत्र के साथ आपको भी एक चिट्ठी थी। उसका जवाव दिया ही नही जा सकता था, चुनांचे मैं यह सोचकर चुप बैठ गया था कि जमाने के फेर मे चिट्ठियो के जवाव भी गायब हुआ करते हैं। लेकिन एक अर्से वाद, पुराणिक को लिखे पत्र में जो मेरा नाम आया तो आपको गाली देता हुआ भी मैं बहुत खुश था कि आखिर किसी के खयाल मे तो हूँ। नेमिचन्द जी को अव फुर्सत नही कि कुछ भटकी हुई यादो की भी सुनवाई कर सकें। इधर भूले-भरमे राहगीरो की जवानी जो कुछ सुना वह इतना ही है कि पुस्तक भण्डार मजे का चल रहा है। समाचार न इससे ज्यादा न कम।

बहरहाल, आप तो मजे में हैं।! नया साहित्य मे कोरिया पर आपकी कविता पढी। सच कहूँ, बहुत अच्छी लगी। अपनी सहूलियत के लिए मैंने कविता की दो श्रेणियाँ कर ली हैं। एक वह जो सुनायी जा सके और दूसरी वह जो पढी जाने के लिए ही हो। इन दो के बीच मे मिले-जुले प्रकार की कविताएँ आती हैं। कोरिया पर आपकी कविता सिर्फ पढी जाने के लिए है। नागार्जुन की कविता मामूली है। नेमिचन्दजी की कविताएँ आप लोग प्रकाशित क्यो नहीं करते! क्या सचमुच नया साहित्य वालो की कविता से दुश्मनी है?

बाकी सब ठीक है। कभी तो चिट्ठी लिखा करो यार। नेमिचन्दजी को अव हम कभी लिखनेवाले नही। सोचो तो, उनका पिछला पत्र अपने शीर्षक के पास एक जनवरी उन्नीस सौ पचास झलका रहा है। क्या सचमुच उनके पास इतनी झंझटें हैं! हमसे तो ज्यादा न होंगी!

इतना तो जाने हुए हैं कि आप हम भूल नहीं सकते। कभी नागपुर आओ न यार! बहुत बातें होंगी। पिछले दिनो अमृतराय यहाँ आये हुए थे। उनके जरिये काफी बातें मालूम हुईं।

अपने अगत् शत्रुघर, सुनते हैं, सरस्वती प्रेस मे आवाद हैं। कभी मिलते हैं? अगर मिले तो भई उनसे हमारे स्नेह-नमस्ते कहना। त्रिलोचन ने मुझे सन्देश भिजवाया था। पर बनारस का उसका पता मुझे बिलकुल मालूम नही। चिट्ठी लिखूँ तो कहाँ! *इलाहाबाद में उसके लिए कहीं जगह तजवीज करो न!*

बाकी यहाँ कुशल है। वाल-बच्चे मजे में हैं।

हमारे एक मित्र श्री रामरतन मिकची यहाँ से युग जीवन नामक एक द्वै-मासिक पत्र निकाल रहे हैं। समता के दूसरे अंक के लिए आपकी एक 'किसान' (कुछ ऐसा ही नाम था) कविता मेरे पास पडी हुई थी। पता नहीं क्या हुआ उसका। अभी कुछ ही दिनो पहले मैंने उसे देखी थी। खैर! मैं चाहता हूँ कि मेरे मित्र के नाते के कह लो, या एक प्रोग्रेसिव के नाते, आप कुछ अपनी चीजें मेरे पास

अवश्य और शीघ्र भेजें और यदि स्वयं नेमिजी भेज सकें या आप स्वयं उनकी उतारकर भेज सकें तो मेरा भाग्य खुल जायगा। इसका अगले पत्र मे स्पष्टीकरण करूँगा पहले आप उन्हें शीघ्रातिशीघ्र भेज दें।

अगर, वस्तुत आपने कष्ट किये तो निस्सन्देह मैं ऋणी रहूँगा। मेरा उसमे खास इन्टरेस्ट है।

पत्र का उत्तर दें।

सस्नेह
आप ही का
ग मा मुक्तिबोध

नामवर सिंह के नाम

[1]

230, भारती भवन
तेलखानी रोड, गणेश पेठ
नागपुर

प्रिय नामवरसिंह जी,

कवि मे आपने मेरे सम्बन्ध मे जो कुछ लिखा, उसके लिए मैं किन शब्दो मे धन्यवाद दूँ।

औपचारिक पत्र लिखने का मुझे बिलकुल अभ्यास नही है। दिल की कहूँ तो यह कि अगर आप मेरे समीप होते तो गले लगा लेता, इसलिए, नही कि तारीफ हुई है वरन् इसलिए कि एक सुदूर अजाने कोने मे एक समानशील समधर्मा मिला। 'समानधर्मा' शब्द पर शायद आपको आपत्ति हो, किन्तु अपनी कमजोरियो और दोषो मे मैं आपको शामिल नही कर रहा हूँ।

सच कहूँ तो वैसी टिप्पणी जो आपने लिखी—किसी अन्य द्वारा सभव ही नही थी। गालियाँ पडती। मैं आपसे भी यही expect कर रहा था—लेकिन वे बौद्धिक गालियाँ होती—जैसे frustrated 'कुण्ठाग्रस्त', 'नैराश्य-ग्रस्त'—आदि-आदि। या तो लोग ऐसी ही बात करते या फिर प्रशसा ही। प्रशसा कम, गालियाँ ज्यादा। काश, प्रगतिशील आन्दोलन हम जैसे लोगो को थोडा समझ पाता!! पिछले बारह वर्ष के एक पूरे तप मे उसने काव्य मर्मज्ञता के क्षेत्र मे जरा-सी भी समझ, सहानुभूति और सहिष्णुता का परिचय दिया होता तो उसकी वैसी गत न होती जैसी आज है। खैर, मैं बहक गया, और शायद मुझे यह बात नही लिखनी चाहिए थी।

लेकिन, मुझे बरबस यह याद आया। शुरू-शुरू मे तारसप्तक के प्रकाशन के अनन्तर ही, प्रगतिशील क्षेत्र मे नयी कविता को बडी गालियाँ पडी। आलोचना आवश्यक थी विरोध आवश्यक नहीं था। खैर, यह पिछली बात हुई। हुई-गई। लिखने का कारण यह है आगे चलकर, क्या इस आन्दोलन को फिर से उठाना

जरूरी नही है, विशेष संशोधनों के साथ—यह सवाल दरपेश है। आशा है, आप इस पर अवश्य सोचेंगे।

जिस भीतरी पहचान का प्रतिबिम्ब आपकी टिप्पणी मे मुझे दिखायी दिया, उसके लिए मैं क्या कहूँ। इतना ही कहूँगा कि मैं खुद को बहुत भाग्यवान समझता हूँ, बहुत-बहुत भाग्यवान ! ! किन्तु इसी प्रतिबिम्ब के आधार पर और उसी से अधिकार लेकर मैंने, फिर से इस प्रकार का आन्दोलन चलाये जाने का ज़िक्र आप से किया। क्या आजकल यह सचमुच असम्भव हो गया है ? इस पर आप सोचिएगा और यदि सम्भव हो सके तो मुझे भी बताइगा।

त्रिलोचन जी को सस्नेह नमस्कार कहिएगा। आशा है, आप प्रसन्न हैं ! ! उनकी कविता-पुस्तक कब निकल रही है ?

आपका ही
ग. मा. मुक्तिबोध

पुनश्च : टिप्पणी, जो आपने लिखी, के बारे मे यहाँ के यानी मध्यप्रदेश-विदर्भ के हमारे सब मित्रो की राय है कि न केवल बहुत अच्छी लिखी गयी, वरन् यह कि उसके पीछे एक अर्से तक चलने वाला, विविध समस्याओं पर गहरा चिन्तन साफ झलकता है।

निश्चय ही, मेरी उसमे बहुत तारीफ है, और इस सम्बन्ध मे मेरा खुश होना और आपकी प्रति-प्रशंसा करना भी सहज हो जाता है। इसीलिए, मैंने उन मित्रो का ज़िक्र किया जिन्होंने उसे पढ़ा और राय दी। आपके विश्लेषण के प्रति उनका विशेष अनुराग झलका, खास तौर पर लम्बी कविताओं के बारे में। संघर्ष और प्रदीर्घ कविता की कड़ी का जो आपने आभास दिया और बौद्धिक और चिन्तन— इनका जो भेद आपने बताया उनकी यहाँ विशेष चर्चा होने के अलावा आपकी पूरी दृष्टि पर यहाँ बातचीत हुई।

बाकी, फिर कभी।

ग. मा. मुक्तिबोध

[2]

इन्दौर
17.8.57

बन्धुवर,

पत्र का उत्तर बहुत देर से दे रहा हूँ, इसके लिए मुझे क्षमा करेंगे। पिताजी तथा माताजी के स्वास्थ्य की चिन्ताजनकता मुझे नागपुर से यहाँ ले आयी और अब लगभग एक पखवारे के बाद मैं कल ही नागपुर वापिस चला जाऊँगा।

[illegible]

अनुकूल होगी। क्या हिन्दी के लेक्चरर की जगह दिला सकेंगे?

कविताओ की प्रेस-कापी तैयार करने की ओर उन्मुख हूँ।

निबन्ध वृहत् हो गया है। नागपुर पहुँचने के बाद, एक-दो रोज मे उसे अमृत के पास रवाना कर दूँगा।

आपने अपनी पुस्तकें मेरे पास भेजी नही ? कब भेजेंगे।

सुना है कि जबलपुर वाले वहाँ आपको और हमे बुलाने वाले हैं ? उन्होने अभी पुराना आइडिया छोडा नही है। परसाई जी की बहन के पति एकाएक गुजर जाने के कारण वे कुछ अधिक नही कर सके थे।

आशा है आप प्रसन्न हैं। आपके पत्रो से बडा सुख होता है। इससे आगे क्या कहूँ।

आपका सस्नेह
ग मा मुक्तिबोध

पुनश्च कृपया उत्तर नागपुर के पते से ही भेजें।

[3]

230, भारती भवन
तेलखानी रोड, गणेश पेठ
नागपुर
15 5 58

भाई नामवर सिंह जी,

जबलपुर पहुँचने के पहले बनारस से मुझे आपकी चिट्ठी मिली थी। हमारे परिवार के विभिन्न केन्द्रो मे एक-न एक दुर्घटना होती रही, जिससे मैं काफी दिनो बाहर-बाहर रहा। जब यहाँ लौटा तो पाया कि दवाओ की गन्ध, इन्जेक्शन ट्यूब्स की चमक, वातावरण बना रही है। खैर, साहब, ता सब कुछ ठीक हुआ। किन्तु मुझ पर ज्यादा दबाव पडते रहने से मेरी तबीयत खराब हो गयी। अब सब ठीक है। मैं भी लगभग ठीक हूँ। काफी कमजोरी है। शीघ्र ही चगा हो जाऊँगा।

सबसे बडा खेद तो यह है कि आप जबलपुर आये और मेरी आपसे मुलाकात न हो सकी। नागपुर बहुत out of the way है।

अगर कविता प्रकाशन की कोई योजना हो तो मैं आपके पास कविताएँ भेज दूँ। वैसे, मेरे ख्याल से ज्यादा देर नही हुई है। क्या परिस्थिति है लिखियेगा। आज नहीं तो कल उन्हे प्रकाशित होना ही है। मुझे आपकी शर्तें जो भी होंगी मजूर होगी। शमशेर भाई बनारस ही हैं क्या ? कृपया लिखियेगा। इन दिनों स्थानान्तर की गडबड है। सम्भवत मैं जुलाई म कही पास-पडोस म लेक्चरर हो जाऊँगा। वैसे, मेरी बडी इच्छा है कि आप लोगो के समीप रहूँ, जिससे मैं कुछ पढाई कर सकूँ। हम लोग इधर बहुत पिछडे प्रदेशों म रहते हैं और साहित्यिक गतिविधियो से घनिष्ठ सम्पर्क नही रख पाये। यदि बनारस मे मेरे लायक नौकरी मिले तो अवश्य लिखियेगा। पत्रोत्तर की प्रतीक्षा में।

आपका
ग मा मुक्तिबोध

दिग्विजय कालेज
राजनांदगांव (म. प्र)
6 अगस्त, 61

बन्धुवर,

आपके पत्र से बहुत प्रोत्साहन मिला। अपने अकेले एकान्त मे रहने की स्थिति से, आत्म-विश्वास की हानि होती है, इसलिए जरा-सी भी सहानुभूति पाकर, मन को लगता है कि और भी अच्छा काम हो सकता है। **कामायनी** एक पुनर्विचार मे बहुत-सी त्रुटियाँ हैं—मुख्यत रचना-सौन्दर्य, या प्रबन्ध लालित्य के सम्बन्ध मे। इतना अवकाश नही था कि लिखे को सुधार सकूँ। पुनरावृत्तियाँ भी हैं—लेकिन वे ज्यादा जोर देने के लिए, समझा-समझाकर कहने के लिए। मुख्य बात तो उसकी दृष्टि है। उसका मैं पक्षपाती हूँ।

आपने 'मार्क्सवादी-जार्गन' की बात कही। साधारणत मैं अपने लेख आदि मे इस प्रकार की शब्दावली का प्रयोग नही करता। आपका यह कहना बहुत ही सही है कि आज स्थिति मे इस प्रकार की शब्दावली मे बात करना अनुचित है। मैं आपसे पूर्णत महमत हूँ।

किन्तु **कामायनी** की व्याख्या मे, मैं इसे टाल नही सकता था। यदि मैं यह मानता हूँ कि 'देव-सभ्यता' सामन्ती सभ्यता का प्रतीक-चित्र है, कि जिस देव-सभ्यता के नाश के पुत्र-रूप म मनु की स्थापना की गयी है तो वैसी स्थिति मे, [illegible] से सब [illegible] भी [illegible] की गयी तो सामन्ती सभ्यता के नाश से जन्मित सभ्यता के doom तक आने के इस पूरे क्रम की व्याख्या हो नही सकती।

यह एक कठिनाई है। फिर भी मैं यह सोचता हूँ कि जहाँ तक हो सके यह कोशिश की जानी चाहिए कि मार्क्सवादी जार्गन मे बात न हो। यदि मैं अधिक सावधानी से काम करता, तो शायद यह गलती न हो पाती। किन्तु, उसका एक दूसरा पक्ष यह भी है कि मैंने इसी शब्दावली मे **हस** 1944 मे और **आलोचना** 52-53 मे लेख लिखे थे। आलोचना वाला लेख दो सकलना म भी स्थान प्राप्त कर चुका है। ऐसी स्थिति मे, मेरी **कामायनी** की आलोचना के साथ वैसी शब्दावली जुड गयी है। मैं अपने को डिफेण्ड नहीं करना चाहता। मुझे स्वय यह शब्दावली प्रिय नही, किन्तु वह precise है।

कामायनी के अगले सस्करण की ओर मेरी आँखें लगी हुई हैं। कल नही तो छह सात साल बाद, उसका दूसरा सस्करण अवश्य निकलवान का प्रयत्न करूँगा। तब, सारी त्रुटियाँ निकाल दूँगा। आपके सुझाव के अनुसार, मार्क्सवादी शब्दावली हटा दी जायेगी जहाँ तक हो सके।

आशा है, आप प्रसन्न हैं। किन शब्दो म अपने भाव व्यक्त करूँ।

आपका ही
ग. मा. मुक्तिबोध

राजनांदगांव
17 अगस्त, 61

प्रिय नामवर सिंह जी,

आपका दूसरा पत्र पाकर बहुत प्रसन्नता हुई। किसी मर्मज्ञ द्वारा प्रशसा के दो शब्द मिल जाने से लेखक प्रसन्न हो जाया करता है। मेरे लिये यह और भी स्वाभाविक है।

इधर, मेरे पास नागपुर स एक समाचार आया है। श्री शिवदान सिंह जी कलकत्ते मे लेखको का एक सम्मेलन करने जा रहे है। शायद, आपके पास भी इस सबध मे कोई सूचना होगी। वह सम्मेलन प्रगतिशीलो का ही रहेगा—ऐसी धारणा स्वाभाविक ही है। हाँ, उसमे सहयात्री भी रहेगे।

इस सबध मे मेरा निवेदन यह है कि इधर उठ खड़ी हुई नई प्रवृत्तियो के सीधे-सीधे condemnation से काम नही बनेगा। इसलिए, आपको वहाँ जाना जरूरी है। वे आपको अवश्य बुलायेंगे—बुलाना चाहिए। अभी उनकी ओर से शायद निमत्रण न आया हो।

लेकिन, मैं कहना यह चाहता था कि नई प्रवृत्तियों के क्षेत्र मे, कई theoretical questions उठ खड़े हुए हैं। प्रगतिशीलों की पुरानी धारणाओ के खण्डन पर, यह इमारत खड़ी हुई है। जो साहित्यिक इस नई प्रवृत्ति के अग हैं, और प्रगतिशीलो के साथ भी हैं, उनका यह कर्तव्य है कि वे प्रगतिशील जीवन-दृष्टि को पुन स्थापित करे, जो theoretical questions खड़े किये गये हैं उनका पूर्ण उत्तर देकर। केवल सम्मेलन करने से, साहित्यकारो मे प्रगतिशीलता का प्रचार होगा, यह कहना मुश्किल है। सच बात तो यह है कि साहित्य मे प्राप्त नई स्थिति को सामने रखते हुए सैद्धातिक विश्लेषण का कार्य आवश्यक है। वह कार्य बहुत बड़ा है।

यह बात मैंने रास्ते चलते लिख दी। वह भी इसलिए कि यदि वैसा सम्मेलन हुआ तो उसे कोरा मचीय प्रयत्न भर न रखा जाये इस इच्छा से प्रेरित होकर लिखा है।

आशा है, आप प्रसन्न हैं। पता नही, कब आप से भेंट हो।

आपका ही
ग. मा. मुक्तिबोध

[जनयुग, 12 सितम्बर, 1965, मे प्रकाशित]

श्रीकान्त वर्मा के नाम

[1]

नागपुर
अक्टूबर या नवम्बर 1956

प्यारे भाई,

आपका पत्र मिला। खूब खुशी हुई। ऐसी ही चिट्ठियों से बहुत बल मिलता है। मैं जानता हूँ कि आपको मेरी गहरी चिन्ता है। इतना स्नेह पाकर, मैं अभेद्य हो जाता हूँ। लड़ाई लड़ लूँगा। ज़रा अच्छे ढंग से लड़ूँ, यही इच्छा है। इसीलिए, अपमानजनक शर्तों पर भोपाल जाना उचित न समझा। दिल्ली आना बिलकुल असम्भव है। नया खून भूत सरीखा पीछे पड़ गया है। समय का अभाव है। अब विद्रोही भी भोपाल चले। वैसे, नागपुर से उकताने की मुझे फुरसत ही नहीं मिलती। जिन्दगी हाथ धोकर पीछे पड़ गयी है। यदि ज़रा अवकाश, ज़रा फुरसत, ज़रा छुट्टी मिले, तो चेहरे का रंग बदल जाये। कुछ पढ़ना-लिखना नहीं हो पाता। सब चीजें स्वप्नवत् हो रही हैं। नरेश एक मीठी याद [बनकर] रह गये हैं, उन्हें चिट्ठी लिख देता हूँ, इसीलिए कि मेरी बहुत चिन्ता करते हैं। किन्तु यह हार्दिक और मनोवैज्ञानिक सम्बन्ध हुआ। सब दोस्तों से अपने ऐसे ही सम्बन्ध हैं। दोस्तों में 'बड़ा आदमी' कोई नहीं। बड़ों की चाटुकारिता होती नहीं, उनके लिए मेहनत ही की जाती है। किन्तु इस मेहनत ने अब तक कोई मुआवज़ा नहीं दिया।

अब घिघियाने की मेरी उम्र भी नहीं रही। सिर्फ एक ही 'महत्त्वाकांक्षा' है। लेक्चररी मिल जाये ज़रा अच्छे ढंग की। मारा-मारा न फिरूँ। वैसे मैं नागपुर एकदम छोड़ूँ भी कैसे। बाल-बच्चेदार आदमी होने के अलावा मेरे माता पिता भी हैं, और मुख्यतः कर्ज लदा है। इस कर्ज को कैसे अदा करूँ!! इसी धुन में रहता हूँ। पठानों से कर्ज लेते लेते, जब हिन्दुओं से लेने लगा तो पाया कि ये पठानों से भी बुरे होते हैं। बड़े हरामी, बड़े पाजी। कुछ न पूछो। रेडियो की नौकरी की लगभग एक चौथाई रकम ब्याज में जाती थी। अभी मैंने सिर्फ सौ रुपये चुकाये हैं। कुछ ही महीनों में और दूँगा। आगे चलकर, मैं इन लोगों पर उपन्यास अवश्य लिखूँगा।

वैसे, चिन्ता की कोई बात नहीं। मैं यहाँ उदास नहीं हूँ। चूँकि आपने बड़ी व्यक्तिगत बात की, इसीलिए मैं इतनी बातें कह गया तैश में। नहीं तो कहने की कोई बात ही नहीं थी। आखिर, यह भी तो बड़ा निजी मामला है और निजी लोगों को ही तो कहा जाता है, जिसका उद्देश्य भी तो सिर्फ जी हलका करना है।

मैं आपकी परिस्थिति जानता हूँ। बड़ा अच्छा किया जो बिलासपुर से खिसके। आप ज़रूर यशस्वी और कीर्तिमान होंगे। (कर्ज के सम्बन्ध में किसी पहचानवाले या मित्र को कहने की कतई ज़रूरत नहीं है। इसका किसी को पता न चलना चाहिए।)

आपने 'धुरावाद' के बारे में लिखा। मैं बिल्कुल मुत्तफिक हूँ। आप-जैसी ही राय रखता हूँ। किन्तु प्रगतिशील 'धुरन्धुर' चुप क्यों हैं!! उनके मन की प्रतिक्रिया बन्द क्यों? आप ज़रूर लिखिए। इस सम्बन्ध में मेरा मन्तव्य निम्न प्रकार है।

(1) व्यक्तिगत अटैक का बदला व्यक्तिगत दिया जाये किन्तु जहाँ वैसा न हो, वहाँ वैसा न किया जाय। जहाँ तक हो सके, विचारों को निर्व्यक्तिक रखा जाये। सद्भावना भी आड़े न आये, दुर्भावना भी नहीं। ऐसी आलोचना, पाठकों का विश्वास प्राप्त करती है।

(2) समस्या सही-सही तरीके से पेश की जाय। repartee का बदला repartee से देने में, पाठकों के पल्ले कुछ नहीं पड़ता। उन्हें समस्या समझ में नहीं आती। फिर, arguments और counter-arguments का तो कहना ही क्या !!

(3) एक बार ठीक तौर से problem पेश किये जाने पर, फिर, तर्कों का खण्डन हो सकता है, किन्तु जहाँ तक हो सके खण्डनीय मान्यता को, पूरा पूरा, उसकी सही स्थिति में, पेश किया जाना जरूरी है। यदि खण्डनीय मान्यता को, उसके सही रूप और प्रोपोर्शन में नहीं रखा, तो उसका खण्डन convincing नहीं होता, और पाठक उसका बौद्धिक आकलन नहीं कर पाता।

(4) नतीजा यह होता है कि we start talking at each other rather than talking to each other हमारे यहाँ बौद्धिक संस्कृति के अभाव का मूल कारण ही यह है कि We try to play upon the feelings of the people, try to play upon their instincts rather than, appealing to their intellectual sense It is this that causes the trouble We must make people think, and, that too, independently

इस उद्देश्य से, अगर technical शब्द का व्यवहार करूँ तो सही methodology का प्रयोग यदि किया गया तो किसी भी controversy में जान आयेगी, और उसके बहुत-से पहलुओं पर सोचने के लिए पाठक विवश हो जायेंगे। पाठकों को पढ़ने और सोचने के लिए विवश नहीं किया जा रहा है। ideas का खूब प्रचार है लेकिन unthought, unexplained, unanalysed का। मुख्य बात analysis की है। हमारे यहाँ 'मत' खूब हैं, analysis की शक्ति कतई नहीं। नतीजा यह होता है कि बात चलती है, लेकिन वह कुहरीली हो जाती है।

यह मैंने क्यों लिखा ? इसलिए कि मैं आपसे यह बात कहना ही चाहता था। अगर आप सहमत हों तो ज़रा इस निवेदन पर भी सोचें। अपना मत और मान्यता देने मात्र से काम नहीं चलेगा। लोग यही कहते हैं। क्यों, क्या और कैसे, सम्बन्धी प्रश्नों के अलावा, आपको यानी हम लोगों को यह भी बताना होगा कि controversy की सामाजिक बुनियाद क्या है !! लेकिन, यह पहले नहीं, अन्त में आना चाहिए। पहले तो तर्क का जवाब तर्क से, ईंट का जवाब ईंट से, (पत्थर से नहीं) दिया जाना आवश्यक है।

मैं समझता हूँ, कि श्री भारती ने जो controversy पैदा की है, उसका उद्देश्य प्रतिक्रियावादी भले ही हो, वह बहुत मूल्यवान है, और उस पर चर्चा होना बहुत आवश्यक है। ध्यान में रखिए, वह दाना दुश्मन है, नादान दोस्त नहीं। इसलिए, उसकी इज्जत होनी चाहिए। वह प्रतिभाशाली है, और problems को खूब feel करता है और think करने की कोशिश करता है। वस्तुतः, मैं उसके साहस से बहुत प्रभावित हूँ। वह असल है, घटिया नकल नहीं। यह ठीक है कि वह असलियत हमें पसन्द नहीं। किन्तु, असलियत का विरोध दुनी बड़ी असलियत की dignity से होना चाहिए, और उसे दूनी बड़ी असलियत की शक्ति और

भी अलग से उन्हें लिख रहा हूँ। आपने बसुधा के लिए और किन किन को लिखा है ? मैंने दिल्लीवाली सर्विस के लिए आवदन पत्र भेजा था, लेकिन कोई जवाब नही आया है। जबलपुर के D N Jain College के लिए दरखास्त दी है। इधर पूरा घर इन्फ्लुएंज़ा से पीडित रहा। मैं कहीं और जगह स फ्लू ले आया और फलत सभी उसकी गिरफ्त म आ गय। आप मुझ (1) जयशकर प्रसाद वाली किताब (2) मानव वाली पुस्तक (3) काव्यधारा भेजनवाल थे। अब तक आपने भेजी नही, मैंने अपनी दरखास्तो [म] उनका उल्लेख किया है। इसलिए उनकी खास जरूरत है। मेरी कामायनी वाली पुस्तक तो आपके पास सुरक्षित है न !! आपके रेडियो कवि सम्मेलन के बारे म टाइम्स आफ इण्डिया म पढा था जिसम आपका भी उल्लख था। बडी खुशी हुई।

यहाँ फिलहाल सब कुशल हैं। आपके बाद यहाँ विद्रोही जी आय थे। आपकी बहुत याद कर रहे थे रामकृष्ण आये ही नही। आपकी उनसे मुलाकात हुई होगी।

आपका स्वास्थ्य तो अच्छा है न !! अपने समाचार दीजिए।

आपका
अपना
ग मा मुक्तिबोध

[7]

नागपुर
10 10 57

भाई श्रीकान्त

आपको पत्र लिखे एक जमाना हो गया। आत्मग्लानि का एक लम्बा युग बीता। अब मन से कुछ ठीक हूँ। हलकी सी प्रसन्नता (अकारण ही) मन म है। बसुधा मे आपका कालम अच्छा चल रहा है। बीच म मैं अकोला गया था। रामकृष्ण स मुलाकात हुई थी। उनकी कापी आप ही के पास है न ! भाई कृपा करके कामायनी वाली मेरी पुस्तक मरे पास भेज दें। इन्टरव्यू के लिए वह आव श्यक है। वैसे ही भाई महावीर अधिकारी कि उस पुस्तक को मैं खरीद लू। काव्यधारा आप दिलवा दें ! चाहे तो किसी क पास से मेरी कविता के उतन पन्न फाडकर भिजवा दें। भारतीय श्रमिक की आलोचना नया खून के दिवाली अक मे जा रही है। पत्र का उत्तर अवश्य दें। मैं तुरन्त जवाब दूंगा। अच्छे हो न, लिखाई कैसी चल रही है। इधर मेरी कुछ कविताएँ Allahabad AIR स ब्राडकास्ट हुई थी।

आपका सस्नेह
ग मा मु

[8]

नागपुर
1 2 58

भाई मेरे

आपका पत्र यथासमय मिल गया था। मेरा जनवरी महीना बहुत ही बुरा कटा। कई मुसीबतो म फँस गया था, यहाँ तक कि आराम तक का समय नही

मिलता था। अभी भी हालत लगभग वैसी ही है। इसलिए, अब तक मैं कोई चीज़ सोच नही पाया, कोई बात देख नही पाया, और किसी बात में रुचि नही रही। **नया खून** की नौकरी रात को डेढ़-डेढ दो-दो बजाती है। शरीर मे शक्ति का अभाव है। जब तक यह नौकरी छोड नही पाता, तब तब हालत ऐसी ही रहने वाली है। स्वास्थ्य एकदम चौपट है और बडी-बडी फिक्रें लग गयी हैं। नरेश जी को कह देना कि मुझे उनकी बात याद है और वह यथासमय हो जायेगी। **नया खून** मे आपकी पुस्तक की आलोचना बराबर हो जायेगी। अगर मुझे वह पुस्तक समर्पित न की गयी होती, तो आलोचना कभी की हो गयी होती। क्या आपने अपनी कविता-पुस्तक की एक प्रति रामकृष्ण को भेज दी ? कहने की आवश्यकता नही कि न केवल मुझे आपकी कविताऐं पसन्द हैं, वरन् उनमे एक militant quality है। मैं नही समझता कि इस militant quality को छोड देना चाहिए, सौन्दर्य और सौष्ठव के नाम पर। आशा है, आप भी इस quality के महत्त्व को नही भुलायेंगे।

रायपुर से शशि पाण्डे का मेरे पास कोई पत्र नही आया है। मुझे उनका पता भी नही मालूम।

वैसे, लिखने की महत्त्वाकांक्षा बहुत है। मन मे बहुतेरी बातें लगातार उठती रहती हैं। लेकिन, अभी तक कुछ नही कर सका हूँ।

इतनी जल्दी तो मैं अपनी कविताएँ आपके पास भेज नही सकूँगा। कम-से-कम मुझे पन्द्रह दिन का अवकाश चाहिए। नरेशजी को सस्नेह प्रणाम कहें। शायद, मैं इस महीने मे उनकी आलोचना पूरी कर लूँगा। बाकी सब कुशल है। अपने हाल-चाल लिखें। अनिल कुमार दो महीनो के लिए लखनऊ पहुँच गये हैं। शेष कुशल है। अपना हाल लिखें।

आपका
ग मा मुक्तिबोध

[9]

नागपुर
2 4 58

प्रिय श्रीकान्त,

आपके सभी पत्र मुझे यथासमय मिल गये थे। एप्लिकेशन फॉर्म भी। आपने कोई अन्य नौकरी की तजवीज़ की है या नही। इस ओर ध्यान् देना बहुत ज़रूरी है। लोग पहले अपने जीवन मे आर्थिक स्थायिता प्राप्त करते हैं फिर मैदान मे कूदते हैं। हम लोग इसके विपरीत काम करते है। नरेशजी के क्या हाल हैं ? उनका लखनऊ जाना क्या हुआ ! ! मजे में तो हैं ?

इधर, जैसा कि आपको मालूम है, मैं काफ़ी उलझनो मे रहा। पिछले दो-तीन महीनों म सिर उठाने को फुरसत नही मिली। साहित्य बैठे-ठालो का काम है। फुरसत की [illegible] न ज़रूरी पत्रो का उत्तर भ [illegible] ादि। यहाँ तक अस्त-व्यस्तत [illegible] दिवाकर मेयो अस्पताल मे गत पन्द्रह दिनो स पड़ा हुआ है।

हम लोग घरबारी आदमी हैं, और हमारी सबसे बडी महत्त्वाकांक्षा यही है कि सब लोग कुशल मे रहे। इसी योग-क्षेम के संघर्ष मे रहने के कारण हमे अर्थ- [illegible]

[illegible]

अच्छा लगा।

उधर, राजनांदगांव मे मैं लेक्चरर होने की कोशिश कर रहा हूँ। खयाल है [illegible]

मिला करेगा।

कामायनी की आलोचनावाली मेरी लिखी पुस्तक आपके पास है। बनारस से पत्र आया है कि उन्हें प्रकाशक मिल गया है, जो वह पुस्तक छापने के लिए बिलकुल तैयार है। कृपया आप उस पुस्तक को लौटती डाक से रजिस्टर्ड पोस्ट द्वारा भेज दें। बडी सुविधा होगी। आशा है आप प्रसन्न हैं।

आपका
ग. मा. मुक्तिबोध

[10]

नागपुर
12-5-58

भाई मेरे,

यह सुनकर दुख हुआ कि आप भी बीमार रहे। अब तबीयत कैसी है।। इधर, हमारे घर मे भी एक न एक दुखदायी बात खडी हुई है। दिवाकर मेयो अस्पताल था, वापस आया, फिर बदस्तूर पहुँच गया है।

आप अवश्य इधर आइए। मिले बग़ैर दिल्ली जाइए नही। मई के अन्तिम सप्ताह मे यहाँ आपका इन्तज़ार रहेगा। आप दो-एक रोज मेरे यहाँ ठहरेंगे। कृपया पत्र का उत्तर दें। मैं आपके पुराने पते से पत्र लिख रहा हूँ। आशा है, पहुँच जायेगा। पत्र का उत्तर अवश्य देंगे।

आपका
ग मा. मुक्तिबोध

[11]

नागपुर
2-6-58

भाई मेरे,

आशा है, आप सकुशल दिल्ली पहुँच गये होंगे। इधर, राजनांदगांव की एक सूचना के अनुसार, इण्टरव्यू की तारीख 10 जून है। इसका मतलब यह है कि अगर आप मेरे बारे मे छपे cuttings और प्रभाकर माचवे द्वारा लिखा गया लेख

तथा ऐसी अन्य सामग्री भिजवा दें, तो बड़ी कृपा होगी। इसकी तत्काल आवश्यकता है। वह सामग्री जितनी अधिक भिजवा सकें, उतनी ही मेरी case मजबूत होगी। नौकरी का मामला है, इसलिए जोर देकर कह रहा हूँ कि कृपया जल्दी कीजिए। पत्र घर के पते से लिखें।

आपका सस्नेह
ग. मा. मुक्तिबोध

[12]

नागपुर
14-6-58

भाई मेरे,

आपके पत्र ने मुझे चक्कर में डाल दिया। नेमिजी का कोई पत्र मेरे पास नहीं पहुँचा है। नेमिजी ने जो पुस्तकें मुझे दी थीं, उनमें भी उनकी कोई चिट्ठी मुझे नहीं मिली। मैंने उन्हें एक चिट्ठी आपके हाथ भिजवायी थी। उसका उन्होंने अब तक कोई उत्तर नहीं दिया था, या यों कहिए शायद, मुझे मिला नहीं। आपने जिस नौकरी का जिक्र किया, उसके बारे में मैं आप ही से सुन रहा हूँ। किन्तु, वह नौकरी क्या है, कहाँ है, इसके बारे में मुझे कुछ पता नहीं। नेमिजी से कहें कि उनका पत्र मुझे नहीं मिला। उन्हें मेरे घर के पते से पत्र लिखने को कहें।
(राजनांदगाँव का मामला पक्का होता जा रहा है।)

पत्र की प्रतीक्षा में

आपका सस्नेह
ग. मा. मुक्तिबोध

[13]

नागपुर
14-8-58

श्रीकान्त भाई,

लेख मैंने कल यहाँ से रवाना किया। मुझे कई बार रिकास्ट करना पड़ा। तब उसकी शेप बनी। लेख को वैसे ही टरका देना मैंने उचित नहीं समझा। इसी काम में देर हो गयी। पता नहीं, आपके निश्चित समय में पहुँचेगा या नहीं। मैं यहाँ से कल राजनांदगाँव जा रहा हूँ। सितम्बर के पहले हफ्ते में, परिवार को वहाँ ले जाऊँगा। तब कहीं सुस्थिर हो सकूँगा। आपने बड़ा अच्छा किया कि शमशेरवाला मेरा पुराना लेख जल्दी भेज दिया। यदि उसके पूर्व मिल जाता तो काम पहले ही शुरू हो जाता। नेमिजी को पत्र लिख रहा हूँ। नरेश भाई के पत्र से काफी प्रोत्साहन और ममता मिली। उनका बड़ा स्नेह है। उन्हें भी दूसरा पत्र लिख रहा हूँ। अपने हाल लिखना। राजनांदगाँव में सुस्थिर होने के लिए काफी समय लगेगा। बहुत महँगा शहर है। हर चीज की दिक्कत है। मकान अभी तक मिला नहीं है। अपने हाल लिखना। प्रयत्न करने से कृति अवश्य अच्छी निकलेगी।

सस्नेह
ग. मा. मु.

कालूराम चितलाग्या भवन
बसन्तपुर, राजनांदगांव
17 8 59

बन्धुवर,

इस बात का क्या explanation हो कि मैं आज तक आपके पत्र का उत्तर न दे सका। यदि मेरी प्रतिज्ञा में आपको विश्वास हो सके तो मैं यह कहना चाहूँगा कि अब मैं यथासमय आपके पत्रों को लम्बे समय तक अनुत्तरित न रखूँगा।

आपका लेख मुझे पसन्द आया। राजनैतिक स्वर, जो मेरे काव्य में प्रच्छन्न रूप से विराजमान रहता है, आपने पहचाना। वह स्वर, वस्तुत, एक महत्वपूर्ण किन्तु गोपन विशेषता है जो मेरे काव्य को रूप देती रही है। कभी-कभी सोचता हूँ कि मैं स्वयं अपनी कविताओं की व्याख्या करूँ। इस स्वर की ओर ध्यान खींच- [illegible] सम्बन्ध में भी जो आपने लिखा, वह [illegible] पत्र द्वारा क्यों न सही, आप मेरी [illegible] जिससे कि मुझे सहायता मिल सके। रस्मी तौर पर मैं यह नहीं कर रहा हूँ।

दूसरे, मैं यह चाहता हूँ कि वस्तुत मुझे सहायता हो। यह मैं जानता हूँ कि स्वयं आलोचना की भी सीमाएँ क्या होती हैं। किन्तु, जब आलोचना हितैषियों की ओर से होती है, तब उसमें नये-नये रत्न प्राप्त होते हैं।

मैं, हाल ही में, इलाहाबाद गया था। आशा ही थी कि आपसे और नरेश से भेंट होगी। नरेश आये नहीं। बड़ी निराशा हुई। आपको, शायद, बुलाया नहीं गया था। शमशेर, श्रीराम वर्मा, मलयज से भेंट हुई। नयी कविता का ताजा अंक आपने देखा होगा। प्रतिक्रियाएँ लिखिए। कृति मेरी अपनी पत्रिका है। इसलिए, उस पर सहज स्नेह होना स्वाभाविक ही है। उसमें कविताओं का चयन बहुत अच्छा रहता है। लेखों की संख्या अधिक चाहिए—विशेषकर उन लेखों की जिनका सम्बन्ध नये प्रश्नों से है। स्तम्भ बहुत अच्छे रहते हैं।

बोरिस पैस्टरनैक पर अगर आपने अदीब का लेख छापा तो दूसरे पक्ष से भी लिखवाया जाना चाहिए था। कभी-कभी आप लोग राजनैतिक प्रश्न भी छेड़ देते हैं। मैं तो इस पक्ष में हूँ कि राजनीति साहित्य से अलग नहीं की जा सकती। किन्तु, यदि आप भी यह मानते हैं, तो मुझे खुशी है। ऐसी स्थिति में यह सोचता हूँ कि कृति को प्रगतिशील राजनैतिक दृष्टि अपनानी चाहिए।

कृति के सम्बन्ध में कोई काम फौरन दिया कीजिए। मेरे पत्र की राह मत देखा कीजिए। वैसे, मैंने इन दिनों काफी काम किया है—पिछले छह महीनों में तीन लम्बी कविताएँ लिखी हैं, आदि-आदि।

मैं यहाँ स्वस्थ हूँ। माता-पिता मेरे पास आ गये हैं। जिम्मेदारियाँ बढ़ गयी हैं। पैसे कमाने के चक्कर में हूँ। हैक-वर्क में बहुत समय चला जाता है।

नरेशजी आ गये हैं क्या? अगर आप, किसी ढंग से, कुछ दिनों के लिए, रुपये दिलानेवाले काम की तजवीज करके दिल्ली बुलवा सकें, तो मैं गरमी की छुट्टियाँ आप ही लोगों के पास गुजारा करूँगा। बहुत कुछ जानना चाहता हूँ। बहुत कुछ सीखना चाहता हूँ।

कृति के सम्बन्ध मे विशेष रूप से नरेशजी को भी लिख रहा हूँ। पत्र का उत्तर अवश्य दीजिए।
पुनश्च आप इधर कब आ रहे है।

आपका ही
ग. मा मुक्तिबोध

[15]

राजनाँदगाँव
18 10 59

बन्धुवर,

बहुत दुख हुआ। आपने अपनी नौकरी के बारे मे कुछ भी नही लिखा है। इधर बहुत-से कॉलेज खुल रहे हैं, और भी खुलेंगे। यदि इच्छा हो और ध्यान दे सको तो मैं सूचित करता रहूँगा। इस समस्या की ओर मैं अपने अन्य साथियो का भी ध्यान दिलाऊँगा, बशर्ते कि आप तैयार हो। जिन्दगी के बारे मे कुछ खास फैसले हो जाना जरूरी है। उन्हे कर लो।

लगभग डेढ महीने से मैं अस्वस्थ रहा। गर्दन के आस-पास की glands फूल गयी थी। चेहरा विकृत हो गया था। बुखार का दौर था ही। अब कुछ अच्छा हूँ। चेहरा अभी भी बिगडा हुआ है। कुछ समय और लगेगा अच्छा होने म।

इसी बीच, आपके पत्र आये, अन्य मित्रो के भी। क्या जवाब देता!!

आप कृति निकाल रहे हैं। वह कब तक चलेगी? क्या एकाध साल और चल सकेगी? या क्या? कृति के सम्बन्ध मे अधिक सूचित करें। मानकर चलिए कि मैं कृति के लिए कुछ न कुछ भेजता रहूँगा, हर महीने **विशेषकर अब**।

एक कविता भेज रहा हूँ। यूँ कहिए कि वह एक गद्यात्मक अन्तर्कथा है। पता नही पसन्द आयेगी या नही। बहुत सकोच होता है। इसीलिए, मैं कविता भेज नही पाता। लेखक का अपनी वस्तु पर प्रेम रहता ही है। आगे, आप जानें।

हाँ, एक बात और। **इस कविता की कोई प्रतिलिपि मेरे पास नहीं है।** फेअर करने मे वह लगातार सशोधित होती गयी। अगर इसकी एक और कापी अपने लिए बनाऊँगा तो और देर लग जायेगी। इसीलिए, वैसी ही भेज रहा हूँ। यदि पसन्द न आये तो लौटा देना।

पिछले एक-डेढ वर्ष मे मैंने चार लम्बी लम्बी कविताएँ लिखी हैं। वही मेरी उपलब्धि है। उनसे गुँथा होने के कारण मैं कोई अन्य कार्य नही कर सका। उनके मारे, सब छूट गया था। असल मे, वे जीवन की उलझनो के समग्र-चित्र हैं। आपने अपनी आलोचनाओ मे जो बातें कही थीं, उनका भी मैंने ध्यान रखा है। अब, आगे चलकर, शायद, मैं कोई कविता नहीं लिखूँगा, कविता न लिखने का प्रयत्न करूँगा। उसमे बहुत समय जाता है। कविता फेअर करने मे ही देर लग गयी। बडा वाहियात काम है, पर, बहुत आवश्यक है उसे करना।

वीरेन्द्र की अनागता मेरे पास आ गयी है। आप यदि उसे आलोचना के लिए और कही भिजवा देते तो अच्छा होता। दिल्ली म साहित्यिक लोग कम नही। वीरेन्द्र मुझे बहुत चाहते हैं, सच है। पर, इससे, मैं धर्मसकट मे पड जाता हूँ। वे भावुक भी बहुत है, इसलिए उनसे डर भी लगता है। मुझे, उनके स्नेह का पात्र

नहीं होना चाहिए।

खैर, अब चूँकि सिर पर आ ही गयी है, इसलिए कर दूँगा आलोचना। लेकिन वह अधिक ठण्डी होगी। ऐसा क्यों नहीं करते? प्रेमशंकर या माथुर के पास क्यों नहीं भिजवा देते?

नेमिचन्दजी को मेरी याद दिलाइए। उनसे आपके सम्बन्ध अच्छे तो हैं! मैं उन्हें अलग से चिट्ठी लिखूँगा। नरेश मेहता का इलाहाबादवाला पता अवश्य लिखिए। वे आजकल क्या कर रहे हैं!!

अपने बारे में अवश्य लिखिए। कृति के सम्बन्ध में विस्तृत रूप में बताइए। योग्य सेवा अवश्य करूँगा।

पत्रोत्तर की प्रतीक्षा में

आपका सस्नेह
ग मा मुक्तिबोध

पुनश्च यदि आलोचना के लिए कम से-कम एक महीना दे सकें, तो बहुत अच्छा होगा। वैसी चिट्ठी मैं वीरेन्द्र को लिख दूँगा।

पत्रोत्तर अवश्य दीजिए।

[16]

राजनांदगांव
5 11 59

भाई श्रीकान्त,

मैंने आपको एक पत्र लिखा था और कविता भी भेजी थी। कोई उत्तर नहीं आया। मुझे आपके पत्र की प्रतीक्षा रही। नरेशजी का इलाहाबादवाला पता भेज दीजिए। यदि कविता पसन्द न आये तो दूसरी भेज दूँगा। उसे आप वापस कर दें। कृति के वर्तमान भविष्य के सम्बन्ध में लिखें।

इधर, कुछ दिनों से मैं बहुत अस्वस्थ रहा। glands फिर बढ़ गयी थी। अब कुछ अच्छा हूँ, कालेज जा रहा हूँ।

वीरेन्द्रजी की चिट्ठी आयी थी। आपको ठीक एक हफ्ते बाद अनागता की आँखों की आलोचना भेज दूँगा। शेष कुशल।

उत्तर की प्रतीक्षा में।

आपका ही
ग मा मु

[17]

राजनांदगांव
11 11 59

बन्धुवर,

मेरे पत्र का उत्तर न आने से फिक्र में पड़ गया हूँ। तबियत तो ठीक है? यदि मेरी कविता, जो पहले भेजी, पसन्द न हो तो दूसरी भेज दूँगा, वापस कर दीजिए। मैंने वीरेन्द्र को लिख दिया है। आलोचना कर रहा हूँ। Review करूँ

या पूरी आलोचना ? मैं दोनों के बीच की कोई चीज बना रहा हूँ। पत्र का उत्तर दें। अपनी तबियत तथा गतिविधि का हाल दें।

आपका सस्नेह
ग. मा मु

[18]

राजनांदगांव
19 2 60

बन्धुवर,

आज कविता रजिस्टर्ड लैटर द्वारा आपके पते से भेज दी गयी है। उसके पीछे, मैं लगभग डेढ़ महीने से मेहनत कर रहा था। पता नहीं कैसी है। पता नहीं मेरा स्वभाव कैसा है जो कविता के प्रथम-आदिम रूप से सन्तुष्ट नहीं हो पाता। डरते-डरते उसे भेजी है। कविता प्राप्त होने के बाद, पत्र अवश्य लिखियेगा। मुझे नरेश मेहता के लेख के प्रथम खण्डवाला अंक नहीं मिला। उसमें मेरी एक कविता छपी है। कृपया उसे भेज दीजियेगा।

आपने अशोक वाजपेयी द्वारा भेजा लेख छपने के लिए दे दिया, यह अच्छा नहीं हुआ। मैंने उसे रचना के लिए तथा सन्तुलन [के] लिए लिखा था। सन्तुलन वाले बहुत नाराज होंगे और व्यर्थ का तनाव पैदा हो जायेगा।

अपने काव्य-सौन्दर्य के सम्बन्ध में लिखा। प्रत्येक प्रकार का काव्य-सौन्दर्य, romanticism नहीं होता। Romanticism भिन्न-भिन्न लेखकों के हाथ में पड़कर भिन्न भिन्न हो जाता है। प्रत्येक प्रकार का romanticism वांछनीय भी नहीं है। प्रश्न romanticism का नहीं है। प्रश्न है एक विशेष सौन्दर्याभिरुचि की तानाशाहियत का अर्थात् उन सेन्सर्स का, जो उस सौन्दर्याभिरुचि ने एक खास प्रकार की काव्य की रचना के लिए लागू किये हैं। प्रश्न उस सौन्दर्याभिरुचि के औचित्य-अनौचित्य का नहीं, उनके द्वारा लागू किये गये कुछ censors का है। मुझे भय है—और मेरा अनुभव भी है कि ये censors केवल रूप-शिल्प के क्षेत्र में ही लागू नहीं किये जा रहे हैं, परन्तु तत्त्व के क्षेत्र में भी सक्रिय हो रहे हैं। किन्हीं तत्त्वों को निष्कासित, विवर्धित, परिवर्तित, संशोधित किया जा रहा है। विषय पृथक् है, यहाँ उसका पूर्ण उल्लेख भी नहीं हो सकता।

नयी कविता में न केवल गीतात्मकता है, वरन् नये कवियों ने 'गीत' के form को भी उठाया है। वात्स्यायनजी ने, गिरिजा कुमार माथुर आदि ने सुन्दर गीत भी लिखे हैं। गीत, as a literary form को उठा देना उचित नहीं। किसी literary form को destroy करने से वह destroy भी नहीं होगा। जो गीत आज प्रचलित हैं, उनका मूल्य अत्यल्प है। उसमें नये content की आवश्यकता है।

खैर, ये सब बहस-तलब बातें हैं।

21 2 60

अब तक आपके पास मेरी कविता पहुँच गयी होगी। लम्बी है। पता नहीं, आपको कैसी लगे। नामवरसिंहजी राजकमल के लिए कोशिश कर रहे हैं, यह

जानकर प्रसन्नता हुई। इधर मैं तारीख 27 को एक सम्मेलन के लिए भोपाल जा रहा हूँ। वहाँ से उज्जैन जाने का विचार है। तारीख पाँच तक यहाँ अवश्य लौट आऊँगा। पत्र का उत्तर दीजिए। प्रसन्न तो क्या होंगे, स्वस्थ तो हैं न!

आपका
ग. मा. मु

[19]

राजनांदगाँव
2.5.60

बन्धुवर,

[illegible]

scrutinize कर लें, कहीं उनमें उधार ली हुई गूँज और अनायास [illegible] छायाएँ तो नहीं हैं।

मेरे खयाल से श्री विनोद कुमार मेधावी तरुण हैं और उनमें विशेष काव्य-प्रतिभा है।

फिर भी, हीरे को गढ़ना होगा, चोटें जरूरी हैं। इसीलिए, मैं आपसे एक बार पढ़वा लेना चाहता हूँ।

यदि पसन्द आयी तो आप अवश्य प्रकाशित कीजियेगा। पत्र लिखियेगा। मुझे भी और एक चिट्ठी उन्हें भी।

यह पत्र मैं उन्हें बता चुका हूँ।

आपका
ग. मा. मु

[20]

राजनांदगाँव
13 5.60

भाई श्रीकान्तजी,

मैंने अपना लेख रजिस्टर्ड तरीके से आपके पास भेज दिया था। न उसका एकनॉलेजमेंट आया है और न आपसे उसकी प्राप्ति का पत्र ही। कृपया सूचित करें कि स्थिति क्या है!! मैंने नामवरसिंहजी के सम्बन्ध में भी, एक अन्य पत्र आपको लिखा था। उसका भी उत्तर नहीं आया।

आशा है, प्रसन्न हैं। पत्र का उत्तर देंगे।

आपका अपना
ग. मा. मु.

[21]

राजनांदगांव
1) जून 60

बन्धुवर,

आपके दोनों पत्र प्राप्त हुए। मैं इन दिनो कुछ अधिक व्यस्त था, इसलिए पत्र का उत्तर नही दे सका। मैं पन्तजी पर लिख रहा हूँ। तारीख आठ या नौ तक यहां से लेख रवाना कर दूंगा।

वीरेन्द्र की चिट्ठी फिर आयी। पन्तजी के लेख के बाद उन पर समीक्षा कर दूंगा और उसके अनन्तर केदारजी के संग्रह की। ये तीनों काम इसी महीने के अन्त तक हो जायेंगे। वीरेन्द्र की समीक्षा जल्दी ही छपनी चाहिए। पत्र का उत्तर दीजिए। मैं कुछ दिनो बाद, निबन्ध या डायरी लिखने का धन्धा छोड़ दूंगा, अपने commitments पूरे करने पर। बहुत सारे काम करने हैं।

आपका अपना
ग मा मु

[22]

राजनांदगांव
14 जून 1960

बन्धुवर,

आज ही पन्तजी पर अपना लेख समाप्त किया। देर तो हो ही गयी। यदि इसे न दे सको तो वापस कर देना इसलिए कि मुझे उसकी शीघ्र ही आवश्यकता होगी। आज पन्द्रह दिनों से उसी चक्कर में था। कई बार लिखा गया। मैं अपने को ही काटता रहता हूँ। इतना समय लगने पर वह पूरा हो सका। भयानक कष्ट होता है। पन्तजी या पन्तजी के भक्त शायद ही खुश हों। न उन्हें खुश करने के लिए, न उन्हें नाराज़ करने के लिए, मैंने उसे लिखा। मुझे आप लम्बी अवधि दिया करें, यानी कि पाँच-छह दिनों के अन्दर लेख लिखा जाना मुश्किल है।

मैं अपने कुछ कमिटमेंट्स पूरा किया चाहता हूँ। इस लेख के तुरन्त बाद, मैं अनागता की आँखें का रिव्यू करूँगा—रिव्यू नहीं समीक्षा। उसी प्रकार, केदारनाथजी की होगी, तुरन्त बाद। उसके अनन्तर, नरेश मेहता का नम्बर आयेगा।

फिर मैं, कुछ दिनों के लिए लेख लिखना स्थगित करना चाहता हूँ।

[illegible] आपकी चिट्ठी प्राप्त होने से, तबीयत हरी-भरी रहती है।

[illegible] प्रभाव के फलस्वरूप कहिए, मैंने [illegible] वर्तन कर डाली है। जबलपुर के उत्साही प्रकाशक, जो काफी होशियार और मुस्तैद कहे जाते हैं, उनसे वचन-बद्ध हो गया हूँ। पुस्तक भेज दी गयी है प्रकाशनार्थ। प्रकाशन बुरा नहीं होगा अच्छा होगा। बाक़ी ईश्वर की इच्छा।

आलोचनात्मक लेख जो मैं आगे लिखूंगा, वे, अधिकतर, स्टडीज़ ही होंगी।

मैं एक बात और कहना चाहता हूँ। आशा है, आप बुरा नहीं मानेंगे। कृति पर आपके सम्पादकत्व की छाप है, उस छाप का स्वयं ही अनादर न कीजिए। नवीनजी की जो कविताएँ आपने छापी उसमें प्रूफ की एक-सौ-एक गलतियाँ हैं। कविताओं का उनका संकलन अच्छा था, लेकिन प्रूफ की भूलों के कारण, सब मामला चौपट हो गया। इस सबकी बदनामी आपके सिर है। कुशल सम्पादक होना अच्छी बात होती है। वे कविताएँ अशुद्ध इसलिए थीं कि सम्पादक ने प्रूफ कतई देखे नहीं थे या छापेवालों ने आदेशों का पालन नहीं किया था। कृति का स्तर और-और बढ़ना चाहिए—सब दृष्टियों से। लेख नहीं मिलते, इसलिए फालतू चीजें न जायें।

यह मैं जानता हूँ कि आपके सामने मुसीबतें—तरह-तरह की—दस्तबस्ता हाज़िर होती हैं रोज़ सुबह और पूछती हैं कि कहिए क्या खातिर की जाये, क्या सेवा की जाये। लेकिन चूँकि आप ही ने उन्हें अपने तक आने की इजाज़त दी है, इसलिए अब आप ही उनसे सेवा लीजिए। इन मुसीबतों में से एक मुसीबत है, स्वयं कृति।

इधर, मैं अच्छा हूँ।

कल्पना में मेरी कविता छपी आपने देखी होगी। मैं यहाँ अकेला होने से मुझे तरह-तरह की आशंकाएँ घेरती हैं। मेरे लिखने के बारे में—कविता के बारे में, विशेषतः; सुझाव अवश्य दीजिए। आप कविता-संकलन भेजनेवाले थे।

आपका अपना
ग. मा. मुक्तिबोध

[23]

राजनाँदगाँव
12 नवम्बर [1960]

बन्धुवर,

क्षमा करें। यह नयी कविता है—बिलकुल ताज़ी। इसी के मोह में, पहले भेज नहीं सका। और, अब देर गयी। फिर भी, आपने उलटी डाक से भेजने को कहा। सो, आज शनिवार को दो बजे इसे रवाना कर रहा हूँ।

अगर हो सके, तो उसे विशेषांक में न देकर, अगले अंक के लिए रख दीजिए। कृपया प्रूफ की भूलें न हों, भले ही कुछ हो। मेरी इस प्रार्थना को स्वीकार कीजिए और बुरा न मानिए।

मेरा खयाल है, आपको यह कविता पसन्द आयेगी।

पूरे पत्र का उत्तर आज शाम को दूँगा।

आपका अपना
ग. मा. मुक्तिबोध

[26]

[9 5 61]

भाई श्रीकान्त

आपका पत्र मिल गया। अगल अक क लिए लेख भेजूगा। एक ही सूत्र को कुछ दिनो तक चलाना चाहता हू। कृति अवश्य अच्छी निकलगी आपक प्रयत्नो स। मेरे हाल क लेख म अन्तिम पैरेग्राफो म प्रुफ की बहुत गलतियाँ है। अथ का अनथ हो गया है। अपनी कुशल लिखिए। मुझ पहनेवाली मेरी कविता का अक भिजवाइए। मेरे पास वह अक नही है। उसम नरेश का लख भी है। पत्र का उत्तर दीजिए। आशा है आप प्रसन्न ह।

आपका अपना
ग मा मुक्तिबोध

[27]

राजनांदगांव
19 अगस्त [61]

भाई श्रीकान्त

आपका पत्र पाकर सन्तोप हुआ। प्रसन्नता हुई। सोच ही रहा था कि आपको चिट्ठी लिखूं। इतने मे आपका पत्र आ गया।

आज तक मैंने आपस काई व्यक्तिगत प्राथना नही की है लकिन अब करने जा रहा हूँ। वह यह कि मेरे खयाल से (आप क्षमा करेंगे) नरेश मेहता द्वारा की गयी कृति की सेवा का आदरपूवक विशेप उल्लेख प्रस्तुत अक म होना अवश्य चाहिए। आपके उनके बीच एकदम क्या हो गया मैं नहीं जानता न मुझ किसी ने बताया। लेकिन ऐसा कुछ किया जाय जिससे व्यक्तिगत सम्बन्ध न टूटें और शालीनता तथा शिष्टता के स्तर पर (कम से कम) मधु भाव बना रहे। वे आपके भी अत्यन्त निकट रहे मेरे भी। ऐसी स्थिति मे मुझ यह सोचकर दु ख होता है कि मेरे दो आत्मीयो म बेवनाव पैदा हो गया।

जो हो। यह होनेवाला था। लकिन यदि नरेशजी की कृति सम्बन्धी सवाओ का विशेप उल्लेख स्पष्टतापूवक यदि हो गया तो कम से कम यह तो रहगा कि आपके उनके बीच कोई बेवनाव नही है दूरी भले ही रहे। शील और सदभाव का यही तकाजा है।

आपको अपना जानकर यह लिखा है यदि आप मेरे न होते तो शायद कभी न लिखता। आशा है आप मेरी बात सुनेंगे। पत्र का उत्तर देंगे।

कृति का नया रूप देखने के लिए उत्सुक हूँ। समीक्षाओ के लिए दो पुस्तकें जो आपने भेजी हैं उन्हे जल्दी ही भेज दूगा। निश्चिन्त रहे। मुझ आठ दिन तो और दीजिए। कविताएँ भी भेजूगा। आशा है पत्र का उत्तर अवश्य देंगे।

आपका ही
ग मा मु

[28]

[24 1.62]

भाई श्रीकान्त,

आज से लगभग एक महीने पहले मैंने कान्ताजी और कुँवर नारायण की पुस्तकों के reviews आपके पास भिजवाये थे। आपकी प्राप्त-स्वीकृति भी नहीं मिली, न कृति का अंक ही। सम्भवतः, कृति पर कोई संकट आ गया, जिसका संकेत आपने दिया अवश्य था, किन्तु reviews भी मँगवाये थे। कृपया सूचित करें क्या स्थिति है।

आपका कैसा चल रहा है, विस्तार से बतायें। सम्भव है, रिव्यूज़ आपको पसन्द न आये हों, तो मुझे सूचित करने में कोई हर्ज तो नहीं है।

आशा है, पत्र आप अवश्य देंगे।

स्नेहपूर्वक
आपका ही
ग. मा. मु

[29]

राजनाँदगाँव
14 नवम्बर [63]

प्रिय श्रीकान्त भाई,

बहुत पहले आपकी चिट्ठी आयी थी। कल्पना में आपका लेख भी ध्यान से पढ़ गया। हृदय के बहुत तीव्र आवेग से आपने उसे लिखा था। उसी के इर्द-गिर्द, लहर के विश्व काव्य वाले अंक में आपकी कविता पढ़ी।

तब से आपके बारे में सोचता ही रहा। वह कविता निस्सन्देह पढ़नेवाले में दर्द पैदा करती थी। इसीलिए, सोचना पड़ा। शायद ही, ऐसी दर्दवाली कविता मैंने हिन्दी में पढ़ी हो। अगर सिर्फ़ दर्द ही दर्द होता तो शायद सोचने को मजबूर न होना पड़ता। उसमें एक भयानक निराशा का स्वर था। यह बात ज़रूरत से ज़्यादा चुभी कि मूर्ख सोचते हैं कि हमारा कोई देश है, हमारा तो कोई देश नहीं। मैंने इसका अर्थ यही लिया कि एक विशेष मन:स्थिति में यह बात कही गयी है। और, उस मन:स्थिति के सन्दर्भ से ही वह बोलती है।

उस कविता को पढ़कर आपकी ज़िन्दगी का ख़याल आना स्वाभाविक था। छत्तीसगढ़ का यह मेरा प्यारा कवि क्या का क्या हो गया, (आपके जीवन के सम्बन्ध में चिन्ता सताने लगी) उस छत्तीसगढ़ में, जहाँ मुझे मेरे प्यारे छोटे-छोटे लोग मिले, जिन्होंने मुझे बाहों में समेट लिया, और बड़े भी मिले, जिन्होंने मुझे सम्मान और सत्कार प्रदान करके, संकटों से बचाया। मैं उन्हीं के कारण— आप सबके कारण—हाँ, आपके कारण, मनुष्यता में विश्वास खो नहीं पाता—मैं सैद्धान्तिक बात नहीं कर रहा हूँ। उस छत्तीसगढ़ का मैं ऋणी हूँ, जिसने मुझे और मेरे बाल-बच्चों को शान्तिपूर्वक जीने का क्षेत्र दिया। उस छत्तीसगढ़ की भूमि ने जो अत्यन्त प्रतिभाशाली पुत्र पैदा किया, वह दिल्ली जाकर—इतना अधिक विपद-ग्रस्त हो गया कि दुःख होता है।

अपना रोना नहीं रोऊँगा। तीव्रतम मनुष्य-निर्मित निराशात्मक परिस्थितियों

मे रहनेवाले मुझ-जैसे के हार्दिक अन्धकार की जो आँखें हैं, वे उस कविता के दर्द को पहचानती हैं, लेकिन नहीं चाहती कि ऐसी हालत आप म रहे।

इस तरह देखा जाये तो वह कविता अत्यन्त प्रभावोत्पादक है। उसका विन्यास, उसका गठन, उसकी शब्द-रचना एकदम निराली। मैं तो दंग रह गया।

लहर के ताजे अंक मे, दूसरी कविता भी देखी। उसम भी वही बात है, फ़र्क यह है कि उसम cynicism अधिक है और सघनता पहलेवाली कविता जैसी नही है। फिर भी, एकदम बेजोड और निराले ढंग की कविता है वह।

यानी कि एक हालत चल रही है, जारी है एक जीवन-दशा, एक मनोदशा, एक मनोधारा। काश, मैं आपके पास होता तो सम्भवतः ज्यादा जान सकता!!

ज्ञानोदय का यह अंक देखने को मिला, जिसम आपने नामवरसिंह को तेज-तेज जवाब दिया था। पिछले अंक देखने को नहीं मिले, जिनमे उनका लेख है। मैंने मँगवाये हैं। उनके बारे म, कल्पना वाले शिवदानसिंह चौहान पर लिखे आपके निबन्ध के सम्बन्ध म फिर लिखूंगा, लेख रूप म, कभी किसी वक्त।

आशा है अपने बारे म आप कभी लिखेंगे और मेरी किसी बात का बुरा न मानेंगे।

आपका ही
ग मा मुक्तिबोध

[30]

राजनांदगाँव
5 फरवरी [1964]

प्रिय श्रीकान्त भाई,

आपका पत्र मिले एक अर्सा हुआ। इस बीच, मैं जबलपुर गया और आपके सम्बन्ध मे काफी चर्चा होती रही। इसम सन्देह नही कि आपकी कविताओं ने लोगों म कुहराम मचा दिया है। यह उनकी (कविताओं की) शक्ति का प्रमाण है। जबलपुर से लौटने पर मैं बहुत बीमार पड़ गया। चलने म सोने म, यहाँ तक कि लिखने मे भी चक्कर आते रहते हैं, खूब चक्कर आते रहते हैं। इनके कारण छोटी मोटी दुर्घटनाओं का भी शिकार होता रहा। अपने स्वास्थ्य के सम्बन्ध म भयानक और विकृत सपने आते रहते हैं। बहुत दुर्भाग्यपूर्ण अपने को महसूस करता हूँ। रात है, नीद नहीं आ रही है। आपकी याद आयी, आती रही। इसलिए कसम लेकर बैठा हूँ और जैसे-तैसे विचार आते हैं, आपके सामने प्रस्तुत कर रहा हूँ।

नागपुर के मित्रों म सर्वाधिक विश्वास (काव्य-सम्बन्धी) मेरा आप ही पर रहा, यह कहने की जरूरत नहं
स्थल होता है जहाँ मनुष्य सब
प्रश्न परिप्रेक्ष्य का है, जहाँ तक
लेकर, उनके घेरे म बँधकर, उक्त कवि के स्वरूप विश्लेषण की ओर जाता हूँ। इसीलिए, मैंने तुरन्त ही अपनी प्रतिक्रियाएँ आप तक पहुँचायी। और उसके बाद ही, आस-पास के जीवन जगत् मे देखने लग गया कि आखिर कौन कौन Cynicism बतला रहा है, वास्तविक विचार और व्यवहार म। और मैं बताऊँ कि ध्यान से देखने पर पता चला कि अच्छे से अच्छे आदमी की भी यही हकीक़त है। हमारे

बहुत-से विद्यार्थियों में भी यही भाव देखा जाता है। कारणों की तरफ़ इस समय हम न जायें। लेकिन असलियत यह है कि मनुष्य Cynical हो रहा है, विचारों में, भावों में। और, सबसे दिलचस्प बात यह है कि वे अच्छे लोग हैं, मदद के लिए दौड़ पड़ते हैं, प्रेम प्रदान करते हैं, प्रेम-सामर्थ्य बहुत अधिक है एक अन्त:सन्निहित मानव-सुलभ कोमल भावना रखते हैं, और अधिकतर कार्यों में उसे व्यक्त करते हैं। किन्तु भाव विचारों के क्षेत्र में आकर वे Cynical हो जाते हैं। असल में यह Cynicism उनकी सभ्यता-समीक्षा है। आज की वस्तु-स्थिति के प्रति एक अतिरेक-पूर्ण प्रतिक्रिया है, वैचारिक आवरण में। यह सुविचारित नहीं है। यदि वह व्यापक जीवन निरीक्षण और समृद्ध चिन्तन के फलस्वरूप होती तो और ही चीज़ होती। किन्तु मुझे पक्का विश्वास है कि वे लोग अधिकाधिक अर्थात् वैविध्यपूर्ण अनुभव-सम्पन्नता के साथ ही साथ उसे त्याग देंगे। उन्हें त्यागना होगा। ज़िन्दगी उन्हें इस बात के लिए मजबूर करेगी।

[अपूर्ण]

[31]

राजनांदगाँव
7 फ़रवरी [64]

प्रिय श्रीकान्त,

आपका पिछला पत्र इतना महत्त्वपूर्ण था कि सोचता था फ़ुरसत से उसका उत्तर दूँ। इसी बीच, एक असामान्य दुर्घटना हो गयी। मेरे शरीर के बायें हिस्से को पक्षाघात का शिकार होना पड़ा। विस्तार में नीचे उतरना मुश्किल है। डाक्टर ने एकदम पूरे विश्राम की सलाह दी है। सिर्फ़ उसके injections पर जी रहा हूँ। लगभग महीने भर के बाद, ठीक हो जाऊँगा, ऐसा उसका कहना है। जीने और काम करने की आशा नहीं छोड़ी है। पुरानी आदतें वैसी ही बनी हुई हैं। उसने बीड़ी न पीने को कहा है, लेकिन अपनी सकल्प शक्ति को धूम्रपान के आगे निर्बल पा रहा हूँ। फिर भी प्रयत्न तो करना ही होगा।

आपका पत्र अत्यन्त महत्त्वपूर्ण था। मुझे पक्का विश्वास है कि आप अपने अनुभवों को तटस्थ भाव से शब्द-बद्ध करेंगे तो साधारण जनों के जीवन को आप मूर्तिमान कर डालेंगे। आपसे मिलने की बड़ी तबियत है। कल्पना के द्वारा मैं आपके घर आ भी जाता हूँ। लेकिन, कल्पना वास्तविकता का स्थान नहीं ले सकती।

आपके पिछले पत्र का यथावत उत्तर देने का प्रयत्न करूँगा।

अभी इतना ही।

आपका ही
ग मा मुक्तिबोध

राजनांदगांव
[20] फरवरी [64]

प्रिय श्रीकान्त भाई,

आपके पत्र के उत्तर के लिए कहाँ से शब्द खोजूँ। केवल इतना ही कह सकता हूँ कि आपके प्रेम को प्राप्त करने की वास्तविक पात्रता यदि मुझमें उत्पन्न हो सके तो मैं अपने को धन्य समझूँगा। हम अपने समय से निपटने के लिए समर्थ हैं—यह स्फूर्तिमय आशावाद, मेरे लिए विशेष रूप से हृदय-स्पर्शी है जबकि मेरी संघर्ष करने [की] शक्ति बराबर घटती जा रही है। केवल आप लोगों की मानसिक छवियाँ देखकर प्रेरणा इकट्ठा करने का प्रयत्न करता हूँ, और चाहता हूँ कि अपने जीवन के शेष काल को अधिकाधिक सार्थक बना सकूँ। केवल इतना ही कह सकने की स्थिति में हूँ।

इन दिनों स्थानीय Christian Fellowship Hospital के एक डाक्टर [से इलाज] करवा रहा हूँ। उसका भी कहना है कि एक महीने के भीतर मैं अच्छा हो जाऊँगा।

बिलासपुर के रामबाबू सन्यालिया ने मेरे पास सवा सौ रुपया भिजवाये हैं, सम्भवतः यह आपकी प्रेरणा से है। कृतज्ञ हूँ।

आपसे, आप लोगों से पैसों को आखिर क्यों न स्वीकृत करूँगा केवल इसी बात का ध्यान रखियेगा मेरी बीमारी की विज्ञापना न हो, करुणा-भाव उत्पन्न करने के लिए ताकि एक लेखक की सहायता हो। ऐसा न करना भाई, जिससे मेरी स्थिति जो वस्तुतः दयनीय है करुणा-जनक भी हो उठे। मैं अपने रोग के नाम से कोई चन्दा नहीं चाहता। वैसे, दिल्लीवालों से जो भी सहायता मिलेगी, मैं अवश्य स्वीकार करूँगा। आखिर उस मदद की जरूरत तो हुई है।

आपका ही
ग मा मुक्तिबोध

विष्णुचन्द्र शर्मा के नाम

[1]

नागपुर,
230, भारती भवन, तेलघानी रोड,
गणेश पेठ, नागपुर
26 1 57

भाई मेरे,

क्षमा करें। पत्र का उत्तर देने में देर हुई। इधर मैं बीमार भी था, और दूसरे, आपने नागपुर रेडियो के पते पर पत्र लिखा, सो घूमता-घामता मेरे आफिस

के डेस्क [पर] पडा रहा। मैं आजकल यहाँ के साप्ताहिक पत्र का सम्पादक हूँ।

चन्द दिनो मे, कविताएँ भेज रहा हूँ। पता नही मेरी कविताओ से कहाँ तक आपको सन्तोष होगा, जो बडी कविताएँ हैं सचमुच वृहदाकार है और आपके काम की नही। अपनी समझ से छोटी कविताएँ भेज रहा हूँ।

आपका पत्र मैंने देखा, सचमुच अच्छा है। छोटे भाई की मराठी कविताओ का अनुवाद करवाकर भेजने की कोशिश करूँगा। मराठी बहुत ठेठ जबान है। हिन्दी म जो अनुवाद निकलते हैं, चौपट होते हैं।

श्री नामवरजी को मेरा स्मरण करवाइयेगा।

आशा है आप सानन्द हैं।

आप ही का
ग म मुक्तिबोध

[2]

[1957]

भाई मेरे,

मैं क्षमा-प्रार्थी हूँ। राज्य-पुनर्गठन, अदलाबदल, चुनाव, बीमारी आदि-आदि बातो ने जरा भर भी फुरसत नही दी—ऐसी फ़ुरसत कि एकाग्र होकर एक काम [illegible]

[illegible] कविताएँ [illegible] वे आपके पास सुरक्षित रहेंगी।

मेरे छोटे भाई की कविताओं के सम्बन्ध मे, मैंने उन्ही से बातचीत की थी। वे स्वय अच्छी हिन्दी जानते हैं। अनुवाद कर लेंगे, मुझे वे दिखा देंगे, मैं देख-परख लूंगा। यदि हो सके तो कृपया आप इम पते से उन्हे पत्र लिखें।

श्री शरच्चन्द्र मुक्तिबोध,
जोशीचा वाडा
रामजी की गली
महाल, नागपुर

अपनी कविताएँ आपके पास एक-दो रोज के भीतर रवाना हो जायेंगी। यदि कारणवश आप उनका उपयोग न कर सकें तो कृपया उन्हे सुरक्षित रूप से अवश्य लौटा दें।

आप से क्या कहें। हम दोनो भाई राज्य-पुनर्गठन की चपेट मे नौकरियो से हाथ धो-बैठे या तकलीफ उठा चुके हैं। आप के उधर, हिन्दी के लेक्चरर की कोई जगह है?

भाई की सरकारी नौकरी भी जो अभी यदि है, कै दिन की है, कहा नही जा सकता।

निवेदन की जरूरत इसलिए पडी कि इससे आप समझ लेंगे हम किस 'संक्रमण' मे से गुजर रहे हैं।

आपका ही
ग. मा. मुक्तिबोध

[3]

नागपुर
2 4 57

भाई मेरे,

देर के लिए क्षमा करें। चार कविताएँ भेज रहा हूँ। इससे ज्यादा छोटी तो मिलना मुश्किल है। जो कविताएँ पसन्द न आयें, उन्हें आप वापिस जरूर करेंगे।

त्रिलोचनजी और श्री नामवर सिंह जी को मेरा हार्दिक नमस्ते कहें। आपके पत्र में 'विवेक' स्तम्भ के अन्तर्गत मुझ पर छोटी टिप्पणी देखी। धन्यवाद।

अगर नागरी प्रचारिणी सभा में मुझे जगह मिल सकती हो तो क्यों नहीं मुझे दिलवा देते।

यह पत्र नया खून एक स्वतन्त्र वामपक्षीय साप्ताहिक है, जिसमें मैं आजकल काम कर रहा हूँ।

वैसे, अध्ययन-अध्यापन की इच्छा है। हिन्दी में नागपुर विश्वविद्यालय से सेकेण्ड क्लास एम० ए० हूँ। आपको इसलिए बता दिया कि कोई जगह, खास तौर पर लेक्चरर की, नजर आये तो आप ध्यान रख सकें।

आशा है आप स्वस्थ और मजे में हैं।

कविताओं की प्राप्ति की स्वीकृति आप अवश्य दें।

आपका ही—
ग मा मुक्तिबोध

[4]

नागपुर
26-4-57

प्रिय विष्णुचन्द्रजी,

आपको किन शब्दों में धन्यवाद दूँ। आपने बड़ा आदर दे डाला !! मुझे खींच-खाँचकर, अथक रूप से बार-बार पत्र लिखकर कहाँ बैठा दिया। इतने अधिक ध्यान का विषय बनने का मैं कतई आदी नहीं हूँ। आपके इस सहज स्नेह और निस्वार्थ परिश्रम को मैं क्या कहूँ !! यही कह सकता हूँ कि यह मानवता का गुण है और वह स्वयं प्रकाशी है। उसके प्रति मैं हार्दिक रूप से नतमस्तक हूँ।

आप बुरा न मानें तो एक बात कहूँ। मेरी कविता जो आपने प्रकाशित की उसमें प्रूफ की बहुत-बहुत गलतियाँ हुई हैं। यह तो मेरी कविताएँ वैसे ही जड़ हैं, दूसरे यदि उनमें ऐसी भूलें रह जायें तो वे और भी अपाठ्य हो जाती हैं। आशा है, मेरी बात का आप कतई बुरा न मानेंगे।

अब एक दो काम की बातें। एक तो यह कि क्या आप कवि के उस अंक की एक और प्रति मेरे पास भिजवा सकेंगे, जिसमें नामवर सिंह जी [ने] मुझ पर लिखा है? हो सके तो अवश्य भिजवाइयेगा।

दूसरे, इस पत्र के साथ मैंने नामवर सिंह जी के लिए चिट्ठी रखी है। क्या कृपाकर उस चिट्ठी को आप उन तक पहुँचा दीजियेगा? उनका पता मुझे मालूम नहीं है। और, नामवर सिंह जी का पता मुझे भेज दीजियेगा।

इतना काम जरूर कर दीजिए। त्रिलोचनजी को नमस्ते कह दीजिए। यदि

बाक़ी बची मेरी कविताएँ आप न छापें तो अच्छा। यदि वे वापिस कर सकेंगे तो बुरी बात क्या है ! मैं इसलिए नहीं कह रहा हूँ कि प्रूफ की अशुद्धियाँ होती हैं, वरन् इसलिए कि अब उन्हें छापने में कोई सार नहीं। वैसे आप छापना चाहते ही हों तो बात बिल्कुल भिन्न है।

नामवर सिंह जी को साथ की चिट्ठी जरूर पहुँचा दीजियेगा।

आपका सस्नेह—
ग मा मुक्तिबोध

[5]

नागपुर
3 2 58

बन्धुवर,

आपका पत्र यथासमय मिल गया था। लेख लिखने की कोशिश करूँगा। लेकिन, वचन नहीं देता। विषय आपने अच्छे दिये हैं, इसमें सन्देह नहीं। लेख छोटा ही होगा। आशा है प्रसन्न हैं।

आपका
अपना—
ग मा मुक्तिबोध

[6]

नागपुर,
2 4 58

बन्धुवर,

आपका पत्र हाल ही में मिला। आपका विशेषांक अब तक प्राप्त नहीं हुआ। मिलने पर अवश्य अपने विचार लिखूँगा।

कामायनी वाली पुस्तक भी भेज रहा हूँ। कृपया लिखें कि कौन प्रकाशक है ? मेरे पास उसकी केवल एक ही प्रति है। खो जाने का डर लगता है। ऐसा न हो कि किताब भी चपले में पड़ जाए और मेरी भी। डरता हूँ। आज तक प्रकाशकों से मुझे सुख नहीं मिला है। इसलिए लिख रहा हूँ। आशा है, आप प्रसन्न हैं।

आपका सस्नेह—
ग. मा मुक्तिबोध

प्रमोद वर्मा के नाम

[1]

नागपुर
18 10 57

भाई मेरे,

आपका पत्र प्राप्त हुआ। सचमुच, बहुत खुशी हुई। आप मेरे बारे मे कितनी हार्दिक चिन्ता रखते है यह मुझे अपने अनुभव से मालूम है। आप राजनांदगांव कॉलेज म मुझे fix up करवा दीजिए। युनिवर्सिटी स्केल्स, जो एक हिन्दी लेक्चरर को लागू हो, मुझे स्वीकार है। 200 रु प्रतिमास तथा शायद D A 80 रु है—मुझे मजूर है। वेतन निश्चित समय पर नियमानुसार प्राप्त होना जरूरी है किन्तु उससे भी महत्त्वपूर्ण बात तीन महीने की वेकेशन की तनखाह मिलना है। मैं appoint किया गया तो दो साल निश्चित रहूँगा, इसका आश्वासन भी देता हूँ—यदि उपयुक्त समझें तो लिखित भी दे सकता हूँ। मैं बाल बच्चेदार आदमी हूँ। अब ज्यादा भटक-भटका नही सकता। सुस्थिर जीवन चाहता हूँ। साथ ही यह भी इच्छा है कि आर्थिक दृष्टि स हालत पस्त न रहे, इसीलिए appointing [illegible]

मुझे सब तरह स मदद करग—आवास-सम्बन्धी भी। लेकिन चूंकि फिलहाल वो बच्चे है इसलिए एकदम जिन्दगी की दूरदर्शिता उन पर दारोमदार डालने के लिए तैयार नही हो पाती थी। नही तो, जब वो यहाँ आये थ, मैं स्वय खुलकर उनसे बातचीत कर लेता। अगर राजनांदगांव कॉलेज मुझे खपा लेता है तो फिर मैं वही settle भी हो जाऊँगा। लिखन पढने की इतनी असुविधा मेरी जिन्दगी म रही है और इतनी शीघ्रतापूर्वक मैं स्थानान्तर और पदान्तर करता रहा हूँ कि उससे (शारीरिक मानसिक उन्नति तो छोडिए) भौतिक आवश्यकताओ की भी पूर्ति नही हो सकी है। अतएव, आप यदि कर सकते हो तो आप अवश्य राजनांदगांव कॉलेज मे fix up करा दीजिए। मेरे हित कहाँ है, क्या है ये आप स्वय समझते है। मुझे आशा है कि कोठारी जी भी वही करेंगे जो मेरे लिए अनुकूल और उचित होगा।

आपने डायरी के बारे मे लिखा, उससे नि सन्देह खुशी हुई। चूंकि मेरे पास यहाँ, वस्तुत , कोई नही है जो एकदम कुछ constructive सुझाव दे सके, इसलिए मैं बहुत डरते-डरते लिखता हूँ। बहुत बार वह मन लायक बन भी नही पाती। कभी लगता है उसे बडी कर दूं। लेकिन, फिर प्रतीत होता है कि कही वह निबन्ध न हो जाये। आप उसमे उठाई गयी बातो के सम्बन्ध म अवश्य कुछ सुझाव दें। यहाँ मैं एकदम वैक्यूम मे हूँ। इसीलिए आपका criticism चाहता हूँ उससे मुझे मदद ही मिलेगी। नि सन्देह, वसुधा पहले से ज्यादा अच्छी निकल रही है, लेकिन निबन्ध अभी उसके पार आ नही पाते। यदि आप लोग इजाजत दें तो मैं उसमे कुछ प्रश्न अलग स उठा दूं। चाहे तो मेरा नाम न दें। किन्तु मेरा एक छोटा-सा

आग्रह यह भी है कि अन्यत्र जैसे युग चेतना, नया-पथ आदि मे कभी-कभी मार्क्सवादी दृष्टिकोण से जो विचार-विमर्श अथवा आलोचनाएँ आदि होती हैं, उनका जवाब अथवा तत्सम्बन्धी ऊहापोह, कभी-कभी, मार्क्सवादी दृष्टिकोण से ही करने की मुझे सुविधा दी जाये। मैं यह सुविधा कभी-कभी ही चाहता हूँ। मार्क्सवादी दृष्टि भी एक दृष्टि है, किन्तु उसके अन्तर्गत भी काफी विवाद उठ खडे होते हैं। मेरा खयाल है कि इस प्रकार के लेखो से वसुधा स्वय अधिक आकर्षक होगी। आपका क्या खयाल है? मैंने यह सुझाव परसाईजी को भी दिया है।

वसुधा मे मैं स्वय बहुत ज्यादा interested हूँ—आप जानते ही हैं। अगर वह मध्यप्रदेश को स्वावलम्बी बना सके और अन्य प्रदेशो के पत्रो को चुनौती दे सके तो क्या बात है। यह, बिलकुल ही, सम्भावना के क्षेत्र के भीतर है। शुरू-शुरू मे, यदि बाहरी लेखक न लिख पायें न लिखें, लेकिन उन्हे उसकी आवाज की तरफ ध्यान देना पडेगा—यदि ऐसी स्थिति आती है, और वह नि सन्देह आनेवाली है, यहाँ एक बहुत बडा काम हो जायेगा। यहाँ के प्रान्त के ही नही, अन्य प्रदेशो के लोगो को इकट्ठा होना जरूरी है। आज नही तो कल उन्हे इस तरफ उन्मुख होना ही पडेगा।

आपने दीगर दोस्तो के बारे मे लिखा, मेरे पास भी मित्रो के पत्र बहुत कम आते हैं। किन्तु उनका हृदय हमारे पास ही है। अकोला मे मैं गया था, हाल ही मे। रामकृष्ण जैसे थे, वैसे ही हैं—अपने उतने ही निकट जैसे पहले थे, अन्तर इतना ही है कि जिन्दगी अब कुछ अलग परिस्थितियो मे बह रही है। किन्तु, उन्होंने आपको हरगिज भुलाया नही है। अकोला मे एक कवि सम्मेलन था तथा एक साहित्य परिषद का आयोजन। मैं परिषद के सिलसिले मे बुलाया गया था। विद्रोही जी और शिवकुमार श्रीवास्तव तथा रामकृष्ण विश्व जी से मुलाकात हुई थी। सभी मित्रो की चर्चा हुई थी। आपके बारे मे भी तो बात चली थी।

नर्मदा की सुबह के बारे मे आपकी बात बिलकुल ठीक है। उनकी राय भी आपकी जैसी ही है। लेकिन, मैं ढीला पड गया हूँ। प्रज्ञा प्रकाशनवाले जगदीशजी ने सस्कार प्रकाशित कर सब घपला कर दिया और खुद घपले मे पड गये। वे नागपुर मे नही हैं।

कामायनी के बारे मे जो मेरी मुद्रित पुस्तक है, वह नर्मदाप्रसादजी खरे अवश्य ले लें। सवाल यह है कि अपन कहने से क्या होता है!! अगर विनय मोहन शर्मा का जोर चल सकता हो तो क्या बात है!! आप अवश्य कोशिश करें।

वसुधा मे आपकी कृतियाँ बराबर पढता रहा। मुझे बहुत अच्छी लगी। उन पर कभी विस्तार से लिखूँगा। गद्य पद्य से भी बडी चीज है, और आपके पास खूब content है। खूब ही। वस्तुत।

आशा है, आप सानन्द हैं

पत्र लम्बा हो गया।

आपका अपना

ग. मा मुक्तिबोध

पुनश्च कभी आपकी कृतियों पर अलग से चर्चा करने की जो बात है वह मैं

अवश्य करूँगा, इसलिए कि मुझे अच्छी लगती हैं। शेष मिलने पर। कभी तो मिलेंगे ही।

[2]

[नागपुर]
[9 1.58]

[सम्भवत यह किसी पत्र का बाद का हिस्सा है। यह बिना सम्बोधन शुरू होता है और अन्त में हस्ताक्षर भी नहीं है।—सं०]

'''इसमे उनकी कोई विशेप हानि नही होने की। किन्तु, श्रीकान्त को अभी recognition मिलना बाकी है। (ऐसा मेरा अपना खयाल है) इसलिए, फिलहाल उसकी पैरवी और वकालत आवश्यक है। मैं समझता हूँ कि गुणी आलोचक का एक सबसे बडा काम यह है कि वह recognition की इस process को accelerate करवाये। इसके बाद, अगर उसे उठना हो तो वह उठे, नही तो वह गिर पडे।

ओ हो! आप श्रीकान्त की भूमिका के बारे मे कह रहे हैं, आपका कहना मुझे उचित मालूम होता बशर्ते कि, "जीवन नही, क्षण जीने" की बात को आप "क्षण में ही जीवन जीने" की बात से पृथक कर पाते। असल में, अज्ञेय क्षण-वादी ही हैं।

आशा है, मेरी बातो का आप बुरा नही मानेंगे। मैंने आपका पत्र दुबारा पढा। और तिबारा भी और मुझे यह जानकर सुख हुआ कि आप स्वय एक आलोचक के रूप में स्पष्ट विचार करने की शक्ति रखते हैं। हमारे मध्य प्रदेश में ... की कमी नही है।

छाँट दी। कुछ तो बनकी भी हूँ और ... विशेष सन्दर्भ न समझकर आपको पत्र लिखने बैठ गया। मेरा खुद का कायदा यह है कि मैं पहली प्रतिक्रिया प्रकट न करूँ, बल्कि उस पर सोचूँ। और, अब मुझे लगता है कि जो बातें आपने लिखी अपने आप म ठीक हो सकती हैं। ...

शायद, श्रीकान्त, आप, ...
लिखा। आप अपने विवेक म ...
आपको पत्र लिखूँगा। दुःख इसी बात का है कि श्रीकान्त ने वह सग्रह मुझे भी समर्पित कर दिया। इसीलिए, उसके सम्बन्ध मे आपसे कुछ कहना, मुझको ही लपेटना हुआ। पत्र का उत्तर शीघ्र दें, कृपया।

[3]

प्रमोद भाई,

आज ही पत्र मिला। विश्वम्भरनाथ उपाध्याय का tone अच्छा नही लगा। मेरे प्रति वह नितान्त अशिष्ट भी हैं। शायद, उन पर रामविलास शर्मा का असर है—वह भी 'क्रान्तिकारी'। जिस प्रकार मेरे नाम के प्रथम शब्द का उन्होंने प्रयोग किया है, उससे तो यह स्पष्ट हो जाता है कि वे जान-बूझकर, इरादतन, अपनी उच्चता और प्रतिष्ठा की सस्थापना के उद्देश्य से, मुझे तुच्छ और हेय ठहराना

चाहते हैं। उनकी इस अशिष्टता का कड़ा मे कड़ा विरोध होना चाहिए। उपाध्याय इतना महान साहित्यिक नही है कि वह दूसरो को अपने से अत्यन्त निम्न समझते हुए उन्हें बालकवत गिनने का क्षम्य रूप से दम्भ करे और उसके द्वारा दम्भ को हमारे द्वारा बिना चुनौती छोड दिया जा सके। इस अशिष्टता का करारा जवाब दिया जाना चाहिए। मेरा पूरा नाम गजानन माधव मुक्तिबोध है अथवा सक्षेप मे केवल मुक्तिबोध। मेरे नाम से केवल पहले शब्द का प्रयोग कर, वे अत्यन्त दम्भपूर्ण रूप से अपनी मूर्ख उच्चता प्रस्थापित करना चाहते हैं। शायद, रामविलास शर्मा से उन्होंने यही सीखा है। मैं उपाध्याय को नही जानता।

(1) उन्होंने भाषा के सम्बन्ध मे लिखा। मेरा निवेदन यह है कि हिन्दी भाषा का रूप काफी अस्थिर है—अन्य भाषाओ की तुलना मे। मैं नही समझता कि जिस शब्द पर उन्होंने आपत्ति की, उस शब्द का अर्थ, वे नही समझे हैं।

(2) 'भाव-प्रसग' मे अथवा 'भावना-प्रसग' इस सामासिक शब्द का मैंने, शमशेरवाले अपने लेख मे, आवश्यकता से अधिक स्पष्टीकरण किया है। परिस्थिति के भीतर जो जीवन-प्रसग उपस्थित होते हैं उन जीवन-प्रसगो का एक पक्ष है—आत्म पक्ष, दूसरा पक्ष है—बाह्य पक्ष। आत्म-पक्ष मे बाह्य-पक्ष के प्रति प्रतिक्रियाएँ *तथा सवेदनाएँ, रुख, रवैया, दृष्टि आदि-आदि तत्त्व रहते हैं। उदाहरणत*, एक जीवन प्रसग लीजिए। प्रेमिका के सामने प्रेमी की उपस्थिति। किसी एक बाह्य परिस्थिति के भीतर—यह जीवन-प्रसग है। इस जीवन प्रसग मे (यदि कवि एक प्रेमी है तो) जो भाव-प्रसग है वह साक्षात् और मूर्त्त है। यह भाव-प्रसग है—प्रेमिका को देख, प्रेमी के मन म उमडनेवाली विविध भावनाएँ और सवेदनाएँ, प्रेमिका के प्रति विभिन्न प्रतिक्रियाएँ—वे प्रतिक्रियाएँ जो प्रेमी के मन मे उमडी, उत्थित हुई।

'भाव प्रसग' शब्द क्यो लाना पडा? प्रमोदजी, आप कहानी-लेखक हैं। जीवन मे जो भाव-प्रसग उपस्थित होते हैं उन्हे आप जानते हैं। ये भाव-प्रसग, जीवन-प्रसग के भीतर उसके एक अखण्ड और विखण्डनीय भाग के रूप मे प्रस्तुत होते हैं। इन विशिष्ट भाव-प्रसगो का चित्रण आप स्वय अपनी कहानियो मे करते हैं।

किन्तु, अब आप अपनी आत्मपरक कविताओ पर आइए। आप पायेंगे कि जिस अर्थ मे, वास्तविक जीवन की एक घटना के या प्रसग के भीतर उस प्रसग से बँधी हुई मन की भावनात्मक प्रतिक्रिया होती है, वैसे प्रसग-बद्ध रूप से—उसी प्रकार के प्रसग-बद्ध रूप से, आज के काव्य म, भावनाएँ प्रस्तुत नही की जाती।

वे भावनाएँ आपके लिए, वस्तुत, भाव-प्रसग हैं। ये भावनाएँ, जो वास्तविक *जीवन प्रसग से बद्ध और उसका एक भाग हैं, अपने विशिष्ट प्रसग-बद्ध रूप म*, ज्यो की त्यों काव्य मे प्रस्तुत नहीं हो पाती।

हिन्दी के वर्तमान काव्य मे, (चाहे वह छायावादी हो या नयी कवितानुसारी) ऐसी वास्तविक जीवन-प्रसग-बद्ध भावनाएँ, जो अपने प्रसग-बद्ध रूप मे विशिष्ट होती हैं, चित्रित नहीं *की जाती। हाँ, उसके नाम पर, जो-कुछ चित्रित किया* जाता है, वह विशिष्ट न होकर 'सामान्यीकृत' होता है। यह कैसे?

उदाहरणत , वास्तविक जीवन मे प्राप्त विशिष्ट मिलन-प्रसंग मे उत्थित विविध उलझी हुई भावनाएँ—अर्थात वास्तविक जीवन-प्रसग मे प्राप्त भाव-प्रसग —(अर्थात प्रसग-बद्ध भावनाओ की घटना जो हृदय मे, विशेष परिस्थिति के भीतर, भोगी गयी विशिष्ट प्रसग-बद्ध र, उनके स्थान पर, हमारे व पना द्वारा उत्तेजित किये गये, उपन्यास और फिल्मो मे देखे गये अथवा अपने रिश्तेदारो के जीवन म पाये गये अथवा अपनी ही वासना द्वारा खड़े किये गये अनेको वास्तविक काल्पनिक मिलन-प्रसगो मे जो सर्वथा-सामान्य भावनाएँ, सवेदनाएँ या हाव-भाव होंगे उन्हे हम अपनी कविता मे प्रस्तुत कर देंगे। अर्थात विविध समय और विविध स्थान के वास्तविक मिलन प्रसगो अथवा वासनात्मक कल्पनोत्तेजित मिलन प्रसगो मे जो भावनाएँ और सवेदनाएँ सर्वथा-सामान्य होगी, उन सवेदनाओ और भावनाओ को—न कि वास्तविक जीवन के विशिष्ट मिलन-प्रसग में उपस्थित हुए विशिष्ट भाव-प्रसग को—काव्य मे प्रस्तुत किया जायेगा। राम या सडक पर चलता हुआ एक आदमी जो हमे दीख रहा है, वह एक विशिष्ट व्यक्ति है। किन्तु, जब हम केवल 'आदमी' कहेगे तो यह 'आदमी' कोई विशिष्ट व्यक्ति न होकर आदमी का एक सामान्यीकरण है। The Man, A Man और केवल Man मे बहुत बडा अन्तर है। Man एक बहुत बडा सामान्यीकरण है। भाषा एव सामान्यीकरणो पर आधारित सकेत-व्यवस्था है।

उसी प्रकार आत्मपरक काव्य मे, जो (उदाहरणत) मिलन-भावनाएँ प्रस्तुत की जाती हैं, वे किसी विशिष्ट वास्तविक जीवन-प्रसग से बद्ध वास्तविक विशिष्ट मिलन-भावना नही, वरन् अनगिनत मिलन-भावनाओ का मात्र एक सामान्यीकरण है। ज्योही हम अपनी कल्पना में प्रणयी युग्म के मिलने का कोई चित्र प्रस्तुत करते हैं, त्योही यह चित्र (किसी विशिष्ट व्यक्ति के विशिष्ट जीवन के विशिष्ट प्रसग मे विशिष्ट मिलन के भीतर विशिष्ट भाव-प्रसग का चित्र न होकर) एक सामान्यीकृत चित्र हो उठता है। Do you follow my point ? हमारी कल्पना मे उत्तेजित प्रणयी युग्म का यह चित्र किन्ही व्यक्ति विशेषो का चित्र नही है। वह हमारे हृदय मे सचित मिलन-अनुभवो, वासनाओ और देखे सुने मिलनो का एक सामान्यीकृत रूप है। It is generalized form। इसीलिए, प्रणयी युग्म का जो चित्र हमारे मन म उत्थित होगा, वह विशेष व्यक्तियो का न होने से, वह (चित्र —जो कल्पना मे खडा हुआ है—) सामान्यीकृत होता है। साथ ही, उस चित्र को प्रस्तुत करते हुए हम प्रसगानुकूल जो भावनाएँ चित्रित करेंगे—वे भावनाएँ भी सामान्यीकृत होगी। सामान्यीकृत चित्र प्रस्तुत करते हुए जो भावनाएँ चित्रित की जायेंगी व भी सामान्यीकृत ही होगी—भले ही वे प्रसगानुकूल हो। हमारी कल्पना मे उपस्थित प्रणयी युग्म का मिलन-प्रसग (उदाहरणत राधा-कृष्ण का, राम-सीता का, क-ख का) भी, वस्तुत , अनेक मिलन-प्रसगो का एक सामान्यीकरण है, ठीक उस प्रकार कि जिस प्रकार 'आदमी' शब्द अनेको युगो और स्थानो के अनेक व्यक्तियो का सामान्यीकरण है। कल्पना मे उपस्थित प्रणयी युग्म का मिलन-प्रसग, अनेको स्थानो अनेको युगो के अनेको मिलन-प्रसगो का एक सामान्यीकरण है। इसलिए, उस चित्र को प्रस्तुत करते हुए जो प्रसगानुकूल भावनाएँ हम चित्रित

करेंगे, वे भावनाएँ उस सामान्यीकृत प्रसग से जुडी हुई हैं। ये भावनाएँ भी सामान्यीकृत हैं।

किन्तु कवि (मान लीजिए) अपने वास्तविक जीवन मे उपस्थित किसी विशिष्ट और वास्तविक मिलन-क्षण को चित्रित करना चाहता है। उसके सामने उसकी वास्तविक प्रेयसी है। कल्पना मे भी, उसकी अपनी वास्तविक प्रेयसी का चित्र उपस्थित होता है। यह प्रेयसी विशिष्ट है। उस प्रेयसी का अपना एक विशिष्ट चरित्र और विशिष्ट रूप होता है। विशिष्ट चरित्र और विशिष्ट रूप वाली यह जीवन्त विशिष्ट प्रेयसी एक विशिष्ट वास्तविक परिस्थिति मे उससे भेंट करती है। तो जो भावनाएँ, कवि के हृदय म घटित होंगी, उपस्थित होगी, वे भावनाएँ उस कवि के विशिष्ट भाव-प्रसग हैं—कि जो भाव प्रसग उसके वास्तविक जीवन मे विशिष्ट रूप से उपस्थित हुए हैं।

ये भाव प्रसग केवल सामान्यीकृत भावना क्यो नही हैं? सामान्यीकृत भावनाओ से, भाव-प्रसगों को क्यो पृथक् किया जाना चाहिए? भाव-प्रसगो की क्या विशेषताएँ हैं?

(1) भाव प्रसग, वास्तविक जीवन मे घटित या उपस्थित हुए जो प्रसग है उन प्रसगो के भीतर पैदा होते हैं। ये भाव प्रसग, जीवन-प्रसग से अखण्डनीय रूप से सम्बद्ध हैं। वस्तुत, वे उसी जीवन-प्रसग के ताने-बाने का एक भाग हैं।

(2) इन भाव प्रसगो के अर्थात् वास्तविक प्रसगो के भीतर जो भावनाएँ उपस्थित होती हैं—वे भावनाएँ वास्तविक परिस्थिति के भीतर वास्तविक वस्तु के प्रति प्रतिक्रियाएँ हैं। वास्तविक एकान्त स्थान मे अपनी प्रेयसी को देखकर, प्रेमी के मन म, (प्रेमी, प्रेयसी के पास खडा है) जो भावनाएँ उपस्थित होगी वे भावनाएँ (अ) उस एकान्त स्थान के (ब) प्रेयसी के चरित्र-विशेष और मन स्थिति-विशेष के (क) तथा स्वय प्रेमी के चरित्र विशेष और मन स्थिति-विशेष के (ड) तथा अब तक के उनके प्रणय इतिहास के अनुसार होगी, अर्थात् उन सबस वे conditioned होगी। यह विशिष्ट भाव प्रसग है। मात्र एक सामान्यीकृत मिलन-प्रसग की सामान्यीकृत प्रणय-भावना अथवा मिलन-भावनाएँ नही हैं।

अब मान लीजिए कि कवि अपने द्वारा भोगे गये इस विशिष्ट प्रसग-बद्ध भावना अथवा विशिष्ट भाव प्रसग को चित्रित करना चाहता है।

(अ) यदि वह कवि आत्मपरक है तो वह कवि आत्म-पक्ष का उद्घाटन करेगा, अर्थात, उस विशिष्ट भाव-प्रसग मे, यानी वास्तविक जीवन-प्रसग से conditioned भाव प्रसग मे, जो सवेदनाएँ या भावनाएँ या प्रतिक्रियाएँ उसने भोगी हैं, (केवल "अनुभूत" नही की हैं, वरन् भोगी हैं) उनका चित्रण करेगा।

(ब) य भावनाएँ प्रसग-बद्ध होन के कारण विशिष्ट हो उठी हैं। वे भावनाएँ सामान्यीकृत नही हैं। कवि का यह आग्रह है—विशेष आग्रह है—कि जो उसने भोगा है, उसका वह ठीक-ठीक चित्रण, सही सही चित्रण करेगा। आत्मपरक कवि होने के नाते, वह, नि सन्देह, वास्तविक और विशिष्ट प्रसंग बद्ध भावनाएँ और सवेदनाएँ, प्रतिक्रियाएँ और दृष्टि प्रस्तुत करेगा।

(क) चूँकि वह विशिष्ट और वास्तविक भाव-प्रसगो के भीतर उपस्थित हुई भावनाएँ और सवेदनाएँ तथा प्रतिक्रियाएँ चित्रित करना चाहता है वह भी ठीक-ठीक और सही सही रूप मे (अर्थात् उन भावनाओ और सवदनाओ तथा प्रति-

क्रियाओ की **वास्तविकता** को बनाये रखने के लिए), तो वह उन भावनाओ और सवेदनाओ तथा प्रतिक्रियाओ की **वास्तविक विशिष्टता** का चित्रण करेगा।

(ड) ऐसी हर वास्तविक विशिष्टता, जीवन प्रसग-बद्ध होने के फलस्वरूप, अनेकों, विभिन्न सूत्रों से (चरित्र, परिस्थिति, मन स्थिति, जीवनेतिहास के सूत्रो से) उलझी हुई होती है। प्रत्येक वास्तव विशिष्ट इसी प्रकार, अनेको सूत्रो से उलझा हुआ होता है। भाव-प्रसग के एक भाग के रूप मे उपस्थित भावनाएँ, सवेदनाएँ या प्रतिक्रियाएँ स्वय एक वास्तविक विशिष्ट होने के फलस्वरूप, उलझी हुई होती हैं। चूंकि कवि इन वास्तविक भावनाओ और सवेदनाओ को उपस्थित करना चाहता है, इसलिए वह उन भावनाओ, प्रतिक्रियाओ को, **उनके उलझे हुए रूप में ही** प्रस्तुत करने का आग्रही है। यह उलझाव—जो उन भावनाओ और सवेदनाओ तथा प्रतिक्रियाओ के **चित्रण मे** दिखायी देता है, वह उलझाव, **सारा का सारा, उसके द्वारा** पैदा किया गया नही है। वह उलझाव, उन भावनाओ और सवेदनाओ तथा प्रतिक्रियाओ ही का एक गुण या भाग है।

(ज) चूंकि कवि विशिष्ट वास्तविक भावनाओ और सवेदनाओ ही का चित्रण—वह भी सही सही ठीक-ठीक, चित्रण (उन भावनाओ, सवेदनाओ तथा प्रतिक्रियाओ मौलिक वास्तविकता को प्रस्तुत करने के लिए) करता है, इसलिए, वह कवि आत्मपरक होते हुए भी यथार्थवादी है—**मनोवैज्ञानिक यथार्थवादी**। मनोवैज्ञानिक यथार्थवादी होना और आत्मपरक होना एक दूसरे के विरुद्ध बातें नही हैं। (उपाध्यायजी ने मेरे वाक्य उद्धृत किये हैं—(1) शमशेर मनोवैज्ञानिक यथार्थवादी है, (2) मनोवैज्ञानिक यथार्थवादी होते हुए भी आत्मपरक हैं, (3) शमशेर प्रणय-जीवन के प्रसग-बद्ध रसवादी कवि हैं।) फिर उपाध्यायजी लिखते हैं—क्या ऊपर के वाक्यों से कुछ अर्थ बनता है? उपाध्यायजी को, अपने स्वय के अज्ञानवश अगर उन वाक्यो का अर्थ समझ मे नही आता तो मैं उसके लिए क्या करूँ!! मैंने अपने शमशेरवाले लेख म, अपनी बातें काफी स्पष्ट की हैं।

मैं अपने पुराने सूत्र पर आता हूँ। मनोवैज्ञानिक यथार्थवादी होना और आत्मपरक होना य दो बातें परस्पर-विरोधी नही हैं—यही नही, इसके अलावा, वे **कुछ हद तक, कुछ सीमा तक, परस्पर-पूरक और परस्पर सहायक** भी हैं।

(झ) चूंकि कवि आत्मपरक रूप से मनोवैज्ञानिक यथार्थवादी है इसलिए, वह सवेदनाओ और प्रतिक्रियाओ आदि-आदि की प्रसग बद्ध विशिष्टता के चित्रण के दौरान मे उन भावनाओ और सवेदनो आदि का, उनके अपने मौलिक उलझे हुए रूप मे, प्रस्तुतीकरण करता है। यह महत्त्व की बात है। यदि वह वैसा न करे तो वह कवि मनोवैज्ञानिक यथार्थवादी न होगा। मैं यहाँ मनोवैज्ञानिक यथार्थवादी आत्मपरक कवि की विशेषता बता रहा हूँ—केवल शमशेर ही की नही।

(3) 'सामान्यीकरण' विभिन्न विशिष्टो का सामान्यीकरण होता है। वह

बिना द्वितीय-सकेत-व्यवस्था अर्थात भाषा टिक नही सकती। प्रथम-सकेत व्यवस्था, प्रकृति अथवा बाह्य द्वारा दी गयी भावनात्मक या सवेदनात्मक सूचनाएँ हैं, जो हमारे मन मे प्राप्त होती हैं। उनके द्वारा हम बाह्य या प्रकृति का बोध करते हैं।

किन्तु, जब हम इस बोध को शब्दों में रखते हैं, तब ये शब्द, बाह्य अथवा प्रकृति द्वारा दी गयी प्रथम सूचनाओं की सूचनाएँ होते हैं। संवेदनाएँ प्रथम-संकेत-व्यवस्था है। भाषा, प्रथम-संकेत-व्यवस्था की सूचना-व्यवस्था अर्थात द्वितीय-संकेत-व्यवस्था यानी second signal system है। यह second signal system प्राथमिक-संकेतों का 'सामान्यीकरण' होता है। उदाहरण के लिए लीजिए—लाल फूल। दो की लालिमा में जरा-से भेद से ही, हमारी संवेदनाओं में अन्तर हो जायगा। किन्तु, हम, शब्दों द्वारा, विशिष्ट पुष्प-सम्बन्धी एक लालिमा को अन्य पुष्प-सम्बन्धी दूसरी लालिमा से, पृथक् नहीं कर पाते। यदि हम असंख्य प्रकार की विशिष्ट लालिमाओं को शब्दों में रखने लगें तो, सम्भवतः, हम असंख्य विशिष्ट लालिमाओं के लिए असंख्य विशिष्ट शब्द रखना पड़े। 'लाल फूल' में 'लाल' शब्द जो गुण-वाचक है, वह अनेकों 'लालिमाओं' का सामान्यीकरण है। 'फूल' शब्द स्वयं असंख्य विविध-वर्णी विविध-रूप फूलों का सामान्यीकरण है।

अब मैं तीसरी बात पर आता हूँ—मैंने लिखा है कि शमशेर प्रणय-जीवन के 'रसवादी' कवि हैं। यह निवेदन शमशेर के काव्य विषय के सम्बन्ध में है। शमशेर जिन भाव-प्रसंगों को (मुख्यतः) प्रस्तुत करते हैं, वे प्रणय-जीवन से सम्बद्ध हैं।

वे प्रणय के भाव-प्रसंगों का एक संक्षिप्त इम्प्रेशनिस्टिक चित्र उपस्थित करते हुए, उस चित्र में प्रस्तुत किये गये इमोशन में स्वयं भीगकर, उस इमोशन में—उस भावना में—पाठक को भी भिगोना चाहते हैं। वे पाठक को कोई attitude नहीं देते, कोई दृष्टि या विशिष्ट भाव नहीं देते, वरन् भावना में भिगोने का प्रयत्न करते हैं (पाठक, वस्तुतः भीग पाता है या नहीं, यह एक अलग बात है)। मैं शमशेर की एक मुख्य प्रवृत्ति की बात कर रहा हूँ। एक कवि में कई प्रवृत्तियाँ होती हैं। शमशेर की ऐसी भी कई कविताएँ हैं जो हमें एक दृष्टि, एक एटीट्यूड और एक भाव देती हैं—हाँ, कविता होने के नाते हमारी भावनाओं को उत्तेजित कर यह दृष्टि, एटीट्यूड या भाव प्रदान किया जाता है!! आप (सिर्फ emotion प्रकट करने के साथ) भाव (ideas) भी प्रकट करते हैं, रुख (attitude) भी प्रकट करते हैं!!

Let us examine this phenomenon closely। आप किसी विशिष्ट वास्तविक जीवन-प्रसंग के भीतर आपके मन में जो वास्तविक आभ्यन्तर घटनाएँ हुईं (अर्थात् पिछली रात में, आपकी माँ के प्रति पत्नी द्वारा कही गयी बातों के विरुद्ध आपके मन में जो निदारुण विक्षोभ, अपने आप से अपनी स्थिति से असन्तोष हो उठा, पत्नी के व्यक्तित्व-चरित्र के प्रति, माँ के व्यक्तित्व चरित्र के प्रति, जो भीषण प्रतिक्रियाएँ आपने कीं, तो ये संवेदनाएँ, वे प्रतिक्रियाएँ, वे भावनाएँ—वास्तविक आभ्यन्तर घटनाएँ अर्थात् भाव प्रसंग हैं। ये भाव बाहरी प्रसंग से बद्ध हैं) तो वे घटनाएँ अर्थात् भाव प्रसंग काव्य में प्रस्तुत नहीं हुए, वरन् व्यक्तित्व हनन, मनुष्य शक्ति का अनन्त अपव्यय, आपके सामने समाज के एक विद्रूप चित्र के रूप में प्रस्तुत हुआ।

यह मनुष्य-व्यक्तित्व-हनन घर में पत्नी का, आपका, आपकी माँ का भी हो रहा है। यह मनुष्य-व्यक्तित्व-हनन समाज में, घर में, दफ्तर में, सभा में, संस्थाओं में हो रहा है—यह आपने महसूस किया।

व्यक्तित्व-हनन के प्रसंग अलग-अलग जगहों में अलग प्रकार के हैं।

उदाहरणत: दफ्तर मे एक कारण से है, समाज मे दूसरे कारण से अर्थात् आर्थिक दृष्टि से आपकी तुच्छ स्थिति के कारण से है, घर मे आपकी तुच्छ स्थिति के कारण से हैं, पत्नी का व्यक्तित्व-हनन आपकी आर्थिक तुच्छता के कारण, पत्नी के स्वभाव-विशेष के कारण तथा माँ के स्वभाव-विशेष के कारण से है। इतने विभिन्न-विभिन्न कारणो से विभिन्न विभिन्न स्थानो पर विभिन्न-विभिन्न व्यक्तियों के लिए विभिन्न-विभिन्न प्रकार का व्यक्तित्व-हनन हो रहा है !! आप स्वय (आप कवि है) इन व्यक्तित्व-हनन-प्रसगो मे से गुजरे हैं। दूसरे शब्दो मे, स्थिति-परिस्थिति के अनुसार, विभिन्न स्थानो पर विभिन्न कारणो से आपके हृदय मे, मनुष्य-व्यक्तित्व-हनन के विभिन्न भाव-प्रसग (अर्थात् वास्तविक विशिष्ट आभ्यन्तर घटनाएँ यानी सवेदनाएँ, भावनाएँ, प्रतिक्रियाएँ और उनकी गुत्थियाँ) उपस्थित हैं। फिर से सुनिए। आपके हृदय मे मनुष्य-व्यक्तित्व-हनन के विभिन्न भाव प्रसग रहे आये। ..

[एक अधूरा पत्र जो भेजा नही गया।—स]

[4]

राजनाँदगाँव
[8 2 64]

प्रिय प्रमोद भाई,

आपका पत्र आया था। और चैनिशेवस्की की पुस्तक भी मिली। मैंने कभी इस लेखक को पढा ही नही था। बहुत-बहुत धन्यवाद।

आपका थीसिस कब तक पूरा हो जायेगा ? अगर आप दो एक रोज के लिए यहाँ चले आये तो बहुत अच्छा होगा। मिलने की बहुत इच्छा है। मेरी तबीयत बहुत खराब है। लगातार चक्कर आते हैं।

आप पर परिवार की बहुत जिम्मेदारी है। किन्तु, कुछ जिम्मेदारी साहित्य की भी सँभालनी होगी। कहानी आपके हृदय का भाग और आत्मा का अश है। आखिर आप महीने मे कुछ तो लिख ही सकते हैं, और आलोचना भी। कहना मेरा काम है, इसलिए कह रहा हूँ। आपसे मुझे बहुत-बहुत उम्मीद है। मतलब यह कि इस तरह से, साहित्य से इस्तीफा देने से काम नही चलेगा। आप अगर मिल सकें तो बहुत-बहुत बातचीत होगी। एकाध रोज के लिए चले आइए न !! रामविलासजी के पते की चिट्ठी इधर की उधर हो गयी। उनका पता अवश्य भेज दें।

रमेश ने राजनाँदगाँव के चक्कर मे नन्दिनी को भी छोड दिया। यह अच्छा नही किया। लेकिन वह खुद परेशान है कि क्या करे। फुड डिपार्टमेण्ट और स्टेट बैंक मे jobs थे। उनके पीछे वह पडा हुआ था। बहुत जगह applications देकर रखी थीं।

आप अवश्य आयें, कुछ रोज के लिए। महत्त्वपूर्ण बातचीत होगी।

आपका ही
स्नेहपूर्वक
ग. मा. मुक्तिबोध

[5]

[9.2.64]

प्रिय प्रमोद भाई,

मेरा पहला पत्र आपको मिला होगा। आपका इन्तजार रहा, आप आये नहीं। खैर, ता 19 को परसाईजी यहाँ आ रहे हैं। आप अगर आ सकें तो बहुत अच्छा रहेगा। मुझे paralysis का हलका झटका लगा है—यह नयी घटना है।

आशा है, आप अवश्य आयेंगे।

आपका ही
ग मा मु

आग्नेश्का सोनी के नाम

[1]

राजनांदगाँव
24 दिसम्बर [1962]

प्रिय आग्नेसजी,

सचमुच आपके चित्र बहुत अच्छे थे। सभी को पसन्द आये, बच्चों को भी। बार-बार देखा।

और, आपने दो पुस्तकें भेजीं। एकदम श्रेष्ठ थीं। नात्सी अत्याचारों के अमानवीय भीतिप्रद चित्रों को देखना तो अपने आप में एक भयानक अनुभव था। वह पुस्तक हमारे कॉलेज में घूमी। उसको कईयों ने देखा। और, तब उन्हें मालूम हुआ कि पोलैण्ड पर क्या गुज़री है और नात्सीवाद कैसा था।

और, यह कहानियों की पुस्तक भयानक सहारात्मक पार्श्व-दृश्यों में प्रस्तुत मानव-संवेदनाओं की वे कथाएँ सचमुच अपना सानी नहीं रखतीं। मैंने बहुत-सा युद्ध साहित्य पढ़ा है। रूसी भी, अमरीकी भी। आर्थर मेलर से लेकर तो एहेरन-बर्ग तक। किन्तु, इन कथाओं में पोलिश प्रतिभा की सुकुमार विशेषताएँ हैं, बावजूद उन भयानक पार्श्व दृश्यों के, जो कि विस्तार से दिये गये हैं।

मैंने जानबूझकर यह पत्र देर से लिखा, सोचा कि कुछ पढ़ लूँ, फिर लिखूँ। इस बीच, मेरे पास पोलिश रिव्यू के कुछ और अंक, तथा अन्य साहित्य, मेरे पास आ गये, जिन्हें देखता रहा। साथ ही, घर में बीमारियाँ चलती रहीं। इस कारण, पत्र लिखना स्थगित होता रहा। बार-बार याद आती रही आपकी। इस बीच, खयाल आया कि क्रिसमस आ रहा है।

क्रिसमस के शुभ अवसर पर आप मेरी शुभाकांक्षाएँ ग्रहण कीजिए। औप-चारिक रूप से लिखता तो क्रिसमस कार्ड भेजता। सम्भव है, वह भी भेजूँ। किन्तु, इतना जानिए कि हम सब लोगों की हार्दिक शुभाकांक्षाएँ आपके साथ हैं, और आप हमारे यहाँ वार्ता का विषय रहती हैं, यहाँ तक कि पिताजी ने भी बीच में

आपके बारे मे पूछा था।

सर्वाधिक मुझे आश्चर्य हुआ पोलिश स्कल्पचर (शिल्प) को देखकर। एकदम एब्स्ट्रैक्ट। मैं शिल्प ज्यादा नही समझता। उसमे से कुछ शिल्प-मूर्तियाँ मुझे बहुत पसन्द आयी। लेकिन, उससे भी आश्चर्यजनक थी वह भूमिका जो Modern Sculpture in Poland की महत्त्वपूर्ण अग है। सम्भवत, वह आपके पास होगी। मुझे वह बहुत पसन्द आयी, और एकदम निराली लगी। आश्चर्य मुझे इस बात का था कि पोलिश लेखक और कलाकार, केवल आर्ट की शब्दावली म सोचते है। और, समीक्षक भी वैसा ही करते हैं। अमरीकी ऐसा नही करते, खुद हिन्दीवाले ऐसा नही करते, रूस की तो बात ही जान दीजिए।

आपने जो दो पुस्तकें मेरे पास भेजी, उन्हे कुछ दिन मैं और रखूँगा, और फिर लौटा दूँगा। आशा है, आपको अडचन नही होगी।

एक बात और। अंग्रेजी मे किन किन पोलिश पुस्तको का (साहित्यिक पुस्तको का) अनुवाद हुआ है ? क्या इसकी कोई साधारण जानकारी मिल सकती है, और यह भी कि ये पुस्तकें किन प्रकाशको ने प्रकाशित की।

पोलिश राजदूतावास ने मेरे पास पोलैण्ड विज्ञान के विकास पर एक पुस्तक भेजी है। उससे साफ जाहिर होता है कि विज्ञान के क्षेत्र मे हम लोग उस देश से बहुत पीछे है। पोलैण्ड ने तो विज्ञान के विकास मे बहुत योग दिया है।

और, इन सब चीजो को पढकर मुझे आपकी बातें समझ मे आती हैं, जो हमारे यहाँ हुई थी। सचमुच पोलैण्ड का कलात्मक चिन्तन सुविकसित है।

साथ ही, समाज-व्यवस्था भी, जहाँ व्यक्ति को तुलनात्मक दृष्टि से, बहुत स्वतन्त्रता है।

पत्र मे और क्या-क्या बातें की जायँ। यह सम्भव ही नही है।

आशा है, आप अपने कार्यक्रम को आगे बढाती जा रही है, और प्रसन्न है।

पत्र का उत्तर दीजियेगा, जब जी चाहे।

आपका ही
गजानन माधव मुक्तिबोध

पुनश्च —हम सब का स्नेहाभिवादन स्वीकार कीजिए।

[2]

राजनाँदगाँव
29 मई

प्रिय सौभाग्यवती आग्नेस्काजी,

मेरा हार्दिक अभिनन्दन स्वीकार कीजिए।

आपका पत्र पाते ही हमारे यहाँ खुशी की लहर दौड गयी थी, और उसके तुरन्त बाद ही मैंने आपको पत्र लिखा, लेकिन दुर्भाग्य से वह अधूरा पडा रहा। उसमे मैंने विस्तृत रूप से आपके द्वारा उठाये गये प्रश्नो पर विचार करने का प्रयत्न किया था।

हुआ यह कि पत्र पूरा भी न हो पाया कि मेरे तीसरे लडके दिवाकर को मुझे मेन हास्पिटल मे भरती करना पडा। वह कल ही वहाँ से लौट आया है। आप जानती होगी कि उसे एक तरह का दमा है। लगभग ढाई महीने के लम्बे attack

के बाद, अब उसे कुछ राहत मिली, और अब मैं इस स्थिति में हूँ कि समुचित रूप से आपके पत्र का उत्तर दे सकूँ। पहला पत्र भी मेरे सामने पड़ा हुआ है, उसके points दुहरा रहा हूँ।

प्रथमत, मुझे इस बात की खुशी जाहिर करने का मौका दीजिए कि विजय कुमारजी हमें भी भा गये। उनका चित्र देखते ही लगा कि निःसन्देह आपका चुनाव सही रहा। उनका व्यक्तित्व सचमुच मोहक तथा भावना-पूर्ण है!! आपने यह बहुत अच्छा किया कि उनका भी चित्र भेज दिया। मेरे नये मित्र विजय कुमार-जी से आप मेरे नम्र प्रणाम कहें, और मेरी शुभकामनाएँ उन तक पहुँचा दें। वे सचमुच सौभाग्यशाली हैं कि आप जैसी पत्नी उन्हें प्राप्त हुई। आपके साथ उन्हें हमारे यहाँ पाकर हमको सचमुच बहुत बहुत खुशी होगी। आप दोनों अवश्य-अवश्य पधारें। हम, आप दोनों की राह देखते रहेंगे। कृपया इस सम्बन्ध में आप मेरी इच्छा उन तक पहुँचा दें।

अब मेरी कुछ आपके बारे में। आपके व्यक्तित्व को देखकर हमें यह पूर्वाभास भी हो जाना चाहिए था कि आप भारतीय बन जायेंगी। पारिवारिक भावना जो हमें आपमें देखने को मिली—परिवार में घुल मिल जाने की जो प्रवृत्ति आपमें हमें दिखायी दी, वैसी प्रवृत्ति बहुत-सी शिक्षिता भारतीय नारियों में भी नहीं दिखायी देती, शिक्षित पुरुषों से बात कर, वे विदा हो लेती हैं, अशिक्षित घर की स्त्रियों से हेलमेल बढ़ाने में उन्हें संकोच और न जाने क्या-क्या होता है। लेकिन, ऐसी कोई बात हमें आपमें ढूँढ़ने को भी नहीं मिली। निःसन्देह, इसीलिए हमारे लिए, आपका व्यक्तित्व आश्चर्य और आनन्द दोनों का विषय बना रहा। उसी से हमें अनुमान कर लेना चाहिए था कि एक न एक दिन आप भारतीय पत्नी के रूप में विराजमान होंगी। ईश्वर आप दोनों को आजीवन सुखी रखे और दोनों मिल-कर अपनी और दूसरों की संसार-यात्रा को सुखी बनायें। यही मैं चाहता हूँ।

आपने हमें भेंट भेजी। अत्यन्त सुन्दर जो पोलैण्ड देश की है उसकी कला-कृति पाकर हमें बड़ी खुशी हुई है। वह हमारे लिए एक धरोहर है।

हमारे यहाँ कायदा यह है कि जिसका विवाह होता है, उसको भेंट दी जाती है। भेंट हम देनी चाहिए आपको। एक महाराष्ट्रीय वस्त्र हम आपको भेंट कर रहे हैं। पता नहीं वह आपको कैसा लगेगा।

मेरी स्त्री ने उसका चुनाव किया है। वे अपनी हार्दिक शुभकामनाएँ आपको भेजती हैं। कृपया उसकी यह तुच्छ भेंट स्वीकार कीजिए। उनका और मेरा यह आग्रह है कि पोलैण्ड से जब आपकी मातृश्री आयेंगी तब उनसे मिलन का हमें मौका दीजियेगा। यदि वे इधर आ सकेंगी तो हम कृतार्थ होंगे—यह सन्देह है मेरी स्त्री (आपकी मौसीजी) का आपके लिए, इसे ध्यान रखें। वह आप पति-पत्नी दोनों के शुभागमन की राह देख रही हैं।

अब उस प्रश्न के बारे में जो स्वदेश से व्यक्तिगत उन्मूलन की स्थिति से सम्बन्ध रखता है।

पहली बात तो यह कि पिछली बार जब आपकी हमारी बातचीत हुई तो निःसन्देह ऐसी तो वह नहीं थी कि हम अपने-अपने भय—या कहिए—मनोवैज्ञा-निक तथा वैचारिक पार्श्वभूमि को स्पष्ट कर पाते। कम से कम, मैं स्पष्ट नहीं कर सका।

'भय'—हाँ, मैंने इस शब्द का प्रयोग जानबूझकर किया है। मुझे आपके बारे में कुछ विशेष भय था, इसीलिए मैं एक विशेष पक्ष पर विशेष बल दे रहा था।

क्षे

है

म न पहुँच जायें, यह भय मुझे था। यह मैं नि सकोच स्वीकार करता हूँ।

इस चिन्ता और भय की पार्श्वभूमि स, मैं आपसे बात कर रहा था। यही कारण था कि मैंने पैस्टरनैक का उदाहरण आपके सामन रखा, जिसने अपन देश से बाहर जाना अस्वीकार कर दिया। एक उदाहरण हगरी का विद्वान जार्ज लुकाच जैम साहित्यिक विचारक भी है, जिसन प्रतिक्रियावादियो के साथ देश से बाहर भागना स्वीकार नही किया, वह अभी भी बुडापेस्ट म है। साम्यवादी दल ने—उसके नताओं ने बहुत-सी भूलें की हैं, भयानक भूलें की हैं—सम्भवत आगे भी करते रहगे, लेकिन प्रतिक्रान्तिवादियो और प्रतिक्रियावादियो के हाथ म खेल जान का वह आधार नही है, नही होना चाहिए। सामाजिक न्याय, समता और प्रत्येक को मानवोचित गौरव की स्थिति का आदर्श यदि वस्तुत एक लक्ष्य है—सच्चा लक्ष्य, तो किसी भी हालत म पूँजीवादी समाज-रचना को सुरक्षित रखन के इरादे से वैचारिक तथा राजनैतिक युद्ध करनेवालो से काई सहानुभूति नही होना चाहिए।

उन्मूलित व्यक्ति अपने पितृदश का सहारा नही पाता। और, वैसा आश्रय और बल प्राप्त न होने पर वह अपने जीवन धारण और जीवन-रक्षा के हितो के लिए ऐस प्रतिक्रियावादियो के हाथ म खेल सकता है, उनके प्रभाव मे आ सकता है—यह भय—मेरा भय अस्वाभाविक नही कहा जा सकता। आपसे बातचीत इस पार्श्वभूमि से की।

किन्तु, मनुष्य अपने देश म भी रहकर ऐकान्तिक और उन्मूलित जीवन व्यतीत कर सकता है। यह भी एक वस्तु-सत्य है। इसके विपरीत, यह भी एक वस्तु-सत्य है कि अनेक देशो में क्रान्तिकारी मनीषियों ने, निर्वासन की अवस्था म, अन्य देशो मे त्राण पाया, और वहाँ बैठकर स्वदेश की सेवा की। ऐसी स्थिति मे, आप पोलैण्ड तथा भारत के लिए कुछ महत्त्वपूर्ण और मूल्यवान अवश्य ही कर सकती हैं।

इस प्रकार आप अन्तर्राष्ट्रीयता और सम्पूर्ण मानव जाति के गौरव को बढाने के मार्ग पर अधिकाधिक योगदान दे सकेंगी, इसम सन्देह नही होना चाहिए। और, सच पूछा जाये तो ऐसा कार्य इने-गिने लोगो के ही भाग्य म होता है। वह आपके हाथो स अवश्य ही होगा।

उन्मूलित व्यक्तित्व एक विशेष प्रकार [का] व्यक्तित्व होता है—मैं भी एक विशेष अर्थ मे उन्मूलित ही हूँ। मातृभाषा मराठी, रहनेवाला मालवे का। किन्तु, मुझे एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश, एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त भागना पडा। परिणामत,

प्रत्येक प्रदेश में जो तत्स्थानीय जनता है, लोग हैं, उनकी भाषा तथा रीतिनीति भिन्न होने तथा उनसे घुलने-मिलने के विशेष अवसर न मिलने के कारण, केवल नौकरीपेशा मध्यवर्ग का ही मैं भाग रहा आया, उस प्रदेश के वातावरण का अंग नहीं बना। इसीलिए, आज Loneliness निसंगता का प्रश्न इतना प्रचण्ड है—Modernism का अंग। Modernist लेखक एक अजीबोगरीब व्यक्तित्व रखता है, उसका एक कारण है उसकी उन्मूलितावस्था। इस उन्मूलितावस्था की कारक शक्ति वह स्वयं नहीं है। लोग पेट के लिए, विशेष अवसरों की प्राप्ति के लिए, अपनी जननी जन्मभूमि छोड़ देते हैं। बहुत-से छत्तीसगढ़ी (मैं यहीं रहता हूँ) दिल्ली रहते हैं, और अब अपने छत्तीसगढ़ से बहुत दूर पड़ गये हैं। किन्तु, प्रयासपूर्वक निःसन्देह इसे दूर किया जा सकता है।

ही से Polish Short Stories नामक एक पुस्तक है।

जो मैं कहना चाहता हूँ वह यह''' आपके विचार जो मुझे सुनने को मिले वे पोलिश सरकार द्वारा प्रकाशित पुस्तकों और पत्रों में बतायी गयी बातों के इर्द-गिर्द ही थे। आपकी बातों को सुनकर मुझे भ्रम होता था कि आपकी भावधारा साम्यवादी पोलैण्ड से बहुत दूर चली गयी है, लेकिन, जब यह देखा कि वह उसी से मिलती-जुलती है तो पोलिश समाज-व्यवस्था और शासन के प्रति मुझे आश्चर्य से स्तम्भित रह जाना पड़ा—वह सर्वहारावर्ग का अधिनायकत्व है या क्या!! और यदि हम यह मानकर चलें कि वह सचमुच अधिनायकत्व ही है, तो प्रश्न यह उठता है कि यूगोस्लाविया से भी अधिक स्वतन्त्र विचार-व्यवहार उसमें क्यों?

संक्षेप में, पोलैण्ड की रीतिनीति यद्यपि अन्य साम्यवादी देशों द्वारा विनिन्दित नहीं है, फिर भी जिस प्रकार के भाव-विचारों का प्रकाशन प्रसारण वहाँ होता है वे सर्वमान्य नहीं हैं!! आश्चर्य की बात यह है कि वे सरकारी प्रकाशनों में प्रमुख स्थान पाते हैं।

किन्तु, मुझे ऐसा लगता है कि मार्क्सवादी सौन्दर्यशास्त्र, नीतिशास्त्र आदि क्षेत्रों में पोलैण्ड को बहुत कुछ देना है। वह समय अवश्य ही आयेगा जब हम इस क्षेत्र में उत्तमोत्तम ग्रन्थ देखेंगे।

आपसे मिलने पर विस्तार से बातें होंगी।

अब मैं जाति-व्यवस्था के सम्बन्ध में कुछ जानकारी और कुछ अपने विचार आपके सामने प्रस्तुत कर रहा हूँ।

आज से साढ़े चार-पाँच हजार साल पहले, आर्य-आर्येतर संघर्ष की प्रक्रिया के परिणामस्वरूप भारत में, मुख्यतः, दो जातियाँ बनीं। एक—गोरे रंगवाले आर्य, दूसरे—काले रंगवाले अनार्य या दास। दास विजित जाति के थे। अतएव, आर्य-प्रधान समाज में वे निम्न श्रेणी में रखे गये। वे कृष्णवर्णीय होने के कारण, उनसे रोटी-बेटी व्यवहार भी निषिद्ध माना गया, यद्यपि गुप्त रूप से वह होता ही रहा। वर्ण का अर्थ होता है रंग। ये दो वर्ण थे—काले और गोरे। समाज का अंग तो काले हारे हुए लोगों को बनाया गया, किन्तु, साथ ही उन्हें विजेता श्वेतवर्णीय आर्यों से अलग रखा गया और उनसे नीचे स्थान दिया गया। इस प्रकार, प्रारम्भ

ही से, जाति-व्यवस्था द्वारा निम्नलिखित बातें सम्पन्न की गयी—

(1) (अ) कृष्णवर्णीय पराजित जाति समाज में निम्न श्रेणी में रखी गयी।

(ब) समाज में रहकर भी वह उच्च श्रेणी से पृथक् रखी गयी।

अर्थात् इन दोनों के परस्पर-विलीनीकरण की प्रक्रिया को जबर्दस्ती रोका गया। आर्यों का रक्त शुद्ध रहे—यह भावना थी। किन्तु गुप्त रूप से, रक्त मिश्रण होता ही रहा।

(क) पराजित कृष्णवर्णीय जाति समाज में निम्न श्रेणी का स्थान पाकर, *समाज का अंग तो बन गयी, किन्तु वह सारे समाज की दास थी।* द्विजों की (आर्यों की) सेवा करना ही उसका मुख्य व्यवसाय था।

हमारे यहाँ यूरोप-जैसी दास-प्रथा न थी, यद्यपि व्यक्तिगत दास देखे जा सकते थे। किन्तु, उत्पादन के कार्य में, व्यक्तिगत दासों का कोई विशेष स्थान न था। हमारे यहाँ दास व्यक्ति अपने आप में Slave न था वरन् उसकी पूरी जाति की जाति आर्यवर्ग की दास थी। दास व्यक्ति अपनी स्वतन्त्रता खरीद सकता है, किन्तु पूरी की पूरी जाति तो अपनी स्वतन्त्रता खरीद नहीं सकती।

(ड) इस *निम्न श्रेणी को अपने आन्तरिक क्षेत्र में आचार-व्यवहार की पूरी* स्वतन्त्रता थी, किन्तु, शिक्षा, धर्म, संस्कृति का उसे अधिकार न था। वह पवित्र ग्रन्थों का अध्ययन नहीं कर सकती थी। मन्दिर नहीं बना सकती थी, किन्तु सड़क पर खड़े रहकर दूर ही से देवता को नमस्कार कर आगे बढ़ सकती थी। Apartheid ने छुआछूत को विकसित किया।

(ज) चूँकि निम्न श्रेणी का कार्य सेवा करना ही था, इसलिए कला-कारीगरी भी इन्हीं के हाथ में रही। हमारे यहाँ का कारीगर शूद्र ही रहा। उत्पादन-श्रम गर्हित ही माना गया।

(झ) इस प्रकार हम देखते हैं कि समाज विकास के एक विशेष स्तर पर, हमारे यहाँ शोषक और शोषित का भाग प्रचण्ड हो उठा। श्रमकर्त्ता शोषित के सारे मानवोचित अधिकार छीन लिये गये। समाज के लिए आवश्यक वस्तुओं का उत्पादन तथा *अन्य सेवा कार्य वह करता था, किन्तु उसे धर्म के अधिकार भी नहीं* थे। भगवान राम ने जब यह देखा कि एक शूद्र तपस्या कर रहा है तो उसने उसका वध कर दिया। इस प्रकार हम देखते हैं कि वह श्रमिक-वर्ग था जिसे निम्न श्रेणी में डाला गया, पृथक् रखा गया।।

(ञ) तत्कालीन आवश्यकता थी—उपनिवेश के विस्तार की, अधिकाधिक उपनिवेश स्थापित करने की—अर्थात् अधिकाधिक श्रमिक-वर्ग की। और, अधिकाधिक संगठन की। आर्यों के समाज में अनेकानेक मूल निवासी आते चले गये और उनके कार्य तथा विकास-स्तर की दृष्टि से उन्हें समाज में स्थान मिलता चला गया। उदाहरणत, सुन्दर कारीगरी करनेवाले तथा खेती करनेवाले लोग शूद्रों की श्रेणी में सर्वश्रेष्ठ थे, किन्तु चिड़िया मारनेवाले या इतर शिकार करनेवाले लोग अत्यन्त निकृष्ट जाति के थे। चाण्डालवर्ग अत्यन्त निकृष्ट था, किन्तु मंदिरों का निर्माण करनेवाले *लोग उनसे बहुत ऊँचे थे।*

संक्षेप में श्रम तथा विकास-स्तर के अनुसार, इन शूद्रों के अन्तर्गत तर-तमता hierarchy स्थापित की गयी।

(प) उसी प्रकार, आर्यों ने वाणिज्य, युद्ध तथा प्रशासन, तथा पौरोहित्य को

अपने लिए रखा और तदनुसार वैश्य, क्षत्रिय और ब्राह्मणों की जाति का विकास हुआ।

(फ) इस प्रकार तार-तमिक hierachical श्रेणीगत विकास के लिए, एक हज़ार साल लग गये। प्रथम जो केवल दो जातियाँ कृष्ण और शुक्ल, पराजित और विजेता इन दो के आधार पर आर्य और दास जातियाँ थीं, वे ई पू 1400 साल तक आते-आते, अर्थात् महाभारत काल तक आते-आते, ये दो प्रधान जातियाँ अनेक उपजातियों में बँट गयी, और उनके भीतर तर-तमता स्थापित हो गयी।

(2) जो आर्य और आर्येतर समूह भारत में आने गये, उन्हें आर्यों के समाज में लने के लिए, श्रम तथा कार्य के सिद्धान्त को ही कार्यान्वित किया गया। जो विदेशी तत्त्व युद्ध कार्य करते थे, वे क्षत्रिय हुए जो पौरोहित्य करते थे या शिक्षक थे वे ब्राह्मण, जो कला-कारीगरी या उत्पादन के अन्य कार्य करते थे वे शूद्र बन गये।

इस प्रकार ज्यों ज्यों भारत का आर्यीकरण होता चला गया और समाज की उत्पादन सम्बन्धी आवश्यकताएँ बढ़ती गयी त्यों-त्यों उत्पादन सम्बन्धी नये नये व्यवसाय बनते चले गये त्यों त्यों शूद्रों के अन्तर्गत अनेकानेक नव नवीन उपजातियाँ बनती चली गयी।

सभ्यता के विकास स्तर का भी ध्यान रखा गया। उदाहरणत, जो बहुत पिछड़े हुए कबीले थे, वे निम्न श्रेणी में ही रखे गये। इस प्रकार, उन्हें भारतीय समाज में स्थान मिला।

(3) जाति उपजाति विकास की एक विशेषता यह है कि आर्यों के सन्दर्भ से भले ही वे हीन हो किन्तु उनका प्रत्यक्ष शासन उसी विशिष्ट जाति अथवा उप-जाति द्वारा ही होता था। अर्थात् उत्पादन के क्षेत्र में वे एक Trade Guild का भी काम करते थे। ऐसी Trade Guilds मौर्य, गुप्त, शुंग जैसे उत्तरकालीन साम्राज्यों में थी, बहुत थी।

(4) जाति मुख्यत जन्मना और कर्मणा दोनों ही होती थी। ब्राह्मण का लड़का ब्राह्मण, और शूद्र का लड़का शूद्र। उनके कार्य व्यवसाय के क्षेत्र भी पहले से ही निश्चित थे। शूद्र ब्राह्मण का कार्य और ब्राह्मण शूद्र का कार्य नहीं ही कर सकता था।

(5) हमारे यहाँ जाति व्यवस्था (विशेषत, शूद्र श्रेणी की स्थिति) शोषण-व्यवस्था पर आधारित है। श्रमिकों और सेवकों का शोषण।

(6) उन्हें उच्च शिक्षा का अधिकार न होने से (शूद्रों के कर्म) कला-कारीगरी, उत्पादन-कौशल को, यूनिवर्सिटियों के शिक्षा क्रम में कोई स्थान नहीं दिया गया। अमूर्त चिन्तनात्मक बुद्धि का प्रयोग कला-कौशल जैसे विषयों पर नहीं हुआ।

परिणामत प्राकृतिक शास्त्रों का—विज्ञान का—विकास हमारे यहाँ नहीं हो सका, जैसा कि वह यूरोप में हुआ।

इस्लाम के आक्रमण के अनन्तर, बहुत-सी निम्न जातियों ने धर्म-परिवर्तन कर लिया। इस्लाम और ईसाईयत हिन्दू धर्म तथा समाज से अधिक जनतान्त्रिक हैं।

भारत में ब्रिटिश साम्राज्यवाद के आक्रमण के फलस्वरूप, पुरानी सामन्ती समाज व्यवस्था बदल गयी और नवीन पूँजीवादी समाज रचना की स्थापना हुई।

इसका परिणाम जाति-व्यवस्था पर भी हुआ। उदाहरणत , सामन्ती समाजव्यवस्था मे शूद्र शिक्षा का कार्य नही कर सकता था, अब कई निम्नवर्गीय जन उच्चतर व्यवसायो मे है। इसी प्रकार स्त्री पर भी जितने अकुश पहले थे उतने नही रहे।

फिर भी, जाति-व्यवस्था ने एक दूसरे ढग से जोर पकडा है। वोट प्राप्त करने के लिए जातीय भावनाओ को उकसाया जाता है, नौकरी तथा अन्य लाभ प्रदान करते समय जाति को, गैर-रस्मी तरीके से, विचार मे रखा जाता है। उदाहरणत, यदि मन्त्री कायस्थ हुआ तो वह कायस्थ को विशेष प्रश्रय देता है, और यदि वह निम्न जाति का हुआ तो निम्न जातिवालो को।

[illegible]

है। मैं तो दया करते-करते हार चुका।

आशा है, आप मेरे इस लम्बे पत्र को कष्टप्रद पठन नही समझेंगी।

पत्र का उत्तर अवश्य देंगी।

आपका ही
ग मा मुक्तिबोध

[3]

राजनांदगाँव

प्रिय सौभाग्यवती आग्नेय्काजी सोनी,

लगभग दो महीने बाद आपके पत्र का उत्तर दे रहा हूँ। देर के लिए क्षमा करेंगी।

आपका पत्र अनेक दृष्टियो से महत्त्वपूर्ण था, सैद्धान्तिक दृष्टि से विशेषकर।

आपका यह वाक्यांश—"यह शक करना कि कोई भी साहसमय विचार-पद्धति, कोई भी नवीन कलात्मक प्रयोग वगैरह, साम्यवादी आदर्शो को हानि पहुँचा सके (जो आदर्श जन-साधारण के जीवन का रक्त बनकर जीवन म ही घुलकर, किताबी 'वाद' से अनिवार्यत कुछ दूर हो गये हैं, आगे निकले हैं)—ऐसा शक करना, न केवल बुद्धिजीवियो मे, बल्कि जनता से भी घोर अन्याय और अविश्वास करना है।"

आपके इस अभिमत से मैं शत-प्रतिशत सहमत हूँ। सहमत ही नही, वरन् इस स्थापना को मैं अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और सार्थक समझता हूँ। साम्यवादी जगत मे कला-सम्बन्धी प्रश्नो को लेकर जो हलचल है, उसके सन्दर्भ म आपका यह मत अत्यन्त साधार और उपयोगी है, वह मार्ग-निर्देश भी करता है।

किन्तु, मेरे पिछले पत्र मे पोलैण्ड के सम्बन्ध मे मैने जिस ढग से राय जाहिर की, शायद उस ढग के कारण आपको कुछ गलतफहमी-सी हो गयी—ऐसा लगता है।

भारत मे साम्यवादी आन्दोलन पर रूसी चिन्तन का अत्यधिक प्रभाव रहा है, और है। इसीलिए, उस प्रभाव की पार्श्वभूमि मे, पोलैण्ड नवीन, आश्चर्यजनक और मन को मुग्ध करनेवाला लगता है। वहाँ पर उपस्थित स्वतन्त्रता का वाता-

वरण—ऐसी स्वतन्त्रता का जो विभिन्न वर्गों और जन-श्रेणियों के बीच वैचारिक आदान-प्रदान की स्वतन्त्रता तो है ही, कला-सम्बन्धी ऐसी स्वतन्त्रता है जिसका प्रकटीकरण तब भी होता है, जब लेखक पोलैण्ड की उपलब्धियों-सम्बन्धी लेख में सरकार की ही आलोचना कर बैठता है—ऐसी पत्रिकाओं में—जो सरकार की अपनी पत्रिकाएँ या पुस्तकें हैं—यानी सरकार के आत्मविज्ञापन के रूप में प्रकाशित पत्र-पुस्तकें हैं—तब ऐसी स्थिति में हम लोग, जो पोलैण्ड को विशेष रूप से नहीं जानते, आश्चर्य से मुग्ध हो जाते हैं। (अमरीका, ब्रिटेन,भारतवर्ष आदि की सरकारी पत्र-पुस्तकों मे [illegible]

पोलैण्ड [illegible]

स्वातन्त्र्य [illegible]

लोगों के मन में स्वभावत उठता है। किन्तु, यह प्रश्न, विरोध और आलोचना की भावना से संयुक्त होकर नहीं उठता, वरन विस्मय, आनन्द और कुतूहल के भाव से पूर्ण होकर उपस्थित होता है। उससे पोलैण्ड के अद्वितीयत्व का बोध होता है, साथ ही उसका उदाहरण हमें अत्यन्त अनुकरणीय मालूम होता है। अब तक केवल रूसी नमूना था, अब पोलैण्ड का भी उदाहरण मौजूद है। वह एक ज्योतिस्तम्भ की भाँति सर्वत्र अपना प्रकाश विकीरित करेगा।

अब तक साम्यवाद पर यह आरोप लगाया जाता है कि वहाँ व्यक्ति-स्वतन्त्रता का, कलाकार की स्वतन्त्र चेतना का हनन होता है। अब हमारे सामने पोलैण्ड-जैसा प्रकाशमान देश भी है, जिसे सामने रखकर यह कहा जा सकता है—लोगों को समझाकर कहा जा सकता है—उन्हें बताया जा सकता है—साम्यवाद के ऐसे महान देश भी हैं जिनमें स्वतन्त्रता के उच्च आदर्श वर्तमान हैं।

दुर्भाग्य की बात है कि भारत में पोलैण्ड का उतना अधिक प्रचार नहीं है, न उसकी ओर पोलिश सरकार प्रयत्नशील है— जितना कि रूस-जैसे देशों का प्रचार। फिर भी, यह निर्विवाद है कि आगे चलकर भारत की समाजवादी जनतान्त्रिक शक्तियाँ अधिकाधिक पोलैण्ड के नजदीक आयेंगी।

पोलिश राजदूतावास ने कृपापूर्वक मेरे पास मिस्कियाविच सम्बन्धी एक पुस्तक तथा अन्य पुस्तकें भेजी। मिस्कियाविच के काव्यांश (जो उसमें उद्धृत थे) पढ़कर आश्चर्य का ठिकाना न रहा। वह सचमुच विश्व की प्रथम श्रेणी का कवि है। उसके पास बैठकर उससे प्रेरणा [illegible]

(अज्ञान मेरा देखिए—मैंने पहले कभी [illegible]

पुस्तकें अवश्य ही जमा करूँगा) इन्हीं [illegible]

कि पोलैण्ड विश्व को नवीनतम और महत्तम उपलब्धियाँ प्रदान करेगा। मेरा तो अपना विचार है (कहीं यह सपना न रह जाय) कि पोलैण्ड के सम्बन्ध में मैं स्वयं एक पुस्तिका लिखूँ। कई बार पोलैण्ड के सम्बन्ध में लिखने का मन होता है—हमारी भारतीय पार्श्वभूमि और वर्तमान जीवन की हमारी समस्याओं के सन्दर्भ में। देखें कब यह पूरा होता है। भारतीय पाठकों के लिए यह पुस्तिका मनोरंजक हो सकती है, ऐसा लगता जरूर है।

दिवाकर की तबियत अब पहले से काफी अच्छी है। उसको एक दूसरे मकान में रख दिया गया है—तालाब की समीपता से हटाने के लिए।

मैं आपके पास शीघ्र ही अपनी कुछ कविताएँ रवाना करूँगा। हाँ, संकेत वाली

कविता अन्य कविताओ से ज्यादा अच्छी है, वैसे, इस प्रकार का कुछ कहना मेरे लिए बहुत कठिन है।

बीच-बीच मे साहित्य-सम्बन्धी-प्रश्न—मेरे अपने प्रश्न—उठते रहे। और लगा कि किसी से बातचीत की जाये। वैसे, बातचीत करने से, कोई विशेष लाभ नही होता, क्योकि हिन्दी का लेखक उन्हे समझ ही नही पाता, या यो कहिए कि प्रत्येक लेखक की अपनी-अपनी लेखकीय समस्याएँ इतनी भिन्न-भिन्न रहती हैं, कि सम्भवत, कोई वैचारिक सहायता हो नही पाती, एक-दूसरे की। इन्ही सब कारणो से, या कहिए ऐसी ही निजी लेखकीय समस्याओ से ग्रस्त होकर, मैने बहुत कुछ लिखा और अधूरा छोड़ दिया। फिर भी, इनमे से एकाध दो रचनाएँ आपके पास भेजूंगा। जो रचनाएँ बहुत-बहुत लम्बी होगी, वे ऐसी मानसिक अवस्थाओ के पहले लिखी जा चुकी हैं। इन लम्बी रचनाओ मे से मैं एक आपके पास अवश्य भेजना चाहता हूँ।

आपका काम यहाँ तक बढा है? इसके सम्बन्ध मे सूचना दीजिए।

मेरे इस पत्र के उत्तर म जब आपका पत्र मुझे मिलेगा तब मैं यह समझूँगा कि आपको यह पत्र मिल चुका है, और आप इस समय इलाहाबाद ही है। आपके निवास की निश्चित स्थिति म, कविताएँ आपके पास रवाना करना उचित होगा।

मेरा हार्दिक अभिवादन स्वीकार कीजिए, और श्री सोनीजी को मेरा नम्र प्रणाम अवश्य पहुँचायें।

स्नेहपूर्वक,

आपका ही
ग मा मुक्तिबोध

[4]

राजनांदगांव
9 दिसम्बर [1963]

प्रिय सौ० आग्नेयकाजी,

आशा है, आपन पूर्ण स्वास्थ्य-लाभ कर लिया होगा। सचमुच आप लोग खूब मेहनती हैं। पेडरेस्की फाउण्डेशन की पत्रिका में मैंने आपका लेख पढ लिया। इतनी छोटी-सी जगह म, सक्षेप मे ही क्यो न सही, आपने नवीन काव्य-प्रवृत्ति पर सर्वांगीण रूप से प्रकाश डाला। मुझे वह लेख एकदम नया लगा। चूंकि मै भी एक अध्यापक हूँ, इसलिए, अध्यापन की दृष्टि से भी वह मुझे मूल्यवान प्रतीत हुआ। लेख म आपने मेरा भी उल्लेख किया, बहुत अच्छे ढग से। एक लेखक की हैसियत से, मुझे उसके लिए आपको हृदय से धन्यवाद देना चाहिए।

[illegible] के सम्बन्ध मे
द्वारा
है, जो
गयी
हैं, उनको हिन्दी मे, समग्र और अविकल रूप से, आप अवश्य-अवश्य लाये, जिससे कि हम लोगों का, हिन्दी का, कल्याण हो। यदि आप उन विचारकों और साहित्यिको के लेख और प्रवन्ध हिन्दी मे अनुवादित कर सकें, अनुवादित करने का

कष्ट करें, तो आपके हाथों एक प्रभावशाली कार्य होगा, और हिन्दी के हम जो लोग हैं वे यह कह सकेंगे कि हमारी विचारधारा में कहीं भी, (तथाकथित) रेजीमेण्टेशन नहीं है। हम लोगों के हाथ मजबूत होंगे। इस प्रकार, हमारे यहाँ एक नवीन समीक्षात्मक चिन्तन आरम्भ हो सकेगा। आशा है, आप अपने स्वास्थ्य और सुविधा को ध्यान में रखते हुए, इस कार्य को हाथ में ले सकेंगी।

मुझे नहीं मालूम था कि आप इतनी अस्वस्थ रही हैं। मैंने तो यह सोचा था कि किसी कारण मेरी पिछली चिट्ठी आपको मिली नहीं। यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आप अब कुछ अच्छी हैं। स्वास्थ्य की तरफ अवश्य ही ध्यान दीजिए। मेरी चिट्ठी का जवाब जल्दी देने की कोई आवश्यकता नहीं। मन चाहे तब, निःसंकोच, उत्तर दीजिए।

मैं अपनी एक कविता आपके पास भेजने का इच्छुक था। उसे मैंने टाइप करा लिया है। बहुत लम्बी है। आप ऊब जायेंगी। अप्रकाशित है वह। टाइपिंग में बहुत भूलें हैं। कोई पत्रिका ऐसी नहीं जो उसे छापे। सम्भव है, वह कविता भी बहुत रद्दी किस्म की और तीसरे दर्जे की है। आपके पास भेजने में मुझे संकोच होता है। उसमें एक आशंका है, अँधेरी आशंका का वातावरण है—कहीं हमारे भारत में ऐसा-वैसा न हो। (आप अवश्य ही अपनी प्रतिक्रिया लिखकर भेजेंगी—यदि चाहें तो)।

मैं कल 10 दिसम्बर को उसे रवाना कर दूँगा। यदि वह 20 दिसम्बर तक इलाहाबाद नहीं पहुँची, तो कृपया उसे re direct करवा लीजियेगा। पहुँच तो जायेगी ही, समय के अन्दर, ऐसा विश्वास है। मेरी एक पुस्तक—लेख-संग्रह—प्रकाशन के लिए चली गयी है। छप जाने पर उसकी एक प्रति आपके पास भेजूँगा।

पिछले कई दिनों से मेरा स्वास्थ्य अच्छा नहीं रहता है। मेरे हाथ-पैरों में एक्ज़िमा हो गया है। अनियमित जीवन-चर्या सबसे बड़ा रोग है।

यहाँ आपको सब लोग खूब याद करते हैं। पत्र समाप्त होने जा रहा है। पता नहीं कब आपके दर्शन हों।

मान्यवर सोनीजी से नमस्कार कहियेगा। अब आप पोलैण्ड पहुँचेंगी, तो माताजी से हम सबका नम्र नमस्ते कहियेगा।

मस्त रहिए।

आपका ही
ग. मा. मुक्तिबोध

[5]

राजनांदगाँव
[मार्च 1964]

प्रिय० सौ० आग्नेष्काजी सोनी,

मेरा सस्नेह अभिवादन स्वीकार कीजिए। आपकी चिट्ठी मिले एक लम्बा अर्सा गुज़र गया। लेकिन बीमारी की वजह से मैं उसका उत्तर समय पर नहीं दे सका था। मेरी कविता की जो आपने श्रमपूर्वक आलोचना करके मेरे पास भिजवायी उसके लिए अनुगृहीत हूँ। तब मैंने जाना कि वह स्थान-स्थान पर कितनी

कमजोर हो गयी है। कविता को वाछनीय रूप देने का मैंने प्रयत्न भी किया किन्तु, बीमारी ने कुछ ऐसा धर दबाया कि मैं उसमे अभी तक कोई फर बदल नही कर सका हूँ। यद्यपि यह आवश्यक प्रतीत होता है कि त्रुटियो के परिहार के लिए आपकी आलोचना के प्रकाश म उसम यथेष्ट परिवतन आवश्यक है। मुझ ज्ञात हुआ कि वह कविता दिल्ली की किसी मित्र गोष्ठी म पढी जान का प्रस्ताव था। नि सन्देह उसके प्रति भिन्न भिन्न प्रकार की प्रतिक्रियाएँ हुई होगी। मैं उन्हे जानना चाहूँगा ताकि मेरी स्वय की कला चेतना अधिक विकसित हो सक। अपन व्यस्त कायक्रम म स कुछ समय मेरे लिए अवश्य ही निकालियगा और उन प्रतिक्रियाओ को मुझ तक पहुँचान का कष्ट करियगा।

मलय के नाम

राजनांदगाँव
30 अक्टूबर

प्रिय मलयजी

आपका पत्र यथासमय मिल गया था। पत्रो द्वारा आपके काव्य का विवेचन करना सम्भव होते हुए भी मेरे लिए स्वाभाविक नही था इसलिए कि साक्षात् व्यक्तिगत परिचय के ठोस आधार से रहित होने की स्थिति मे मेरी बातें शायद सही ढग स न ली जाती या म शायद सही ढग से उन्हे पहुँचा ही न पाता वगैरा वगैरा खतरे रहत है। उम्र ज्यो ज्यो बढती जाती है सफेद होती है त्यो त्यो खतरो स डरती है।

झूठा प्रोत्साहन मैं नही देता। आप विनोद स पूछ सकते हैं कि नये लखक को कविता लिखने से रोकनेवाली मेरी सलाह होती है। पता नही विनोद ने उसे कैसे झेल लिया।

आपकी कविता उलझी परिस्थितियो की ओर या उसके भीतर पायी जानेवाली ग्रथिल मन स्थितियो की कविता है—इसीलिए शायद उसमे स उलझाव हटाना होगा। जैसे साफ सडक होती है वैसी ही वह हो। चक्करदार गलियो मे चलने वाले को भी चक्कर नही आन चाहिए और मकान मिल जाना चाहिए।

मतलब यह कि आपकी कविताएँ जो मैंने पढी श्रेष्ठ सम्भावनाओ की द्योतक है किन्तु शिल्प असावधान है। आप बुरा न मानेंगे। प्रत्येक लेखक को अपने अपने शिल्प का विकास करना होता है—इसे आप स्वय भी समझते हैं।

शेष बातें जब कभी मिलेंगे तब होगी।

आपका
ग मा मुक्तिबोध

[1]

मित्रवर (डॉ प्रभाकर माचवे),

यह सुनकर—यह मैंने बहुत पहले सुना था—कि आप विदेश जा रहे हैं, अपार हर्ष हुआ था। परन्तु, उसे प्रकट करने के लिए कलम हाथ में लेकर काम करने की जो आवश्यक प्रवृत्ति होती है, उसके अभाव में मैंने आपसे कोई पत्र-व्यवहार नहीं किया। आते-जाते लोगों से आपके समाचार मालूम होते रहे। परसों जब आपका पत्र पाया तो मजा आ गया। यहाँ इस छोटे नगर में—मित्रों से कटा हुआ हूँ—जब कोई मित्र [illegible], परन्तु मैं

[illegible]। डर लगता है उकताहट में कहीं इस शहर को भी छोड़ न बैठूँ। किसी बड़े शहर में लेक्चररी करके कुछ अनुसन्धान वगैरह करने की इच्छा होती है।

आशा है, हमारी भाभी और बालकगण सानन्द हैं।

आपका अपना,
ग. मा. मुक्तिबोध

[2]

राजनाँदगाँव
24 2 64

प्रिय प्रभाकर माचवे,

आपका पत्र प्राप्त होते ही न मालूम कितनी ही पिछली स्मृतियाँ तरोताजा हो उठीं। आपकी सहानुभूति और प्रेम के सम्बन्ध में मुझे कभी सन्देह नहीं रहा। आप जैसे लोगों के दिल मेरे लिए कुछ-न-कुछ करायेंगे ही।

आपसे मिलने की उत्कण्ठा बराबर बनी रहती है। आपका प्रेम मेरे लिए एक सहारा है। विस्तार से पत्र लिखने की स्थिति में न होने के कारण रमेश से पत्र लिखवाता हूँ।

वहिनी को मेरा नमस्कार एवं बच्चों को प्यार। मेरा सस्नेह अभिवादन ग्रहण करें। पत्रोत्तर की प्रतीक्षा रहेगी।

आपका ही,
ग. मा. मुक्तिबोध

भारतभूषण अग्रवाल के नाम

Bhopal
8 4 64

Dear Bharat Bhushanji

You have very kindly made querries regarding my health Dr D P Shrivastava of this hospital as well as Prof Gupta of the Pharmachological Deptt had made visits on your be half

As a matter of fact in a letter to Nemiji I had made known to you (through that letter of course) my condition Shrikant also told me of your kindly feelings for me I take up this occasion to express my gratitude for your indulgence in me I am very sure I shall have such time when I can see you and talk with you As a matter of fact Dr Gupta also suggested the likelihood Thanks You may drop in here some time

Now I am slightly better than befor and I am sure I shall soon recover This is a disease which takes a long time to get cured

Give my Best Compliments to our Binduji Now you have a Ph D at home I hope she provided a philosophical dose to *your literary moods Ask her to kindly remember me My love* to your children who must have grown up into young chaps about to touch the higher scales of life

With warm feelings,

Yours Truly
G M Muktibodh

Address—Private Ward No 4
Hamidia Hospital Bhopal

P S you will excuse me for my dirty handwriting and clumsy letter

Com S A. Dange Rajnandgaon
Chairman C P I
NEW DELHI
Dear Friends,

It is with a heavy heart that I am writing to you this letter for your serious consideration

My statement can be divided into two parts one The Criticism Two The suggestions The first part is organically connected with the second Hence, I have given place to both My statement is also very short and does not cover all the aspects

It is a well-known fact that since Independence, the progressive movement in Hindi literature which once dominated the scene, has been losing one ground after another, and is now leading precarious and tenuous existence, while the Reactionary offensive has mounted, has already achieved considerable success, built up and consolidated its influence among Hindi writers, to a very great extent

The successes, which the Reactionary offensive achieved are not merely due to the economic might of the millionaire press, not merely due to its ideological linkings with imperialist anti communist forces, not merely due to the considerable opportunist trends in Middle Class Life, but are also due to the extrem
and partic
weakness
to have gr
little longer

It is a well known fact that Reality is changeful, that new issues come up for consideration and solution that old attitudes which were best suited for former times, when fossilized do not solve them, but on the other hand accentuate the existence of problems

It is also a well known fact that a Marxist is a practical scientist and that it is the business of any science to observe, understand analyse and systematize facts and evaluate them, and also to *evolve suitable methods and suitable approach* to

rary centre,
opments in
v trends in
Hindi poetry from its very inception, and continued to denounce them even afterwards, while this new trend continued to develop and enlarge its base

This experimentalist or new poetry, which came into being in the last decade of pre Independence period and developed further along (I happen to be one of its founders) was not in its first and second phases of development necessarily hostile to the party, not necessarily hostile to Marxism was not necessarily hostile to the popular cause to socialism It was not even hostile to the cradle land of socialism—Russia Actually during its first phase of development majority of its *writers were under the general influence of Marxism Many of* its writers associated with the party, worked with the party and observed its discipline

But, then why it was made the object of the continued antogonistic posture of leading Marxist critics (who spoke as if they were the spokesmen and interpreters of Marxism) Why this new trend was vehemently and continually attacked? This new trend was highly individualistic in its form and content no doubt It was full of misery and wretchedness and some times cynicism And yet during its first and second phases of development i e up to 1953 54 56 magnificent poems on *World Peace on working class struggle (both by शमशेर) on* Glory and Beauty of India and its culture (नरेश मेहता) and against capitalist society (मुक्तिबोध) also appeared from among these writers

A dispassionate study of this new trend was necessary While welcoming a few such poems (as stated above) the entire trend was denounced with an antagonistic hostile ruthlessness The Writers after a long experience of leading Marxist critics felt that these critics did not understand litera

in the lives of writers
nderstand the genesis
oblems that it raised
questions was inter

preted as a new individualistic observation They did not

poetry and s relat on to the

cramp
feudal
of the
sperate

e tradi
ervour
lectrify
ives of
tinuous
ut they
C P I
xistence
villages

The further capitalist development in India, the accentuation of contradictions in social life, the further disintegration ... ...oblems, and cramp- ...ffered, the growing ... uch factors—in the ... life-giving revolutionary movement—in the conditions of individualism and ... of Marxist Writers and ... semi aristocratic ways ... xchange of opinion and fresh thinking within these Marxist leaders in literature—it is in such conditions when Marxist literary (so called) thinkers isolated themselves, with arrogant and sheer individualism, from the mainstream of creative literary writers—it is in such conditions of further capitalistic development that disillusionment, feelings of extreme misery, wretchedness, cynicism and individualistic self absorption (a streak of which was already there) became accentuated, and went on finding literary expression in the new poetry Of course, this literary expression was highly individualistic in the sense that it lacked socialist perspective and inspiration, but it arose from life itself, it was true to life, it was true to realities as experienced by writer.

And, yet, in individual poems here and there it had certain ...

... For a considerable length of time socialistic inclinations persisted.

But the whole trend the entire new poetry was denounced ... nportant *leading* ... were ignored ... istic posture by Marxist critics, that Reaction mounted its offensive and tried to remove whatever little traces the poetry had, of marxist influence The object of the Reaction was to finish off Marxist influence in the field of literature, and the filed of poetry offered them a ready ground

As I have told you, every new movement in poetry brings forth its own aesthetic and philosophic questions Many of such questions, put up by these writers before the marxist critics for consideration, were relegated, ignored or super- ...

The Reaction worked in an organised way with its army of publishers, professors thinkers, poets, writers and organisers. *It must be said in their favour that* they worked hard, and produced vast literature, gave due respect to literary values, and to each others opinion There was much give and take between themselves as compared with the all exclusive, insular fossislized attitudes of so-called leadership of the Progressive Movement, now in almost complete paralysis And, so what is needed today?

1 A literary monthly—well organised and well brought out monthly—with broad democratic progressive outlook, and in the columns of which dialogues take place between one marxist and other marxist writer, between one marxist and other non marxist writer, between one non marxist and other

mainstream of literature Any failure to do this will retard progressive movement and isolate party writers that is, writers of marxist moorings

The paper should try to isolate the Reactionary Core, Reactionary centre from the main body of creative writers by—

(A) concentrating its main fire on the Reactionary thought,
...der its Influence
reaction and
one by meeting
the arguments of the other side *point by point* so that the writers may be *convinced* of the correctness of our attitudes and arguments

(B) *Weaning writers* to our side by *giving their* healthy features due prominence

(C) At the same time theoretical development through the columns of this paper must take place So long we have *been adopting attitudes drawn* from Russian literary ideology
... of French Ital an Polish Hungarian
, a well known fact
le literary thinking
problems of life,
literature and arts

(D) Much anticommunist statements of prejudices and ideas many anticommunist attacks appear in different Hindi *literary papers* They must be answered back No one among us answers them at present And yet many well known marxist writers write in the columns of those very papers and yet they do not answer them back and thus those statements go un-*challenged*

The most important task is to choose the main enemy the main target and to attack it in such a way that the attack wins

over more and more friends and isolates the enemy.

If the attack from our side is conducted in such a way that it, in place of isolating the enemy, makes it more and more consolidate its ground, then such attack is worthless.

In other words, we have to study carefully the theoretical works, theoretical attitude and approaches of the enemy and answer them coolly and correctly in such a way that we win over the minds of the writers. A careful and systematic study must be undertaken, point by point countering is very much needed. This we have to do, not in the marxist jargon, but in a language and in a terminology that writers understand. And, if an analysis of a particular point by the enemy happens to be correct we should concede that point Blind antagonism wont do the needful It is with this scientific attitude that we can win over writers by proving to them that while we are faithful to socialist cause we can remain faithful to realities, faithful to truth, faithful to the facts of life

It is in this way alone that spiritual leadership can be provided to the writers

for party ends Atleast Reaction will utilize this opportunity by rousing the fears of these writers and by further expending

literary conferences where discussions and seminars are held, with the hard core of progressive thinkers at the helm, and then conducting the conferences in such a way that a progressive tone is given to the whole thing Such conferences should be held regularly, so that a new progressive literary awakening takes place

III In the same way, we should have small and big publishers, so that right sort of works can be put in the market.

IV. Progressive writers must be deep, *profound and excellant*

has gone

They for

facturing books after books but to no great consequence.

Artistic work must be upheld and inartistic progressive

so ever great and popular

jargon-ridden, dogmatic

uch to do with the set-

ient suffered in the last

decades

The profoundly artistic and valuable progressive literary works are the best answer to the Reaction, because such works will have lasting value and profound impact Merely ideological attitudes, in place of profound meaning and artistic excellence, will not make progressive writers more influencial

When an atmosphere is created in favour of progressive thought, then perhaps an organisation like old PWA will be effective, but not now

If the above mentioned things are done in a progressive, democratic and honest spirit I am sure slowly and by stages, an atmosphere in favour of progress will come into being and dominate the literary scene

This particular period in Hindi literature is auspicious, because a new revolt against decadence seems to rise up and needs support This revolt is from within the womb of the *new trend itself, and must be channelized and directed towards* progressive ends

My letter has become long I cannot help it It contains perhaps many errors of judgement, understatements and overstatements or non statements of many other important po nts

It needs improvement, no doubt But self criticism on the part of progressive thinkers, *critics and writers is long overdue*

And lastly, I am unable to reveal my identity to you But perhaps you know me, as several others do

Your comradely
xyz

भारत : इतिहास और संस्कृति

जल रही है लाइब्रेरी
पार्सिपालिस को
मैंने सिर्फ नालिश की
मैंने सिर्फ मालिश की
अंधेरी जिस मशालत में···

दो शब्द

गजानन माधव मुक्तिबोध, मेरे पिताजी, ने साहित्यिक रचनाओ के अलावा अन्य कुछ कृतियो की रचना की है। समय-समय पर आये हुए सकटो की उलझनो से छुटकारा पाने के लिए, उनसे उबरने के लिए, यही एक तात्कालिक उपाय उन्हे सूझा होगा। इस प्रकार की कृतियो मे माध्यमिक कक्षाओ की सामाजिक अध्ययन की पुस्तकें (विदर्भ, महाराष्ट्र), विश्वविद्यालयीन कक्षाओ की पुस्तको के सरल-अध्ययन (सागर विश्वविद्यालय), तथा प्रदेश की मैट्रिक की कक्षाओ के लिए द्रुत-पठन की यह पुस्तक विशेष उल्लेखनीय है। इस प्रकार की यह अन्तिम तथा महत्त्वपूर्ण कृति है। यह पुस्तक सन् 1962 मे लिखी गयी और उसी वर्ष 'नैतिकता तथा भद्रता' के विरुद्ध होने का आरोप उस पर लग गया। यह प्रदेश शासन ने अपने गजट मे प्रकाशित भी किया।

वस्तुत यह पुस्तक विस्तृत रूप से लिखी गयी थी और यह विस्तार पाठ्यक्रम की सीमा-रेखा को भी मार कर गया। अत बाद मे पुस्तक को पाठ्यक्रम के दायरे मे लाकर उसे सक्षिप्त रूप से प्रकाशित किया गया। शेष पुस्तक-अश को अलग कर दिया गया। इस कार्य मे पिताजी के अन्तरग मित्र, मेरे आदरणीय और मार्गदर्शक श्री हरिशकरजी परसाई का उल्लेखनीय योगदान रहा है। बल्कि यूँ कहा जाय कि उनकी ही पहल से यह पुस्तक सम्भव हो पायी है, तब भी और इस बार भी।

पुस्तक को पाठ्यक्रम के रूप मे स्वीकृति मिली। प्रदेश के दैनिक व साप्ताहिक पत्रो ने पुस्तक की मूल वैज्ञानिक अनुसन्धानवादी जमीन को न केवल सराहा, वरन् उस नवीन दृष्टिकोण को पुख्ता बनाने मे अपना सहयोग भी प्रदान किया।

इसी बीच यह पुस्तक पाठ्य-पुस्तक प्रकाशको के सयुक्त स्वार्थो के षड्यन्त्र के योजनाबद्ध आक्रोश का प्रदेश के कई नगरो मे शिकार बनी। और अन्तत एक असाधारण राजपत्र (क्रमाक 154, भोपाल, बुधवार दिनाक 19 सितम्बर, 1962) के द्वारा **भारत इतिहास और संस्कृति** जन सुरक्षा अधिनियम के अन्तर्गत 'भद्रता तथा नैतिकता' के विरुद्ध घोषित कर दी गयी।

पुस्तक-प्रकाशक ने जबलपुर हाईकोर्ट मे अपना दावा प्रस्तुत किया। मुक्तिबोधजी ने अथक परिश्रम से पुस्तक के पक्ष मे, आपत्तियो के विपक्ष मे अन्य लब्धप्रतिष्ठ इतिहासविदो की पुस्तको से उद्धरण-पर-उद्धरण खोजकर उन्हे कलमबन्द किया। वैचारिक धरातल पर इतना मानसिक त्रास उन्हें कभी भोगते नहीं देखा। वे कहा करते—मेरी किसी मौलिक रचना को आपत्तिजनक मानकर

सरकार पाबन्दी लगाती तो कोई बात भी बनती। किन्तु वस्तुत. जो सर्वथा मेरी मौलिक रचना नहीं है वह किस प्रकार आपत्तिजनक घोषित हुई, यह कोई मुझे समझा दे।

शासन की ओर से कुल दस आपत्तियाँ पुस्तक के विरुद्ध पेश की गयी। इनमे वे भी शामिल थी जो आन्दोलनकर्ताओ ने चुन-चुनकर गिनायी थी। इनमे से चार को सचमुच आपत्तिजनक माना गया। विद्वान न्यायाधीश ने अन्त मे फैसले की व्यवस्था देते हुए आदेश दिया कि आपत्तिजनक प्रसगो को पुस्तक से खारिज कर पुस्तक को पुन. प्रकाशित किया जा सकता है। यह घटना अप्रैल सन् 1963 की है।

अत. हाईकोर्ट के फैसले के आदेश का पूर्ण सम्मान करते हुए आपत्तिजनक प्रसगो को पुस्तक से पृथक करके **भारत : इतिहास और संस्कृति** अपने समग्र रूप मे प्रस्तुत की जा रही है। मुक्तिबोधजी की इच्छा थी कि कम-से-कम सामान्य रूप मे **भारत : इतिहास और संस्कृति** जनता के समक्ष रहे। मेरा प्रयत्न रहा है कि जिस स्वरूप मे पुस्तक लिखी गयी, हू-ब-हू उसी स्वरूप मे वह पाठको के सामने आये। समग्र पुस्तक का जो अनुक्रम मुक्तिबोधजी ने बनाया था उसी के अनुसार अध्यायो का क्रम रखा गया है। बावजूद इसके तीन अध्याय ऐसे रह गये जिनको समग्र अनुक्रम मे सम्भवतः भूलवश स्थान नही दिया गया था। इनमे से दो अध्याय प्रकाशित पुस्तक मे सकलित थे अतः उसी क्रमानुसार रखे हैं। तीसरे अध्याय को उसकी विषयवस्तु का ध्यान रखते हुए क्रमबद्ध किया है। इन अध्यायो के अन्त मे इस बाबत टिप्पणी भी दी गयी है।

प्रकाशित पुस्तक के प्रत्येक अध्याय के अन्त मे प्रश्नावली दी गयी थी और यही स्थिति शेष पुस्तक-अश मे भी थी। चूँकि प्रकाशित पुस्तक पाठ्यक्रम के उद्देश्य से बनी थी इस कारण अध्यायो के अन्त मे प्रश्नावली का औचित्य था, उसका प्रयोजन था। किन्तु अब सामान्य रूप से पुस्तक प्रकाशित हो रही है अत प्रश्नावली को अध्यायो के अन्त मे न रखकर एक साथ समस्त अध्यायो की प्रश्नावली क्रमवार परिशिष्ट मे रखी गयी है। यह इसलिए किया गया कि मुक्तिबोधजी के लेखे किस अध्याय मे किन मुद्दो को उन्होंने महत्त्वपूर्ण माना, यह सुधी पाठक जान पायें।

इस पुस्तक को तैयार करने मे मुझे मुक्तिबोधजी के मित्रो का सहयोग और मार्गदर्शन मिला है। इनमे श्री नेमिचन्द्र जैन तथा श्री अशोक वाजपेयी विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। जबलपुर के श्री ज्ञानरजन ने हाईकोर्ट के फैसले की सत्य प्रतिलिपि उपलब्ध करायी, उनके सहयोग के लिए उनका हृदय से आभारी हूँ। राजकमल की प्रबन्ध-निदेशिका श्रीमती शीला सन्धू ने मुक्तिबोधजी के समस्त साहित्य के प्रकाशन का जो उत्तरदायित्व स्वीकारा है, उसमे इस पुस्तक का प्रकाशन एक महत्त्वपूर्ण कडी है।

11 सितम्बर 1985 — **रमेश मुक्तिबोध**

भूमिका*

यह ग्रन्थ मौलिक नही है। जहाँ से जो मिला, लिया। दृष्टिकोण यही रखा कि वस्तुस्थिति की समग्रता, जो हमारे जीवन को बनाती है, उसे न छोड़ा जाय। उस समग्र ही के दृष्टिकोण से इतिहास-रचना की जाय।

यह ग्रन्थ केवल विद्यार्थियो के लिए नही है, सामान्य जन के लिए भी है। इतना काफी है।

गजानन माधव मुक्तिबोध

यह पुस्तक**

यह इतिहास की पुस्तक नही है—इस अर्थ मे कि सामान्यत इतिहास मे राजाओ, युद्धो और राजनैतिक उलट फेरो का जैसा विवरण रहता है, वैसा इसमे नही है। इस पुस्तिका का वह प्रयोजन भी नही है, क्योकि वह राजनैतिक इतिहास का विषय है। समाज की गतिशीलता म राजनैतिक प्रक्रिया अनेक प्रक्रियाओ मे से एक है। समाज को विकासशील बनानेवाली अन्य महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया है, सास्कृतिक प्रक्रिया। जीवन जैसा है उसे अधिक सुन्दर उदात्त और मगलमय बनाने की इच्छा आरम्भ से ही मनुष्य मे रही है। यही इच्छा जब सामाजिक स्तर पर रूप लेती है, तब वह सस्कृति कहलाती है, जिसके अन्तर्गत धर्म, नीति, कला, साहित्य, सगीत आदि आते हैं। सस्कृति समाज की मूल जीवनदायिनी शक्ति है, राजनैतिक शक्ति से भी अधिक।

* समग्र पुस्तक के लिए स्वयं लेखक द्वारा लिखित

** पाठ्यपुस्तक के रूप में प्रकाशित सस्करण की भूमिका

भारतीय समाज इसका प्रमाण है। राजनैतिक दासता सदियों रही; पर समू की शक्ति के कारण यह जाति जीवित रही और विकास करती गयी।

इसके साथ ही लगी आती है, सामाजिक विकास की शक्ति। राजनैति उलट-फेर होते रहते हैं, पर समाज में विकास की परम्परा चलती रहती है। ऊ कार मुसलमान और हिन्दू राजाओं के युद्ध चलते रहते थे, पर समाज में हि मुसलमान एक दूसरे के साथ भ्रातृ-भाव से रहने के प्रयत्न कर रहे थे। वे एक दू से विचारों, आदर्शों, प्रथाओं और धार्मिक मान्यताओं का आदान-प्रदान भी क रहे थे। वे एक दूसरे के जीवन को प्रभावित कर रहे थे। तभी मध्य युग में ज हिन्दू और मुसलमान राजाओं की टक्कर होती थी, लेकिन मुसलमान कवि ब भाषा में कृष्ण-काव्य लिख रहे थे और हिन्दू मुसलमान पीरों और फकीरों की पू कर रहे थे। समाज अपने में किसी बाधा को स्वीकार नहीं करता, चाहे वह रा नैतिक हो या धार्मिक।

इस भारतीय समाज की विकास-यात्रा बहुत दिलचस्प है। इसमें कि उलट-फेर हुए हैं! कितनी जातियाँ यहाँ आयीं और विलीन हो गयीं, किस प्र उन्होंने एक दूसरे को प्रभावित किया और फिर एक होकर आगे बढ़ीं—यह ब रोचक और स्फूर्तिदायिनी कथा है। रवीन्द्रनाथ ने कहा है कि 'भारत महा-मान सागर' है, जिसमें कितनी ही नदियों की पावन धाराओं का जल है। जिसे ह भारतीय संस्कृति कहते हैं, उसमें नदियों का समन्वय की प्रक्रिया चल रही विभिन्न जातियों की संस्कृति के तत्त्व उसमें मिलते गये हैं और वह बहुत विश हो गयी है। यह हमारी बड़ी शक्ति है। इकबाल ने कहा था—'कुछ बात है हस्ती मिटती नहीं हमारी।' वह 'कुछ बात' यही सांस्कृतिक समन्वय की शक्ति है।

मेरी दृष्टि में हमारे सामाजिक और सांस्कृतिक विकास की जानका किशोरों के लिए बहुत आवश्यक है। इससे वे इस देश की परम्परा को सही ढंग समझ सकेंगे। उनकी भावनाओं का विस्तार होगा और वे उदारता का दृष्टिको अपना सकेंगे। अपने इस अति प्राचीन समाज के मर्म को समझना बहुत जरूर है।

मैंने इस पुस्तक में यही प्रयत्न किया है। युद्धों और राजवंशों के विवरण न अटककर मैंने अपने समाज और उसकी संस्कृति के विकास-पथ को अंकित किय है। स्वाभाविक है, इसमें राजनैतिक हलचलें भी आ गयी हैं। पर उन्हें प्रधानत नहीं दी गयी। मैंने उन धार्मिक, सांस्कृतिक और सामाजिक तथा राजनैति आन्दोलनों को और उन व्यक्तियों को ही प्रधानता दी है जिन्होंने समाज को आ बढ़ाया और उसका रूप बदला।

वैदिक काल और बौद्ध युग तथा मुगल सल्तनत के बाद के हमारे आधुनिक युग पर मैंने विस्तार से लिखा है, क्योंकि बहुत दूर और बहुत पास की वस्तुएँ प्रायः धुँधली दिखती हैं। मेरा उद्देश्य है कि पाठक अति प्राचीन और अति नवीन परम्पराओं को ग्रहण कर सकें।

मैंने विभिन्न विद्वानों के ग्रन्थों की सहायता ली है। जहाँ जो उपयोगी मिल सका, मैंने ले लिया है। इन सब विद्वानों के प्रति मैं आभारी हूँ।

आशा है यह छोटी-सी पुस्तक उपयोगी सिद्ध होगी।

—लेखक

कुहरे में ढँका हुआ मानवेतिहास

वैज्ञानिक बताते हैं कि वानरो से मनुष्य का विकास हुआ। आज से लाखो साल पहले की यह घटना है। मनुष्य ने अपनी पशु-तुल्य अवस्था से क्रमश ऊपर उठते हुए, किस प्रकार अपनी उन्नति का मार्ग प्रशस्त किया, यह एक मनोरजक विषय है। पुरातत्वविदो के अनुसन्धान और सतत प्रयत्न के द्वारा तत्कालीन मानव जीवन और उसके इतिहास की जो रूपरेखा स्पष्ट होती है, उसका सक्षिप्त परिचय यहाँ दिया गया है।

आज से लगभग दस हजार साल पहले हमारा भारतवर्ष घने-घने जगलो से ढँका हुआ था। उन दिनो दलदल भी खूब रहे होगे। नदियो की तलहटियाँ बहुत गहरी और चौडी रही होगी। उन जगलो, नदियो और दलदलो के तटो पर तरह-तरह के भयानक पशु अपनी शिकार मे घूमते होंगे। इन महाकान्तारो मे, मानव जीवन बहुत ही सकटपूर्ण रहा होगा।

मानव सभ्यता के विकास-प्रसार के साथ-साथ, ये जगल कटते चले गये। किन्तु, इस बात के पूरे प्रमाण हैं कि बलूचिस्तान, अफगानिस्तान, राजस्थान और अन्य पश्चिमोत्तर प्रदश भी, जो आज सूखे, वीरान और वृक्षहीन हैं, उन दिनो घने आदिम जगलो से ढँके थे।

इस प्रतिकूल प्राकृतिक परिस्थिति मे, आदिम मानव-जातियाँ और उनके कबीले जीवन निर्वाह के लिए कन्द-मूल-फल बटोरते या ऐसे पशु-पक्षियो की शिकार के पीछे फिरते जिनका नरम मास वे खा सकते थे। मनुष्य, मूलत. शाकाहारी प्राणी है। अग्नि के आविष्कार को अभी देर थी, जिसकी सहायता से वे मास भूनकर खा सकते थे। खाद्य-समस्या हमेशा बनी रहती। आदिम मानव, जगली पशुओ से बहुत डरता था। भय और क्षुधा स्थायी भाव थे। वर्षा, गरमी, और सरदी से बचने का कोई उपाय न था। या तो वह गुहा-कन्दरा मे रहता या कभी मिट्टी के अनगढ़ घरों मे। उसके पास जीवन-रक्षा के कोई प्रभावकारी उपाय न थे।

उसके पास सिर्फ पत्थरो के औजार थे। वे भद्दे, खुरदुरे और मोटे हुआ करते। पत्थरो को
रगड़-रगड़कर
अस्त्र होते।
होते। वह

साधन बना लिये होंगे, जैसे गुलेल या भोंडे ढंग के धनुष्य-बाण।

उसके औजार हमें, भारत के दक्षिणी और उत्तर-पश्चिमी प्रदेशों के अतिरिक्त हमारे मध्यप्रदेश में भी मिले हैं। वे होशंगाबाद के निकट नर्मदा की घाटी में और जबलपुर जिले में प्राप्त होते हैं।

इस युग को पुरा-पाषाण-काल या प्राचीन-प्रस्तर-युग कहते हैं। यह युग दो-ढाई लाख [वर्ष] तक चला होगा। कम से [कम] वह आज से दस-बारह हजार [साल] पहले तक मौजूद था।

पुरातत्त्वशास्त्री भारत में फैले हुए उस आदिम मानव-जाति को 'नेग्रिटो' कहते हैं। ये लोग दक्षिण अफ्रीका से लेकर तो भारतवर्ष में और उसके आगे पूर्व-दक्षिण के देशों में भी फैले हुए थे। उनकी कुछ अवशिष्ट जातियाँ हमारे यहाँ अभी भी पायी जाती हैं। अन्दमान निकोबार में, तथा आसाम के पर्वतीय क्षेत्रों में कुछ आदिवासी जातियाँ तथा त्रावणकोर-कोचीन की पहाड़ियों में टोडा जाति पुरा-पाषाण-काल की उत्तराधिकारिणी मानी जाती है।

मानव सभ्यता और संस्कृति को इन जातियों ने भी कुछ दिया है, मुख्यत, खाद्य के क्षेत्र में। कौन सी वनस्पति खाने योग्य है और कौन-सी खाने से मनुष्य मर जाता है, इसका निर्णय इन लोगों ने अपने अनुभवों द्वारा किया। जंगल-जंगल घूमकर तरह-तरह के कन्द-मूल-फल फूल खाकर उन्हें खाद्य और अखाद्य का भेद मालूम हो सका।

नव-पाषाण-काल

प्रयत्न और अनुभव, तथा उससे प्राप्त ज्ञान और ज्ञान का प्रयोग करके पुन: प्रयत्न और अनुभव का यह जो सिलसिला है उससे मनुष्य जाति ने अपना विकास किया तथा परिस्थिति पर विजय पाने के साधनों का निर्माण किया। मनुष्य और पशु में एक बड़ा भेद यह है कि हम बुद्धि का प्रयोग करके अस्त्रों का निर्माण और विकास करते आये हैं। पुरा-पाषाणकालीन मानव के अनुभवों से लाभ उठाकर नव-पाषाण-कालीन मानव ने अपने प्रस्तर अस्त्रों को घिसघिसकर ज्यादा चिकना और चमक-दार, सुघड और प्रभावकारी बनाया। पत्थरों की किस्मों का ज्ञान अब बढ़ चुका था। उसे मालूम हो गया था कि चकमक पत्थर के टुकड़ों को आपस में रगड़ने से चिनगारियाँ निकलती हैं। सूखे पत्तों पर उन्हें गिराकर आग तैयार की गयी। यह बहुत बड़ा आविष्कार था। अग्नि द्वारा (अ) अँधेरे में प्रकाश मिलता है, (ब) अच्छी गरमी मिलती है, (स) ज्वालाओं से भयभीत होकर पशु भाग जाते हैं, (ड) मास को भूनकर खाया जा सकता है, जिससे दाँतों को तकलीफ से बचाया जा सकता है। अग्नि के आविष्कार से मनुष्य ने इस तरह एक साथ कई बातें प्राप्त कर लीं। ईरानी और भारतीय आर्य यदि अग्नि को देवता समझें और उसकी प्रशंसा में स्तोत्र और गीत पढ़ें तो इसमें आश्चर्य ही क्या है !! मनुष्य ने प्रकृति विजय की ओर एक कदम बढ़ा दिया। इसके सम्बन्ध में दो बातें समझने की हैं। एक तो यह कि मुख्यत शाकाहारी प्राणी होने के कारण, तरह-तरह के मास को मनुष्य नहीं खा सकता था। भूनकर खाने की सहूलियत से, खाद्य समस्या को हल करने का एक उपाय निकल आया। दूसरे, अग्नि-प्रयोग के दीर्घकाल में उसने देखा कि कई तरह की मिट्टियों या पत्थरों में से कोई वस्तु पिघलकर धातु बन जाती है। अग्नि

के बिना, धातु का अनुसन्धान नहीं हो सकता था। आदि-मानव जाति के मनुष्यों ने पाया कि धातु के अस्त्र प्रस्तर अस्त्रों से अधिक पैने, सुघड और प्रभावकारी बनाये जा सकते हैं, साथ ही उन्हें चाहे-जैसा आकार दिया जा सकता है। इस प्रकार, अग्नि प्रयोग ने अनुसन्धान के मार्ग को तथा साधन-निर्माण के पथ को प्रशस्त किया। कुछ अंशों तक, मनुष्य को भय और क्षुधा से त्राण पाने की युक्ति मिल गयी। इसलिए मानवेतिहास में, अग्नि के आविष्कार का बहुत महत्त्व है।

नव-प्रस्तरयुगीन मानव क्रमशः उन्नति करता जा रहा था। वनस्पतियों के अनुभव-ज्ञान के साथ ही, पशु-पक्षियों-सम्बन्धी उसका ज्ञान भी बढ़ गया था। इस ज्ञान का प्रयोग करके उसने पशुओं को बाँधकर रखना, उनसे दूध निकालकर पीना, और फिर समय-समय पर उनका वध करके मांस खाना आदि बातें शुरू कीं और फिर उन्हें सतत प्रयोग और अनुभव से सीख ली। तब तक उसके पत्थर के औजार भी काफी पैने और तीखे बन चुके थे। पशुपालन ने मानव जीवन में एक बड़ा परिवर्तन उपस्थित कर दिया। अब उसे पशु-पक्षियों के पीछे जंगल-जंगल भटकने की जरूरत नहीं रही। वह कुछ हद तक स्थायी जीवन बिता सकता था, पशुओं का मांस प्राप्त होने से खाद्य-समस्या और कम हो गयी। उधर कन्द-मूल-फल एकत्र करनेवाले उसके साथियों ने, अपने सतत निरीक्षण और अनुभव-ज्ञान के फलस्वरूप, जमीन में बीज डालकर पौधे उगाने की प्रक्रिया खोज ली—एक बीज से हजारों बीज उग सकते थे—यह ज्ञान बड़े काम का सिद्ध हुआ। खेती-बाड़ी का प्रारम्भिक रूप सामने आया। सम्भवतः, सबसे पहले जंगली घास में से दानोंवाले घास छाँटकर उन्हें (गहूँ और जौ को) उगाना उसने सीखा। फसल होने लगी। खाद्य-पदार्थों की खोज में रोज-रोज भटकते रहने की जरूरत नहीं रही। इसलिए, मिट्टी के घर और उनके समूह अर्थात् बस्ती या गाँव बनाकर वह रहने लगा और, साथ ही, वस्तुओं तथा खाद्य-पदार्थों को जमा करके रखने के लिए उसे बरतनों की तलाश हुई। शीघ्र ही, उसने मिट्टी के बरतन बनाये। उधर, अग्नि-प्रयोग के द्वारा, उसने कच्ची मिट्टी के बरतन और ईंटें पकाना सीख लिया था, और साथ ही धातु की प्राथमिक पहचान और थोड़ी-बहुत जानकारी भी उसे हो गयी थी। उन लोगों में का एक दल ऐसी जमीनों और पत्थरों की खोज में रहने लगा जिनसे धातुएँ प्राप्त हो सकें। इस खोज के दौरान उसे सुन्दर-सुन्दर रंग-बिरंगे चमकदार पत्थर मिले, जिनके उसने आभूषण बनाये और जिनको पीस-पीसकर उसने लेप तैयार किये। इस लेप को वह मिट्टी के बरतनों के अन्दर और बाहर लगाता, और उन पर कभी-कभी चित्रकारी भी करता।

उधर, पशुपालन का विकास हो ही रहा था। मनुष्य अब उन पर सवारी करने लगा। उन पर वह बोझ भी लादता। इस प्रकार, दूरी की समस्या भी कुछ हल हुई, साथ ही भार-वहन की भी। धातु के थोड़े बहुत औजार जब बन गये तो उसने लकड़ी को काट-काटकर चक्का बनाना सीखा। चक्कों से मामूली किस्म की बैल-गाड़ी बनायी, जिसमें रफ्तार में तेजी आ गयी। कुम्हार ने भी चक्के को अपनाया, जिसकी सहायता के फलस्वरूप मिट्टी के बरतन अब और भी सुडौल होने लगे। मिट्टी की कला—मृद्शिल्प—का विकास होने लगा। अब वह, पुरुष, स्त्री, बालक, पशु, पक्षी, देवी-देवता की आकृतियाँ तथा मूर्तियाँ भी बनाने लगा। नव-पाषाण-युग के अन्तिम चरणों में, मुख्यतः पाषाण-अस्त्र थे, किन्तु, धात्वस्त्रों का प्रयोग शुरू

हो गया था। उसके ये पाषाण अस्त्र, जो तरह-तरह के काम मे आते थे, विन्ध्याचल की पहाड़ियो मे—जैसे रीवा, छोटा नागपुर, मिर्ज़ापुर और इसके अलावा आसाम मे—पाये जाते हैं। दक्षिण भारत के मद्रास, चिंगलपत तथा अन्य स्थानो मे भी खूब मिलते हैं। बेलारी के समीप तो इनका एक कारखाना ही मिला है। पुरातत्त्वविद् इन्हे प्रोटो आस्ट्रेलॉइड अर्थात्, 'आदि आग्नेयाभ' कहते हैं। यह जाति अफ्रीका और भारत से लेकर आस्ट्रेलिया तक पाई जाती है। भारत मे आज इन आदि आग्नेयाभो के उत्तराधिकारी हैं—मध्यप्रदेश की आदिवासी जातियाँ, जो मुण्डा-भाषा-परिवार की विभिन्न बोलियाँ बोलती हैं। इनके अलावा, कोल, सन्थाल, भील भी इनके वशज है। मध्यभारत के पहाड़ी इलाको में भील पाये जाते हैं।

प्रकृति को अधिकाधिक अनुकूल करने के दौरान म, मानव-अन्त करण का भी प्रसार होता है। वह जीवन और जगत् के सम्बन्ध मे विचार भी करने लगता है। उन दिनो प्रकृति के रूपो और दृश्यो के प्रति मनुष्य के अन्त करण मे दो ही भावनाएँ थीं—विस्मय और भय। वह प्राकृतिक शक्तियों को देखकर चमत्कृत हो उठता था। उसे प्रतीत हुआ कि प्रकृति की शक्तियो मे कोई देवताओ का निवास है। अर्थात् जगत् मे अति-प्राकृतिक शक्तियाँ हैं। विस्मय और भय की भावनाओ से प्रेरित होकर वह देवी-देवताओ और भूत-प्रेतो की कल्पना करने लगा। वह प्रकृति के रूपो को देवता मानकर पूजता, जैसे नदी, वृक्ष, पत्थर इत्यादि को। वह खेतो मे, उर्वरा शक्ति को प्रसन्न करने के लिए, पशु-बलि भी देता और कभी नर-बलि भी। प्रजनन-शक्ति

भी आत्मा मरती नही,
शव को गाड़ने के साथ।
जिससे मृत्यु के उपरान्त की यात्रा मे, वे मृतात्मा के काम मे आ सकें। विशेष उत्सवो पर नृत्य-गान भी होते। उसने तरह-तरह के वाद्य-यन्त्र भी बना लिए थे।

प्रकृति के निरीक्षण-परीक्षण के फलस्वरूप, उसकी कलाभिरुचि भी बढ गयी थी। उत्तर प्रदेश में मिर्ज़ापुर के निकट तथा मध्यप्रदेश मे होशंगाबाद के निकट, गुहाओ में उसने आखेट और नृत्य के सुन्दर चित्र भी बनाये, जो गेरु से खींचे गये प्रतीत होते है।

रास्ते पर पड़नेवाले बहुत बड़े विघ्नो और बाधाओ को उसने पार किया। आगे का रास्ता अब ज्यादा आसान था। अग्नि का आविष्कार, पशुपालन, खेती-बाड़ी, प्रारम्भिक ऋतु-ज्ञान, प्रारम्भिक वनस्पति-विज्ञान, मृद्-शिल्प, उसी की देन है। इसके अतिरिक्त, उसने देश के विभिन्न स्थानो मे जाने के लिए गन्तव्य मार्ग खोज निकाले। आज भी हमारे धर्म मे, भूत-प्रेत सम्बन्धी विश्वास, और वृक्ष-पूजा, प्राकृतिक शक्तियो की पूजा आदि के अतिरिक्त, आत्मा की अमरता मे विश्वास इन्ही की कृपा का फल है। नव-पाषाणकालीन मानव ने हमें अपनी भाषा के कुछ शब्द भी दिये। रूई, बैंगन, केला, कुम्हड़ा, पान, हाथी, टट्टू, मोर, चिड़िया आदि के जो पर्याय सस्कृत भाषा मे हैं वे मुण्डा बोलियो से निकले हैं। मुण्डा भाषा के 'जोम' शब्द से 'जीमना' (भोजन करना) निकला। प्राचीन भारतीय साहित्य मे

सभ्यता का उषःकाल

सिन्धु सभ्यता

> सतत् प्रयत्नो के द्वारा नव-पाषाण काल के अन्त मे मानव ने धातवस्त्रो का प्रयोग करके, क्रमश सभ्यता का विकास किया। वह अब प्रकृति-विजयी हो उठा। ग्रामो ने धीरे-धीरे नगरो का रूप धारण किया। कला-कौशल तथा खेती-बारी के प्रसार के साथ ही व्यापार का प्रसार हुआ। गणित तथा ज्योतिष जैसे शास्त्रो का विकास होने लगा। मनुष्य ने सभ्यता के युग मे प्रवेश किया।
>
> किन्तु, जब तक समूचा विश्व सभ्य नही हो जाता, तब तक सभ्यता-केन्द्रो को खतरा ही रहता था।
>
> विश्व के विभिन्न क्षेत्रो मे उन दिनो विभिन्न जातियाँ उपजाऊ भूमि-भागो की खोज मे भटक रही थी। इन परिभ्रमणशील जातियो ने पुरानी सभ्यताओ को नष्ट कर दिया। तत्कालीन युग की यह विशेषता भारत मे भी दृष्टिगोचर हुई। विकास, प्रसार, सघर्ष, सम्पर्क और समन्वय का एक महान् उदाहरण भारत मे भी उपस्थित हुआ।

किसे मालूम था कि भूरी, सूखी, बजर और उजाड, धूप मे चिलचिलाती पहाडी के पेट म एक बहुत बडा रहस्य दबा पडा होगा। हाँ यह सही है कि आस-पास की बस्तियोवाले लोग उस पहाडी के बारे मे अजीब किस्से सुनाया करते थे।

लेकिन ऐसे कहानी किस्से कहाँ नही सुनाये जाते। खास तौर से पुरानी जगहों मे, जहाँ ऐतिहासिक भग्नावशेष होते हैं, हम ऐसे किस्से अक्सर सुनने को मिलते हैं। लेकिन, यहाँ तो भग्नावशेष कही दिखाई ही नही देते थे।

जो हो, एक रोज का किस्सा है, एक वीरान और धूप मे चिलचिलाती हुई [illegible] पहाडी

[illegible] ल पडा है, कि वह अति प्राचीन नगर है। और यह भी सुना कि भारत मे आर्यों के आने के पहले वहाँ एक बहुत बडी सभ्यता थी।

अब कुदालियाँ रूखी भूरी जमीन पर लट्टू होकर दूर-दूर के अलग-अलग स्थानो मे खुदाई करने लगी। नये नगर, या उनके ध्वसावशेष हजारो वर्षो मे जो जमीन मे दबे-गडे थे, अब धूप और खुली हवा पाकर अपना इतिहास बताने लगे।

पूरा किस्सा यो है।

आजकल के पाकिस्तान के अन्तर्गत सिन्ध प्रान्त के लरकाना जिले मे सिन्धु नदी के किनारे मोहनजोदडो नामक एक स्थान पर, अत्यन्त प्राचीन काल म, एक भव्य नगर था। इस नगर से लगभग चार सौ मील दूर उत्तर की ओर पजाब के मोटगोमरी जिले मे, रावी नदी के किनारे, हरप्पा नामक स्थान पर एक समृद्धि-शाली नगर था। आज से लगभग साढ़े पाँच हजार वर्ष पूर्व, ये दोनो नगर और

इनके आस-पास का पूरा क्षेत्र, एक विशाल सभ्यता के प्रकाश में जगमगाता था। वह भारत की सर्वप्रथम सभ्यता थी। उस सभ्यता के उपःकाल का गुलाबी-सुनहला प्रकाश सिन्ध, गुजरात, खम्भात, राजस्थान से लेकर पूर्व में गंगा-जमुना के दोआबे तक, कम-से-कम मथुरा तक, और वहाँ से लेकर उत्तर-पश्चिम में पंजाब होते हुए बलूचिस्तान-अफगानिस्तान तक फैला हुआ था।

उन दिनों इस पूरे क्षेत्र की जलवायु अधिक अनुकूल थी। आजकल यह अल्प वर्षा, शुष्क भूमि, मरुस्थल और सूखे टीलों का प्रदेश है। किन्तु उन दिनों यह सघन वनों से आच्छादित था। वर्षा खूब होती थी। सिन्धु नदी, अपनी सहायक नदियों को समेटकर, लम्बे-चौड़े उपजाऊ मैदानों में बहती हुई समुद्र में मिलती थी।

आज लुप्त और गुप्त हो गयी सरस्वती और दृषद्वती नदियाँ उन दिनों प्रसन्न-सलिला थीं। सरस्वती नदी राजस्थान में से बहती हुई, सिन्धु नदी में मिलती थी। (नये पुरातत्त्व विद्वानों ने राजस्थान में खुदाई करके बालू में दबे हुए सरस्वती नदी के पुराने मार्ग को खोज कर निकाला है।) अफगानिस्तान और बलूचिस्तान की नदियाँ भी हिम तथा वर्षा के जल से परिपूर्ण होकर, वनों और सघन कछारों में से बहती थीं।

मनुष्य की आदिम सभ्यताएँ नदियों के किनारे विकसित हुईं। मिस्र में नील नदी के किनारे, इराक में यूफ्रेटीज-टायग्रिस नदियों के तट पर, चीन में यांगटीजी क्यांग नदी की घाटी में, सिन्धु नदी की उपत्यकाओं में, प्राचीन सभ्यताओं का आविर्भाव हुआ। ये सभ्यताएँ मुख्यतः खेतीबारी पर आधारित थीं। इसलिए उनके ग्राम और नगर, साधारणतया, नदियों के किनारे बसाये गये। सिंचाई के साधन, तथा आवागमन के साधन—इन दो को देखकर ही बस्तियाँ कायम की जातीं।

सिन्धु सभ्यता की खोज सन् 1921 ई० में हुई। उसको ढूँढ़ निकालने का श्रेय दो भारतीय पुरातत्त्वविदों—श्री राखालदास बैनर्जी और रायबहादुर दयाराम साहनी को है। उन्होंने मोहनजोदड़ो और हड़प्पा का उत्खनन करके भारतीय इतिहास को पाँच-छः हजार साल पीछे ढकेल दिया। भारत के स्वाधीन होने पर और जगह भी खुदाई हुई। इससे यह सिद्ध हुआ कि इस सभ्यता का क्षेत्र बहुत ही विस्तृत था।

इस अति प्राचीन सभ्यता का स्वरूप बहुत ही विस्मयकारी है। वह कई बातों में इराक (सुमेरिया बेबिलोनिया) की सभ्यताओं से बढ़कर थी।

पश्चिम और पश्चिमोत्तर प्रदेश में विकसित यह सभ्यता भारत की प्रथम सभ्यता है, जो आर्येतरों की देन है। ईसा के ढाई हजार वर्ष पहले—ऋग्वैदिक आर्यों के प्रथम आगमन के समय—वह नष्ट भी हो गई। इस सभ्यता के उत्थान, पतन और नाश का काल लगभग डेढ़ हजार वर्ष रहा होगा। अर्थात् इसका जीवन-काल ईसा के लगभग 4 हजार वर्ष पूर्व से आरम्भ हुआ और ढाई हजार वर्ष ई० पू० में उसका नाश हो गया।

सिन्धु सभ्यता, मुख्यतः, नगर सभ्यता है, ग्राम सभ्यता नहीं। इस सभ्यता के अन्तर्गत नगर—हड़प्पा, मोहनजोदड़ो तथा अन्य नगर हैं। स्वाधीनता प्राप्ति के उपरान्त और भी जगह खुदाई हुई, जिससे हमें इसके विस्तार और प्रसार के सम्बन्ध में और भी बातें मालूम हुईं।

नगर-योजना : सिन्धु सभ्यता नगर सभ्यता है। इन नगरों की रचना एक

विशेप योजना के अनुसार की गयी मालूम होती है।

मोहनजोदडो की सडकें पूर्व से पश्चिम की ओर तथा उत्तर से दक्षिण की ओर चौकोर चौराहे बनाती हुई सीधी चली गयी हैं। सडकें कम-से-कम तैंतीस फीट चौडी होने से, गाडियाँ और रथ बडे मजे मे आ-जा सकते थे। गलियाँ कम-से-कम नौ फीट चौडी हैं। सुनियोजित निर्माण का यह स्पष्ट प्रमाण है।

यही नही, गलियो और सडको के दोनो ओर इमारतें मिलती है। मोहनजोदडो मे ये भवन तीन प्रकार के हैं। एक रहने के घर, दूसरे सार्वजनिक भवन, तीसरे स्नानागार। विशाल स्नानागारो से यह सूचित होता है कि जनता के जीवन मे स्नान का सास्कारिक महत्त्व था। पक्की ईंटो की बनी हुई साफ-सुथरी नालियो के [illegible] आदि फेंकने के [illegible]

बनते थे। उनके

[illegible]करी होती थी।

शायद, उन दिनो जगह की तगी महसूस की जाती थी। हर घर मे खुला हुआ आँगन था और उसके एक कोने मे रसोई का प्रबन्ध था। कृत्रिम जलाशय भी पाये जाते हैं, जिनमे उतरने के लिए सीढियाँ रहती थी। वे इतने विस्तृत थे कि उनमे तैरा भी जा सकता था। साथ ही स्थान-स्थान पर कुएँ भी थे।

सडको पर दूकानें भी थी। भण्डार थे—जिन्हे अनाज का गोदाम भी कहा जा सकता है। कुछ इमारतें हवेलीनुमा है, जिनसे सूचित होता है कि वे समाज के प्रशासको या व्यवस्थापको की रही होंगी।

व्यापार-व्यवसाय अर्थ व्यवस्था, मूलत खेती बारी पर आधारित थी। गेहूँ और जौ की फसलो के अलावा, कपास की पैदावार खूब होती थी। वस्त्रोद्योग अत्यन्त विकसित था। रेशम और ऊन के भी कपडे बनाये जाते थे।

सिन्धु सभ्यता मे लोग दूर-दूर के देशो तक व्यापार के लिए जाते थे। इस सभ्यता की वस्तुएँ और मुद्राएँ ईरान और इराक के प्राचीन ध्वसावशेषो म पायी गयी हैं। उन दिनो इराक म, कपडे का नाम 'सिन्धु' था। यूनान के कपडे को 'सिन्दन' कहा जाता, वह 'सिन्धु' शब्द ही का विकृत रूप था।

व्यापार जल तथा स्थल दोनो प्रकार के मार्गो द्वारा होता था। सिन्धु नदी मे नावें चलती थी। पुरातत्वविदो का कहना है कि सिन्धु सभ्यता का व्यापार मिस्र, ईरान और इराक से खूब होता था।

शासन प्रबन्ध अफगानिस्तान से मथुरा तक, पजाव से खम्भात तक के इस विस्तृत क्षेत्र मे आखिर आदमी का काम बिना शासन-प्रबन्ध के चल नही सकता था। सम्भव है कि प्रत्येक नगर की केन्द्रीय समिति, जो वहाँ के तजुर्बेकार बुजुर्गों की बनायी होती थी (उसे हम नगरपालिका भी कह सकते हैं) शहर के कामो की देख-रेख करती होगी। और उन्ही का बना कोई सघ और उनका नेतृ-वर्ग सारे प्रदेश का कार्य-सचालन करता होगा। ये नगरपालिकाएँ बहुत कार्यदक्ष थी, साफ-सफाई के प्रबन्ध का इन्हे बहुत ध्यान था।

विद्वानो का अनुमान है कि इन नगरपालिकाओ द्वारा धार्मिक सामाजिक, राजनैतिक-आर्थिक प्रशासन हुआ करता था। कई उद्योग, जैसे वस्त्रोद्योग, जिनके लिए श्रमिक सगठन की आवश्यकता होती थी, नगरपालिकाओ के नियन्त्रण मे चलते

थे। आटे की चक्कियाँ भी इसी तरह चलती होगी।

बहरहाल यह सही है कि राजसत्ता का प्रथम आविर्भाव सिन्धु सभ्यता मे देखा जा सकता है।

धर्म : सिन्धु सभ्यता के निवासी (1) मातृ-देवियो के (2) पशुपतिनाथ शिव के (3) तथा प्रजनन शक्ति के उपासक थे। इसके अतिरिक्त वे (4) वृक्ष तथा पशुओ व
है। एक
पास भी
शिव है
थे वृक्ष और पशुओ की प्रतिमाएँ भी मिली है। एक योगाभ्यासी ध्यान-मुद्रा भी प्राप्त हुई है, जो शिव की मालूम होती है।

कला कारीगरी सिन्धु सभ्यता वाले सुन्दर बरतन बनाते थे। वे मिट्टी के भी होते थे और धातुओ के भी। मिट्टी के बरतनो पर सुन्दर चित्रकारी होती थी। मोहनजोदडो की खुदाई मे हाथी-दाँत का एक बहुत सुन्दर फूलदान पाया गया है, जिस पर खुदे हुए मनोहर रेखाचित्र हैं। इन भग्नावशेषो मे चाँदी और ताबे के बरतनो मे बन्द आभूषण भी मिले है। उनका गठन सुन्दर है, बनावट कलात्मक है। उनमे मालाएँ, बाजूबन्द, चूडियाँ भी हैं। सोना, चाँदी, लाल, पन्ना, मूँगा आदि का प्रयोग करके आभूषण बनते थे। दर्पण और कघो का भी प्रयोग होता था। भग्नावशेषो मे एक नर्तकी की अत्यन्त सुन्दर प्रतिमा मिली है। उसके मस्तक पर सुन्दर केश सम्भार है। छोटे-छोटे वाद्य भी प्राप्त हुए हैं।

इतनी समृद्ध सभ्यता के अन्तर्गत उपयोग मे आने वाले अस्त्र भी हमे प्राप्त हुए हैं, जो ताँबे या काँसे के है। कुल्हाडे, तलवार, कटार, धनुष, बाण, भाले, आरी मछली पकडने के काँटे, तरह-तरह की मूर्तियाँ प्राप्त हुई है। माप-तौल के बाँट, गज, मुद्राएँ और सिक्के भी मिले हैं।

उनकी लिपि अब तक पढी नही जा सकी है। वह एक प्रकार की चित्र-लिपि है। उसके तीन सौ छियानवे चिन्हो की एक सूची बना ली गयी है। अनुमान है कि वह आदिम द्रविड लिपि थी।

सिन्धु सभ्यता का नाश ईसा के कोई ढाई हजार साल पहले बाह्य आक्रमणो द्वारा हुआ। ये आक्रमण अत्यन्त वर्बर और नृशसतापूर्ण थे। मकानो के जीनो पर ठठरियाँ जिस तरह
के लोग दयनीय
तथा अन्य वस्तुएँ
यही सूचित होता है।

ईसा के कोई तीन हजार साल पहले जब आर्यो का भारत मे आगमन हुआ तो उन्होने परकोटो से घिरे हुए अनेक शक्तिशाली नगरो को पाया। आर्य उनके निवासियो को दास, दस्यु, पणि, असुर आदि नामो से पुकारते थे। उनमे घृणा करते थे किन्तु उन्हे कलाविद्, मायावी, ऐन्द्रजालिक, नगर-निर्माता, अनेक विद्याओ के ज्ञाता समझते थे। ऋग्वेद से हमे ज्ञात होता है कि उनसे आर्य जाति एक लम्बे अर्से तक युद्ध करती आयी। ऋग्वेद मे एक नगर का नाम आया है, जिसे वे 'हरियुपिया' कहते थे। वह सिन्धु सभ्यता का हरप्पा नगर ही है। इस

सभ्यता के सम्बन्ध मे हमारा जो ज्ञान है, उसके द्वारा अब तक दुर्बोध समझी जाने वाली वैदिक ऋचाओ का अर्थ सुस्पष्ट हो जाता है। आर्यजनो से निरन्तर युद्धो का परिणाम यह हुआ कि सारी सभ्यता ही नष्ट हो गयी। भारत की इस प्रथम सभ्यता के विनाश का श्रेय आर्यों को ही दिया जाना चाहिए।

ऐसा क्यों हुआ ? उन दिनो जातियो का परस्पर-सघर्ष उपजाऊ भूमि पर अधिकार करने के लिए होता था। आर्य जाति भारत मे ऐसी ही भूमि की तलाश मे आयी थी जहाँ वह बस सके और अपना विकास कर सके। इस मूल कारण के अतिरिक्त घृणा को उत्पन्न करनेवाले दूसरे तत्त्व भी प्रमुख हो उठते थे—जैसे वर्ण और धर्म।

आर्य ग्रामो म रहत। उनकी सभ्यता ग्राम सभ्यता थी, नगर सभ्यता नही। आर्यजन सिधु सभ्यता वाले जैस न मूर्ति पूजक थे न लिंगपूजा करते थे। ऋग्वेद मे प्रार्थना की गयी है— हे देव तुम हम शिश्न देव स बचाओ।'

सिन्धु सभ्यता वाले अनास (चपटी नाकवाले) थे, कृष्ण (भूरे साँवले) थे। आर्य गौर वर्ण थे उनकी नाक ऊँची थी। वे अपने को श्रेष्ठ समझते थे। शेष को निकृष्ट। युद्ध अवश्यम्भावी था। यह हुआ। भारत की प्रथम सभ्यता इतिहास के पृष्ठो स उड गई।

स्वय आर्य-जन हारे हुए सिन्धु सभ्यता वालो से बचकर नही रह सकते थे। इन दोनो के परस्पर सम्पर्क के निम्नलिखित परिणाम हुए

(1) पराजित शत्रु दास बना लिये गये। इस प्रकार आर्यो के समाज म 'शूद्र' जाति की उत्पत्ति हुई। यह वर्ण-भेद (रग-भेद) के आधार पर थी। शूद्रो को समाज म सबसे निचला स्थान दिया गया।

(2) किन्तु आर्य जन सिन्धु सभ्यता वाले दासो की स्त्रियो को स्वीकार करते रहते थे। फलत, बडे पैमाने पर वर्णसकर जातियाँ बनी। इन जातियो म कक्षीवान, कण्व, वत्स, एलूप कवष आदि अनेक प्रमुख आर्य ऋषियो का जन्म हुआ।

... अन्धविश्वास आर्य-धर्म म

... ने प्रवेश किया। शिवलिंग

...) की आराधना वृक्ष पूजा (भले ही वह प्रयाग का अश्वत्थ हो या गया का बोधि-वृक्ष) सर्प पूजा उन्ही की देन है। फलत प्राचीन ऋग्वैदिक धर्म अथर्ववेद तक आते-आते बदल गया।

द्रविड कौन थे ? सिन्धु सभ्यता के अवशेषो का जो उत्खनन हुआ, उसके दौरान मे वहाँ हमे अनेक नर-ककाल प्राप्त हुए। नृतत्वशास्त्रियो ने इन नर-ककालो का अध्ययन करके यह निर्णय घोषित किया कि अधिकाश नर-ककाल भूमध्य-सागरीय जाति के हैं।

नृतत्वशास्त्रियो द्वारा ही यह माना जाता है कि द्रविड जाति भूमध्यसागरीय जाति ही की एक शाखा है। वह उस सागर के तटीय प्रदेशो से आगे बढती हुई, घूमती हुई, भारत तक पहुँच गयी थी। नि सन्देह, मिस्र, बैबिलोनिया तथा अन्य सभ्यता केन्द्रो के प्रभाव म वह आयी होगी, उनसे उसका सम्पर्क स्थापित हुआ होगा। जब वह अफगानिस्तान बलूचिस्तान के प्रदेश म आयी, वहाँ उसने अनेक

छोटे-छोटे ग्राम तथा उपनिवेश स्थापित किये। ताम्रयुग के ये अवशेष अभी भी मौजूद हैं। क्रमश: ज्ञान तथा अनुभव का अधिक विस्तार होकर, उसकी अन्तिम परिणति सिन्धु सभ्यता के आविर्भाव में हुई।

द्रविड जाति कला-कौशल, वाणिज्य-व्यापार तथा प्रबन्ध-व्यवस्था में प्रवीण थी। उसके परिवार मातृसत्तात्मक थे। मातृसत्तात्मक समाज में ही सामान्यत, मातृ-देवियों की तथा शिश्नदेव (शिवलिंग) की पूजा होना स्वाभाविक था। आर्यों में इनका संघर्ष अनिवार्य हो उठा। ये पराजित हुए, बहुतेरे अपने नगर त्यागकर पूर्व की ओर निकल गये और बिहार तक के क्षेत्र में फैल गये। कुछ राजस्थान में से निकलकर दक्षिण की ओर चले गये। जो वहीं बस गये वे दास हो गये। उनसे रंगभेद के आधार पर शूद्र जाति बनी। बलूचिस्तान में ब्राहुई नामक द्रविड भाषा-परिवार की बोली अभी भी जिन्दा है। इससे सूचित होता है कि किसी काल में बलूचिस्तान में द्रविडों के प्रभावशाली उपनिवेश थे।

दक्षिण में पहुँचकर शताब्दियों तक द्रविड जाति अपना स्वतन्त्र विकास करती रही। उसने लंका को भी आबाद किया। वहाँ की सिंहल भाषा द्रविड परिवार की है। वहाँ पहुँचकर उन्होंने अपने राज्य स्थापित किये। स्वायत्त-शासन, सुप्रबन्ध, कला-कौशल, व्यापार-वाणिज्य के अद्भुत उदाहरण प्रस्तुत किये। ऐतिहासिक काल में उन्होंने दक्षिणी-पूर्वी एशिया में अनेक उपनिवेश स्थापित किये, जहाँ वे शैव, वैष्णव और बौद्ध-धर्म ले गये। उनके बन्दरगाहों से दक्षिण-पूर्वी और उत्तर-पश्चिमी देशों से खूब व्यापार होता रहा।

संस्कृत-साहित्य में द्रविडों को 'द्रामिल' कहा जाता रहा। उसी का बदला हुआ रूप 'तामिल' है। दक्षिणी भारत में तेलगू, तमिल, कन्नड और मलयालम इनकी प्रधान भाषाएँ हैं। अनेक उप-भाषाएँ भी हैं। तमिल सर्वाधिक विकसित भाषा है। इन चारों भाषाओं में विशाल साहित्य है। तमिल भाषा का साहित्य सर्वाधिक प्राचीन माना जाता है।

द्रविडों ने आर्य संस्कृति को अपनाकर, उसी आर्य संस्कृति में अनेकानेक परिवर्तन उपस्थित कर दिये। पूजा की विधि भी इन्हीं की देन है। साथ ही उन्होंने अनेक देवी-देवता भी प्रदान किये, जैसे सर्प, वृक्ष, शिव इत्यादि।

सब विद्वानों ने यह स्वीकार नहीं किया है कि द्रविड जाति ने ही सिन्धु सभ्यता स्थापित की किन्तु पहले बताये गये मत को मानने से इतिहास की कड़ियाँ आपस में जुड जाती हैं। साथ ही, प्राप्त तथ्य भी उसी के पक्ष में संकेत प्रदान करते हैं। किन्तु, कोई ऐसा निर्णायक प्रमाण सामने नहीं आया है जो निर्विवाद रूप से यह सिद्ध कर दे कि द्रविड जाति को ही सिन्धु सभ्यता के विकास का श्रेय देना चाहिए।

आर्य सभ्यता का आरम्भ

ऋग्वैदिक युग

आज से पाँच साढ़े-पाँच हजार वर्ष पूर्व, भारत के उत्तर-पश्चिम कोण में आर्यअश्वारोहियों के दल-के-दल एकत्र होने लगे थे। उन्हें अपनी विकास-प्रसार यात्रा में अनेक युद्ध करने पड़े। उन्होंने विविध वैचारिक आन्दोलनों का सूत्रपात किया। इसके द्वारा वे एक ऐसी सभ्यता की स्थापना कर सके, जो काल के क्रूर प्रहारों को लौटाने लगी। प्रयत्न, संघर्ष, उत्थान, समन्वय और विकास तथा पुनःसंघर्ष का एक ऐसा सिलसिला शुरू हुआ, जिससे भारतीय समाज के जीवन और पुनरुज्जीवन, तथा नवीनीकरण के दृश्य अनेक काल-खण्डों में उद्भासित हो उठे। प्राचीन सभ्यताएँ परिवर्तन की अग्नि-प्रक्रियाओं में पड़कर नष्ट हो गयी, किन्तु भारतीय आर्य सभ्यता सारे जीवनप्रद तत्त्वों को समेट-कर, अनेक परीक्षाओं में से गुजरकर अपना नवीनीकरण तथा पुनरुज्जीवन करती रही। उसके स्थायित्व का यह मूल रहस्य है। इस आर्य सभ्यता के आदि संस्थापक कौन थे और शुरू में उन्हें क्या करना पड़ा, इसकी एक हलकी-सी झलक यहाँ दी गयी है।

सभ्यता के उषःकाल में जिस जाति ने लगभग सारे यूरोप से लेकर ईरान और भारतवर्ष को अपनी सभ्यता और संस्कृति प्रदान करते हुए, विश्व-इतिहास को एक नया मोड़ दिया, वह आर्य जाति या उसकी एक शाखा ईसा के तीन साढ़े-तीन हजार वर्ष पूर्व भारत के दरवाजे आकर खड़ी हुई। उसके अश्वारोही वीरों ने पश्चिमोत्तर (बलूचिस्तान-अफगानिस्तान) के आर्येतर सभ्यता केन्द्रों को नष्ट किया। क्रमशः ये आर्य सप्त-सिन्धु (पंजाब) के प्रदेश में अपने उपनिवेश स्थापित करने लगे। आर्य जातियाँ एक नहीं, अनेक समूहों और प्रभावों में आयीं और उनका प्रारम्भिक प्रवेश तथा, उसके अनन्तर, सप्त-सिन्धु के विभिन्न प्रदेशों में उनके द्वारा उपनिवेशों की स्थापना और प्रसार के बीच एक सहस्र से अधिक वर्ष बीत गये।

देवासुर-संग्राम : आर्य-जन भारत की ओर मुड़ने के पहले ईरानी आर्यों के साथ मध्य एशिया में कहीं घूम रहे थे। ईरानी आर्य तथा हमारे आर्यों के बीच, किन्हीं बातों को लेकर, विशेषकर धार्मिक तत्त्वों के विषय में, घनघोर मतभेद हुआ। इस मतभेद ने परस्पर घृणा, तिरस्कार औरयुद्ध का रूप धारण कर लिया। हमारे लिए जो पूज्य थे वे उनके लिए घृणास्पद, और उनके लिए जो श्रेष्ठ थे, वे हमारे लिए दुष्ट, हो उठे। हमारे यहाँ असुर शब्द का अर्थ बहुत बुरा है, उनके यहाँ देव शब्द का अर्थ बहुत बुरा है। उनके धर्म-ग्रन्थ जेन्द-अवेस्ता तथा हमारे धर्म-ग्रन्थ वेद के तुलनात्मक अध्ययन से पता चलता है कि हम दोनों की भाषाएँ लगभग समान थीं, आचार-विचार भी लगभग समान थे, साथ ही देवता भी समान थे। मित्र, वरुण, नासत्य, अग्नि, सूर्य आदि की आराधना हमारे यहाँ भी होती थी,

उनके यहाँ भी। किन्तु, जिन्हें हम असुर कहते हैं, वे उनके लिए पूज्य हुए। अहुर मज्द उनका सर्वोपरि देवता था। वह असुर महत् है। हमारे यहाँ इन्द्र, असुरों को मारनेवाला देवता है। वृत्रासुर की कथा हमारे यहाँ भी है, उनके यहाँ भी है। हमारे लिए वृत्रासुर दुष्कर्मों का निधान है, उनके लिए वह गुणों की खान है। वे इन्द्र को बुराई की जड़ समझते हैं। हमारे यहाँ वरुण महान् होते हुए भी असुर है। उनके लिए वरुण महत्तम है, श्रेष्ठतम है। एक युग में वरुण हमारे लिए भी श्रेष्ठतम था। ऋग्वेद के मन्त्रों से सूचित होता है कि वह विश्व-व्यवस्था या ऋत का प्रतीक माना जाता था। संक्षेप में मध्य एशिया से भारत आने के पूर्व इनके बीच कलह और संघर्ष था। इसी संघर्ष की एक झलक हमारे यहाँ देवासुर-संग्राम की कुछ कथाओं में भी देखी जा सकती है।

द्वितीय युद्ध क्रम : भारत के पश्चिमोत्तर प्रदेशों में आते ही आर्यजनों को भिन्न धर्म, भिन्न समाज-व्यवस्था, भिन्न आचार विचारवाली ऐसी सभ्यता का सामना करना पड़ा, जो पहले ही से उन प्रदेशों में जमी बैठी थी। परिणामतः, संघर्ष अनिवार्य हो उठा। वह सभ्यता अधिक विकसित होने से, उसकी प्रतिरोध-शक्ति भी अधिक थी, जिसके फलस्वरूप अधिकाधिक वैमनस्य और घृणा का वातावरण बनता गया।

दाशराज्ञ युद्ध : आर्य जन आपस में भी लड़ते थे। आर्य जाति स्वयं कई 'जनों' (कबीलों) में बँटी थी। उनमें पाँच प्रमुख थे—यदु, तुर्वसु, अनु, द्रुह्यु और पुरु। इनके अतिरिक्त पश्चिमोत्तर प्रदेश में, गान्धारि, पक्थ (पख्तून), केकय, अलिन, विषाणिन, शिव, और भलान भी थे। त्रित्सु और सृंजय नामक जन भी थे। आर्य अब सप्तसिन्धु के प्रदेश में पहुँच चुके थे। यह सप्तसिन्धु प्रदेश आर्यों का पंजाब ही है, जिसको वितस्ता (झेलम), असिक्नी (चिनाब), परुष्णी (रावी), विपाशा (ब्यास), शतद्रु (सतलज), सरस्वती (जो अब लुप्त हो गयी है), तथा सिन्धु अपने जल से सिंचित करती थीं।

यह स्वाभाविक ही था कि भूमि के लिए आर्य जातियों में परस्पर युद्ध हों। उस काल में पुरु जाति का बहुत प्रभाव था। किन्तु साथ ही भरत नामक जाति भी बहुत महत्त्वाकांक्षी थी। 'पुरु आर्य' कहलाने वाले आर्य जन अपने को शुद्ध रक्तवाले समझते थे। इन्होंने ही दास राज्यों को नष्ट किया होगा। इस बात का प्रमाण नहीं मिला है कि इन आर्य जातियों के अपने अलग-अलग राज्य हुआ करते थे। उनके पृथक्-पृथक् नेता अवश्य थे। ये नेता कभी-कभी राजा कहलाते थे।

इसके विपरीत, भरतों का अपना एक वास्तविक राजा था। उनका राज्य यमुना के पूर्व में था। इस राज्य में पश्चिमोत्तर प्रदेश से भागे हुए आर्येतर थे ही, हिमालय अंचल में रहने वाली यक्ष-गन्धर्व आदि जातियाँ भी थीं। ये जातियाँ यहाँ बहुत पहले से रह रही थीं। भरत जाति का राजा सुदास था। सुदास ने आर्येतरों का भी एक संघ बना लिया। उसका नेतृत्व 'भेद' नामक एक आर्येतर पुरुष के पास था। सुदास, भरत जाति का राजा था, न कि नेता। इसके विपरीत, पश्चिम की ओर के आर्य अभी 'नेता' ही थे। पुरु जाति ने, दस आर्य जातियों का एक संघ बनाया, जिसमें अलिन (काफिरिस्तान), पक्थ (पख्तून), भालानस (बोलन दर्रे के समीपवर्ती क्षेत्र के निवासी), शिव (सिन्धु) तथा विषाणिन, एवं पंजाब के पुरु, यदु, तुर्वसु, अनु और द्रुह्यु भी शामिल थे।

आर्येतर जन दोनों ओर से लड़े। राजा सुदास की विजय हुई। पुरु जनों का प्राधान्य समाप्त हो गया।

सुदास अपनी इस सफलता से सार्वभौम नरेश बन गया। उसने जीते हुए राज्यों को अपने राज्य में नहीं मिलाया, वरन् अपना आधिपत्य स्वीकृत कराने के लिए उनसे कर वसूल करता रहा। अधिपति की यह भावना बाद में चलकर 'सम्राट' की कल्पना में बदल गयी।

आर्य-जीवन : आर्यों की सभ्यता मुख्यतः, ग्राम सभ्यता थी। वे पशु-पालक भी थे, खेतिहर भी। शुरू-शुरू में, अश्वों का महत्त्व बहुत था। किन्तु, अब गाय काम-धेनु होकर पवित्र बन गयी। बैलों की सहायता से खेती की जाने लगी। गाय का दूध पुष्टिकर था। इसीलिए, वह 'अघन्या' (अवध्य) हो उठी।

जौ, गेहूँ, माष (उड़द), तिल प्रमुख खाद्यान्न थे। मांस भी खाया जाता था। तक्षमन् (बढ़ई), वाय (तन्तुवाय, जुलाहा), कर्मार (धातु का काम करनेवाला), हिरण्यकार (सुनार) आदि व्यवसायियों का उल्लेख भी वेदों में पाया जाता है। दास तो स्वयं शिल्पी ही थे। वे या तो नौकरी करते या गुलामी। आर्य चाँदी, सोने तथा लोहे की भिन्न-भिन्न वस्तुएँ बनाते। वस्त्र-निर्माण एक प्रमुख उद्योग था। वे ऊन और रेशम भी तैयार करते। सिन्धु सभ्यतावालों से उन्होंने वस्त्रोद्योग अवश्य सीख लिया होगा।

वैदिक साहित्य में 'पणि' नामक एक जाति का उल्लेख आता है। सम्भवतः यह पणि जाति, भूमध्यसागर तट पर, फिलस्तीन के पास, रहनेवाले फिनीशियनों की ही शाखा होगी। भारतीय आर्यों का उनसे खूब परिचय था। पणि एक व्यापारी जाति थी। व्यापार के लिए, वस्तु-विनिमय ही सबसे अच्छा साधन था। मुद्राओं का (सिक्कों का), शायद, चलन नहीं था। वैसे वेदों में, 'निष्क' नामक एक स्वर्णमुद्रा का उल्लेख आता है। सम्भवतः, आर्य स्थल और जल मार्गों द्वारा दूर-दूर के देशों में पहुँचते होंगे।

इनके परिवार पितृ-सत्तात्मक थे। स्त्रियों का उचित सम्मान था। ऋषियों की श्रेणी में गार्गी, मैत्रेयी, लोपामुद्रा जैसी शिक्षिता नारियाँ भी थीं। बाल-विवाह का नाम नहीं था। विधवा-विवाह खूब होते थे। पुरुष एक से अधिक पत्नियाँ रख सकता था, किन्तु स्त्री का एक ही पति होता था। 'स्त्रियों और शूद्रों को शिक्षा नहीं देनी चाहिए' यह विचार वैदिक युग में विद्यमान नहीं था। स्वयंवर प्रचलित थे। लड़कियों का उपनयन संस्कार होता था, वे जनेऊ पहनतीं और ब्रह्मचर्य का पालन करती थीं।

वर्ण-व्यवस्था का किसी-न-किसी रूप में उदय हो चुका था। सर्वोच्च वर्ग दो थे। ब्राह्मण और क्षत्रिय। शेष 'विश' कहलाते। ऋषि भी वंशानुक्रम से होते; वैसे ही कभी-कभी राजा भी। किन्तु, राजा का बहुत बार चुनाव भी होता। 'सभा' और 'समिति' नामक दो सभाएँ भी थीं, जो राजा को सलाह देतीं। राजा भूमि का अधिपति नहीं, वरन् जन का नेता होता था। उसे समाज के अनुशासन के अन्तर्गत नियमों का पालन करते हुए काम करना पड़ता था। वर्ण, जन्म के अनुसार तो थे ही तथा कर्म के अनुसार भी थे। कोई भी व्यक्ति अपनी निपुणता, तप, विद्वत्ता के आधार पर ब्राह्मण बन सकता था। इसी प्रकार, कोई भी आर्यजन अपनी वीरता के द्वारा क्षत्रिय बन सकता था। वैदिक आर्यों ने समाज-व्यवस्था का

स्पष्टीकरण करने के लिए, समाज को मानव-शरीर की उपमा दी है। पुरुष-सूक्त में हम पढते हैं कि शीर्ष-स्थानीय ब्राह्मण थे, क्षत्रिय बाहु के समान, पेट और जघाओ की भाँति वैश्य और शूद्र पैरो के समान थे।

वैदिक धर्म : वैदिक आर्यो ने सृष्टि की शक्तियो मे देव-रूप देखा। ऋग्वेद मे जो देवता है वे प्रकृति के नाना रूपो और शक्तियो के प्रतीक हैं। आगे चलकर, उन्होंने कण-कण मे समाये परमात्मा की भावना की। प्रारम्भ मे वे प्रकृति की विभिन्न शक्तियो के उपासक थे। हम वैदिक देवताओ को तीन भागो मे बाँट सकते हैं : (1) सर्वोच्च शून्याकाश के देवता, जैसे, द्यौस्, अश्विन, सूर्य तथा उसके विभिन्न रूप, जैस सवितृ, उपस्, और इनके अतिरिक्त, विष्णु और वरुण, (2) पृथ्वी के देवता, जैसे अग्नि, सोम, सरस्वती तथा पृथ्वी, और इन दोनो के बीच, (3) अन्तरिक्ष के देवता जैस इन्द्र, वायु, पर्जन्य, मरुत। इनम सर्वाधिक प्राचीन है—द्यौस् तथा पृथ्वी। द्यौस् या द्यौ आकाश का चमकता देवता था। वह हमारा पिता था, पृथ्वी हमारी माता थी। किन्तु, ज्यो-ज्यो समय आगे बढता गया, द्यौ के स्थान पर वरुण का तथा इन्द्र का माहात्म्य बढता गया। वरुण—आकाश का देवता, और इन्द्र—मेघ-गर्जन तथा वर्षा का देवता। आगे चलकर, वरुण समुद्रा का, जल का भी देवता बना। यही नही, वह सत्य और ऋत का (विश्व-व्यवस्था, सृष्टि-व्यवस्था, समाज-व्यवस्था, नैतिकता आदि सबका) देवता बना। विश्व के त्रिकालदर्शी शासक और अनुशासक के रूप में उसकी कल्पना की गयी। पाप-शान्ति के लिए लोग उससे क्षमा-याचना करते।

मन्त्र-द्रष्टा ऋषियो ने वरुण के प्रति कुछ अतिशय रसार्द्र स्तवन किये हैं। वरुण के पश्चात् सर्वाधिक लोकप्रिय देवता इन्द्र है। वह देवो का अग्रणी अर्थात् नेता था। वह वर्षा करता, शत्रुओ के दुर्गों का विध्वस करता। युद्ध मे विजय प्राप्त करने के लिए आर्य उसकी प्रार्थना करते। इसके अतिरिक्त सूर्य के विभिन्न रूप—पूषा, मित्र, सवितृ इत्यादि भी आर्यो के प्रिय देवता थे।

पृथ्वी-स्थित देवताओ मे अग्नि तथा सोम प्रमुख थे। इनमे भी अग्नि का महत्त्वपूर्ण स्थान था। अग्नि भक्तो द्वारा दी गयी आहुतियो को देवताओ तक पहुँचाता। वह सवाद वाहक था। सोम नामक वल्लीसे मादक पेय निकाला जाता। रहस्यपूर्ण ढग से सोम की समता चन्द्रमा से की गयी थी, यहाँ तक कि चन्द्रमा का एक नाम भी सोम हो गया। चन्द्र वनस्पति-जगत् का नियन्त्रण करनेवाला देवता था। वैदिक-विद्वानो का विचार है कि 'विष्णु' नामक देवता का प्रादुर्भाव बहुत बाद मे हुआ।

इनके अतिरिक्त और भी बहुत-से देवता थ, जैसे यम, रुद्र, प्रजापति, इत्यादि।

वैदिक ऋषि मन्त्रो और स्तवनो द्वारा देवताओ का आवाहन करते। ये मन्त्र यज्ञ के समय पढे जाते। यज्ञाग्नि मे घृत, दूध, अन्न, आमिष (मास) तथा सोम को डालकर मन्त्र-पाठ किया जाता। वैदिक विधि यज्ञो पर आधारित है। कर्म-काण्ड की बहुलता थी। किन्तु मन्त्रो तथा स्तवनो मे, देवताओ के प्रति सच्चे भक्ति-भाव का भी परिचय मिलता है।

आर्यों की धर्म-दृष्टि की बहुत बडी विशेषता यह थी कि वे देवताओ की सहायता से इसी पृथ्वी को स्वर्ग बनाना चाहते थे। उनके धर्मोपदेश ससार से

विरक्ति या पलायन नहीं सिखाते थे, वरन् वे इसी जगत् की सर्वांगीण समृद्धि के लिए देवताओं का आवाहन करते थे। आर्य जन आशावादी थे। उनका अन्तःकरण प्रसारशील था।

वे मूर्तिपूजक नहीं थे, देवताओं के लिए मन्दिर नहीं बनाते थे। प्रकृति-सौन्दर्य के प्रति, उनका हृदय सहज रूप से आकर्षित होता। प्रभात की मनोरम सौन्दर्य-आभा को 'देवी' का रूप देना, उनकी कल्पना का सुन्दर नमूना था। ऋग्वेद में उषा के प्रति जो ऋचाएँ कही गयी हैं उनमें काव्य की मनोरम आभा है।

किन्तु, इसके बावजूद, वे मातृ-देवियों के पूजक नहीं है। वैदिक धर्म में पुरुष भावों की प्रधानता है। उसमें एक ताजगी है, नवीनता की संवेदना है, विकास और प्रसार की भावनाएँ है। उस धर्म में स्वर्ग का तो उल्लेख है, किन्तु नरक का कहीं नहीं। पापी मनुष्य को इसी लोक में दण्ड दे दिया जाता था। उसके लिए नरक के विधान की आवश्यकता नहीं थी। यह हमारा प्रारम्भिक वैदिक धर्म है।

वैदिक ऋषियों में सर्वाधिक प्राचीन वैवस्वत् मनु है। किन्तु, प्रधान हैं—गृत्समद, विश्वमित्र, वामदेव, अत्रि, भारद्वाज और वशिष्ठ। इनके अतिरिक्त, कण्व अंगिरस शिवि, औशीनर, प्रतर्दन, मधुच्छन्दा, देवापि के नाम तथा अगस्त्य ऋषि की पत्नी लोपामुद्रा का नाम विशेष उल्लेखनीय है।

ये सब ऋग्वेद के ऋषि है। वेदों की रचना क्रमशः होती गयी। तिलक के अनुसार, ऋग्वेद की रचना ईसा के 6000 साल पहले और प्रो. जैकोबी के अनुसार ईसा के 4000 साल पहले हुई। प्रोफेसर विण्टरनित्ज़ ऋग्वेद की रचना ईसा से कम-से-कम 2500 साल पहले बताते हैं। यही काल आजकल सर्वमान्य है। मुख्य बात यह है कि सिन्धु-सभ्यता के अन्त के पहले ऋग्वेद की रचना हो रही थी। यह निश्चित है।

वैदिक आर्य धर्म आर्यों की किन्हीं अति प्राचीन परम्पराओं के आधार पर बना है। यही कारण है कि बैबिलोनिया को नष्ट करनेवाले कासाइट, एशिया मायनर में राज्य स्थापित करनेवाले हिट्टाइट, तथा मिटन्नी जातियों में, न केवल भारतीय वैदिक संस्कृत नाम मिलते हैं, वरन् वैदिक देवताओं के नाम से व्यवहार भी होता था। इन्हीं वैदिक देवताओं में से कुछ ईरानी आर्यों में प्रधान है। मध्य एशिया के मैदानों में, जब मूल आर्य जाति घूम रही होगी, तब उस समय भी इसी वैदिक धर्म का कोई प्राचीनतर रूप उसका भी धर्म रहा होगा। हाँ, यह सच है कि भारत में आकर, उनमें नये भाव आये, नयी परम्पराएँ जुड़ी।

ऋग्वेद में जो स्थल-निर्देश है उनमें सूचित होता है कि आर्य अभी पंजाब छोड़कर उसके आगे पूर्व की ओर अधिक नहीं बढ़े थे। किन्तु पंजाब में बसे आर्यों का, पश्चिमोत्तर में रहनेवाले आर्यों से अधिक सम्पर्क नहीं रहा। यजुर्वेद में, मुख्यतः ब्रह्मावर्त तथा सतलज और यमुना के बीच के स्थानों का संकेत है। अतः यह अनुमान स्वाभाविक हो जाता है कि आर्यों के उपनिवेश यमुना तट तक पहुँच चुके थे।

यजुर्वेद तक आते-आते वैदिक धर्म में कर्मकाण्ड की प्रधानता हो चुकी थी। फलतः, पौरोहित्य का कार्य बढ़ गया था। यज्ञ-याग की विधियों का कठोरतापूर्वक पालन किया जाने लगा, तथा बाह्य नियमों के पालन ही को धर्म समझा जाने

लगा। यजुर्वेद सहिता मे गद्य और पद्य दोनो है। सूक्त छन्दोबद्ध हैं। कुछ सूक्त ऋग्वेद मे स ज्यो-के-त्यो ले लिये गये है।

सामवेद सहिता का अधिकाश भाग, ऋग्वेद मे से ही लिया गया है। सामवेद का उद्देश्य वेद-मन्त्रो को गेय बनाना है, ऐसे वेद मन्त्रो को, जिनका पाठ यज्ञो के निमित्त हुआ करता था।

अथर्ववेद बहुत बाद की चीज है। इस सहिता मे इन्द्रजाल, मन्त्र-तन्त्र, जादू-टोना इत्यादि भर पडे हैं। स्पष्टत यह आर्येतर सस्कृति का ही प्रभाव है। इसके बारे मे बताया जा चुका है। किन्तु साथ ही उसमे पृथ्वी सूक्त जैसे सुन्दर सूक्त भी है। अथर्ववेद मे व्रात्य स्तोम यज्ञ का विधान है। इस यज्ञ के द्वारा व्रात्यो को 'शुद्ध' करके उन्हे ब्राह्मण बना लिया जाता था। सक्षेप मे अथर्ववेद तक आते-आते वैदिक धर्म मे परिवर्तन आरम्भ हो गया था। अथर्ववेद मे शिवलिंग को भी स्थान मिला, उस शिवलिंग को, जो सिन्धु सभ्यता का प्रतीक देवता था। पशुपति शिव तथा शिवलिंग की पूजा यजुर्वेद से ही शुरू हो गयी थी। वह देवता अश्वमेध यज्ञ तक मे स्थान पा गया।

वेद 'श्रुति' भी कहलाते हैं, इसलिए कि शिष्य, उन्हें गुरुओ से सुन-सुनकर कण्ठाग्र कर लेते थे। महान् विद्वान ऋषि बादरायण वेदव्यास ने उनका सकलन किया। इसलिए, ये चारो वेद सहिताएँ कही जाती है। सहिता का अर्थ है एकत्र रखना—अर्थात् सकलन करना। वेदो का जो रूप आज विद्यमान है वह भगवान [illegible] ्वान वेद- [illegible] जाति की, [illegible] देनेवाला महान् द्रष्टा वेदव्यास इस बात का साक्षी है कि जिस भारतीय आर्य सभ्यता का विकास हुआ है उसमे आर्येतर तत्त्वो का समावश स्वाभाविक हो उठा था।

उत्तर-वैदिक काल

ब्राह्मण युग

यह युग आर्य सस्कृति के प्रसार और विकास, अभ्युत्थान और उत्कर्ष तथा विभिन्नीकरण का युग है। वैदिक सभ्यता की सरिता अब यहाँ महानदी बन रही है। अनुभूति और तर्क, चिन्तन और अन्वेषण ने देश भर मे नया वैचारिक वातावरण बना दिया है। भारतीय मस्तिष्क अपने सम्पूर्ण सामर्थ्य के साथ जगमगाने लगा है, जिसका प्रभाव विश्व के विभिन्न देशो और विभिन्न सहस्राब्दियो मे विस्तृत और घनीभूत होता रहा।

भारतीय इतिहास मे उत्तर-वैदिक काल का विशेष महत्त्व है। इस काल मे अभ्युदय और उत्कर्ष, विस्तार और प्रसार के साथ ही, मतभेद और ऊहापोह, व्याख्या और विश्लेषण, अनुभूति और साक्षात्कार, विचार-स्वातन्त्र्य और विरोध, अनुरोध और अन्वेषण की एक बहार आ गयी। और यह बहार सदियो तक ऐसी टिकी कि आज भी उसका सौरभ यूरोप के तत्त्व-चिन्तको को अनुभूत होता है।

इस काल मे हमारे धर्म, दर्शन, नीति, आचार-विचार, मत-विश्वास आदि की प्रधान रूपरेखा निश्चित और सुस्पष्ट हो गयी।

यह एक बहुत लम्बा जमाना था, जो कम से-कम आठ सौ-नौ सौ वर्षों तक टिका। ईसा के 2000 साल पहले से शुरू होकर वह लगभग एक हजार साल तक अर्थात् महाभारत युद्ध तक रहा। इस प्राचीन युद्ध का समय ई पू 1000-900 वर्ष माना जाता है। महाभारत युद्ध के बाद, भारतीय समाज फिर बदलने लगा।

आर्य सस्कृति का विस्तार जो पश्चिम कोण से शुरू हुआ था, वह क्रमश यमुना, गगा, सदानीरा (गण्डक) के पार दक्षिण तथा उत्तर बिहार और अग (उडीसा) तक पहुँच गया। उधर, आर्यों ने अपने उपनिवेशों का क्रमश विस्तार करते हुए, विन्ध्याचल पार कर लिया और उन्होंने गोदावरी नदी के उत्तर के सटीप प्रदेशो मे भी अपने राज्य स्थापित कर लिये। 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' के सिद्धान्त का प्रयोग अभूतपूर्व रूप से सफल होता गया।

किन्तु, इस बीच नयी नयी आर्य जातियाँ, पूर्वेतर आर्य जातियो के परस्पर विलयन से बहुसख्यक होकर नया रूप और नाम, प्रदेश और राजनीति लेकर उपस्थित हुई थी। कुरु और पाचाल राज्य अब प्रधान हो उठे। कुरुओ की राजधानी आसन्दीवत थी तथा पाचालो की काम्पिल्य। इनका प्रदेश पूर्वी पजाब अर्थात् सरस्वती नदी से लेकर यमुना तक का प्रदेश समझ सकते है। इनके पूर्व मे, कोशल (अवध) काशी और विदेह (उत्तर बिहार), तथा मगध (दक्षिण बिहार), और अग (उडीसा) के राज्य बन गये। यहाँ तक कि नये प्रदेशो के साथ नयी जातियो के नाम भी सुनायी पडे, जैसे दक्षिण-पश्चिम मे पुलिन्द, मध्य प्रान्त तथा उडीसा के शबर, बगाल के पुड्र, और इनके अतिरिक्त आन्ध्र, यहाँ तक कि अब (ऐतरेय और जैमिनीय ब्राह्मण ग्रन्थो म) विदर्भ का नाम भी सुनायी दिया। पूर्व तथा दक्षिण की ओर प्रसार पानेवाली आर्य जातियो मे वर्ण सकरता बढती ही गयी। फलत, उत्तर तथा पश्चिम के आर्य—जैसे कुरु तथा पाचाल—उनके प्रति असम्मान और अनादर के भाव रखने लगे। ये आर्य उन्हें निम्न समझते थे।

किन्तु, राजनैतिक तथा सास्कृतिक दृष्टि से पूर्व के आर्य क्रमश प्रभावशाली होन लगे। आर्य सस्कृति का केन्द्र भी धीरे-धीरे पूर्व की ओर हटता जा रहा था। महाभारत-युद्ध के काल तक वह पश्चिमी पजाब से पूर्वी पजाब अर्थात् सरस्वती और गगा के मध्य के प्रदेश मे आ गया। महाभारत युद्ध के बाद वह धीरे-धीरे पूर्व की ओर बढता हुआ दक्षिण बिहार अर्थात् मगध म पहुँच गया। किन्तु महाभारत युद्ध के समय मगध एक पिछडा हुआ और बर्बरतापूर्ण प्रदेश समझा जाता था।

उत्तर-वैदिक काल के प्रारम्भ होते ही, अब हमे भव्य नगरो और विस्तृत

राज्यों के उल्लेख मिलने लगते हैं, और वे उल्लेख क्रमश बढ़ते जाते हैं। साथ ही राजा-नामधारी नेता अर्थात् नरेश की सत्ता समाप्त होकर उसके स्थान पर वास्तविक राज्यों और सर्वाधिकार या परमाधिकार (अर्थात् सर्वोच्च अधिकार) वाले राजाओं का अभ्युदय होता है। युद्धो मे नरेशो ने जो सफल नेतृत्व किया वही नेतृत्व अब अधिनायकत्व बन गया। राजा लोग अपनी प्रजा पर अनियन्त्रित राज्य-सत्ता रखने का दावा करने लगे। जन-साधारण से तरह-तरह के कर लिये जाते, जिसमे 'बलि', 'शुल्क', और 'भाग' नामक कर मुख्य हैं। उधर राजा में दैवी गुण माने जाने लगे। जो राजा अनेक युद्धो मे सफल हो जाता उसे सार्वभौम, एकराट्, विराट्, अधिराज माना जाता। वह अब 'राजसूय', 'अश्वमेध' आदि यज्ञो का विधान कर, अपने राज्य को 'साम्राज्य' मे परिणत करने का स्वप्न देखता। हाँ, उसे ब्राह्मणो की सत्ता अवश्य माननी पड़ती थी।

उत्तर वैदिक काल म राजतन्त्र के विकास के साथ-साथ गणतन्त्र का भी विकास हुआ। ये गणतन्त्र कई तरह के थे। हिमालय के उत्तर-कुरु और उत्तर-मद्र नामक प्रदेशो मे गणतन्त्र व्यवस्था को वैराज्य कहते और प्रधान शासक नेता को 'विराट्'। उसी प्रकार दक्षिण-पश्चिम मे सात्वतो (यादवो) का जो प्रदेश था, वहाँ समाज का मुखिया ही राजा था, अर्थात् वह संघ का मुख्य नेता था, न कि वशानुक्रमागत राजा। उस शासन-व्यवस्था को भोज्य कहा जाता, और राज-प्रमुख को भोज। दक्षिण-पश्चिम के सुराष्ट्र, सुवीर, कच्छ आदि प्रदेशो मे 'स्वराज्य' प्रथा प्रचलित थी, तथा वहाँ का शासक 'स्वराट्' कहलाता। यह शासक वस्तुत समान अधिकारवाले जन-सामान्य म केवल ज्येष्ठ होता था और अपने कर्मों से श्रेष्ठ माना जाता था। वस्तुत, वहाँ कुलीन घरानो का शासन था। सब कुलीन घरानो के अधिकार समान थे। मध्य-प्रदेश म (कुरु, पचाल, कोशल आदि म) 'राज्य' नामक शासन-व्यवस्था थी। वहाँ का शासक राजा कहलाता। यहाँ वस्तुत वशानुगत राजा होता। उसी प्रकार पूर्व दिशा म मगध, कलिंग (उडीसा), बग मे 'साम्राज्य' नामक राज्य-व्यवस्था थी। वहाँ का शासक 'सम्राट्' कहलाता और उसका विधि-पूर्वक राज्याभिषेक होता।

वर्ण भेद वर्णाश्रम व्यवस्था दृढ हो चुकी थी। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र—ये चार वर्ण स्थापित हो चुके थे। ब्राह्मण वर्ण सर्वोच्च वर्ण था, और शेष वर्ण क्रमश निम्नतर थे। ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ और सन्यास, ये चार आश्रम भी आयु की क्रमिक अवस्थाओ के अनुसार थे। ये आश्रम शूद्रो के लिए नही थ। शूद्र वर्ण, ऋग्वेद काल मे तो आर्य विश (आर्यजन) से अलग था, किन्तु, अब वह व्यवस्थाबद्ध समाज की ही एक विशेष श्रेणी के रूप मे स्थापित हुआ। विभिन्न वर्णों मे विवाह अब भी होते थे। उनसे वर्ण-सकर जातियाँ बनती जाती थीं। जाति (वर्ण) कर्मणा होने के अतिरिक्त जन्मना भी थी। यद्यपि समाज मे ब्राह्मणो का प्राधान्य था, किन्तु क्षत्रिय वर्ग प्रभावशाली हो उठा था, वह धर्म-कर्म मे भी भाग लेता और कभी-कभी ब्राह्मणो की भाँति ही आध्यात्मिक ज्ञान से युक्त होकर, धर्म की व्याख्या तथा धर्म का नेतृत्व करता। स्त्रियो की स्थिति बहुत उच्च थी। गार्गी-जैसी स्त्रियाँ शास्त्रार्थ भी करती थीं। वे ब्रह्मचर्य का पालन करतीं। गोभिल गृह्य सूत्र मे कहा गया है, जब कोई कुमारी विवाह-मण्डप मे आती थी तो वह न केवल सुन्दर वस्त्रो को पहने हुई होनी वरन् वह यज्ञोपवीत भी धारण किये रहती।

इस प्रकार, सर्वसाधारण आर्य किशोरियो का उपनयन होता। आपस्तम्ब सूत्र मे कहा गया है कि जिस पति ने अन्याय से अपनी पत्नी को त्यागा है, वह पति गधे का चमडा ओढकर प्रत्येक दिन सात-सात घर भीख माँगे, यह कहते हुए कि उस पुरुष को शिक्षा प्रदान करो, जिसने अपनी पत्नी को त्याग दिया है। उसकी यह भिक्षावृत्ति 6 मास तक रहती।

प्राचीन वैदिक काल मे वैश्य खेतिहर थे, पशुपालक थे। किन्तु, अब वैश्य व्यापारी हो गये। उत्तर-वैदिक काल मे व्यापारियो का अभ्युदय हुआ। उनका प्रभाव भी खूब बढा। उनमे से जो धनी थे, वे श्रेष्ठिन् (सेठ) कहलाते थे। राजसभाओ मे भी उनका सम्मान होने लगा। पूर्व भारत के वर्णसकर शासक क्षत्रियों और वैश्यो मे बडा मेल-जोल हुआ। उधर खेती तथा पशु-पालन का काम शूद्र करने लगे। शूद्र न केवल खेतिहर और पशुपालक हुए, वरन् वे रथकार, चर्मकार, लोहकार, मत्स्यमार (मछली-मार) भी हुए। सक्षेप में, पेशो और धन्धो के अनुसार जातियाँ बनने लगी। शूद्रो का समाज से केवल निष्कासन (निकाला जाना) ही नही, वरन् उनका वध भी किया जा सकता था।

धर्म तथा दर्शन उत्तर-वैदिक काल म, नये देवताओ का प्रादुर्भाव हुआ, जैसे, ब्रह्मा, विष्णु, महेश। जन्म, विकास और मृत्यु, उत्पत्ति, पालन और सहार—इन तीन प्राकृतिक क्रियाओ के ये तीन सर्वोपरि देवता थे। ब्रह्मा सृष्टिकर्ता, विष्णु पालनकर्ता तथा शिव सहारकर्ता हो उठे। इनके अतिरिक्त, प्राचीन देवता भी साथ चलते जा रहे थे। कुछ प्राचीन देवताओ को नये देवताओ के साथ जोड दिया गया, जैसे वैदिक देवता रुद्र को शिव से। प्राचीन परम्परा को विकसित करते हुए, उसका इस प्रकार निर्वाह किया गया।

ऋषि-मुनि अरण्य मे जाकर तत्व-चिन्तन करने लगे। अब उनके मन मे यह धारणा जगने लगी कि सृष्टि की उत्पत्ति, विकास और प्रलय केवल एक ही तत्व की तीन प्रक्रियाएँ है। वह तत्व कौन-सा है ? कुछ ने कहा वह तत्व ईश्वर है। उस ईश्वर की आराधना होनी चाहिए, हम सम्पूर्ण हृदय से उसे कण-कण मे प्रतिबिम्बित देखना चाहिए। ऐसी धारणाएँ रखनेवाले ऋषि-मुनियो तथा उनके प्रभाव के अन्तर्गत अन्य जनो के अन्त करण मे, यज्ञ तथा कर्मकाण्ड आदि का उतना महत्त्व नही रहा। किन्तु साथ ही उन्होने यज्ञ तथा कर्मकाण्ड का विरोध भी नही किया।

यह स्वतन्त्र चिन्तन का काल था। कुछ लोग ईश्वर को मानते, कुछ न मानते। मतभेद तथा अन्वेषण, व्याख्या और विश्लेषण, अनुभूति और प्रयोग का वह युग था। मतभेद होते हुए भी, बहुत-से लोग वैदिक परम्परा के प्रति अपनी श्रद्धा प्रदान करते। किन्तु ऐसे भी चिन्तक थे, जो वैदिक परम्परा ही का विरोध करते थे। इनमे व्रात्य मुख्य थे। वे भी अब चुपके-चुपके अपने प्रभाव का विस्तार कर रहे थे।

इधर, वैदिक साहित्य विशालतर हो रहा था। एक-एक वेद से एक-एक ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद जुडता जा रहा था। ब्राह्मण ग्रन्थों मे यज्ञो का विस्तृत वर्णन था। ऋग्वेद के ब्राह्मण ग्रन्थ थे ऐतरेय, कौशीतकी और साख्यायन।

का अर्थ है पास बैठना (अर्थात् गुरु के समीप बैठकर ज्ञान ग्रहण करना)। आरण्यक का अर्थ है वनवासी ऋषियों द्वारा प्रणीत ग्रन्थ। अरण्य अर्थात् वन। वैदिक धर्म का सर्वोच्च विकास उपनिषदों में हुआ। अब हम उपनिषदों के सम्बन्ध में कुछ जान लें। प्रथम है ऐतरेय उपनिषद, जो ऐतरेय ब्राह्मण ही का खण्ड है। दूसरा है ईशोपनिषद। यह यजुर्वेद का अन्तिम अध्याय है। (यजुर्वेद से सम्बन्ध रखनेवाले अन्य उपनिषद हैं कठोपनिषद्, श्वेताश्वतरोपनिषद्, तैत्तिरीय उपनिषद आदि)। तीसरा—सामवेद के ब्राह्मण ग्रन्थों से सम्बन्ध रखनेवाले उपनिषद हैं, केन तथा छान्दोग्य। अथर्ववेद के साथ सम्बन्ध रखनेवाले उपनिषद हैं—प्रश्न उपनिषद, मुण्डक उपनिषद, माण्डूक्य उपनिषद। उपनिषदों में ऋषियों की दार्शनिक अनुभूतियाँ हैं। फलतः उनमें परस्पर विरोध-अन्तर्विरोध भी है। ऐसी स्थिति में, यह स्वाभाविक ही था कि बुद्धि के प्रयास द्वारा, ऋषियों के उन मतों के आधार पर, विभिन्न दर्शनों का विकास हो। आत्मा क्या है ? सृष्टि की उत्पत्ति कैसे हुई ? जगत् के कौन-से मूल-तत्व हैं ? पूरे ब्रह्माण्ड का कोई कर्ता है भी या नहीं ? क्या जगत् किसी शक्ति के अनुशासन में है अथवा प्रकृति के नियमों के अनुसार चलता है ? प्रकृति किसे कहते हैं, उसके गुण-धर्म क्या हैं ? आत्मा और परमात्मा का स्वरूप क्या है, उसके अस्तित्व को स्वीकार करना क्या आवश्यक है ? इत्यादि अनेकानेक बातों पर, विचार, ऊहापोह, चर्चा, वार्ता, मतभेद इस प्रकार चलते रहे कि जिससे वे एक-दूसरे के पूरक हो उठे। फलत भारत में नये-नये दर्शन बने।

दर्शन दो प्रकार के हैं। एक वे जो आस्तिक कहलाते हैं। आस्तिक वे जो वेदों में विश्वास रखते हों, भले ही वे ईश्वर पर विश्वास रखें या न रखें। मीमांसा दर्शन के ऋषि जैमिनि ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास नहीं रखते थे। किन्तु वैदिक परम्परा में उनका विश्वास था। इसलिए वे आस्तिक कहलाये। नास्तिक दर्शन उन्हें कहते हैं जो वेदों में और वैदिक परम्परा में विश्वास नहीं रखते। जैसे, जैन बौद्ध, चार्वाक मत। ये नास्तिक दर्शन हैं। आस्तिक दर्शन हैं—सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, मीमांसा और वेदान्त। न्याय दर्शन, वस्तुत, तर्कशास्त्र है, और तर्कशास्त्र पर आधारित जीवन-जगत् की व्याख्या है, सृष्टि और आत्मा के स्वरूप का विश्लेषण है। न्याय दर्शन के प्रवर्तक गौतम ऋषि हैं। वैशेषिक दर्शन, न्याय की ही भाँति, किन्तु भिन्न पद्धति से, सृष्टि की व्याख्या करता है, वैसे ही आत्मा की भी। दोनों दर्शनों का झुकाव, बाह्य संसार और सृष्टि अर्थात् भौतिक तत्वों का स्वरूप जानने की ओर अधिक है। इसीलिए, आगे चलकर, दोनों दर्शन लगभग एक हो गये और न्याय-वैशेषिक कहलाये। वैशेषिक मत के प्रतिष्ठापक कणाद मुनि कहे जाते हैं।

सांख्य : न्याय, वैशेषिक, सांख्य तीनों सृष्टि को सृष्टि ही मानते हैं, उसको परमात्मा का प्रकट रूप नहीं मानते। अन्तर केवल यह है कि सांख्य ने 'प्रकृति' और 'पुरुष' इन दो श्रेणियों की कल्पना की। दोनों के योग से सारी सृष्टि की उत्पत्ति और विकास हुआ। सृष्टि की उत्पत्ति, विकास और प्रलय के लिए सांख्य ईश्वर को आवश्यक नहीं मानता। सांख्य का 'पुरुष' तत्व ईश्वर नहीं है। यह केवल चेतना का केन्द्र है, और ऐसे केन्द्र अनगिनत हैं।

सांख्य दर्शन के प्रवर्तक कपिल मुनि थे। योग दर्शन भी यह मानता है कि प्रकृति ही से संहार, उत्पत्ति और विकास हुआ। किन्तु, यह दर्शन प्रकृति और

पुरुष के साथ-साथ ईश्वर की सत्ता को भी स्वीकार करता है। योग दर्शन के अधिष्ठाता पतंजलि है। मीमांसा के मूल आचार्य जैमिनि हैं। उन्होंने वैदिक कर्म-काण्ड ही के औचित्य का तर्कपूर्ण प्रतिपादन किया।

वेदान्त दर्शन : यह दर्शन 'वेदान्त' इसलिए कहा जाता है कि तत्व-चिन्तन का चरम उत्कर्ष इसी दर्शन मे हुआ। वेदान्त दर्शन के प्रणेता हैं बादरायण व्यास। वेदान्त के अनुसार, जीवन और जगत्, सृष्टि और आत्मा मे समाया हुआ केवल एक ही तत्व है। वह है ब्रह्म या परमात्मा। सृष्टि या जगत् तथा जीवात्मा आदि इसी परमात्मा का व्यक्त रूप हैं, पृथक् आंशिक रूप या खण्ड रूप हैं।

बादरायण व्यास ने वेदान्त सूत्रों की रचना की। इन सूत्रों के, आगे चलकर, अनेक भाष्यकार हुए। इन भाष्यकारों ने (जैसे शंकराचार्य, रामानुजाचार्य आदि ने) उन सूत्रों की व्याख्या करके, अपने-अपने अलग-अलग मत प्रतिपादित किये। वेदान्त को अद्वैत मत भी कहते हैं।

विदेशों में प्रभाव : भारतीय तत्व-चिन्तन का प्रभाव, यूनान मे प्लाटिनस तथा सेण्ट आगस्टाईन जैसे ईसाई चिन्तकों पर पड़ा। यह प्रभाव उन्होंने पश्चिमी एशिया से लिया। पश्चिमी एशिया मे हमारे आध्यात्मिक चिन्तन का गहरा प्रभाव था। वहीं इस्लाम के कुछ साधुओं ने उसे आत्मसात् किया। उससे सूफी मत का आविर्भाव हुआ।

इस आध्यात्मिक तत्व-चिन्तन का दूसरा प्रभाव आधुनिक काल मे हुआ। वैदिक साहित्य योरोपीय भाषाओं मे अनुवादित होकर जब पश्चिमी मनीषियों द्वारा पढ़ा गया तो वे बहुत प्रभावित हुए। अमरीका का चिन्तक इमर्सन तथा जर्मन दार्शनिक शापेनहॉर इसके उदाहरण हैं।

मध्य युग मे सूफी मत जब भारत मे आया तो उस पर भारतीय तत्व-चिन्तन का फिर से प्रभाव हुआ, उसमें योग के सिद्धान्त प्रवेश कर गये।

इस प्रकार जगत् को प्रभावित करनेवाला यह भारतीय तत्व-चिन्तन, उस प्राचीनकाल मे, हमारे यहाँ केवल उच्च वर्ग के ब्राह्मणों तक ही अथवा उनके प्रभाव मे रहनेवालों तक ही सीमित था। शेष सामान्य भारतीय समाज यज्ञ-याग, कर्मकाण्ड, तन्त्र-मन्त्र, जादू-टोने मे अगाध श्रद्धा रखता था।

कर्म-सिद्धान्त : कुछ मूल-भूत विश्वास भारत मे प्रचलित हो गये—जैसे कर्म-सिद्धान्त। यह विश्वास था कि जीवात्मा अपने कर्मों के अनुसार विभिन्न जीव-जातियों की देह ग्रहण करता है। उसका पुनर्जन्म होता रहता है। यह पुनर्जन्म कर्मों के अनुसार होता है। पुनर्जन्म का सिद्धान्त कर्म के सिद्धान्त से जुड़ा हुआ है। इसलिए यह आवश्यक है कि पुनर्जन्म से छुटकारा पाने के लिए कर्म-बन्धन से मुक्ति मिले। कर्म-बन्धन से मुक्ति का अर्थ होता है संसार के बन्धनों से मुक्त होना, क्योंकि जब तक संसार है, कर्मबन्धन भी है। यह मुक्ति या मोक्ष देवताओं की कृपा से, आत्म-साक्षात्कार से, अथवा आत्म-नियन्त्रण द्वारा प्राप्त हो सकता है।

इस सिद्धान्त पर लगभग सारी भारतीय जनता का विश्वास था। फलतः, तप और संसार-परित्याग अर्थात् सन्यास का महत्त्व बढ़ चला। आत्म-पीड़ा की प्रवृत्ति खूब बढ़ गयी। कर्म-सिद्धान्त का प्रभाव इतना व्यापक था कि वैदिक परम्परा का विरोध करनेवाले बहुतेरे उसे मानते थे। जैन और बौद्ध धर्म जैसे वेद-

विरोधी मत भी इसको स्वीकार करते थे।

फिर भी, कुछ ऐसे थे, जिन्होंने कर्म-सिद्धान्त की कठोर भर्त्सना की। उनमें प्रमुख था—चार्वाक। उसने भौतिकवादी दर्शन का प्रणयन किया।

भाषा-परिवर्तन : उत्तर-वैदिक काल मे भाषा का परिवर्तन भी होता गया। वैदिक सस्कृति अनेक प्राकृतो मे बदलने लगी। ये प्राकृतें विभिन्न प्रदेशो मे बोली जाती। जिन दिनो वैदिक सस्कृत लौकिक सस्कृत होने लगी, प्राकृतो का क्या रूप था, हम नही जानते। लौकिक सस्कृत शिष्टो और शिक्षितो की भाषा थी। प्राकृतें—सामान्य जनो की। इन्ही प्राचीन प्राकृतो मे से आगे चलकर—शौरसेनी, मागधी, महाराष्ट्री आदि प्राकृतो का विकास हुआ।

महाकाव्य : प्रत्येक मानव-जाति मे अपने-अपने वीरो की कथाएँ, प्राचीन महत्वपूर्ण घटनाएँ, परम्परा द्वारा, पीढी-दर-पीढी कहानी या किस्से के रूप मे चली आती हैं। प्राचीनकाल मे राजाओ के यहाँ सूत तथा मागध (बन्दीगण या भाट) इन प्राचीन कथाओ को गाया करते थे, या उन्हे गद्य रूप मे सुनाया करते थे। इसलिए उन कथाओ को अनुश्रुति कहते हैं। इन अनुश्रुतियो में वास्तविक इतिहास के साथ कल्पना का योग कर ऐतिहासिक सत्यता को कल्पनात्मक मिथ्या के साथ मिला दिया जाता था। ईसा के लगभग 500 वर्ष पूर्व रामायण बनी। वाल्मीकि ऋषि द्वारा प्रणीत यह रामायण पिछली अनुश्रुतियो पर आधारित थी। इस ग्रन्थ मे कालान्तर मे नये-नये अश और अध्याय जुडते चले गये। आज जो वाल्मीकि रामायण हमे प्राप्त होती है वह ईसा के सिर्फ सौ वर्ष पहले तैयार हुई थी। वाल्मीकि रामायण मे जो समाज-चित्र उपस्थित किया गया है, वह मुख्यत· ईसा के 500 वर्ष पूर्व का है। किन्तु, मुख्य कथा-वस्तु, अर्थात् राम के जीवन की घटनाएँ; प्रसग आदि बहुत प्राचीन हैं।

महाभारत का आख्यान भी ईसा के लगभग 500 वर्ष पूर्व बना। इस काल तक वह केवल 'भारत' कहलाता था। भारत से महाभारत बनने मे उसे कई सदियाँ लगी। आज जिस रूप मे महाभारत है, वह ईसा के दो सौ वर्ष बाद हमारे सामने आया। वैसे महाभारत की ऐतिहासिक घटना रामायण के बाद की है।

मुख्य बात यह है कि वे जातीय महाकाव्य हैं। वे केवल एक ही व्यक्ति की उपज नही, वरन् विभिन्न कालो के विभिन्न व्यक्तियो द्वारा प्रणीत है। सावधानी से छानबीन करने वाले इतिहासज्ञो को उन ग्रन्थो मे भाषा-भेद दिखायी देता है—कोई भाषा प्राचीन सस्कृत तो कोई अर्वाचीन। इन जातीय महाकाव्यो मे हमारे आदर्श, सस्कार, आचार-विचार, मत-विश्वास, और रूढियाँ और परम्पराएँ सुरक्षित हैं।

भगवद्गीता व भागवत सम्प्रदाय : गीता महाभारत ही का अंग है। गीता मे कर्मयोग बताया गया है। कर्मयोग का अर्थ है स्वधर्म-पालन। भगवद्गीता में साख्य तथा वेदान्त का प्रभाव परिलक्षित होता है।

मध्य युग मे, भक्ति-आन्दोलन के अभ्युदय के बहुत पूर्व, बौद्ध तथा जैन धर्म के भी पहले, हमारे यहाँ कुछ क्षेत्रो मे भागवत सम्प्रदाय प्रचलित था। इस सम्प्रदाय के प्रधान-पुरुष वसुदेव-पुत्र श्रीकृष्ण थे। इसकी विशेषता यह है कि इसमे यज्ञ तथा कर्मकाण्ड को मानते हुए भी उसको मुख्य नही माना गया, ईश्वर-भक्ति तथा स्वधर्म-पालन को ही सर्वाधिक महत्त्व दिया गया। यह सम्प्रदाय सात्वतो अर्थात्

यादवों मे प्रचलित था।

भारतीय आर्य-संस्कृति के विकास में प्राचीन आर्यों का योगदान : भारतीय सस्कृति एक महान् नद के समान है, जो समय के मैदान म प्रवाहित होती है। इस नद मे अनेक निर्झरो, नदियो तथा महानदियो ने अपने-आपको समर्पित किया और यह नद क्रमश विशालतर बनता गया। आगे चलकर, कालान्तर मे, उसमे शक, यूची, आभीर, हूण यूनानी, अफगान, तुर्क, अंग्रेज आदि ने अपना-अपना योगदान दिया। यह नद विशालतर होता गया। दूसरे शब्दो मे, भारतीय सस्कृति की एक विशेषता रही है—सर्वाश्लेषी सर्व-संग्राहक प्रवृत्ति।

हाँ, यह सही है कि किसी नयी मानव जाति के सम्पर्क के साथ ही साथ, उस जाति को अपने से दूर रखने, उससे अलग हटने की, उससे अपने को अछूता रखने की प्रवृत्ति भी कम या अधिक मात्रा मे रही आयी। दूसरे शब्दो म, एक ओर पृथकतावादी पावित्र्यवादी प्रवृत्ति भी रहती। इसका विरोध सर्व संग्राहक सश्लेषणवादी प्रवृत्ति ने किया। किन्तु हम यह देखते है कि, वस्तुत, यह नये और पुराने के बीच का संघर्ष था, जिसम कम या अधिक मात्रा मे, नय ही की विजय हुई। समन्वय-

[illegible]

उदार दृष्टिकोण का ही सम्मान हुआ। दूसरे शब्दो मे भारत म सकीर्ण सम्प्रदायवाद और जातिवाद बराबर बने रहे। किन्तु उनके विरोध म, उदार मानव-धर्म हमेशा उठ खड़ा हुआ। और अन्तत जीत भी उसी की हुई, सस्कृति का विकास भी उसी ने किया, किन्तु सकीर्णतावादी प्रवृत्ति कभी भी पूर्णत पराजित नही हुई।

आध्यात्मिकता आर्यों द्वारा प्रदत्त दूसरी विशेषता है अध्यात्मसम्बन्धी। भारतीय सस्कृति आध्यात्मिक रही है यह सच है। किन्तु, साथ ही यह भी सही है कि भौतिकवाद या ससारोन्मुख कर्तव्य भावना की भी हमारे यहाँ कभी कमी नही रही। वास्तविक भौतिकवाद प्राचीन काल मे भी था। किन्तु वह प्रभावकारी नही हुआ। आधुनिक काल म जब विज्ञान युग आरम्भ हुआ तो आध्यात्मिक प्रवृत्ति के स्थान पर भौतिक-सामाजिक आदर्श ही सामने आये, तथा मानव का प्रधान लक्ष्य मोक्ष न रहकर, ससार, समाज, मानवता और जगत् के कल्याण का आदर्श ही प्रधान हो उठा। हमारी प्राचीन तथा मध्ययुगीन आध्यात्मिकता हम 'मोक्ष' ही का लक्ष्य प्रदान करती थी।

मत विश्वास महत्त्व की बात यह है कि आर्यों ने पुनर्जन्म और कर्म-बन्धन का सिद्धान्त सामने रखा। भले ही जैन और बौद्ध वैदिक परम्परा को न मानें, वे पुनर्जन्म और कर्म-बन्धन को मानते ही थे। ये मत-विश्वास आज तक चले आये है। भारत के केवल कुछ विज्ञानवादी बुद्धिजीवी उसे नही मानते। प्राचीन काल म, पुनर्जन्म तथा कर्म-सिद्धान्त को न चार्वाक सम्प्रदाय वाले मानते थे, न आजीवक सम्प्रदाय वाले।

जाति व्यवस्था प्राचीन आर्यों ने जिस जाति-व्यवस्था का विकास किया, वह अनेक संशोधन-परिवर्धन के साथ, आज भी उपस्थित है। कुछ विद्वानो का मत है कि प्राचीन आर्यों ने जाति व्यवस्था उत्पन्न करके उसके द्वारा भारतीय समाज म आर्येतरो को स्थान देकर महत्त्वपूर्ण कार्य किया। इस प्रकार, हमने बाहर से

आयी हुई अनेकानेक आर्येतर जातियो को हिन्दू बना लिया। फलत , हिन्दू समाज और सस्कृति दृढ हुई और बाह्य आक्रमणो से उसकी रक्षा हो सकी। कुछ विद्वानो का कथन है कि इसके फलस्वरूप आज भी जगत् मे हिन्दू धर्म सुरक्षित है।

किन्तु सच तो यह है कि इस जाति-व्यवस्था के भीतर, ऊँच-नीच का भेद था। मानव-समानता के सिद्धान्त का यह ज्वलन्त विरोध था। यही कारण है कि मध्य युग के आरम्भ के बहुत पहले से, बहुत लोगो न जाति-व्यवस्था का (वर्णाश्रम धर्म का) विरोध किया।

बौद्ध धर्म ने सबसे पहले जाति-व्यवस्था को गहरी चोट पहुँचायी। बौद्ध धर्म के ह्रास के बाद फिर से पौराणिक धर्म का सहारा पाकर वर्णाश्रम धर्म उठ खडा हुआ। किन्तु मध्य युग के साधु-सन्तो ने, विशेषकर कबीर जैसे निर्गुणवादियो ने, जाति-व्यवस्था का उग्र विरोध किया। भक्ति आन्दोलन मे शूद्र समझी जानेवाली जातियो ने बहुत बडा काम किया। उन्होंने अनेकानेक साधु-सन्त उत्पन्न किये। धर्म को मानव धर्म बनाया। इनके स्वर मे स्वर मिलाकर, भावुक उच्चवर्णीय साधुओ ने भी कहा, जैसे चण्डीदास ने—

"शुनह मानुप भाई
साबार उपरे मानुप सत्य
ताहार उपरे नाई"

हे मनुष्यो, सुनो !! मनुष्य सत्य सर्वोच्च सत्य है, उससे उच्चतर कोई भी सत्य नही है।

आज के जमाने मे जातिवाद उग्र रूप धारण कर चुका है। मध्य युग मे उसका रूप धार्मिक एव सामाजिक था। अब उसने सामाजिक तथा राजनैतिक रूप धारण किया है।

फिर भी आधुनिक युग मे प्रसार के साथ जातीय बन्धन शिथिल भी होते जा रहे हैं। विज्ञानवादी दृष्टिकोण के फलस्वरूप, मानव-साम्य का दृष्टिकोण भी प्रधान हो उठा है। साथ ही सार्वजनिक सस्थाओ मे तथा मन्दिरो म अस्पृश्य समझा जानेवाला दलित वर्ग भी आ-जा सकता है। वर्तमान उद्योग-प्रधान सभ्यता का ज्यों ज्यो विकास होता जायेगा और उसका प्रभाव घनीभूत होता जायेगा, त्यो-त्यो जाति-व्यवस्था की सकुचित दीवारें भी गिरती जायेंगी, यह एक निर्विवाद तथ्य है।

जैन तथा बौद्ध धर्म

ईसा-पूर्व छठी सदी विश्व की असाधारण शताब्दी है। उस काल-खण्ड मे सभ्यता के अनेक केन्द्रो मे ऐसे महापुरुष हुए, जिन्होंने अपने देश के धार्मिक, दार्शनिक विश्वासो और विचारो को जबर्दस्त धक्का दिया और उथल-पुथल मचा दी। यूनान मे हिरैक्लिटस, ईरान मे जरथुस्त्र,

चीन में कनफ्यूशियस, भारत में वर्धमान महावीर और सिद्धार्थ गौतम बुद्ध ने अपने-अपने काल के समाजों को विचलित कर दिया, उन्हें सोचने के लिए बाध्य कर दिया, और इस प्रकार जन-जागरण उत्पन्न कर उन्होंने पूर्वतर समाज-व्यवस्था में सुधार करते हुए, नयी भावपूर्ण जीवन-दृष्टि प्रदान की। इस जीवन-दृष्टि का प्रभाव देशकालातीत हो गया। यद्यपि धर्म रूप में, बौद्ध मत भारत से लगभग उड गया, किन्तु महान् सांस्कृतिक उपलब्धि के रूप में, आज भी वह हमारी विचार-पद्धति और भाव-पद्धति में विराजमान है। उसी प्रकार जैन धर्म यद्यपि अनुयायियों की संख्या की दृष्टि से अल्प है, किन्तु, भारतीय दर्शन तथा कला में उसका योगदान कैसे भुलाया जा सकता है?

जैन धर्म ईसा-पूर्व सातवीं सदी में, जो उपनिषद काल के नाम से जानी जाती है, ऐसे बहुत-से लोग थे, जो कर्मकाण्ड-प्रधान वैदिक धर्म से सन्तुष्ट नहीं थे। उपनिषद्-कर्ता ऋषियों ने भी कर्मकाण्ड को महत्त्व नहीं दिया। किन्तु उन्होंने खुलकर उसका विरोध भी नहीं किया। साथ ही, साधारण जन-समाज में उनके सूक्ष्म चिन्तन के महान् निष्कर्षों का प्रचार भी नहीं था। वे समाज के उच्चतम स्तर पर थे और अपनी इस उच्च स्थिति के फलस्वरूप ही सामान्य जन-समाज से सम्पर्करहित और पृथक् थे।

व्रात्य इस विशेष धार्मिक सामाजिक स्थिति में, जबकि जनता अन्ध-विश्वासों में डूबी हुई थी और पुरोहितवर्ग कर्म-काण्ड तथा रूढ़ियों के पालन को ही धर्म समझता था, ऐसे लोग आये, जिन्होंने ब्राह्मण प्रभुत्व-सम्पन्न व्यवस्था ही को चुनौती दी।

यह चुनौती उन वर्ण-संकर जातियों के कुछ विचारकों से आयी, जिन्हें आर्य-जन अनादर की दृष्टि से देखते थे। इन वर्ण संकर जातियों के प्रति ब्राह्मण का भाव तिरस्कारपूर्ण होने से, वह असन्तोष समाज में बहुत-से लोगों में घर कर गया था कि जिस असन्तोष को हम 'उग्र विचार' का जनक कह सकते हैं। इन वर्ण-संकर जातियों के प्रति आर्यों का अनादर भाव होने के कारण ही, व्रात्यों की अपनी एक स्वतंत्र परम्परा तथा विचार-धारा चुपके-चुपके, हलके-हलके, समाज में फैलती रही।

यह विचार-धारा क्या थी? वैदिक परम्परा तथा यज्ञ-याग, कर्मकाण्ड में कुछ नहीं धरा है। पुरोहित वर्ग, लोभवश, जनता को भुलावे में रखने के लिए, कर्मकाण्ड को महत्त्व देता है। सामाजिक ऊँच-नीच मानवनिर्मित है। कर्म ही से मनुष्य ऊँचा या नीचा होता है। जाति-व्यवस्था और वर्णाश्रम व्यवस्था निरर्थक है। उसे शिथिल होना चाहिए या टूट जाना चाहिए। धर्म का सच्चा स्वरूप है आत्म-नियंत्रण और सद्भावना, इन्द्रियों का दमन और सदाचार, करुणा तथा शील, प्रेम तथा पर-दुःख-कातरता। धर्म का सच्चा स्वरूप मनुष्य के नैतिक चरित्र में है, उदात्त व्यक्तित्व में है। बुद्धि की स्वतन्त्र क्रिया और मानवता के कल्याण की कामना ही से धर्म का स्वरूप बनता है।

ये विचार आज हम केवल सुधारवादी प्रतीत होते हैं। किन्तु तत्कालीन पुरोहितवादी धर्म के लिए, ये विचार समाज में उथल-पुथल मचा देनेवाले थे,

उसके लिए वे क्रान्तिकारी थे।

य विचार उपनिषद्काल ही से, ब्राह्मण-धर्म के बाहर व्रात्य-समुदायो मे पनप रहे थे। उनका प्रचार वर्णसकर जातियो मे विशेष रूप से था।

उपनिषद् काल के अनन्तर पश्चिम के आर्यो का प्रभाव जाता रहा और पूर्व के (विशेपकर मगध के) वर्णसकर क्षत्रियो का प्रभाव बढता गया। इन वर्णसकर क्षत्रियो के राजनैतिक प्रभुत्व के विकास के साथ-ही-साथ व्रात्य भी अपना प्रभाव बढाने लगे।

व्रात्य लोग त्याग और करुणा को, इन्द्रिय-दमन और आत्म-शुद्धि को, सदाचार और प्रेम को, धर्म का मुख्य लक्षण मानते थे। वे अपने अर्हतो (सन्तो) के मार्ग का अनुसरण करते, तथा उनके चैत्यो (समाधियो) को पूजते। तपस्या, सयम और सदाचार उनके मुख्य सिद्धान्त थे।

उधर आर्य जन अपने को शुद्ध रक्तवान समझकर मगध तथा अन्य पूर्वीय क्षेत्रो के क्षत्रियो को, 'नय-वर्जित', 'शूद्र-प्राय' तथा 'शूद्र' समझते थे। व्रात्य स्वय वर्ण-सकर थे। उन्हे मगध तथा पूर्व के अन्य क्षेत्रो के महत्त्वाकाक्षी राज्यो मे अपना प्रभाव बढाने के लिए विशेष प्रयत्न की आवश्यकता ही नही पडी।

पार्श्वनाथ : ईसा-पूर्व सन 750 के लगभग पार्श्व नामक एक अर्हत् अथवा तीर्थङ्कर हुए। उन्होने कहा कि अहिसा, सत्य, अस्तेय तथा अपरिग्रह ही सच्चा धर्म है। उन्होंने, व्रात्यो की रीति के अनुसार, जाति-व्यवस्था तथा बाह्य आडम्बर-पूर्ण कर्मकाण्ड का विरोध किया। अर्हतो की परम्परा मे, पार्श्व तेईसवें अर्हत् या तीर्थङ्कर थे। उत्तर बिहार के गणराज्यो मे, वृजियो का सघ राज्य था। उस राज्य मे ज्ञात्रिक कुल की प्रधानता थी। उस कुल का मुख्य अधिपति सिद्धार्थ था। उसने और उसकी पत्नी त्रिशला ने पार्श्व का उपदेश ग्रहण किया। उस कुल मे लगभग ढाई सौ वर्ष बाद वर्धमान महावीर का जन्म हुआ। उनका जन्म-काल 599 ई. पू माना जाता है।

वर्धमान महावीर - वर्धमान महावीर व्रात्यो की परम्परा मे पार्श्वनाथ के अनुयायी थे। वे जब तीस वर्ष के हुए तो उन्होने सत्य की खोज मे अपना घर छोड दिया। उन्होने प्रव्रज्या (सन्यास) ग्रहण कर ली। बारह वर्ष के कठोर तप के उपरान्त, उन्हे 'कैवल्य' (सत्य-बोध) प्राप्त हुआ। तब से ये अर्हत् (पूज्य), जिन (विजेता, इन्द्रियजित्) और निर्ग्रन्थ (बन्धनहीन) कहलाये। इसके बाद के तीस वर्ष उन्होने भ्रमण मे व्यतीत किये। वे देश-भर मे अपने मत का प्रचार करते रहे। उन्होंने मगध के सम्राट् बिम्बिसार और उनके पुत्र अजातशत्रु से कई बार भेंट की। ये राजा उनके प्रति अपार श्रद्धा रखते थे। ई पू. 527 मे पावापुरी मे, जो पटना जिले मे एक गाँव है, उनका देहान्त हो गया। महावीर जिन कहलाते थे, इसीलिए उनके मत का नाम जैन हुआ। अनुयायी भी जैन कहलाये। उनके पूर्व के तीर्थङ्कर पार्श्वनाथ ने धर्म के चार मुख्य तत्त्व कहे थे। वर्धमान महावीर ने पांच बताये। वे इस प्रकार हैं—सत्य, अहिसा, अपरिग्रह, अस्तेय और ब्रह्मचर्य। ब्रह्मचर्य को महावीर ने जोडा।

जैन मत तपस्या-प्रधान मत है। उसमे अहिसा, प्रेम तथा सदाचार पर ही जोर है। जैन धर्म अनीश्वरवादी मत है, उसमे ईश्वर को कोई स्थान नही। वे केवल 'सिद्ध' पुरुष के प्रति श्रद्धा अर्पित करते हैं। सिद्ध वह, जिसने इन्द्रियो को

जीत लिया हो और सर्वोच्च आध्यात्मिक दशा प्राप्त कर ली हो।

धर्म-प्रसार : वर्धमान महावीर ने अपने जीवन-काल में ही धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए संघ स्थापित किया। उनकी मृत्यु के उपरान्त, संघ के नेताओं या प्रमुखों में सम्भूत विजय और भद्रबाहु जैसे महान् साधु हुए, जिन्होंने इस मत को देश के कोने-कोने में पहुँचाया। ईसा-पूर्व चौथी सदी के अन्त में, भद्रबाहु के नेतृत्व में जैन साधुओं का एक दल, दक्षिण भारत में धर्म-प्रचार के लिए गया। उसने मैसूर के अन्तर्गत श्रवणबेलगोला में अपना केन्द्र बनाकर वहाँ से जैन मत का प्रचार किया। भद्रबाहु के नेतृत्व में काम करनेवाले जैन साधु तथा मगध में रहनेवाले जैन साधु इन दो के बीच में क्रमशः खाई बढ़ती गयी, और सिद्धान्त-सम्बन्धी मतभेद होते गये। दक्षिण का जैन मत दिगम्बर सम्प्रदाय कहलाया और मगध का श्वेताम्बर सम्प्रदाय।

जैन मत को राजाश्रय भी खूब मिला। भारत-सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य ने इसे आश्रय प्रदान किया। मगध के नन्द वंश के कई राजा जैन थे। कलिंग (उड़ीसा) के विख्यात पराक्रमी नरेश खारवेल ने तो जैन धर्म ही स्वीकार कर लिया। दक्षिण में ईसा की पाँचवीं सदी से लेकर बारहवीं सदी तक अनेक राजवंशों ने इसे आश्रय दिया, जिनमें चालुक्य, राष्ट्रकूट, गंग और कदम्ब प्रमुख हैं।

ईसा की बारहवीं सदी में गुजरात में जैन धर्म का खूब ही उत्कर्ष हुआ। अनहिलवाड़े के महान् चालुक्य नरेश सिद्धराज जैन थे। उनके पुत्र कुमारपाल जैन धर्म के महान संरक्षक थे। मुसलमानों के जमाने में, विशेषकर अकबर के काल में, जैन धर्म राजपूताने में अग्रसर हुआ। किन्तु उसके अनन्तर जैन धर्म का ह्रास होने लगा। आज भारत में जैनियों की संख्या तेरह लाख से कुछ ही अधिक है। वे भी राजस्थान, मालवा, गुजरात, मध्यभारत और दक्षिण के कुछ जिलों में ही अधिकतर पाये जाते हैं।

जैन धर्म का ह्रास एक समय में अत्यन्त प्रभावशाली जैन धर्म क्रमशः ह्रास-ग्रस्त होने लगा। इसका एक कारण भक्ति-प्रधान पौराणिक धर्म का अभ्युत्थान था, जिसने बौद्ध धर्म का भी भारत-भूमि में लोप कर दिया। दूसरे जैन धर्म में भी जाति-व्यवस्था का प्रादुर्भाव हो गया था और राजाश्रय भी लुप्त हो चुका था।

जैनियों के पास विशाल तथा समृद्धिशाली साहित्य है। उनका तर्कशास्त्र प्रचण्ड बुद्धिमत्ता का द्योतक है। उनका दार्शनिक साहित्य विविध और व्यापक है। धार्मिक प्रबन्ध-काव्य, आख्यान तथा पुराण भी उनके पास हैं। उनके बड़े मन्दिरों में ग्रन्थालय होते हैं, जिनमें मूल्यवान प्राचीन पोथियाँ आज भी पायी जाती हैं।

वर्धमान महावीर ने, जन-साधारण के ज्ञान के लिए, अर्ध-मागधी में अपने उपदेश दिये थे। जैन साधुओं ने अर्ध-मागधी, शौरसेनी तथा महाराष्ट्री प्राकृतों और अपभ्रंशों में अपनी रचना की।

जैनों ने स्थापत्य कला तथा मूर्ति कला का विशेष उत्कर्ष किया। उन्होंने अपने सन्तों के सम्मान में स्तूप बनाये। मथुरा की जैन मूर्तियाँ अत्यन्त मनोहर हैं। हमारे मध्यप्रदेश में ही, जैसे ग्वालियर तथा बड़वानी में, विशालाकार जैन मूर्तियाँ पायी जाती हैं। जैनियों ने चट्टानों को काटकर मन्दिर बनाये। उड़ीसा में हाथी-गुम्फा में उसके सुन्दर नमूने हैं। इसके अलावा आबू पहाड़ पर ग्यारहवीं सदी के जो जैन मन्दिर बने हैं, वे भारतीय कला-शिल्प के अद्भुत उदाहरण हैं। ग्यारहवीं-

बारहवी सदी मे जैन कला अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गयी थी। इस कला के नमूने भारत मे विभिन्न स्थानो पर पाये जाते हैं। उनकी कला मे सादगी है, हिन्दू-कला जैसी चमक-दमक नही।

महात्मा गौतम बुद्ध

नेपाल की तराई म शाक्य जाति का एक गण-राज्य था। उसके प्रमुख थे—राजा शुद्धोदन। उनकी राजधानी थी कपिलवस्तु। उसके कुछ ही मील दूर एक ग्राम था लुम्बिनी। वहाँ ईसा पूर्व 566 म सिद्धार्थ का जन्म हुआ। जन्म के साथ ही एक घटना और हुई। माता मायादवी पुत्र को जगत् म लाकर स्वय यह जगत् छोडकर चली गयी। जन्म और मृत्यु—ये दो घटनाएँ एक साथ। प्रसव-पीडा और मृत्यु-कष्ट दोनो की प्रक्रियाएँ—समानान्तर!

नि सन्देह इस घटना ने, जाने-अनजाने, सिद्धार्थ के मन को प्रभावित किया। साथ ही, उनका मन भीतर-ही भीतर घुलने लगा। हाँ, यह सही है कि उन्हे जीवन की उस प्रथम घटना की याद नही रही होगी। फिर भी, मन भीतर-ही-भीतर उदासी के रग म घुलता जाता था। वैसे कारण कुछ भी नही था। हाँ यह अवश्य होता था कि वे नगर म घूमते हुए किसी जर्जर वृद्ध को देख लेते, या किसी शव को अथवा अपने राज उद्यान म किसी आहत पक्षी को, तो दु ख के इस दर्शन-मात्र से उनका हृदय पसीज जाता, और वह दु ख की समस्या पर सोचने लगते। मनन-शीलता, चिन्तनशीलता उनके जीवन की स्थायी वृत्ति बन गयी। अत उसके कारण वे नवयौवन मे भी गम्भीर हो गये।

आयु-वृद्धि के साथ ही, उन्हें अपने जीवन की प्रथम घटना मालूम हो गयी होगी। उससे उन्हे अपार दुःख हुआ होगा। वे अपनी जन्मदात्री की कल्पना करते रहे होंगे। उनकी आँखो मे आँसू छलछला जाते रहे होगे। कोई उनसे पूछता होगा कि 'भाई मेरे उदास क्यो हो?' तो उत्तर मिलता होगा, 'कुछ नही, कुछ नही!!' और एक उदास मुसकान सिद्धार्थ के होठो पर सिहर जाती होगी। बाहरी दुनिया मे दुःखी जनो को दखकर, उनका सवेदनशील मन चुपचाप धाड मारकर रोता होगा और इसका किसी को पता भी न चलता होगा।

उदास गम्भीर मुख मुद्रा मे जब वे बात करते होंगे, तब उनके प्रेमीजनो का हृदय भी दुख जाता होगा, साथ ही सिद्धार्थ और उनके बीच अतिशय घनिष्ठता के बावजूद, अपरिचय की दूरी बढ जाती होगी। वे नही जान पाते होंगे कि आखिर यह नवयुवक सिद्धार्थ उदास क्यो रहता है। अतिशय प्रेम और अपरिचय के कारण उन प्रेमीजनो ने—पिता ने, सम्बन्धियो ने, सहचरो ने—उनके आस-पास विलास के उपकरण जुटाये। अन्तत, यशोधरा नामक एक रूपवती राजकन्या से उनका *विवाह भी हो गया। घर के लोग नही जानते थे कि सिद्धार्थ किस दुनिया मे* रहते हैं। उनकी विरक्ति को हटाने के लिए उन्होने पत्नी का प्रबन्ध कर डाला।

किन्तु सिद्धार्थ, वस्तुत, विरक्त नही थ। उनके हृदय मे पिता के प्रति, पत्नी के प्रति, बन्धुओ और सहचरो के प्रति, मानव मात्र के प्रति, प्रेम-भाव था। वे मानव मे अनुरक्त थे। अपने हृदय की आत्यन्तिक सवेदनशीलता के कारण, वे जीवन की जरा-सी भी असगति को, थोडे-से भी वैषम्य को देख लेते थे। उन्हें दुःख

की समस्या का निदान करना था, जीवन की विभिन्न असंगतियों और विषमताओं को दूर करने का उपाय खोजना था। उनका प्रेमपूर्ण करुणाकातर अन्तःकरण दार्शनिक हो उठा। बौद्ध धर्म का वास्तविक स्रोत सिद्धार्थ का हृदय है।

ऐसी स्थिति में वे घर पर नहीं बैठ सकते थे। घर की चहारदीवारी में मौज करनेवाले वे नहीं थे। उनकी ज़िन्दगी इस मौज के लिए नहीं थी। उन्हें तो दुःख के निराकरण का ऐसा स्थायी निदान चाहिए था जो सारी असंगतियों, सारी विषमताओं को हटाकर मनुष्य के हृदय को प्रेम और शान्ति से परिपूर्ण कर सके। यशोधरा छूटने ही वाली थी। यशोधरा के पास बैठकर भी, वे उससे कितनी दूर थे। एक रात उन्होंने सोती हुई वधू और बालक राहुल को अन्तिम प्रेमभरी दृष्टि से देखकर घर को छोड़ दिया। यह सिद्धार्थ का महाभिनिष्क्रमण कहलाता है।

यह आवश्यक था कि तत्कालीन जितने भी मार्ग (मत या धर्म) हैं, उन्हें देख लिया जाय कि वे कहाँ तक उपयोगी हैं। गृहत्याग के अनन्तर सन्यास ग्रहण करके, सिद्धार्थ ने दो ब्राह्मण धर्माचार्यों के आश्रम में अध्ययन किया। साथ ही, वे भ्रमण करते रहे, सत्संग करते रहे। जीवन का विस्तृत अनुभव लेते रहे। किन्तु उन्हें अपने प्रश्न का उत्तर नहीं मिला, अपनी समस्या का निदान नहीं मिला। उन्होंने सोचा, सम्भव है कठोर तपस्या के द्वारा कुछ प्राप्त हो।

उन दिनों व्रात्यों द्वारा, तथा ऋषियों द्वारा भी, तपस्या को अत्यधिक महत्त्व दिया जाता था। इसलिए, उन्होंने सोचा कि एक बार कठोर तपस्या का प्रयोग भी कर लिया जाय। उन्होंने दृढ़ होकर आस्थापूर्वक (बिहार में) उरुवेला नामक स्थान के सघन वन में कठोर तप किया और अपने शरीर को तरह-तरह की यातनाएँ दीं।

किन्तु तपस्या पूरी होने पर भी कुछ भी हाथ नहीं लगा। समस्या ज्यों-की त्यों रही। वे बोध गया गये। वहाँ एक बार उन्होंने निरंजना नदी में स्नान किया। उनकी धुन लग गयी। वे एक पीपल के नीचे, यों ही, तृण के आसन पर बैठ गये और मगन हो गये, खो गये। उनके हृदय में सहसा ज्ञान का प्रकाश हुआ, और वे उस प्रकाश में स्थिर हो गये उसमें डूब गये। वहीं वे 'बुद्ध' हो गये, अर्थात् उन्हें बोध प्राप्त हो गया, ज्ञान मिल गया। तभी से वे तथागत या बुद्ध कहलाये। तब उनकी आयु 35 वर्ष की थी।

इसके बाद वे बनारस गये। वहाँ सारनाथ के हिरण्यकुंज में उन्होंने अपना प्रथम उपदेश दिया। वहाँ उन्हें अपने प्रथम पाँच शिष्य मिले। अपने अगले पैंतालीस वर्ष उन्होंने ज्ञान के प्रसार प्रचार में व्यतीत किये। वे धनी और गरीब, ब्राह्मण और शूद्र, राजा और रंक, स्त्री और पुरुष—सबको उपदेश देते, सत्य-ज्ञान के योग्य सबको समझते। मगध का राजा बिम्बिसार और उसका पुत्र अजातशत्रु तथा कोशल देश का नृपति प्रसनजित उनके शिष्य बन गये। सत्य ज्ञान के प्रचार के लिए उन्होंने एक संघ स्थापित किया। वे अनवरत परिश्रम करते, धर्म का प्रचार करते, वार्तालाप करते, शंका समाधान करते और सीधा सरल जीवन व्यतीत करते। इस प्रकार सतत कार्य करते हुए वे अस्सी वर्ष की आयु में, ई. पू. 406 में कुशीनगर में (उत्तर प्रदेश में गोरखपुर ज़िले के अन्तर्गत वर्तमान कसिया में) दिवंगत हुए। वैशाख पूर्णिमा के दिन गौतम बुद्ध ने प्राण-त्याग किया, उसी तिथि को अस्सी वर्ष पूर्व उनका जन्म हुआ था।

बौद्ध धर्म : गौतम बुद्ध ने सबसे बड़ा काम यह किया कि उन्होंने धर्म को मानव-धर्म बना डाला, हृदय के उदार तथा कोमल गुण उसमें पैदा कर दिये, उसे जीवन के अत्यधिक सन्निकट कर दिया। प्रेम और करुणा, उदारता और ज्ञान, विवेक और पर-दुःख-कातरता की जो उदात्त प्रेरणाएँ हैं, उनसे गतिमान होकर, जब मनुष्य मन से, वचन से और कर्म से, सात्विक जीवन व्यतीत करने लगता है, तब आप-ही-आप बौद्ध धर्म के आदर्श-पथ पर चलने लगता है—भले ही वह उसे माने या न माने।

महात्मा गौतम अपने धर्म को 'मध्यम मार्ग' कहते। वे कहते कि अपनी आत्मा और शरीर को व्यर्थ ही मारना और कष्ट देते रहना अनुचित है, आत्म-हनन, आत्म-पीड़न गलत है। साथ ही, विलास और भोग में पड़े रहकर आसक्तिपूर्ण, आलस्यपूर्ण जीवन व्यतीत करना भी अनुचित है। यदि मनुष्य का ध्यान नित्य सत्य की ओर ही रहे तो वे दोनों प्रकार के अतिरेक उसके हाथ से नहीं होंगे।

जैन धर्म तपस्या-प्रधान, कठोर इन्द्रिय-दमन-प्रधान धर्म है। इसके विपरीत, बौद्धधर्म में तापसिक कठोरता नहीं है। वह अधिक स्वाभाविक, सात्विक जीवन व्यतीत करने का आदेश देता है। मध्य मार्ग की यही मनुष्यता है। बौद्ध धर्म केवल व्यवहारवादी नहीं है, क्योंकि उसमें आत्मा के विवेक और भावुक पर-दुख-कातर प्रेम को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। विवेक के ही आधार पर बुद्ध ने किन्हीं विशेष परिस्थितियों में मांस भक्षण की भी अनुमति दी थी।

कर्मकाण्ड विरोध . व्रात्यों की ही भाँति, गौतम बुद्ध ने कर्मकाण्ड-प्रधान ब्राह्मण धर्म पर, उसकी जाति-व्यवस्था और वर्णाश्रम धर्म पर कठोर आघात किये। बौद्ध-धर्म में ईश्वर को कोई स्थान नहीं है। कई जगह ईश्वर की सत्ता का निषेध किया गया है। इस अर्थ में, वह अनीश्वरवादी है। किन्तु कई स्थानों पर बात इस तरह कही गयी मानो ईश्वर हो भी सकता है (लेकिन उसके बारे में हमें नहीं मालूम), उससे हमारा कोई सम्बन्ध नहीं, न होना चाहिए। गौतम बुद्ध तथा वर्धमान महावीर दोनों कर्म-सिद्धान्त को मानते थे। उन्होंने धर्म को नैतिकता से, और नैतिकता को हृदय में वह उठनेवाले प्रेम तथा करुणा के रस से, सम्बद्ध कर दिया। पर-दुःख-कातरता और मानव-कल्याण ही मानव-धर्म है।

दूसरी महत्त्व की बात यह प्रस्तुत हुई कि चूँकि महापुरुषों का प्रत्यक्ष जीवन उदाहरण अधिक प्रभावशाली होता है, इसीलिए आगे चलकर बौद्ध-धर्म में गौतम बुद्ध की पूजा की जाने लगी। इस प्रकार भक्ति-भाव का उदय हुआ। क्रमशः बौद्धों ने ब्राह्मणों के विश्वास के अनुसार अवतारवाद का भी सिद्धान्त मान लिया। बुद्ध ईश्वरवत् हो गये। पुनःपुनः जन्म ग्रहण करने लगे। तत्कालीन भक्ति-भाव की पूर्ति उसी तरह हो सकती थी। आगे चलकर, महायान सम्प्रदाय निकला। उसमें गौतम बुद्ध के अवतारों—बोधिसत्वों—की कल्पना की गयी और उनकी उपासना की जाने लगी। महायान के विरुद्ध, प्राचीनतर हीनयान ने आदिम बौद्ध धर्म को क़ायम रखना चाहा।

क्रमशः पौराणिक धर्म का अभ्युदय होता गया, और एक समय वह आया जब बौद्ध धर्म अपना देश खाली करके विदेशों में जा बसा।

प्रथम साम्राज्य की स्थापना

आर्य जातियों के परस्पर विलीनीकरण से जनपदों का विस्तार हुआ और महा-जनपद बने। महा-जनपदों ने अब ईसा-पूर्व छठी सदी में राज्य-विस्तार किया। क्रमश, राजतन्त्र बृहत्तर होता गया तथा प्राचीन गण-तन्त्रीय परम्पराएँ क्षीण होने लगीं। इसके साथ ही कला-कौशल की अभूतपूर्व अभिवृद्धि, धन-धान्य की समृद्धि, व्यापार-वाणिज्य का चमत्कारपूर्ण उत्कर्ष सामने आया। भारत ने विश्व का ध्यान अपनी ओर खींच लिया। विदेशी शक्तियों के आक्रमणों का प्रतिरोध हुआ तथा भारत के प्रथम महान साम्राज्य की स्थापना हुई। गौतम बुद्ध के समय से (ई पू छठी सदी से) लेकर तो चन्द्रगुप्त मौर्य तक (ई पू तीसरी सदी तक) प्रदीर्घ काल में भारत का अभूतपूर्व विकास हुआ।

ईसा की छठी सदी में पूर्व भारत के मगधराज्य का अभूतपूर्व उत्कर्ष हुआ। उसने ऐश्वाकव, ऐल, पांचाल, आदि पुराने पश्चिम भारतीय राज्यों को पराजित करके अपना प्रभाव जमा लिया था। महावीर वर्धमान, गौतम बुद्ध की अखिल भारतीय कीर्ति के फलस्वरूप, पूर्व भारत पर सबका ध्यान गया।

इस समय पुरानी जातियों के परस्पर विलयन से महा-जनपद बनकर सामने आ गये थे। ये महा-जनपद कुल सोलह थे। वे भी अब एक-दूसरे में विलीन हो रहे थे। राजनीति के रंगमंच पर बड़ी तेज़ी से परिवर्तन हो रहा था। अंग मगध का एक भाग बन गया था। कोशल ने काशी पर अधिकार कर लिया था। निरंकुश स्वेच्छाचारी राजतन्त्र का विकास हो रहा था। उन दिनों के हिसाब से राजनैतिक अवस्था के विकास का सर्वोच्च स्तर, निरंकुश राजतन्त्र ही था। हाँ, लिच्छवि, मल्ल, और शाक्य-जैसी जातियों के गणतन्त्र भी थे, जो अपनी प्रभुसत्ता और

पड़ता।

अन्तर्देशीय व्यापार के साथ ही, विदेशों से भी खूब व्यापार होता था। किन्तु इसके पीछे 'शिल्पी संघों' की ताकत थी। ये शिल्पी संघ कारीगरों और शिल्पियों के अपने जातीय संघ थे। इन संघों का विकास, उस युग की तीसरी महत्त्वपूर्ण घटना है। इन संघों में सम्बद्ध शिल्पियों ने वस्तुओं का उत्पादन खूब बढ़ा दिया था, साथ ही कला-कौशल की भी खूब वृद्धि हुई। राजन्य वर्ग तथा सैनिक वर्ग निरन्तर परिवर्धित और विस्तृत होता जा रहा था। बड़े नगरों का उत्कर्ष हो चुका था। इन सबकी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए, शिल्पी संघ अवतरित हुए थे। प्रत्येक संघ में विशेष विशेष प्रकार का काम होता। जो काम एक संघ करता, वही काम

इत्यादि।

व्यापार-व्यवसाय के लिए, सुरक्षा तथा मार्गों की निष्कण्टकता तथा व्यवस्थित लेन-देन पद्धति आवश्यक थी। व्यापक विस्तारवाले निरकुश राजतन्त्र इस प्रकार की सुरक्षा और व्यवस्था उत्पन्न कर सकते थे। इसी आर्थिक भूमि के आधार पर निरकुश राजतन्त्र का विकास हुआ।

मगध का अभ्युदय

बिम्बिसार

इन सोलह राज्यो मे सबसे ज्यादा आगे आये मगध, कोशल, वत्स और अवन्ती। जिन दिनो महात्मा बुद्ध लोगो को अपना उपदेश दे रहे थे, उन दिनो शिशुनाग वश का बिम्बिसार मगध मे राज्य कर रहा था। बिम्बिसार ने 52 वर्ष तक राज्य किया। उसने पूर्व मे स्थित अग को मगध म मिला लिया, उधर, कोशल के राजा प्रसेनजित की बहन से विवाह करके 'कासि' नामक एक गाँव भी प्राप्त कर लिया। महात्मा बुद्ध से मिलकर बिम्बिसार बहुत प्रभावित हुआ था।

अजातशत्रु

[बिम्बिसार का पुत्र] बहुत महत्त्वाकाक्षी, क्रूर, उद्दण्ड किन्तु रणकुशल था। उसने अपने पिता को तरह-तरह की यन्त्रणाएँ देकर मार डाला। स्वय राजसिहासन पर बैठ गया। उसकी सौतेली माता—कौशल के राजा प्रसेनजित की बहन—अपने पति के शोक मे मर गयी।

अजातशत्रु ने कोशलनरेश राजा प्रसेनजित से युद्ध किया। प्रसेनजित ने उसे बन्दी बना लिया, फिर छोड दिया। अजातशत्रु ने गण्डकी नदी के तट पर लिच्छवि गणतन्त्र पर हमला किया और उनका राज्य मगध मे मिला लिया। उन दिनो मगध की राजधानी राजगढ थी। उसे वह पसन्द नही थी। गगा और सोन नदी के सगम पर उसने नयी राजधानी की नीव डाली। वही आगे चलकर इतिहास प्रसिद्ध पाटलिपुत्र नामक नगर हुआ।

उन दिनो, कोशल का राजा प्रसेनजित बौद्ध धर्म का अनुयायी हो गया। उसने गान्धार महा-जनपद के तक्षशिला (पेशावर के पास टैक्सिला) विश्व-विद्यालय मे शिक्षा पायी थी। वह कलाविद् था, शास्त्रार्थ करता था, विद्वान था। प्रसेनजित के पुत्र विडूडभ ने शाक्य जाति के गणतन्त्र का सहार करके, उनके राज्य को कोशल से जोड लिया। इस प्रकार पूर्वी भारत मे मगध और कोशल राज्य प्रबल हो उठे।

उधर, पश्चिम भारत मे, वत्स और अवन्ती के बीच बडी ही प्रतिस्पर्धा थी। इन दो राज्यो के और पश्चिम मे, बिलकुल दूसरे ही प्रकार से परिवर्तन हो रहा था। पजाब म छोटे छोटे बहुत-से राज्य थे और उनमे आपस मे मार-काट मचा करती थी।

ईरानी आक्रमण

ठीक उन्ही दिनो ईरान मे एक प्रबल साम्राज्य की स्थापना हुई। ई पू सन् 558

से 529 के बीच, ईरानी सम्राट, कुरुष (सायरस) ने हिन्दूकुश तक अपने साम्राज्य का विस्तार किया और गान्धार उसके साम्राज्य का एक भाग हो गया। कुरुष के अनन्तर, ईरान की राजगद्दी पर दारियवहु (डेरियस) आसीन हुआ। उसने ई पू सन् 517-16 के लगभग पजाब पर हमला किया, और उसके उत्तर-पश्चिमी हिस्से को तथा सिन्ध प्रदेश को अपने साम्राज्य म मिला लिया। ईरान के क्षत्रप (सैनिक प्रान्ताधीश) अब पजाब म रहते, और मालगुजारी वसूल करते। पजाब अकेले की मालगुजारी कोई डेढ करोड रुपये थी। पजाब, गान्धार और काम्बोज मे ईरानियो का साम्राज्य दो शताब्दियो तक रहा। राजनैतिक दृष्टि से ईरानियो के शासन का भारत के इतिहास मे विशेष महत्त्व नही है, किन्तु सास्कृतिक दृष्टि से बहुत है। ईरानी साम्राज्य से सम्पर्क के फलस्वरूप भारतीय विद्वान यूनानियो तक पहुँचे। यूनानियो को भारत के सम्बन्ध मे बहुत-सी जानकारी मिली, साथ ही ईरान और यूनान से स्थल मार्ग द्वारा व्यापार भी होने लगा।

उस काल मे ईरान के वैभव और उत्कर्ष की कथाएँ दूर-दूर तक पहुँची थी। ईरान का राजदरबार बहुत समृद्ध और सम्राट बहुत शक्तिशाली समझा जाता था। ईरान एक निरकुश राजतन्त्र था। भारत के नये निरकुश राजतन्त्रो ने विशेषकर मौर्यों ने, उसमे अपना ही प्रतिरूप देखा। मौर्यों ने बहुत-सी प्रथाएँ ईरानियो से अपनायी। भवन-निर्माण कला की बहुत-सी बातें ईरान से स्वीकृत की।

किन्तु, ईरान-भारत सम्पर्क की एक महत्त्वपूर्ण देन है—खरोष्ठी लिपि। ईरानियो ने भारत म आरामाई लिपि प्रचलित की, जिससे बिगडकर यह नयी लिपि बनी। खरोष्ठी लिपि मे बहुत-स अभिलेख पाये जाते हैं।

सिकन्दर का आक्रमण

ज्यो ही यूनानियो को यह मालूम हुआ कि ईरान इतना कमजोर हो गया है कि एक आघात से वह नष्ट हो सकता है, यूनान के एक प्रदेश मैसिडान के राजा सिकन्दर ने ईरान पर चढाई करके उसे तहस-नहस कर दिया। सिकन्दर ने अब तक मिस्र, एशिया मायनर (आधुनिक तुर्की), तथा ईरान मे अपना विशाल साम्राज्य स्थापित कर लिया था। जगद्विजेता सिकन्दर अब गान्धार पर चढ आया। ईसा-पूर्व दिसम्बर 326 म और जनवरी 327 म, वह, एक विशाल सेना के साथ खैबर दर्रे को पार करके सिन्धु नदी की ओर बढा। गान्धार की नगरी तक्षशिला का वृद्ध राजा अम्भि जो रावी और झलम के पौरव राज्य से आतकित रहा करता था, उसने विदेशी आक्रान्ता को सहायता का वचन दिया। सिकन्दर ने शीघ्रतापूर्वक सिन्धु नदी पर एक पुल बनाया। सेना इस पार आ गयी। पुष्कलावती का राजा अष्टकराज वीरतापूर्वक लडता हुआ मारा गया। दूसरा दल, जो सिकन्दर के नेतृत्व मे था, उत्तर-पश्चिमी पर्वतीय क्षेत्र के राजाओ से लडा। किन्तु, इधर रावी और झेलम के किनारे के राजा पुरु ने सिकन्दर को युद्ध के लिए ललकारा।

अपनी विशाल सेना लेकर, राजा पुरु युद्ध के लिए तैयार खडा हो गया। प्रतीक्षा करन से पुरु की सना जड हो गयी थी। मौसम ने भी साथ नही दिया। खूब वर्षा हुई, जमीन रपटीली बन गयी। सिकन्दर की सेनाओ ने पूरे जोर और ताक्त के साथ हमला किया और पुरु सेना की पक्तियाँ तोड दी। गौरवशाली राजा पुरु बुरी तरह घायल हुआ और कैदी बना लिया गया।

इस बीच एक अप्रत्याशित घटना हुई। सिकन्दर जिन इलाक़ो को पीछे छोड आया था, उनमे बग़ावत फैलने की खबरें आयी। उधर, सिकन्दर के फौजी सिपाहियो ने यह माँग शुरू की कि वे अब लडते-लडते थक गये हैं, और उन्हे जल्दी घर लौट जाना चाहिए। सिकन्दर उनकी माँग को ठुकरा न सका और बहुत ही उदास मन से वह यूनान की ओर मुडा। ई पू सन् 324 मे, रास्ते मे ही वह मर गया।

सिकन्दर वापिस तो गया, लेकिन अपने पीछे भयानक विध्वस के दृश्य छोडता गया। उसने बडी-बडी लडाइयाँ जीती, लेकिन वह बहुत थोडी ज़मीन कब्जे मे ले सका।

किन्तु, सिकन्दर ने उस नये युग का उद्घाटन किया, जिसमे यूनानियो और भारतीयो के सम्पर्क बढते गये तथा जिसके फलस्वरूप हमारी कला और शिल्प मे एक नया विकास प्रस्तुत हुआ।

जिस समय सिकन्दर गान्धार पार करके झेलम के किनारे पहुँच गया था, उस समय मगध का सम्राट धनानन्द अपने राजप्रासाद के एक प्रकोष्ठ म स्वर्ण-मुद्राएँ गिन रहा था। उस इस बात की न खबर थी, न परवाह थी कि उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रदेशो मे क्या हो रहा है और क्या नही हो रहा है। धनानन्द—जैसा कि उसका नाम था—धन के अधिकाधिक सग्रह म बडा आनन्द लेता था। वह बडा कजूस था, जनता उसका तिरस्कार करती थी।

यह धनानन्द कौन था? प्रतापी अजातशत्रु की चार पीढियो बाद, महानन्दिन नामक एक राजा हुआ जिसका अवैध पुत्र था महापद्मनन्द। पुराणो मे कहा गया है कि महापद्मनन्द जाति का नाई था। धोखे से राजा को मरवाकर खुद राजगद्दी पर बैठ गया था। वह नन्द वश का सस्थापक था।

महापद्मनन्द

इसमे सन्देह नही कि महापद्मनन्द एक बहुत बडा योद्धा और विजेता था। वह पुराणो द्वारा 'क्षत्रान्तक' (अर्थात क्षत्रियो का नाश करनेवाला) कहा गया है। उसने प्राचीन आर्यवशीय इक्ष्वाकु, पाचाल, कुरु, काशि अश्मक और हैहय आदि नृपतियो को पराजित किया तथा उनकी सारी प्रतिष्ठा मिट्टी मे मिला दी।

महापद्मनन्द के अनन्तर, मगध साम्राज्य फैलता ही गया। एक समय वह भी आया जब नन्दो के अधीन मगध साम्राज्य मे, दक्षिण भारत के कुछ प्रदेशो से लेकर तो मालवा, उत्तर प्रदेश, बगाल, उडीसा तक का पूरा क्षेत्र शामिल हो गया।

चाणक्य

गान्धार देश के तक्षशिला विश्वविद्यालय का एक विद्वान ब्राह्मण विष्णुगुप्त जब धनानन्द स मिलने आया तो उसने उसे अपमानित करके निकाल दिया। विष्णुगुप्त ने प्रतिज्ञा की कि वह उससे प्रतिशोध (बदला) लेगा। पाटलिपुत्र से लौटकर जब वह तक्षशिला की ओर जा रहा था तो जगल म उसे एक बालक खेलता हुआ दिखायी दिया। प्रतिभावान विष्णुगुप्त ने जब उससे कुछ जानकारी लेना चाही तो उस बालक ने भी अपनी प्रतिभा का परिचय दिया। बताया जाता है कि चन्द्रगुप्त किसी वन्य पशु से, निर्भय होकर, खेल रहा था। विष्णुगुप्त उसकी प्रतिभा को

ये सारी समितियाँ सामूहिक रूप से सब बातों का निरीक्षण करतीं—तब उनका रूप सामान्य प्रशासन-सभा जैसा हो जाता। इस प्रशासन-सभा के जिम्मे बन्दरगाहों, रास्तों, बाजारों, सरकारी इमारतों और मन्दिरों की देखभाल का काम था।

चन्द्रगुप्त मौर्य सेना के भरोसे सारे भारतवर्ष पर राज करता था। उसके पास छह लाख से अधिक सेना के प्रशासन के लिए पाँच-पाँच सदस्यों की छह समितियाँ बनायी गयी थीं, जो जहाजी सेना, अश्व-सेना, युद्ध-रथों के दस्ते, पैदल फौज गज-सेना, परिवहन रसद फौजी भर्ती और सैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति किया करतीं। एक विशेष प्रकार के धनुष्य, जो आदमी के कद के होते और पैर से चलाये जाते, तथा लम्बे-लम्बे तीर, वैसे ही एक लम्बी-चौड़ी ढाल मुख्य हथियार थे। इसके अतिरिक्त, छोटी लेकिन चौड़े फालवाली तलवारें भी होतीं। कभी-कभी सिपाही दोनों हाथों से तलवार चलाते।

मेगास्थनीज लिखता है कि "देशवासियों के पास, भरण-पोषण के प्रचुर साधन होने से उनका जीवन-स्तर साधारण स्तर से ऊँचा है और उनकी यह विशिष्टता है कि वे गर्व से सिर ऊँचा करके चलते हैं। वे विभिन्न कलाओं में भी निपुण हैं जैसे कि स्वतन्त्र वातावरण में साँस लेनेवाले और स्वच्छतम जल पीनेवाले मनुष्यों से आशा की जाती है।" मेगास्थनीज ने लिखा है कि लोग ईमानदार हैं और वे अपने घरों पर ताले नहीं लगाते हैं।

किन्तु विलास-वैभव में पलनेवाला यह चन्द्रगुप्त अपने वृद्धावकाल [वृद्धावस्था] में तपस्वी जीवन के लिए लालायित हुआ। उसने ई पू 300 में, अपने पुत्र बिन्दुसार को राज-सूत्र सौंप दिये, और वह दक्षिण में विशुद्ध आध्यात्मिक जीवन व्यतीत करने लगा। कहते हैं कि उसने जैन धर्म स्वीकार कर लिया।

अशोक की धर्म-विजय

अशोक का नाम विश्व के इतिहास में स्वर्णाक्षरों से अंकित है। दुनिया में कौन ऐसा सुशिक्षित व्यक्ति है, जो अशोक का नाम नहीं जानता? हमारे राष्ट्र ध्वज में जो चक्र बना है, राजकीय मुहर पर जो सिंहाकृति है वह अशोक की देन है। आज भी विश्व भर के शान्तिप्रिय स्वप्नद्रष्टा, जिन्होंने मानव की उन्नति क्षमता और विकास-सामर्थ्य पर अपना विश्वास नहीं खोया है, वे सब अशोक का नाम आते ही उसके प्रति आदर भाव से भर उठते हैं। ऐसा क्यों है? आखिर क्यों!!

अशोक भारत में आज से लगभग दो हजार दो सौ इकत्तीस साल पहले राज करता था। हम नहीं जानते कि उसका बाल्यकाल कैसे बीता और उसका मानसिक विकास कैसे हुआ। इतना-भर मालूम है कि कथा के अनुसार उसने तक्षशिला का

विद्रोह दबाया था। दूसरे यह कि वह अपने पिता सम्राट् बिन्दुसार की ओर से मालवे मे राज्यपाल (गवर्नर) नियुक्त किया गया था। सम्भवत, उसकी राजधानी उज्जैन थी, या शायद विदिशा (आजकल का भेलसा)। उसके सम्बन्ध मे यह भी कहा जाता है कि राज-सिंहासन प्राप्त करने के लिए उसने अपने भाइयो का वध किया। किन्तु इस बात को सब इतिहासकार नही मानते। बहरहाल, यह सही है कि वह ई पू सन् 273 मे सम्राट् घोषित किया गया और ई पू सन् 269 मे उसका राज्याभिषेक हुआ।

सम्राट् होने के बाद अशोक अधिकाश समय अश्वशाला और उद्यानो मे बिताता। वह विलासप्रिय था। खाने-पीने का शौकीन था। मोर का गोश्त उसे खास तौर से पसन्द था। अपना कुछ समय वह शिकार मे भी बिताता।

इस प्रकार उसके राजत्व काल के प्रथम आठ वर्ष सुख और शान्ति से व्यतीत हुए कि इतने मे कलिंग-विद्रोह का समाचार आया।

अशोक ने भयानक सग्राम किया और उसे कुचल दिया। अशोक स्वय कहता है—"इस युद्ध मे एक लाख लोग मारे गये, इससे कई गुनी अधिक सख्या मे लोग घायल हुए और डेढ लाख लोगो को देश के बाहर निकाल दिया गया।" यह घटना ई पू सन् 261 की है।

नि सन्देह कलिंग के सैनिको ने जल्दी ही घुटने नही टेके होंगे। उन्होंने लम्बे अरसे तक जमकर मोर्चा लिया होगा। उन्होंने प्रण किया होगा कि मारेंगे या मरेंगे। किन्तु, उनमे इतना मनोबल कैसे पैदा हुआ, उनमे इतनी भयानक विद्रोहाग्नि क्या भडकी?

हम इस सम्बन्ध मे कुछ भी नही जानते। इतनी भयानक विद्रोहाग्नि का एक ही कारण हो सकता है। और वह है—राजकीय अत्याचार। नही तो कोई कारण नही है कि विद्रोही जल्दी आत्मसमर्पण न कर दें। सम्भव है कि निरकुश राजतन्त्र के भीतर, राजा की व्यक्तिगत कार्य दक्षता के अभाव मे, व्यक्तिगत देख-रेख और जाँच-पडताल के अभाव मे, सर्वाधिकार प्राप्त राज-कर्मचारियो ने कलिंग की प्रजा पर अत्याचार किये हो अथवा उन्हे अत्याचारपूर्ण नियमो के अधीन कर रखा हो। सम्भव है कि बिन्दुसार के समय से ही, प्रशासन-व्यवस्था अधिक शिथिल और अधिक अत्याचारी हो गयी हो और नवीन राजा अशोक ने भी उस बढती हुई शिथिलता और कठोरता की ओर ध्यान न दिया हो, प्रजा की आवाज न सुनी हो।

सक्षेप मे, कलिंग युद्ध, युद्ध नही था, वह नरमेध था, व्यापक मानव-सहार था। इस नरमेध का नेतृत्व स्वय अशोक कर रहा था। रणक्षेत्र के करुण और दयनीय, बीभत्स और कठोर दृश्यो को देखकर उसे आत्म-यन्त्रणा हुई। वह पश्चात्ताप की अग्नि मे जलने लगा।

अशोक एक महत्त्वाकाक्षी राजपुरुष था। किन्तु, उसकी महत्त्वाकाक्षा, पराक्रम की लालसा, उसकी तृष्णा, सभी पश्चात्ताप की अग्नि मे जलने लगी। रणक्षेत्र मे अपगो को देख, मारे गये सैनिको की रोती हुई माताओ और बहनो को देख, जलते हुए घरो और अधजले पेडो के ठूठो को देख, उसके हृदय मे अपार करुणा घर कर गयी। विजय-श्री से विभूषित अशोक का मस्तक नत हो उठा, कन्धे ढीले पड गये, गले मे आँसुओ का काँटा अटका, तन मे ग्लानि की ठण्डी-ठण्डी सुरसुरी दौड गयी।

उसने सम्पूर्ण प्रायश्चित करने का सकल्प किया।

प्रायश्चित अशोक के पितामह चन्द्रगुप्त मौर्य भी, वृद्धावस्था मे, तापस जीवन की ओर उन्मुख हुए थे। किन्तु वे व्यक्तिगत मोक्ष के कामी थे। अशोक की अपनी भर-जवानी म पाप का दाग लग गया। साथ ही राजशक्ति कितना अनाचार कर सकती थी, उसका ज्वलन्त उदाहरण उसके ही हाथो उसी की आँखों के सामने आया। रणदक्ष सेनाध्यक्ष सम्राट् अशोक ने अपने जीवन की दिशा ही परिवर्तित कर दी—केवल व्यक्तिगत पाप-क्षालन करने के लिए नही, वरन् इस पूरे ससार से अनाचार को दूर करने, समस्त जनता का, सम्भावी क्रूर व्यक्ति का, सम्भावी अत्याचारी का, सम्भावी दुष्ट का, पहले ही से, हृदय-सस्कार करने के लिए। यह एक ऐसा स्वप्न था, जिसको कार्यान्वित करने के लिए उसने कुछ भी न उठा रखा।

उपगुप्त उस समय, बौद्ध धर्म भारत के विशेष-विशेष प्रदेशो और क्षेत्रों मे ही सीमित था। अग, वग और उत्तर तथा दक्षिण विहार के अतिरिक्त, उसके प्रमुख केन्द्र दो और थे। एक मथुरा और दूसरा उज्जयिनी। यह सर्वविदित था कि बौद्ध धर्म भावुक करुणाप्रधान धर्म है। इसलिए वह ब्राह्मण धर्म के प्रति आकृष्ट न होकर बौद्ध धर्म की ओर ही खिंचा। उसके सौभाग्य से उसे मथुरा के एक बौद्ध विद्वान सन्त उपगुप्त का सम्पर्क प्राप्त हुआ। सम्भवत, उनके प्रभाव मे आकर उसने भारत मे तथा उससे बाहर, बौद्ध धर्म का प्रचार किया।

प्रयत्न अशोक ने धर्म-विजय की केवल घोषणा नही की, वरन् वह स्वय देश मे भ्रमण करता और व्यक्तिश बौद्ध धर्म का प्रचार करता। यही नही, उसके उच्च सरकारी अधिकारियो का एक बडा काम यह भी था कि वे स्वय राजा के पद-चिह्नो पर चलते हुए, अपने सरकारी काम-काज के अलावा, धर्म-प्रचार करें। नि सन्देह, यह बडा कठिन काम था। कई उच्च राज-कर्मचारी उससे नाराज रहे होंगे, किन्तु कुछ कह न पाते होंगे। बौद्ध धर्म के अन्तर्गत बढते हुए मतभेदो के बारे मे अशोक को बडी चिन्ता थी। उसने पवित्र स्थानो पर शास्त्रार्थ के लिए सभाएँ आयोजित करवायी तथा तृतीय बौद्ध सगीति का आयोजन किया। यह सगीति बहुत बडा बौद्ध सम्मेलन था, जिसमे अनेक विवादास्पद विषयो पर चर्चा हुई थी। इस सम्मेलन म बौद्धो के मतभेद खुलकर सामने आ गये।

धर्म-नीति किन्तु, अशोक दार्शनिक नही था, न दार्शनिक बनने की उसे कोई इच्छा ही थी। वह मानव कल्याण तथा करुणा से प्रेरित सदाचारवाद पर जोर देता था। इसलिए, उसने बौद्ध धर्म के केवल वे ही सिद्धान्त चुने, जिनका सम्बन्ध उच्च नैतिक, आध्यात्मिक और व्यावहारिक जीवन से था। वह सिद्धान्त-शास्त्री नही था, धर्म-शास्त्री नही था। विद्वान बौद्ध सन्त उपगुप्त स्वय करुणा के अवतार थे (रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने 'सन्यासी उपगुप्त' शीर्षक के अन्तर्गत, बहुत ही सुन्दर

में समान रूप से पाये जाते है, साथ ही जो हर एक को सहज-बुद्धि सम्मत हो सकते हैं। उन मानव-सिद्धान्तों पर उसने बहुत जोर दिया। उसने बौद्ध धर्म के मानव-करुणापन्न नैतिक सिद्धान्तो का, (न कि दार्शनिक सिद्धान्तो का) प्रचार किया।

उसने कहा कि मनुष्य मनुष्य के बीच परस्पर सद्‌भावना तथा समानता का बर्ताव हो। मनुष्य अपनी क्षुद्र मनोवृत्तियो तथा हीन मनोविकारो का दमन करे, हृदय को उदार बनाये, पवित्र आचरण करे, पशुओ पर दया करे तथा अन्य धर्मों के प्रति सहिष्णुता का प्रयोग करे। दूसरे शब्दो मे, मनुष्य अपने भीतर की पशुता का दमन करते हुए, अन्त करण मे सच्ची मनुष्यता जाग्रत करे।

इसलिए, उसने न केवल ऐसे सिद्धान्तो को प्रचारार्थ चुना जो सहज-बुद्धि-सम्मत थे, वरन् यह भी (महत्त्वपूर्ण बात है) कि उसने साम्प्रदायिक वैमनस्य को दूर करने के महान् प्रयत्न किये। उसने साम्प्रदायिक समस्याओ के निराकरण के उद्देश्य से स्पष्ट सिद्धान्तो को कार्यान्वित किया। वे इस प्रकार हैं

(1) **मूल** विभिन्न धर्मों मे जो सिद्धान्त समान रूप से पाये जाते हैं, उनका प्रचार करना, उन पर जोर देना, क्योकि वे सिद्धान्त, वस्तुत मानव-एकता के प्रमाण हैं, तथा मानव-एकता स्थापित करने के लिए केवल इन्ही सिद्धान्तो का सर्वाधिक और व्यापकतम प्रचार होना चाहिए। साथ ही प्रत्येक का यह कर्तव्य है कि वह इन्ही सर्वधर्मसम्मत मूल सिद्धान्तो पर जोर दे।

(2) **वाचा गुप्ति** अन्य धर्मों के विरुद्ध जहर न उगला जाय, उनकी आलोचना न की जाय, मुँह से ऐसे शब्द न निकलें जिनसे यह प्रतीत हो कि अन्य धर्म हीन हैं और हमारा ही धर्म श्रेष्ठ है। दूसरे धर्म को हीन भाव से देखना, उसके अनुयायियो का हृदय दुखान का प्रयत्न करना, पवित्र आचरण नही है, सदाचार नही है, अनाचार है।

(3) **समवाय** साथ ही यह आवश्यक है कि विभिन्न धर्मावलम्बियो मे मेल-जाल बढे, परस्पर सद्भाव उत्पन्न हो, एक दूसरे का ज्ञान हो। इसलिए यह आवश्यक है कि सभी धर्मों के उपदेशा को जनता तक पहुँचाने के लिए, सर्वधर्म-सभाएँ की जायें, जहाँ कि जनता एक साथ बैठकर सभी धर्मों के उच्च तत्त्व ग्रहण कर सके।

(4) **बहुश्रुत** अर्थात् यह आवश्यक है कि हमारा ज्ञान केवल एक ही सम्प्रदाय या धर्म मे ग्रन्थों तक ही सीमित न रहे वरन् सभी धर्मों के मूलभूत ग्रन्थो का अध्ययन करके हम वास्तविक उदार मानव दृष्टिकोण तथा सच्चा धर्म-भाव ग्रहण कर सकें।

सम्राट् अशोक ने यदि बौद्धो के विहारो और मठो को सहायता पहुँचायी तो ब्राह्मणो के मन्दिरो को भी। उसने, प्रजा के प्रति एक सम्राट् की सहानुभूतिपूर्ण दृष्टि से ही, आजीवको, ब्राह्मणो, तीर्थंको तथा निर्ग्रन्थो तक को दान दिया, और तरह-तरह की सहायता पहुँचायी। अपन राज्याभिषेक के बारहवें वर्ष मे उसने आजीवको को एक पर्वत के भीतर कुछ गुफाएँ प्रदान की। आजीवक सम्प्रदाय [illegible]

[illegible] राज कर्मचारी जो विष्णुगुप्त [illegible] जब यह देखा होगा कि सम्राट् की [illegible] आज्ञा स जल क दरवाज खाल दिय गय हैं और कैदी रिहा हो चुके है, और होते जा रहे हैं तो उन्हे बडा दुख हुआ होगा। अशोक ने केवल अति-भयानक अपराधा के बन्दियो को, जिन्हे मृत्युदण्ड दिया गया था, रिहा नही किया, किन्तु उनका वध कुछ दिनो के लिए रुकवा दिया। इसी प्रकार उसने एक आदेश द्वारा

ऐसे पशु पक्षियों का वध निषिद्ध घोषित किया जिनका मास सामान्यत खाया नही जाता था, किन्तु आखेट के प्रेमी जिन्हे अकसर मारा करते थे।

देश म मानव एकता स्थापित करने का उद्यम करते हुए, अशोक ने व्यापार-व्यवसाय की वृद्धि के हेतु तथा यात्रियो के सुख के लिए, बडे-बडे रास्ते बनवाये, उनके किनारे-किनारे पेड लगवाये, स्थान-स्थान पर विश्राम गृह तथा धर्मशालाएँ बनवायी, चिकित्सालय स्थापित किये और ऐसे वृक्ष लगाने की आज्ञा दी जा रोगियो के रोग को दूर करने म सहायक हो।

[illegible]

सदाचार की शिक्षा दी गयी है। ये अभिलेख उत्तर-पश्चिम के सीमान्ती प्रदेशो से लेकर तो सौराष्ट्र और बम्बई तक हैं और वहाँ स लेकर बिहार तक हैं। वे साम्राज्य के हर भाग म बिखरे हुए है। ये अभिलेख—14 शिलालेखो, 7 स्तम्भ-लेखो और 7 अपेक्षाकृत छोटे अभिलेखो के रूप म—अभी भी वर्तमान हैं। इन अभिलेखो से अशोक की आवाज हजार साल पार करती हुई हम तक आ जाती है। उसमे पूज्य व्यक्तियो के प्रति श्रद्धा करने का, अहिंसा पालन करने का, माता पिता की आज्ञा मानने का प्रेम और सद्भाव से रहने का, उपदेश दिया गया है। उसके स्तम्भ-आलेख अन्य स्थानो के अतिरिक्त, कौशाम्बी, साँची और सारनाथ म हैं। वे तत्कालीन कला के अद्भुत नमूने हैं। इन अभिलेखो से उस समय के जीवन पर भी प्रकाश पडता है। ये आलेख सैकडो वर्षों की गरमी-सरदी और वर्षा सहते रहे, फिर भी मिटे नही हैं।

विदेशों से सम्पर्क अपने आध्यात्मिक उद्देश्यो और उपदेशो से विदेशो को परिचित कराने के लिए, अशोक ने सीरिया के अधिपति एन्टीओकस द्वितीय, मसिडोनिया के ऐन्टीगोनस गोनातास, मिस्र के फिलाडेल्फस तथा साइरिन के मागास, तथा एपीरस के अलेक्जेण्डर के दरबारो मे अपने धर्म-महामात्य (धर्म राजदूत) नियुक्

देशो के यहाँ म

के दरबारो म

उन देशो को प्र

पवित्रता का प्रचार करना था।

धम प्रचारक सम्राट् अशोक ने अपने पुत्र महेन्द्र और पुत्री सघमित्रा को लका तथा बर्मा मे धर्म प्रचार के लिए भेजा। भारत के विभिन्न भागो म तो ये धर्म प्रचारक काम करते ही थे वे विदेशो म भी गये। मध्य एशिया, पश्चिमी एशिया तक वे जा पहुँचे। उधर उन्होने पूर्वी एशिया मे, खास तौर से खोतन मे प्रवेश किया।

मध्य-पूर्वी एशिया मे भारतीय उपनिवेश

काश्मीर के पूर्व उत्तर की सीमा पर, सिंगक्याग नामक प्रदेश है। उसमे तारीम, यारकन्द आदि नदियाँ बहती हैं। तारीम अपनी सहायक नदियो को लेकर लोबनोर

अस्त हो गया। उसके अन्तिम राजा का नाम जानने की भी कोई आवश्यकता नहीं है।

भारत के स्वर्णयुग की रश्मियाँ

गुप्त काल प्राचीन भारत का स्वर्णयुग क्यों कहा जाता है ? केवल एक ही उत्तर है—वह यह कि शान्ति, सुरक्षा, सुख और समृद्धि के साथ-साथ, मानव की सृजनशील प्रतिभा ने अपने नव शिखर प्रस्तुत किये। चाहे गणित सिद्धान्त हो चाहे दर्शन, चित्रकला हो चाहे व्यापार—एक बात सर्वत्र दिखायी देती थी। वह है नवीन के प्रति अनुरागपूर्ण उत्साह, और यदि वह सार्थक है तो उसे आत्मसात् करने का प्रयत्न। ब्राह्मण विद्वान् बौद्धों की युक्तियाँ लेकर उन्हीं के द्वारा उन्हीं की विचारधारा का खण्डन करते। ठीक इसी प्रकार, बौद्ध शास्त्री अपने नव तर्कशास्त्र का विकास करते जाते। जो भी नवीन ग्रहण किया जाता वह इतना आत्मसात् कर लिया जाता कि व्यक्तित्व के अभिन्न अंग के रूप में प्रस्तुत होता। किन्तु, यह नवीन विदेशी नवीन नहीं था। वह भारतीय व्यक्तित्व की उपज थी। शोध, अनुसन्धान, ज्ञान-व्यवस्था का निर्माण, उन दिनों की विशेषता थी—चाहे वह शल्य-चिकित्सा हो, चाहे धर्म। दूसरी विशेषता यह थी कि उस काल में धार्मिक कलह का नाम भी नहीं था। ईसा की चौथी-पाँचवीं सदी की बात है यह।

हमारे विद्वान् विचारक कितनी साहसपूर्ण मान्यताओं को जन्म देते थे, इसके हम दो-एक उदाहरण देंगे। ज्योतिर्विद ब्रह्मगुप्त ने यह सिद्धान्त स्थापित किया कि 'प्रकृति के नियम के अनुसार ही समस्त वस्तुएँ पृथ्वी पर गिरती हैं, क्योंकि पृथ्वी का स्वभाव वस्तुओं को आकर्षित करना और रखना है।' क्या उक्त सिद्धान्त मूलतः पाश्चात्य वैज्ञानिक न्यूटन के गुरुत्वाकर्षण नियम के समान नहीं है ? यूरोप जब पृथ्वी को चपटी मान रहा था, हमारे यहाँ वह गोल मानी जाती थी। वह अपने अक्ष पर घूमती भी थी। उसका व्यास भी निकाला जा चुका था।

शास्त्र भारत अपने प्रसिद्ध गणितशास्त्री और ज्योतिर्विद आर्यभट्ट को कभी भी नहीं भूल सकता। आर्यभट्ट ने दशमलव पद्धति का उपयोग किया। वर्गमूल और घनमूल निकालने के तरीके खोज निकाले। ज्योतिर्विदों में वराहमिहिर और ब्रह्मगुप्त का नाम भी अमर है।

साहित्य कालिदास का नाम जो नहीं जानता, उसे अशिक्षित समझा जायेगा। वह इसी काल में हुआ था। वह, सम्भवतः चन्द्रगुप्त (द्वितीय) विक्रमादित्य के दरबार में था। उसके प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं 'अभिज्ञान शाकुन्तल' और 'मालविकाग्निमित्र'। ये नाटक हैं—उसने दूसरे भी नाटक लिखे। काव्यों में उसका

'मेघदूत' और 'रघुवंश' सर्वाधिक प्रसिद्ध हैं। उसकी संस्कृत भाषा प्रांजल, सरल और कोमल है।

कवि भारवि कृत 'किरातार्जुनीय' काव्य, विशाखदत्त कृत 'मुद्राराक्षस' नामक नाटक, सुबन्धु कृत 'वासवदत्ता', अमरसिंह कृत 'अमरकोष' (यह एक बृहद् शब्द-कोष है), 'पंचतन्त्र' तथा 'हितोपदेश'—इसी युग की रचनाएँ हैं। इनके सिवाय, और भी कई हैं, उदाहरणत दण्डीकृत 'दशकुमार चरित'।

'पंचतन्त्र' और 'हितोपदेश', जो किसी विष्णुशर्मा द्वारा लिखे गये थे, बहुत लोकप्रिय ग्रन्थ थे।

गुप्त सम्राट संस्कृत भाषा के भक्त थे। उन्होंने उसे अत्यधिक प्रोत्साहन दिया। नतीजा यह हुआ कि प्राकृत भाषाएँ अधिक उन्नति न कर सकी, यद्यपि थोड़ी-बहुत रचना उनमें भी होती रही।

कला मूर्ति कला मे जिसे गान्धार शैली कहा जाता है, अब उसका पूरा लोप हो गया। उसके स्थान पर अब उसमे पूर्णत भारतीय शैली का आविर्भाव हुआ। विष्णु, कृष्ण, देवी के मुखो पर जो तेज और सौन्दर्य है, उसी से पता चल जाता है कि यह एकदम नयी शैली है, जो पूर्णत भारतीय है। देवी-देवताओ की जो मूर्तियाँ इस काल मे बनी, उनमे भारतीय कला शैली स्पष्टत परिलक्षित होती है। इस काल मे, चित्रकला ने विशेष उत्कर्ष किया। अजन्ता और एलोरा आदि गुफा-मन्दिरो मे जो चित्र आज भी सारे कला-प्रेमी जगत का ध्यान अपनी ओर खींचे हुए हैं, वे गुप्त काल मे ही बने थे। गुप्त सम्राट् संगीत के बहुत प्रेमी थे। समुद्रगुप्त तो विशेषत संगीत का विज्ञ था। गुप्त काल मे, इस कला की भी उल्लेखनीय उन्नति हुई। भवन-निर्माण कला ने भी उत्कर्ष किया।

व्यापार-व्यवसाय गुप्त काल मे विदेशो से भारत का सम्बन्ध बराबर बना रहा। पश्चिम मे रोमन साम्राज्य से और पूर्व मे पूर्वी द्वीप समूह से खूब व्यापार होता था। भारत के विभिन्न स्थानो मे रोमन मुद्राएँ प्राप्त हुई हैं, इससे यही सूचित होता है।

संस्कृति का प्रसार भारतीय संस्कृति तो अशोक के काल से ही विदेशो मे फैल रही थी। गुप्त काल तक आते-आते अब वह मध्य एशिया से लेकर चीन तक और दक्षिण-पूर्वी एशिया मे फैल गयी। दक्षिण-पूर्वी एशिया मे, पहले जो भारतीय उपनिवेश थे, अब वे साम्राज्यो का रूप धारण करने लगे। बौद्ध मत के अतिरिक्त अब वहाँ वैष्णव और शैव मत भी फैलने लगा। वहाँ के विहारो और मन्दिरो के निर्माण मे भारतीय कला की छाया दिखायी देने लगी। जावा, सुमात्रा, हिन्दचीन, बोर्नियो, अनाम आदि देशो मे जो सांस्कृतिक प्रसार हुआ, उसमे दक्षिण भारतीय राज्यो का भी हाथ था।

धार्मिक अवस्था इस युग मे कहीं भी धार्मिक कलह नही थी। गुप्त सम्राट् वैष्णव थे। किन्तु, वे अन्य धर्मों के प्रति बहुत उदार थे। उनके राज-कर्मचारियो मे बहुत से शैव और बौद्ध थे। किन्तु राजाश्रय केवल ब्राह्मण धर्म को ही था।

एक ही परिवार के सदस्य कभी-कभी भिन्न धर्मानुयायी होते। राजा शान्ति-मूल स्वयं वैदिक [धर्म] को माननेवाला था किन्तु उसकी बहुएँ, बहनें और लड़कियाँ बौद्ध धर्म को मानती थी। गुप्त वंश मे भी कई सम्राट् बौद्ध हुए। सम्राट् कुमारगुप्त के दो लड़को मे से एक पुरुगुप्त बौद्ध था, स्कन्दगुप्त वैष्णव था। परवर्ती

मगधराज वेनगुप्त स्वय वैष्णव था किन्तु उसने महायान सम्प्रदाय के वैवर्तक सघ को आर्थिक सहायता दी थी। वैष्णव गुप्त सम्राटो के दान से नालन्दा विश्व विद्यालय चलता था यह विश्वविद्यालय बौद्धो का था।

यद्यपि आपेक्षिक रूप म बौद्ध धर्म सिकुड गया था फिर भी कौशाम्बी, सार नाथ मथुरा कांची (दक्षिण भारत) वलभी (सौराष्ट्र) म बडे बडे बौद्ध विहार थे जहाँ हजारो की सख्या मे बौद्ध भिक्षु रहते। सम्राट चन्द्रगुप्त द्वितीय परम भागवत थ, किन्तु उ होने अपने पुत्रो की शिक्षा के लिए वसुब धु नामक एक महान् बौद्ध आचार्य को नियुक्त किया था। य वसुबन्धु वही थे जिन्होंने बौद्धो के पृथक् तर्कशास्त्र का विकास किया। उनके अतिरिक्त असग बुद्धघोष दिडनाग, धर्म-कीर्ति आदि प्रसिद्ध आचार्य हुए जिन्होने बौद्ध धर्म की कीर्ति को बढाया।

दार्शनिक उत्थान इस युग म चमत्कारपूर्ण रूप स एक के बाद एक महान् दाशनिक होते चले गये। सब ओर विचार विनिमय, स्वतन्त्र चिन्तन, शास्त्राथ और साहसपूर्ण निष्कर्षों का वातावरण था। उस युग म दार्शनिक विषयो का गहन मन्थन हुआ।

साख्य दर्शन ने विशेष विकास किया। ईसा की चौथी सदी म ईश्वरकृष्ण नामक पण्डित न साख्यकारिका' लिखी। न्यायसूत्रो की मीमांसा करते हुए कात्यायन ने एक भाग लिखा जिसमे बौद्धो के योगाचार और माध्यमिक नामक दो समुदायो की दार्शनिक युक्तियो का खण्डन किया गया। उसी प्रकार वैशेषिक दर्शन के प्राचीन सूत्रो की व्याख्या करते हुए पदार्थ धर्म सग्रह' नामक एक महत्त्व पूर्ण ग्रन्थ लिखा गया।

बौद्ध सम्प्रदाय तब तक न केवल महायान और हीनयान नामक दो सम्प्रदायो म बँट गया था, वरन् दशन के क्षत्र म भी अनेक सम्प्रदाय कायम हो गये थे। हीनयान सम्प्रदाय की उन्नति म बुद्धघोष नामक विद्वान का बहुत बडा हाथ था। महायान सम्प्रदाय के दो भाग हो गये थ—माध्यमिक और योगाचार। आर्यदेव ने जो नागाजुन का शिष्य था चतु शतक नामक एक प्रसिद्ध दाशनिक ग्रन्थ लिखा।

योगाचार सम्प्रदाय के विकास मे असग का बहुत बडा हाथ था। असग प्रकाण्ड पण्डित था। भारतीय दशनशास्त्र का उसे उत्तम ज्ञान था। असग और उसके भाई वसुब धु न बौद्ध दशनशास्त्र का अत्यधिक विकास किया। यह वही वसुबन्धु था जिसको च द्रगुप्त ने अपने राजकुमारो के अध्ययन के लिए शिक्षक नियुक्त किया था। आचार्य असग वसुबन्धु दिडनाग आदि महान बौद्ध विद्वान् हुए जिन्होने गुप्त युग के बौद्धिक उत्कर्ष को ऐतिहासिक बना दिया। खेद है कि दिडनाग के ग्र थ प्राप्त नही हो पाते केवल उनके कुछ चीनी और तिब्बती अनुवाद मिलते हैं।

गुप्त काल के कुछ देवालय अभी भी मिलते है। ग्वालियर के समीप पद्मावती स्थान पर यक्ष का मन्दिर व राजगिर मे मणिनाग का मन्दिर। विभिन्न अवतारो मे से वाराह और कृष्ण अधिक लोकप्रिय थे।

दक्षिण म पुण्ड्रवर्धन और ऐरन म वाराह के मन्दिर हैं। गुप्त काल के पूर्व सूर्य का एक म दिर सिर्फ मुलतान मे था। अब सूर्य मन्दिर ग्वालियर इन्दौर व बघलखण्ड म भी बनाये गय। अनेक स्थानो पर शिव के मन्दिर भी थे।

इस युग मे शैव धर्म का भी अभ्युत्थान हुआ। वैसे भी, वाकाटक तथा मारशिव नागवशी नरेश शैव था। हूण राजा मिहिरगुप्त शैव बन गया था। सब धर्म, एक-दूसरे से शास्त्रार्थ और स्पर्धा करते हुए भी, एक-दूसरे से सीखते थे।

राजनीतिक व्यवस्था : गुप्त सम्राट पूर्वकालीन राजाओ की भाँति, निरकुश स्वेच्छाचारी शासक थे। ईसा की तीसरी सदी बाद, अब उनमे 'देवता के गुण' भी पाये जाने लगे। उनकी उपाधियाँ लम्बी-चौडी होने लगी। राजतन्त्र स्वेच्छाचारी होने पर भी, समाज की विभिन्न सस्थाओ-सगठनो को उसी प्रकार स्वायत्त शासन प्राप्त था, जैसा कि पहले से चला आया था। राजा प्रजावत्सल थे। जनता सुखी थी। प्रशासन तन्त्र लम्बा-चौडा हो गया था। राज-कर्मचारियो मे नये पद-नाम निकल आये थे। 'महाबलाधिकृत' (मुख्य सेनाध्यक्ष,), 'महादण्डनायक' (सुरक्षा व्यवस्थापक), 'सन्धिविग्रहिक' (शान्ति तथा युद्ध सम्बन्धी निर्णय करनेवाला), इत्यादि। साम्राज्य मे सर्वत्र शान्ति तथा सुख विद्यमान था।

प्राचीन भारत के विश्वविद्यालय

भारतीय सस्कृति की कीर्ति को चारो ओर प्रसारित करने मे हमारे प्राचीन विश्वविद्यालयो ने बडा काम किया। सभी तत्कालीन शास्त्र तथा विज्ञान वहाँ पढाये जाते, किन्तु उनका मुख्य बल धर्म तथा दर्शन पर ही था। इन विश्वविद्यालयो का ज्ञान प्राप्त करने से, हमे तत्कालीन भारतीय सस्कृति की क्षमताएँ और सीमाएँ दोनो का ज्ञान हो जाता है।

प्राचीन भारत मे ज्ञान और ज्ञानी को उचित सम्मान प्राप्त होता था। ज्ञान-प्रदान का कार्य ब्राह्मणो के हाथ मे था। वे गुरुकुलो तथा आश्रमो मे शिक्षा प्रदान करते। ये आश्रम, साधारणत , (किन्तु इसके अपवाद भी हैं) वनो म रहते।

शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार केवल द्विजाति को था। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य अपने पुत्रो को गुरुओ के पास भेजते। प्रारम्भ मे, शिक्षा का अधिकार स्त्रियो को भी था।

किन्तु ज्यो-ज्यो राज्यसत्ता का विकास होता गया, त्यो-त्यो स्त्रियो के अधिकार कम होते गये। स्त्री पति की व्यक्तिगत सम्पत्ति बनती गयी। उसकी स्वतन्त्रता का भी क्रमश लोप होता गया। गुप्त काल मे, अर्थात् ईसा की चौथी सदी मे, स्त्री-स्वातन्त्र्य बहुत-कुछ लुप्त हो गया था। फिर भी स्त्री-शिक्षा की प्राचीन परम्परा किसी-न-किसी अश मे बनी हुई थी।

शूद्रो को शिक्षा का अधिकार बिलकुल नही था। उन्हे न केवल अज्ञान के अन्धकार मे रखा जाता, वरन् उनमे से कोई महत्त्वाकाक्षी व्यक्ति यदि उसे प्राप्त करने का प्रयत्न करता तो उस पर अत्याचार किये जाते। शूद्रो की सख्या हर्ष काल

तक आते-आते बहुत बढ़ गयी थी। भारतीय जन-समाज में, संख्या की दृष्टि से, वे कम नहीं थे। सारा सेवा-कार्य, सब व्यवसाय, वे ही करते। शिल्पी शूद्र ही था, कृषक भी। ये सब अज्ञान के अन्धकार में पड़े हुए थे। जो भी ज्ञान उनके पास था, वह केवल व्यवसाय-सम्बन्धी था। व्यावसायिक शिक्षा का कोई समुचित प्रबन्ध नहीं था। कला-कारीगरी की तालीम दूकान या कर्मशाला या खेत में बैठकर ही प्राप्त की जा सकती थी। संक्षेप में, जिसे हम उच्चतर शिक्षा कहते हैं, उससे शूद्र वंचित रहा।

इसका दूसरा परिणाम यह हुआ कि वस्तुओं के उत्पादन से सम्बन्धित समस्याओं पर भारत के सुविकसित मस्तिष्क विचार नहीं कर सके, ऐसे मस्तिष्क जो सिद्धान्तों पर सोचा करते हैं। उच्चतर शिक्षा के अभाव में, शिल्पी शूद्र, उच्च धनिकवर्गीय अभिरुचि को तृप्त करने के लिए सुन्दर-से-सुन्दर वस्तुएँ बनाता।
[illegible] भी, वह उन प्रक्रियाओं में समाये
[illegible] ना, उन सिद्धान्तों की खोज नहीं
[illegible] पी शूद्र के पास सूक्ष्म और अमूर्त
चिन्तन की शक्ति नहीं रही!! उधर, सूक्ष्म और अमूर्त बौद्धिक चिन्तन की प्रतिभा रखनेवाले मनीषी उत्पादन की प्रक्रियाओं और उत्पादन के केन्द्रों से बहुत दूर थे। उनमें और शिल्पी शूद्र में बहुत फासला था।

हाँ, यह सही है कि हमारे यहाँ विज्ञान का भी विकास हुआ। किन्तु यह विकास-क्रम बहुत संक्षिप्त है। साथ ही, शिल्प कार्य की पद्धतियों के सम्बन्ध में [illegible]

पुरानी निर्माण विधियाँ और विद्याएँ लुप्त हो गयीं। आज हम प्राचीन कला-कृतियों को देखकर केवल आश्चर्य ही कर सकते हैं, और कुछ नहीं! वे कला-कृतियाँ इतनी स्थायी और सुन्दर हैं कि इच्छा होती है कि हम उनकी निर्माण-विधियों को जानें। लेकिन जान नहीं पाते। ऐसा क्या हुआ?

इसके दो कारण थे। एक तो उच्चवर्गीय शिक्षित वर्ग निर्माण-कार्य से बहुत दूर था, और दूसरी ओर, निर्माण-कार्य करनेवाले लोग उच्चतर शिक्षा से बहुत थे। एक ओर महान् प्रतिभाशाली ज्ञानी थे—वे स्वयं ज्ञान के शिखर थे तो दूसरी ओर शेष जनता अपढ़ थी, वह अज्ञान के अन्धकार में डूबी हुई थी। फलतः, उच्च वर्गों में सूक्ष्म से-सूक्ष्म और ऊँचे-से ऊँचे दार्शनिक विचार पाये जाते थे, तो दूसरी ओर, अपढ़ लोगों में जादू-टोना, तन्तर मन्तर, भूत-पिशाच-पूजा भी प्रचलित थी।

प्राचीन शिक्षा का ध्येय शिक्षा का ध्येय ज्ञान-दान तथा चरित्र-निर्माण—दोनों एक साथ थे। सांस्कृतिक तथा नैतिक परम्पराओं को जारी रखना उनका प्रमुख लक्ष्य था। उन दिनों गुरु चरित्रवान थे तथा शिष्य भी। गुरु शिष्य सम्बन्ध आज से भिन्न था। गुरु मार्गद्रष्टा था। शिष्य को उसके प्रति श्रद्धा रखना और उसकी सेवा करना आवश्यक था।

पाठ्यक्रम पाठ्यक्रम में वैदिक साहित्य, दर्शनशास्त्र, तर्कशास्त्र, व्याकरण और उनके अतिरिक्त, शस्त्रविद्या, चिकित्सा तथा प्रशासन की कला भी शामिल थी। पूरा पाठ्यक्रम लगभग 12 वर्ष का होता। शिक्षण-पद्धति के अन्तर्गत, पठन,

पुनरावृत्ति, स्मरण, वाद-विवाद और शास्त्रार्थ भी सम्मिलित थे।

तक्षशिला : प्राचीनकाल के गान्धार देश मे तक्षशिला विश्वविद्यालय का बडा नाम था। अनेक देशो और प्रान्तो के विद्यार्थी वहाँ पढने आते थे। वहाँ 68 विषय पढाये जाते थे। धनिक वर्ग के विद्यार्थी फीस चुकाते। गरीब वर्ग के विद्यार्थी सेवा करते। वहाँ कई हज़ार विद्यार्थी पढते और सैकडो विख्यात शिक्षक थे। कई इतिहासप्रसिद्ध पुरुषो ने वहाँ शिक्षा ग्रहण की। तक्षशिला भारत का प्राचीनतम विश्वविद्यालय है। यह ईसा के जन्म के 700 साल पहले प्रारम्भ हुआ और ईसा के जन्म के 300 साल पहले तक विद्यमान था।

वाराणसी . तक्षशिला के लुप्त हो जाने पर, वाराणसी विद्या का विशाल केन्द्र हुआ। वहाँ ब्राह्मण साहित्य तथा सस्कृत विद्या पढाई जाती।

नालन्दा : गुप्त काल मे नालन्दा विश्वविद्यालय की स्थापना हुई। पटना के निकट बरगाँव नामक स्थान पर वह स्थापित किया गया था। यह महायानपथी बौद्ध विश्वविद्यालय था। इस विश्वविद्यालय मे व्याख्यानो, अध्ययन-गोष्ठियो, विचार-विनिमयो, वाद-विवादो तथा शास्त्रार्थ द्वारा शिक्षा दी जाती थी। यहाँ बौद्ध मत के सभी विचार-सम्प्रदायो के अतिरिक्त, मन्त्र-विद्या, ज्योतिष पढाया जाता था।

यह एक अत्यन्त भव्य और विशाल विश्वविद्यालय था। इसमे लगभग 10 हज़ार शिक्षक तथा विद्यार्थी थे। शिक्षको की सख्या एक हज़ार से ऊपर थी। उनमे बौद्ध धर्म के महान् विद्वान्, जैसे धर्मकीर्ति, शीलभद्र, शान्तरक्षित, पद्मसम्भव तथा गुणमति विद्यमान थे।

नालन्दा का खर्च अनेक राजाओ, धनिक व्यापारियो तथा सुमात्रा जैसे दूर-दूर के देशो की सहायता से चलता था। विश्वविद्यालय के पास अपने खर्चे के लिए 200 से अधिक गाँव थे।

शान्तरक्षित तथा पद्मसम्भव जैसे लोग, आगे चलकर, तिब्बत मे बौद्ध धर्म का प्रचार करने गये। उसी प्रकार नालन्दा मे विदेशो से आये हुए लोगो मे त्रिपिटकाचार्य, हुएनत्सांङ, ह्रु्एन चिङ, ह्रु्ली, ताग, ताओ सिङ्, आर्यवर्मन तथा पुद्धधर्म जैसे महान् पण्डित थे।

नालन्दा मे ज्योतिष की पढाई के लिए छोटी-बडी वेधशालाएँ भी थी, अनेक ग्रन्थालय थे। ग्रन्थो की सख्या लगभग एक लाख थी।

वलभी : मैत्रक वश के राजाओ ने अपने यहाँ (सौराष्ट्र मे) बौद्ध मत तथा अन्य पन्थो के अध्ययन के लिए, वलभी विश्वविद्यालय स्थापित किया। इसमे अन्य विषय भी पढाये जाते थे। इसके पास बहुत बडा ग्रन्थालय था।

विक्रमशिला : यह उत्तरी मगध मे स्थित था। इसमे तिब्बती बौद्ध धर्म का अध्ययन होता था। इस विश्वविद्यालय ने अपने अनेक पण्डित धर्म-प्रचार के लिए तिब्बत भेजे थे। तिब्बत मे भारतीय सस्कृति के विस्तार मे विक्रमशिला विश्वविद्यालय का बहुत योगदान है।

ओदान्तपुरी : विक्रमशिला विश्वविद्यालय पालवश के राजाओ ने खुलवाया था। उसी प्रकार, आठवी सदी मे उन्होंने पाटलिपुत्र के निकट ओदान्तपुरी मे एक विशाल शिक्षा-केन्द्र स्थापित किया। यहाँ तान्त्रिक साहित्य का विशेष रूप से अध्ययन होता था।

जागरल यह विश्वविद्यालय थोड़े दिनों तक रहा। बंगाल के राजा रामपाल ने इसे वरेन्द्र प्रदेश में गंगा और करतोय नदी के संगम पर बनवाया था।

इन विश्वविद्यालयों ने भारतीय सांस्कृतिक परम्परा को जीवित रखा; उसका प्रसार किया। *साथ ही, उन्होंने भारतीय आदर्श, जीवन नीति, अर्थात् भारतीय संस्कृति का प्रचार-प्रसार दूर-दूर के देशों में किया।*

ये गुरुकुल धर्म तथा दर्शन के केन्द्र थे। औद्योगिक कलाएँ यहाँ नहीं सिखायी जाती थीं। शिल्पी-श्रेणी-संघ में ही व्यक्ति को औद्योगिक कला (कार्य तथा अनुभव द्वारा) सिखाई जाती थी।

मुख्य दोष अपनी सारी उच्चता और श्रेष्ठता के बावजूद, उस काल की शिक्षा-व्यवस्था में बहुत बड़ा दोष यह था कि सामान्य जनता इन विश्वविद्यालयों का लाभ नहीं उठा पाती थी। एक ओर प्रकाण्ड विद्वत्ता के नभ-चुम्बी शिखर थे, तो दूसरी ओर अपढ़ और निरक्षर जनता का व्यापक समुदाय था। इन विश्वविद्यालयों में औद्योगिक कलाएँ नहीं पढ़ाई जाती थीं। सूक्ष्म बौद्धिक चिन्तन को, औद्योगिक कला के लक्ष्यों से समन्वित नहीं किया गया। फलत, हमारे यहाँ विज्ञान का सर्वांगीण तथा उत्तरोत्तर विकास नहीं हो सका—विज्ञान के विकास की परम्परा हमारे यहाँ नहीं बन पायी।

मध्य युग तक आते-आते पुराने विश्वविद्यालय नष्ट हो गये। पाठशालाएँ मन्दिरों में कायम हुईं। शिक्षा तथा ज्ञान दोनों रूढ़िबद्ध हो गये। विचार-स्वातन्त्र्य नष्ट हो गया। सारा ध्यान संस्कृत की शिक्षा की ओर था। फलत, प्राकृत तथा अपभ्रंश भाषाओं का व्यापक अध्ययन नहीं हो पाया।

लोकोन्मुख शिक्षा-पद्धति के लिए, विज्ञान-प्रमुख शिक्षा-व्यवस्था के लिए, भारत को आधुनिक काल के उदय की प्रतीक्षा करनी थी। सो, उसने की।

मौर्यकालीन सामाजिक-सांस्कृतिक प्रक्रियाएँ

सामाजिक प्रक्रियाएँ, कठोरतापूर्वक, काल-खण्डों में नहीं बाँटी जा सकतीं। वे किसी युग के पहले से शुरू होकर उसके अन्त के बाद भी जारी रह सकती हैं, रहती हैं। किन्तु, जहाँ से वे स्पष्टत दृष्टिगत और प्रभावशाली हो उठती हैं, उन्हें उस काल खण्ड की विशेषता समझा जाता है। निरंकुश स्वेच्छाचारी राजतन्त्र के विकास की प्रवृत्ति मौर्य-युग से पहले की है, किन्तु इस युग में वह स्पष्टतर प्रभावशाली हो उठी है। उसी प्रकार, पौराणिक धर्म का अभ्युत्थान मौर्य युग के पूर्व से शुरू होकर, उसके बहुत बाद तक चलता रहा। इस बीच, ब्राह्मणों और बौद्धों में बहुत-कुछ आदान-प्रदान हुआ। इन सबकी एक झलक यहाँ देने का प्रयत्न किया गया है।

मौर्य काल की सामाजिक प्रक्रियाएँ

मौर्य काल मे निरकुश स्वेच्छाचारी राजतन्त्र का सम्पूर्ण विकास हुआ। सारी राजनैतिक सत्ता राजा के पद मे समाहित हो गयी।

समाज की विभिन्न सस्थाओं, सगठनो, सघो जातियो को स्वायत्त शासन प्राप्त था। सारी जनता इन सगठनो मे बँधी हुई थी। ये सगठन अपने-अपने रूढि-नियमो द्वारा कार्य करते थे। औद्योगिक उत्पादन के लिए भी भिन्न भिन्न शिल्पी-सघ थे। एक-एक व्यवसाय के लिए एक-एक शिल्पी-सघ। इन सघो और सगठनो, बिरादरियो और जातियो के रूढि-नियमो को धार्मिक तथा राजकीय मान्यता मिल चुकी थी। उनके स्वायत्त शासन मे राजा का कोई हस्तक्षेप न होता।

साथ ही, जनता भी राजा के कार्य मे कोई हस्तक्षेप नही कर सकती थी, यहाँ तक कि वह उसको विधिपूर्वक प्रभावित नहीं कर सकती थी। सारी राजनैतिक सत्ता राजा के हाथ मे केन्द्रित हो गयी थी।

फलत, समाज के उच्च वर्ग—राजन्य वर्ग और सामान्य जन—इन दो के बीच खाई पड गयी थी। शिक्षा तथा सस्कृति उच्च वर्गों के हाथ म थी, जनता निरक्षर तथा देश-कार्य से उदासीन हो गयी थी—'कोउ नृप होहु हमहिं का हानी' वाली नीति, जन-मान्य थी।

फलत, एक ओर आक्रान्ता (विदेशी आक्रान्ता भी) जन-सहार करता था, नगरो को ध्वस्त करता था, तो दूसरी ओर समीपवर्ती क्षेत्रो मे किसान धैर्य और शान्तिपूर्वक अपना हल चलाता था। सामान्य जनता वश-परम्परागत रूप से, विशेष जातीय-सामाजिक शिल्पिक सघो, सस्थाओ और पचायतो के प्रति, निष्ठावान तथा धर्म और रूढि के प्रति तो निष्ठावान थी—क्योकि उन्ही के बीच और उन्ही के अनुशासन म उसे कार्य करना पडता था, किन्तु, अपने प्रदेश या देश के प्रति उसका कोई अनुराग नही था। सारा देश-कार्य उसने अपने राजाओ और सामन्तो को सौंप रखा था और दोनो एक-दूसरे के कार्य मे हस्तक्षेप नही करते थे।

फलत, विदेशी आक्रमणकारियों का प्रतिरोध जनता द्वारा नही हुआ। वह जिस खुशी से अपने सामन्त या राजा के अधीन कार्य करती थी, उसी खुशी से वह विदेशी शासन के अधीन कार्य करती रहती थी। बशर्ते कि (अ) उसके सामाजिक-आर्थिक रूढि-बद्ध स्वायत्त शासन मे कोई हस्तक्षेप न करे, (ब) और उसकी धर्म-भावना पर आघात न करे।

राजन्य वर्ग और जन-साधारण—इन दो की ये महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ इतनी भयानक हो उठी कि देश अनेक बार विदेशी शक्तियो का शिकार हुआ, नयी-नयी सामाजिक समस्याएँ उठ खडी हुई।

यह व्यवस्था, थोडे-बहुत परिवर्तनो के साथ, दो हजार साल से ज्यादा समय तक चली। जब अग्रेज भारत म आये तब उन्होने इस व्यवस्था को नष्ट कर दिया।

शिल्पी-सघ

एक-एक व्यवसाय के लिए, एक एक शिल्पी-सघ का अभ्युदय और उत्कर्ष हुआ।

इन सघो के आर्थिक-सामाजिक व्यवहार उनके अपने नियमो के अनुसार होते। क्रमश , इन्ही शिल्पी-सघो मे पेशेवर जात-बिरादरियो का विकास हुआ।

शिल्पी-सघों के फलस्वरूप उत्पादन मे अभूतपूर्व वृद्धि हुई। देश के उच्च वर्गों की बढती हुई आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए, भिन्न-भिन्न नगरो मे बड़े-बडे व्यवसाय केन्द्र खुले। वस्त्रोद्योग का खूब विकास हुआ। रेशमी, ऊनी वस्त्र भी बनाये जाते। सोना-चांदी, हस्तिदन्त सम्बन्धी कला-कारीगरी का भी उत्कर्ष हुआ। जहाज-निर्माण के उद्योग का भी विकास हुआ।

वैश्य वर्ग

वैश्य वर्ग अब धनिक हो उठा। वह 'श्रेष्ठिन' कहलाने लगा। सास्कृतिक प्रभाव भी उसने ग्रहण किया। विभिन्न नगरो मे वे शक्तिशाली हो उठे, राजाओ पर भी उनका प्रभाव रहा। अब इस वर्ग के पात्र आख्यानो, कथाओ मे भी प्रवेश कर गये। ये साहसी थे। विदेशो मे जाते थे। अनेक विदेशी नगरो मे उनके मुहल्ले थे। जल-मार्ग तथा स्थल-मार्ग द्वारा विदेशी व्यापार होता। ईरान, यूनान, मिस्र और रोम, तथा पूर्व मे चीन, तथा आज के यवद्वीप (जावा), स्वर्णभूमि (ब्रह्मदेश) आदि देशो से व्यापार करते। अन्तर्देशीय व्यापार भी बढा-चढा था।

स्त्रियाँ

सामन्त सभ्यता के अभ्युदय काल मे ही, नारी की दशा गिरने लगी। स्त्री, अब पति की सम्पत्ति समझी जाने लगी। दहेज प्रथा (आसुर विवाह के अन्तर्गत) जारी हो गयी। साथ ही विवाह के लिए नारियो के विक्रय और क्रय के उदाहरण सामने आये।

फिर भी, प्राचीन परम्पराओ के प्रति अभी भक्तिभाव था, उसके कारण नारी जाति को कुछ स्वतन्त्रता भी थी।

अस्पृश्यता

अस्पृश्यता जोरो से शुरू हो गयी थी। अस्पृश्य बस्ती के बाहर रहते। उनकी छाया देह पर गिरने पर स्नान आवश्यक हो गया था। प्रात काल किसी भी शूद्र का दर्शन पाप माना जाता।

दास-प्रथा

मेगास्थनीज को दास-प्रथा दिखायी ही नही दी। वस्तुत , वह खूब प्रचलित थी। दासो के साथ, मानवोचित व्यवहार होता। दास, पैसा चुकाकर मुक्त हो सकते थे, स्वामी के कार्य से छुट्टी होने पर, वे अपना खुद का धन्धा भी कर सकते थे।

मौर्य शासन की देन

मौर्यो ने अखिल भारतीय प्रशासन-यन्त्र तैयार किया। यह उनकी बहुत बडी देन थी। इससे राज-कर्मचारियो का प्रशिक्षित और अनुभवी वर्ग निकल आया। राज-कर्मचारियो को समय पर वेतन दिया जाता।

खेती-वाणिज्य

मौर्य राजाओ के राज-नियम कृपकों के अनुकूल थे। राजा सिंचाई की व्यवस्था के लिए, तालाबो, कुओ और मकानो की मरम्मत के लिए, किसानो को, राजस्व कर मे तीन से पांच वर्षों तक की छूट देता। मौर्य राजा शिल्पी-सघो-को भी प्रोत्साहन देते। किन्तु, व्यापारी वर्गों के अवैध कार्यों की रोक-थाम करते। कारीगरो को अच्छी आय होने लगी थी। वैश्य वर्ग भी मालदार बन गया था। सामान्य जनता को यह अनुभव होने लगा था कि वह नये युग मे प्रवेश कर रही है।

मौर्य युग मे यह भावना कर ली गयी थी कि राजा या तो ईश्वर का प्रतिनिधि है या ईश्वर का अश है। अशोक अपने को 'देवानाम् प्रिय' कहलाता ही था।

कला

इस युग मे कला तथा शिल्प की विशेप उन्नति हुई। भवन-निर्माण, गुफा-मन्दिर-निर्माण, मूर्ति कला, स्तम्भ-निर्माण, स्तूप-निर्माण ने खूब उन्नति की।

शैल-मालाओ को काट-काटकर गुफा-मन्दिर बनाये गये—इन गुफा मन्दिरो मे तपस्वी जन तपस्या करते। अशोक ने आजीवक सम्प्रदायवालो के लिए उडीसा के हाथीगुम्फा मे इसी प्रकार एक गुफा-मन्दिर तैयार करवाया था। मौर्य स्तम्भ चुनार के पत्थर के बने हुए है। ये पत्थर लगभग गुलाबी-मोतिया हैं। उन पर चिकनी दमक्ती पॉलिश मिलती है। पत्थर पर मोती-जैसी आब है। सारनाथ, प्रयाग, कोशाबी और सकिसा (सब उत्तर प्रदेश मे हैं) मे ये खण्डित रूप म प्राप्त होते है। इन स्तम्भो के शीर्ष स्थलो पर अनेक पशुओ की मूर्तियाँ हैं जो बहुत ही सुन्दर हैं।

सारनाथ तथा लौरिया नन्दनगढ मे स्तम्भ-शीर्ष पर सिंहाकृतियाँ हैं। परन्तु, इलाहाबाद और रामपुरवा के स्तम्भो पर बैलो की आकृतियाँ हैं।

बताया जाता है कि अशोक ने भारत-भर मे चौरासी हजार स्तूप बनवाये थे। सम्भवत, अब तक वे नष्ट हो गये और उनमे से कुछ ही बचे हैं—जिनमे सांची का स्तूप बहुत ही सुन्दर है। अशोक की मृत्यु के सात सौ वर्ष बाद, चीनी यात्री फाहियान ने इन स्तूपो मे से कइयो को अपनी आँखो से देखा था। वह उनकी कला को देख स्तब्ध और मुग्ध हो उठा था। उसने कन्नौज, अयोध्या, मथुरा, प्रयाग, कौशाम्वी, श्रावस्ती, बनारस, वैशाली और गया तथा अन्य स्थानो के स्तूपो को देखा था। उसने तक्षशिला मे भी एक विशाल स्तूप के दर्शन किये थे।

स्तूप गोलाकार होते हैं, वे दूर से गोल पहाडीनुमा दिखायी देते हैं। वे ईंट के बने होते हैं। ऊपर से मिट्टी का गहरा पलिस्तर होता है। उसकी प्रदक्षिणा के लिए गोलाकार मार्ग भी होता है। स्तूप के भीतर, मध्य मे, तथागत के अवशिष्ट चिह्न रखे जाते हैं।

मौर्य कला मे ईरानी तथा यूनानी आदर्शों का प्रभाव है। साथ ही, वह केवल एक व्यक्ति के उद्देश्यो की पूर्ति के लिए निर्मित हुई है। उसमे हमे सामाजिक प्रवृत्तियो अथवा समाज की इच्छाओं की झलक नही मिलती।

धार्मिक अवस्था

अशोक के राजत्व काल मे बौद्ध धर्म का प्रसार और उत्कर्ष हुआ। किन्तु साथ-ही साथ, उनके विभिन्न सम्प्रदायो मे दार्शनिक मतभेद उभरकर सामने आ गये। विद्वान लोग बौद्धो के मूल ग्रन्थ 'त्रिपिटक' का अध्ययन मनन करते हुए, अनेक मतान्तरो को सामने ले आये। कुछ लोग भगवान बुद्ध की मूर्ति की उपासना करना चाहते थे—जिससे कि साधारण जन, हृदय के भक्ति-भाव को, बुद्ध के चरणो मे समर्पित कर सके और उनके जीवन उदाहरण को ध्यान मे रखकर अपना जीवन पवित्र तथा सदाचारपूर्ण बना सके। ये नये लोग महासाधिक कहलाये। पुराने स्थविर कहे जाते। स्थविर बुद्ध के मूल उपदेशो से आगे बढना नही चाहते थे। फलत दोनो के बीच खूब विवाद होता रहता।

ब्राह्मण धर्म

यद्यपि मौर्य युग मे बौद्धो का उत्कर्ष हुआ, किन्तु ब्राह्मण वृन्द भी प्रभावशाली था। वह राजनीति म भी दिलचस्पी लेने लगा था। बौद्ध साधु स्वय राजनीति से दूर थे, किन्तु ब्राह्मण पण्डितो का अनुराग समाज-सचालन तथा सामाजिक अनुशासन जैसे विषयो पर स्थिर हो गया। उन्होने इस काल म धर्मशास्त्र का विकास किया।

धर्मशास्त्र

उत्तर-वैदिक काल के अन्त मे, समाज का खूब विस्तार हो गया। इसलिए, उसके लिए नियम-उपनियम तैयार करना बहुत आवश्यक था, जिससे समाज के धर्म कर्म और आचार-विचार ठीक ढग से चल सकें। धर्मशास्त्र के तीन भाग हैं—गृह्य-सूत्र, श्रौत सूत्र और धर्म सूत्र। गृह्य सूत्र का सम्बन्ध पारिवारिक समारोहो तथा अनुष्ठानो से है, श्रौत-सूत्रो का सम्बन्ध वैदिक यज्ञो की धार्मिक विधियो से, और धर्म सूत्र का सम्बन्ध समाज के कानून से है। धर्म सूत्रो म सर्वाधिक प्रसिद्ध मनु-स्मृति है। वह हिन्दुओ का कानून है। मनु हिन्दुओ का सबसे बडा धर्मशास्त्री था। बौधायन, (आपस्तम्ब), वशिष्ठ और गौतम उल्लेखनीय धर्मशास्त्री हैं।

सूत्र-ग्रन्थ

सूत्र असल मे सार वाक्य हैं—जिनके अक्षर विशेष बातो के द्योतक होते है।

पाणिनि

इस काल मे तक्षशिला मे एक महापण्डित पाणिनि का उदय हुआ। उसने 'अष्टाध्यायी' नामक सस्कृत भाषा का व्याकरण लिखा, उसके व्याकरण मे भाषा-शास्त्र के विषयो का भी समावेश था। अष्टाध्यायी सूत्र-पद्धति पर लिखी गयी।

शुंग-सातवाहन काल

महान सक्रमण युग

ईसा पूर्व दूसरी सदी के आरम्भ से ईसा पश्चात् तीसरी सदी के अन्त तक की पाँच शताब्दियाँ राजनैतिक अस्थिरता से पूर्ण हैं। एक ओर, किसी अखिल भारतीय राजसत्ता का विकास नही हुआ, दूसरी ओर, बहुतेरी विदेशी जातियाँ एक-के-बाद-एक भारत को वशीभूत करने का प्रयत्न करने लगी।

फिर भी, यह युग भारत के श्रेष्ठतम काल-खण्डो मे से है। भारत की सास्कृतिक प्रतिभा ने विदेशी आक्रमणकारी जातियो को अपने मे ऐसा खपा लिया कि आगे वे इतिहास के पन्ने से ही उड गयी।

इसी काल में ब्राह्मण धर्म ने देश-कालानुसार अपने को परिवर्तित करके फिर से प्रभुत्व स्थापित कर लिया। साथ ही, बौद्ध धर्म ने उत्कर्ष और विकास के नये शिखर प्राप्त किये। भारत ने एक-से-एक मेधावी पुरुष उत्पन्न किये, और ज्ञान के क्षेत्र में अभूतपूर्व सफलताएँ प्राप्त की।

महान संक्रमण काल

(शुग-सातवाहन युग)

अशोक की मृत्यु के लगभग तीस वर्ष पश्चात् ही उत्तर-पश्चिमी सीमान्त पर विदेशी आक्रमण शुरू हो गये थे। लगभग पाँच सौ वर्षों तक, भारत मे, इन आक्रमणो के फलस्वरूप, उथल-पुथल होती रही।

यूनानी हमले

चन्द्रगुप्त मौर्य के काल मे, उत्तर-पश्चिम सीमान्त के उस पार, सेल्यूकस निकाटॉर का राज्य था। इस यूनानी राजा की मृत्यु के उपरान्त, वह साम्राज्य अनेक भागो मे विभक्त हो गया। अशोक की मृत्यु के लगभग 30 वर्ष बाद ही, एन्टीओकस नामक एक यूनानी राजा ने उत्तर-पश्चिमी सीमान्त पर चढाई करके उसका कुछ हिस्सा अपने कब्जे मे कर लिया था।

एन्टीओकस के बाद, बैक्ट्रिया (बाल्ख) के राजा डिमिट्रिअस ने भारत पर चढाई की। किन्तु, काबुल का यूनानी राजा मिनैण्डर अधिक प्रसिद्ध हुआ। एक तो इसलिए कि वह ज्यादा खूँखार था, दूसरे यह कि उसने बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया था।

मिलिन्द

मिनैण्डर ने मथुरा, साकेत और पाटलिपुत्र पर हमला किया। मगध के सम्राट पुष्यमित्र ने उसे पाटलिपुत्र से मार भगाया। फिर भी उत्तर-पश्चिमी सीमान्त (अफगानिस्तान-बलूचिस्तान) के अतिरिक्त पजाब, सिन्धु और सौराष्ट्र मिनैण्डर के

कब्जे मे ही रहे।

प्रसिद्ध बौद्ध पण्डित नागसेन से वह बहुत प्रभावित हुआ। मिलिन्द-पन्हा' (मिलिन्द-प्रश्न) नामक ग्रन्थ मे, हमे नागसेन और मिलिन्द का वार्तालाप मिलता है। बौद्ध धर्म मान लेने पर मिलिन्द की कीर्ति दूर-दूर तक फैली।

पार्थियन या पल्लव

ईरान मे खुरासान नामक एक प्रान्त है। उसे पहले पार्थिया कहते थे। पार्थिया के राजा मिथ्राडेटीस ने ई पू 138 मे अर्थात् पुष्यमित्र के अनन्तर पजाब पर हमला किया था। पार्थियन राज्य पजाब पर कई दिनो तक रहा किन्तु शको या सिथियन लोगो ने आकर उसे नष्ट कर दिया।

शक

शक मध्य एशिया से आकर खुरासान (सिस्तान) मे आकर बसे। वे यू-ची नामक जाति के द्वारा भगाये गये थे। उन्होंने ई पू 135 के लगभग भारत पर हमले शुरू कर दिये।

शको ने पजाब काश्मीर और सिन्ध पर हाथ साफ किया। यहाँ तक कि काठियावाड और गुजरात को भी अपने कब्जे मे ले लिया। अब उन्होंने मालवा और राजस्थान को भी आतकित और त्रस्त करना आरम्भ किया। उन्होंने अपने प्रान्तो पर सैनिक प्रान्त-पति नियुक्त किये, जिन्हे व क्षत्रप कहते थे। ईसा के 90 या 120 साल के बाद आन्ध्र के सातवाहन नृपति गौतमीपुत्र शातकर्णि आदि के हाथो उनकी बहुत क्षति हुई। उधर, पजाब की आर्य जातियाँ उनसे मौके-बे-मौके बदला निकाल लेती थी। शको म नहपान क्षहराट नामक एक प्रसिद्ध क्षत्रप हुआ, जिसकी बडी धाक थी। उनका दूसरा क्षत्रप रुद्रदामन था। इसी रुद्रदामन ने आन्ध्र के सातवाहन राजा वासिष्ठी-पुत्र पुलुमाया को पराजित किया और उससे पश्चिम के बहुत-स प्रदेश छीन लिये। गुप्त वश के राजाओ न उनसे लोहा लिया। 409 ई मे मगध के गुप्त वश के सस्थापक चन्द्रगुप्त के हाथो शक क्षत्रप रुद्रसिंह की पूर्ण पराजय हुई। फिर भी, उसके बाद के सम्राट स्कन्दगुप्त को भी उनसे मुठभेड करनी पडी। धीरे धीरे वे भारतीय जनता म इतने एकीभूत हो गये कि उनका स्वतन्त्र अस्तित्व कायम नही रहा।

यू-ची

जिस यू ची जाति ने शक जाति को उनके मूल वास-स्थान सर दरिया आमू दरिया के क्षेत्र मे से मार भगाया था उसी की एक शाखा कुषाण जाति उत्तर-पश्चिम सीमान्त मे बहुत शक्तिशाली हो गयी। 120 ई म, उन्ही मे के एक प्रतिभाशाली व्यक्ति कनिष्क ने राज्य भार सँभाला।

कनिष्क

भारतीय इतिहास म कनिष्क का बहुत नाम है। वह बहुत प्रतिभाशाली, महत्वा-

पर बैठते ही, *पुष्यमित्र ने यूनानियों को मार भगाने की तैयारी की*, और वह खुद पंजाब तक उन्हें खदेड़ता हुआ गया। इस कार्य में उसको अपने पुत्र अग्निमित्र द्वारा, जो मध्यभारत के विदिशा में मगध का राज प्रतिनिधि था, विशेष सहायता मिली। पुष्यमित्र ने, यूनानियों के पराजय के उपरान्त, अश्वमेध यज्ञ किया, जिसमें भारत के सुविख्यात वैयाकरण पतंजलि भी उपस्थित थे।

[illegible]

मथुरा तथा दक्षिण की ओर नर्मदा तट का पूरा प्रदेश पाया। यह अग्निमित्र, भारत के सुप्रसिद्ध कवि कालिदास के नाटक 'मालविकाग्निमित्र' का नायक है। मालूम होता है यह बहुत विलासी था। उसकी मृत्यु के बाद कई नरेश गद्दी पर बैठे। शुंग वंश के अन्तिम राजा देवभूमि को उसके ब्राह्मण मन्त्री ने मार डाला। इस प्रकार मगध के सिंहासन पर कण्व वंश स्थापित हुआ। इस वंश के राजा न विशेष कार्य-दक्ष, न पराक्रमी, न प्रतिभावान थे। उनके जमाने में मगध राज्य सिकुड़कर छोटा हो गया। उसके अन्तिम राजा सुशर्मा को आन्ध्र के एक राजा ने लड़ाई में मार गिराया, और मगध को अपने राज्य में शामिल कर लिया। इस प्रकार, लगभग सन् 700 ई. पू. में स्थापित इस मगध साम्राज्य का लोप हो गया।

आन्ध्र वंश

ई. पू. सन् 227 में, जिस समय मगध साम्राज्य का विस्तार बढ़ रहा था, दक्षिण में अनेक उन्नतिशील राज्य थे, किन्तु उनका पूरा इतिहास हमें ज्ञात नहीं है। महत्त्व की बात यह है कि उस समय सातवाहनों का एक प्रतापशाली राज्य था। ई. पू. 227 में प्रतिष्ठान नगर में यह स्थापित हुआ होगा। पुराणों ने सातवाहनों के सम्बन्ध में बहुत-कुछ लिखा है। उनके आधार पर, तथा नासिक और कन्हेरी आदि स्थानों में मिलनेवाले शिलालेखों तथा सिक्कों के आधार पर, सातवाहनों का इतिहास खड़ा किया जाता है। हम इतना-भर जानते हैं कि ई. पू. 227 में सिमुक नामक एक व्यक्ति ने आन्ध्र में अपना राज्य स्थापित किया। जब इस राज्य का विस्तार बहुत हो गया तो पूर्व में धान्यकट (धारणी कोट) नामक स्थान पर एक नयी राजधानी बनाई गयी, जबकि पुरानी राजधानी प्रतिष्ठान रही आयी।

इस वंश के तीन नाम मिलते हैं—सातवाहन, शालिवाहन तथा शातकर्णि। ये ब्राह्मण धर्म के अनुयायी थे। इन्होंने उत्तर भारत से घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित करके, वहाँ के सांस्कृतिक प्रभावों को दक्षिण में आने का अवसर दिया। ये राजा ब्राह्मणों के बड़े प्रिय-पात्र थे, वैसे ही पराक्रमी भी थे। पुराणों में इनका वर्णन प्रशंसायुक्त हुआ है।

सिमुक के अनन्तर शातकर्णि प्रथम प्रतिष्ठान की गद्दी पर बैठा। इसके जमाने में सातवाहन राज्य बंगाल की खाड़ी तथा अरब सागर तक पहुँच गया। उसके बाद ई. पू. 28 में सातवाहनों में से किसी ने मगध राज्य अपने अधीन कर लिया।

सातवाहनो ने अब उत्तर भारत की राजनीति मे हस्तक्षेप आरम्भ कर दिया। उन दिनों काठियावाड तथा सौराष्ट्र, मालवा और राजस्थान मे शक राज्य प्रबल होते जा रहे थे। ई. 90-120 तक गौतमीपुत्र शातकर्णि नामक एक प्रतापी राजा हुआ। उसने पार्थिव-पहलव राजाओ के अलावा, यवनो और शको को नीचा दिखाया। उसने मालवा, विदर्भ और नासिक से लेकर पूना तक का प्रदेश जीत लिया। इसके पूर्व, सातवाहनो की सत्ता को शक क्षत्रपो ने, विशेषकर नहपण क्षहराट ने, बडी हानि पहुँचाई थी। शातकर्णि ने इन क्षत्रपो को कुचल दिया। गौतमीपुत्र शातकर्णि का राज्य कृष्णा नदी से लेकर मालवा और सौराष्ट्र तक तथा विदर्भ से लेकर कोकण तक फैला हुआ था। कहते हैं कि गौतमीपुत्र बहुत सुन्दर पुरुष था। उसके बाद वासिष्ठीपुत्र पुलुमायी के जमाने मे, पश्चिमी राजस्थान और मालवा को शको ने छीन लिया। पुलुमायी के उत्तराधिकारी श्रीयज्ञ ने खोया हुआ इलाका फिर वापिस लेने की कोशिश की। इसी सातवाहन वश मे हाल नामक एक राजा हुआ। महाराष्ट्री प्राकृत मे 'गाथा सप्तशती' नामक प्रेम-काव्य का रचयिता हाल ही है।

सातवाहनो का राज्य चार सदियो से ज्यादा वक्त तक रहा। वह ई 230-233 के लगभग नष्ट हो गया। उसका महत्त्व हमारे लिए तीन बातो के कारण है, (1) शको से युद्ध और परिणामत उनकी क्षति, (2) दक्षिण भारत मे उत्तर भारत की आर्य सस्कृति को प्रोत्साहन दिया जाना, (3) ब्राह्मण धर्म को प्रोत्साहन।

अशोक की मृत्यु के बाद की इन पाँच सदियो मे जो सत्ताएँ उदित और अस्त हुई उनका उल्लेख ऊपर किया गया। दक्षिण भारत, मध्य भारत तथा विदर्भ मे सातवाहन राज्य, पूर्व मे मगध राज्य, तथा उत्तर-पश्चिम तथा पश्चिम मे यवनो, शको और कुषाणों के राज्य। यही उस समय की राजनैतिक स्थिति थी।

सामाजिक महत्त्व

भारतीय इतिहास मे इन राजवशो का विशेष राजनैतिक महत्त्व नही है। किन्तु, उन्होंने अनेक सामाजिक,सास्कृतिक प्रक्रियाओ का—परिवर्तन की धाराओ का—सूत्रपात किया। इसलिए, उनका सामाजिक-सास्कृतिक महत्त्व भुलाया नही जा सकता। हम उस युग की विशेषताओ को निम्न प्रकार से व्यक्त कर सकते हैं।

(1) उस अराजकता की परिस्थिति मे हुआ यह कि बहुत-से पुराने गण-राज्यो ने फिर से अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त कर ली। लिच्छवि, शिव, कुनिन्द, आर्जुनायन, यौधेय और मालव आदि गण-राज्य न केवल स्वतन्त्र हुए, वरन शको का सहार करने मे इन्होने अद्भुत पराक्रम प्रदर्शित किया, तत्कालीन भारतीय राजनीति मे ये गणराज्य महत्त्वपूर्ण कार्य कर रहे थे। लिच्छवियो को छोडकर, शेष सभी गण-राज्य पश्चिमो भारत म थे, जहाँ एक-के-बाद एक विदेशी आक्रान्ता अपना आधिपत्य जमाते जा रहे थे।(2) इस युग म, शको, यवनो, पार्थिव-पहलवो तथा कुषाणो आदि का सम्बन्ध, भारत के बाहर के प्रदेशो से होने के फलस्वरूप, भारतीय धर्म और सस्कृति विदेशो मे फैल गयी। कनिष्क के काल मे तो बौद्ध धर्म के द्वारा वह चीन तक जा पहुँची। चीन के अतिरिक्त, वह मध्य तथा पश्चिमी एशिया मे भी फैलने लगी। भारतीयो के नय-नये उपनिवेश पूर्वी तथा दक्षिण पूर्वी

एशिया मे स्थापित होने लगे। शैव तथा वैष्णव धर्म का पुनरुत्थान होकर, वे सम्प्रदाय भी दक्षिण-पूर्व एशिया मे फैलने लगे। भारत विश्व की अपारता से परिचित हो गया और वह अन्य भूखण्डो मे अपनी सस्कृति और धर्म का प्रचार करने लगा। (3) प्राचीन वैदिक धर्म का लोप होकर, उसके स्थान पर नये पौराणिक धर्म का अभ्युत्थान पहले ही से शुरू हो गया था। इसने अनेक विदेशी लोगो को शैव या वैष्णव बनाना शुरू किया। (4) किन्तु सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण बात—सामाजिक दृष्टि मे—यह है कि यवन, पार्थिव-पह्लव, कुषाण और शक जातियाँ पूर्णत भारतीय बन गयी। उन्होने बौद्ध या शैव अथवा वैष्णव धर्म अगीकार कर लिया। सस्कृत के अतिरिक्त उन्होने प्राकृत भाषाओ को भी प्रश्रय दिया।

ब्राह्मण साहित्य

आज महाभारत और रामायण जिस रूप मे हमे प्राप्त होते हैं, वह रूप ठीक इन्ही दिनो बना। दोनो महाकाव्य इस युग के पहले भी थे, उनमे निरन्तर वृद्धि होती
हुई। फलत.
हैं। नन्द-
युग काल

मे महर्षि पतजलि ने उसकी व्याख्या और विश्लेपण करते हुए 'महाभाष्य' नामक अपना एक प्रसिद्ध ग्रन्थ लिखा।

कण्व वश के समय सस्कृत का सुप्रसिद्ध नाटककार भास हुआ। वह मगध का रहनेवाला था। साहित्य-पण्डित, भास को कालिदास और भवभूति की श्रेणी मे रखते हैं। उसका लिखा 'प्रतिज्ञा यौगन्धरायण' नामक नाटक बहुत विख्यात है।

आचार्य अश्वघोष कवि भी था और नाटककार भी, बौद्ध धर्म का विद्वान भी। वह महान् कुषाण सम्राट कनिष्क का समकालीन था। उसने 'बुद्ध चरितम्' नामक महाकाव्य तथा अनेक नाटक लिखे। उसके साहित्य का अनुवाद चीनी और तिब्बती भाषाओ मे हुआ, यहाँ तक कि सिङ्क्याङ् की प्राचीन तोखारी भाषा मे भी। उसके कई मूल सस्कृत ग्रन्थो का पता नही है। मध्य तथा पूर्वी एशिया की भाषाओ मे उसकी कृतियो के अनुवादो की खण्डित पोथियाँ-भर मिलती हैं। भारत मे बौद्ध धर्म के क्रमश. ह्रास और ब्राह्मण धर्म के क्रमशः उत्थान के परिणामस्वरूप, भारत मे अश्वघोष उतनी कीर्ति प्राप्त नही कर सका, जितनी कि मध्य तथा पूर्वी एशिया मे।

'मृच्छकटिक' नामक सुप्रसिद्ध सस्कृत नाटक भी इसी समय रचा गया। उसका लेखक शूद्रक है। 'नाट्यशास्त्र' नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ के लेखक भरत मुनि भी इसी काल मे हुए। भरत मुनि का यह 'नाट्य शास्त्र' केवल नाट्य-कला के मूलभूत सिद्धान्तो का ही ग्रन्थ नही, वरन् साहित्य के मूलभूत तत्त्वो का विश्लेपण करनेवाला महान् ग्रन्थ है। भरत मुनि के इस ग्रन्थ के नाम से यह सूचित होता है कि उन दिनो के साहित्य मे, नाटक का प्रधान स्थान था।

सातवाहन युग के राजाओ ने अपने यहाँ प्राकृत को आश्रय दिया था। गुणाढ्य नामक एक श्रेष्ठ कवि ने प्राकृत मे सुन्दर साहित्य प्रसूत किया। सातवाहनवशीय राजा हाल स्वय एक उत्तम लेखक था।

बौद्धधर्म का प्रसार

उत्तर पूर्व भारत तथा दक्षिण भारत म ब्राह्मण धर्म प्रधान होकर बौद्ध धर्म कमजोर होता जा रहा था।

किन्तु, उत्तर-पश्चिम मे उसका तीव्रतर विकास हो रहा था। वहाँ उसमे गहरी प्राणशक्ति थी। उस क्षेत्र मे बौद्ध भिक्षु प्राचीन आदर्शो स अनुप्राणित थे। उनके अन्त करण मे उन आदर्शों न एक उत्साह भर दिया था। उनका जीवन पवित्र था। वे उत्तर पश्चिम के पहाडो और दर्रो को पार कर आगे बढते जा रहे थे। मानव कल्याण की उनकी भावना, उनका त्याग, उनका तप वर्वर से बर्बर जाति को भी प्रभावित करता था। उत्तर-पश्चिमी तथा मध्य एशिया की शक, यू-ची तथा हूण आदि जातियो को वे बौद्ध धर्म म दीक्षित करत जा रह थे। उन्ही क उत्साह, परिश्रम और साहस का यह फल है कि बौद्ध धर्म मध्य एशिया से चीन तक पहुँचा।

उसी प्रकार, भारतीय दक्षिण कोण के बौद्ध भिक्षु भी यही मार्ग अगीकार कर चुके थे। लका, बर्मा, तथा दक्षिण-पूर्वी एशिया मे वे एक नयी सस्कृति लेकर पहुँचे। आज यदि विएतनाम और लाओस, काम्बोडिया, थाईलैण्ड और बर्मा मे बौद्ध धर्म है तो यह इन्हो के सतत प्रयत्नो का फल है।

बौद्ध साहित्य

यह स्वाभाविक ही है कि बौद्ध धर्म के इस प्रसार काल म, बौद्ध धर्म के क्षेत्र मे भी महापुरुष उत्पन्न हो। कुषाण सम्राट् कनिष्क ने इसी समय बौद्ध धर्म के महा-पण्डितों का एक सम्मेलन भी बुलवाया था। वह 'तृतीय सगीति' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। बौद्ध धर्म के प्रसिद्ध विद्वान का उल्लेख हम पहले ही कर चुके हैं। इसी समय बौद्धो के प्रसिद्ध पवित्र ग्रन्थ 'त्रिपिटक' पर महाविभाषा' नामक एक नये भाष्य की रचना हुई। वसुमित्र भी बौद्ध धर्म के प्रसिद्ध आचार्य थे।

नागार्जुन का नाम भारत के इतिहास म अमर रहेगा। वे अपने युग के बहुत बडे दार्शनिक थे। वे महायान सम्प्रदाय के अनुयायी थे। उनके दर्शन की तुलना, बौद्ध साहित्य के पश्चिमी (यूरोपीय) विद्वान हेगेल से करते हैं। हेगेल जर्मनी का बहुत बडा दार्शनिक था, जिसका प्रभाव सदियो तक छाया रहा। नागार्जुन का शून्यवाद उसी प्रकार प्रभावशाली था। उनकी बौद्धिक सूक्ष्म दृष्टि अद्वितीय है। उन्हीं के बहुत से तर्कों को लेकर, आठवी ईसवी सदी म भारत क सुप्रसिद्ध दार्शनिक वेदान्त-मत प्रवर्तक शकराचार्य ने अपने अद्वैतवाद का विस्तार किया। इसीलिए, अपने विरोधियों द्वारा शकराचार्य प्रच्छन्न बौद्ध कहे गय। नागार्जुन ने महायान धर्म के अनेक सूत्रो की रचना की। उनम एक सृजनशील अन्वेषक की शोध-बुद्धि थी। नागार्जुन की प्रतिभा बहुमुखी थी। वे न केवल बौद्ध दार्शनिक थे, किन्तु रसायनविज्ञान, लौहशास्त्र तथा सिद्ध-रसायन के भी अन्वेषक थे। वे इन शास्त्रो के आचार्य थे। साथ ही वे एक उत्तम वैद्य और चिकित्सक थे। वैद्यकशास्त्र का प्रधान ग्रन्थ 'सुश्रुत' आज जिस रूप म मिलता है, वह रूप नागार्जुन का ही दिया हुआ है। बौद्ध पण्डित के रूप मे उन्होंने जिन ग्रन्थो का प्रणयन किया उनमे 'माध्यमिक सूत्र वृत्ति' विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

उस युग मे वैद्यकशास्त्र तथा ज्योतिषशास्त्र का भी खूब विकास हुआ। वैद्यकशास्त्र की 'चरकसहिता' का लेखक चरक कनिष्क के समय मे ही हुआ। उसी प्रकार ज्योतिषशास्त्र की प्रसिद्ध पुस्तक 'गर्गसहिता' भी उसी युग मे लिखी गयी।

जैन साहित्य

इस काल मे जैन साहित्य का भी खूब विकास हुआ। विशेषकर अध्ययन और विवेचन और सकलन का काम खूब चलता रहा।

वह महापुरुषो का, पराक्रमियो का, दार्शनिको का युग था, जिसने, बावजूद राजनैतिक अस्थिरता के, सभ्यता, साहित्य, सस्कृति मे अभूतपूर्व उन्नति की।

वास्तु और मूर्तिकला

गांधार शैली—उत्तर पश्चिम मे यवनो के उन दिनो विशाल राज्य थे। यवन मूर्ति निर्माण कला मे बहुत प्रवीण थे। जब वे बौद्ध हुए तो उन्होंने भगवान बुद्ध की मूर्तियाँ बनायीं। इन मूर्तियो पर यूनानियो की छाप है। यूनानी कलाकार शरीर की रूप-रचना पर बहुत ध्यान देते हैं। तब तक बौद्ध धर्म मे बुद्ध के अवतारो की धारणा उत्पन्न होकर, बोधि-सत्वो की पूजा और उपासना होती थी। इसलिए, मूर्तियो की आवश्यकता थी। यवनो ने जो मूर्तियाँ बनायी उनमे शरीर-सौन्दर्य का ... पुर (पेशावर) था। पेशावर

, जो सारे भारतवर्ष मे फैल

और दक्षिण मे आन्ध्र और

उनमे आध्यात्मिक भाव है।

बुद्ध के मुखमण्डल पर अनुपम तेज है। पेशावर के अनन्तर, मूर्ति कला का दूसरा बड़ा केन्द्र मथुरा बना। कुषाणो के क्षत्रपो की वह राजधानी थी। इसलिए, वहाँ गान्धार शैली की मूर्तियो का निर्माण होना स्वाभाविक ही था। आज वे मूर्तियाँ भारत के विभिन्न कलाभवनो (म्यूजियमो) की शोभा बढ़ा रही हैं।

गुफा मन्दिर

उस युग म पर्वत को भीतर से काटकर गुफाएँ बनायी जाती रही। मौर्य काल मे, उनमे विशेष कलात्मकता नही आ पायी थी। किन्तु, बाद की मानव-निर्मित गुफाओ को हम गुफा-मन्दिर या गुफा-प्रासाद भी कह सकते है। उडीसा और महाराष्ट्र के बहुत-स स्थानो पर गुफा-मन्दिर पाये जाते हैं। बाहर से पहाड़ मालूम होते हैं, अन्दर आने पर विशाल भवन के भवन दिखायी देते है। महाराष्ट्र के गुहा-मन्दिरों मे सर्वश्रेष्ठ है अजन्ता की गुहाएँ। ये गुहाएँ भीतर से बहुत भव्य हैं। उनकी भीतो पर, बुद्ध का जीवन रगो द्वारा अकित किया गया है। वे अभी भी ताज़े मालूम होते हैं। नासिक के गुहा-मन्दिर मे एक लेख है। कार्ला का गुहा-मन्दिर भी देखने योग्य ... राजाओ को ही है।

रवेल जैन था। वे

इस हाथीगुम्फा मे,

खारवेल का सुप्रसिद्ध शिलालेख पाया जाता है।

स्तूप इत्यादि

भरहुत का प्रसिद्ध स्तूप शुंग काल की कला का स्मारक है। इसके अतिरिक्त, तोरण, जंगले, मन्दिर इत्यादि भी बहुत बने। चित्रकला का उत्कर्ष भी खूब है, जिसका नमूना हमें अजन्ता की गुहाओं में देखने को मिलता है।

भारत का स्वर्णयुग

द्वितीय साम्राज्य की स्थापना

ईसा की चौथी और पाँचवीं शताब्दी में भारत देश की सर्वांगीण उन्नति हुई। दर्शन, साहित्य, विज्ञान ने नयी मंजिलें तै की। धार्मिक कलह का कहीं नाम भी नहीं था। देश का आर्थिक उत्कर्ष अपने चरम शिखर पर पहुँच रहा था। उस समय, समुद्रगुप्त तथा स्कन्दगुप्त जैसे प्रचण्ड पराक्रमी सम्राट् हुए। कालिदास जैसे महाकवि, आर्यभट्ट, ब्रह्मगुप्त, वराहमिहिर जैसे विज्ञानविद् तथा असंग, वसुबन्धु, दिङनाग, ईश्वरकृष्ण जैसे महान दार्शनिक हुए। यह युग साहसपूर्ण चिन्तन, साहसपूर्ण व्यापार, साहसपूर्ण कार्य-शक्ति, तथा कोमल भावपूर्ण कला का युग था।

द्वितीय साम्राज्य

ब्राह्मण धर्म के पुनरुत्थान की जो प्रक्रिया शुंग सातवाहन काल में शुरू हुई थी, उसे वाकाटकों ने, जो मालवा, विदर्भ और छत्तीसगढ के शासक थे, तथा नागवंशीय राजाओं ने जारी रखा। ये नागवंशीय राजा गंगा और घाघरा नदियों के बीच के प्रदेश में राज्य करते थे। वाकाटक नरेश ब्राह्मण वंश के थे। प्रतिष्ठान की सातवाहन सत्ता क्षीण होने पर, सन् 255 ई. में विन्ध्यशक्ति नामक एक पुरुष ने वाकाटक राज्य की स्थापना की थी। उसके पुत्र प्रवरसेन ने राज्य-विस्तार किया तथा उसे सूचित करने के लिए अश्वमेध यज्ञ किया। किन्तु, मगध के गुप्त वंश के उत्कर्ष के साथ, वाकाटकों की श्री लुप्त हो गयी।

गुप्तवंश

चन्द्रगुप्त प्रथम

उधर, जाने कैसे, मगध में एक नयी राज्य-शक्ति का उत्थान हुआ। हम नहीं

जानते कि गुप्त-वंश के संस्थापक चन्द्रगुप्त के पूर्वज कौन थे, क्या थे !! इतना-भर ज्ञात है कि मगध के एक वीरपुरुष चन्द्रगुप्त का सन् 320 में पाटलिपुत्र में राज्याभिषेक हुआ। उसने इतिहास-प्रसिद्ध लिच्छवि वंश की राजकुमारी कुमारदेवी से विवाह किया। चन्द्रगुप्त के अनन्तर, उसका पुत्र समुद्रगुप्त सिंहासन पर बैठा।

समुद्रगुप्त

समुद्रगुप्त ने पिता का राज्य दूर-दूर तक फैला दिया। इलाहाबाद में एक लौह स्तम्भ है, जिसमें उसकी ज्वलन्त महान पराक्रमों तथा सांस्कृतिक उपलब्धियों का विस्तृत वर्णन किया गया है। ईसवी सन् 335 के लगभग उसने शासन-सूत्र सँभाले, और, उसके तुरन्त बाद वह दिग्विजय के लिए निकल पड़ा। पहले वह पश्चिम की ओर बढ़ता गया। उसके तूफानी हमलों से एक के बाद एक अनेक राजा धराशायी होते गये। उसने ग्वालियर तक धावा मारा, पंजाब में करनाल के ज़िले उसके राज्य की सीमा बन गये।

उसके बाद मगध लौटते हुए, उसने दक्षिण की ओर कदम बढ़ाये। वह रायपुर-सम्बलपुर के मार्ग से दक्षिण की ओर बढ़ चला। बीच के बहुत-से जंगली और पहाड़ी क्षेत्रों के राज्यों को वह सर करता गया। गोदावरी तट के आसपास के नरेशों को जड़ से उखाड़कर, उसकी सेना कृष्णा नदी तक पहुँची। वहाँ से उसने दक्षिण के अन्य प्रदेशों पर धावे किये। पूरा दक्षिण उसके भय से काँप उठा। कन्याकुमारी और उसके आसपास का प्रदेश छोड़, शेष सब भाग उसके साम्राज्य का अंग बन गया।

वह 'प्राचीन भारत का नैपोलियन' कहा जाता है। पहाड़ों-जंगलों को पार करता हुआ, अनेक राज्यों का उन्मूलन करते हुए उसने 3000 मील की यात्रा की। इस युद्ध-यात्रा में एक बार भी उसकी हार नहीं हुई, एक बार भी उसके कदम पीछे नहीं हटे।

उसे नैपोलियन कहना सर्वथा उचित है, इसलिए कि नैपोलियन की भाँति ही वह रण-कुशल था। सेना का नेतृत्व वह स्वयं करता था। उसका युद्ध-संचालन अद्भुत था। वह युद्ध-विद्या में अपने ज़माने से आगे बढ़ा हुआ था। उसकी वीरता, पराक्रम, और युद्ध-कौशल को देखकर सुदूर पश्चिमी और सुदूर पूर्वी भारतीय प्रदेश घबरा गये। वहाँ के राजाओं ने, अपनी अधीनता सिद्ध करने के लिए, उसके दरबार में उपहार भेजे। उन्हें डर था कि यदि स्वेच्छा से हम उसके माण्डलिक नहीं हो जाते तो हमें मौत का सामना करना पड़ेगा, क्योंकि सम्राट् समुद्रगुप्त जितना उदार है, उतना ही कठोर भी है। जिन राजाओं ने उसके यहाँ उपहार भेजे, उनमें पश्चिमी भारत के शक तथा कुषाण शासक भी थे। गुप्त साम्राज्य की पश्चिमी सीमा पर रहनेवाले गण-राज्य, जैसे आर्जुनायन, यौधेय, प्रार्जुन, सनकानीक, मालव इत्यादि जातियों के अतिरिक्त, आसाम और दक्षिणी बंगाल के राज्य जैसे कामरूप, समतट इत्यादि और हिमालयीन क्षेत्र के नेपाल ने भी समुद्रगुप्त के सार्वभौम प्रभुत्व को स्वीकार कर लिया। ऐसी स्थिति में समुद्रगुप्त 'महाराजाधिराज' की पदवी धारण करे तो इसमें आश्चर्य ही क्या है !!

उसने अपने दिग्विजयत्व को सिद्ध करने के लिए अश्वमेध यज्ञ किया। हमें उसकी बहुत-सी सुन्दर मुद्राएँ प्राप्त होती हैं। उनमें उसकी प्रतिमाएँ अंकित हैं।

एक मे वह धनुष-बाण लिये हुए है। दूसरे मे उसके पैर सिंह की ग्रीवा पर हैं। तीसरे मे समुद्रगुप्त वीणा लिये तल्लीन बैठा है।

समुद्रगुप्त जितना बडा योद्धा था, उतना ही अधिक वह कला-निपुण था, शास्त्रों म पारगत था। सगीत, काव्य, उसे विशेष प्रिय थे। उसका शरीर हृष्ट-पुष्ट था, उसकी मुखाकृति सौम्य थी। वह ब्राह्मण मत का अनुयायी था, किन्तु बौद्धो के प्रति समान भाव रखता था। प्राचीन भारत के स्वर्णयुग का वह प्रवर्तक था।

शक सत्ता का अन्त

सन् 380 मे समुद्रगुप्त की मृत्यु होने पर, उसके पुत्र चन्द्रगुप्त द्वितीय ने सिंहासन ग्रहण किया। उसके राजत्वकाल मे, गुप्त साम्राज्य अपने उत्कर्ष और वैभव के चरम शिखर पर पहुँच गया। इस शासक ने पश्चिमी भारत के शक राज्यों पर आक्रमण कर दिया। उनको जड से उखाडकर उसने पश्चिमी समुद्र तट अपने हाथ मे ले लिया।

पश्चिमी समुद्र तट गुप्त साम्राज्य के लिए बहुत वरदान सिद्ध हुआ। वहाँ बडे-बडे बन्दरगाह थे, जैसे भृगुकच्छ, जो यूरोप तथा एशिया के देशो स व्यापार करते थे। इसीलिए, शक एक लम्बे समय तक वहाँ जमे रहे। पश्चिमी समुद्र तट पर अधिकार करके चन्द्रगुप्त द्वितीय ने अपने साम्राज्य के आर्थिक उत्कर्ष को और बढा दिया। गुप्त सम्राट् का वैभव जगमगा उठा। पश्चिमी भारत के समीप रहने के लिए, उसने एक और राजधानी स्थापित की। उज्जयिनी मगध साम्राज्य की दूसरी राजधानी हो गयी।

अब योरप के व्यापारियो का माल सारे भारत मे फैलने लगा। गुप्त सम्राट् के दरबार म योरोपीय विचार भी आये। शकों के अधीन जो सौराष्ट्र था, उसकी विजय के उपलक्ष्य मे, चन्द्रगुप्त द्वितीय ने सोने का सिक्का चलाया। अब उसने विक्रमादित्य की उपाधि धारण की। रघुवश और शाकुन्तल का रचयिता कवि कालिदास उसी की राजसभा मे था। प्रथम चीनी यात्री फाहियान इसी के दरबार में आया था। उसने तत्कालीन जन-जीवन का इन शब्दों मे वर्णन किया है—"जनता बहुसख्यक और सुखी है किसी को न्यायाधीशो के सामने नही जाना पडता, राजा अपने शासन मे किसी अपराधी को मृत्युदण्ड या अन्य किसी प्रकार का शारीरिक दण्ड नही देता। अपराधियों पर केवल जुर्माना किया जाता है। हर मुकदमे की वास्तविक स्थिति के अनुसार यह जुर्माना कम या ज्यादा होता है। कई बार राज-द्रोह का दुःसाहस करनेवालो का भी केवल दाहिना हाथ काट दिया जाता है। राजा के अगरक्षको और सभी सेवको को वेतन मिलता है।" फ़ाहियान ने प्रशासन की भी प्रशसा की है।

कुमारगुप्त

चन्द्रगुप्त द्वितीय के अनन्तर, उसका पुत्र कुमारगुप्त सम्राट् हुआ। उसने पिता के राज्य को बनाये रखा। उसने 414-15 ई से लेकर चालीस वर्ष तक शासन किया। उसके काल मे साम्राज्य मे शान्ति और सुरक्षा का वातावरण था; किन्तु, उसके राजत्वकाल के अन्तिम भाग मे अज्ञात शत्रुओं ने भारत पर हमले शुरू किये।

हूणों के आक्रमण

हूण मध्य एशिया की एक घुमक्कड़ जाति थी। वह अचानक चंचल हो उठी और दो दलों में विभाजित हो गयी। अश्वारोही हूणों का एक दल मारकाट मचाता हुआ, सभ्यताएँ और राज्य नष्ट-भ्रष्ट करता हुआ, पश्चिमी एशिया पार करके, यूरोप पर टूट पड़ा।

दूसरा अश्वारोही दल भारत के पश्चिमी भाग में घुस गया। मार-काट, तोड़-ताड़, आगजनी करते हुए वह जनता को त्रस्त करने लगा। हूण बहुत क्रूर और बर्बर जाति मानी गयी है। मगध सम्राट् कुमारगुप्त ने अपने युवराज स्कन्दगुप्त को हूणों की रोक थाम के लिए भेजा। हूणों पर निर्णायक विजय मिलने के पूर्व ही, कुमारगुप्त की मृत्यु हो गयी।

स्कन्दगुप्त

युवराज काल में ही स्कन्दगुप्त हूणों से युद्ध कर चुका था। सन् 456 में सम्राट् होने पर उसने शत्रु नाश का कार्य जारी रखा। वह बहुत कर्तव्य-परायण और पराक्रमी सम्राट् था। उसने हूणों से प्रतिरोध करने में अपनी सारी ताकत लगा दी। आखिर, जीत स्कन्दगुप्त की ही हुई। हूण भारत में अपना पैर न जमा सके। भारत की धाक उत्तर-पश्चिम के क्षेत्रों में भी फैल गयी। उसका सारा समय युद्ध में बीता। सेनाओं के संगठन पर अपार धन खर्च हुआ। फलत, चन्द्रगुप्त द्वितीय के काल में, सम्राट् के दरबार की जो शान थी वह जाती रही। स्कन्दगुप्त ने सन् 468 तक शासन किया।

उसकी मृत्यु के 50 वर्ष बाद, गुप्त साम्राज्य का नाश हो गया। ऐसा क्यों हुआ !! इसका एक कारण तो यह था कि हूणों के आक्रमण के कारण, साम्राज्य तथा उसके समर्थक सामन्तों को बहुत त्याग करना पड़ा था। सामन्त इतने अधिक त्याग के लिए तैयार न थे। फलत, असन्तुष्ट सामन्तों के षड्यन्त्र और साथ ही राजद्रोह ने गुप्त साम्राज्य को चौपट कर दिया।

साम्राज्य बँट गया

गुप्त साम्राज्य चौपट भी हुआ तो अपने ढंग से हुआ। शुरू के पचास सालों में तो हमें पुरुगुप्त इत्यादि सम्राट् दिखायी देते हैं। बाद में, इस साम्राज्य के दो भाग हो गये। एक मगध, दूसरा मालव। मध्यप्रदेश के वाकाटक राजाओं ने अपनी स्वतन्त्रता पुन स्थापित कर ली। इस प्रकार, अन्य सामन्त भी अलग होने की तैयारी कर रहे थे।

शत्रुओं की बाढ़

स्कन्दगुप्त की उदार नीति, बुद्धिमत्ता के फलस्वरूप, सामन्तगण किसी-न-किसी तरह एक साथ जमे थे। स्कन्दगुप्त के प्रचण्ड पराक्रम के फलस्वरूप, हूणों के आक्रमणों की रोक-थाम भी हो चुकी थी। भारत के सामन्तों ने अब सन्तोष की साँस ली। वे हूणों से फुरसत पाकर आपसी झगड़ों में अपनी वीरता बताने लगे।

उधर, हूण भारत के सम्बन्ध में बहुत कुछ जान चुके थे। भारत की ओर से मुंह फेरकर उन्होंने सन् 484 के लगभग ईरान को तहस-नहस कर दिया। वहां अपना साम्राज्य स्थापित किया और बल्ख को अपनी राजधानी बनाया। उसके लगभग 18 साल बाद, उन्होंने भारत पर दुबारा हमले शुरू किये। सन् 502 में अपने सरदार तोरमाण के नेतृत्व में उन्होंने पश्चिमी भारत पर धावा मारा और ऊधम करते हुए उन्होंने मालव तक को अपने कब्जे में कर लिया। सन् 502 में, तोरमाण की मृत्यु होने पर, मिहिरगुल उनका नेता हो गया।

यशोधर्मन

मिहिरगुल खूंखार आदमी था। देश में उसके अत्याचार बहुत बढ गये। उस समय भारत में भी यशोधर्मन नामक एक नेता पैदा हुआ, जिसने हूणों को मालवे से निकाल फेंका। मिहिरगुल मालवे से भागा। धोखा देकर उसने काश्मीर पर कब्जा जमा लिया।

यशोधर्मन और नरसिंहगुप्त

यशोधर्मन कौन था? क्या वह मालवे का राजा था? मध्यप्रदेश के पश्चिमोत्तर सीमा पर मन्दसौर नामक एक नगर में यशोधर्मन का एक स्तम्भ है। उसमें बताया गया है कि वह बहुत पराक्रमी राजा था, जिसका राज्य दूर-दूर तक फैला हुआ था। लेकिन, उसके सिक्के वगैरह कुछ नहीं मिलते। गुप्तकुल के ह्रासकाल में एक दूसरा चीनी यात्री हुएनत्सांग भारत आया था। उसने लिखा है कि गुप्तवंश के नरसिंह-गुप्त बालादित्य ने हूणों को मार भगाया था। ऐसी स्थिति में यही कहा जा सकता है सम्भवत, दोनों ही ने मिहिरगुल को, अपनी सम्मिलित शक्ति द्वारा, मालवे से हटा दिया था।

गुप्त साम्राज्य सन् 320 में स्थापित होकर सन् 488 में छिन्न-भिन्न हो गया। किन्तु इस काल में ही, उसने जो अभूतपूर्व सफलताएँ प्राप्त की उसका हाल जानना जरूरी है।

हर्षवर्धन

प्राचीन भारत की अन्तिम दीपशिखा

प्राचीन भारत अपनी उन्नति के चरम शिखर पर पहुँचकर अब अस्त-प्राय हो रहा था कि इतने में एकाएक वह अपनी सारी शक्ति और गरिमा की स्वर्णिम किरणें सब ओर विकीरित करने लगा। वह प्रताप हर्षवर्धन नामक एक सम्राट् का था, जिसने अपने व्यक्तित्व और कार्य के द्वारा महानता का नया उदाहरण सामने रखा।

अन्तिम आलोक

प्राचीन भारत की दीप्ति एक बार फिर तीव्र हो उठी। वह ईसा की छठी सदी थी। सब ओर अराजकता छायी हुई थी। कल तक के सामन्त आज नवीन राजवंश स्थापित करने का उद्योग करते हुए एक-दूसरे से मुठभेड़ें कर रहे थे कि इसी बीच प्रकाश फैलने लगा। एक ऐसी राज्य-शक्ति का उदय हुआ कि जिसने प्राचीन भारत की गौरवपूर्ण परम्परा की धारा को और आगे बढ़ाना चाहा। लगा कि भारत की सांस्कृतिक शक्ति अभी भी सप्राण है।

प्रभाकर वर्धन

गुप्त साम्राज्य के ह्रास काल में जो राजवंश सामने आये उनमें (पंजाब में) स्थानेश्वर का वर्धन-वंश भी था। छठी सदी के अन्त में वहाँ प्रभाकर वर्धन नामक एक वीर पुरुष शासन करता था। उसने गान्धार, गुजरात तथा मालव के हूण शासकों को नष्ट किया। इस प्रकार पश्चिमी भारत उसके अधिकार में आ गया।

प्रभाकर वर्धन के दो बेटे थे—राजवर्धन और हर्षवर्धन। एक पुत्री थी—राज्यश्री। सन् 605 में अचानक जब हूणों ने स्थानेश्वर पर चढ़ाई की तो प्रभाकर वर्धन ने अपने पुत्र राजवर्धन को उनका मुकाबला करने के लिए भेजा। हर्षवर्धन छोटा था। वह भी भाई के सेना के साथ गया। किन्तु उसे पास ही के एक वन में छोड़ दिया गया, जहाँ वह शिकार खेलता रहा। इस बीच राजवर्धन और हूण दोनों की लड़ाई का जोश चढ़ता गया। राजवर्धन उन्हें पश्चिम की ओर खदेड़ता हुआ आगे बढ़ा। इस बीच, शिकार खेलते हुए हर्षवर्धन को सूचना मिली कि पिताजी की मृत्यु हो गयी है। शोकग्रस्त हर्ष राजधानी में पहुँचा। वह राजकाज देखने लगा। उधर, राजवर्धन हूणों पर विजय प्राप्त करके ज्यों ही राजधानी लौटा तो उसे दु:ख-पूर्ण समाचार मिले। उसने निश्चय किया कि वह सन्यासी हो जायेगा, हर्षवर्धन के समझाने-बुझाने पर राजवर्धन स्थानेश्वर का राजा घोषित कर दिया गया।

राज्यश्री

किन्तु, अभी नये संकट आनेवाले थे। इन भाइयों की सुन्दर तथा सुशिक्षित बहन राज्यश्री कन्नौज के मौखरिवंश के राजा गृहवर्मा को दी गयी थी। यह देखकर कि स्थानेश्वर के राजा हूणों से भिड़े हुए हैं, मालवे के राजा देवगुप्त ने कन्नौज पर हमला किया। गृहवर्मा को मार डाला। उसकी स्त्री राज्यश्री को पकड़ लिया। वह वीर स्त्री थी। उसके शील को नष्ट करना मुश्किल था। उसे जेल में डाल दिया गया, तरह-तरह की यातनाएँ उसे दी जाने लगी।

राजवर्धन अपनी बहन के लिए दौड़ पड़ा। उसने मालवे पर चढ़ाई की। इस बीच, बंगाल का राजा शशांक मालवे की सहायता के लिए आया। शशांक ने सन्धि-वार्ता की बात चलायी। राजवर्धन सम्मेलन में पहुँचा ही था कि उसे धोखे से मार डाला गया।

इस गड़बड़ी में राज्यश्री किसी-न-किसी तरह जेल-कोठरी से भाग निकली। वह विन्ध्याचल के एक वन में पहुँची। वहाँ दिवाकरमित्र नामक एक बौद्ध भिक्षु

के आश्रम मे उसे शरण मिली।

हर्षवर्धन ने ज्यो ही अपने भाई की मृत्यु का समाचार सुना, वह मालवे पर चढ दौडा। उसकी राजसत्ता को धूल मे मिला दिया। और, अब बहन की तलाश करने लगा।

खोजते खोजते वह विन्ध्य-वन मे दिवाकरमित्र के आश्रम के निकट पहुँचा, जहाँ चिता जल रही थी। राज्यश्री जल मरने के लिए उसकी प्रदक्षिणा कर रही थी कि इतने मे हर्षवर्धन ने बहन को पुकारा।

हर्षवर्धन

उनके मिलने के अश्रुओ का वर्णन नही किया जा सकता। दिवाकरमित्र ने विदा होते हुए राज्यश्री और हर्ष से कहा कि वे बौद्ध धर्म के अनुयायी हो जायें। हर्ष ने कहा कि वह बौद्ध सघ मे सम्मिलित हो जायेगा किन्तु लक्ष्य पूरा करने के बाद, अभी नही।

राज्यश्री को लेकर हर्ष कन्नौज गया। अब दो सिंहासन खाली थे। एक स्थानेश्वर का, दूसरा, कन्नौज का। राज्यश्री की कोई सन्तान नही थी। इसलिए उसने अपने भाई से राज्य-सूत्र स्वीकार करने के लिए कहा। फलत, दोनो राज्य एक हो गये। हर्ष ने स्थानेश्वर के स्थान पर अपनी राजधानी कन्नौज कर ली।

शत्रुओं का दमन

हर्ष जानता था कि सामन्तो पर भरोसा करना गलत है। केवल शास्त्र-बल ही उन्हें मना सकता है। पिता के जमाने से चले आनेवाले युद्धो के अनुभवो के फलस्वरूप, अब हर्ष के पास 5 हजार हाथी, 20 हजार घुडसवार तथा 50 हजार पैदल सिपाहियो की रणकुशल सेना थी। इस सेना के द्वारा वह आगे मे छह साल तक युद्ध करता रहा। बगाल और आसाम के पश्चिमी भागो से लेकर उसका राज्य नर्मदा के किनारे-किनारे होता हुआ सारे उत्तर भारत मे फैल गया। सिन्ध, दक्षिणी पजाब और राजस्थान उसके राज्य मे नही थे। तब तक उसकी सेना मे 1 लाख घुडसवार तथा 60 हजार हाथी हो गये। रथ-सेना उसने निकाल दी। यह बात सन् 612 की है।

अगले आठ साल तक हर्ष ने युद्ध नही किया। किन्तु, दिग्विजय की इच्छा से प्रेरित होकर वह दक्षिण-विजय के लिए निकला। नर्मदा-तट के निकट के किसी स्थान पर दक्षिण के सम्राट् पुलुकेशिन से उसका मुकाबला हुआ। किन्तु, हर्ष को

से ये राज्य डरते भी थे। हर्ष का पुलुकेशिन से युद्ध करना एक तरह से स्वाभाविक भी था, क्योंकि पुलुकेशिन का साम्राज्य काठियावाड और मालवे को अन्तर्भूत कर चुका था। पूरे उत्तर भारत को अधीन करने के लिए, उसकी सत्ता को चुनौती देना आवश्यक था।

हर्ष ने दक्षिण के गजम राज्य पर आक्रमण किया और उसे अपने राज्य मे शामिल कर लिया। इसके चौदह सालो बाद हर्ष ने गुजरात पर चढाई करके

वलभी के मैत्रक राजा ध्रुवसेन को भी अपना माण्डलिक बना लिया।

हुएनत्साग

सन् 620 तक हर्ष ने अपने लिए एक विशाल साम्राज्य कायम कर लिया था। चीनी यात्री हुएनत्साग इसी काल मे आया था। उसने तत्कालीन भारत का वर्णन किया है। प्रभाकरवर्धन के काल मे स्थानेश्वर राज्य का वर्णन करते हुए वह लिखता है —

"यहाँ की भूमि उपजाऊ है, अनाज बहुत पैदा होता है। लोगो का व्यवहार बहुत रूखा है और उनमे एक दूसरे के प्रति लगाव नही है। परिवार धनी हैं, और विलासिता का जीवन व्यतीत करते हैं। वे जादू-टोनो के बहुत आदी हैं और उन लोगो का बहुत सम्मान करते हैं जिनमे कोई असाधारण योग्यता हो।" यह प्रभाकरवर्धन के राजत्वकाल के अन्तर्गत पजाब का वर्णन है। हुएनत्साग ने हर्षवर्धन के काल का भी वर्णन किया है। वह कहता है कि बेगार किसी से नही ली जाती थी। राजा की निजी सम्पत्ति चार भागो में विभाजित थी। एक राज्य-शासन चलाने और यज्ञयाग दान आदि पर खर्च होती थी। दूसरी से राज-कर्मचारियो का वेतन दिया जाता था। तीसरी से असाधारण प्रतिभाशाली व्यक्तियों को पुरस्कार दिया जाता था। चौथी धार्मिक सस्थाओ पर खर्च की जाती थी, जिससे सद्गुणो को प्रोत्साहन मिलता था। लोगों पर कर का भार बहुत कम था। व्यक्ति को सरकार के लिए जो भी काम करने पडते थे, वह कष्टसाध्य नही थे। सभी लोग निर्विघ्न होकर अपनी सम्पत्ति का भोग करते थे। सभी लोग शान्ति तथा सुरक्षा के वातावरण मे खेती-बारी करते थे। उपज का छठा भाग भूमिकर के रूप में दिया जाता था। थोडी सी चुगी अदा करने पर कोई भी व्यक्ति व्यापार के लिए जल और स्थल भागो का उपयोग कर सकता था। व्यापारियों को बहुत लाभ होता था। सार्वजनिक निर्माण कार्यों के लिए यह आवश्यक होता था कि प्रत्येक व्यक्ति अपने खुद के काम से सहायता करे, किन्तु साथ ही सबको उचित पारिश्रमिक भी मिल जाता था।

हुएनत्साग के इस वक्तव्य से यह स्पष्ट होता है कि उन दिनो प्रजा सुखी थी [illegible]

कौडियो का प्रयोग होता था। समुद्र पार के देशो के साथ खूब व्यापार होता था। भारतीय मल्लाह लका का चक्कर लगाकर चीन तक पहुँचा करते थे।

हत्याएँ, मारपीट आदि की घटनाएँ बहुत कम होती थी। किन्तु, यात्राएँ अब [illegible] कई बार

नारी-स्वतन्त्रता की पुरानी परम्परा अभी भी चल रही थी। अस्पृश्यता फैल रही थी।

हर्ष का चरित्र

भारत के महान् सम्राटो मे हर्ष की गणना होनी चाहिए, इसलिए नही कि

वह विलक्षण विजेता था—समुद्रगुप्त उससे भी बड़ा सैनिक था—वरन् इसलिए कि उसमें गहरी मनुष्यता थी। धर्म-प्रचार का प्रज्वलन्त उत्साह जो अशोक में था, वह हर्ष में नहीं था, क्योंकि उसके लेखे बौद्ध और ब्राह्मण तथा अन्य धर्म—सभी भारत के आध्यात्मिक पक्ष का प्रतिनिधित्व करते थे। उसका जीवन अनेक दुःखों और संकटों में बीता था। जिन्दगी की आँच उसको लग चुकी थी।

वह शुरू में शैवधर्म का अनुयायी था। किन्तु उसकी बहन और भाई, राज्यश्री और राज्यवर्धन, दोनों बौद्ध धर्म के माननेवाले थे। बाद में वह भी बौद्ध हो गया। वह धर्म के तत्व को अधिक समझता था। भारत की धार्मिक स्थिति को भी वह खूब समझता था।

वह स्वयं विद्वान था। उसके दरबार में शास्त्रार्थ हुआ करता—विशेषकर बौद्धों और ब्राह्मणों में। एक बार का किस्सा है कि चीनी यात्री ह्वेनत्सांग उसके दरबार में बैठा था। हर्ष ने सभासदों को सम्बोधित करके कहा कि विद्वत्गण ह्वेनत्सांग से शास्त्रार्थ करें। ह्वेनत्सांग स्वयं त्रिपिटकाचार्य था। किसी ने ह्वेनत्सांग से शास्त्रार्थ करने का साहस नहीं किया। इसकी पार्श्वभूमि यह थी कि अपनी यात्रा में ह्वेनत्सांग को कुछ मुसीबत का सामना करना पड़ा था। सम्राट् ने घोषणा करा दी थी कि जो भी चीनी त्रिपिटकाचार्य को कष्ट देगा, उसे कठोर-से कठोर दण्ड दिया जायेगा।

हर्ष हर पाँचवें साल महापण्डितों का सम्मेलन कराता। उसमें वह स्वयं भाग लेता। सम्मेलन में शास्त्रार्थ और तर्क और वितर्क होते। इनमें से एक सम्मेलन में चीनी त्रिपिटकाचार्य ह्वेनत्सांग भी मौजूद था। इसी प्रकार हर पाँचवें वर्ष वह प्रयाग में बहुत बड़ी धन राशि का दान देता। यह दान सब धर्मों के साधुओं तथा उनके अतिरिक्त निर्धन तथा अभावग्रस्त लोगों को दिया जाता। यह दान-महोत्सव 75 दिनों तक चलता। छठे दान महोत्सव में स्वयं ह्वेनत्सांग उपस्थित था। उसने लिखा है—'पाँच वर्ष का समस्त संचित धन समाप्त हो जाता था। घोड़ा, हाथियों और सैन्य सामग्री छोड़कर, जो शान्ति और सुव्यवस्था के लिए और सम्राट् की सम्पत्ति की रक्षा के लिए आवश्यक थे, कुछ भी नहीं बचता था। राजा अपने रत्न आभूषण—कुण्डल, कंगन, मुकुट के रत्न, हार, मालाएँ—यहाँ तक कि कपड़े-लत्ते सब दे डालता। सब दे चुकने पर वह अपनी बहन से एक साधारण पुराना वस्त्र माँगकर उसे पहन लेता और 'दशभूमीश्वर बुद्ध' की उपासना करता और इस बात पर बहुत प्रसन्न रहता कि उसका धन-कोष धर्म-क्षेत्र में खर्च हो गया।" इधर, सन् 646 ईसवी में ह्वेनत्सांग चीन वापिस पहुँचा ही था कि सन् 646-47 में इस महान सम्राट् का देहान्त हो गया।

जीवन में उसने अनेक दुःखों और संकटों का सामना किया था। उसका हृदय बहुत संवेदनशील और बुद्धि सन्तुलित थी। सम्भवतः, यही कारण है कि वह स्वयं साहित्य रचना की ओर अग्रसर हुआ। हर्षवर्धन संस्कृत का एक प्रतिभाशाली लेखक माना जाता है। उसने रत्नावली, नागानन्द और प्रियदर्शिका नामक नाटकों की रचना की। संस्कृत साहित्य गद्यकार बाणभट्ट, जिसने कादम्बरी नामक एक महाकथा लिखकर अपना नाम अमर किया, हर्ष के दरबार में ही था। हर्ष की महत्ता की प्रशंसा में उसने हर्षचरित्र नामक ग्रन्थ का प्रणयन किया।

हर्ष प्राचीन भारत का अन्तिम शक्तिशाली सम्राट् था। वह निरंकुश एकछत्र

शासक था। उसकी कीर्ति और प्रभाव दूर-दूर के देशो मे पहुँच चुका था। उसकी मृत्यु के एक वर्ष बाद ही, भारत मे फिर से राजनैतिक अव्यवस्था उत्पन्न हो गयी। यह अव्यवस्था भारत मे सदियो तक बनी रही।

विन्ध्याचल के उस पार

प्राचीन काल मे, उत्तर भारत की भाँति दक्षिण भारत मे भी सास्कृतिक अभिवृद्धि हुई। बौद्ध, जैन, वैष्णव तथा शैव धर्मों ने वहाँ विशाल साहित्य निर्माण किया। अनेकानेक गुफा-मन्दिर बने। मन्दिर-निर्माण कला का विशेष उत्कर्ष हुआ। प्राचीन भारतीय सास्कृतिक परम्पराओ की रक्षा का कार्य भी दक्षिण भारत ने किया। अतएव उसका राजनैतिक ऐतिहासिक वृत्तान्त भी हमे मालूम होना चाहिए।

भूगर्भशास्त्र की दृष्टि से दक्षिण भारत उत्तर भारत से अधिक प्राचीन है। दक्षिण भारत में पूर्व पाषाण युग से लेकर तो लौह युग तक मनुष्यो का आवास था। अत्यन्त प्राचीन काल में द्रविड जाति आर्यो के अनवरत विस्तार से दक्षिण की ओर ढिकलती हुई, विन्ध्याचल पार कर गयी और वहाँ उसने अपने सुव्यवस्थित राज्य स्थापित किये। आगे के युगो मे, उन्होने दक्षिण भारत के पार जाकर सीलोन को भी आबाद किया। वहाँ की सिंहल भाषा प्राचीन द्रविडो का स्मारक है। वहाँ की तमिल भाषा, द्रविडो के अनन्तरकालीन आक्रमण की देन है।

कालान्तर मे, आर्यो ने भी विन्ध्याचल पार कर लिया। गोदावरी नदी के उत्तर तट तक आर्य पहुँच गये और वहाँ उन्होंने अपनी बस्तियाँ बसायी। फलत, द्रविडो का मुख्य क्षेत्र कृष्णा नदी तथा तुगभद्रा नदी के दक्षिण तट से लेकर तो कुमारी अन्तरीप और उसके पार लका तक माना जा सकता है।

पुराणो मे कहा गया है कि *अगस्त्य ऋषि विन्ध्याचल को पार कर गये।* वहाँ उन्होंने स्वय भगवान शिव से तमिल भाषा सीखी और यह कि अगस्त्य ऋषि तमिल के शब्दकोष और व्याकरण के प्रथम रचयिता थे। यह भी कहा जाता है कि राजनीतिक तथा सामाजिक सगठन प्रचलित करने का श्रेय भी उन्ही का है। किन्तु, ये किंवदन्तियाँ हैं, जिनका सार केवल यही प्रतीत होता है कि सुदूर अन्धकाराच्छादित अतीत मे आर्य और द्रविड सभ्यताओ का मिश्रण प्रारम्भ हो गया था।

कृष्णा और तुगभद्रा नदी के उस पार विस्तृत प्रदेश मे तीन राज्य थे, पाण्ड्य चेर और चोल। अशोक के शिलालेखो में हमे इन जातियो का उल्लेख मिलता है। (दक्षिण का एक विस्तृत भूभाग अशोक के साम्राज्य मे था)। इन राज्यो का विकास और उत्कर्ष किस प्रकार हुआ, हम नही जानते। इतना भर मालूम है कि

इन राज्यों में सर्वाधिक प्राचीन था—पाण्ड्य, जिसकी राजधानी मदुरइ थी। वह शिक्षा का प्रसिद्ध केन्द्र भी था। उस राज्य में कोरकई नामक एक बन्दरगाह था, जो उन दिनों सभ्यता और संस्कृति का बड़ा केन्द्र माना जाता था। प्राचीन चोल और चेर राज्यों के सम्बन्ध में अधिक ज्ञात नहीं है।

तमिल देश—जिसे हम सुदूर दक्षिण कह सकते हैं—के अतिरिक्त, कृष्णा नदी के उत्तर की ओर जो द्रविड़ रहते थे उनमें आर्य रक्त अधिक रहना स्वाभाविक है। यद्यपि दक्षिण भारत में महाराष्ट्र सम्मिलित है, किन्तु उसे दक्षिण भारतीय द्रविड़ संस्कृति का अंग नहीं कह सकते। यद्यपि यह सच है कि मराठी भाषा पर प्राचीन कन्नड का बहुत असर हुआ है—शब्दों के अतिरिक्त, ध्वनियों और उनकी व्यवस्था में अर्थात् उच्चारण में। यह ध्यान में रखने की बात है कि आज जिस प्रकार आर्य भाषा बोलनेवाली महाराष्ट्रीय जनता विशुद्ध आर्य नहीं है, उसी प्रकार तेलुगु (आन्ध्र) तमिल (तमिलनाडु—मद्रास प्रान्त), कन्नड (कर्नाटक-मैसूर) मलयालम (केरल) तथा अन्य द्रविड़ भाषाओं के बोलनेवाले सभी विशुद्ध द्रविड़ हैं, यह कहना गलत है। तेलुगु भाषा तो विदर्भ के चांदा जिले से ही शुरू हो जाती है। भाषा की दृष्टि से, मराठीभाषी प्रदेश को छोड़कर, शेष सब (जिसमें लंका भी सम्मिलित है) द्रविड़ भूभाग है।

भारत के ऐतिहासिक घटना-चक्रों पर प्रभाव डालनेवाली पहली दक्षिण भारतीय शक्ति थी—आन्ध्र देश का सातवाहन वंश। तीन शताब्दियों से अधिक समय तक उसका साम्राज्य दक्षिण प्रदेश में रहा। उन्होंने किस प्रकार शक-शक्ति को जर्जर करने का प्रयत्न किया, यह हम पहले बता चुके हैं। सातवाहन राजा ई. पू. 235 से ईसा पश्चात् सन 225 तक राज्य करते रहे। सातवाहनों ने अपने को इसीलिए 'दक्षिणापथ स्वामी' घोषित किया था। उन्होंने उत्तर भारत तथा दक्षिण भारत के बीच एक विस्तीर्ण सेतु का काम किया था, जिसके माध्यम से भारत के ये दो भाग एक दूसरे के पास आते गये।

सातवाहन

सातवाहन युग ने भारत की समृद्धि को और बढ़ाया। पायथान, तेर, जुन्नार, कराड, नासिक, गोवर्धन और बनवासी नगर सातवाहन युग में बसाये गये। भृगुकच्छ के अतिरिक्त, सुपारा, कल्याण, दाभोल, बानकोट, मलयगिरि, देवकोट जैसे बन्दरगाह भी थे जिनमें उज्जैन, काबुल, काश्मीर तथा अन्य प्रान्तों का माल पश्चिमी देशों को भेजा जाता था।

सातवाहन युग में ही भारतीय व्यापारी—मुख्यत: तमिल व्यापारी—सुमात्रा, जावा, हिन्दचीन और मलाया जाते। वहाँ इन्होंने अपनी-अपनी बस्तियाँ बसायीं। फिर, इनके देखा-देखी जब बौद्ध धर्म-प्रचारक दक्षिण-पूर्वी एशिया में गये, तो सातवाहन काल में अनेक शैव तथा वैष्णव धर्म के प्रचारक भी उस ओर जाकर वहाँ भारतीय संस्कृति का प्रचार करने लगे। सातवाहन युग में दक्षिण भारत की आर्थिक, व्यावसायिक और सांस्कृतिक उन्नति हुई।

सातवाहन शासक अपने को ब्राह्मणवंशीय समझते थे। उन पर द्रविड़ संस्कृति का गहरा प्रभाव था। द्रविड़ों के परिवार पितृसत्तात्मक न होकर मातृसत्तात्मक होते हैं। सम्भवत: इसी कारण से गौतमीपुत्र शातकर्णि और वाशिष्ठी पुत्र

पुलुभायि जैसे उनके नाम थे, जिसमे माता को महत्त्व दिया गया था। सातवाहन शासको के काल म न केवल ब्राह्मण धर्म का पुनरुत्थान हुआ, वरन् उन्होने बौद्ध धर्म का भी विकास किया।

वाकाटक नरेशा का उल्लेख हम पहले ही कर चुके है। सातवाहनो के अनन्तर, दक्षिण क कुछ भाग उनक राज्यान्तर्गत थ।

चालुक्य

दक्षिण के बीजापुर नामक जिले के अन्तगत बादामी नाम का एक गाँव है। उसका प्राचीन नाम है—वातापी। वातापी म प्रसिद्ध चालुक्य वश न अपना राज्य स्थापित किया था। यह राज्य छठी ईसवी सदी म स्थापित हुआ। उसका प्रारम्भिक इतिहास हम स्पष्टत ज्ञात नही है। किसी जयसिंह नामक चालुक्यवशीय राजा का पुत्र रणराग था। उस रणराग का पुत्र था—पुलुकशिन। उसके राज्य की स्थापना सन 550 म हुई होगी।

पुलुकशिन प्रथम ही असल म राज्य स्थापक था। उसकी मृत्यु के बाद उसक पुत्र कीर्तिवमन ने आसपास के प्रदेशा क राज्या को जीत लिया। मध्यप्रदेश विदर्भ म उन दिनो कलचुरि वश की सत्ता थी। उन पर भी चालुक्यो ने हाथ मारा और कई विस्तृत प्रदेश उनस छीन लिये। चालुक्यो का राज्य इस समय समुद्र तट को स्पश करता था।

पुलुकेशिन द्वितीय

कीर्तिवमन क बाद पुलुकेशिन द्वितीय राजा हुआ। उसने अपन पडोसी राज्यो को जीत लिया और फिर गुजरात पर चढाई करके वहाँ के लाटवशी राजाओ को अधीन कर लिया। नमदा नदी तट पर उसने सम्राट हर्षवधन को पराजित किया। पूर्व म कलिंग को हराकर पिष्ठापुरम् का दृढ दुर्ग छीन लिया। उसन दक्षिण म काची नगर पर भी हमला किया। किन्तु उस पीछे हटना पडा। वह अपन का महाराजाधिराज परमश्वर कहलाने लगा।

हुएनत्साग उसके दरबार म आया था। उसने लिखा है कि प्रजा सुखी थी। वह राजनिष्ठ थी। [illegible]
है कि पुलुकेशिन के [illegible]
100 बौद्ध विहार [illegible]

पुलुकशिन की कीर्ति दूर-दूर तक फैल गयी। ईरान के राजा खुसरो न उसके यहाँ अपना राजदूत भेजा। अजन्ता के एक चित्र मे यह बात बतायी गयी है। सन् 652 म काची के पल्लवनरेश नरसिंह वर्मन ने एकाएक पुलुकेशिन पर हमला [illegible] उसने पुलुकेशिन की हत्या कर दी।
[illegible] विक्रमादित्य ने पल्लव राज्य पर
[illegible] राजधानी काची को भी जीत लिया।
विक्रमादित्य सन् 680 म मर गया। उसका पुत्र विनयादित्य भी बडा पराक्रमी निकला। उसके सम्बन्ध म हम विशेष ज्ञात नही है। हम इतना भर जानत है कि उसकी मृत्यु के बाद, सन् 750 के लगभग, एक अन्य राज्यवश राष्ट्रकूट ने

चालुक्यों के राज्य को नष्ट कर दिया। उसके दो सौ साल बाद चालुक्यो की एक शाखा ने कल्याणी मे फिर से राज्य की स्थापना की।

चोल

अशोक के समय, चोलमण्डल या कारोमण्डल प्रसिद्ध था। वह चोल राज्य था। ईसा की आठवी सदी मे चोल राज्य का वास्तविक अभ्युत्थान हुआ। लगभग 985 ईसवी मे राजराज नामक एक चोल राजा ने पाण्ड्य और चेर राजाओ के प्रदेश जीतकर राज्य-विस्तार किया। चोलो का वह स्वर्णयुग कहा जाता है। राजराज के पास प्रबल जलसेना भी थी। उसने एक ओर कलिंग को पराजित किया, तो दूसरी ओर उसने लका को भी हरा दिया। इस प्रकार उसका राज्य बगाल की खाडी से लेकर तो अरब सागर तक फैल गया।

राजराजेन्द्र

उसके पुत्र राजराजेन्द्र चोल ने बहुत-से अभियान किये थे—अपने पिता के काल मे ही। सन् 1012 म, वह राजा हुआ। वह बडा प्रतापी था। उसने लका के राजा को गिरफ्तार कर लिया और उसे कैदी बनाकर अपने यहाँ रखवा। वह अब दक्षिण से उत्तर की ओर बढा, कलिंग, कोसल इत्यादि देश पादाक्रान्त करते हुए उसने बगाल में प्रवेश किया। बगाल के राजा, महीपाल को पराजित करके वह गगा के किनारे-किनारे पूरब की ओर बढा, अनेक युद्धो मे विजय प्राप्त करते हुए वह दक्षिण वापिस आया।

महान् पराक्रम

राजराजेन्द्र चोल की जलसेना बडी शक्तिशाली थी। वह भारत-भूमि मे ही राज्य-विस्तार नहीं चाहता था, वरन् विदेशो में भी। उसने अपनी जलसेना मलाया मे भेजी। उसने मलाया के एक राजा सग्राम विजयोतुग वर्मा को पराजित किया। वहाँ से बडा खजाना और हाथियो का एक समूह लेकर वह वहाँ से लौटा। राजराजेन्द्र चोल पहला भारतीय राजा था, जो जलसेना के साथ विदेशो मे विजय-प्राप्ति के लिए गया हो।

शैलेन्द्रों का गर्व-हरण

राजराजेन्द्र चोल भारत का पहला राजा है जिसने अपने राज्य से निकलकर दूसरे देशों पर हमला किया। उसकी जलसेना ने, आगे चलकर, जावा, सुमात्रा, बोर्नियो में शैलेन्द्र साम्राज्य से मुठभेड की। शैलेन्द्र साम्राज्य की प्रबाधित शक्ति बगाल समुद्र तथा उसके आसपास के जल-क्षेत्रो पर शासन करती थी। राजराजेन्द्र चोल ने शैलेन्द्र साम्राज्य की जल-शक्ति का प्रहार किया। उस साम्राज्य के कुछ भागो को अपने वश मे कर लिया। शैलेन्द्र नरेश लगभग एक सदी तक तो चुपचाप रहे; किन्तु, उसके बाद उन्होंने चोलो को अपने देश से भगा दिया।

राजराजेन्द्र चोल एक महत्त्वाकांक्षी, पराक्रमी और साहसी पुरुष था। उसने चोलपुरम को अपनी राजधानी बनाया, उसे अनेक मन्दिरों और प्रासादो से सुशोभित किया। सन् 1042 में इस महान् राजा का देहावसान हो गया।

उसकी मृत्यु के बाद, यह राज्य लगभग दो सौ साल तक चलता रहा। सन् 1310 मे जब एक ओर मुस्लिम आक्रमण शुरू हुए, तो दूसरी ओर विजयनगर राज्य की स्थापना हुई, उस समय यह राज्य अवनति के पथ पर चल पडा।

राष्ट्रकूट

सन् 745 मे दन्तिदुर्ग नामक एक वीर ने चालुक्य राज्य को नष्ट किया था। उसकी राजधानी नासिक थी। इसी वश मे अमोघवर्ष नामक एक राजा हुआ, जिसे मुसलमानो ने दुनिया के चार बडे बादशाहो मे गिना—एक, बगदाद का खलीफा, दूसरा रूम का बादशाह, तीसरा, चीन का सम्राट; चौथा, राष्ट्रकूट वश का अमोघवर्ष। राष्ट्रकूट, नि सन्देह, बडे जुझार थे। राजपूताने के गुर्जर राजाओं से तथा कन्नौज के राजाओ से उनकी लडाई चलती रहती थी।

सन् 973 मे बादामी के चालुक्य वश के एक तैलप नामक पुरुष ने राष्ट्रकूटो को नष्ट कर दिया और कल्याणी मे अपना द्वितीय चालुक्य वश स्थापित किया। सन् 1000 के बाद दक्षिण मे होयसल राज्य को कुछ प्रमुखता प्राप्त हुई। होयसल पहले राष्ट्रकूटो के, बाद मे चालुक्यो के माण्डलिक थे। वीर बल्लाल और वीर नरसिंह नामक दो राजाओ ने कर्नाटक, मलबार, तैलगाना आदि प्रदेश जीतकर, कुछ वर्षों के लिए अपनी धाक जमा दी थी। चौदहवी सदी के मुस्लिम आक्रमणो ने उन्हे समाप्त कर दिया।

सन् *1200 के लगभग, द्वितीय चालुक्य राज्य को देवगढ या देवगिरि के* यादवो तथा होयसलो ने नष्ट कर दिया। एक सदी से कुछ वर्ष ऊपर तक यादव राज्य कायम रहा। अलाउद्दीन खिलजी ने उसे खत्म कर दिया। यह घटना सन् 1348 की है।

तमिल-राज्य

तुगभद्रा और कृष्णा नदी के उस पार का प्रदेश—जिसे हम सुदूर दक्षिण भी कह सकते हैं—तमिल देश माना जाता है। सन् 200 से काची नगर मे राजधानी बनाकर, विष्णु नामक एक राजा ने पल्लव वश की स्थापना की। यह राज्य उन्नतिशील था। लगभग 400 साल बाद उसका विशेष उत्कर्ष हुआ। उत्कर्ष का काल भी, कम नही, दो शताब्दियो तक टिका रहा। छठी सदी मे सिंह विष्णु पल्लव ने पाण्ड्य, चोल, केरल और सिंहल द्वीप के राजाओ को पराजित किया।

काची के पल्लव वश के मुख्य शत्रु थे वातापी के चालुक्य। सन् 640 मे चालुक्य राज्य के विक्रमादित्य ने पल्लव वश का गर्व-हरण किया और काची नगर पर कब्जा कर लिया। किन्तु, उसके कुछ ही दिनो बाद, चालुक्यो की अवनति होने लगी। इधर, पल्लवों ने चालुक्यो के आघात को किसी-न किसी तरह सह लिया। पल्लव उसके आगे भी उन्नति करते रहे; किन्तु सन् 1000 के लगभग *चोल राजाओ के हाथो उनका नाश हो गया।*

पाण्ड्य

भारत के सुदूर दक्षिण कोण मे पाण्ड्य राज्य था। उनकी राजधानी मदुरइ थी। पाण्ड्यों और पल्लवो मे हमेशा युद्ध होता रहता। ईसा की ग्यारहवी और बारहवी

सदी में अपनी स्थिति नष्ट होते हुए देखकर, पाण्ड्यों ने चोलों की अधीनता स्वीकार कर ली। तेरहवीं सदी में उन्होंने फिर से शक्ति एकत्र कर ली, किन्तु, चौदहवीं सदी में मुसलमानों के आक्रमणों के आगे वे टिक न सके।

केरल

आधुनिक केरल प्रान्त में ही प्राचीन केरल राज्य था। उनके देश में बन्दरगाह के रूप में उन दिनों क्विलोन को बहुत-बहुत महत्त्व प्राप्त था। उस राज्य का दूर-दूर के देशों से व्यापार के कारण, खूब लाभ हुआ होगा। इस राज्य के इतिहास के सम्बन्ध में, हम ज्यादा नहीं जानते।

इस वृत्तान्त से यह स्पष्ट है कि दक्षिण भारत प्रदीर्घ काल तक मुस्लिम आधिपत्य से बचा रहा। परिणामतः उसने स्वतन्त्र रूप से प्राचीन भारतीय संस्कृति की रक्षा और विकास किया। आगे चलकर, जब वहाँ मुस्लिम राज्य कायम भी हुए, वे वहाँ संरक्षित प्राचीन भारतीय संस्कृति को विशेष प्रभावित नहीं कर सके। फलतः, उत्तर भारत की कला, शिल्प, धर्म, दर्शन आदि में हिन्दू-मुस्लिम तत्त्वों के मेल से, मध्य युग में जो सांस्कृतिक अभ्युत्थान हुआ उसके कारण, उत्तर भारत की परम्परा कुछ और हो गयी, दक्षिण भारत की कुछ और ही रही। इसका अर्थ यह नहीं है कि दक्षिण भारत में मुस्लिम तत्त्वों ने भारतीय संस्कृति में प्रवेश ही नहीं किया। लिंगायत या वीर शैव सम्प्रदाय सूचित करता है जो मुस्लिम तत्त्व दक्षिण भारतीय धर्म चिन्तन में प्रविष्ट हुए, वे तत्त्व उस प्राचीन मुस्लिम उपनिवेशों के सूचक थे, अरब व्यापारियों द्वारा समुद्र-तटों पर बसाये गये थे, न कि उत्तर भारत से आये हुए, मुस्लिम आक्रान्ताओं द्वारा।

बृहत्तर भारत

प्राचीन काल में भारत शेष जगत् से गहरा सम्पर्क रखता था। भारतीय संस्कृति का विस्तार दक्षिण-पूर्वी एशिया, मध्य एशिया तथा पूर्वी एशिया के देशों में हुआ। वहाँ भारतीय संस्कृति, धर्म, दर्शन तथा विद्याओं के अपने केन्द्र बने। यह विस्तार शान्ति तथा सद्भावना, मैत्री तथा मानव-कल्याण की प्रेरणा द्वारा ही हो सका। भारत का आध्यात्मिक सन्देश दूर दूर के देशों में फैल गया

फलतः, इन विभिन्न देशों में जातीयता का भी उत्कर्ष हुआ। न केवल संस्कृत, वरन् स्थानीय जन-वाणियाँ भी उन्नति करने लगीं तथा समृद्ध हो उठीं। दक्षिण-पूर्वी एशिया में यह विशेष रूप से हुआ। इस प्राचीन गौरव-गाथा को जाने बिना, भारतीय संस्कृति के इतिहास का ज्ञान भी अधूरा रहता है।

उत्तर एशिया मे भारतीय, संस्कृति के मुख्य प्रभाव-केन्द्र थे—खोतन्न (खोतन), कुचि (कुचर), अग्निदेश (काराशहर), कोचाग (तुरफान) तथा इनके अतिरिक्त शैल देश (काशगर), चल्पद (शानशान), थरूक (पोलविया), चौकुक (यारकन्द)। इन आठ राज्यों मे खोतन और कुचि सर्व प्रमुख हैं। ये सब क्षेत्र मध्य एशिया से लेकर सिङक्याङ होते हुए मगोलिया तक फैले हुए हैं। इन सब मे कुछ सामान्य बातें पायी जाती हैं। बौद्ध धर्म के विहार इन सब म थे। इन विहारो की संख्या बहुत बडी थी। भिक्षुओं की तादाद हजारो तक पहुँचती थी। संस्कृत भाषा धर्म-भाषा होने के कारण महत्त्वपूर्ण थी। साथ ही, संस्कृत भाषा का भी खूब प्रयोग होता था। पहले खरोष्ठी लिपि का प्रचार हुआ, बाद मे ब्राह्मी लिपि ने भी प्रवेश किया। बहुत-से प्राचीन संस्कृत ग्रन्थ इस क्षेत्र मे उपलब्ध हुए हैं। स्थानीय भाषाओं मे भी ग्रन्थो का प्रणयन हुआ।

खोतन

खोतन बौद्ध धर्म का बहुत बडा केन्द्र था। चौथी सदी मे लगभग सारा खोतन राज्य बौद्ध हो गया। खोतन मे विहार शिक्षा के केन्द्र थे। इन केन्द्रो म बडा ग्रन्थालय रहता था।

यहाँ बौद्ध विहारो तथा चैत्यो के बहुत-से खँडहर प्राप्त हुए हैं। मूर्तियाँ और प्रतिमाएँ मिली, साथ ही चित्र भी। अनेको ग्रन्थ मिले। ये ग्रन्थ हस्तलिखित हैं। चीन मे धर्म-प्रचार का बहुत कुछ श्रेय खोतन को है। कनिष्क के साम्राज्य म खोतन भी शामिल था। आठवीं सदी के बाद तुर्कों ने गौरवशाली खोतन को नष्ट कर दिया और तब वहाँ की जनता मुसलमान हो गयी।

तीसरी सदी म खोतन के राजवश के नाम भारतीय थे, जैसे विजयसम्भव। तिब्बती अनुश्रुतियो मे विजयसम्भव का उल्लेख है। विजयसम्भव के वश मे विजय-वीर्य नामक राजा ने अनेको विहारो और चैत्यो का निर्माण कराया। विजयसम्भव तथा विजयवीर्य के गुरु भारतीय बौद्ध भिक्षु थे।

कुचि का राज्य भी भारतीय संस्कृति का महान केन्द्र था। चीनी अनुश्रुति के अनुसार, वहाँ के विहारो और चैत्यो की संख्या दस हजार थी। ये विहार बहुत सुन्दर, बहुत भव्य थे। इनमे हजारो भिक्षु रहते थे। कई भिक्षुणियाँ राजघरानों की थी।

कुचि के राजवश के नाम भारतीय थे जैसे—सुवर्ण, पुष्प, हरिपुष्प, स्वर्ण-देव, हरदेव, इत्यादि। कुचि मध्य एशिया का भारतीय सास्कृतिक केन्द्र तथा उप-निवेश था।

कुमारजीव

यहाँ हम कुमारजीव का उल्लेख करना नही भूल सकते। उसकी जीवन-कथा जितनी रोमैण्टिक है उतनी ही प्रेरणादायक है।

भारत मे एक राजकुमार था, जिसका नाम था कुमारायन। युवावस्था मे ही वह बौद्ध भिक्षु बन गया। अब वह भारत से यात्रा करते करते कुचि पहुँचा। (संस्कृत मे कुचि को कुशद्वीप कहते थे)। था तो वह बौद्ध भिक्षु, किन्तु वह अत्यन्त सुन्दर था। कुचि के राजा की बहन जीवा उस पर मोहित हो गयी, वह उससे

प्रेम करने लगी। कुमारायन के हृदय मे भी प्रेम का उदय हुआ। फलत., उसने उससे विवाह कर लिया। उनको दो पुत्र हुए। एक का नाम था कुमारजीव—दूसरे का था पुष्पदेव।

कुमारजीव ज्यों ही सात वर्ष का हुआ, उसकी माता जीवा भिक्षुणी हो गयी। वह अपने पुत्र कुमारजीव को लेकर भारत आयी। वहाँ वह काश्मीर म जा बसी। काश्मीर के राजा का भाई बन्धुदत्त बौद्ध धर्म का बडा पण्डित था। उसका नाम सर्वत्र था। उसके चरणो मे बैठकर कुमारजीव न बौद्ध शास्त्र पढे। कुमारजीव प्रकाण्ड पण्डित बन गया। बौद्ध धर्म की शिक्षा के उपरान्त उसे वैदिक धर्म के तत्त्व समझने की इच्छा हुई।

उन दिनो मध्य एशिया मे शैलदेश (काशगर) ब्राह्मण साहित्य तथा दर्शन का केन्द्र समझा जाता था। कुमारजीव काशगर आया। वहाँ ब्राह्मण धर्म की सारी विद्याएँ पढकर, वह चोक्कुक (यारकन्द) पहुँचा। ब्राह्मण दर्शन के तर्कों और युक्तियो का खण्डन जिन बौद्ध विद्वानो ने किया था, उनम नागार्जुन, आर्यदेव जैसे सिद्ध आचार्य भी थे। उनके ग्रन्थो का विशेष अध्ययन यारकन्द म हुआ करता था। यारकन्द म इन आचार्यों का अध्ययन करके कुमारजीव ने महायान सम्प्रदाय मे प्रवेश किया। इस प्रकार बौद्ध और ब्राह्मण ज्ञान का एकाधिकारी होकर कुमार-जीव अपनी मातृभूमि कुचि म वापिस आया। उसकी विद्वत्ता की कीर्ति फैली। शीघ्र ही कुचि नगर शिक्षा का महान केन्द्र बन गया।

अब हुआ यह कि चीन ने कुचि के राज्य पर हमला कर दिया। उसे सर कर चुकने के बाद, बडे-बडे लोग गिरफ्तार कर लिए गये। कुमारजीव भी चीनी अधिकारियो द्वारा बन्दी बनाकर चीन लाया गया।

किन्तु, उसकी कीर्ति और तेजस्विता जेल की दीवारो को पार कर गयी। उसका नाम सुनकर चीनी सम्राट ने उसे अपनी सभा मे बुलाया। चीनी सम्राट कुमारजीव से बहुत प्रभावित हुआ। उसने उसका बडा सत्कार किया। कुमारजीव केवल सस्कृत का ही नही वरन् चीनी भाषा का भी प्रकाण्ड पण्डित था। सम्राट ने उसे कहा कि वह भारत के प्रामाणिक बौद्ध ग्रन्थो का चीनी भाषा मे अनुवाद करे। सम्राट ने उसकी सहायता के लिए अनेक चीनी विद्वान नियुक्त किये।

अपने कार्य का युगान्तरकारी महत्त्व कुमारजीव न अच्छी तरह समझ लिया। उसन अपनी सहायता के लिए भारत तथा काश्मीर से बहुत-से बौद्ध पण्डित बुलवाये—जिनमे गौतम सघ देव, धर्मयश, गुणवर्मन, गुणभद्र, बुद्धवर्मन, बुद्धयश, तथा पुण्यगात का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। कुमारजीव के उपरान्त इन्ही महापण्डितो न चीन म बौद्ध धर्म का प्रचार किया।*

चीन मे इन विद्वानों का स्थान बहुत ऊँचा है। इनका नाम सुनकर चीनी जनता आज भी श्रद्धा और सम्मान से सिर झुका लेती है। ये विद्वानगण धुन के पक्के थे। साहसी और कर्मण्य थे, विद्वान और भावुक थे, करुणा और जिज्ञासा की मूर्ति थे। इनम से कईयों ने चीनी नाम भी धारण कर लिये। वे चीनी बन गय। वही मरे। आज हालत यह है कि जिन सस्कृत पुस्तको का अनुवाद इन्होंने किया, वे भारत मे नष्ट हो गयी है। वे चीनी अनुवाद के रूप मे ही हैं, उनका सस्कृत भाषान्तर अब करवाया जा रहा है। विश्व के महान पण्डित कुमारजीव का देहान्त सन् 412 मे चीन मे ही हुआ।

तुरफान

सिङक्याङ का वह हिस्सा जो मगोलिया की मरुभूमि से लगा हुआ है, वहाँ उइगुर नामक जाति रहा करती थी। वह तुर्क जाति थी। कुमारजीव के कुचि राज्य म भी वही रहती थी। उइगुर बौद्ध थ। वह तुरफान म भी रहती थी। तुरफान मगोलिया की मरुभूमि के निकट एक नगर था। इस क्षेत्र मे तुरफान सरीखे अनेक नगरो के ध्वसावशेष पाये जाते है। इन ध्वसावशेषो म सस्कृत, तुर्की, चीनी और ईरानी हस्तलिखित ग्रन्थ मिले हैं। वहाँ के राजा चाउ ने सन् 480 म मैत्रेय का एक मन्दिर बनवाया था।

काशगर

इस क्षेत्र मे कनिष्क के काल म बौद्ध धर्म का प्रचार हुआ। इसके पहल वह ब्राह्मण धर्म का केन्द्र था। फाहियान 400 ईसवी म यहाँ आया था। उसने बताया है कि यहाँ एक विहार म एक हजार भिक्षु निवास करत थे।

तुन-ह्वाङ

अन्य स्थानो म भी बौद्ध धर्म का और भारतीय सस्कृति का बहुत प्रचार था। चीन की सीमा के पास एक पर्वतमालिका है। यहाँ गुफा मन्दिर हैं। इन गुफा-मन्दिरो म सिद्धार्थ गौतम बुद्ध के जीवन के चित्र हैं—जैस कि अजन्ता म है। अन्तर यही है कि उनकी कला पर चीनी, यूनानी, तुर्की, ईरानी प्रभावो का सम्मिश्रण है। इन गुफाओ को सहस्र-बुद्ध गुहा विहार कहत है। इन गुहाओ म अनेक बुद्ध मूर्तियाँ भी प्राप्त हुई हैं।

सिवाय इसके, वहाँ सस्कृत, तुर्की, उइगुर, तिब्बती और चीनी ग्रन्थो का अपूर्व भण्डार उपलब्ध हुआ। ये सब ग्रन्थ बौद्ध धर्म तथा सस्कृति के सम्बन्ध म है। उनस इतिहास पर भी प्रकाश पडता है। यूरोपीय विद्वान उन्हे उठा-उठाकर अपने-अपने देश ले गय और आज तक उन ग्रन्थो की सूची भी नही बन पायी। इन ग्रन्थो म खरोष्ठी और ब्राह्मी लिपि का भी प्रयोग किया गया।

तुनह्वाङ के समान मध्य एशिया के अन्य क्षेत्रो म भी, पुस्तको के भण्डार मिले हैं—विशेषकर कुचि और काशगर मे, जिनसे यह स्पष्टत सूचित होता है कि भारतीय सस्कृति का प्रसार और विकास कितन दूर-दूर के क्षेत्रो म हुआ। तुनह्वाङ जैसी गुहाओ का निर्माण छठी सदी से लेकर चौदहवी सदी तक होता रहा, और अनेकानेक मूर्तियाँ और चित्र, चैत्य और विहार बनते रहे। सहस्रबुद्ध गुहा विहार भी इसी तरह बना।

दूसरे शब्दो म, आठवी सदी तक पश्चिमी एशिया से लेकर तो पूरे पूर्वी एशिया तक, यानी तुर्कस्तान स लेकर चीन तक, बौद्ध धर्म का प्रचार था। तुर्क जाति पूरी बौद्ध थी। बाद म आठवी सदी के बाद तुर्क जाति के मध्य-एशियायी तथा पश्चिमी-एशियायी खण्ड ने इसलाम अगीकार कर लिया। किन्तु, पूर्व एशिया के

ईसाई आक्रमणों से वे नष्ट-भ्रष्ट हो गयी। उनके ध्वसावशेष अभी भी कहीं-कहीं पाये जाते हैं।

यहाँ यह ध्यान में रखना होगा कि भारत के उत्तर में जो बौद्ध राज्य या बौद्ध सांस्कृतिक केन्द्र बने, उनमें थोड़े-बहुत भारतीय तत्त्व होते हुए भी, मुख्यत, वे अ-भारतीय थे। तुर्क, मगोल, शक, हूण, आदि जातियों के ये लोग थे। इनमें से जो पश्चिम और मध्य-एशियायी थे, कालान्तर में मुस्लिम बने, शेष बौद्ध बने रहे।

दक्षिण-पूर्वी भारतीय उपनिवेश

दक्षिण-पूर्वी एशिया में भारतीय बस्तियों का श्रेय मुख्यत व्यापारियों को है—विशेषकर तमिल व्यापारियों को। व्यापारियों के पीछे धर्म-प्रचारक गये—बौद्ध और ब्राह्मण। इनका उद्देश्य वहाँ जाकर कोई साम्राज्य स्थापित करना नहीं था। वे शान्तिपूर्ण उद्देश्यों से वहाँ पहुँचे थे।

धीरे धीरे वहाँ की जनता ने भारतीय धर्म और सस्कृति अपना ली। अपना तो ली, किन्तु उसमें उसने अपने तत्त्व भी डाल दिये। वहाँ की भाषाओं में खूब संस्कृत शब्द आ गये। हमारे देवता उनके देवता बन गये। यह सब होते हुए भी, वहाँ के राज्यों और राजवंशों को हम भारतीय नहीं कह सकते, क्योंकि वे भिन्न जाति के लोग थे—मलाया, ख्मेर आदि जातियों के वे लोग थे, और हैं। भारतीय सस्कृति को ग्रहण करके उन्होंने अपना स्वतन्त्र विकास किया। यह ठीक उसी प्रकार हुआ जिस प्रकार सिंक्यांग तथा अन्य पूर्व-पश्चिम के देश भारतीय प्रभाव में आकर भी भारतीय नहीं हुए। यह बात महत्त्वपूर्ण है।

यह सही है कि तमिल व्यापारियों ने वहाँ मुख्य मुख्य केन्द्रों में अपनी बस्तियाँ बसायीं, धर्म-प्रचार करनेवालों ने अपना प्रभाव बढ़ाया, किन्तु भारतीय राज्य-शक्ति, संगठित रूप में अथवा असंगठित रूप से वहाँ कभी नहीं पहुँची। किसी राजनैतिक उद्देश्य से भारत विदेशों में नहीं गया। आज भी मलाया प्रायद्वीप में भारतीय जनता लगभग एक तिहाई है। ये तमिल भाषाभाषी हैं। दक्षिण ब्रह्मा, मलाया और सुमात्रा को, प्राचीन काल में भारत में स्वर्ण भूमि कहा जाता। भारतीयों ने शुरू में नदियों के किनारों पर अपनी बस्तियाँ स्थापित की होंगी, ये रवह्निन, इरावती, सालिवन, मेकाग तक पहुँचे होंगे। इस प्रकार वे, बर्मा से लेकर वियतनाम तक पहुँच गये होंगे, जल-मार्ग के द्वारा, स्थल-मार्ग के द्वारा भी। धीरे-धीरे, भारतीय सस्कृति का प्रभाव बढ़ा होगा, और ये पुराने भारतीय उपनिवेश उस देश की जनता में घुलमिल गये होंगे।

इस प्रकार के मेल में जो सामाजिक सांस्कृतिक चेतना वहाँ उत्पन्न हुई, उसने राजनैतिक रूप भी विकसित कर लिया और कई राज्य बन गये।

इनमें से एक प्रभावशाली राज्य आधुनिक कम्बोडिया में था। जब भारतीय सुदूर अतीत में वहाँ पहुँचे थे तो वहाँ के स्थानीय जन अभी भी असभ्यावस्था में थे। भारतीय संस्कृति का प्रथम प्रसार वहाँ कौण्डिन्य नामक ब्राह्मण ने किया। वह वैदिक धर्मानुयायी था। वहाँ वही का सबसे पहला राजा हुआ। आगे चलकर, उसका राज्य फान-ची-मान नामक व्यक्ति के हाथ में चला गया। ईसा की चौथी सदी के अन्त में, फिर से कौण्डिन्य नामक एक ब्राह्मण वहाँ पहुँचा। वहाँ की जनता

ने उसे अपना राजा घोषित किया। उसके बाद, जयवर्मन और जयवर्मन के अनन्तर नागवर्मन का नाम मिलता है। उसने सन् 480 में अपना एक दूत चीन के बादशाह के यहाँ भेजा था। उसके बाद रुद्रवर्मन राजा बना। उसने सन् 517 से 539 तक कई राजदूत चीन भेजे। यहाँ शैवधर्म का प्रचार हुआ था। यह राज्य कुछ ही सालों बाद, चम्पा नामक राज्य में विलीन हो गया।

चम्पा

कम्बोडिया के पूर्व में चम्पा नामक एक प्रबल सत्ता सामने आयी। यह राज्य उन्नीसवीं सदी तक कायम था। इस राज्य का प्रारम्भिक इतिहास हम नहीं जानते। ईसा की दूसरी सदी में इस राज्य के एक राजा श्रीमार का नाम हमें मिलता है। इस राजा के पास एक विशाल जल-सेना थी। उसने चीन पर हमला करके उसका टोंगकिंग प्रान्त सर कर लिया था। वह चीन से हमेशा लड़ता रहा। आगे चलकर, चम्पानरेश फान-वेन नामक एक राजा ने सन् 347 में उत्तरी वियतनाम के उपजाऊ हिस्से भी छीन लिये। आगे चलकर, फान-हु-टा अर्थात धर्म-महाराज श्री भद्रवर्मन ने चीन के और हिस्से छीने तथा चम्पा राज्य की सीमा थान-हो पहाड़ तक फैला दी। श्री भद्रवर्मन शैव था। उसने मायसन नामक स्थान पर एक विशाल मन्दिर बनाया।

चीन ने ज्यों ही अपनी ताकत समेट ली, चम्पा को झुकना पड़ा। चम्पा चीन की अब खुशामद करने लगा। वहाँ से चीन को उपहार भेजे जाने लगे। आगे चलकर, उन्नीसवीं सदी में, अनाम नामक जाति ने चम्पा को जीत लिया, इसलिए इस प्रदेश का नाम अनाम हुआ। इन राज्यों के फलस्वरूप, थाईलैण्ड (स्याम), लाओस, कम्बोडिया, वियतनाम आदि प्रदेशों में भारतीय धर्म, संस्कृति, आचार-विचार, रीति-नियम फैल गये। स्थानीय जनता के प्राचीन विश्वासों से सम्मिलित होकर, उन्होंने उनकी अपनी जातीयता (राष्ट्रीयता) का विकास किया। साहित्य तथा संस्कृति की भाषा संस्कृत ही रही, जो वहाँ खूब फली-फूली। उसमें नये-नये ग्रन्थ बनने लगे। किन्तु, साथ ही जनता की अपनी वाणी का भी बहुमुखी विकास हुआ। भारतीय शिल्प तथा चित्रकला की वहाँ नकल नहीं की गयी। किन्तु भारतीय संस्कृति से प्रेरणा प्राप्त करके, भारतीय शिल्प और चित्रकला ही का नया मोड़, एक नया रूप दिया गया। इस क्षेत्र में ब्राह्मण धर्म का खूब प्रचार हुआ।

ये राजा भारत की तीर्थयात्रा करते। चम्पानरेश इन्द्रवर्मा तृतीय बड़ा पण्डित था। उसने भारत की तीर्थ यात्रा की थी।

श्रीक्षेत्र

इनके अतिरिक्त ब्रह्म देश में प्रोम के पास श्रीक्षेत्र नामक एक राज्य था। ज्ञात होता है कि उसका राज्य पूरे मलय प्रायद्वीप तक पहुँचा हुआ था। आधुनिक उत्खननों ने बहुत-सी बातें खोजकर निकाली हैं। वहाँ बौद्ध धर्म का प्रचार हुआ, जो वहाँ से सारे ब्रह्म देश में छा गया।

मलाया

मलाया प्रायद्वीप में बहुत से भारतीय राज्य थे। इन राज्यों के ध्वंसावशेष अभी भी पाये जाते हैं। विष्णु, गरुड आदि की मूर्तियाँ, अनगिनत बौद्ध मन्दिर तथा बहुत-से शिलालेख मिले हैं।

श्रीविजय

सुमात्रा को प्राचीन काल में स्वर्णभूमि कहा करते थे—उसके राजनैतिक-सांस्कृतिक क्षेत्र के अन्तर्गत दक्षिण वर्मा भी आता था। सुमात्रा में श्रीविजय नामक नगर में ईसा की चौथी सदी में एक राज्य स्थापित हुआ। उसने शीघ्र ही अपने हाथ-पाँव फैलाये। सन् 684 में उसके बौद्ध धर्मावलम्बी राजा जयनाग ने जावा (यवद्वीप) को जीतने के लिए सेनाएँ भेजीं। कम्पर नदी पर स्थित यह नगर सदियों तक उन्नति करता रहा। वह धर्म, संस्कृति और विज्ञान का बड़ा केन्द्र था। चीनी यात्री इत्सिंग 688 से 695 तक यहाँ रहा था। सुमात्रा में बहुत-से शिलालेख संस्कृत भाषा में मिलते हैं, जिनमें यहाँ के राजाओं की कीर्ति-कथा अंकित है।

यवद्वीप (जावा)

चीनी कथाओं के अनुसार ईसवी पूर्व 65 में ही, यहाँ भारतीयों ने बसना शुरू कर दिया था। सन् 132 में देववर्मा नामक एक राजा ने चीन को अपना राजदूत भेजा था। फाहियान यहाँ आया था। उस चीनी यात्री ने लिखा है कि यहाँ के बहुत से लोग शैवधर्मानुयायी थे।

गुणवर्मा नामक राजा ने यहाँ 5वीं सदी में बौद्ध धर्म का प्रचार किया। गुणवर्मा बहुत धर्मात्मा तथा वैभवशाली राजा था। चीन के भिक्षुओं ने अपने सम्राट से प्रार्थना की थी कि वह गुणवर्मा को चीन आने का निमन्त्रण दे। गुणवर्मा ने चीन को भेंट दी। वह दक्षिण-पूर्वी एशिया में बहुत बड़ा धर्म प्रचारक था।

और भी अनेकानेक राजा हुए। जावा में संस्कृत भाषा में कई शिलालेख मिलते हैं।

शैलेन्द्र साम्राज्य

ईसा की सातवीं सदी में सुमात्रा के श्रीविजय नरेशों ने—जो शैलेन्द्रवंशी थे—जावा को अपने साम्राज्य के अन्तर्गत कर लिया। साथ ही, दक्षिणी वर्मा, मलाया, और कम्बोडिया को भी अपने राज्य में मिला लिया। शैलेन्द्र बौद्ध धर्मावलम्बी थे। उन्होंने अपने क्षेत्र में बौद्ध धर्म का खूब प्रचार किया। फलत, शैव और वैष्णव धर्म, दक्षिण एशियायी देश—जैसे ब्रह्मा, थाईलैण्ड, कम्बोडिया आदि—में कमज़ोर हो गया, उसका स्थान बौद्ध धर्म ने ले लिया। शैलेन्द्रों ने भारत से भी अपने सम्बन्ध बनाये रखे। उनके उत्कीर्ण लेख जावा, सुमात्रा, मलाया आदि प्रदेशों में उपलब्ध होते हैं।

इस वंश का इतिहास हमें क्रमबद्ध रूप से नहीं मिलता। किन्तु हम जानते हैं कि राजराजेन्द्र चोल से इनकी मुठभेड़ हुई थी। चोलों ने इनको कमज़ोर कर दिया

था। किन्तु, चोल राज्य के नाश में, शैलेन्द्रों ने भी योग दिया।

शैलेन्द्रों ने साहित्य तथा शिल्प-कला का बहुत विकास किया। इन्होंने अनेक देशों में, मन्दिर, स्तूप, चैत्य, बनवाये। यहाँ तक कि नालन्दा में भी एक विहार बनवाया।

बाली

जावा के पास ही पूर्व की तरफ बाली नामक द्वीप में हिन्दू धर्म अभी भी जीवित है। बाली में हम अनेक शिलालेख मिलते है, जो सस्कृत भाषा में लिखे हुए हैं।

बोर्नियो

ज्ञात होता है कि यहाँ सन् 400 में लगभग ब्राह्मण धर्म पूर्णत विराजमान था। इस द्वीप में अनेक ध्वसावशेष प्राप्त होते हैं। इनमें से एक गुफा मन्दिर है जिसमें शिव, गणेश, नन्दी, ब्रह्मा, स्कन्ध, महाकाल, अगस्त्य, नन्दीश्वर आदि की 18 मूर्तियाँ प्राप्त हुई है। यह गुफा तेलेन नदी की ऊपरी धारा के पूर्व में स्थित है। इस द्वीप में चार शिलालेख भी मिले हैं, जो सस्कृत भाषा में हैं। इनसे प्रतीत होता है कि वहाँ यज्ञयाग का बडा प्रचार था। इसी प्रकार के अवशेष हमें सेलेबीज और फिलिपाइन्स में मिलते हैं, जिनसे यह सिद्ध होता है कि भारतीय सस्कृति और धर्म का विस्तार पूरे दक्षिण पूर्वी एशिया को समेट चुका था।

मध्य युग का आरम्भ

सन् 700 से सन् 1200 तक

भारतीय सस्कृति का यह ह्रास काल था। समाज जडीभूत हो रहा था। इस बीच राजपूत राजाओं का अभ्युदय हुआ। किन्तु, शेष जगत् से भारत का सम्बन्ध टूट रहा था। ह्रास-दशा दर्शन, धर्म, साहित्य सबमें प्रकट हो रही थी। दक्षिण भारत में पूर्वयुगीन उन्मेष कुछ शेष था। कुछ राजपूत राजा बहुत पराक्रमी और विद्वान हुए। किन्तु, वे कभी एकताबद्ध नहीं हो सके। विदेशी आक्रान्ताओं ने एक के बाद एक सबको धराशायी कर दिया। यह इस बात का सूचक है कि यदि समाज प्रगति नहीं करता तो वह जड हो जाता है, उसमें गति ही नहीं रहती।

एक अखिल भारतीय राज्य के स्थान पर अनेक छोटे-बडे प्रादेशिक राज्यों के अभ्युदय होते रहने की प्रवृत्ति भारत में प्राचीन काल से रही आयी। हर्षवर्धन के साम्राज्य के अनन्तर यह प्रवृत्ति और भी बलवान हो उठी।

राजपूतों का उदय

इस युग मे भारत के राजनैतिक रगमच पर राजपूतों का अभ्युदय एक प्रधान घटना है। राजपूतो ने राज्य-सूत्र हाथ मे लेकर जो ऐतिहासिक घटनाएँ प्रस्तुत की उन्हें हमे जानना चाहिए।

कन्नौज के प्रतिहार और राठोर

कन्नौज एक जमाने मे सम्राट हर्षवर्धन के साम्राज्य का एक भाग था। आगे चल-कर वहाँ प्रतिहार राजपूतो ने अपना राज्य स्थापित किया। सन् 1018 मे पश्चिम से होनेवाले मुस्लिम आक्रमणो ने उसे तहस-नहस कर दिया। इस घटना से फायदा उठाकर गढवाल के राजपूतो ने वहाँ अपना राज्य बना लिया। अब हुआ यह कि पजाब और अफगानिस्तान के शासक मुहम्मद गोरी ने राठोडों के अन्तिम राजा जयचन्द को मार गिराया। राठोडो ने कन्नौज छोड दिया, वहाँ से वे राजपूताने चले गये। मौका पाते ही, जोधपुर मे उन्होंने अपना राज्य फिर से कायम किया।

दिल्ली के चौहान और तोमर

किसी तोमरवंशीय राजा ने सन् 993 मे, प्राचीन इन्द्रप्रस्थ के समीप, दिल्ली नगर की स्थापना की। दिल्ली मे उस वश का राज्य सन् 1170 तक रहा। उसके अन्तिम राजा अनगपाल को कोई पुत्र नही था; इसलिए, उसकी कन्या का पुत्र—अजमेर का चौहान राजा पृथ्वीराज—दिल्ली राज्य का उत्तराधिकारी हुआ। अब अजमेर और दिल्ली दोनों राज्य एक हो गये। सन् 1192 मे मुहम्मद गोरी ने युद्ध मे पृथ्वीराज को परास्त करके उसे मार डाला। उस समय अजमेर और दिल्ली के दोनो राज्य मुस्लिम साम्राज्य के भाग हो गये।

सांबर के चौहान

बताया जाता है, चाहमान या चौहान वश के एक सामन्त ने सातवी सदी मे, अजमेर के आसपास अपना राज्य स्थापित किया। कालान्तर मे, कन्नौज के प्रतिहारो के ये माण्डलिक बन गये। ईसा की नवी सदी मे इन्होने सिन्ध के अरबो से लोहा लिया। दसवी सदी मे इन्होंने अपनी स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी और अब ये अपने को 'महाराजाधिराज' कहलाने लगे। इनके उत्तराधिकारियों ने राज्य का खूब विस्तार किया। गजनी के बादशाह महमूद गजनवी से भी इनका सामना हुआ, जिसमे गोविन्दराज चौहान नामक एक राजा ने ख्याति प्राप्त की। बारहवी सदी मे ये बहुत महत्त्वाकाक्षी हो उठे। इन्होंने मालवे के परमार राजाओ से, तो कभी उसके भी आगे बढकर, गुजरात के चालुक्यो से, छेड-छाड की। दिल्ली के तोमरो से उन्होंने कई बार युद्ध किये। पजाब के मुस्लिम शासको से इन्होने बहुत बार मोर्चा लिया। बारहवी सदी के प्रथम चरण मे, अजयराज चौहान ने अजमेर बसाया। उसके अनन्तर, विग्रहराज नामक एक प्रचण्ड पराक्रमी वीर ने दिल्ली सर कर ली और पूर्व-उत्तर मे सहारनपुर तक के भू-भाग पर अधिकार कर लिया। सन् 1178 मे विख्यात राजा पृथ्वीराज राज्यारूढ़ हुआ। उसने चन्देलो के प्रमार

(आल्हाखण्ड का परमर्दी) तथा गुजरात के भीम द्वितीय को युद्ध के लिए ललकारा।

तब तक पृथ्वीराज—जैसा कि पहले बताया जा चुका है—अजमेर और दिल्ली के संयुक्त राज्य का अधिपति हो चुका था। वह जितना पराक्रमी था, उतना ही उदार-हृदय भी था। ज्यो ही उसने सुना कि पंजाब का मुस्लिम शासक मुहम्मद गोरी दिल्ली के राज्य पर चढ दौडा है, पृथ्वीराज 3 हजार हाथी और 3 लाख घुडसवार लेकर मैदान मे कूद पडा। मुहम्मद ग़ोरी (थानेश्वर के पास तलावडी या तराई के मैदान से) भाग खडा हुआ। यह घटना सन् 1191 की है।

अब हुआ यह कि मुहम्मद गोरी को अपनी कमजोरी मालूम हो गयी। वह साल-भर तक फौजी तैयारी करता रहा। तैयारी के बाद, उसने पृथ्वीराज को सन्देशा भेजा कि वह इस्लाम कुबूल करे और गोरी की अधीनता स्वीकार कर ले। पृथ्वीराज को ताव आ गया। बगैर पूरी फौजी तैयार किये, पृथ्वीराज मैदान मे कूद पडा। वह वीर तथा पराक्रमी था। उसने जमकर लडाई लडी। पृथ्वीराज के असख्य सैनिक मारे गये। उसे कैद कर लिया गया। और, अन्त में, मुहम्मद गोरी ने जब उसका घनघोर अपमान करना चाहा, तब पृथ्वीराज ने उसे माकूल जवाब दिया। मुहम्मद गोरी ने, बदले मे, क़ैदी पृथ्वीराज को कत्ल कर दिया। उसके बाद मन्दिरो का विध्वस हुआ। लोग भाग खडे हुए। शेष राजपूत राजा देखते रह गये। यह घटना सन् 1192 की है। इस घटना का ऐतिहासिक महत्त्व है, क्योंकि उससे भारत मे तुर्क-अफगान साम्राज्य का सूत्रपात हुआ।

जेजाकभुक्ति के चन्देल

नन्नुक नामक किसी चन्देल सामन्त ने जेजाकभुक्ति (बुन्देलखण्ड) में अपना राज्य स्थापित किया। इस वश मे धग नामक प्रतापी राजा हुआ जिसने सन् 955 से सन् 1000 तक राज्य किया। उसके जमाने मे चन्देलो का राज्य यमुना नदी से दक्षिण मे बेतवा तक फैल गया था, पश्चिम मे कालिजर और ग्वालियर से लेकर जबलपुर तक

सामने चन्देलो की कुछ न चली। सन् 1202 म कुतुबुद्दीन ने भी चन्देलो को पराजित किया। चौदहवी सदी के मध्य तक यह राज्य किसी-न-किसी तरह चलता रहा, उसके बाद उसका लोप हो गया।

मालवे के परमार

मालवे के परमारो में सर्वाधिक प्रसिद्ध राजा हुआ भोज। उसने विद्या-प्रेम की प्राचीन भारतीय परम्परा का निर्वाह किया। उसके विद्या-प्रेम, न्याय तथा विवेक की अनगिनत कहानियाँ लोगो मे प्रचलित हैं। उसके राज्य के अन्तर्गत, भोपाल-होशगाबाद से लेकर धार और मन्दसौर तक का इलका था। भोपाल नगर (भोजपाल नाम से) उसी ने बसाया। उसने अपने राज्य का विस्तार भी किया। राजस्थान, खानदेश, कोकण और मध्य-दक्षिण के प्रदेश उसके राज्य के अन्तर्गत

थे। सन् 1008 मे उसने, दूरदर्शितापूर्वक, उत्तर पश्चिम के शाही राजा आनन्द-पाल को महमूद गज़नवी के विरुद्ध सहायता दी थी। उसने पूर्वी पजाब पर भी हाथ मारा। मध्यप्रदेश के कलचुरि और गुजरात के चालुक्यो से उसकी बडी शत्रुता रही।

यह राज्य सन् 1205 तक किसी-न-किसी तरह चलता रहा। अलाउद्दीन खिलजी ने उसे नष्ट कर दिया।

अन्य राज्य

इनके अतिरिक्त मध्यप्रदेश मे हैहय अथवा कलचुरि वश तथा बगाल मे पाल तथा सेन वश का राज्य रहा आया। दक्षिण भारत के सम्बन्ध मे हम पहले कह आये हैं।

राजपूतों की जातीय विशेषताएँ

जातीय अभिमान राजपूतो की निजी विशेषता है। जाति की मान-मर्यादा की रक्षा उनका सर्वोच्च धर्म था। देशभक्ति का अर्थ उनके लिए जातीय राज्य के प्रति भक्ति और राजवश के गौरव के प्रति निष्ठा रखना ही था। उसके लिए वे प्राण तक न्योछावर कर देते। उनकी देशभक्ति को हम 'सकीर्ण गोत्रीय देशभक्ति' कह सकते हैं। यही भाव जातीय अहम्मन्यता का रूप भी धारण कर लेता।

अभिमानी कुलीन-तन्त्र

असल मे, उनका राज्य कुल के नेताओ का निरकुश स्वेच्छाचारी शासनतन्त्र था। उनके समाजतन्त्र और राजतन्त्र को हम कुलीन-तन्त्र ही कह सकते हैं। प्रत्येक कुल, अपनी उत्पत्ति को किन्ही भारतीय देवी-देवताओ से या अति-प्राचीन वीरो से सम्बद्ध करता। कोई कहता, हमारा कुल सूर्य से उत्पन्न हुआ है, कोई कहता, चन्द्र से, कोई कहता हम अग्नि से उत्पन्न हुए हैं। पुराण-निर्माताओ ने उनकी उत्पत्ति के सम्बन्ध म अनेक कथाएँ गढ ली हैं। उनके छत्तीस कुल बताये गये हैं। कुलीन-तन्त्र मे, न केवल वशाभिमान और जातीय अभिमान की भावना थी, वरन् वीरत्व की,
[illegible] ...ना भी थी।
[illegible] आत्मगौरव
[illegible] निर्धन जनता
को कष्ट न देते, स्वामिभक्ति का पालन करते। यहाँ तक कि यदि वे मुस्लिम राजा के अधीन हो जाते, और उसको स्वामी मान लेते तो वे बराबर उसकी सेवा करते जाते थे, भले ही वह उन्हें क्यो न त्याग दे। वे अपने वचन के पक्के होते थे। पुरुषो के समान ही राजपूतो की स्त्रियाँ भी दृढ चरित्र, मान-मर्यादा के लिए प्राण देनेवाली, तथा सतीत्व, सत्य-निष्ठा और देशभक्ति के उच्च आदर्शों से प्रेरित थी। अपने सतीत्व और सम्मान के हेतु वे चिता मे कूद पडती थी। इसे जाहर प्रथा कहते हैं।

परस्पर-संघर्ष

ये कुल ज़रा-ज़रा-सी बात पर लड पडते। शत्रुता रखने की विधि भी रूढ़िबद्ध हो

गयी थी। प्रतिशोध लेना एक ऊँचा काम समझा जाता। राजपूत अपनी आन-बान-
[illegible] के राज्यो की राजकुमारियो का
[illegible] रियो से वे अपना विवाह करते,
[illegible] त्साह के वे ज्वलन्त प्रतीक थे।
[illegible] अधिक घाव लगते, वह राजा
उतना ही श्रेष्ठ और श्रद्धास्पद हो उठता। दूसरे राज्य की, वह फिर अन्य राजपूत राज्य ही क्यो न सही, मान-मर्यादा हरण कर, अपनी शान बढाना अच्छा समझा जाता।

संकीर्ण दृष्टि

उनमे राजनैतिक सूझ-बूझ का सर्वथा अभाव था, वे दूरदर्शी नही थे, एकताबद्ध नही हो पाते थे। यदि कभी कोई राजपूत राजा किसी अन्य राजपूत राजा की सहायता के लिए दौड भी पडता था, तो इसका कारण केवल बन्धु-भाव था, राजनैतिक स्वरूप से प्रेरित होकर किया गया कार्य वह नही था। विदेशी आक्रान्ता एक के बाद एक राजपूत राज्य अधिकृत करता जाता था। बलशाली राजपूत वश उसे दूर से ही देखते रहते थे। उनके पास राजनैतिक दृष्टि नही थी।

धर्म-भाव

वे भयानक धर्माभिमानी थे। किन्तु सोमनाथ के मन्दिर को लुटते देख सकते थे, सघबद्ध होकर, वे विदेशी अत्याचारियो का हाथ नही थाम सकते थे। धर्मपरायण वे अवश्य थे किन्तु धर्म को उन्होने सकुचित अर्थ मे ग्रहण किया—उनका धर्म कुलगत मान-मर्यादा, जातीय रीति-नियम और रूढि, तथा अनेको सम्प्रदायो मे विश्वास तक ही सीमित रहा।

राज्य-व्यवस्था

राजपूत नरेश निरकुश स्वेच्छाचारी राजा थे। एक राजा के अन्तर्गत कई माण्डलिक और सामन्त रहते। इन सामन्तो के भी अपने छोटे उप-राज्य या कहिए—जागीर होती। जागीरदार प्रजा से कर (विशेषकर भूमिकर) वसूल करता, और उसके आधार पर वह अपनी शक्ति बनाता। ये जागीरदार या सामन्त ही राजा की असली शक्ति होते। इन सामन्तो के पास अपनी-अपनी सेनाएँ भी होती। यद्यपि वे राजा को अपनी आय का एक विशेष भाग देते, फिर भी इनकी अपनी आर्थिक और सैनिक सत्ता रहती। राजा को कभी-कभी इनके सामने झुक जाना पडता। स्वामी-भक्ति का आदर्श, जातीय गौरव-भावना आदि के फलस्वरूप, राजा और उसके सामन्तो मे भावनात्मक ऐक्य रहता।

युद्ध-व्यवसायी

वस्तुतः, राजपूत युद्ध-व्यवसायी थे। शासन-व्यवस्था का विशाल और सर्वांगीण प्रबन्ध और शासन के लोकोपयोगी भिन्न-भिन्न विभाग, जो हमे मौर्य अथवा गुप्त राजकीय व्यवस्था मे दिखायी देते हैं, राजपूत शासन मे नही पाये जाते।

राज्य-व्यवस्था तथा समाज-तन्त्र के विकास की दृष्टि से, राजपूत लोग उन्नति के प्राचीन स्तर से भी बहुत-बहुत नीचे आ गये थे। उनके पास देश, समाज या मानवता की उन्नति का कोई विशाल या व्यापक स्वप्न नहीं था।

राजपूत कौन थे ?

'राजपूत' शब्द 'राजपुत्र' का विकृत रूप है। सम्भवत , ये शक, हूण, कुषाण, गुर्जर, आभीर आदि जातियो की सन्तान थे। यह सही है कि उन्हे आर्य धर्म मे दीक्षित किया जा चुका था, किन्तु लडते भिडते रहने की आदत गोत्र-अभिमान, शुद्ध रक्त का अभिमान, धर्मसम्बन्धी सकीर्ण भाव-दृष्टि, प्रतिशोध प्रवृत्ति, यह सूचित करती है कि उनकी पूर्वकालीन कबीलेवाली मनोवृत्ति अभी शेष थी। उन्हे सबसे बडी चिन्ता अपने जाति (कबीले) की गौरव रक्षा के सम्बन्ध मे रहती ही थी। केवल अपने गोत्र या कुल की भक्ति ही सर्वोपरि थी।

राजपूतों की अन्य विशेषताएँ

उनमे बाल विवाह प्रचलित था। विधवा-विवाह नही होता था। अधिक कन्याएँ उत्पन्न होने पर उनका वध कर दिया जाता। सती प्रथा खूब प्रचलित थी। पति के हार जाने पर स्त्रियाँ जौहर करतीं। (जौहर प्रथा का स्पष्टीकरण किया जा चुका है)। वे अफीम बहुत खाते। वे स्वाभिमानी, भोले भाले, सीधे-सादे, दिल के सच्चे, बात के पक्के, कट-मरन के लिए तैयार, ईमानदार और वफादार लोग थे। इसमें क्या आश्चर्य कि उनके इन गुणो को पहचानकर, मुगल सम्राट अकबर उनकी सेवाएँ प्राप्त करे और उनके साहचर्य का उचित राजनैतिक उपयोग करे।।

भारत-पराजय के लिए कौन जिम्मेदार ?

साधारणत , अब तक भारत-पराजय का दोष राजपूत राजाओ पर मढा जाता रहा। वे उत्तर तथा पश्चिम भारत के स्वामी थे। अगर उनमे राजनैतिक एकता, सूझ बूझ और विवेक होता, तो नि सन्देह वे विदेशी आक्रान्ताओ को हटा सकते थे। किन्तु वे जडीभूत और स्थिर हो गये थे—वे सिर्फ आपस मे ही मार-काट मचा सकते थे। यहाँ तक कि उनकी युद्ध-कला भी पुरानी पड चुकी थी। उनमे ताजगी, स्फूर्ति और नयी-नयी बातें सीखने और ज्ञान-सवर्धन करने की शक्ति नही रही थी।

भारत ने शेष जग
के पूर्व, भारतीय राजपू
थे। अफगानिस्तान मे
समाज और देश मे जागृति होती तो उन मध्य-एशियायी प्रदेशो से गहरा सम्पर्क रखा जा सकता था और ज्ञान-वर्धन द्वारा स्वय का विकास किया जा सकता था। साथ ही, वहाँ की उलट-पुलट पर भी निगाह रखकर बचाव किया जा सकता था।

ह्रास-काल

किन्तु, उन दिनो सारा भारतीय समाज ही जडीभूत हो गया था। नालन्दा-

विक्रमशिला जैसे विश्व विद्यालयो मे तन्त्र-मन्त्र प्रधान विषय हो गये थे। पूर्वी भारत में बौद्ध धर्म विकृत होकर, वज्रयान का रूप धारण कर चुका था। निषिद्ध समझे जानेवाले व्यवहारो को मुक्ति का मार्ग समझा गया था। तन्त्र-मन्त्र अब वामाचार बन गया। यह वामाचार शाक्तो और शैवो मे घुस गया। अघोरपन्थी तथा कापालिक, कालमुख और तरह-तरह के तान्त्रिक, त्रिपुर सुन्दरी के उपासक और तारा के भक्त, चमत्कारो और सिद्धियो के बखान से राजा और किसान दोनो को प्रभावित करने लगे। अनकानक साधु और योगी, सिद्ध और नाथ देश-भर का चक्कर लगाते थे। वे कहाँ नही थे? गौड और बगाल नेपाल और आसाम से लेकर वे गुजरात के सोमनाथ मन्दिर मे भी अपनी धूनी रमाये थे। वे पश्चिमी पजाब मे नमक की पहाडी स लेकर तो अफग़ानिस्तान तक मे भ्रमण करते थे। घर मे लोग शुद्ध शैव मत या भागवत मत का अनुगमन करते, किन्तु साथ ही, वे अघोरियो और तान्त्रिको पर भी श्रद्धा रखते।¹ धर्म का सच्चा स्वरूप गौण हो गया, अन्ध-विश्वास ने प्रधान स्थान ग्रहण करके, आँख मूदकर, गाँजा और चरस की दम मारी।

जडीभूत अभिरुचि

भारतीय लोक भाषाओ म साहित्य रचा जाने लगा। किन्तु मुख्य विषय केवल तीन ही थे (1) वैराग्य या नीति, (2) शृगार, (3) युद्ध। राजाओ की स्तुति और प्रशसा म अत्युक्तिपूर्ण वर्णनो से युक्त उनक सच्चे और झूठे पराक्रमो के गीत गाये जाने लगे। आख्यान-काव्य भी लिखे गये, जिनमे राजाओ के युद्धो और उनके विवाहो का बढा-चढाकर वर्णन किया जाता। इन्हे 'रासो' ग्रन्थ कहा गया। इनमें सर्वाधिक श्रेष्ठ और सुन्दर पृथ्वीराज रासो है, जिसम अजमेर और दिल्ली के राजा पृथ्वीराज की जीवन गाथा है। इस ग्रन्थ म कई स्थानो पर सुन्दर वर्णन हुए है। सस्कृत म भी अनक ग्रन्थो की रचना हुई, इनम विलासितापूर्ण शृगार भावना ही परिलक्षित हुई। मूर्तिकला मे भी उत्कट शृगार प्रकट हुआ। नारी केवल उपभोग्या हो उठी।

ज्वलन्त दीपक

मध्य युग के प्रारम्भिक चरणो मे हमे कुछ-न-कुछ अशो म प्राचीन भारत की गौरव-शाली परम्पराएँ देखने को मिलती हैं। किन्तु, ज्यो-ज्यो हम सन् 1000 के आगे बढते जाते हैं, साहित्यिक अभिरुचि अधिकाधिक चमत्कारवादी, अधिकाधिक जडीभूत दृष्टिगोचर होती जाती है। जिन प्रारम्भिक मध्ययुगीन राजाओ के यहाँ प्राचीन गौरवपूर्ण परम्पराएँ (चाहे व थोडी-बहुत विकारग्रस्त क्यो न हो गयी हो) हमे प्राप्त होती हैं, उनम राजा मुज, राजा भोज, लक्ष्मणसन और बल्लालसेन प्रमुख हैं। उन्होने धर्म, दर्शन, विज्ञान, गणित आदि के विद्वानो को प्रश्रय दिया। काव्य, नाटक, काव्य मीमासा, छन्द, व्याकरण, गणित, प्रहसन आदि भिन्न-भिन्न विषयो के मूल्यवान ग्रन्थ सामने आय। मध्य युग के प्रारम्भिक चरणो म शिक्षित व्यक्तियो की भाषा अधिकतर सस्कृत ही थी। अतएव, ग्रन्थ-रचना मुख्यत सस्कृत मे ही होती थी। कभी कभी कुछ जैन ग्रन्थ प्राकृत अथवा अपभ्र श म लिखे जाते। ज्यो-ज्यो हम सन् 1000 को पार कर, सन् 1200 के निकट पहुँचते हैं त्यो-त्यो

प्रादेशिक भाषाओं में साहित्यिक विकास के चिन्ह हमें दिखायी देने लगते हैं। साहित्यिक अभिरुचि तो बिगड़ गयी थी। अब उसमें हमें शब्द-क्रीड़ा, उत्कट शृंगार और रूढ़िबद्धता दिखाई देने लगती है।

विशाखदत्त नामक एक लेखक ने 'मुद्रा राक्षस' नामक एक नाटक लिखा, उसमें हमें जिस समाज के दर्शन होते हैं, उसका प्रगल्भता नहीं हो पाती। चन्देल राजा हर्ष के राजकवि भीम (9वीं सदी), कल्चुरि के यहाँ मुरारि (9वीं सदी), कन्नौज के राजकवि राजशेखर और क्षेमेश्वर (10वीं सदी) की रचनाओं में भयानक पौराणिक हैं। वे राजकीय जीवन के चित्र हैं या प्रहसन हैं। उनमें कोई स्वाभाविक भावोन्मेष नहीं है। सोमदेव कृत 'ललित विग्रहराज नाटक' बीसलदेव नामक ऐतिहासिक पुरुष के जीवन के एक प्रसंग को लेकर लिखा गया है। उसमें भी वही रूढ़िवादिता तथा चमत्कारपूर्ण व्यंजनाएँ और अत्युक्तियाँ हैं।

12वीं सदी में कन्नौज के कवि श्रीहर्ष ने नैषध चरित लिखा। इसके सौ साल पहले काश्मीर के कवि क्षेमेन्द्र ने भी अनेक सुन्दर रचनाएँ कीं, जिसमें भारतमंजरी, रामायणमंजरी आदि बहुत प्रसिद्ध हैं। जैनों न और बौद्धों ने भी काव्य रचना की। आठवीं सदी में पार्श्वाभ्युदय के रचयिता जिनसेन थे। काव्य शास्त्र की भी विशेष उन्नति हुई। विज्ञान, आयुर्वेद, छन्दशास्त्र, गणित, ज्योतिष, संगीतशास्त्र, शिल्पशास्त्र, धर्मशास्त्र—यहाँ तक कि इतिहास (कश्मीर के कवि कल्हण न राजतरंगिणी लिखी) का भी साहित्य सामने आया।

लोककथाओं की तो इन दिनों बाढ़ आ गयी। इन्हें साहित्यिक रूप दिया गया। 11वीं सदी में काश्मीर के कवि क्षेमेन्द्र ने बृहत्कथामंजरी लिखी, सोमदेव ने कथासरित्सागर की रचना की। उसी प्रकार, बेताल पंच विंशतिका (बेताल पच्चीसी) और सिंहासनद्वात्रिंशिका (सिंहासन बत्तीसी) भी प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं।

राजपूत शासक योग्य निर्माता थे। उन्होंने मन्दिर, घाट, तालाब, किले, बुर्ज, राजप्रासाद खूब ही बनवाये। मध्यप्रदेश का खजुराहो मन्दिर उन्हीं के कला-प्रेम का स्मारक है।

राजपूत काल में मूर्तिकला भी खूब विकसित हुई। किन्तु, उसमें स्वाभाविक भावोन्मेष नहीं। केवल अतिरंजना द्वारा लालित्य बढ़ाने की चेष्टा है।

दक्षिण भारत

शंकराचार्य

हर्षवर्धन के अन्त के बाद में, प्राचीन युग एकदम लुप्त नहीं हुआ। दक्षिण भारत में वह कुछ अधिक समय तक रहा। केरल म, नम्बूद्रि ब्राह्मण जाति में शंकराचार्य जैसे महापण्डित हुए, जिन्होंने बौद्ध दर्शन का खण्डन किया और वेदान्त मत का पुनरुज्जीवन किया। उन्होंने अपने उपदेशों के प्रचार के लिए पश्चिम में द्वारका, पूर्व में जगन्नाथ पुरी, उत्तर म बदरीनाथ और दक्षिण में शृंगेरी नामक स्थानों में अपने मठ स्थापित किये। इन मठों में वेदान्त का अध्यापन होता। मठ के साधु संगठित रूप से वेदान्त का प्रचार करते। उन्होंने सृष्टि, आत्मा, परमात्मा सम्बन्धी प्रश्नों पर विचार करते हुए एक वेद-परम्परानुकूल सुसंगठित दर्शन प्रस्तुत किया। शंकराचार्य का दर्शन विश्व की श्रेष्ठतम उपलब्धियों में से है। शंकराचार्य,

'जगद्गुरु', कहलाते। वैसी ही उनमे विलक्षण प्रतिभा थी। शंकराचार्य के दर्शन का महत्त्व इसमे है कि उन्होन नीरस कर्मकाण्ड को निरर्थक ठहराया। किन्तु वे जातिवाद के कट्टर समर्थक थे। उन्होंने जगत् को मिथ्या और माया बताया।

रामानुजाचार्य

दक्षिण मे बारहवी सदी मे रामानुजाचार्य हुए, उन्होने विशिष्टाद्वैत मत की स्थापना की। उन्होने इस जगत् को माया मानने से इन्कार कर दिया। मोक्ष का मार्ग ईश्वर की सच्ची भक्ति है। उन्होने अस्पृश्य जाति तक के लिए भक्ति का मार्ग खोल दिया। शंकराचार्य ने अपने विचारो तथा प्रयत्नो द्वारा वर्ण-व्यवस्था तथा जाति-व्यवस्था को दृढ किया था। रामानुजाचार्य ने ज्यादा उदारता बरती। ईश्वर तो केवल अपने भक्त की भावना देखता है, वह उसकी जाति या वर्ण नही देखता—रामानुजाचार्य के इस मत का आगे चलकर बडा क्रान्तिकारी परिणाम हुआ। रामानुजाचार्य वैष्णव थे। उनके प्रभाव से वैष्णव मत का काफी प्रचार हुआ।

शैव धर्म

यद्यपि शैव धर्म बिगडकर कापालिक और कालमुख जैसे सम्प्रदायो मे बँट गया था, फिर भी काश्मीर मे उस का प्राजल रूप सुरक्षित था। नवी और दसवी सदी के बीच, काश्मीर मे शैव धर्म ने अद्वैतवाद को आत्मसात कर लिया। उसमे उच्च दार्शनिक भाव थे। उसी प्रकार, शैव धर्म को दक्षिण के चोल और पाण्ड्य राजाओ ने आश्रय दिया।

लिंगायत

दक्षिण मे एक शैव सम्प्रदाय था, जिसका नाम था लिंगायत या वीरशैव। ये ब्राह्मण-विरोधी, वैदिक-परम्परा विरोधी, तप-विरोधी, तीर्थ यात्रा-विरोधी तो थे ही, वे साथ ही बाल-विवाह का विरोध करते, विधवा-विवाह का समर्थन करते, मुर्दों को गाडते और शिवलिंग की पूजा करते थे। वैदिक परम्परा के विरोध की भी परम्परा इस प्रकार चल रही थी।

भारत में इस्लाम का आगमन तथा दिल्ली सल्तनत

भारत मे इस्लाम के आगमन से नये युग का सूत्रपात होता है, दिल्ली मे मुस्लिम साम्राज्य की स्थापना हो जाती है। केन्द्रीय शासन से मुक्त होकर, टुकडो-टुकडो मे बँटकर बिखर जाने की ऐतिहासिक-राजनैतिक प्रवृत्ति उस समय भी जारी रहती है। प्रान्तीय मुस्लिम राज्यो का

विकास होता है। प्रारम्भ मे, खोई हुई अपनी स्वतन्त्रता पुन. प्राप्त करने की कोशिशें राजपूतो द्वारा की जाती हैं, नये स्वतन्त्र राजपूत राज्य बन जाते हैं। तैमूरलंग के आक्रमण सिद्ध कर देते हैं कि मुस्लिम सल्तनत की नींव कितनी कमज़ोर है।

हज़रत मुहम्मद

सन् 570 मे हज़रत मुहम्मद के जन्म के पूर्व, अरब जाति अज्ञान के अन्धकार मे पडी हुई थी। मुहम्मद साहब कुरैश जाति मे जन्मे। जन्म के उपरान्त ही उनके पिता की मृत्यु हो गयी। अपने चाचा अबू तालिब की देख-रेख मे उन्हे शिक्षा दी गयी। नवयुवक होने पर, वे सीरिया चले गये, वहाँ उन्हे एकेश्वरवाद की विचार-धारा प्राप्त हुई। एक दिन उन्हे इलहाम (ईश्वरीय सन्देश) मिला। उन्होने अरबो मे एकेश्वरवाद का प्रचार किया। उन्होंने मूर्तिपूजा के विरुद्ध उपदेश देते हुए कहा कि ईश्वर एक है, और सबको उसमे श्रद्धा रखना चाहिए, और उसकी आज्ञा का पालन करना चाहिए। उनके कुरैश कबीले के लोग उन पर बिगड पड़े, उन्हे मार डालने की ठानी। इस पर मुहम्मद साहब सन् 622 मे मदीना आ गये। उस तिथि से इस्लाम का हिजरी सन् शुरू होता है।

इस्लाम का अर्थ है—'शान्ति' अथवा 'ईश्वरीय इच्छा के प्रति समर्पित होना।' इस्लाम से ही, मुसलमान शब्द बना जिसका अर्थ होता है, इस्लाम का अनुयायी।

इस्लाम धर्म सरल है। ईश्वर तथा उसके दूत (मुहम्मद साहब) मे श्रद्धा रखना, तथा नैतिक आचरण करना और धर्म के नियमो के अनुसार, सतर्कतापूर्वक जीवनयापन करना ही इस्लाम है। ईश्वर का कोई आकार नही है, वह निर्गुण है, किन्तु वह जगत् का कर्ता और अनुशासक है। जितने भी जीव हैं सब उसके 'बन्दे' हैं, अर्थात दास हैं। इन बन्दो का यह कर्तव्य है कि वे ईश्वर की इबादत (पूजा) करें। ईश्वर की प्रार्थना के लिए, किसी मध्यस्थ पुरोहित की आवश्यकता नहीं। हज़रत मुहम्मद केवल उस ईश्वर के सन्देशवाहक हैं। एक सुनिश्चित दिन, ईश्वर न्यायदान करता है, मुहम्मद साहब पवित्र आत्माओ की ओर से उनकी सिफारिश करते हैं। जो पापी हैं उन्हें दोज़ख (नरक) भेजा जाता है, जो पुण्यात्मा हैं, वे जन्नत (स्वर्ग) पहुँचते हैं। जन्नत मे पुण्यात्माओं को सभी सुख प्राप्त होते हैं।

मुहम्मद साहब समय-समय पर समाधिस्थ हो जाते। समाधि से जागने पर, उनके मुँह से बोल निकल पडते। उनके वचनो का जो सग्रह है, उसे क़ुरान कहा जाता है। वह मुसलमानों का पवित्र ग्रन्थ है। दिन मे पाँच बार नमाज़ पढना, साल मे रमज़ान महीने के सब दिन व्रत रखना, अपनी आय मे से प्रतिवर्ष दान देना, भले ही वह बहुत थोडा क्यो न हो, मुस्लिम समाज के कल्याण के लिए एक निश्चित कर चुकाना आवश्यक है। अपने जीवन मे एक बार मक्के की यात्रा करना भी ज़रूरी है—यह यात्रा 'हज' कहलाती है।

इस्लाम 'शान्ति का मार्ग' है। उसके भीतर, सब एक-बराबर हैं—स्त्री और पुरुष, ग़रीब और अमीर, शासक और शासित। धर्म के अन्तर्गत सामाजिक समानता है। ईश्वर और उसके रसूल को न मानना कुफ़्र है। जो कुफ़्र करते हैं, वे काफ़िर हैं। काफ़िरो को धर्म के अन्तर्गत लाना पुण्यकार्य है।

मुहम्मद साहब समाज-सुधारक थे। आपस मे मार-काट मचानेवाली अरब

जाति क्रमश इस्लाम—'शान्ति के मार्ग'—पर अग्रसर हो गयी। मुहम्मद साहब ने मदिरा सेवन, जुआ खेलना आदि बुराइयो को दूर किया, और अरबो मे एक नयी शक्ति उत्पन्न कर दी। उन्हे सगठित और एकताबद्ध कर दिया। अरब समाज अग्रसर हो उठा।

हजरत मुहम्मद केवल समाज-सुधारक या धर्म-सस्थापक ही नही थे, वे अरबो के राष्ट्रीय नेता भी थे। उन्होने विविध अरब राज्यो का अन्त कर दिया और सबल जातीय राज्य की स्थापना की। सन् 632 मे उनका देहान्त हो गया।

उनक उत्तराधिकारी खलीफाओ (धर्म राजा) के समय, अरबो ने अपनी दिग्विजय यात्रा आरम्भ की। इधर, पूरब मे वे भारत के उत्तर की तरफ पहुँच गये, उधर वे एशिया मायनर और इजिप्ट पादाक्रान्त करते हुए, उत्तर अफ्रीका के किनारे-किनारे आगे बढत चले गये। शीघ्र ही उन्होने मोरक्को पर विजय प्राप्त कर ली और यूरोप के एक देश स्पेन को अपने कब्जे मे कर लिया। इस प्रकार, आठवी सदी के पूर्व ही, उनका साम्राज्य स्पेन से पामीर तक फैल गया।

दक्षिण भारत मे अरब आगमन

अब उन्होने भारत की तरफ नजर घुमायी। उत्तर-पश्चिम के मार्ग से आने के पहले, उनकी जल-सेना दक्षिण-पश्चिम के समुद्र तट पर आ लगी थी। अरब बहुत अच्छे मल्लाह थ, साहसी व्यापारी थे, उनकी बस्तियाँ न केवल अरबस्तान मे वरन् अफ्रीका के समुद्री तट पर भी थी। इस्लाम के जन्म के पूर्व ही, बहुत-से अरब दक्षिण भारत के समुद्रतटीय नगरो म आबाद थे। इस्लाम के आरम्भ के बाद, नवी सदी म, वे पश्चिमी समुद्र तट पर फैल गये। व्यापारी होने के नाते उनका भारत म खूब स्वागत किया गया, उन्हे तरह-तरह की सुविधाएँ दी गयी। मलाबार के हिन्दू राजाओ ने उन्हे प्रभाव के पद और विशेषाधिकार दिये। कालीकट के जामोरिन न उन्हे खूब प्रोत्साहन दिया। सौराष्ट्र के बलभी राजा ने भी इसी नीति का अनुसरण किया। अरबो के बहुतेरे नेता, भारतीय राज्यो मे, मन्त्री, जल-सेनापति, राजदूत और यहाँ तक कि किसान बन गये। उन्होने शान्तिपूर्वक अपने धर्म का भी प्रचार किया। मस्जिदें बनायी, कब्रें बनायी। ये स्थान उनके सन्तो और धर्म-प्रचारको क केन्द्र बन गये। इसके फलस्वरूप, दक्षिण भारत की सास्कृतिक प्रवृत्तियाँ इस्लाम से प्रभावित हुई। दक्षिण भारत मे इस्लाम सातवी सदी के अन्त तक पहुँच चुका था।

अरब आक्रमण

सन् 712 ई मे बगदाद के खलीफा के एक सेनापति मुहम्मद बिन कासिम ने उत्तर-पश्चिम के मार्ग से भारत पर आक्रमण किया। भारत म उन दिनो कोई ऐसी शक्ति न थी, जो उनके आक्रमण को रोक सके। सिन्ध का राजा दाहिर लडाई मे मारा गया। सिन्ध और पश्चिमी पजाब का इलाका अरबो के हाथ लगा।

अरबो ने अब भारत के अन्य प्रदेशो पर हमले किये। किन्तु, गुर्जर-प्रतिहार और चालुक्य राजाओ ने उन्हे अपनी शक्ति का परिचय दिया। उन्होने अरब-सनाओ का मुकाबला करन मे अद्भुत वीरता प्रदर्शित की। फलत, अरबो मे पूर्व की ओर बढ़न की हिम्मत नही हुई।

सांस्कृतिक सम्पर्क

राजनैतिक दृष्टि से, अरब, भारत के सर्वप्रथम मुस्लिम शासक थे। भारत के सम्पर्क में आकर उन्होंने भारतीय विद्याएँ सीखीं। दर्शन, ज्योतिष, गणित, चिकित्सा-विज्ञान, रसायन शास्त्र और शासन कला अरबों ने भारत से ली और लेकर सारे यूरोप में, जब कि वह अज्ञान के अन्धकार में पड़ा हुआ था, उनका प्रचार किया। मध्य एशिया में बौद्ध काल में ही भारतीय संस्कृति का विस्तार हो चुका था। वहाँ इस्लाम फैल जाने के अनन्तर, कई लोग जो पहले ब्राह्मण और बौद्ध थे अब मुसलमान हो गये, किन्तु उन्हें अभी भी भारत की विद्या और समृद्धि का ज्ञान था। ऐसा ही एक व्यक्ति प्रसिद्ध खलीफा हारून अल रशीद का वजीर बरमक था। वह बल्ख का निवासी था, उसके पूर्वज किसी बौद्ध मठ में पदाधिकारी रह चुके थे। बरमक अभी भी भारत के बौद्धों और अन्य विद्वानों से सम्पर्क स्थापित किये हुए था। उसने विशेष आमन्त्रण देकर अनेक भारतीय विद्वानों को बगदाद बुलाया और उन्हें उच्च पद प्रदान किये। यह घटना सन् 786 से 809 तक के काल की है। इसके पूर्व, खलीफ़ा मन्सूर (753-774 ई.) ने भी भारत के अनेक विद्वानों, पण्डितों और ज्योतिषियों को बगदाद बुलवाया था, और उनके द्वारा भारतीय ज्ञान-विज्ञान की पुस्तकें अरबी में अनुवादित करवायीं।

इस प्रकार, मध्ययुग के अज्ञान-अन्धकार में, जब कि यूरोप गहरी नींद ले रहा था, अरबों ने एक ओर यूनान की विद्या, तो दूसरी ओर, भारत की विद्या ग्रहण करके उन्हें और विकसित किया।

अरबों की सत्ता शीघ्र ही क्षीण होने लगी। गुर्जर-प्रतिहार नागभट्ट ने उन्हें पंजाब में थाम कर रखा था। उसी प्रकार सन् 884 ई. में जब उनके एक नेता ने कच्छ पर हमला करने का प्रयत्न किया तो गुर्जर के राजा मिहिरभोज ने उन्हें परास्त कर दिया। सिन्ध तथा मुलतान का यह अरब साम्राज्य छोटे-छोटे टुकड़ों में बँट गया। अरबों ने राज्य का प्रशासन ब्राह्मण कर्मचारियों के हाथ में रक्खा था।

महमूद ग़ज़नवी

अरबों की भारत विजय के उपरान्त, दसवीं सदी के उत्तरार्ध में ग़ज़नी के तुर्क वंश के दो राजा सुबुक्तगीन और उसके पुत्र महमूद ग़ज़नवी ने भारत पर आक्रमण किये। उन्होंने पंजाब में शाही वंश के राज्य को नष्ट कर, उसे अपने राज्य में मिला लिया। उसने भारत पर सत्रह आक्रमण किये। यह सही है कि वह कोई स्थायी साम्राज्य नहीं बना सका; किन्तु उसके हमलों से यह बात साबित हो गयी कि भारत, सामाजिक और राजनैतिक दृष्टि से बहुत कमजोर है।

दक्षिण पश्चिम में काठियावाड़ तक उसने धावा मारा और सोमनाथ के मन्दिर को उसने तोड़ दिया। मन्दिर की मूर्ति में अटूट धन था। मन्दिर कापालिकों और अघोरपन्थियों तथा तरह-तरह के साधु-सन्यासियों का केन्द्र था। सम्पत्ति का हरण करके जब वह लौट रहा था तो धारा नगरी का विख्यात राजा भोज उसके पीछे पड़ गया। महमूद ग़ज़नवी भाग खड़ा हुआ।

यद्यपि अभी भी पराक्रमी राजा वर्तमान थे, फिर भी पश्चिमी पंजाब और सिन्ध तुर्कों के हाथ में ही रहे। सिर्फ़ यह कहा जा सकता है कि कुछ पराक्रमी

राजाओं के कारण वे पूरा भारत सर नहीं कर सके। गजनवी ने ग्यारहवीं सदी के आरम्भ म एक आक्रमण और किया, किन्तु उसका विशेष प्रभाव नहीं हुआ।

मुहम्मद गोरी

गोर वश के शहाबुद्दीन गोरी ने सन् 1973 में गजनी फतह कर ली। अब इसके बाद, उसने दस वर्ष के भीतर, मुलतान, लाहौर और सिन्ध पर कब्जा कर लिया। दिल्ली और कन्नौज के चौहान और गहरवाल राजाओं से उसने अनेक युद्ध किये, जिनम वह बहुत बार हारता रहा। किन्तु सन् 1192 में उसने दिल्ली के राजा पृथ्वीराज चौहान को परास्त कर दिया और उसके दो साल बाद कन्नौज के जयचन्द्र को। इन दो राजाओं ने आपस म मिलकर कभी उसस युद्ध नहीं किया। उसके बाद, उसने अजमेर और बनारस को कब्जे म ले लिया। उसके सेनापति कुतुबुद्दीन ऐबक और मुहम्मद बख्तियार खिलजी ने ग्वालियर, कालिंजर, बगाल और बिहार को कब्जे में ले लिया।

दिल्ली का मुस्लिम राज्य

गुलाम वंश

गोरी की मृत्यु के पश्चात उसका दास कुतुबुद्दीन ऐबक, जो योग्य सेनापति था, दिल्ली का शासक बन गया। उसने अपने राज्य का विस्तार किया। वह दास होने के कारण, उसके वश को गुलाम वश कहा जाता है। इस वश मे आगे चलकर इल्तुतमिश नामक राजा हुआ, जिसको अपने सामन्तों के अनेक विद्रोहों का सामना करना पड़ा। उसने उनका दमन करके मालवा तथा सिन्ध को राज्य मे मिला लिया। उसी वश म, आगे चलकर, बलबन हुआ, जिसे (एशिया तथा यूरोप मे एक के बाद एक विजय प्राप्त करनेवाले) प्रसिद्ध मगोल सम्राट चगेजखान की सेनाओं का प्रतिरोध करना पड़ा। उसने अपने प्रान्तपतियों के विद्रोहों को कुचला और हिन्दू राजाओं को दबा डाला। भारत मे मुस्लिम साम्राज्य को स्थायी बनाने का उसने प्रयत्न किया। बलबन के बाद, कैकुबाद नामक एक राजा का वध करके, जलालुद्दीन खिलजी नामक एक सरदार दिल्ली के तख्त पर बैठ गया। यह वश सन 1206 से 1290 तक रहा आया।

खिलजी वंश

जलालुद्दीन के भतीजे अलाउद्दीन ने अपने चाचा का कत्ल करके खुद को सुलतान जाहिर किया। अलाउद्दीन खिलजी एक विलक्षण शासक था। वह जितना क्रूर था, उतना चालाक था, जितना चालाक था उतना ही वह स्वतन्त्र बुद्धिवाला शासक था। अलाउद्दीन, उत्तर भारत म साम्राज्य की जड़ें मजबूत करके, दक्षिण भारत की तरफ बढा। उसने अनहिलवाड़े के चालुक्य राजा को पराजित किया तथा देवगिरी के यादव राज्य को नष्टकर डाला। पर वह पूरे राजपूताने को नहीं ले पाया। मेवाड़ तथा अन्य राज्यों ने हम्मीर के नेतृत्व मे प्रबल पराक्रम किया था। वहाँ से असफल होकर ही वह दक्षिण की ओर मुड़ा था।

उसने सारी सत्ता अपने हाथों म केंद्रित कर ली। उसने इस्लामी सिद्धान्त के

विरुद्ध यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया कि राज-प्रबन्ध और सुव्यवस्था का अन्तिम उत्तरदायित्व राजा पर है, न कि उलेमा (मुल्लाओं) पर। उसने मुल्लाओं का प्रभाव कम कर दिया। भारत में धर्म-निरपेक्ष राज्य की प्रवृत्ति दिखानेवाला वह पहला शासक है, इसलिए उसका महत्त्व है। साथ ही, उसने अर्थ-व्यवस्था में भी दखल दिया। चीज़ों की कीमतें तै कर दीं, कोई व्यापारी उससे ज्यादा कीमत नहीं ले सकता था। उसी प्रकार, उसने सैनिक शासन में भी सुधार किये। अलाउद्दीन खिलजी एक बे-पढ़ा लिक्खा सिपाही आदमी था, उसमें प्रबन्ध और संगठन की अद्भुत शक्ति थी। उसके बनाये नियमों की अवहेलना करनेवालों को वह कठोर दण्ड देता था। अलाउद्दीन खिलजी के बाद कोई विशेष महत्त्वपूर्ण शासक नहीं हुआ। उसके अन्तिम राजा,'को मारकर ग्यासुद्दीन तुगलक गद्दी पर बैठा। यह राजवंश सन् 1290 से 1320 तक चला।

तुगलक वंश

ग्यासुद्दीन तुगलक और उसके पुत्र मुहम्मद तुगलक ने मुस्लिम साम्राज्य को दूर-दूर तक फैला दिया। उन्होंने दक्षिण के द्वार-समुद्र, वारंगल और देवगिरी को अपने साम्राज्य में मिला लिया।

मुहम्मद तुग़लक़ : (1324 से 1353)

यह सुलतान मौलिक सूझ-बूझ का आदमी था। वह फारसी का विद्वान था। दर्शन तथा साहित्य के क्षेत्र में, उसकी बराबरी करनेवाला शायद ही कोई राजा हो। वह युद्ध-कला-प्रवीण था, साथ ही उसमें ज़बर्दस्त न्याय-भावना थी। उसे कुछ लोग पागल कहते—उसने अपने कामों से मुस्लिम समाज में लोकप्रियता खो दी थी।

पहली बात तो यह है, न्याय-निर्णय के समय वह यह नहीं देखता था कि कौन बड़ा है, और कौन छोटा है। जहाँ तक बने वहाँ तक वह पक्षपातहीन रहता था। दूसरे, योग्य विदेशी व्यक्तियों को उसने ऊँची जगहें देकर रक्खी थीं। तीसरी बात यह है कि वह पहला मुस्लिम शासक था, जो धर्म के क्षेत्र में उदार था। इसलिए वह कट्टरपन्थी मुस्लिमों में अप्रिय हो उठा था। विशाल साम्राज्य का सुव्यवस्थित शासन करने के लिए उसने, साम्राज्य के मध्य में दौलताबाद में राजधानी बनायी। किन्तु, जब तरह-तरह की अड़चनें आयीं तो निर्णय बदल दिया। इसी प्रकार, उसने मुद्रा-सुधार किया। वह प्रगतिशील विचारों का था, मौलिक सूझ-बूझ का आदमी था, किन्तु जिस समाज का वह शासक था, वह समाज बहुत धीरे चल रहा था, मुहम्मद तुग़लक़ आगे एकदम तेज़ बढ़ जाना चाहता था। शायद यही कारण है कि वह पागल कहा गया। फिर भी, जिस शासन को उसने परिचालित किया उसमें उसके व्यक्तित्व की न्याय-भावना, सहिष्णुता और उदारता प्रतिबिम्बित हो उठी।

किन्तु, उसकी इस उदारता की नीति के फलस्वरूप, असन्तुष्ट सरदारों ने विद्रोह कर दिया। राजपूत राजा तो स्वतन्त्र होने की राह देख ही रहे थे। परिणामतः उसकी मृत्यु के बाद साम्राज्य छिन्न-भिन्न होने लगा।

फ़िरोज़ तुग़लक़

मुहम्मद तुग़लक़ की मृत्यु के बाद फ़िरोज़ तुग़लक़ गद्दी पर बैठा। उसने विजय की

नीति त्याग दी। फलत , बगाल, सिन्ध और दक्षिण फिर स्वतन्त्र हो उठे। फिरोज़ तुगलक का यह विचार था कि राजा का कर्तव्य केवल राज्य जीतना ही नही है, वरन प्रजा को सुखी रखना भी है। उसने लोक-कल्याण के लिए सडकें बनायो, नगर बसाये, बाग लगाये।

ह्रास

मुहम्मदशाह द्वितीय के जमाने मे मध्य एशिया के एक तुर्क विजेता तैमूरलग ने भारत पर तूफानी आक्रमण किया। पजाब पार करता हुआ वह दिल्ली पर चढ दौडा। सडको पर खून की नदियाँ बहन लगी। उसने दिल्ली निवासियो का कत्ल कर डाला। दिल्ली से वह मेरठ गया। वहाँ जाकर उसने हाहाकार मचा दिया।

मजा यह है कि उस समय दिल्ली क
था। वह गुजरात मे कही भटक रहा थ
हुआ कि मुहम्मदशाह फिर अपन तख्त
साम्राज्य की धाक जाती रही। दिल्ली का तख्त कमजोर हो गया। तब तक अनेक राजपूत राज्य प्रबल हो उठे जिनमे मेवाड के राजा प्रमुख थे। तुगलक वश सन् 1412 मे समाप्त हो गया।

सैयद वंश

तुग़लको के बाद सैयद खिज़र खाँ गद्दी पर बैठा। इस वश के सुलतानों की सारी शक्ति सामन्तो को दबाने के लिए अनेकानेक युद्ध-यात्राओ और सघर्षों मे ही व्यय हो गयी। सन् 1451 मे पजाब के सूबेदार बहलोल लोदी ने दिल्ली के तख्त पर कब्जा कर लिया।

लोदी वंश

बहलोल लोदी ने पूर्व मे जौनपुर तथा कालपी और दक्षिण की तरफ जोधपुर का इलाका जीत लिया। इसके उत्तराधिकारी सब निकम्मे निकले। इब्राहीम लोदी के जमाने मे, जब मुगल शासक बाबर न दिल्ली पर आक्रमण किया, तो उस समय मेवाड के राणा ही भारत की प्रमुख शक्ति थे। सन् 1526 मे पानीपत के युद्ध मे इब्राहीम लोदी परास्त हो गया, और दिल्ली का तख्त मुगलो के हाथ मे चला गया। यह युग मुहम्मद गोरी के जमाने से, अर्थात् सन् 1210 से, शुरू हुआ और सन् 1526 तक चलता रहा। गुलाम और खिलजी वश तथा फिरोज़ तुगलक तक सुलतान विलासी नही हुए थे। किन्तु इन राजाओं ने दक्षिण से जो लूट हासिल की उसका बुरा परिणाम हुआ। अगले शासक विलासी हो गये—खान-कमाने की जरूरत न रही। कुतुबुद्दीन मुबारक नामक एक सुलतान तो स्त्रियो की वेषभूषा मे सडको पर बाजे-बजाते हुए नाच गाना करता फिरता था।

अन्य राज्य

सन् 1350 के बाद, मुहम्मद तुगलक़ के जमाने से ही, स्वतन्त्र प्रान्तीय शासन क़ायम हो रहे थे। वे समय-समय पर कुचल दिये जाते थे। किन्तु वे फिर उठ खडे होते। इन मे बगाल, जौनपुर, मालवा, गुजरात और दक्षिण का बहमनी राज्य

प्रसिद्ध है। मुस्लिम राज्य दिल्ली के सुलतान की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली भी थे। उसी प्रकार, उन दिनों स्वतन्त्र राजपूत राज्यों का अभ्युदय हो चुका था। मेवाड़ के राजाओं ने गुजरात और मालवे के मुस्लिम शासकों से युद्ध करके अपना राज्य विस्तार कर लिया था। इन्हीं दिनों दक्षिण का विजयनगर राज्य सामने आया।

विजयनगर का उत्कर्ष

अलाउद्दीन खिलजी के आक्रमणों ने दक्षिण भारत में राज्य-सत्ताओं को हिलाकर, अराजकता मचा दी थी, जिससे फायदा उठाकर, एक ब्राह्मण विद्वान विद्यारण्य की सहायता से, हरिहर और बुक्क नामक दो वीरों ने सन् 1336 में स्वतन्त्र राज्य की नींव डाली। इस राज्य ने उत्तर में कृष्णा नदी तक और दक्षिण में कन्याकुमारी तक अपना प्रसार किया। इस क्षेत्र में मुस्लिम संस्कृति से अप्रभावित विशुद्ध भारतीय संस्कृति का विकास हुआ, इसलिए राजनैतिक महत्त्व के साथ, उसका सांस्कृतिक महत्त्व भी है।

सन् 1509 में कृष्णदेव राय नामक एक राजा ने इस राज्य को और विकसित किया। उसने जर्जर बहमनी राज्य के कुछ हिस्से अधिकार में ले लिये। उसी प्रकार कटक और उड़ीसा की विजय की।

कृष्णदेव राय और उसके बाद के राजाओं के काल में, इस राज्य की समृद्धि और ऐश्वर्य खूब ही बढ़ा। भारत में यही एक ऐसा राज्य था जो चौदहवीं, पन्द्रहवीं और सोलहवीं सदी में मुस्लिम प्रभाव को रोके रहा। सोलहवीं सदी के उत्तरार्ध में यह राज्य कमज़ोर होने लगा। फिर भी वह चलता ही गया। मुगल सम्राट औरंगज़ेब की ताक़त ने उसे और क्षीण कर दिया। फलतः, उसके अन्तर्गत विभिन्न प्रदेश स्वतन्त्र हो बैठे। ये हिन्दू राजा उन्नीसवीं सदी में अंग्रेज़ों के प्रभुत्व में आकर समाप्त हो गये।

राजपूताना

सन् 1303 में अलाउद्दीन खिलजी ने चित्तौड़ को जीत लिया था पर उसकी मृत्यु के बाद हम्मीर ने स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष किया और सन् 1325 में चित्तौड़ पर राजपूत ध्वजा लहराने लगी। इधर, कई और राजपूत राज्य कायम हुए। चित्तौड़ के पराक्रमी राणाओं ने दिल्ली के सुलतानों के विरुद्ध सतत, दृढ़ और सफल संघर्ष किया, जिससे अन्य राजपूत राज्यों में उनका सम्मान बढ़ गया। अब बहुत-से राजपूत राज्य उन्हें अपना नेता मानने लगे। मेवाड़ ने राजपूत राज-शक्तियों का नेतृत्व किया। सोलहवीं सदी में राणा सांगा ने ग्वालियर, धौलपुर बयाना के इलाके जीत लिये। उधर उन्होंने मालवा और गुजरात के सुलतानों को पीछे खदेड़ दिया। राणा सांगा ने गुजरात के सुलतान से बड़-गाँव, ईडर, अहमदाबाद तक के इलाके जीत लिये। इस प्रकार बाबर जब दिल्ली के तख्त पर बैठा तो सबसे पहले उसे मेवाड़ के राजाओं से निपटना पड़ा।

मध्ययुगीन सांस्कृतिक अभ्युत्थान तथा मानव-सामंजस्य की प्रक्रियाएँ

प्रारम्भिक सदियो मे मुस्लिम तत्त्व विदेशी ही रहे, किन्तु धीरे-धीरे उनका भारतीयकरण होता गया। एक ओर सकीर्णतावादी प्रवृत्ति, तो दूसरी ओर उदारवादी प्रवृत्ति, इनदोनो के बीच सघर्ष मे उदार आदान प्रदान ही की विजय होती गयी। इस्लाम का सस्पर्श पाकर, जन चेतना जाग उठी। भक्ति आन्दोलन देश-भर मे लहराने लगा। पहुँचे हुए [illegible] समझी [illegible] ; हिन्दू [illegible] बने। [illegible] ापको प्रस्थापित करने का उद्योग किया—तत्कालीन सांस्कृतिक-सामाजिक समस्याओं को हल करना चाहा। हिन्दू जनता और मुस्लिम जनता पास-पास आ गयी। प्रान्तीय मुस्लिम शासनो ने इस एकता-आन्दोलन मे समय-समय पर भाग लिया। मानव मात्र की एकता के भाव जाति और धर्म की दीवारें तोडने लगे। भारत के इस आध्यात्मिक मानवीय समन्वय युग ने महान् पुरुषो को उत्पन्न किया।

इस्लाम का भारतीय संस्कृति से सम्पर्क—तत्कालीन समस्याएँ

विदेशी मुस्लिम आक्रामक भारत मे बसने के इरादे से आये। शुरू की सदियो मे, नि सन्देह, वे विदेशी ही रहे। किन्तु, इन सदियो मे भी, शासक श्रेणी मे भारतीय तत्त्व घुसने लगे। अलाउद्दीन खिलजी के अधीन मलिक काफूर भारतीय मुसलमान ही था, गुजरात का सुलतान मुसलमान होने के पहले तक्षक जाति का हिन्दू ही था। हसन गगू, जिसने दिल्ली सल्तनत के अन्तिम दिनो मे, दक्षिण मे बहमनी राज्य की स्थापना की, हिन्दू ही से मुसलमान हुआ था। दूसरे शब्दो मे, शासक-श्रेणी में भारतीय तत्त्व घुसते आ रहे थे।

दिल्ली की अफगान सल्तनत म बडे राज-कर्मचारी भले ही मुसलमान हो, हिन्दुओ के बिना उनका काम नही चल सकता था। छोटे अधिकारी और साधारण राज-कर्मचारी हिन्दू ही थे। इन हिन्दू कर्मचारियो के सहयोग से ही भूमि-कर तथा अन्य कर वसूल किये जाते। इस प्रकार, मुस्लिम जन-साधारण तथा हिन्दू जन-साधारण मे सम्पर्क होता जाता था, जो कालान्तर मे और गहरा हो गया।

सल्तनत के ह्रास-काल के समय, चौदहवी सदी के अन्तिम चरणो मे, जिन स्वतन्त्र मुस्लिम राज्यो का अभ्युदय हुआ, उनमे हिन्दू और मुसलमान और भी *पास-पास आ गये। न केवल ऊँचे ओहदोपर हिन्दुओ की नियुक्तियाँ होती, वरन् शासन* सचालन के काम भी उनके हवाले कर दिये जाते। मालवे मे माण्डू के सुल्तान ने चन्देरी के राजा मेदिनी राय को और उनके मित्रो को महत्त्वपूर्ण अधिकार दे रखे थे। बगाल के सुल्तान हुसैनशाह ने न मालूम कितने ही हिन्दुओ पर राज-

काज चलाने की जिम्मेदारी सौंपी। उसके उच्च पदाधिकारियों में सनातन, पुरन्दर तथा रूप नामक व्यक्ति अधिक प्रसिद्ध हैं।

मुस्लिम शासक हिन्दू मन्दिरों और समाधियों के लिए दान देते। बिहार के मुहम्मद शाह नामक एक जागीरदार ने अपनी जागीर का एक मुख्य भाग बौद्ध गया के मन्दिरों को दे रखा था। काश्मीर का सुल्तान जैनुलआबदीन शारदा देवी और अमरनाथ के मन्दिर में दर्शनार्थ जाया करता था। उसने यात्रियों के लिए अनेक विश्रामस्थल भी बनाए थे। मुहम्मद तुगलक जैसे सुल्तान हिन्दू योगियों और साधुओं के पास अपनी आन्तरिक इच्छाओं की पूर्ति के हेतु जाने लगे। इस बात का उल्लेख है कि राजपूतों की देखा-देखी मुसलमानों ने भी 'जौहर' प्रथा अपना ली। [illegible] देखा कि [illegible] नुयायियों [illegible] ह सूबेदार तथा उसके अनुयायी तैमूरलंग से लड़ते-लड़ते मारे गये। हिन्दू पगड़ी मुसलमानों में लोकप्रिय हो गयी। मुस्लिम स्त्रियाँ चूड़ियाँ पहनने लगीं। इसी प्रकार हिन्दुओं ने भी मुस्लिम पोशाक अपना ली।

यही क्यों, बीजापुर के मुस्लिम दरबार में राज-काज मराठी भाषा में चलता रहा। बीजापुर के सुल्तान आदिलशाह कहलाते थे। इब्राहिम आदिलशाह इतना विद्वान् और प्रजावत्सल था कि उसकी प्रजा उसे 'जगद्गुरु' कहकर पुकारती थी। बहमनी सल्तनत ने भी हिन्दुओं को राज-काज में खींचा। उधर, विजयनगर के राज्य में कई सेनाध्यक्ष मुसलमान थे। फौज में मुस्लिम सिपाही तो रहते ही थे।

भारत में मुस्लिम साम्राज्य की दृढ़ स्थापना के पहले ही, मुस्लिम फ़क़ीर हमारे देश में आ चुके थे। विशेषकर सूफी। मुस्लिम देशों में सूफी साधुओं और फकीरों को भी क़ाफिर समझा जाता था। फलत, बहुत से फकीर भारत की-ओर मुड़ने लगे।

ग्यारहवीं सदी में मुस्लिम राजवंश की स्थापना इस देश में नहीं हुई थी। मुस्लिम फकीरों और पीरों को राजनैतिक शक्ति का सहारा प्राप्त न था। किन्तु उनका चरित्र-बल ऊँचा था उनके सिद्धान्त, उपनिषद् तथा वेदान्त से मिलते जुलते थे। ग्यारहवीं सदी में शेख इस्माईल, और बारहवीं सदी के प्रथम चरणों में नूर सतागर ईरानी ने शूद्र जातियों को मुसलमान बनाया। ये जातियाँ मुसलमान तो हो गयीं, किन्तु अपनी प्राचीन धर्म-प्रवृत्तियों और संस्कारों को न भूल सकीं।

ये जातियाँ ग़रीब थीं। इसलिए गरीब हिन्दुओं से जल्दी घुल-मिल जातीं। एक ग़रीब दूसरे ग़रीब की भावनाएँ जल्दी समझ सकता था। इस्लाम ने ऐसी ही एक जाति—योगी जाति—को, जो जुगी भी कहलाती थी, अपने में दीक्षित कर लिया। एक ज़माने में जो वस्तुतः योगी थे, उन्होंने बाद में गृहस्थाश्रम ग्रहण कर लिया था। इसलिए वे योगी शूद्र जाति के अन्तर्गत हो गये। बाद में ऐसी ही 'जुगी' नामक शूद्र जाति ने जब इस्लाम धर्म ग्रहण कर लिया तो उन पर इस्लाम के संस्कार कम और योगी जाति के संस्कार अधिक थे। कबीर ऐसी ही एक शूद्र जाति के थे, जिन पर योग के प्राचीन संस्कार शेष थे। संक्षेप में, मुस्लिम जन-साधारण का हिन्दू जन-साधारण से अधिकाधिक गहरा आत्मीय सम्बन्ध स्थापित होता गया। निम्न दरिद्र जनता के स्तर पर, यह परस्पर सम्पर्क और सम्बन्ध ज्यादा

गहरा और अधिक आत्मीय था।

किन्तु जहाँ तक समाज के सर्वोच्च वर्गों का प्रश्न है, वहाँ उनमें टकराहट होना ही स्वाभाविक था। विशेषकर वहाँ, जहाँ एक ने स्वतन्त्रता खो दी हो और दूसरे ने अपना शासन जमा लिया हो। मुस्लिम शासक और उनके उच्च राज-कर्मचारी तथा सेनाध्यक्ष, धर्म के नाम पर, राजनैतिक स्वार्थ तथा आर्थिक लोभ को तृप्त कर रहे थे। बहुत बार मुस्लिम सल्तनत में धर्म की भावना को उभाड़ा जाता, और मुस्लिम सामन्तों की भूख को, हिन्दू सामन्तों के विनाश द्वारा, धर्म के नाम पर, तृप्त किया जाता। इस्लाम ने, या कहिए उसके व्याख्याताओं अर्थात् धर्माचार्य मुल्लाओं ने, सुल्तानों को छूट दे रखी थी, और क़ाफ़िर को मुसलमान बनाना पवित्र कार्य है यह सिखा दिया गया था। हिन्दू जाति की संस्कृति प्राचीन थी, उसमें धर्म-गौरव की भावना थी, उसके पास ज्ञान था। अगर उसके पास कोई चीज़ नहीं थी तो वह राजनैतिक शक्ति नहीं थी, किन्तु उसे प्राप्त करने की वे लगातार कोशिश करते जाते थे।

मुस्लिम सामन्त शासक थे, हिन्दू जनता और हिन्दू सामन्त शासित थे। बहुत बार मुस्लिम सामन्तों के हिन्दुओं पर अत्याचारों ने उग्र अमानुषिक रूप धारण कर लिया यह एक ऐतिहासिक तथ्य है।

किन्तु इस तथ्य को उत्पन्न करनेवाला मूल कारण यह है कि ये लोग जो मध्य-एशिया से आये थे, भले ही सभ्य कहलाये, वे वस्तुतः सभ्य नहीं थे, इनके अंग-अंग में उनके कण-कण में, घुमक्कड़, युद्ध-व्यवसायी जीवन का खून बहता था। जब ये मध्य एशिया तथा पूर्वी एशिया के घास के मैदानों में घूमते फिरते थे, यही लोग बौद्ध बना दिये गये थे। अशोक के उपदेशों ने और कनिष्क के धर्म-प्रचार ने और बौद्ध भिक्षुओं के सत्संग ने उन्हें केवल ऊपरी तौर पर और बाहरी ढंग से सभ्य बना दिया था। जब ये पश्चिमी एशिया में मार-काट मचाते हुए, इस्लाम के सम्पर्क में आये तो अपना पूर्वतर बौद्ध धर्म भूल गये और झट से मुस्लिम बन गये।

एक विशेष देश, काल और परिस्थिति में, अरब जाति के एकीकरण के हेतु, हज़रत मुहम्मद ने 'जिहाद', धर्म-युद्ध, को महत्वपूर्ण माना था। जिन-जिन धर्मों से मुहम्मद साहब का परिचय था उन धर्मों के ऋषियों को उन्होंने पैग़म्बर भी मान लिया था। मुस्लिम विजेताओं ने राजनैतिक स्वार्थ पर धार्मिक मुलम्मा चढ़ा दिया था।

प्रत्येक देश और काल में मानव जाति ने एक साथ दो विरोधी प्रवृत्तियाँ प्रकट की हैं—(1) संकीर्णतावादी प्रवृत्ति, (2) उदारमतवादी प्रवृत्ति। इस्लाम के भीतर ही, खास कुरान को माननेवाले, किन्तु ईश्वर-प्रेम के नशे में मस्त करनेवाले सूफ़ी साधुओं को फाँसी की सज़ा मिली है। मुल्लाओं और सुल्तानों द्वारा वे भी काफ़िर कहे गये।

जब ये तुर्क जातियाँ मुसलमान हुईं तो उन्हें संकीर्णतावादी प्रवृत्ति अपने [illegible]

का जोश दिलाया जाने लगा। धर्माचार्यों (मुल्लाओं) की बन आयी। लुटेरापन

वीरता समझी जाने लगी। जिस लुटेरेपन को हमने अन्य विदेशी जातियों—जैसे शकों और हूणों में देखा—वही अब और भी भयानक होकर, उन्हीं हूणों और शकों की नयी मुस्लिम सन्तानों में देखा गया। ये तुर्क ठीक उन्हीं मानवजातियों के भाग थे, जिन्होंने पूर्वी एशिया से मार-काट मचाते हुए, पूर्वी यूरोप के मैदानों पर धावा मारा था।

मन्दिरों और मूर्तियों को तोड़नेवाले ये खूँख्वार लोग, लोभ और राजनैतिक स्वार्थ के कारण, धर्म के नाम पर, अपने अनुयायियों को जोश दिलाते थे। अगर ये लूटमार न मचायें तो अपने सिपाहियों को पैसा नहीं दे सकते थे, फौज का खर्च नहीं उठा सकते थे। उसे पैसा दिलाने के लिए, धर्म और आर्थिक आवश्यकता दोनों की पूर्ति आवश्यक थी। इसलिए, युद्ध एक व्यवसाय हो गया था—राजपूत क्षत्रियों के लिए भी युद्ध एक व्यवसाय ही था।

भारत में भी, अति प्राचीन काल से ही, युद्ध-व्यवसायी जाति और उनका पृष्ठ-पोषण करनेवाली पुरोहित जाति वर्तमान थी। इसलिए, एक ओर, अनवरत युद्ध होते रहते थे, और कोई केन्द्रीय शक्ति अधिक दिनों तक नहीं टिक पाती थी, तो दूसरी ओर, पुरोहित जाति अपनी धार्मिक विधियों द्वारा युद्ध-व्यवसायियों को बढ़ावा देती रहती थी। भारत ने सुसभ्य और सुसंस्कृत देश होने के फलस्वरूप, धर्म-युद्ध और युद्ध-नियम, युद्ध-वन्दियों के प्रति मानवीय व्यवहार, शत्रुओं के प्रति सद्भावनापूर्ण व्यवहार तथा क्षमा, दया और करुणा का सामाजिक और सांस्कृतिक, आध्यात्मिक और राजनैतिक महत्त्व प्रतिपादित किया।

फिर भी भारत में पहले ही से, एक विशाल युद्ध-व्यवसायी जाति के प्राधान्य के फलस्वरूप, युद्ध होते ही रहते थे, यहाँ तक कि यह विश्वास उत्पन्न हो गया था कि लड़ाई के मैदान में लड़ते हुए मरने से स्वर्ग प्राप्त होता है। अन्तर यही था कि भारतीय युद्ध-व्यवसायी वर्ग को अर्ध-सभ्य, खूँख्वार युद्ध-व्यवसायी जाति से मुकाबला करना पड़ा, जिनकी युद्ध-पद्धति अलग थी। वे आतंक उत्पन्न करके, अराजकता मचाकर, अपनी नृशंसता की धाक पैदा करके और फिर धर्म का नाम लेकर, लड़ाई के मैदान में उतरते थे। वे विदेशी थे, यहाँ नये आये थे, भयोत्पादन उनका प्रमुख अस्त्र था।

किन्तु, क्रमशः, भारत की जलवायु ने उन्हें बदलना शुरू किया। उन्होंने यहाँ की अर्थ व्यवस्था में दखल नहीं दिया। कृषि और वस्तुओं के उत्पादन के लिए, वे भारतीयों पर ही निर्भर थे। यह आवश्यक था कि भारतीय जनता का एक भाग उनका अपना हो। इसीलिए, एक ओर उनके धर्म प्रचारक शूद्र जातियों को मुसलमान बनाते जाते तो दूसरी ओर उच्चवर्गीय हिन्दू, आतंक और लोभ से अभिभूत होकर, उनका धर्म स्वीकार कर लेते।

शुरू-शुरू में मुस्लिम शासक वर्ग विदेशी था, यद्यपि उसमें भी भारतीय तत्त्व घुसते जा रहे थे। ऐसी विदेशी शक्ति आतंक द्वारा ही सुसभ्य और गर्वपूर्ण जातिपर शासन कर सकती थी। फलतः, उसके नृशंस आतंक और बर्बर कृत्यों की स्मृतियाँ हिन्दू जाति में सदा जीवित रहीं। किन्तु क्रमशः धर्माभिमानी हिन्दू जाति उनके सम्पर्क में आकर उन्हें ज्यादा समझने लगी। मुस्लिम शासक वर्ग से उसके घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित होने लगे, और साथ ही भारतीय भावों व विचारों का उन पर प्रभाव भी पड़ने लगा। इस प्रकार, मुस्लिम शासक वर्ग में ही दो प्रवृत्तियाँ

दिखायी दी। एक उदारमतवादी प्रवृत्ति दूसरी संकीर्णतावादी प्रवृत्ति। इन दोनों प्रवृत्तियों का कभी मेल नहीं हो सकता।

हिन्दू सामन्त सभ्यता में भी ये दो प्रवृत्तियाँ प्रकट हुईं। एक प्रवृत्ति भारतीय धर्म के नाम पर रूढ़ि और जातिवादी संकीर्ण दृष्टिकोण का ही धर्म मानती हुई आगे बढ़ी।

दूसरी ओर मानव मात्र के लिए ऐसे सामान्य धर्म की तलाश हुई जिस पर हिन्दू और मुसलमान ब्राह्मण और शूद्र—सब अपने जातीय भेद भाव भूलकर—ईश्वर प्रेम में मस्त होकर उचित मानव सम्बन्ध स्थापित कर सकें।

मानव मात्र के लिए सब सामान्य धर्म की आवश्यकता पर ज़ोर देनेवाले लोग समाज के निचले स्तर से निकले जहाँ हिन्दू जन साधारण और मुस्लिम जन साधारण की घनिष्ठता थी। निर्गुण सम्प्रदाय के लोग और सूफ़ी इस प्रवृत्ति के समर्थक थे।

इसके विरुद्ध ब्राह्मण प्राधान्य का आग्रही कर्मकाण्डप्रधान जाति व्यवस्था प्रधान हिन्दू धर्म अधिक से अधिक कट्टर होता चला गया। वेदान्त और ईश्वर में आस्था रखनेवाले ब्राह्मण वर्ग के लिए जातीय और उपजातीय नियम ईश्वरीय विधान के अन्तर्गत थे। दक्षिण भारत में हिन्दू सामन्त शासक वर्ग का एक भाग होने से ब्राह्मणों की बन आयी। फलत वहाँ कट्टरपन ज़्यादा से-ज़्यादा बढ़ता गया।

आज दक्षिणी भारत में ब्राह्मण-अब्राह्मण समस्या ज़ोरदार है। इस समस्या का सूत्रपात प्राचीन काल में ही हुआ किन्तु मध्य युग में वह ज़ोर पकड़ गयी। यह इसलिए हुआ कि भक्ति आन्दोलन के अन्तर्गत साधु और फकीर निचली जातियों में से पैदा होने लगे—ऐसी जातियों में से जिन्हें शूद्र समझा जाता था। फलत दक्षिण भारत के इन भक्तों को अपने समाज द्वारा तरह तरह का उत्पीडन सहन करना पड़ा। ये शूद्र सन्त जाति भेद से परे सामान्य मानव धर्म में विश्वास करते थे और उस आधार पर अखिल मानव जाति की एकता उत्पन्न करना चाहते थे। यही कारण है कि कबीर को पण्डित और मुल्ला दोनों को डाँटना पड़ा और दोनों के अन्धविश्वासों की आलोचना करनी पड़ी। महत्त्व की बात है कि यह आवाज़ निचले वर्गों से उठी थी—चाहे वह हिन्दू हो चाहे मुस्लिम। वैसे बौद्ध और जैन साधु सन्त अति प्राचीन काल में शील सदाचार प्रेम और करुणा पर ज़ोर देते हुए जातिवाद का विरोध कर चुके थे। किन्तु अब नयी ऐतिहासिक पार्श्वभूमि में इस पुकार ने नया महत्त्व धारण कर लिया नाथ सम्प्रदाय वालों ने ग्यारहवीं सदी में ही उत्तर पश्चिम भारत में ऐसे विचारों का प्रचार आरम्भ कर दिया था। निर्गुणी सन्तों ने दक्षिण और उत्तर भारत में इसी ढंग का प्रचार किया। दक्षिण भारत के लिंगायत सम्प्रदाय ने महाराष्ट्र के महानुभाव पन्थ ने इसी धर्म नीति का अधिक से-अधिक प्रचार किया और उनके इस मार्ग का इस दृष्टि का विरोध भी पुरोहित वर्ग द्वारा खूब ही हुआ।

जब धर्म और ईश्वर के नाम पर परस्पर घृणा का प्रचार किया जा सकता था तो धर्म और ईश्वर के नाम पर ही मानव मात्र की एकता और प्रेम का प्रचार भी किया जा सकता था। इसमें क्या आश्चर्य है कि बहुत से हिन्दू सूफ़ी हो गये और बहुत से मुसलमान कृष्ण के भक्त हुए न मालूम कितने ही मुसलमान और

अछूत, नानक और कबीर के अनुयायी हुए। राजा भर्तृहरी के गीत गाते हुए न मालूम कितने ही मुस्लिम फकीर भारतीयों के श्रद्धा भाजन हुए।

चौदहवीं सदी के अन्त में, हिन्दू-मुस्लिम सांस्कृतिक मैत्री और एकता के वातावरण में, यदि प्रान्तीय सुलतानशाहियों के अन्तर्गत और राजशाहियों के अन्तर्गत परस्पर विश्वास उत्पन्न होकर, अब तक विधर्मी समझे जानेवाले लोग आत्मीय-जैसे लगने लगे तो इसमें आश्चर्य ही क्या है?

आज भारत में राजनैतिक स्वार्थों की पूर्ति करने के लिए जब जातिवाद और प्रादेशिकतावाद, सिर ताने खड़ा हुआ है, उन दिनों के सन्तों और फकीरों, पहुँचे हुए कवियों और सूफियों का नाम स्मरण करके हृदय पवित्र हो उठता है क्योंकि उन्होंने जाति, वर्ण और प्रदेश के ऊपर उठकर, मनुष्य मात्र के लिए सामान्य धर्म की प्रतिष्ठा करने का प्रयत्न किया था।

इस वातावरण में साँस लेनेवाले मुस्लिम और हिन्दू सामन्त भी प्रभावित हुए बिना न रह सके। बंगाल के सुलतान हुसैन (1493-1518) ने 'सत्यपीर' नामक सम्प्रदाय की स्थापना की। 'सत्यपीर'—देवता का नाम है। इस देवता की उपासना हिन्दू और मुसलमान दोनों करते। आगे चलकर, पन्द्रहवीं सदी में सतनामी और नारायणी नामक सम्प्रदायों का विकास हुआ, जिसमें हिन्दू और मुसलमान दोनों शामिल हुए।

सक्षेप में, मुगल काल तक आते-आते, हिन्दू-मुस्लिम जनता की सांस्कृतिक मैत्री और मानव-आदर्श का वातावरण बनता जा रहा था। महान् मुगल सम्राट अकबर को यह वातावरण पहले ही से मौजूद मिला। उसने उसे राजनैतिक-सामाजिक वास्तविकता में परिणित करना चाहा।

यह तो सम्प्रदायों की बात हुई। मुस्लिम साधु-सन्तों ने वेदान्त और वैष्णव धर्म की बहुत-सी बातें स्वीकार कर लीं। इस्लाम की सूफी साधना में योग मार्ग ने प्रवेश किया। मुस्लिम साधु-सन्तों के प्रति हिन्दू जनता की, हिन्दुओं की आस्था बढ़ गयी। दोनों समुदायों में सामंजस्य और सहयोग की भावना के फलस्वरूप, हिन्दू मन स्थिति और मनीषा में परिवर्तन हो गया। हिन्दू धर्म, हिन्दू कला और हिन्दू ज्ञान विज्ञान में मुस्लिम तत्त्वों ने प्रवेश किया। ईश्वर-प्रेम और मानव प्रेम, दोनों समाजों को एक करने लगा। पीरों और फकीरों को हिन्दू अपना समझते। उनकी कब्र पर हिन्दू मिठाइयाँ चढ़ाते और कुरान के पाठ का श्रवण करते। वे कुरान को भी देववाणी के समान मानने लगे। उधर, मुसलमान कवि भारतीय भाषाओं में कृष्ण भक्ति प्रकट करने लगे। हिन्दू अब अपने घरों में, जीवन में बुरे प्रभावों से बचने के लिए, अपशकुनों से बचने के लिए, कुरान की किताब रखने लगे, अपने घर में मुसलमानों को भोजन कराने लगे। पंजाब के अब्दुल कादिल जिलानी, बहराइच के सैयद सालार महमूद रावलपिण्डी के बहुत से ब्राह्मणों के भक्त दोनों जातियों के लोग थे। अजमेर के शेख मुईनुद्दीन चिश्ती के सैकड़ों उपासक हिन्दू थे। उसी प्रकार, बंगाल प्रदेश में मुसलमान लोग हिन्दुओं की शीतला माता, काली माता, धर्मराज और वैद्यनाथ नामक देवी देवताओं की मूर्तियों की पूजा करने लगे, यद्यपि स्वयं उनका धर्म मूर्ति पूजा का विरोधक था। उसी प्रकार, मुसलमानों ने अपने नये देवताओं की भी कल्पना की जैसे नदियों का देवता ख्वाजा खिज्र अथवा सिंह-वाहिनी वनदेवी, और उसका प्रेमी और अंगरक्षक जिन्दा

गाज़ी। ये नवीनतम मुस्लिम देवता थे। हमने एक दूसरे की कुरीतियाँ भी लीं। हिन्दू स्त्रियाँ पर्दा करने लगी। मुसलमानो मे भी जाति-व्यवस्था उत्पन्न हो गयी। धार्मिक उत्सवो का भी आदान-प्रदान हुआ। हमारे यहाँ की शिवरात्रि के अनुसार वहाँ 'शबे बरात' हो गयी। हमारे यहाँ आरती करते और उनके यहाँ 'उतारा' उतारते।

इस्लाम मे भक्ति-भावना का उदय हुआ। उसमे कोमलता आ गयी। रसार्द्रता उत्पन्न हुई। राजनैतिक और सामाजिक क्षेत्रों मे भी परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध होने लगे। हिन्दू और मुसलमान दोनो के बीच मे अन्तर्जातीय प्रणय-सम्बन्ध के उदाहरण सामने आये। हिन्दू, मुसलमान प्रेमिकाओ को अपने यहाँ रखने लगे। प्रसिद्ध

से स्थापित किये थे, असल मे भारतीय जनता मे किसी-न-किसी रूप मे पहले ही से विद्यमान थे। राजनैतिक क्षेत्र मे, जिस प्रकार हिन्दू राजा मुसलमानो के माण्डलिक हो उठे, उसी प्रकार हिन्दू राजाओ के यहाँ भी मुस्लिम नवाब, मुस्लिम जागीरदार और सरदार भी रहे आये।

भारतीय जनता, अपने ढग से, सामाजिक सश्लेषण करती जा रही थी। हिन्दुओ का मुसलमानो से और मुसलमानो का हिन्दुओ से प्रेम-सम्बन्ध बनता जा रहा था। किन्तु औरगज़ेब सरीखे धर्मान्धो की प्रवृत्ति और शक्ति कम न थी। स्वय मुगल दरबार म ही एक ओर शाहजहाँ का एक पुत्र दारा उस समय की उदारमतवादी प्रवृत्ति का प्रतिनिधित्व करता था, तो उसी का भाई औरगज़ेब उसके विरुद्ध सकीर्णतावादी प्रवृत्ति का। ये दोनों परस्पर-सघर्षशील प्रवृत्तियाँ हिन्दू-समाज मे भी काफी थी।

ये प्रवृत्तियाँ आज भी हैं जिसके फलस्वरूप भारत मे सामाजिक सस्कृति का विकास नही हो पाता।

आर्थिक सामाजिक दशा

हम पहले ही कह चुके हैं कि युद्ध-व्यवसायी वर्ग या जाति के लिए युद्ध लगभग अनिवार्य होता है। यदि झगडन का कारण न मिले तो खोज लिया जाता है। इसलिए, राज्य-विस्तार करत जाना, यानी कि वैमनस्य, शत्रुत्व और सघर्ष मे लगे रहना, लगभग एक प्राकृतिक नियम हो जाता है। यह विशेषकर तब होता है जबकि राज्यो का सचालन युद्ध-व्यवसायी जाति या वर्ग ही कर रहा हो और शेष जनता सो रही हो।

लूट से सेना का खर्च चलाने की प्रवृत्ति प्राचीनतम काल से लेकर हूण, मगोल, तुर्क और मराठो तक मे विद्यमान रही। ऐसे समय, धन के लालच से साहसी वीर लोग सेना मे भरती हो जाते। दिल्ली सल्तनत के युग म, स्वतन्त्र राज्यो को जीतकर लूट द्वारा सेना का खर्च चलाने की प्रवृत्ति खूब ही थी। फलत', अफगान सल्तनत ने आर्थिक अवस्था के सुधार की ओर कोई ध्यान नही दिया।

किन्तु साथ ही उसन अर्थ-व्यवस्था मे कोई हस्तक्षेप भी नही किया। व्यवसायी

और व्यापारी अपने संगठनों में संगठित थे। कारीगर लोग भी अपना काम करते जा रहे थे। हां, एक बात हुई। और, वह यह कि सरदारों और सैनिकों की आव- [illegible]

द्वारा उपयोग में लाये जाते। सूती व ऊनी कपड़ों के लिए सरकारी कारखाने थे। और भी कई वस्तुएँ सरकारी कारखानों में तैयार की जाती थीं। किन्तु, इन कार-खानों से देश की अर्थव्यवस्था पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता था। शिल्पी-श्रेणियों के साथ में वस्तुओं के उत्पादन का व्यवसाय था और वे गाँवों और नगरों में जनता की आवश्यकता की पूर्ति के कार्य अपनी प्राचीन परिपाटी के अनुसार करते जाते थे।

निरन्तर युद्धों के कारण, खेतिहर, शान्ति और निश्चिन्तता के साथ काम नहीं कर पाता था। देश में अव्यवस्था उत्पन्न हो गयी थी। इसका सबसे बुरा प्रभाव खेती पर पड़ा। फलत जलालुद्दीन खिलजी और मुहम्मद तुगलक के जमाने में बड़े-बड़े अकाल पड़े। सबसे ज्यादा नुकसान ग़रीब खेतिहर जनता को होता। दिल्ली के आस-पास एक भयानक अकाल, सन् 1340 में, पागल कहे जानेवाले सुल्तान मुहम्मद तुगलक के जमाने में पड़ा। सात बरस तक पानी नहीं बरसा। 'पागल' सुल्तान ने दिल्लीवासियों के लिए 6 महीने तक के अनाज का इन्तजाम किया। जब देखा कि अकाल कम नहीं होता है तो उसने अयोध्या के समीपवर्ती क्षेत्र में कोरा नामक स्थान पर एक नये नगर का निर्माण करके वहाँ दिल्ली-वासियों को छः बरस तक रखा।

ऐसा क्यों हुआ ? इसलिए कि साम्राज्य तो बन गया था किन्तु, आवागमन के साधनों का विकास नहीं किया गया था। सड़कें नहीं थीं, ऐसी व्यवस्था नहीं थी कि जिससे सुरक्षापूर्वक यात्रा और व्यापार हो सके। मन्दिर और मस्जिद भले ही बन जायें, सड़कें नहीं बन सकती थीं।

फिर भी, व्यापार तो होता ही था—विशेषकर उन वस्तुओं का जो सरदारों और अमीरों के काम में आतीं, या विदेशों में पहुँचायी जाकर महँगी बेची जा सकती थीं। चीन, मलाया, अरब और यूरोप से जल मार्ग द्वारा खूब व्यापार होता। कालीकट और भड़ौच के बन्दरगाह प्रमुख थे। स्थल-मार्ग द्वारा मध्य एशिया, ईरान और भूटान से सम्बन्ध था। विदेशों में मसाले, कपड़ा, अनाज और अफीम जाती थी। विदेशों से बदले में सोना आता।

सामाजिक दशा

हिन्दुओं की सामाजिक दशा गिरी हुई थी। राज्य में वे निचली श्रेणी के नागरिक थे। सुल्तान के दरबार में उनके साथ तुच्छता का बरताव होता। अलाउद्दीन खिलजी ने तो उन्हें आर्थिक दृष्टि से हीन करने के लिए तरह-तरह के टैक्स लगाये थे।

दिल्ली सल्तनत में दास-प्रथा बड़े जोरों पर थी। ये दास विदेशों से मँगाये जाते थे। इनमें कुछ भारतीय भी होते। अमीरों और सरदारों को दास रखने का शौक़ था। दासों से अनेक प्रकार की सेवाएँ ली जातीं—सैनिक सेवा, राज सेवा और

वैयक्तिक सेवा। किन्तु जिन दासो मे विशेष प्रतिभा या योग्यता होती उन्हे दासता से मुक्त करके ऊँचे पदो पर नियुक्त कर दिया जाता था। युद्ध मे पराजित सैनिको को भी दास बनाया जाता। स्त्रियो को दासी बनाया जाता। सुन्दरी दासियो का मूल्य बहुत अधिक था।

मुसलमानो की इस दासप्रथा का अनुकरण हिन्दू सामन्तो ने भी किया। राजस्थान के रजवाडो के यहाँ यह प्रथा आज भी देखी जा सकती है। आज भी वहाँ के बड़े-बड़े ठिकानेदारो, रजवाडो और राजाओ के यहाँ स्त्रियाँ दहेज मे दी जाती हैं। हिन्दू समाज मे आज जो बहुत-सी कुरीतियाँ हैं उनका स्रोत भी वही पूर्व-मध्य युग का काल है। पर्दा प्रथा का अनुकरण हिन्दुओ ने किया। साथ ही, जीवन की सामान्य असुरक्षा, भविष्य की असुरक्षा को देखते हुए ही बाल-विवाह सर्वत्र प्रचलित हो गया।

साहित्य

इस युग मे सांस्कृतिक क्षेत्र की दो प्रधान घटनाएँ हैं —(1) भक्ति आन्दोलन का उत्थान और प्रसार, (2)देशी भाषाओ का उत्थान तथा उनमे साहित्य का उत्कर्ष, इन सब बातो का यहाँ पूरा विवरण देना मुश्किल है।

साहित्य की श्रीवृद्धि तीन केन्द्रो से हुई। एक केन्द्र—राज दरबार, चाहे मुस्लिम हो चाहे हिन्दू, दो—जन-साधारण, तीन—इन दोनो से पृथक् और स्वतन्त्र व्यक्ति।

राज-सभाओं मे साहित्यिक उत्कर्ष

राज-सभाओ मे साहित्यिको तथा अन्य विद्वानो का आसन रहना, एशियायी संस्कृति की विशेषता है। चाहे ईरान की राजसभा हो या बगदाद की, राज-सभा की शोभा, सरदारो और सेनाध्यक्षो के अतिरिक्त, विद्वानो और कवियो द्वारा ही पूरी होती थी हमारे भारत मे भी अति प्राचीनकाल से यही पद्धति चली आयी। कइयो को यह जानकर आश्चर्य होगा कि 'विदेशी' भारत विजेता मुहम्मद गोरी के दरबार मे(तथा युद्ध मे भी), हिन्दी के प्रकाण्ड पण्डित डाक्टर हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार, केशवराव नामक एक भाषा का (हिन्दी का) कवि था। सम्भवत वह भाट होगा। अजमेर तथा दिल्ली प्रसिद्ध, राजा पृथ्वीराज चौहान के दरबार मे भी चन्द बरदाई नामक एक कवि था, जिसने पृथ्वीराज के प्रेम, शृगार, वीरता, उद्यान, प्रासाद, अभियान आदि का अपने महाकाव्य पृथ्वीराज रासो मे वर्णन किया। पृथ्वीराज के दरबार मे भी हिन्दी कवि थे और उसके शत्रु मुहम्मद गोरी के दरबार मे भी हिन्दी कवि थे। आज यह विचित्र बात मालूम होती है, इसलिए कि आज हमारा दृष्टिकोण बदल गया है। किन्तु यदि हम ऐतिहासिक तथ्यो का उद्घाटन करे तो पायेंगे कि अफगानिस्तान, बलूचिस्तान तथा बल्ख तक का पूरा प्रदेश भारतीय संस्कृति का अग रहा आया। कनिष्क अपने सिक्को पर 'शाहानुशाहि' अर्थात् शहशाह लिखता था, जो संस्कृत की विभक्ति के साथ, प्राचीन ईरानी का शब्द है। उसी प्रकार, मुहम्मद गजनवी ने, तथा उसके आग के कुछ उत्तराधिकारियो ने, अपने सिक्को पर, इस्लामी सन्देश के संस्कृत अनुवाद को अंकित किया है। मुहम्मद ग़ज़नवी के दरबार मे बहुत-से भारतीय विद्वान थे। ग़ज़नी तथा सुदूर उत्तर-पश्चिम के अन्य

प्रदेशों में कभी ब्राह्मणों का भी राज रहा आया, यद्यपि वहाँ बहुतों ने इस्लाम कबूल कर लिया, किन्तु ऐसे भी कुछ होंगे, जिन्होंने वैसा नहीं किया। जिन्होंने धर्म-परिवर्तन नहीं किया उन्होंने नए वन मुसलमानों के राजवंशों में चाकरी की, क्योंकि उनका पूर्वतर, पारिवारिक सम्बन्ध एकदम नहीं भुलाया जा सकता था। सम्भवतः, मुहम्मद गोरी के दरबार में ऐसे ही स्थानीय परिवार का कोई प्राकृत-अपभ्रंश कवि केशवराय रहा होगा।

असल में ये सब चारण कवि थे। किन्हीं में कवित्व अधिक था, किन्हीं में अल्प। हिन्दी के पूर्व मध्य काल में इस प्रकार का चारण साहित्य बहुत लिखा गया है। सभी ने वर्णनात्मक काव्य लिखे। पृथ्वीराज के समकालीन जयचन्द के दरबार में भी विद्याधर नामक एक कवि था, जिसने अपने ग्रन्थ में जयचन्द के पराक्रमों की बड़ी प्रशंसा की थी। यह ग्रन्थ अब नहीं मिलता। पृथ्वीराज रासो इतना लोकप्रिय हुआ कि आगे की सदियों में उसके प्रेमियों ने उसमें अपनी ओर से बहुत कुछ मिला दिया। फलतः आजकल जो ग्रन्थ प्राप्त है, उसका मूल पाठ ठीक नहीं माना जाता। जगनिक कवि कृत आल्ह खण्ड प्रबन्ध काव्य और गीत के बीच की बड़ी जोरदार रचना है। किन्तु, आजकल जो पाठ प्राप्त होता है, वह उसका मौलिक रूप नहीं है। लोगों ने तो उसकी भाषा तक को परिवर्तित किया है। शारंगधर कवि कृत हम्मीर रासो एक प्रसिद्ध वीर-काव्य है। हमीर तथा अलाउद्दीन खिलजी के बीच हुए युद्ध का उसमें ओजस्वी वर्णन है। उसी प्रकार वीर-गीत के रूप में बीसलदेव रासो भी उल्लेखनीय है।

राजसभा के साहित्यकारों में, विद्यापति का स्थान सर्वश्रेष्ठ है। वे मिथिला के राजकवि थे, उन्होंने मैथिल भाषा में सुन्दर शृंगार पूर्ण रचनाएँ कीं। मिथिला की राज सभा संस्कृत साहित्य को भी खूब प्रोत्साहन देती थी। वाचस्पति मिश्र सरीखे अनेक प्रकाण्ड ग्रन्थकारों ने संस्कृत में रचना की। उस दरबार में संस्कृत को विशेष प्रश्रय मिला।

मुस्लिम दरबार में खिलजी और तुगलक काल में अमीर खुसरो जैसे बहुमुखी प्रतिभा वाले लेखक विद्यमान थे। फारसी को उन्होंने विशेष प्रश्रय दिया। वे भारतीय ज्ञान विज्ञान से, दर्शन और तर्कशास्त्र से, चिकित्साशास्त्र और ज्योतिर्विद्या से विशेष प्रभावित थे। मुहम्मद तुगलक स्वयं प्रकाण्ड विद्वान होने के अतिरिक्त बहुत जिज्ञासु व्यक्ति था। वह अपने युग का सचमुच श्रेष्ठ विद्वान तथा मनीषी था। उसके दरबार में, अनेक दार्शनिक तथा विज्ञान-सम्बन्धी विषयों पर, उपस्थित भारतीय तथा विदेशी विद्वानों के बीच बहस हो जाती। इस वाद-विवाद में मुहम्मद तुगलक (जिसे सब लोग पागल कहते थे) स्वयं भाग लिया करता था।

उसके उत्तराधिकारी फीरोज तुगलक ने भारतीय दर्शन, ज्योतिर्विद्या तथा अन्य विषयों से सम्बन्धित ग्रन्थों का फारसी में अनुवाद कराया। सिकन्दर लोदी के आश्रय में, भारत के आयुर्वेदिक ग्रन्थों का फारसी में अनुवाद हुआ। खिलजी और तुगलक राजसभाओं की शोभा बढ़ानेवाले, बहुमुखी प्रतिभा से सम्पन्न और अमीर खुसरो, जिसका उल्लेख हम पहले ही कर चुके हैं, फारसी के उत्तम विद्वान्, संगीतज्ञ तथा ज्ञान-लिप्सु थे। उन्होंने खड़ी बोली तथा ब्रजभाषा दोनों में उत्तम रचनाएँ कीं। उनकी पहेलियाँ तथा मुकरियाँ बहुत प्रसिद्ध हैं। यद्यपि, स्वभावतः

वे मुसलमानों के पक्षपाती थे, किन्तु हिन्दू ज्ञान, संस्कृति, हिन्दी भाषा, हिन्दू दर्शन हिन्दू संगीत तथा भारत के प्राकृतिक सौन्दर्य के वे परम अनुरागी तथा प्रशंसक थे। उनकी ब्रजभाषा बहुत ही ललित है।

जौनपुर का स्वतन्त्र प्रान्तीय मुस्लिम राज्य विद्वानों का उदार आश्रयदाता था। वहाँ उनका बहुत सम्मान होता था। जौनपुर (फारसी के बजाय) अरबी पाण्डित्य, इस्लामिक दर्शन तथा साहित्य का प्रधान केन्द्र था। वहाँ के नरेश इब्राहिम शर्की का नाम इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय है।

किन्तु उन दिनों बंगाल का मुस्लिम दरबार सचमुच अपनी निराली विशेषता रखता था। उसने बंगला भाषा को प्रधानता दी, विद्वानों को आश्रय दिया। बंगाल के सुल्तानों ने संस्कृत के रामायण और महाभारत को बंगला भाषा में अनुवादित करने के लिए विद्वानों को माननीय पदों पर नियुक्त किया। गौड, जो बंगाल का एक भाग है उसके सुल्तान नसरत शाह ने बंगला में महाभारत का अनुवाद कराया। बंगाल के प्रसिद्ध कवि कृत्तिवास को बंगाल के सुल्तानों का आश्रय प्राप्त था। सुल्तान हुसैन शाह का आश्रय पाकर, मलधर बसु ने गीत का अनुवाद बंगला में किया। बंगाल की मुस्लिम राजसभा ने बंगला के साहित्यिक उत्कर्ष के लिए बहुत कुछ किया।

दक्षिण में विजय नगर के राजा कृष्ण देवराय ने तेलुगु साहित्य के स्वर्ण-युग का उद्घाटन किया। राज्य के प्रोत्साहन के फलस्वरूप तेलुगु साहित्य का बहुमुखी विकास हुआ।

राजसभाओं द्वारा एक नयी भाषा को भी प्रोत्साहन दिया गया। उर्दू खड़ी बोली का ही मुस्लिम संस्करण है। दकनी हिन्दी के नाम से (शुरू में यही नाम था, वह खड़ी बोली हिन्दी भी थी और उर्दू भी) वह दक्षिण के मुस्लिम राज्यों द्वारा प्रोत्साहित की गयी। जब वह वहाँ फली फूली तो दक्षिण भारत की राजसभाओं से साहित्यिक रूप धारण करके उत्तर भारत की राजसभाओं में आयी।

राजा और सुल्तान अपने दरबारों में प्रकाण्ड पण्डितों और कवियों को पाकर स्वयं को गौरवान्वित अनुभव करते थे। किन्तु साहित्यिक उत्कर्ष का मूल केन्द्र वहाँ न होकर, जन-साधारण थे। जन साधारण प्रतिभाशाली पुत्रों को उत्पन्न कर रहे थे। वे पढ़े-लिखे, अक्खड और गँवार, दीन और दयनीय समझी जानेवाली जनता के जीवन में आन्दोलन मचा हुआ था। भक्ति की धारा उसके अन्त करण में प्रवाहित हो रही थी। साधु, सन्तों और फकीरों के उपदेशों से और पहुँचे हुए ज्ञानी पुरुषों के सत्संग से उसके हृदय में ज्ञान और प्रेम की अजस्र धारा बह रही थी। उसके प्रतिभासम्पन्न पुत्रों में कबीर और नामदेव, रैदास और पलटू, नानक और दादू, तुकाराम और नरसी मेहता, चण्डीदास और ज्ञानेश्वर जैसे महान् सन्तों और कवियों के नाम गिनाये जा सकते हैं। मराठी के ज्ञानेश्वर भारतवर्ष के अत्यन्त प्रतिभाशाली कवियों में से थे, जिनकी रसार्द्र वाणी ने ज्ञान और भक्ति, योग और प्रेम की अजस्र धारा विशाल जन-समुदायों में प्रवाहित की। तुकाराम के अभंग सुन-सुनकर आज भी महाराष्ट्र के जन-साधारण अपने हृदय को पवित्र करते हैं और मानव-प्रेम में डूब जाते हैं। नरसी मेहता की वाणी आज भी गुजरात की झोपड़ियों में गूँज रही है। ऐसा कौन भारतवासी है जिसने मीरा के पदों को सुन-कर अपने हृदय में प्रेम की पीड़ा का अनुभव न किया हो। यद्यपि वह राजरानी

थी, किन्तु, साधारण जनो जैसी ही उन्मुक्त उसकी वाणी थी। 'गिरिधर के आगे नाचूंगी' वाली यह मीरा युग-युगो तक भारतीय जनो के हृदय को प्रेम से आप्लावित करती रहेगी। [illegible] सुनकर

[illegible] डूबो-

[illegible] वाहित

हुई हो। सूरदास, तुलसीदास, रसखान, जायसी उस काल के ज्वलन्त नक्षत्र है।

कबीर और नानक मानव-समानता के प्रचारक, शील और स्नेह पुरस्कर्ता तो थे ही, उन्होने मानव-मात्र के लिए सामान्य धर्म की प्रतिष्ठा करनी चाही—वह धर्म नही जो किताबो और ग्रन्थो मे बँधा रहता है, जो रूढियो और रिवाजो मे फँस जाता है, जो मनुष्य-मनुष्य के बीच, गर्व और दम्भ, पाखण्ड और द्वेष की दीवाले खडी करके मानवता को अलग-अलग टुकडो मे काटकर तितर-बितर कर देता है। वरन् उन्होने उस धर्म को प्रतिष्ठित किया, जो मानवमात्र के अन्त करण मे मानव-गुण के रूप मे विराजमान है, जो हृदय का गुण और आत्मा का स्वभाव है, जिसके द्वारा मानवता अखण्ड हो जाती है, जनता एक हो जाती है। और अन्तःकरण पर प्रेम और सद्भावना मे आलिंगन पड जाते हैं।

कबीर का कवित्व केवल साहित्यिक महत्त्व ही नही, वरन् ऐतिहासिक महत्त्व रखता है। अक्खड, बेदरकार, बेलौस, बेमुरव्वत कबीर मे मानव-स्नेह का अजस्र निर्झर प्रवाहित होता था। उनके दोह हम मे प्राण-शक्ति का सचार करते हैं। नानक की वाणी ईश्वरीय प्रेरणा से युक्त है, उसम ज्ञान का प्रकाश तथा भावना का गीलापन है। रैदास के नम्र हृदय म सारा विश्व आर्द्र होकर विराजमान था। सेना नाई और पलटू, ईश्वरीय ज्योति हृदय मे धारण करके लगभग मसीहा थे, किन्तु न उनका बाना मसीहाई था, न उनका रहना। अगर पलटू सामने आकर खडे हो जायें तो शायद वे इतने दीन होंगे कि हम अपन बरामदे से उन्हे निकाल देगे।

इसीलिए उन दिनो यह ख्याल था कि नारायण (ईश्वर, भगवान) स्वय दीन-जन का रूप धारण करके घूमते फिरते हैं। पता नही, बाहर नगे पाँव घूमते हुए इन दीन जनो मे कौन सचमुच भगवान हो।

दिल्ली सल्तनत की राजनैतिक घटनाओ को देख-देख, बहुतो का हृदय उदास हो जाता है। किन्तु भारतीय प्रतिभा ने यदि राजनीति को इतना महत्त्व दिया होता तो वैसी घटनाएँ कभी हो ही न पाती। किन्तु, यदि भारतीय धर्मों को इतने बड़े पैमाने पर चुनौती न मिल पाती तो शायद उस युग का वह अजस्र उत्थान, जिसके सामने हमारा आधुनिक युग फीका है, हमारे सामने कभी न आ पाता, भारतीय धर्मों मे हृदय की आर्द्रता, मानव-मात्र क प्रति उदार प्रेम और जीवन-ज्ञान का आलोक न हो पाता। उससे रूढिया और भेदोपभेदो मे बन्दी मानव, ईश्वर के सामने आकर, अपन भेदो को भूल गया। इस्लाम का भारतीयकरण हो गया। हिन्दू इस्लाम के आलोक मे नहा उठा।

नि सन्देह राजाओ की सभाओ मे पनपनेवाले साहित्य मे पाण्डित्य की जडता, अलकरण-प्रियता और विलासाकुल वृत्ति है। इसके विपरीत जन-साधारण की झोपडियो मे गूँजनेवाले गीतो की भावना छन्द तोडकर उमड उठती है। बात ठोस है; ठिकाने की है, सीधी चोट करती है। उसमे एक उमडती हुई पुकार है, एक झगडता हुआ आक्रोश है और रगडती हुई चुनौती है। उसमे बालक और स्त्रियां

की करुणा-कातर भावना है, और नम्र प्रेम है। यदि आधुनिक युग मे, न सही ईश्वर-भक्ति, किन्तु थोडा-सा भी हृदय-गुण आ सके तो हमारा जीवन अधिक आह्लादमय, सरस और आर्द्र हो उठे।

उन दिनो सगीत, चित्रकला, भवन निर्माण-कला नयी ऊँचाइयाँ छूने लगी। बडे-बडे किलो की मेहराबो मे एक नयी सुकुमारता आ गयी। नये राग चलाये गये। भव्यता और कोमलता इन दोनो गुणो से सयुक्त होने लगी हमारी कला। मुसलमानो ने इन कलाओ को आत्मीय बनाकर उनमे नया रस डाला। क्या सगीत को हिन्दू सगीत और मुस्लिम सगीत कहा जा सकता है? कला के क्षेत्र मे [illegible]

किया। चूँकि वे अपनी जनता के सच्चे बेटे थे, इसलिए उनके हृदय में भी वही आह्लादकारिणी मानव-हृदय की एकता और अभिन्नता वर्तमान थी। क्या उस काल की यह देन आज की कला से किमी कदर भी कम थी? वह आज की कला से अधिक उच्च और स्थायी थी, इसलिए कि वह समय के हथौडो से जाँची जा चुकी है, खरी उतरी है।

मध्य और पश्चिम एशिया को सुशोभित करनेवाले गुम्बज और मीनार, भारतीय कलाकारो के हाथ मे पडकर नि सग भूरा रूखापन भूल गये। इनमे एक नया लालित्य और सौकुमार्य आ गया—किन्तु मज़बूती वैसी ही बनी रही। हिन्दू और मुस्लिम प्रतिभा के योग से भवन-निर्माण की एक नयी शैली का ही विकास हुआ।

मेहराबें हृदय की कोमलता प्रकट करने लगी। बागो मे लगाये जानेवाले तरह-तरह के झरने तथा दीवालो पर अंकित या खुदी हुई सुनहरी फूल-पत्तियाँ-हृदय के उत्साह और आनन्द को, उत्फुल्ल सौन्दर्य-भावना को और विशालता की सवेदना को, एक साथ प्रकट करने लगी।

उस काल की ये महान् उपलब्धियाँ अन्य युगो से किसी भी हालत मे कम नही हैं।

भारत में मुग़लों का आधिपत्य

भारत मे बसने के उद्देश्य से मुगलों ने भारत मे प्रवेश किया। उन दिनो देश मे अनेकानेक शक्तिशाली मुस्लिम और राजपूत राज्य थे। प्रारंभिक मुगल शासको को युद्ध ही युद्ध करना पडा। फिर भी अब तक आये हुए विदेशी मुस्लिम आक्रान्ताओ मे वे ही सर्वाधिक सभ्य और

सुसंस्कृत थे। भारत की युद्ध-विद्या के इतिहास मे पहली बार तोपो का प्रयोग हुआ। वह बाबर द्वारा किया गया। इस काल का एक उज्ज्वल रत्न मुगल शासक न होकर अफगान सुलतान शेरशाह सूर है। मलिक मुहम्मद जायसी ने अपने काव्य ग्रन्थ पद्मावत मे शेरशाह के सम्बन्ध मे कहा—"सेरसाहि देहली सुलतानू, चारिउँ खंड तपै जस भानू।"—वह भारत के महान् शासको मे से है।

चौदहवी सदी के अन्त मे मध्य एशिया के फरगाना नामक रियासत का शासक बाबर था। वह तैमूरलंग का वंशज था। अपनी रियासत की रक्षा के लिए, उसे पास-पडोस की रियासतो से लडना पडता। ये रियासतें उसी के सम्बन्धियों की थी। उनसे तंग आकर वह एक दिन अपनी सेनाओ के साथ, नया राज्य जमाने के लिए, निकल पडा। उसने अपनी जन्मभूमि का त्याग कर दिया। हिन्दूकुश के पर्वतो को पार कर उसने काबुल को जीत लिया। कुछ ही दिनो बाद उसने भारत की ओर प्रयाण किया।

उन दिनो दिल्ली के अफगान सुलतान निर्बल थे। गुजरात मालवा और बंगाल मे स्वतन्त्र मुस्लिम राज्य थे। सन् 1525 मे उसने दिल्ली के सुलतान इब्राहीम लोदी को पराजित किया और भारत मे मुगल वंश की स्थापना की। मंगोल शब्द ही का बिगडा हुआ रूप—'मुगल' है।

किन्तु, बाबर को तब तक चैन नही हो सकता था जब तक वह मेवाड के राणा साँगा से मोर्चा न ले। राणा साँगा बहुत अनुभवी योद्धा और पराक्रमी था। साँगा की दृष्टि भी दिल्ली ही पर थी। उसके नेतृत्व मे राजपूत राज्यो का एक संघ था। भारत के शक्तिशाली राज्यो मे से एक मेवाड भी था।

युद्ध होना अनिवार्य था। दोनो पक्ष इसे समझ रहे थे। राजपूत नरेशो ने उत्साहपूर्वक राणा साँगा का साथ दिया। सन् 1527 मे सीकरी मे घमासान युद्ध हुआ।

बाबर ने तोपो का प्रयोग किया। भारतीय इतिहास मे तोपो के प्रयोग की यह पहली घटना थी। राजपूतो के तलवार और भाले तथा व्यक्तिगत पराक्रम किसी काम न आये। भारतीय युद्ध-विद्या कमजोर थी। मुगल युद्ध-कला अधिक विकसित थी।

राणा साँगा की पराजय के बाद, बाबर को राजपूताने पर कब्जा करने मे ज्यादा देर न लगी। इसके बाद, उसने बिहार और बंगाल को भी जीत लिया और सन् 1530 तक अपनी मृत्यु के पहले, उसने सारे उत्तर भारत मे अपना साम्राज्य फैला दिया।

हुमायूँ

किन्तु, मुगल साम्राज्य को दृढ होने मे अभी देर थी। हुमायूँ के राज्यारोहण के तुरन्त उपरान्त, अनेक प्रान्तो मे विद्रोह की अग्नि भडक उठी। बिहार मे शेर खाँ नामक बहादुर अफगान सरदार ने बगावत कर दी, जिसे दबाने के लिए हुमायूँ बिहार की ओर बढा। उसका दमन करके ज्यो ही वह लौटा कि उसे खबर मिली कि गुजरात मे विद्रोह हो गया है। हुमायूँ सेना सहित गुजरात की तरफ़ रवाना

हुआ। इस बगावत से फायदा उठाकर, शेर खाँ ने फिर से अपनी ताकत बढा ली। गुजरात की लडाई मे हारा-थका हुमायूँ जब दिल्ली मे थोडी आराम की सांस ले रहा था कि शेर खाँ ने दिल्ली पर हमला बोल दिया। हुमायूँ को दिल्ली छोड देनी पडी। वह राजस्थान होते हुए ईरान चला गया। शेर खाँ—शेरशाह सूर के नाम से—दिल्ली के राजसिंहासन पर बैठा। यह घटना सन् 1540 की है। शेरशाह सूर के वश ने सिर्फ 15 वर्षों तक राज्य किया।

शेरशाह सूर

यह सुलतान भारत के महान् शासको मे से है। उसने अपने राजत्व के अल्पकाल मे ही अनेक निर्माण-कार्य किये। उसने बगाल से पजाब तक बहुत बडी सडक बनायी, उनके दोनो ओर पेड लगवाये, जगह-जगह सरायें बनायी, वहाँ कुएँ खुदवाये। इन सरायो मे हिन्दू और मुसलमान दोनो प्रकार के यात्रियों के लिए रहने की व्यवस्था थी। सरायो मे हिन्दुओ के लिए भोजन की अलग व्यवस्था थी और भोजन बनाने के लिए ब्राह्मणो को नियुक्त किया। साथ ही, यात्रियो के जानवरो के लिए घास आदि का बन्दोबस्त किया। प्रत्येक सराय में मुसलमानो के लिए मस्जिद भी बनायी।

राज्य-शासन की सुव्यवस्था के लिए उसने अलग-अलग महकमे बनाये। न्याय और सहिष्णुता की भावना से प्रेरित होकर, उसन हिन्दुओ को अपनी ओर मिला लिया।

देश की आर्थिक स्थिति के सुधार के लिए उसने बहुत-से प्रयत्न किये, जिसमे भूमि-कर-सुधार प्रमुख है। राज्य के नागरिको की रक्षा के लिए उसने बाकायदा पुलिस विभाग का सगठन किया। अगर इस विभाग के अधिकारी-गण खून या चोरी की ठीक जाँच करके अपराधी को पकड न पाते तो उन्हे ही कठोर दण्ड दिया जाता।

शेरशाह ने कहा—"धर्म-विधियो मे सर्वश्रेष्ठ विधि है—न्याय। मुसलमान राजाओ के अलावा, हिन्दू राजाओ न भी न्याय की प्रशसा की है।" शेरशाह ने केवल अपराधी के विरुद्ध न्याय निर्णय ही नही दिये, वरन् उसके अलावा, उसने सामाजिक न्याय-भावना तथा सहिष्णुता भी बतायी।

शेरशाह बहुत बुद्धिमान तथा न्याय परायण शासक भी है। वह प्रजावत्सल भी था। उसने डाक विभाग का भी सगठन किया, साथ ही, विभिन्न प्रान्तो की हलचलें जानने के लिए, सवाद-वाहक भी नियुक्त किये।

दुर्भाग्य से वह शीघ्र ही मर गया। उसका राजवश अधिक दिनो तक नही चला। प्रान्तीय शासक फिर से स्वतन्त्र होने लगे। इस अराजकता से फायदा उठाकर, हुमायूँ ने ईरान मे सगठित सैन्य की सहायता से दिल्ली को फिर से जीत लिया।

हुमायूँ दीर्घकाल तक ईरान में रहा था। वहाँ उसके सामन्त भी गये थे। अब वह वहाँ से लौटा तो ईरानी सेना और सामन्त दोनो लेता आया। फलत. हुमायूँ के शासन-पद पर योग्य ईरानियो की नियुक्ति हुई। दरबार मे ईरानी सस्कृति का प्रभाव बढता गया।

बाबर और हुमायूँ दोनो ज्ञान-प्रेमी थे। बाबर ने अपना आत्मचरित लिखा

है। उसने केवल अपने गुणों का ही नहीं, दोषों तक का उल्लेख किया है। वह मुख्यत सैनिक था। वह कुशल प्रबन्धक प्रतीत नहीं होता था। उसका पुत्र हुमायूँ भी शूरवीर था। गणित, फलित, ज्योतिष और भूगोल का वह प्रेमी था। फिर भी वह एक विशेष अर्थ मे अभागा था, उसके भाइयो मे, जो बड़े-बड़े सूबेदार थे, संकट में उसकी कोई मदद नहीं की। सिवाय इसके वह अफीम भी खाता था। हुमायूँ जब अपने पुत्र अकबर को छोड़कर मरा उस समय पूरा साम्राज्य असुरक्षित था।

अकबर महान्*

मुगल अभ्युदय के पूर्व ही भारत के ग्रामो और नगरो मे हिन्दू-मुस्लिम सांस्कृतिक सामंजस्य का वातावरण बन गया था। इस सांस्कृतिक प्रवृत्ति को अकबर ने राजनैतिक रूप दिया तथा राष्ट्रीय राजतन्त्र की स्थापना की। एक ओर राजपूतो ने मुगल आधिपत्य स्वीकार कर लिया, तो दूसरी ओर मुगल शासन के प्रधान शक्तिशाली पदो पर आसन जमाकर उन्होंने मुगल साम्राज्य की वृद्धि की। मुगल साम्राज्य की रक्षा तथा प्रसार का दायित्व बहुत कुछ राजपूतो पर आ गया था। शक्तिशाली मुगल साम्राज्य का वजीरेआज़म टोडरमल हुआ। इस प्रकार, इस साम्राज्य के विकास और प्रसार का श्रेय हिन्दुओं और मुसलमानो दोनो को है। जिस महान् व्यक्तित्व ने यह घटित करके बता दिया उसका नाम भारत के महान् शासको मे गिना जाता है।

भारत के सर्वश्रेष्ठ सम्राटो मे अकबर की गिनती होती है। मुगल साम्राज्य का वास्तविक संस्थापक अकबर ही माना जाता है।

हुमायूँ अकबर के लिए जब राज्य छोड़कर मरा तब पूरी मुगल सल्तनत असुरक्षित थी। दिल्ली के अधिकार से वंचित अफगान राजवंश सूरवंश के उत्तराधिकारी आदिल शाह सूर के हिन्दू प्रधानमन्त्री हेमू ने सन् 1556 मे दिल्ली पर हमला किया। यह हमला उसी सन् मे हुआ जिस सन् मे हुमायूँ की मृत्यु हुई और अकबर गद्दी पर बैठा। उस समय अकबर की आयु केवल 14 वर्ष की थी। किन्तु, पिता के साथ उसका जो पिछला जीवन बीता था, उसमे उसे युद्ध का पर्याप्त अनुभव हो चुका था। उसके सौभाग्य से, बैरम खाँ नामक एक कठोर-हृदय वीर पुरुष मुगल सेना का अध्यक्ष था। उसने, बग़ैर अकबर से पूछे, मुगल सेनाओं के उन प्रमुखो का, जिन्होंने शत्रु का सतर्कतापूर्वक प्रतिरोध नहीं किया था, सर अलग कर दिया। इसके फलस्वरूप, बैरम खाँ का आतंक छा गया। पानीपत की लड़ाई मे, जो 15 नवम्बर सन् 1556 मे हुई, हेमू की सेना को नष्ट कर दिया गया। हेमू की मृत्यु के बाद, अगले चार साल तक बैरम खाँ ही प्रधान-मन्त्री का काम करता था।

* पाठ्य पुस्तक में यह अध्याय 'राष्ट्रीय राजतन्त्र की स्थापना' शीर्षक से था।—स.

वैरम खाँ स्वामिभक्त किन्तु कठोर-हृदय और जिद्दी आदमी था। इधर, अकबर ने होश सँभाला, उसकी नीति कुछ और थी। फलत, अकबर और बैरम मे मतभेद हुए। बैरम को निकाल दिया गया। उसका अन्त बहुत दुखदायक हुआ।

अकबर के सामने एकदम कई सवाल थे। शेरशाह सूर के सुप्रबन्ध की जो कीर्ति थी वह उसने सुन रखी थी। साथ ही, साम्राज्य के कौन शत्रु थे, वह उन्हे अच्छी तरह जानता था। वे दो थे—एक, स्वतन्त्र अफगान जो भारत मे फैले हुए थे। दूसरे, राजपूत। परिस्थिति का उसने सही-सही विश्लेषण किया था। उसे मालूम था कि बादशाह के कमजोर होते ही तरह-तरह के षड्यन्त्र और विद्रोह होने लगते हैं। सन् 1560 से 1566 तक उसे उनका अनुभव भी हो गया।

अफगानो और मुगलो का धर्म एक था। किन्तु वहाँ राजनैतिक स्वार्थों की टकराहट थी। राजपूत विधर्मी थे, किन्तु उनके नैतिक सद्गुणो के सम्बन्ध मे उसने अपने पिता से बहुत कुछ सुन रखा था। वे वीर थे, साहसशील थे, ईमानदार थे, और स्वामिभक्त थे। ये उनके जातीय गुण थे। साथ ही वे कट्टर धर्माभिमानी भी थे। अफगानो और राजपूतो की तुलना करने के बाद, अकबर ने दूरदर्शिता और बुद्धिमत्तापूर्वक हिन्दुओ को अपनी ओर मिलाने का निर्णय किया।

अकबर ने भारत मे मुगल शासन की स्थापना करने के लिए, राजपूतो के सामने मैत्री का हाथ बढाया। उनसे विवाह-सम्बन्ध स्थापित किये। सबसे पूर्व जयपुर के राजा भारमल ने अपनी कन्या का विवाह अकबर के साथ कर दिया। इसके बाद, अनेक राजाओ ने अकबर के साथ वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किये। अकबर न इन राजाओ को मुगल साम्राज्य मे ऊँचे-ऊँचे पद प्रदान किये और उनकी सेवाओ की सहायता से भारत के बडे भाग की विजय की।

उधर राजपूतो की ही सहायता से उसने रणथम्भौर, चित्तौड, गौडवाना, बगाल, बिहार, उडीसा, अहमदनगर, काश्मीर, सिन्ध, काबुल और बलूचिस्तान को अपने कब्जे मे ले लिया। उसके प्रतिरोधियो मे दो मुख्य हैं—एक चित्तौड के महाराणा प्रताप, दूसरे गोडवाने की रानी दुर्गावती।

राणा प्रताप

राणा प्रताप एक शूरवीर योद्धा था। वह प्रचण्ड धर्माभिमानी था। उसने अकबर की अधीनता स्वीकार नही की तथा राजपूतो की पुरानी परम्परा को जारी रखा। जब चित्तौड छिन गया तो उसने जगल मे शरण ली। वहाँ से राणाप्रताप ने अकबर के विरुद्ध सघर्ष जारी रखा।

जिन हिन्दू राजाओ ने वीरतापूर्वक अकबर की शक्ति का प्रतिरोध किया उनमे मध्य प्रदेश के गढामँडला की रानी दुर्गावती उल्लेखनीय है। वह अकबर की सेनाओ से लडते-लडते मारी गयी।

राजपूत राज्यो ने एक मुस्लिम सम्राट को अपनी कन्याएँ प्रदान करना क्यों स्वीकार किया? इसका उत्तर अपनी-अपनी मनोवृत्तियो के अनुसार ही अब तक दिया गया है। किन्तु, यदि हम पूरे भारतवर्ष मे फैले हुए उस सास्कृतिक वातावरण को ध्यान मे रखें, जिसम हिन्दू और मुस्लिम दोनो प्रकार की रूढियो की भर्त्सना की जा रही थी—साधारण पुरुषो के द्वारा नही, वरन् असाधारण पुरुषो के द्वारा,

को हिन्दू धम का उपदेश किया। अकबर उस ब्राह्मण से बहुधा धर्म-चर्चा किया करता था। उसी प्रकार जैन मुनि हरि विजय सूरि जिनचन्द्र भानुचन्द्र उपाध्याय तथा मुनिराज विजय सेन सूरि अकबर के सामने जैन धम के स्वरूप पर प्रकाश डालते थे। सन् 1579 के बाद एक-न एक जैन मुनि बादशाह के दरबार म रहा आया। उन्ही क धर्मोपदेशो का प्रभाव था कि अकबर ने कुछ निश्चित तिथियो पर पशुवध बन्द करा दिया था।

अकबर ने पारसियो द्वारा प्राचीन ईरानी धम पर प्रवचन सुना। पारसी

श्रद्धा थी। उस धम ने हिन्दुओं और मुसलमानो को एक करने का प्रयत्न किया था।

ईसाई धम से परिचय प्राप्त करने के लिए अकबर ने गोवा के पुर्तगीज पादरियो से सम्पक स्थापित किया। उन्हे अपनी राजसभा म बुलाया। किन्तु पुर्तगीज पादरियो न मुहम्मद साहब और कुरआन पर तरह तरह के आक्षप शुरू किये। परिणाम यह हुआ कि ईसाई मजहब स बहुत स मुसलमान नाराज हो गय।

दीन इलाही

अनेकानेक धर्मों को ध्यान मे रखकर अकबर ने सोचा कि एक ऐसे धम का विकास हो जिसम सारे धर्मों के सार तत्त्व समा जायें। इसलिए उसने दीन इलाही नामक धम चलाया। इस धम का सिद्धान्त यह है कि ईश्वर एक है अकबर उसका दूत है मनुष्य का यह पवित्र कतव्य है कि वह अपने विवेक स सत्य और असत्य का निणय करे। दीन इलाही मे किसी व्यक्ति या बात पर अन्धविश्वास के विरुद्ध चेतावनी दी गयी है। अन्धविश्वास का स्थान स्थान पर विरोध करत हुए स्वतन्त्र बुद्धि पर जोर दिया गया है। दीन इलाही मे पशुहिंसा का पाप समझा गया मास भक्षण का निषध किया गया। अकबर के अन्त करण म नि सन्देह एक स्वतन्त्र शोध बुद्धि थी।

अकबर सुबह उठते ही सबसे पहले उगते हुए सूय को नमस्कार करता और उसमे यह अनुभूति उत्पन्न होती कि ईश्वरीय तेज का प्रकट रूप अग्नि है। वह अग्नि को भी दिव्य शक्ति का प्रतीक मानता।

बहुत से लोग जो उसके दरबार मे उठते-बैठते थे दीन इलाही के अनुयायी हो गये। उनमे हिन्दू और मुसलमान दोनो शामिल थे। यह सच है कि सम्राट को प्रसन्न करने के लिए उन्होने दीन इलाही स्वीकार किया। यह धर्म चला नही। किन्तु उससे तत्कालीन युग की धार्मिक प्रवृत्तियो पर प्रकाश पडता है।

ऐसे मुसलमान को अगर राजपूत राजाओ ने अपनी कन्याएँ दी तो इसमे उन्होन जाने या अनजाने एक महत्त्वपूण काय किया। भारत की तत्कालीन समाज सामजस्य प्रधान मानवतावादी वत्तियो को ही उन्होने प्रोत्साहन दिया भले ही उन्होने वैसा किसी राजनैतिक हेतु से किया हो।

अकबर की स्वतन्त्र बुद्धि क विकास मे उसकी हिन्दू रानियो का हाथ था,

साथ ही शेख मुबारक जैसे सूफियों का भी योगदान था। शेख मुबारक के दो पुत्र अबुल फजल और अबुल फ़ैज़ी के विचारों का अकबर के मन पर बहुत प्रभाव पड़ा।

हिन्दू स्त्रियों से विवाह करके उसने मुगल राजवश को भारतीय बनाना चाहा। शासक-वर्ग मे हिन्दू रक्त प्रवाहित किया। यदि हम उस युग के रूढिवाद को देखें—चाहे वह हिन्दू रूढिवाद हो, चाहे मुस्लिम—तो हमे यह महसूस होगा कि अकबर का यह क़दम क्रान्तिकारी था। क्रान्तिकारी इसलिए कि भले ही हिन्दुओं ने अपनी कन्याएँ देकर उन कन्याओ को मुस्लिम धर्म के हवाले कर दिया हो, किन्तु अकबर ने उन हिन्दू कन्याओं को मुसलमान नहीं बनाया, उन्हे इस्लाम कुबूल करने के लिए नहीं कहा। मुसलमान मुल्लाओ और ब्राह्मण पुरोहितों—दोनों को यह एक बडी चुनौती थी।

अपनी हिन्दू रानियो के लिए उसने, उनके किले के भीतर ही, तुलसी-तरु, मन्दिर आदि की व्यवस्था की। यहाँ तक कि किले के अन्दर हिन्दू रानियो के निवास-स्थान की स्थापत्य कला भी हिन्दू हो जाती है, मेहराबें और कमानियाँ, गवाक्ष (झरोखे) और द्वार हिन्दू रूप धारण कर लेते हैं। अपनी हिन्दू रानियो को प्रसन्न करने के लिए, साथ ही अपनी हिन्दू प्रजा के निकटतर आने के लिए, अकबर स्वय हिन्दू पोशाक धारण करता, तिलक लगाता और माला फेरता।

ध्यान मे रखने की बात है कि अकबर ने जिन प्रान्तीय मुस्लिम राज्यो को अपने साम्राज्य मे मिला लिया था, उन राज्यो मे हिन्दू-मुस्लिम सास्कृतिक मैत्री घनिष्ठ हो चुकी थी। हिन्दुओ और मुसलमानों म आत्मीय सम्बन्ध स्थापित हो चुके थे।

इन्ही मुस्लिम राज्यो मे हिन्दुओ का सर्वाधिक उत्कर्ष हुआ था। साथ ही, शेरशाह सूर ने अल्पकाल म ही धार्मिक सहिष्णुता का तथा प्रजावत्सलता का परिचय दिया था। उधर, भक्ति-आन्दोलन के फलस्वरूप, समाज मे आध्यात्मिक मानवतावाद का वातावरण उत्पन्न हो चुका था।

अकबर ने इसी परम्परा को कई कदम आगे बढाना चाहा। उसके मत- [illegible]

उसने तत्कालीन सामजस्य और समन्वय की भावना को, सामाजिक और राजनैतिक वस्तुस्थिति मे परिणित करना चाहा।

इन विवाह-सम्बन्धो के फलस्वरूप खास मुसलमानो के केन्द्रीय स्थानो मे हिन्दुओ का प्रवेश हुआ, दुर्ग के भीतर अन्त पुर मे हिन्दू सभ्यता और सस्कृति के छोटे-छोटे केन्द्र बन गये। राजपूत राजाओ को शासन के सर्वोच्च पदो पर नियुक्त करके, उसने मुगल शासन-यन्त्र मे हिन्दुओ के प्रभाव विस्तार को प्रोत्साहन दिया। राजा टोडरमल सरीखे कार्य-दक्ष पुरुष को माल महकमा सौंपा गया। उसने शेरशाह सूर के भूमि सुधारों को इधर-उधर परिवर्धित करके साम्राज्य भर मे लागू किया। हिन्दुओ पर अकबर ने विश्वास किया, उन्हें अपने विश्वास में लिया। साम्राज्य की रक्षा का बहुत कुछ भार उसने उन्ही पर डाल दिया। उत्तर-पश्चिम के बडे-बडे युद्ध अब राजपूतो की बहादुरी से लडे जाने लगे। साथ ही,

राजपूत राजाओं के राज्य को उसने कायम रहने दिया।

वह जानता था कि भारत में बहुसंख्यक हिन्दू ही हैं। उनका विश्वास प्राप्त करना उसके लिए आवश्यक था। प्रान्तीय मुस्लिम राज्य पहले ही से यह विश्वास प्राप्त कर चुके थे। उसने इस राजनैतिक प्रवृत्ति-प्रक्रिया को और आगे बढ़ाया।

फलत, वह सही मानों में राष्ट्रीय राजतन्त्र का संस्थापक था। तत्कालीन सामजस्यवादी वातावरण को उसने पूरे भारत में राजनैतिक रूप प्रदान किया, और इस प्रकार पहली बार भारत में राष्ट्रीय साम्राज्य का उदय हुआ। हम उसे राष्ट्रीय राजतन्त्र क्यों कहते हैं? इसलिए कहते हैं कि इस्लाम के सिद्धान्तों के अनुसार राजा केवल मुसलमानों का राजा होता है। इस्लाम में राज्य-संचालन के भी सिद्धान्त हैं। ग़ैर-मुस्लिमों की सत्ता तो मुस्लिम राज्य स्वीकार नहीं करता, उनकी जान-माल की रक्षा के बदले उनसे विशेष कर वसूल किया जाता है। यह कर *जजिया कहलाता है। इस प्रकार, समाज दो भागों में विभक्त हो जाता है—* एक मुस्लिम, दूसरा ग़ैर मुस्लिम।

राष्ट्रीय राजतन्त्र

अकबर ने हिन्दुओं पर से जजिया कर उठा दिया। इस प्रकार, नागरिकों की दो सामाजिक-राजनैतिक कोटियों को समाप्त कर दिया। अब सम्राट् के सामने हिन्दू मुस्लिम दोनों की स्थिति एक समान थी, सिर्फ मुस्लिम होने के नाते, कोई नागरिक बड़ा नहीं हो सकता—सरकार की आँखों में—इसलिए इस शासन को राष्ट्रीय शासन कहा जाता है। किन्तु केवल इसी आधार पर तत्कालीन राजतन्त्र को राष्ट्रीय कहना ठीक नहीं, वह 'राष्ट्रीय' राजतन्त्र इसलिए भी था कि उसमें भारतीय जनता की महत्त्वपूर्ण तथा प्रधान प्रवृत्तियों और आकांक्षाओं का प्रतिनिधित्व होता था। वह प्रधान प्रवृत्ति थी—विभिन्न धर्मों और धर्मानुयायियों के बीच सामंजस्य तथा समन्वय की भावना तथा भारतीय जनता में उस भावना का वातावरण।

राष्ट्रीय राजतन्त्र होते हुए भी, वह आधुनिक ढंग का राष्ट्रवादी राजतन्त्र नहीं था। किन्तु उसने जातीय ऐक्य के क्षेत्र में आधुनिक राष्ट्रवादी युग से अधिक सफलता प्राप्त की थी। उस राष्ट्रीय राजतन्त्र के फलस्वरूप समाज सामंजस्य का कार्य और भी आगे बढ़ा।

ऐसी स्थिति में अगर राजस्थान के राजपूत राज्य अकबर से न केवल प्रसन्न हों, वरन् मुग़ल साम्राज्य के उच्चपदाधिकारी बनने में गौरव और प्रतिष्ठा का अनुभव करें तो इसमें आश्चर्य ही क्या है? सूबेदार और सेनापति, सरदार और मनसबदार बनकर, मुग़ल साम्राज्य के वास्तविक संरक्षण का कार्य उनके हाथ में आ गया था। वे यह खूब समझते थे कि साम्राज्य की शक्ति और समृद्धि उन्हीं के सहयोग पर निर्भर है।

जजिया कर उठाने के अतिरिक्त, अकबर ने काशी, प्रयाग, अयोध्या, हरिद्वार, मथुरा आदि हिन्दू तीर्थों की यात्रा करनेवालों पर जो टैक्स लगाया जाता था, वह भी उठा लिया। जजिया और तीर्थ यात्रा कर उठा लेने का ऐतिहासिक राजनैतिक महत्त्व है। इस कदम से राज्य का स्वरूप बदल गया। तुर्क-अफ़गान युग में, राज्य था—एक विशेष धर्म और उसके अनुयायियों का, किन्तु अब वह सब जातियों और

धर्मों का सम्मिलित शासन था। इस अर्थ में अकबर ने भारत में राष्ट्रीय राजतन्त्र का निर्माण किया।

इस अखिल भारतीय मुगल सत्ता का प्रधानमन्त्री—वजीरे आजम—राजा टोडरमल था। वह खत्री था। क्रमश वह पदोन्नति पाता गया, और अन्त म प्रधानमन्त्री बन गया। उसके हाथ म वित्त तथा भूमि-व्यवस्था का भी कार्य था।

उसके सर्वोच्च सेनाध्यक्ष थे—राजा मानसिह और राजा भगवानदास। अफ़ग़ानिस्तान जैसे मुस्लिम प्रदेश का शासन राजा मानसिंह के हाथ म था। उसी प्रकार बगाल तथा अन्य प्रदेश के सर्वोच्च शासक भी राजपूत ही थे।

किन्तु ध्यान रहे वह सामन्त सभ्यता, सामन्ती समाज-व्यवस्था थी। उस व्यवस्था म आधुनिक प्रकार के राष्ट्रवाद की गुजाइश नही थी। स्वय प्रजा अपने राजा को अर्थात् अकबर को ईश्वर का अश मानन लगी थी। वह अब न केवल मुसलमानो का 'खलीफा' हो उठा, वरन् उसने अब प्रजा की सन्तुष्टि के लिए 'जगद्गुरु' की उपाधि भी धारण कर ली। लागो में यह भावना हो उठी कि जिस प्रकार प्रात काल सूर्य के दर्शन किये जाते हैं उसी प्रकार सुबह उठकर सम्राट् के दर्शन होना चाहिए। लोग इस अपना पुण्य कर्तव्य समझते।

बहुत-से लोग दुर्ग के झरोखे के नीचे, मैदान में सम्राट् के दर्शन के लिए एकत्र होते। अकबर स्वय अपने राज-प्रासाद के खुले गवाक्ष म, सूर्योदय के दो घडी बाद, जनता को दर्शन देता।

अकबर के समय ऐसा सम्प्रदाय ही उत्पन्न हो गया था जो सम्राट् के दर्शन के बिना भोजन ग्रहण नही करता था, न पानी ही पीता था। इस सम्प्रदाय को 'दर्शनिया' सम्प्रदाय कहते थे। सच बात तो यह थी कि भारत की भावुक जनता न सम्राट् के अतुल्य प्रताप को देखकर उनम देवत्व की भावना कर ली थी। यहाँ तक कि आगे चलकर जहाँगीर और शाहजहाँ अपन को 'ईश्वरीय अश मानन लगे थ—जहाँगीर की रानी नूरजहाँ न 'जगत्-गुसाँइनी' की उपाधि धारण कर ली थी।

वह सामन्त सभ्यता, सामन्ती समाज-व्यवस्था थी। उसके अन्तर्गत, सम्राट् सर्वोच्च पुरुष थे, सारे राजनैतिक अधिकार उसके पास थे। वह निरकुश, स्वेच्छाचारी, सार्वभौम अधिपति था।

जिस प्रकार अफगान-युग म 'सत्य-पीर' नामक सम्प्रदाय का उदय हुआ—जिसमे हिन्दू और मुस्लिम दोनो का सामजस्य किया गया था, उसी प्रकार मुगल-काल म सतनामी और नारायणी सम्प्रदाय उत्पन्न हुए। नारायणी सम्प्रदाय म हिन्दू और मुस्लिम दोनो थे। व पूर्व की ओर मुँह किये दिन म पाँच बार प्रार्थना करते। ईश्वर के अनक नामो म 'अल्लाह' का भी समावेश करते थे। मुर्दों को जलाने के बजाय, जमीन मे गाडते थे।

इस युग की समन्वय-सामजस्य भावना का मूर्त प्रतीक है—एक साधक, जिसका नाम था प्राणनाथ। प्राणनाथ के अनुयायी दोनो थे—हिन्दू और मुसलमान। महत्त्व की बात यह है कि उसके सम्प्रदाय म दीक्षित होन के लिए हिन्दू और मुसलमान दोनो को एक ही पगत म भोजन के लिए बैठना पडता था। प्राणनाथ कहता था—'सबका धर्म और ईमान एक होना चाहिए।' उसने मूर्ति-पूजा, जातिवाद और ब्राह्मण-प्रभुत्व के विरुद्ध एक आन्दोलन ही खडा कर दिया था।

उधर अकबर स्वयं खलीफा हो उठा था। उसने सन् 1580 ई० में नमाज़ में हज़रत मुहम्मद साहब का उल्लेख करने की मनाही कर दी। रमज़ान के महीने के उपवास का भी उसने निषेध किया। बादशाह के सामने सिज्दा (दण्डवत) करने का हुक्म दिया। गो-हत्या बन्द कर दी।

समाज-सुधार

अकबर ने नवजात बालिकाओं की हत्या का रिवाज बन्द कर दिया। सती-प्रथा पर भी रोक लगाने का प्रयत्न किया। स्वेच्छा से तो कोई स्त्री सती हो सकती थी, किन्तु उस पर जबर्दस्ती नहीं की जा सकती थी। राजा भगवान दास के एक सम्बन्धी की स्त्री को जब जबर्दस्ती सती बनाया जाने लगा, तुरन्त ही उसने एक अश्वारोही दल भिजवाकर उसे रुकवा दिया।

अकबर का नाम लेते ही हमारे सामने ये व्यक्ति आते हैं—राजा मानसिंह, राजा टोडरमल, अबुल फज़ल, अबुल फ़ैज़ी और निज़ामुद्दीन। इसके दरबारियों में ये सर्वश्रेष्ठ थे। इसके अतिरिक्त उसका परम सखा था—बीरबल। प्रसिद्ध संगीतकार तानसेन उसका दरबारी था, और साथ-ही-साथ इतिहास-लेखक बदायूँनी का नाम भी नहीं भुलाया जा सकता।

अकबर की नीति के तीन मुख्य सिद्धान्त थे

(अ) राज्य-व्यवस्था को किसी एक ही धर्म या जाति के एकाधिकार में न रखना। एक ही धर्म या जाति की शक्ति के आधार पर राज्य-व्यवस्था खड़ी न करना अर्थात् राजतन्त्र को राष्ट्रीय स्वरूप देना और उसका निर्वाह करना।

(ब) हिन्दुओं की सहानुभूति, समर्थन और सहयोग प्राप्त करना।

(स) सम्पूर्ण भारत पर साम्राज्य स्थापित करके उसे एक राजनैतिक इकाई बना देना।

अकबर के बाद

(सत्रहवीं सदी से अठारहवीं सदी के मध्य तक)

अकबर के अनन्तर, जहाँगीर और शाहजहाँ ने राष्ट्रीय राजतन्त्र बराबर बनाये रखा। किन्तु, शाहजहाँ के अन्तिम काल में, संकीर्णतावादी मनोवृत्तियों ने सिर उठाया। औरंगजेब ने, राष्ट्रीय राजतन्त्र को बलपूर्वक धर्मतन्त्र बना दिया। फलस्वरूप, उसकी मृत्यु के उपरान्त, मुग़ल साम्राज्य का विघटन आरम्भ हुआ। भारत अनेक राजनैतिक केन्द्रों में बँट गया। मराठा तथा सिख शक्ति का अभ्युत्थान हुआ। इस काल में, वाणिज्य, व्यापार, साहित्य, शिल्प तथा चित्रकला का विशेष उत्कर्ष हुआ। तत्कालीन भारत विश्व के अत्यन्त वैभवशाली तथा कला-सम्पन्न देशों में से था।

जहाँगीर

सन् 1605 में जब अकबर मृत्यु हो गयी तो जहाँगीर सम्राट हुआ। उसने, सामान्यता, अकबर की ही नीति का अनुसरण किया। वह बहुत उदारहृदय, न्याय-परायण और विलासी था। जहाँगीर का दरबार बहुत समृद्धिशाली था। उसकी स्त्री नूरजहाँ बहुत प्रतिभाशील थी। उसके प्रभाव के अन्तर्गत राजसभा और साम्राज्य में ईरानियों का प्रभाव-विस्तार होने लगा।

शाहजहाँ

पिता की मृत्यु के उपरान्त सन् 1627 में शाहजहाँ सम्राट हुआ। उसे राज्य-सिंहासन की प्राप्ति के लिए कठोर संघर्ष करना पड़ा। उसको खानजहाँ लोदी, गोलकुण्डा तथा बीजापुर के सुलतान तथा बुन्देलों से युद्ध करना पड़ा। उसके काल में, राजतन्त्र का स्वरूप राष्ट्रीय ही रहा। मुगलों का चरम उत्कर्ष उसी के काल में हुआ, किन्तु साथ ही ह्रास के लक्षण भी दिखायी देने लगे।

शाहजहाँ अपने पुत्र दारा शिकोह से बहुत प्रेम करता था। दारा हिन्दू धर्म, दर्शन तथा संस्कृति से बहुत प्रभावित था। उसने उपनिषदों का अनुवाद फारसी में किया। यदि शाहजहाँ के बाद, दारा भारत का सम्राट होता तो अकबर द्वारा आरम्भ की गयी परम्परा का और भी उत्कर्ष होता। भारत में हिन्दू-मुस्लिम सम्बन्ध दृढ़तर होते जाते।

औरंगज़ेब

अपने भाइयों को कत्ल करके और अपने पिता शाहजहाँ को कैद में डालकर, औरंगज़ेब सन् 1658 में दिल्ली की गद्दी पर बैठा। उसने इतिहास को पीछे ढकेलने की कोशिश की। उसने राजतन्त्र के राष्ट्रीय स्वरूप को बदलकर उसे धर्मतन्त्रवादी राज्य बना दिया।

औरंगज़ेब ने हिन्दुओं पर जज़िया कर फिर से लगाया। हिन्दू मन्दिरों को तोड़ने की आज्ञा जारी की। हिन्दू व्यापारियों पर कर बढ़ाया गया, जबकि मुस्लिम व्यापारियों पर वैसा नहीं किया गया। यह आज्ञा प्रचलित की कि हिन्दू सार्वजनिक रूप से उत्सवों में भाग नहीं ले सकते। शासकीय पदों पर हिन्दुओं को हटाकर मुसलमानों की नियुक्ति की। जो हिन्दू मुसलमान बन जाते उन्हें पुरस्कार दिया जाता। उसने दिल्ली दरबार के बहुत-से हिन्दू रीति रिवाजों को निकाल दिया।

यह हिन्दूविरोधी नीति साम्राज्य के लिए घातक सिद्ध हुई। मुग़ल सत्ता के विरुद्ध विद्रोह आरम्भ हुए, जिनमें से मुख्य इस प्रकार हैं

(1) दक्षिण में, शिवाजी ने मुगलों को चुनौती दी, मराठा राज्य की नींव डाली, जिसका अन्तिम उद्देश्य 'हिन्दू-पदपादशाही' था।

(2) राजपूताने में दुर्गादास के नेतृत्व में ज़बर्दस्त विद्रोह हुआ। मेवाड़ के राजा राजसिंह ने दुर्गादास का साथ दिया। पच्चीस वर्ष तक युद्ध होता रहा। अन्ततः, औरंगज़ेब को राजपूतों से समझौता करना पड़ा, उन्हें सन्तुष्ट करना पड़ा।

(3) पंजाब में सिक्खों के गुरु तेग़बहादुर निर्भीकतापूर्वक औरंगज़ेब का विरोध

कर रहे थे। औरगजेब ने बहुत क्रूरतापूर्वक उनका वध किया। गुरु के वध का समाचार सुनकर, सिक्खो की आँखो मे खून उतर आया। उन्होंने औरगजेब से अपने गुरु का बदला लेने की ठानी। इस समय, सिक्खो का नेतृत्व करने के लिए गुरु गोविन्दसिंह आगे आये। उन्होने सिक्खो को सगठित किया। इस प्रकार, सिक्ख एक सैनिक शक्ति (खालसा) बन गये, और वे मुगलो के विरुद्ध सघर्ष करते रहे।

(4) मथुरा के समीप जाट जाति भी औरगजेब से तग आ गयी थी। उन्होंने *विद्रोह का झण्डा खडा किया। बीस साल तक उन्होंने औरगजेब को चैन न लेने* दिया।

(5) नारनौल नामक स्थान के समीप सतनामी जाति ने औरगजेब से विद्रोह किया। बडी मुश्किल से शाही सेनाएँ उन्हे कुचल सकी।

औरगजेब की मृत्यु के अनन्तर, मुगल साम्राज्य शीघ्रतया पतन की ओर जाने लगा।

मराठा शक्ति

जिन सन्तो ने समस्त भारत मे जन-साधारण मे आध्यात्मिक और सास्कृतिक आन्दोलन किया था उन्ही सन्तो में से बहुत-से महाराष्ट्र मे मराठी भजनो, अभगों और ओवियों द्वारा सामान्य जनता मे आध्यात्मिक भावना जगा रहे थे। इन सन्तो की कृपा से महाराष्ट्र के जन-साधारण ने आत्मगौरव और आत्म-शक्ति का अनुभव किया। उन दिनो मराठा सरदार इस या उस मुस्लिम राज्य की चाकरी कर रहे थे। किन्तु जन-साधारण मे असन्तोष घर करता जा रहा था। अनवरत चलनेवाले युद्धो, राज-कर्मचारियो के अत्याचारो से यह असन्तोष उग्र हो रहा था।

ऐसे समय एक वीर पुरुष सामने आया जिसका नाम था शिवाजी। सौभाग्य से उसे सन्त रामदास सरीखा गुरु मिला, जिसने उसे मुस्लिम राजसत्ताओ से सघर्ष के लिए प्रेरित किया। महाराष्ट्र मे हिन्दुओ की राजसत्ता की स्थापना ही उसका राजनैतिक उद्देश्य था।

शिवाजी केवल वीर पुरुष ही नही था। वह कुशल सेनानी था। उसकी सेना के विभिन्न नेता निम्न जातियो मे से आये थे। यद्यपि वह खुद मराठा क्षत्रिय था, उसका गुरु ब्राह्मण था, उसके मन्त्री ब्राह्मण थे, किन्तु सेना की कमान निम्न जातियों के प्रतिभाशाली पुत्रो के हाथ मे थी, इनमे कुछ मराठा भी थे। शिवाजी मे धार्मिक उदारता थी। वह मुस्लिम पवित्र स्थानो का सम्मान करता था, उसकी सेवा म बहुत-से मुस्लिम कर्मचारी थे। उसका उद्देश्य हिन्दुओ पर होनेवाले अत्याचारो को थामना था। उन दिनो कई मुस्लिम राज्य थे। उनकी निर्बलता से पूरा फायदा उठाकर शिवाजी ने पूना के आसपास के किलो को कब्जे मे ले लिया। ये किले बीजापुर के आदिलशाह के थे। इसलिए शिवाजी को उससे बहुत सघर्ष करना पडा। विवश होकर बीजापुर के आदिलशाह को शिवाजी से सन्धि कर लेनी पडी। इस प्रकार, शिवाजी का राज्य अस्तित्व मे आया। किन्तु, राज्य-विस्तार करते रहना आवश्यक था। औरगजेब की मुगल सेनाएँ शिवाजी की ताक मे थी। दोनो मे युद्ध होना अवश्यभावी था। मुगल बादशाह खुद चाहता था कि सारे दक्षिण भारत पर उसका आधिपत्य हो।

शिवाजी को कुचल देने के लिए, औरंगजेब ने शाईस्ता खाँ, जसवन्तसिंह तथा जयसिंह जैसे अनुभवी तपे हुए सेनाध्यक्षों को भेजा, किन्तु उनकी एक न चली। शिवाजी की युद्ध-कला मुगलों से भिन्न थी। शिवाजी के पास सेनाएँ कम थीं। किन्तु, उनमें चपलता, स्फूर्ति और आघात-शक्ति अधिक थी। उनकी सेना छापमार लड़ाई करती। वह बहुत कम बार मुगलों के आमने-सामने आयी। उसकी सेना का एक ही उद्देश्य था। मुग़ल सेना का तितर-बितर करना और फिर उसे काटना। शिवाजी पहला भारतीय था जिसने बड़े पैमाने पर गेरिल्ला (छापेमार) युद्ध-प्रणाली को अंगीकार किया।

जयसिंह ने सलाह दी कि वह औरंगजेब की अधीनता स्वीकार कर ले, फिर मुगल शक्ति उसके अपने राज्य में हस्तक्षेप नहीं करेगी। इस आशा से शिवाजी को औरंगजेब के यहाँ ले जाया गया। औरंगजेब ने उसके साथ ठीक बर्ताव नहीं किया, और मुँहतोड़ जवाब मिलने पर उसे कैद में डाल दिया गया। बड़ी ही चतुरता और कुशलता से शिवाजी औरंगजेब की कैद से भागा। फिर वेश बदलकर काशी होता हुआ वह दक्षिण की ओर आया। पूना लौटकर उसने अपने राज्य को भली-भाँति संगठित किया। सन् 1674 में रायगढ़ के किले में उसका राज्याभिषेक किया गया। इसके छह वर्ष बाद शिवाजी की मृत्यु हो गयी। वह एक कुशल राज-नीतिज्ञ था, उत्तम राज्य-प्रबन्धक था, उदार-चरित देश-भक्त था, तथा धार्मिक असहिष्णुता का उसमें नाम नहीं था।

शिवाजी की मृत्यु तब हुई औरंगजेब जीवित था। उसने सम्भाजी को फुसला-कर अपनी ओर मिला लिया। इसका परिणाम सम्भाजी को शीघ्र ही भुगतना पड़ा। बहुत क्रूरतापूर्वक औरंगजेब ने उसकी हत्या करवायी और उसके पुत्र शाहू को अपने संरक्षण में ले लिया। किन्तु, पूना में मराठी राज्य की स्थापना हो चुकी थी। मुगलों से खतरे बढ़ रहे थे। औरंगजेब की मृत्यु के बाद, शाहू छोड़ दिया गया। वह शिवाजी के राज्य का शासक बना। उसने बालाजी विश्वनाथ नामक एक ब्राह्मण को अपना पेशवा (प्रधानमन्त्री) नियुक्त किया। इस बीच, पेशवा बालाजी विश्वनाथ ने मराठा रियासत की धाक जमा दी। दूसरा पेशवा बाजीराव बड़ा ही वीर पुरुष था। उसने हिन्दू-पद पादशाही की घोषणा की, जिसका उद्देश्य था—अखिल भारतीय हिन्दू साम्राज्य की स्थापना की जाय और महाराष्ट्र में उसका केन्द्र हो। इस पेशवा के जमाने में मराठा राज्य उत्तर भारत में फैल गया। ग्वालियर में सिन्धिया ने, गुजरात में गायकवाड़ ने, इन्दौर में होलकर ने, नागपुर में भोंसले ने, बड़े-बड़े मराठा राज्य कायम किये। ये राज्य केवल वैधानिक दृष्टि से पूना के पेशवाओं के अधीन थे, वैसे वे लगभग स्वतन्त्र थे।

बाजीराव की मृत्यु के पश्चात उसका पुत्र बालाजी बाजीराव गद्दी पर बैठा। वह मराठा शक्ति के चरमोत्कर्ष का काल था। उसी काल में नागपुर के भोंसले ने उड़ीसा और बंगाल पर आक्रमण किये। पेशवा के भाई रघुनाथ राव ने पंजाब पर चढ़ाई की, एक मराठा सरदार ने रुहेलखण्ड को जीत लिया। तीसरे ने सिन्ध पर आक्रमण करके अटक नामक नगर पर अपना झण्डा फहराया। सन् 1757 में मुगल सम्राट से उन्होंने सन्धि की। यह सम्राट मराठों की कठपुतली था। अब दिल्ली में मुगल सम्राट नाम भर को था।

इस बीच एक आपत्ति टूट पड़ी। एक अफगान सरकार अहमदशाह अब्दाली

ने भारत पर हमला किया। पानीपत में मराठों ने उससे मोर्चा लिया। उसमें मराठों की हार हो गयी। सच बात तो यह है कि मराठों को अब अहंकार हो गया था। छापेमार लड़ाई का अपना पुराना तरीका छोड़कर, अब वे खास मद-लिया ढंग से लड़ते थे। इसका परिणाम जो होना था, वही हुआ।

मराठा शक्ति को यह एक बहुत बड़ा धक्का था। पेशवा माधवराव ने बहुत कुछ सँभाला और मराठा राज्य के उत्कर्ष के उसने कई प्रयत्न किये।

मराठा राज्य-शक्ति की एक बहुत बड़ी विशेषता थी। वे जिन जीतते उनमें से कुछ भाग अपने पास रखते—वास्तविक मराठी राज्य कहलाता, शेष जीते हुए प्रदेशों से वे दो प्रकार के कर नियमित रूप एक, चौथ, दूसरा, सरदेशमुखी। इस प्रकार के प्रदेशों को वे 'मुगलाई' प्रदेश कर न दे पाते, उन पर एकाएक हमला कर हैदराबाद का निजाम मराठों के हमलों से बचने के लिए बराबर था।

सन् 1750 के बाद भारत का राजनैतिक मानचित्र (अ) दिल्ली और उसके आसपास के प्रदेशों में मुगलों का *लगभग स्वतन्त्र मुस्लिम राज्य था, अवध में पृथक् मुस्लिम* दक्षिण में निज़ाम का राज्य था। (ब) इस काल में मराठों में क़ायम हो चुका था, ग्वालियर, इन्दौर, नागपुर, शक्तिशाली राज्य थे; ऐसे प्रदेशों पर भी उनका आधिपत्य सरदेशमुखी वसूल करते। (स) मुग़ल वंश के उत्कर्ष काल दिल्ली सम्राट की अधीनता मान ली थी, फिर मुग़ल सेनाओं के सेनाध्यक्ष और प्रान्तपतियों के रूप में

1750 तक दिल्ली और आगरे के इधर-उधर

बाद,

क़ायम कर लिया। भरतपुर को उन्होंने अपनी

इस प्रकार, अठारहवीं सदी के मध्य में शक्ति को अपना राज्य-विस्तार करने का वर्णन आगे किया जायेगा।

मुग़ल युग की।

अखिलभारतीय शासन

मुग़ल सम्राटों का एक ही उद्देश्य रहा। यह एक केन्द्र से संचालित किया जाये। अकबर प्रयत्न रहा।

राष्ट्रीय राजतन्त्र

मुगल सम्राट का शासन किसी एक धर्म या जाति के एकाधिकार [के] अन्तर्गत नहीं था। वह सच्चे अर्थों में राष्ट्रीय थी। उसमें हिन्दुओं और मुसलमानों को समान रूप से उन्नति करने का अवसर मिलता था। यहाँ तक कि हिन्दूद्रोही औरंगजेब भी राष्ट्रीय राजतन्त्र का सम्पूर्ण नाश नहीं कर सका। उसके अधीन सर्वोच्च सेनाध्यक्षों के रूप में राजा जसवन्तसिंह और राणा जयसिंह थे। उसी प्रकार उसके दरबार में कालिदास जैसा हिन्दी कवि भी था, जो आलमगीर (औरंगजेब) की बहादुरी का वर्णन करता था।

उदार शासन

मुग़ल दरबार ने विद्वानों, कवियों, इतिहास लेखकों, आदि को उदारतापूर्वक आश्रय दिया था। अरबस्तान, ईरान, मिस्र से बहुत-से विद्वान मुगल दरबार में आये थे।

विदेशी व्यापार

उस काल में विदेशी व्यापार में अत्यधिक वृद्धि हुई। भारत का नाम पूरे एशिया और यूरोप में गूँज उठा। अंग्रेज व्यापारी इसीलिए भारत की ओर आकृष्ट हुए। पुर्तगीज, डच तथा फ्रेंच व्यापारियों का भारत में स्वागत किया गया, उन्हें प्रोत्साहन दिया गया।

राष्ट्रीय ऐक्य

भेद तथा फूट के बीज, अर्थात् विकेन्द्रीकरण और विभिन्नीकरण की प्रक्रिया भारत में हमेशा चलती रही। किन्तु मुगल आधिपत्य में ऐक्य और सामंजस्य की प्रक्रिया को और बढ़ावा दिया गया। यह सामंजस्य-प्रक्रिया सांस्कृतिक क्षेत्र में सर्वाधिक घनिष्ट रूप से प्रकट हुई। चित्रकला और संगीत में, स्थापत्य और मूर्तिकला में, हिन्दू और मुस्लिम प्रतिभाओं का योगदान हुआ। साहित्य में हिन्दू और मुसलमान समान रूप से सक्रिय हुए, मुसलमान हिन्दी में लिखने लगे, हिन्दू फारसी में। यह तो अभिव्यक्ति के माध्यम की बात हुई। मुख्य बात यह है कि दोनों के निगूढ़ आत्मिक भाव एक और उदात्त हो गये। उसी समय हिन्दी, उर्दू, या हिन्दुस्तानी के रूप में उर्दू का विकास हुआ।

शान्ति और व्यवस्था

यह सब अपेक्षाकृत शान्ति और समृद्धि के कारण था। मुसलमानों का भारतीय-करण हो गया। मुस्लिम जन साधारण और हिन्दू जन-साधारण एक दूसरे के बहुत समीप आ गये। यह हिन्दू-मुस्लिम मैत्री अप्रत्यक्ष रूप से शान्ति और सुव्यवस्था का परिणाम थी, जिसको कायम करने में हिन्दू और मुसलमान दोनों ने हाथ बटाया था।

मुगल युग का औरंगज़ेब तक का काल भारत की अत्यधिक समृद्धि और वैभव का काल था। मुस्लिम तथा हिन्दू सरदार और सामन्त बहुत शानोशौक़त से रहते। उनके लिए बड़े-बड़े शहरों में कारखाने चल रहे थे, जिनमें उनके उपयोग की वस्तुएँ बनायी जातीं। ढाका और चँदेरी, पाटण और बुरहानपुर, बनारस और जौनपुर में सुन्दर-सुन्दर सूती तथा रेशमी कपड़े बनाये जाते। ये वस्त्र विदेशों में भी निर्यातित होते। सोने तथा चाँदी की भी उत्तमोत्तम चीज़ें बनतीं। मुगल काल में तरह-तरह की कला-कारीगरी की उन्नति हुई। कच्छ, खम्भात और अन्य बन्दरगाहों में जहाज़ बनाये जाते। पुर्तगालियों ने अपने सर्वश्रेष्ठ जलयान भारत में ही तैयार करवाये थे।

आवागमन के साधन

व्यापार की वृद्धि के साथ-ही-साथ आवागमन के साधन भी बढ़ गये थे। साम्राज्य के प्रधान नगरों को सड़कों से जोड़ दिया गया था। बंगाल से पंजाब जानेवाली ग्रैण्ड ट्रंक रोड को शेरशाह ने पूरा किया। यह सड़क शुरू में प्राचीन मौर्यों की देन थी। उसी प्रकार एक बड़ी सड़क दिल्ली से दक्षिण में अहमदाबाद तक जाती। गंगा नदी में बड़ी-बड़ी नावों द्वारा दूर-दूर तक व्यापार किया जाता।

गरीबी

किन्तु भारत की सामान्य जनता, कारीगर और खेतिहर, साधारण निम्न श्रेणी के राज-कर्मचारी, ग़रीब ही थे। चीज़ों के भाव बहुत सस्ते थे, किन्तु, आमदनी और वेतन भी बहुत कम था। फिर भी यह कहा जा सकता है कि वे भूखों नहीं मरते थे, और उन्हें काम भी मिलता था। देश में, व्यापार, समृद्धि, वैभव था।*

साहित्य तथा कला

मुगल युग में साहित्य तथा कला की विशेष उन्नति हुई। अकबर स्वयं चित्रकला को बहुत अधिक प्रोत्साहन देता था। उसने चित्रकला को 'ईश्वरीय साक्षात्कार का एक माध्यम' माना था। वह उनकी साप्ताहिक प्रदर्शनियाँ लगवाता था। अकबरकालीन चित्रकला में भारत और ईरानी तत्त्वों का सामंजस्य था। जहाँगीर के काल में चित्रकला का अभूतपूर्व उत्कर्ष हुआ। उसमें एक नयी ताज़गी और रमणीयता आ गयी। साथ ही, चित्रकला शैली की दृष्टि से विशुद्ध भारतीय बन गयी। शाहजहाँ के काल में चित्रकला मुगल दरबार की शान प्रकट करने का माध्यम बन गया, फलतः उसमें ह्रास के चिह्न दृष्टिगोचर होने लगे। शाहजहाँ ने चित्रकला की अपेक्षा भवन-निर्माण कला को बहुत प्रोत्साहन दिया। उसने अपनी प्रिय पत्नी मुमताजमहल की स्मृति को चिरस्थायी रखने के लिए आगरे में ताज-महल का निर्माण किया। भवन-निर्माण कला का मुगल युग में अभूतपूर्व विकास हुआ। अनेक सुन्दर-सुन्दर किले बनाये गये। आगरा, दिल्ली, लाहौर के क़िले

* यहाँ पाण्डुलिपि में वाक्य अधूरा रह गया है।—सं.

सुप्रसिद्ध हैं। फतहपुर सीकरी अकबर की बनायी है, वह भवन-निर्माण कला का श्रेष्ठ उदाहरण है। इस काल मे संगीत कला की भी विशेष उन्नति हुई। सुप्रसिद्ध गायक तानसेन और मुहम्मद शाह रंगीले का नाम कौन नहीं जानता ?

किन्तु, औरंगजेब के बाद कला का ह्रास होने लगा। चित्रकला मे दो नयी शैलियाँ निकलीं—एक, राजस्थानी चित्रकला, दूसरी, पहाड़ी चित्रकला—दोनों में अपनी-अपनी विशेषताएँ थीं। सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि वे जन-जीवन के अधिक निकट थीं।

उस काल में साहित्य का विशेष उत्कर्ष हुआ। हिन्दी के प्रसिद्ध कवि मलिक मुहम्मद जायसी शेरशाह सूर के जमाने में हुए थे। इन सूफी कवियों ने, जो मुख्यतः मुसलमान थे, हिन्दी की बड़ी सेवा की। उन्होंने उत्तमोत्तम लोककथाएँ लेकर उनके द्वारा सूफी मत का प्रचार किया। वे प्रेम-तत्त्व को ईश्वरीय समझते और इसीलिए वे उसका प्रचार करते थे। इन महान् आत्माओं ने लोकभाषा अवधी का प्रयोग किया। उसे उन्नत और समृद्ध बनाया। आगे चलकर अकबर के काल में तुलसीदासजी ने अपने काव्य द्वारा जन-हृदय में भक्तिभाव का संचार किया। उन्होंने समाज को आदर्श मार्ग पर चलने का आग्रह किया और कर्तव्यविमुख होने से बचाया। इसके कुछ समय पहले, भक्तवर सूरदासजी ब्रजभाषा में हृदय के रस का संचार कर रहे थे। उनके काव्य से मानव हृदय आर्द्र हो उठा। वात्सल्य के वे अप्रतिम कवि थे—शायद अभी तक सारे विश्व में वात्सल्य काव्य का अधिकारी कवि नहीं हुआ है।

दरबारी कविता की परम्परा पहले ही से थी। अकबर के दरबार में गंग तथा नरहरि जैसे विख्यात कवि थे। अब्दुल रहीम खानखाना का तो कहना ही क्या ! रहीम के दोहे किसे पसन्द नहीं ! उनके बरवै अपना सानी नहीं रखते ! उनकी मिठास अभी भी अपूर्व है। रहीम ने खड़ी बोली में भी कविता की। उनकी ब्रजभाषा बड़ी मीठी है।

इन दिनों ब्रजभाषा का साहित्यिक उत्कर्ष हुआ। दरबारी कवियों ने उसे माँजा-सँवारा। रसखान, आलम और शेख जैसे भावप्रधान मुस्लिम कवि हुए, घनानन्द और मतिराम, देव और बिहारी, पद्माकर और ठाकुर जैसे सुन्दर और श्रेष्ठ कवि हुए। यहाँ भूषण का नाम भी नहीं भुलाया जा सकता, न बुन्देला नरेश छत्रसाल के कवि 'लाल' का। दोनों वीर रस के अप्रतिम कवि थे। भूषण का काव्य तो बहुत प्रेरणाप्रद और शक्तिपूर्ण है।

उर्दू में भी मनोहर काव्य की सृष्टि हुई। एक ओर भारत राजनैतिक दृष्टि से अस्तव्यस्त हो रहा था, तो उधर उर्दू की तथा संगीत की बहार आ गयी थी। उर्दू का काव्य, दूसरे ढंग से, ब्रजभाषा की भावुक परम्परा का ही मुस्लिम रूप था। दूसरी ओर, उसमें उच्च सूफी भावों का भी प्रवेश हुआ। बंगला, मराठी, तथा अन्य भारतीय भाषाओं में भी खूब साहित्य-समृद्धि हुई।

इस प्रकार हम देखते हैं कि एक ओर राजनैतिक अस्तव्यस्तता आ गयी थी, तो भी भारतीय जनता की सामान्य मनोवृत्तियों के आधार पर सामंजस्यवादी मानव-भावना अभी तक वर्तमान थी। ग्वालियर नरेश दौलतराव सिंधिया अपने राज-कर्मचारियों सहित मुसलमानों की भाँति हरे कपड़े पहनकर मुहर्रम के समारोह में भाग लेते थे। सन् 1825 तक (ग़दर के 32 साल पहले तक) दिल्ली के मुग़ल

सम्राट के दरबार में दुर्गा पूजा का महोत्सव होता था। दिल्ली के दो शक्तिशाली सरदार सैयद बन्धुओं द्वारा होली त्योहार धूमधाम से और सार्वजनिक रूप से मनाया जाता था। बंगाल के नवाब सिराजुद्दौला और मीर जाफर अपने इष्ट-मित्रों के साथ होली खेला करते थे। बावजूद इसके कि हिन्दू राजा और मुस्लिम सुल्तान आपस में लड़ा करते थे, यह सांस्कृतिक सामंजस्य-भावना भारत में कायम रही।

सात समुन्दर पार के जहाज

एक ओर मुगल साम्राज्य नष्ट हो रहा था, मराठों और सिखों की शक्ति बढ़ रही थी तो दूसरी ओर सात समुन्दर की एक विदेशी जाति ने भारत में हाथ-पैर फैलाना शुरू कर दिया। देश की राजनैतिक अस्त-व्यस्तता का उसने पूरा लाभ उठाया और उन्नीसवीं सदी के मध्य तक पूरा भारत अंग्रेजों का गुलाम हो गया।

जमाने को चक्कर आ गया। एक के बाद एक भारतीय राज्य ढहते गये। किन्तु साथ ही भारत यूरोप की एक उन्नतिशील जाति के सम्पर्क में आया।

मुगलकाल में भारत की सर्वतोमुखी प्रगति और अर्थ-वृद्धि की कीर्ति-कथा यूरोप में फैल गयी थी। कोलम्बस नामक एक साहसी मल्लाह भारत की ओर जानेवाले जल-मार्ग की तलाश करते-करते अमरीका के समुद्र-तट तक आ गया था। पन्द्रहवीं सदी के अन्त में, यूरोप के दक्षिणी पश्चिमी एटलांटिक तट पर स्थित पुर्तगाल देश की जहाजी ताकत दुनिया के सब देशों से बढ़ी-चढ़ी थी। सन् 1499 ई में उसके एक साहसी मल्लाह वास्कोडिगामा ने भारत के कालीकट बन्दरगाह में लंगर डाल दिया। धीरे-धीरे उन्होंने पश्चिमी समुद्र-तट के प्रदेशों में व्यापारिक कोठियाँ बनाने की इजाजत ले ली। इसके साथ, उन्होंने उन कोठियों की रक्षा के हेतु सेना रखने की भी सुविधा प्राप्त कर ली। धीरे-धीरे, ये कोठियाँ समृद्ध होती गयीं और उनके रक्षार्थ अब तक जो सेनाएँ थीं उनका भी विस्तार होता गया। अब नये-नये क्षेत्र अधिकार में लेकर राज्य स्थापित करने की इच्छा भी बढ़ गयी। परिणामत, क्रमश पुर्तगीज साम्राज्य भारत में स्थापित हुआ (जो सन् 1961 ई के दिसम्बर में ही लुप्त हुआ) एक जमाने में इस साम्राज्य के *अन्तर्गत बम्बई का बन्दरगाह भी था।*

पुर्तगालियों ने भारत का माल लेकर जब यूरोप में बेचना शुरू किया तो वह माल इतना अधिक लोकप्रिय हुआ कि वहाँ के सुविस्तृत भू प्रदेशों में भारतीय माल की माँग बढ़ गयी। इससे पुर्तगीज व्यापारियों को खूब फायदा हुआ। ये लोकप्रिय वस्तुएँ थीं—मसाले और मलमल। पुर्तगाली यूरोप से तरह-तरह की चीजें लाते,

विजयनगर के राज्य को वे ईरानी घोडे बेचते। विजयनगर राज्य का विदेशी व्यापार, मुख्यत, पुर्तगालियो के हाथ मे था।

पुर्तगालियों ने भारत मे रोमन कैथोलिक धर्म को प्रचारित किया। भारत मे आजकल एक बहुत बडा जन-समूह रोमन कैथोलिक है। साथ ही भवन-निर्माण भी मध्ययुगीन यूरोप के ढग का होने लगा। मद्रास मे मायलापुर का विशाल गिरजाघर पुर्तगीज धार्मिक कला का प्रतीक है।

भारतीय व्यापार के कारण पुर्तगाल की बढती हुई समृद्धि को देख, यूरोप के अन्य देश भी हमारी तरफ ललचायी आँखो से देखने लगे। सन् 1600 ई मे ब्रिटेन म 'ईस्ट इण्डिया कम्पनी' की स्थापना हुई। इस कम्पनी का उद्देश्य व्यापार करना तथा ब्रिटेन के अधिपति की ओर से राज्य-विस्तार करना भी था। पुर्तगालियों ने इसका मुकाबला कर[illegible] अब हुआ यह कि इस कम्पनी ने मुगल- [illegible] प्राप्त कर ली। कोठियो की रक्षा के [illegible] इन्होंने भारतीय राजनीति म प्रवेश किया। मद्रास और कलकत्ता ब्रिटेन के प्रधान नगर बन गये। सन् 1664 मे फ्रेंच ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापना हुई। उसने अपना केन्द्र मद्रास के समीप पाण्डिचेरी बनाया। दोनों कम्पनियाँ अपनी-अपनी सेनाएँ तो रखती ही थी, अब कभी-कभी वे आपस मे लड-भिड जाती और भारतीय नरेशो के यहाँ अपने-अपने प्रभाव-विस्तार का प्रयत्न करती, अनुकूल समय प्राप्त होने पर, वे अपना राज्य-विस्तार भी कर लेतीं। फ्रासीसी (फ्रेंच) कम्पनी का कुशल नेता और सेनानी डूप्ले था और अग्रेज कम्पनी का रावर्ट क्लाइव।

उधर, जैसा कि आपको मालूम होगा, अठारहवी सदी के उत्तरार्ध मे भारत मे केन्द्रीय शासन का अभाव था। सारा देश विभिन्न राज्यो मे बँट चुका था। मराठो का प्रभुत्व स्थापित हो चुका था। उनका आतक सारे भारत पर था। पर वे किसी अखिल भारतीय शासन सघ की नीव नही डाल पा रहे थे। यहाँ तक कि उनमे भी आपस मे फूट थी। पूना के पेशवा राजनीति-कुशल होने के कारण राज्य के विभिन्न सेनानी सामन्तो म शक्ति-सन्तुलन रखने का प्रयत्न करते रहते। उधर, देश के व्यापार म वृद्धि हो गयी थी। भारतीय हिन्दू और मुस्लिम राज्यो के शासक विलास सुख मे पडे हुए थे। किन्तु साथ ही आपस म मार-काट भी होती रहती थी।

उस अशान्ति और विलास निद्रा के युग मे, मार-काट और लोलुपता के काल म, इन विदेशी शक्तियो ने अपना सिर उठाया। भारत के विविध राजाओ, नवाबो और सुलतानो के आपसी ईर्ष्या-द्वेष से लाभ उठाकर अग्रेजो ने (फ्रासीसी कम्पनी के नेता डूप्ले को मात देते हुए) अपना राज्य विस्तार किया। अठारहवी सदी के उत्तरार्ध से लेकर उन्नीसवी सदी के मध्य तक का यह काल ब्रिटिश राज्य के विस्तार का समय था।

फ्रांसीसी और अग्रेजी फौजो की भिडन्त कर्नाटक युद्धो के नाम से प्रसिद्ध है। सन् 1761 ई मे जब क्लाइव ने फ्रास के भारतीय केन्द्र पाण्डचेरी पर हाथ साफ़ किया तो भारत मे फ्रासीसियो की प्रतिष्ठा को बहुत धक्का लगा इसके बाद, वे अपना सिर फिर कभी न उठा सके।

उधर, दक्षिण के राज्यो मे एका न था। निज़ाम और मराठो की कभी नहीं

झिलमिलाते दीप

अठारहवीं-उन्नीसवीं सदी के अराजक युग में भी कुछ ऐसे शासक हुए, जो अपने समय से बहुत कुछ आगे थे। उनके कुछ विशेष गुणों का महत्व तब का युग आँक ही नहीं सका। वैसे, भारत में उस ज़माने में वीरता तथा पराक्रम की कमी न थी। आवश्यक है कि हम उन सबका परिचय प्राप्त कर लें।

औरंगज़ेब के ज़माने से ही भारत में अराजकता बढ़ रही थी। पुर्तगीज़ और अंग्रेज़ भारत आ चुके थे। यूरोप से व्यापार चल रहा था।

सवाई जयसिंह

उस ज़माने में, औरंगज़ेब का एक राजपूत सेनाध्यक्ष जिसे अवसरवादी भी कहा जा सकता है, (वह वैसा था भी) जयपुर के महाराजा के रूप में इस देश में वर्तमान था। उसका नाम सवाई जयसिंह था। हम उसका उल्लेख यहाँ न करते; किन्तु वास्तविक ज्ञान-विज्ञान के प्रति अभिरुचि का एकमात्र उदाहरण हमें युगों के बाद मिला और उसके अनन्तर फिर आधुनिक काल के आने तक फिर वैसा नहीं मिलता।

सवाई जयसिंह ने जो जयपुर का राजा था, औरंगज़ेब की अधीनता मान ली थी। औरंगज़ेब की मृत्यु के बाद उसने बादशाह की तरफ़ से आगे बढ़ते हुए मराठों से भी सन्धि कर ली थी। वह एक वीर और पराक्रमी सेनाध्यक्ष था, साथ चतुर राजनीतिज्ञ था सन् 1743 में अर्थात् प्लासी की लड़ाई के चौदह साल पहले, उसकी मृत्यु हो चुकी थी। वह अपने युग से बहुत कुछ आगे था!!

ज्योतिर्विद

वह महान् ज्योतिर्विद था। उसने जयपुर, बनारस, उज्जैन और दिल्ली में बड़ी-[illegible] सुन रखा [illegible] सने इन [illegible] दरबार [illegible] गणित [illegible]।

[illegible] के बाद, जयसिंह इस नतीजे पर पहुँचा कि उन नक्शों और सारिणियों में त्रुटियाँ हैं। जयसिंह ने बताया कि इन त्रुटियों का कारण है निरीक्षण के साधन यन्त्रों में 'व्यास की कमी'।

गणितशाला

जयसिंह ने भारतीय गणितशाला पर पूरा अधिकार तो कर ही लिया था,

साथ ही वह यूनानी गणित में भी पारंगत हो गया था। उसने सम-स्तरीय तथा गोलीय त्रिकोणमिति पर (प्लेन तथा स्फेरिकल ट्रिगनोमेट्री पर) तथा स्थाने-गति (लोगेरिदम्स) की रचना पर और उनके उपयोग पर अधिकार कर लिया था। उसने इन विषयों की यूनानी पुस्तकों का संस्कृत भाषा में अनुवाद भी कराया। उसके विशाल ग्रन्थालय में बहुत-सी यूरोपीय ज्ञान-विज्ञान-सम्बन्धी पुस्तकें थीं, जिनमें तत्कालीन अधुनातन वैज्ञानिक प्रगति लक्षित होती थी। यूक्लिड नामक ज्यामितिशास्त्री की पुस्तकें तो थीं ही।

वैज्ञानिक कर्मचारी

उसने वैज्ञानिक कर्मचारियों का एक दल तैयार किया था, जो विभिन्न विषयों का अध्ययन करके, अपने निष्कर्ष निकालता। फिर, उन निष्कर्षों की वैज्ञानिक पद्धति से परीक्षा होती रहती। ये वैज्ञानिक कर्मचारी सवाई जयसिंह को उसके शोध-कार्यों में मदद करते।

इतिहासविद्

भारत में वास्तविक तथ्यात्मक इतिहास की रचना तथा अध्ययन का कार्य होता ही नहीं था। केवल मुस्लिम दरबारों में इतिहास लेखक थे। सवाई जयसिंह की इतिहास सम्बन्धी जिज्ञासा बहुत बढ़ी-चढ़ी थी। उसने इतिहास के अध्ययन को विशेष प्रोत्साहन दिया था। भारत की राजनैतिक अस्तव्यस्तता के कारणों की खोज ने उसने बहुत सर खपाया होगा।

नगर-योजना

वह एक बहुत बड़ा नगर-निर्माणविद् था। जयपुर नगर उसकी निर्माण कला का स्मारक है। इस नगर-निर्माण के पूर्व, सवाई जयसिंह ने यूरोप के अनेक नगरों के नक्शे मँगवाये। उनका अध्ययन कर चुकने के बाद, उसने अपने हाथ से जयपुर के भावी नगर की योजना तैयार की। ये नक्शे जयपुर के कला संग्रहालय (जयपुर म्यूज़ियम) में अभी तक सुरक्षित हैं।

निष्कर्ष

सवाई जयसिंह में प्रचण्ड वैज्ञानिक जिज्ञासा थी। इससे यह सिद्ध होता है कि किसी-न-किसी स्तर पर यह जिज्ञासा उन दिनों भी वर्तमान थी। किन्तु, विज्ञान को राज्याश्रय प्राप्त न था। जयसिंह ने उसकी पूर्ति की। वह स्वयं वैज्ञानिक था। सामाजिक दुर्भावनाओं के बावजूद, उसने अपने दूतों को पुर्तगाल भेजा, सिर्फ़ इसलिए कि वहाँ से वे नया ज्ञान-विज्ञान लायें। किन्तु भारत में ऐसे कितने राजा और सामन्त थे, जिन्हें ज्ञान-वर्धन के प्रति अभिरुचि थी!

रणजीतसिंह

जिज्ञासा से परिपूर्ण एक और व्यक्ति था जो असल में जाट था। इस जाट सिख ने पंजाब में सिख राज्य क़ायम किया। वह बढ़ते-बढ़ते सीमा प्रान्त और काश्मीर तक फैल गया। वह विलक्षण व्यक्ति था, यद्यपि उसमें कुछ कमज़ोरियाँ भी थीं।

एक फ्रांसीसी व्यक्ति जाक मो (Jacque mont) लिखता है कि वह अत्यधिक वीर पुरुष था। भारत में जितने भी लोग मुझे मिले, उनमें यह पहला आदमी था जो अत्यधिक जिज्ञासु था। उसकी जिज्ञासा पूरे राष्ट्र की उदासीनता की पूर्ति करती थी। उसका वार्तालाप, एक दुःस्वप्न की भाँति, हमें चकित और स्तब्ध कर देता था।

उन दिनों भारतीय विद्वान अंग्रेजों और फ्रांसीसियों से दूर-दूर रहते थे, उनसे बात नहीं करते थे। सिर्फ रस्मी मौकों पर कभी-कभी थोड़ी बात होती थी। एक कारण यह भी था कि अंग्रेज और फ्रांसीसी लोग भ्रष्टाचारपूर्ण सरदारों और सामन्तों की खुशामद में रहते थे। ऐसे मौके पर, अंग्रेज विद्वानों के बारे में भारतीय विद्वानों में दुर्भाव होना स्वाभाविक ही था।

इस वातावरण में भी, रणजीतसिंह यूरोपियनों से ऐसे प्रश्न पूछता था कि वे दंग रह जाते थे। वे उसके प्रश्नों का क्या उत्तर देते ! उन पर उन्होंने कभी सोचा ही नहीं था। महाराजा रणजीतसिंह से बात करने में यूरोपीय पण्डितों की नाड़ी छूटती थी।

रणजीतसिंह में केवल बौद्धिक जिज्ञासा ही नहीं थी वरन् भयानक क्रूरताओं के उस युग में वह बहुत उदार और कोमल हृदय शासक था। उसके पास बड़ी प्रबल सेना थी। लड़ाई के मैदान में भले ही उसने जान ली हो, वैसे उसने कभी किसी के प्राण नहीं लिये। उसके राजत्वकाल में जनता पर कोई अत्याचार नहीं हुआ। प्रिन्सेप नामक एक विद्वान लिखता है कि रणजीतसिंह ही ऐसा था जिसने कम-से-कम पाशविकता करके इतना बड़ा साम्राज्य बनाया हो।

हैदरअली

दक्षिण भारत में एक ओर मराठों की धाक थी, तो दूसरी तरफ, अंग्रेजों का प्रभुत्व बढ़ रहा था। उन दिनों (सन् 1765 में) मैसूर का सुलतान हैदर अली था। वह एक साहसी व्यक्ति था, वीर सेनानी था। उसका शरीर किसी रोग से पीड़ित था। फिर भी वह बहुत ही दक्ष और कार्यक्षम व्यक्ति था। अपने काल के राजाओं से वह बहुत आगे था, इसलिए कि उसके पास एक विशेष दृष्टि थी। समुद्र-शक्ति का महत्व वह पहचान चुका था। समुद्र-शक्ति पर आधारित राज्य-शक्ति के महत्व को उसने खूब जान लिया था।

उसके अन्तःकरण में किसी-न-किसी प्रकार का राष्ट्रीय आदर्श अवश्य था। वह एक ऐसा शासक था, जिसके पास एक राजनैतिक स्वप्न था। अंग्रेजों को भारत भूमि से निकाल फेंकने के लिए उसने भारतीय राजाओं के एक संयुक्त मोर्चे का प्रस्ताव रखा था। यह प्रस्ताव उसने, अपने राजदूतों द्वारा, मराठों के पास, हैदराबाद के निज़ाम और अवध के नवाब शुजाउद्दौला के पास भिजवाया था। लेकिन इन राजाओं ने चुप्पी साध ली। सब अपनी-अपनी धुन में मगन थे। किसी ने उसके प्रस्ताव की परवाह नहीं की, यहाँ तक कि उन्होंने प्रस्ताव की पहुँच की स्वीकृति का उत्तर भी नहीं भेजा। आखिरकार, वह खुद ही अपनी समुद्र-शक्ति बढ़ाने लगा। मालदिव द्वीप-समूह पर अधिकार करके, उसने वहाँ अपना जल-सेना-केन्द्र स्थापित किया, और जहाज बनवाये। उसका पुत्र टीपू सुलतान भी जहाज़ी सेना मज़बूत करता रहा। उसने फ्रान्स के बादशाह को तथा कुस्तुनतुनिया

के सुलतान को सन्देश भी भिजवाये।

किन्तु भारत सोया हुआ था। उसे जिन्दगी मे अभी गहरी मात खानी थी। इस प्रकार, भारतवर्ष मे उन दिनो कोई भी ऐसा राज्य नही था, जिसके पास वर्तमान राजनैतिक अवस्था का विस्तृत चित्र हो, न किसी के पास भविष्य का सपना था। सब अपनी-अपनी चहारदीवारी मे घिरे हुए थे।

अन्य उल्लेखनीय व्यक्ति

कुछ ऐसे उल्लेखनीय व्यक्ति अवश्य थे, जिनकी चारित्रिक गरिमा और प्रबल पराक्रम अथवा कूटनीतिज्ञता की उन दिनो बडी धाक थी। उनम से एक था पूना दरबार का नाना साहब फडनवीस। वह कुशल राजनीतिज्ञ था, यद्यपि उसकी

आगे बढाये जा रहा था। उसको तीसरे बाजीराव पेशवा न जेल म डाल दिया। उसके कुछ ही वर्षों बाद सन् 1818 मे पूना का पेशवा राज्य खत्म हो गया।

उन दिनों महादजी सिन्धिया और मल्हारराव होलकर सरीखे वीर पुरुष भी थे, जो मराठा राज्य की धाक जमाये हुए थे। जब तक य रहे, अंग्रेजो की दाल न गली। जिन दिनों अंग्रेजो के अत्याचारो और युद्धा से बिहार, बगाल, उडीसा और दक्षिण भारत त्रस्त थे, उन दिनो इन्दौर और ग्वालियर के राज्यो मे सुख-शान्ति थी। अहल्याबाई होलकर का नाम तो भुलाया ही नही जा सकता। प्रजावत्सलता, सदाचार और शील की वे मूर्तिमान प्रतीक थी।

इस प्रकार, हैदरअली, रणजीतसिंह, महादजी सिन्धिया, मल्हारराव और अहिल्याबाई तथा यशवन्तराव होलकर और नाना साहब फडनवीस के जमाने मे भारत मे कुछ स्पन्दन था। वे दीप की अन्तिम लौ थे। इन वीर और तेजस्वी महापुरुषों मे सब गुण थे, किन्तु एकता का भाव नही था, दूरदर्शिता नही थी। व्यक्तिगत रूप से ये महान् थे, किन्तु भारत पर चारो ओर से बढ़ते हुए खतरो का ये अनुमान न कर सके।

इसका परिणाम भारत को भुगतना पडा।

कम्पनी राज और सन् सत्तावन का स्वतन्त्रता-युद्ध

कम्पनी राज मे भारत नगा हो गया। बगाल में लूट मची। 'लूट' अंग्रेजी शब्द बन गया। बगाल के धन से इग्लैण्ड मे औद्योगिक क्रान्ति का सूत्रपात हुआ। अब वहाँ बडे पैमाने पर उत्पादन शुरू हो गया। तैयार माल भारत आने लगा। देशी वस्त्रोद्योग ठप हो गया। लाखो

कारीगर बेकार हो गये। अकाल पड़े। भयानक अकाल !! कम्पनी राज ने परम्परागत भारतीय अर्थव्यवस्था बलपूर्वक नष्ट कर दी। पंचायती आत्मनिर्भर ग्राम समाज चौपट हो गये। भूमिपति भारत की भूमि में जबर्दस्ती आरोपित किये गये। उधर, कुछ देशी रजवाड़ों के साथ गहरा अन्याय किया गया। जनता में असन्तोष था ही। पुराने सामन्तों और राजाओं ने विद्रोह का झण्डा खड़ा किया। यही सन् सत्तावन का गदर था। उसका होना ही स्वाभाविक था। अगर वह न होता तो अस्वाभाविक बात होती।

भारत में सबसे ज्यादा गरीबी कहाँ है? 'भूखा बंगाली'—यह मुहावरा किसे नहीं मालूम? आज भी भारत में सर्वाधिक दारिद्र्य बंगाल, उड़ीसा, और मद्रास के कुछ इलाकों में पाया जाता है। सामान्य जनता का जीवन स्तर यहाँ अत्यधिक नीचा है। पंजाब की सामान्य जनता का जीवन स्तर सबसे ऊँचा है।

मद्रास का नगर अंग्रेजों के आधिपत्य में लगभग 305 साल तक रहा। दूसरे इलाके 150 साल के ऊपर उनके अधीन रहे। आज यदि यहाँ दुर्भिक्ष के ऊपर दुर्भिक्ष पड़ते हों तो इसमें आश्चर्य ही क्या है? बंगाल, बिहार और उड़ीसा में अंग्रेजों का शासन 200 वर्षों तक रहा। उत्तर प्रदेश में उनका आधिपत्य लगभग 130 वर्षों तक रहा। पंजाब में उनका राज्य सिर्फ 98 साल रहा।

लूट

बंगाल में, ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने सीधी और खुली लूट मचायी थी। जो भूमि व्यवस्था उन्होंने कायम की थी वह लूट मचाने के लिए। न सिर्फ उन्होंने खेतिहरों की जेब से धेला धेला निकाल लिया, वरन् मरे हुए खेतिहरों के नाम से भी वसूली की। एडवर्ड टॉमसन और जी.टी. गैरेट नामक इतिहासज्ञों ने लिखा है कि उन दिनों अंग्रेज पागल होकर लूट करते थे। क्लाइव ने बंगाल में जो अंग्रेज सल्तनत कायम की, वह सिर्फ लूट के लिए। खेतिहरों और कारीगरों पर भयानक से-भयानक अत्याचार किये गये। ये अत्याचार बीसियों सालों तक लगातार चलते रहे। यहाँ तक कि 'लूट' शब्द अंग्रेजी भाषा में स्वीकृत हो गया। आगे चलकर इस लूट को व्यापार कहा जाने लगा। कानून का रूप धारण कर अब यह लूट और भी भयानक हो उठी।

इस लूट से अंग्रेजों के देश में एक नयी प्रक्रिया चल पड़ी। सन् 1700 ई. में ब्रिटेन में औद्योगिक क्रान्ति आरम्भ हुई। इसी बीच बंगाल पर अंग्रेजों का प्रभाव बढ़ा और वहाँ का धन तथा सम्पत्ति इंग्लैण्ड जाने लगी। सन् 1757 में प्लासी की लड़ाई के बाद बंगाल में खुली-अनखुली लूट ब्रिटेन भेजी जाने लगी। इससे ब्रिटेन में चल रही औद्योगिक क्रान्ति बड़ी तेजी से बढ़ने लगी। विज्ञान तथा उद्योग की उन्नति और प्रसार के लिए करोड़ों और अरबों रुपयों की जरूरत लगातार रहती है। यह सारा धन और सम्पत्ति बंगाल से इंग्लैण्ड गयी। बंगाल के धन से इंग्लैण्ड में एक के बाद एक मशीनें निकलती गयीं, जिनका प्रयोग उद्योगों में होने लगा। इंग्लैण्ड में औद्योगिक उत्पादन बड़े भारी पैमाने पर होने लगा। विशेषकर वस्त्रोद्योग का प्रचण्ड विकास हुआ। उसी प्रकार, अन्य उद्योगों की भी उन्नति हुई।

जिस बगाल ने ब्रिटेन मे औद्योगिक क्रान्ति का खर्च दिया, उसी बगाल में भुखमरी फैलने लगी। सन् 1770 ई मे बहुत बडा अकाल पडा। अनगिनत लोग मरे।

इधर ब्रिटेन स अब बना-बनाया माल भारत आन लगा। हमारे यहाँ छोटे-बडे शहरों म करोडो कारीगर थे। (मशीनें न होने से, हाथ स काम होता था, इसलिए लाखो लोगों की आजीविका कारीगरी से चलती थी—वह उनक जीवन का मुख्य साधन था) ये कारीगर अब भूखो मरन लगे, उनका व्यवसाय चौपट हो गया। करोडो लोग बेकार हुए। उनम स बहुत से सिर्फ भूख से मर गय। उनकी मृत्यु-सख्या (कई दशाब्दियो को मिलाकर) करोडो तक पहुँची। भारत के गवर्नर जनरल लॉर्ड बेंटिक ने लिखा—'व्यापार और वाणिज्य क इतिहास म कष्टो की भयानकता का ऐसा उदाहरण कभी सामने नही आया। भारत के मैदानो मे बुनकरों की सफेद हड्डियाँ सब ओर बिखरी हुई हैं।'

बहुत-स लोग जो प्राण बचाकर भागे व खेतो की ओर गये। खेत पहले ही से बँटे हुए थे। इन बेचारो के आने से वे बँटकर बहुत छोटे छोटे हो गय। ज्यो ज्यो अग्रेज़ो का राज फैलता गया त्यो त्यो कारीगरो म बेकारी बढती गयी, उनकी मौतें होती रही। शेष बेकार लोग खेती की ओर बढते रहे। इस प्रकार असख्य लोग शहरो स गाँव की ओर भागने लगे।

खेती पर बहुत अधिक भार आ पडा। इससे खेतिहर की औसत आमदनी घटती चली गयी। भारत म जिन जगहो पर अग्रेज़ो की हुकूमत थी, वहाँ त्राहि-त्राहि मच गयी।

उधर इग्लैण्ड ने भारत की परम्परागत समाज-व्यवस्था के मूलाधार बने हुए आत्मनिर्भर ग्राम समाजों पर आघात किया। प्रत्यक ग्राम समाज म अपनी आवश्यकताओ की पूर्ति के सभी साधन थे—लुहार, कुम्हार, दर्जी सुनार पुरोहित, वैद्य इत्यादि। इन सबकी सहकारिता के आधार पर, पचायती ढग स ग्राम-समाज का शासन होता था। यह शासन पचायती देख-रेख के भीतर चलता था। असल म वे एक प्रकार के ग्राम-राज्य थे, यद्यपि वहाँ कोई राजा या गवर्नर न था।

भारत के करोडो खेतिहरो से सम्बन्ध स्थापित करना और उनसे नियमित रूप से भूमि-कर वसूल करना अग्रेज़ो के लिए कठिन था। इसलिए, उन्होने इग्लैण्ड के नमूने पर, भूमिपति (ज़मीदार अथवा मालगुज़ार) पद्धति की स्थापना की। अब गाँव का मालिक ज़मीदार या भूमिपति हो गया। उसका काम था—वह भूमिकर वसूल करे और नियमित रूप स, निश्चित समय पर उसे अग्रेज़ सरकार को दे। अग्रेज़ो का उद्देश्य यह भी था कि व एक ऐस वर्ग का निर्माण कर कि जो अपनी आय और धन सम्पत्ति के लिए केवल उन्ही पर निर्भर हो साथ ही जिसका अधिकार और प्रभाव विस्तृत जन-समाज पर, विशेष रूप स किसान जनता पर रहे। इस उद्देश्य स उन्होने एक ओर भूमिपतियो को और दूसरी ओर बचे-खुचे राजे-रजवाडो को अपनी ओर करके, भारत का उपयोग इग्लैण्ड की औद्योगिक उन्नति और विकास के लिए तथा ब्रिटिश साम्राज्य की रक्षा और उन्नति क लिए किया।

सन् 1857 ई क स्वाधीनता-युद्ध के पहल भारतीय जनता की दुर्दशा हो चुकी थी। देश की सामान्य जनता म भी असन्तोष छा गया था। यहाँ तक कि अग्रेज़ों की भारतीय सनाओ म भी बेचैनी फैल रही थी।

कारीगर बेकार हो गये। अकाल पड़े। भयानक अकाल !! कम्पनी राज ने परम्परागत भारतीय अर्थव्यवस्था बलपूर्वक नष्ट कर दी। पचायती आत्मनिर्भर ग्राम समाज चौपट हो गये। भूमिपति भारत की भूमि मे जबर्दस्ती आरोपित किये गये। उधर, कुछ देशी रजवाड़ो के साथ गहरा अन्याय किया गया। जनता मे असन्तोष था ही। पुराने सामन्तो और राजाओ ने विद्रोह का झण्डा खड़ा किया। यही सन् सत्तावन का गदर था। उसका होना ही स्वाभाविक था। अगर वह न होता तो अस्वाभाविक बात होती।

भारत मे सबसे ज्यादा गरीबी कहाँ है? 'भूखा बगाली'—यह मुहावरा किसे नही मालूम? आज भी भारत मे सर्वाधिक दारिद्र्य बगाल, उड़ीसा, और मद्रास के कुछ इलाको मे पाया जाता है। सामान्य जनता का जीवन-स्तर यहाँ अत्यधिक नीचा है। पजाब की सामान्य जनता का जीवन स्तर सबसे ऊँचा है।

मद्रास का नगर अग्रेजो के आधिपत्य मे लगभग 305 साल तक रहा। दूसरे इलाके 150 साल के ऊपर उनके अधीन रहे। आज यदि यहाँ दुर्भिक्ष के ऊपर दुर्भिक्ष पड़ते हो तो इसम आश्चर्य ही क्या है? बगाल, बिहार और उड़ीसा मे अग्रेजो का शासन 200 वर्षों तक रहा। उत्तर प्रदेश म उनका आधिपत्य लगभग 130 वर्षों तक रहा। पजाब मे उनका राज्य सिर्फ 98 साल रहा।

लूट

बगाल म, ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने सीधी और खुली लूट मचायी थी। जो भूमि-व्यवस्था उन्होन कायम भी की, वह लूट मचाने के लिए। न सिर्फ उन्होने खेतिहरो की जेब से धेला-धेला निकाल लिया, वरन् मरे हुए खेतिहरो के नाम से भी वसूली की। एडवर्ड टॉमसन और जी टी गैरेट नामक इतिहासज्ञो ने लिखा है कि उन दिनो अग्रेज पागल होकर लूट करते थे। क्लाइव न बगाल म जो अग्रेज सल्तनत कायम की, वह सिर्फ लूट के लिए। खेतिहरों और कारीगरो पर भयानक-से-भयानक अत्याचार किये गये। ये अत्याचार बीसियो सालो तक लगातार चलते रहे। यहाँ तक कि 'लूट' शब्द अग्रेजी भाषा म स्वीकृत हो गया। आगे चलकर इस लूट को व्यापार कहा जाने लगा। कानून का रूप धारण कर अब यह लूट और भी भयानक हो उठी।

इस लूट से अग्रेजो के देश मे एक नयी प्रक्रिया चल पड़ी। सन् 1700 ई मे ब्रिटेन म औद्योगिक क्रान्ति आरम्भ हुई। इसी बीच बगाल पर अग्रेजो का प्रभाव बढ़ा और वहाँ का धन तथा सम्पत्ति इग्लैण्ड जाने लगी। सन् 1757 म प्लासी की लड़ाई के बाद, बगाल म खुली अनखुली लूट ब्रिटेन भेजी जाने लगी। इससे ब्रिटेन मे चल रही औद्योगिक क्रान्ति बड़ी तेजी से बढ़ने लगी। विज्ञान तथा उद्योग की उन्नति और प्रसार के लिए, करोड़ो और अरबो रुपयो की जरूरत लगातार रहती है। यह सारा धन और सम्पत्ति बगाल से इग्लैण्ड गयी। बगाल के धन से इग्लैण्ड म एक के बाद एक मशीनें निकलती गयी, जिनका प्रयोग उद्योगो मे होने लगा। इग्लैण्ड म औद्योगिक उत्पादन बड़े भारी पैमाने पर होने लगा। विशेषकर वस्त्रोद्योग का प्रचण्ड विकास हुआ। उसी प्रकार, अन्य उद्योगो की भी उन्नति हुई।

जिस बंगाल ने ब्रिटेन में औद्योगिक क्रान्ति का खर्च दिया, उसी बंगाल में भुखमरी फैलने लगी। सन् 1770 ई. में बहुत बड़ा अकाल पड़ा। अनगिनत लोग मरे।

इधर ब्रिटेन से अब बना-बनाया माल भारत आने लगा। हमारे यहाँ छोटे-बड़े शहरों में करोड़ों कारीगर थे। (मशीनें न होने से, हाथ से काम होता था, इसलिए लाखों लोगों की आजीविका कारीगरी से चलती थी—वह उनके जीवन का मुख्य साधन था) ये कारीगर अब भूखों मरने लगे, उनका व्यवसाय चौपट हो गया। करोड़ों लोग बेकार हुए। उनमें से बहुत से सिर्फ भूख से मर गये। उनकी मृत्यु-संख्या (कई दशाब्दियों को मिलाकर) करोड़ों तक पहुँची। भारत के गवर्नर जनरल लॉर्ड बेंटिंक ने लिखा—'व्यापार और वाणिज्य के इतिहास में, कष्टों की भयानकता का ऐसा उदाहरण कभी सामने नहीं आया। भारत के मैदानों में बुनकरों की सफेद हड्डियाँ सब ओर बिखरी हुई हैं।'

बहुत-से लोग जो प्राण बचाकर भागे वे खेतों की ओर गये। खेत पहले ही से बँटे हुए थे। इन बेचारों के आने से वे बँटकर बहुत छोटे-छोटे हो गये। ज्यों-ज्यों अंग्रेज़ों का राज फैलता गया त्यों त्यों कारीगरों में बेकारी बढ़ती गयी, उनकी मौतें होती रहीं। शेष बेकार लोग खेती की ओर बढ़ते रहे। इस प्रकार असंख्य लोग शहरों से गाँव की ओर भागने लगे।

खेती पर बहुत अधिक भार आ पड़ा। इससे खेतिहर की औसत आमदनी घटती चली गयी। भारत में जिन जगहों पर अंग्रेज़ों की हुकूमत थी, वहाँ त्राहि-त्राहि मच गयी।

उधर इंग्लैण्ड ने भारत की परम्परागत समाज-व्यवस्था के मूलाधार बने हुए आत्मनिर्भर ग्राम-समाजों पर आघात किया। प्रत्येक ग्राम समाज में अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के सभी साधन थे—लुहार, कुम्हार, दर्जी, सुनार, पुरोहित, वैद्य, इत्यादि। इन सबकी सहकारिता के आधार पर, पंचायती ढंग से, ग्राम-समाज का शासन होता था। यह शासन पंचायती देख-रेख के भीतर चलता था। असल में वे एक प्रकार के ग्राम-राज्य थे, यद्यपि वहाँ कोई राजा या गवर्नर न था।

भारत के करोड़ों खेतिहरों से सम्बन्ध स्थापित करना और उनसे नियमित रूप से भूमि-कर वसूल करना अंग्रेज़ों के लिए कठिन था। इसलिए, उन्होंने इंग्लैण्ड के नमूने पर, भूमिपति (ज़मींदार अथवा मालगुज़ार) पद्धति की स्थापना की। अब गाँव का मालिक ज़मींदार या भूमिपति हो गया। उसका काम था—वह भूमिकर वसूल करे और नियमित रूप से, निश्चित समय पर उसे अंग्रेज़ सरकार को दे। अंग्रेज़ों का उद्देश्य यह भी था कि वे एक ऐसे वर्ग का निर्माण करें कि जो अपनी आय और धन सम्पत्ति के लिए केवल उन्हीं पर निर्भर हो, साथ ही जिसका अधिकार और प्रभाव विस्तृत जन-समाज पर, विशेष रूप से किसान जनता पर रहे। इस उद्देश्य से उन्होंने एक ओर भूमिपतियों को और दूसरी ओर बचे-खुचे राजे-रजवाड़ों को अपनी ओर करके, भारत का उपयोग इंग्लैण्ड की औद्योगिक उन्नति और विकास के लिए तथा ब्रिटिश साम्राज्य की रक्षा और उन्नति के लिए किया।

सन् 1857 ई. के स्वाधीनता-युद्ध के पहले भारतीय जनता की दुर्दशा हो चुकी थी। देश की सामान्य जनता में भी असन्तोष छा गया था। यहाँ तक कि अंग्रेज़ों की भारतीय सेनाओं में भी बेचैनी फैल रही थी।

बगाल पूरी तौर से अंग्रेजो द्वारा कुचल दिया गया था, वहाँ ऐसे नये वर्ग निकल आये थे, जिनका सामान्य जन-समाज पर प्रभाव था। किसान जनता ने, दुःख को स्थायी समझकर, उससे समझौता कर लिया था। पुराना सरदार सामन्तवर्ग या तो अंग्रेजो से पूरा समझौता कर चुका था, या उसे नष्ट कर दिया गया था। उसी प्रकार, मद्रास की भी हालत कर दी गयी थी। उधर, पजाब के सिक्खो को अंग्रेजो की फौज मे सिर्फ भरती ही नही किया गया था, उनके लिए सुख-सुविधा के अनेक प्रबन्ध किये गये। इस प्रकार, पजाब को अनुकूल बनाया गया था, बगाल और मद्रास को कुचल दिया गया था। महाराष्ट्र गुलामी की जजीर मे आ चुका था। वहाँ के सरदारो और सामन्तो का प्रभाव पेशवाई के अन्तिम दिनो मे ही समाप्त हो रहा था।

किन्तु उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, मध्यभारत और दिल्ली के समीपवर्ती क्षेत्रो मे जान बाकी थी। समाज का सर्वोच्च वर्ग अभी भी पुराना सरदार-सामन्त वर्ग था। वह अंग्रेजो से असन्तुष्ट था। उसी प्रकार सामान्य जनता भी क्षुब्ध थी। अंग्रेजो के एक गवर्नर जनरल लॉर्ड डलहौजी ने उनके साथ अन्याय किया था। इसलिए यह वर्ग बहुत क्षुब्ध था।

अंग्रेज अपने-आप मे एक शासक जाति बन गये थे। वे भारतीय जनता से अलग और दूर रहते थे। दोनो के बीच मे जबर्दस्त खाई थी। वे अपने गोरे रग के कारण भी भारतीयो से द्वेष रखते थे। भारतीयो के साथ वे दुर्व्यवहार भी करते रहते थे। अंग्रेज हिन्दुस्तान मे रहने के लिए नही आया, माल की लूट करने और सात समुन्दर पार अपना घर भरने के लिए आया था। इसलिए, भारतीय जनता मे उसके विरुद्ध विक्षोभ होना स्वाभाविक ही था।

गदर की आग मेरठ से उठी और दिल्ली से लेकर कानपुर होती हुई नागपुर तक फैल गयी। अवध और झांसी उस आग मे जगमगाने लगे। उस गदर ने बड़े-बड़े नेता पैदा किये, तात्या टोपे और झांसी की रानी लक्ष्मीबाई, अजीमुल्ला खान, और दिल्ली के अन्तिम मुगल वशधर बहादुरशाह के सम्बन्धी फीरोजशाह, नाना साहब पेशवा और अन्य। हिन्दु-मुस्लिम एकता हो गयी। भारतीय सामान्य जनता ने साथ दिया
और उर्दू मे
प्रकाशित किय
हजारो प्रतियाँ निकलती थीं। वह गुप्त रूप से एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश, एक फौजी कैम्प से दूसरे फौजी कैम्प भेजा जाता। लाने-ले जाने का काम औरतें करती। विद्रोह की ज्वाला सुलगाने मे उस पत्र ने बड़ा काम किया। भारत के हृदय-प्रदेश मे एकाएक नये चैतन्य का, जागृति और स्फूर्ति का सचार हुआ। विद्रोहियो ने कई नगर जीते, अंग्रेजो को पीछे खदेड़ा। उन्हे भारतीय तेजस्विता का परिचय करा दिया। किन्तु विद्रोही असगठित थे। एक-न-एक दिन उनकी हार होनेवाली थी। सो, होकर रही। बाकी प्रान्त तमाशा देखते रहे, या अंग्रेजो की मदद करते रहे। तात्या टोपे विद्रोहियो का सबसे कुशल, सर्वाधिक वीर, तथा साहसी सेनाध्यक्ष था। उसको फाँसी लगा दी गयी। महारानी लक्ष्मीबाई अंग्रेजो के साथ लड़ते-लड़ते मरी।

इस तरह मामला तमाम हुआ। लेकिन ब्रिटेन तथा यूरोप में अंग्रेजों की पोल खुल गयी। उनकी बर्बरता और दुष्टता का इतिहास, सावरकर लिखित भारत का स्वाधीनता युद्ध पढ़ने लायक है। स्वयं प्रधानमन्त्री पण्डित नेहरू ने अपनी पुस्तक डिसकवरी आफ इण्डिया में उस पुस्तक का उल्लेख किया है। उन्होंने कहा कि अंग्रेजों ने इस पुस्तक को तो दबा दिया (उसे ग़ैरकानूनी कर दिया था। उसी प्रकार पण्डित सुन्दर लाल का भारत में अंग्रेजी राज भी निषिद्ध कर दिया था), किन्तु शहरों में विभिन्न स्थानों पर अंग्रेजों के पुतले खड़े किये गये। सारा भारतीय इतिहास उन्होंने इस तरह लिखा, जिसमें साम्राज्यवादी दृष्टिकोण उचित ही और सही माना जाय।

तात्या टोपे, अजीमुल्लाह इत्यादि तथा मंगल पाण्डे सरीखे असामान्य साहसी भारतीय वीरों की हमारे यहाँ कहीं कोई मूर्ति नहीं है, उनका कोई स्मारक नहीं है। किन्तु उनका स्मारक वे कथाएँ हैं, जो नगरों तथा ग्रामों की जनता में प्रचलित रहीं, जिनमें अवध की बेगमों पर किये गये अत्याचार, नागपुर के सीताबर्डी किले के पास वीरों को दी गयी फाँसियाँ महत्त्वपूर्ण स्थान रखती हैं।

सन् 1857 के ग़दर के परिणामस्वरूप, ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी का शासन समाप्त हो गया और वह ब्रिटिश सम्राट् तथा उसकी पार्लामेंट के पास पहुँच गया।

भारत की पराजय क्यों हुई

भारत की पराजय से किसे दुख नहीं पहुँचा! आज भी इतिहास का विद्यार्थी जब उन घटनाओं को देखता पढ़ता है, उसे वेदना होती है। आखिर, क्या कारण था कि हम हारते चले गये? हममें एकता का अभाव था! किन्तु एकता क्या नहीं थी? हम में क्षेत्रीय संकुचित मनोवृत्ति थी! किन्तु ऐसी मनोवृत्ति क्या थी? क्या कारण है कि जब-जब नयी विदेशी शक्ति ने धावे मारे, हमारे शक्तिशाली राज्य समाप्त होते गये? क्या हम इस विषय में सोचना आवश्यक नहीं है?

आखिर ऐसा क्यों हुआ?

राजनैतिक अस्तव्यस्तता के कारण भारत की राज शक्तियाँ सात समुन्दर पार से आये हुए व्यापारियों की सेनाओं के सामने टिक नहीं सकीं। यदि आप तत्कालीन ऐतिहासिक वृतान्त पढ़ें तो आपके हृदय में एक कसकती हुई लकीर खिंचती चली जायेगी। हमारी वीरता और पराक्रम धरा रह गया। हैदरअली और टीपू सुल्तान, महादजी सिंधिया और नागपुर के भोसले, सिक्ख नरेश और जाट—एक के बाद एक, धराशायी होते गये! यदि हम तत्कालीन भारतीय राजाओं की ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी के नेताओं से तुलना करें तो हम कई बातें एक साथ चुभती

रहेगी। पहली तो यह कि विदेशी नेतृत्व संगठन-कुशल था, उनकी सेनाओं मे

भारत का भौगोलिक और ऐतिहासिक ज्ञान था। अंग्रेज सन् 1600 मे आये और लगभग 100 साल के भीतर ही उनके दफ्तरों में प्रत्येक भारतीय राज्य का ऐतिहासिक वृत्त, उनकी वर्तमान स्थिति, उनकी कमजोरियां, उनकी आर्थिक और सैनिक शक्ति—सबका विशद् अध्ययन और सूक्ष्म विश्लेषण मौजूद था।

उनका गुप्तचर विभाग सारे भारत में क्रियाशील था। किस दरबार मे क्या हो रहा है इसकी पूरी जानकारी उनके पास थी। स्वयं राजा को अपने राज्य का हाल मालूम नहीं होता था, किन्तु अंग्रेजों को मालूम हो जाता था। अंग्रेज अफसरों का काम, जो विविध दरबारों से सम्बन्ध बनाये रखते थे, यही था कि वे प्रत्येक राज्य और हर दरबार मे, रिश्वत देकर, लोभ और लालच देकर, भीतरी गुप्त बातें जानते रहें, और अपने आदमी तैयार कराते रहें। इस तरह प्रत्येक राज्य में बहुत-से भारतीय सरदार और सामन्त अंग्रेजों से मिल हुए थे।

अंग्रेज भारतीय शासकों को पचासों सालों तक इस धोखे मे रखते रहे कि उनका उद्देश्य राज्य करना नहीं, वरन् केवल व्यापार, मात्र व्यापार करना है। वे तो केवल व्यापार की सुविधा चाहते हैं, और कुछ नहीं। प्लासी की लड़ाई मे बंगाल और उड़ीसा को अपने कब्जे में ले चुकने के बाद भी, वे मुग़ल सम्राट शाह-आलम की सार्वभौम सर्वोपरि सत्ता को रस्मी तौर पर स्वीकार करके, उसके एजेण्ट बनकर राजनीति मे हस्तक्षेप करते रहे, जब कि वास्तविकता यह थी कि वे स्वयं राज्य के मालिक थे, कभी मुगल सम्राट से नहीं पूछा करते थे। भारतीय राजाओं की आंखों में वे अपने को तटस्थ और निष्पक्ष सिद्ध करने की भरसक कोशिश करते रहे। जब भारत में अंग्रेजी राज्य स्थापित हो गया तब कहीं यहाँ के सामन्तों और सरदारों की आंखों के सामने सच्ची बात आयी।।

उनकी सेना सुसंगठित थी। वह रोज ड्रिल और परेड करती थी। युद्ध अनुशासन-बद्ध होता था। व्यक्तिगत पराक्रम को स्थान होते हुए भी युद्ध योजना (लड़ाई का नक्शा) महत्त्वपूर्ण होती थी। ये सिपाही अंग्रेज न होकर, भारतीय ही होते थे—ऐसे भारतीय जो बेकार थे और जिनकी रोटी-पानी का कोई ठिकाना न था।

और, अन्त में, अंग्रेज ब्रिटेन की उस नयी समाज-व्यवस्था और राजतन्त्र के प्रतिनिधि थे, जिसमे, सरदारों और सामन्तों के हाथ से राजसत्ता छिनकर, व्यापारियों और औद्योगिक पूँजीपतियों के पास आ गयी थी। अंग्रेज कारखानेदार और सौदागर ही राजसत्ता और समाज व्यवस्था का सूत्रधार था। वह अपने तैयार माल की बिक्री के लिए दुनिया के अलग-अलग देशों में राज क़ायम कर रहा था। इसीलिए, भारत मे आयी हुई हर यूरोपीय व्यापारिक कम्पनी अपने पास विशाल सेनाएँ रखती थी।

अब इसकी तुलना भारत से कीजिए। यहाँ सरदारों और सामन्तों का राज था। हमारे यहाँ के उद्योग पूँजीपतियों के पास न होकर, जाति बिरादरियों के हाथ में थे। भारत उस जमाने में दुनिया का एक बहुत बड़ा उद्योग प्रधान

देश था। किन्तु, उद्योग चलानेवालो के पास अथवा व्यापारी वर्ग के पास राजनैतिक सत्ता न थी। वे दोनो वर्ग राजाओ, सामन्तो-सरदारो पर निर्भर थे। देश पिछडा हुआ था—ज्ञान-विज्ञान की दृष्टि से। उसमे वह ज्ञानेच्छा नही रह गयी थी, जो ब्रिटेन मे वैज्ञानिक अभ्युत्थान के रूप मे प्रकट हो रही थी। देश मे सडकें बहुत कम थीं, एक प्रदेश, दूसरे प्रदेश स घनिष्ठ सम्पर्क नहीं रखता था। डाक-व्यवस्था नहीं थी। यात्रा कष्टकर, असुरक्षित और खतरे से भरी हुई थी। हम अपने-अपने प्रदेशो और प्रान्तो मे सिकुडे-सिमटे रहते थे। इस प्रकार, हममे क्षेत्रीय मनोवृत्ति थी।

मौर्य, गुप्त, तुर्क-अफगान, मुगल शासन, लगभग अखिल भारतीय शासन होने के बावजूद, एक क्षेत्र का दूसरे क्षेत्र से, एक प्रान्त का दूसरे प्रान्त से सम्बन्ध टिकाये रखने के लिए विशाल सेना रखते थे। सेना के भरोसे, ये सम्बन्ध टिकते थे। केन्द्रीय शासन निर्बल होते ही, पृथक् पृथक् प्रान्तो मे पृथक्-पृथक् राजसत्ताएँ कायम हो जाती थी। अन्तर्प्रान्तीय सम्बन्धो को घनिष्ठ करने के लिए, एक दूसरे के विलीनीकरण के लिए वैसी आर्थिक व्यवस्था आवश्यक थी, कि जिसस एक प्रान्त दूसरे प्रान्त पर आर्थिक जीवन ही के लिए निर्भर रह सके। बगाल के माल के बिना गुजरात का काम न चल सके, गुजरात के सहयोग के बिना, दिल्ली न रह सके, बलूचिस्तान-अफगानिस्तान (गान्धार और काम्बोज) के बिना, आसाम का (कामरूप और प्राग-ज्योतिप) काम न चल सकें। यदि वैसी परस्पर-निर्भरता होती तो हममें क्षेत्रीय सीमाओ मे सिकुड-सिमिट बैठने की प्रवृत्ति न होती। किन्तु, ये प्रान्त और प्रदेश और उनके अन्तर्गत जिले आर्थिक उत्पादन की दृष्टि से पूर्ण आत्म-निर्भर और स्वयम्पूर्ण थे। फलत., सैनिक शक्ति के जोर से पैदा किया गया केन्द्रीय शासन निर्बल होते ही फिर वही क्षेत्रीय मनोवृत्ति जाग उठती थी।

इसका परिणाम यह होता था कि हमारे यहाँ के राजा और सुलतान नहीं जान पाते थे कि सुदूर स्थित प्रान्तो और प्रदेशो मे क्या हो रहा है। यहाँ तक कि कई राजाओ को भारत का भौगोलिक ज्ञान भी नही था। बगाल अग्रेजो ने जीत [illegible]

नक्शा मिला है। उस नक़्शे को देखकर हमें हँसी भी आती है और रोना भी आता है। विद्वान समझे जानेवाले इस ब्राह्मण राजवंश के यहाँ अज्ञान का अन्धकार था। यही हाल सब जगह था।

जहाँ आदमी छोटी-छोटी चहारदीवारियो मे घिरे होते हैं वहाँ न केवल वे अज्ञान के घनघोर अन्धकार मे रहते हैं, वरन् वे एक दूसरे के प्रति वैमनस्य और शत्रुत्व के भावो से पीडित भी रहते हैं। टीपू सुल्तान ने नेपोलियन से सहायता मँगायी, किन्तु मराठो से नहीं। निजाम कभी मराठो और कभी फ्रांसीसियो से सहायता लेता था। अगर भारतीय नरेश चाहते तो अग्रेजो और फ्रांसीसियो से बहुत-कुछ सीख भी सकते थे। लेकिन, वैसा नही हुआ। दूसरे, ये अग्रेज और फ्रांसीसी धोखेबाज भी थे, किन्तु अगर हम चाहते तो उन पर कडी नजर रखी भी जा सकती थी। किन्तु वैसा नहीं हुआ। जब तक हमारी निजी रोटी पर घी ढल रहा है, तब

तक हमे दूसरो से क्या मतलब ! साथ ही अग्रेजो की विद्या पर अविश्वास किया जाता रहा !

सकुचित्त क्षेत्रीय मनोवृत्ति, वैमनस्य, अज्ञान-अन्धकार, और इन सबके परिणाम स्वरूप राजनैतिक स्वार्थों की पूर्ति के लिए विदेशी शक्तियो का भारतीय राजदरबारो म सम्मान-सत्कार ! इसका कुफल हमने भुगता।

जिन दिनो हमने अपनी आज़ादी खोयी, उन्ही दिनो सयुक्त राज्य अमरीका ने अग्रेजो के चगुल से छुटकारा पाया। उस देश मे भाषाओ तथा जातियो की विभिन्नता, गरीबी, और पिछडापन था। सन् 1947 तक (जब अग्रेजो के चगुल से भारत निकला) वह देश—जो उन दिनो के लिहाज से हमसे ज्यादा गरीब, हमसे ज्यादा पिछड़ा हुआ और हमसे ज्यादा असस्कृत था, वह देश (भारत मे अग्रेजी राज के दौरान) सन् सैतालीस तक दुनिया की सबसे बडी ताकता मे से एक बन गया। और हम अभी-अभी सिर्फ अपने पैरो पर खडे होने की कोशिश-भर कर रहे हैं। और हम अभी भी पिछडे हुए हैं। अग्रेजी राज ने हमारी प्रगति को इतने दीर्घ काल तक रोक कर रखा था।

औरगजेब के अन्त काल से लेकर तो सन् 1857 के गदर तक, जो थोडे-बहुत राजनीतिकुशल और विद्वान नरेश भारत मे पैदा हुए, वे नरेश जिनके पास जीवन का कोई स्वप्न था, उनका थोडा-सा उल्लेख करना यहाँ आवश्यक है।

[आगे की पाण्डुलिपि अप्राप्य। इस अध्याय का विषय देखते हुए इसे यहाँ रखा गया है—स०।]

भारत में आधुनिक युग का उषःकाल

अग्रेजो ने प्राचीन भारतीय समाज-व्यवस्था—सामन्त-व्यवस्था—को बलपूर्वक नष्ट कर दिया। और उसके स्थान पर आधुनिक समाज-व्यवस्था के विकास की नीव डाली, इसलिए नही कि भारत को वे नये युग मे लाना चाहते थे, वरन् इसलिए कि उसके बिना उनका स्वय का अर्थ-तन्त्र चल ही नही सकता था। इस प्रकार जाने-अनजाने ढग से, अग्रेजो ने भारत मे, बलपूर्वक ही क्यो न सही, आमूल सामाजिक क्रान्ति उपस्थित कर दी। भारत मे नवीन व्यवस्था पर आधारित, आधुनिक ढग की नयी समाज-रचना उपस्थित हो गयी। सन सत्तावन के ग़दर के पहले ही, बगाल मे आधुनिक सभ्यता आरम्भ हो गयी थी तथा शिक्षित मध्य-वर्ग का उदय हो गया।

अग्रेज़ों ने प्राचीन भारतीय समाज व्यवस्था, सामन्त-व्यवस्था को बलपूर्वक उखाड फेंका। भारत के गवर्नर जनरल लार्ड डलहौज़ी के ज़माने मे (सन् 1848

से 1856 ई.) भारत मे रेलवे लाइनें बिछायी जाने लगी। आधुनिक ढग की डाक-व्यवस्था क़ायम की गयी। तार भेजे जाने लगे। डलहौज़ी ने एक पृथक् शिक्षा-विभाग क़ायम किया। सिवा इसके आधुनिक ढग का शासन-यन्त्र भी काम करने लगा। सन् 1857 के पूर्व, बगाल मे आधुनिक सभ्यता का आरम्भ हो गया था। ऐसी न्याय-व्यवस्था कार्य करने लगी थी, जिसमे कानून के सामने व्यक्तियो की समानता का सिद्धान्त स्वीकार किया गया था। अग्रेजी ढग की शिक्षा का भी प्रारम्भ हो चुका था। सबसे पहले, ऐसी शिक्षा ईसाई मिशनरी दे रहे थे। भारत मे पाश्चात्य सस्कृति से प्रभावित वर्ग सामने आ गया था। इस वर्ग का सामान्य जनता से विशेष सम्बन्ध न था। किन्तु यह नव-शिक्षित वर्ग पाश्चात्य ज्ञान को आत्मसात् करके आगे बढना चाहता था। सन् 1880 ई के आस-पास, बगाल के कुछ विचारक शिक्षा तथा सस्कृति-सम्बन्धी प्रश्नो पर विचार करने लगे। उनमे ईश्वरचन्द्र विद्यासागर और राजा राममोहन राय के नाम प्रमुख हैं। कम्पनी सरकार ने कलकत्ते मे सस्कृत कालेज की स्थापना की, तो इसका विरोध करते हुए राजा राममोहन राय ने अपने स्मरण-पत्र मे सरकार से अनुरोध किया कि गणित, रसायनशास्त्र, प्राकृतिक दर्शन, शरीर-रचना-शास्त्र तथा अग्रेज़ी साहित्य पढाने की व्यवस्था तुरन्त होनी चाहिए। अग्रेजी तथा पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा की माँग बढती ही गयी। फलत धीरे-धीरे अग्रेज़ी स्कूल खुलते गये तथा क्रमश पाश्चात्य ढग की शिक्षा का प्रचार भारत मे होता गया।

पश्चिम के सम्पर्क मे आये हुए भारतीयो ने अब छापेखाने शुरू किये। किताबें निकलने लगी। राजा राममोहन राय ने बगदूत नामक समाचार-पत्र की स्थापना की। इसका एक पृष्ठ हिन्दी मे निकलता था। उधर अग्रेजो ने कई समाज-सुधार भी किये। अग्रेज गवर्नर-जनरल बैंटिक ने सती-प्रथा बन्द कर दी। भारत मे दास-प्रथा भी ग़ैरकानूनी हो गयी। बैंटिक के शासन-काल मे जमीन की पैमाइश भी की गयी।

इन सबके परिणामस्वरूप, भारत मे एक नया शिक्षित मध्य-वर्ग निकल आया। यह मध्य-वर्ग भारत के सभी प्रान्तो मे थोडा-बहुत था। किन्तु उसका सबसे अधिक जोर अग्रेज़ी शिक्षा के केन्द्रो मे, जैसे कलकत्ता, बम्बई और मद्रास मे, रहा आया।

सुधारवादी आन्दोलन

पश्चिमी शिक्षा से प्रभावित होकर, इस वर्ग ने जडीभूत सामाजिक रूढियो का विरोध किया, रूढि को ईश्वर-प्रेम से पृथक किया। राजा राममोहन राय ने ब्रह्म-समाज की स्थापना की। एक नया समाज, प्रार्थना-समाज भी चल पडा। ये आन्दोलन सामाजिक एव धार्मिक सुधार चाहते थे। इनका प्रभाव कुछ ही शिक्षित लोगो पर था। शिक्षित जनता मे से कुछ लोग ऐसे थे जो रहन-सहन, चाल-ढाल मे अग्रेजो की नकल करते थे। समाज उनकी निन्दा करता था। ये लोग वह मध्य-वर्ग था जो कम्पनी सरकार के दफ्तरो मे बाबू बना हुआ था।

सस्कृति का प्रभाव

उधर भारत मे आये हुए अग्रेजो मे से कुछ लोग भारतीय विद्या, धर्म और दर्शन से

प्रभावित हुए। अब तक मिशनरियों ने यहाँ के सम्बन्ध में यूरोप में भ्रम का प्रचार कर रखा था। बेंटिंक, आकलैण्ड, ग्रैण्ट और मैकॉले सरीखे लोगों ने भी उन्हीं भ्रमपूर्ण बातों का समर्थन किया था। किन्तु वारेन हेस्टिंग्स, प्रिन्सेप, जोन्स, मिन्टो, विल्सन जैसे भी लोग थे जिन्होंने अपने अध्ययन द्वारा भारत की सांस्कृतिक श्रेष्ठता पर प्रकाश डाला। फलतः, अंग्रेज़ों में भारतीय विद्या का व्यापक अध्ययन शुरू हुआ। विलियम जोन्स ने कालिदास के **अभिज्ञान शाकुन्तलम्** का अनुवाद किया, स्वयं विश्वविख्यात जर्मन कवि गटे ने इस अनुवाद को पढ़कर प्रशंसा के अनुपम उद्‌गार निकाले थे। उधर मैक्समूलर ने वेदों का अनुवाद किया। सन् 1801-2 में उपनिषदों का फ्रेंच भाषा में अनुवाद हुआ, जिसे पढ़कर शॉपेनहॉर नामक जर्मन दार्शनिक बहुत प्रभावित हुआ। तब से यूरोप में पाश्चात्य दर्शन पर भारतीय दर्शन का प्रभाव पड़ने लगा। यूरोप में संस्कृत भाषा का ज़ोरों से अध्ययन आरम्भ हुआ और यह जानकर यूरोप में प्रसन्नता की लहर फैल गयी कि संस्कृत भी ग्रीक, लैटिन आदि भाषाओं की सगी बहन है। यूरोपियनों द्वारा संस्कृत के अध्ययन का परिणाम यह हुआ कि ज्ञान की एक नयी शाखा फूट पड़ी, जिसे 'भाषाशास्त्र' कहा जाता है। इधर भारत में उन्हीं दिनों बी जी भण्डारकर, राजेन्द्र लाल मित्रा, के टी तैलंग और रानाडे

सन् 1857 के इधर या उधर, जो नेता मैदान में आये उनमें ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, राजा राममोहन राय, विवेकानन्द, दादाभाई नौरोजी, सर सैय्यद अहमद खाँ नयी सांस्कृतिक सामाजिक जागृति का प्रतिनिधित्व कर रहे थे।

खून से लथपथ होकर ही क्यों न सही, भारत ने नये युग में प्रवेश किया। ज्यों ही वह नये प्रकाश में आया, उसकी प्राचीन सांस्कृतिक गरिमा भी यूरोप में फैल गयी। साथ ही भारतीय समाज सुधारकों और विद्वानों का एक ऐसा नया दल सामने आया जिसने भारतीय कीर्ति को और भी विकसित तथा प्रसारित किया।

राष्ट्रीय चेतना का विकास : प्रथम चरण

क्रमशः भारत में समाज सुधार तथा सांस्कृतिक अभ्युत्थान की प्रक्रियाओं ने शिक्षित जनता में आत्म गौरव तथा आत्म विश्वास की भावना उत्पन्न कर दी। राष्ट्रीय चेतना का विकास हुआ। कांग्रेस की स्थापना हुई। बंग भंग विरोधी आन्दोलन से, देश में नयी राष्ट्रीय चेतना की लहरें फैलने लगीं। गोखले सरीखे नरमदली और बाल गंगाधर तिलक सरीखे गरमदली लोग सामने आये। देश में राष्ट्रीय उत्साह का वातावरण फैल गया।

प्रथम राष्ट्रीय स्वाधीनता युद्ध की परिसमाप्ति के अनन्तर, भारत का शासन ब्रिटेन की रानी विक्टोरिया और वहाँ की पार्लमेण्ट के हाथ में आ गया। उन्होंने घोषणा की कि किसी के धर्म में हस्तक्षेप नहीं किया जायगा।

किन्तु जन-जीवन में गहरा असन्तोष था। यह तत्कालीन साहित्य से देखा जा सकता है। बंगाल के उपन्यासकार बंकिमचन्द्र चटर्जी और हिन्दी के महान लेखक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के साहित्य में यह असन्तोष स्पष्ट रूप से झलकता है। किन्तु यह भी सच है कि विक्टोरिया के शासन-काल में शान्ति रही। नया मध्यवर्ग पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान को ग्रहण करता रहा, शिक्षा का भी विकास और प्रसार होता रहा। उच्च शिक्षा-प्राप्त युवकों में, एक ओर, पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान शीघ्र-से-शीघ्र आत्मसात् करने की प्रवृत्ति रही, तो दूसरी ओर, अपने प्राचीन धर्म और दर्शन के गौरव का भाव भी बढ़ता रहा। उधर रेलवे लाइनें फैलती रहीं। नये मध्य वर्ग को नौकरियाँ मिलती रहीं। सामान्य-जन अंग्रेजों के ज्ञान-विज्ञान से बहुत प्रभावित हुए। आवागमन के साधनों की प्रचुरता के कारण, विभिन्न प्रान्त परस्पर सम्पर्क में पहले से ज्यादा आने लगे। एक प्रान्त की विचारधारा दूसरे में फैलने लगी। अखबारों और मुद्रणालयों की संख्या बढ़ गयी। किन्तु, अंग्रेज सरकार की नीति देशी उद्योगों को बढ़ावा देने की नहीं थी। उन दिनों हम लोग लंकाशायर की धोतियाँ पहनते थे। इस प्रकार के कर लगा दिये गये थे कि जिससे एक प्रान्त में बना माल दूसरे प्रान्त में अंग्रेजी माल से महँगा बिके। हिन्दुस्तान ब्रिटिश साम्राज्यवादी अर्थ-व्यवस्था का एक अंग बन गया था।

उधर अंग्रेजों ने अपने कारखाने भारत में खोल दिये। बंगाल की जूट-मिलें, कानपुर और बम्बई की सूती मिलें, मैंगनीज और कोयले की खदानें तथा अन्य उद्योग अंग्रेजों के हाथ में थे। साथ ही आसाम के चाय-बागान, नीलगिरि के कॉफी के खेत इत्यादि, ब्रिटिश स्वामित्व के अन्तर्गत थे।

फलत, एक नया भारतीय मजदूर वर्ग निकल आया। इधर धीरे धीरे भारतीय औद्योगिक पूँजीपति वर्ग के उदय के लक्षण भी दिखायी देने लगे। लोग अब मजदूरी के लिए गाँवों से शहरों की ओर जाने लगे। मध्य वर्ग के लोग भी नौकरियों की तलाश में भिन्न भिन्न प्रान्तों में जा बसे। संयुक्त परिवार के बन्धन ढीले पड़ गये। खेती का विस्तार किया गया। सिंचाई के साधनों का भी विकास हुआ। गंगा और गोदावरी नदियों से नहरें निकाली गयीं। नहरें निकालने की कम्पनियाँ ब्रिटिश थीं। उन्हें खूब लाभ हुआ। इन योजनाओं से जनता को भी फायदा हुआ।

इन सबका कुल मिलाकर परिणाम यह हुआ कि विक्टोरिया रानी के राजत्व-काल के 30 वर्षों तक भारतीय स्वाधीनता के प्रश्न पर विचार करने का किसी को साहस नहीं हुआ। सन् 1906 में प्रथम बार कलकत्ता कांग्रेस के प्लेटफार्म से दादाभाई नौरोजी ने 'स्वराज्य' शब्द का उच्चारण किया।

रानी विक्टोरिया के ज़माने में नया उठता हुआ मध्यवर्ग पुराने श्रीमानवर्गों से ही पैदा हुआ था। वह तो केवल इतना ही चाहता था कि भारतीय प्रशासनिक सेवाओं में उसे अधिक स्थान मिले। इसलिए वह अंग्रेजों से फरियाद करने लगा। उन्हें दरख्वास्त देने लगा। वह सिर्फ सुधारों की माँग ही तो कर सकता था। किन्तु, ऐसी माँग करनेवाला यह वर्ग सुशिक्षित था, उसमें साम्प्रदायिकता नाम के लिए भी नहीं थी।

प्रभावित हुए। अब तक मिशनरियो ने यहाँ के सम्बन्ध मे यूरोप मे भ्रम का प्रचार कर रखा था। बैंटिक, आकलैण्ड, ग्रैण्ट और मैकॉले सरीखे लोगो ने भी उन्ही भ्रमपूर्ण बातो का समर्थन किया था। किन्तु वारेन हेस्टिंग्स, प्रिन्सेप, जोस, मिन्टो, विल्सन जैसे भी लोग थ जिन्होने अपने अध्ययन द्वारा भारत की सास्कृतिक श्रेष्ठता पर प्रकाश डाला। फलत, अंग्रेजो म भारतीय विद्या का व्यापक अध्ययन शुरू हुआ। विलियम

[illegible]

लगा। यूरोप म सस्कृत भाषा का जोरो स अध्ययन आरम्भ हुआ और यह जानकर यूरोप म प्रसन्नता की लहर फैल गयी कि सस्कृत भी ग्रीक, लैटिन आदि भाषाओ की सगी बहन है। यूरोपियनों द्वारा सस्कृत के अध्ययन का परिणाम यह हुआ कि ज्ञान की एक नयी शाखा फूट पडी, जिसे 'भाषाशास्त्र' कहा जाता है। इधर भारत मे उन्ही दिनो बी जी भण्डारकर, राजेन्द्र लाल मित्रा, के टी तैलग और रानाडे सरीखे महान् विद्वान उत्पन्न हुए। यह कहना बिलकुल सही है कि 'यदि अंग्रेजी शिक्षा पूर्व को पश्चिम की व्याख्या दे रही थी तो ये पूर्वीय विद्वान् एक ओर पश्चिम को, तो दूसरी ओर पूर्व को, पूर्व ही की व्याख्या दे रहे थे।'

सन् 1857 के इधर या उधर, जो नेता मैदान म आये उनम ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, राजा राममोहन राय, विवेकानन्द, दादाभाई नौरोजी, सर सैय्यद अहमद खाँ नयी सास्कृतिक सामाजिक जागृति का प्रतिनिधित्व कर रहे थे।

खून से लथपथ होकर ही क्यो न सही भारत न नये युग म प्रवेश किया। ज्यो ही वह नये प्रकाश मे आया, उसकी प्राचीन सास्कृतिक गरिमा भी यूरोप मे फैल गयी। साथ ही भारतीय समाज सुधारको और विद्वानो का एक ऐसा नया दल सामने आया जिसने भारतीय कीर्ति को और भी विकसित तथा प्रसारित किया।

राष्ट्रीय चेतना का विकास : प्रथम चरण

क्रमश भारत मे समाज सुधार तथा सास्कृतिक अभ्युत्थान की प्रक्रियाओ ने शिक्षित जनता म आत्म गौरव तथा आत्म-विश्वास की भावना उत्पन्न कर दी। राष्ट्रीय चेतना का विकास हुआ। काग्रेस की स्थापना हुई। बग-भग विरोधी आन्दोलन से, देश म नयी राष्ट्रीय चेतना की लहरें फैलने लगी। गोखले सरीखे नरमदली और बाल गगाधर तिलक सरीखे गरमदली लोग सामने आये। देश मे राष्ट्रीय उत्साह का वातावरण फैल गया।

प्रथम राष्ट्रीय स्वाधीनता युद्ध की परिसमाप्ति के अनन्तर, भारत का शासन ब्रिटेन की रानी विक्टोरिया और वहाँ की पार्लमेण्ट के हाथ में आ गया। उन्होंने घोषणा की कि किसी के धर्म में हस्तक्षेप नहीं किया जायगा।

किन्तु जन-जीवन में गहरा असन्तोष था। यह तत्कालीन साहित्य में देखा जा सकता है। बंगाल के उपन्यासकार बंकिमचन्द्र चटर्जी और हिन्दी के महान लेखक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के साहित्य में यह असन्तोष स्पष्ट रूप में झलकता है। किन्तु यह भी सच है कि विक्टोरिया के शासन-काल में शान्ति रही। नया मध्यवर्ग पश्चात्य ज्ञान-विज्ञान को ग्रहण करता रहा, शिक्षा का भी विकास और प्रसार होता रहा। उच्च-शिक्षा-प्राप्त युवकों में, एक ओर, पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान शीघ्र-से शीघ्र आत्मसात् करने की प्रवृत्ति रही, तो दूसरी ओर, अपने प्राचीन धर्म और दर्शन के गौरव का भाव भी बढ़ता रहा। उधर रेलवे लाइनें फैलती रहीं। नये मध्य-वर्ग को नौकरियाँ मिलती रहीं। सामान्य-जन अंग्रेजों के ज्ञान-विज्ञान से बहुत प्रभावित हुए। आवागमन के साधनों की प्रचुरता के कारण, विभिन्न प्रान्त परस्पर सम्पर्क में पहले से ज्यादा आने लगे। एक प्रान्त की विचारधारा दूसरे में फैलने लगी। अखबारों और मुद्रणालयों की संख्या बढ़ गयी। किन्तु, अंग्रेज सरकार की नीति देशी उद्योगों को बढ़ावा देने की नहीं थी। उन दिनों हम लोग लंकाशायर की धोतियाँ पहनते थे। इस प्रकार के कर लगा दिये गये थे कि जिससे एक प्रान्त में बना माल दूसरे प्रान्त में अंग्रेजी माल से महँगा बिके। हिन्दुस्तान ब्रिटिश साम्राज्यवादी अर्थ-व्यवस्था का एक अंग बन गया था।

उधर अंग्रेजों ने अपने कारखाने भारत में खोल दिये। बंगाल की जूट-मिलें, कानपुर और बम्बई की सूती मिलें, मैंगनीज और कोयले की खदानें, तथा अन्य उद्योग अंग्रेजों के हाथ में थे। साथ ही आसाम के चाय-बागान, नीलगिरि के कॉफी के खेत इत्यादि, ब्रिटिश स्वामित्व के अन्तर्गत थे।

फलतः, एक नया भारतीय मजदूर वर्ग निकल आया। इधर धीरे-धीरे भारतीय औद्योगिक पूँजीपति वर्ग के उदय के लक्षण भी दिखायी देने लगे। लोग अब मजदूरी के लिए गाँवों से शहरों की ओर आने लगे। मध्य-वर्ग के लोग भी नौकरियों की तलाश में भिन्न-भिन्न प्रान्तों में जा बसे। संयुक्त परिवार के बन्धन ढीले पड़ गये। खेती का विस्तार किया गया। सिंचाई के साधनों का भी विकास हुआ। गंगा और गोदावरी नदियों से नहरें निकाली गयीं। नहरें निकालने की कम्पनियाँ ब्रिटिश थीं। उन्हें खूब लाभ हुआ। इन योजनाओं से जनता को भी फ़ायदा हुआ।

इन सबका कुल मिलाकर परिणाम यह हुआ कि विक्टोरिया रानी के राजत्व-काल के 30 वर्षों तक भारतीय स्वाधीनता के प्रश्न पर विचार करने का किसी को साहस नहीं हुआ। सन् 1906 में प्रथम बार कलकत्ता कांग्रेस के प्लेटफार्म से दादाभाई नौरोजी ने 'स्वराज्य' शब्द का उच्चारण किया।

रानी विक्टोरिया के जमाने में नया उठता हुआ मध्यवर्ग पुराने श्रीमानवर्गों से ही पैदा हुआ था। वह तो केवल इतना ही चाहता था कि भारतीय प्रशासनिक सेवाओं में उसे अधिक स्थान मिले। इसलिए वह अंग्रेजों से फरियाद करने लगा। उन्हें दरख़ास्त देने लगा। वह सिर्फ़ सुधारों की माँग ही तो कर सकता था। किन्तु, ऐसी माँग करनेवाला यह वर्ग सुशिक्षित था, उसमें साम्प्रदायिकता नाम के लिए भी नहीं थी।

राष्ट्रीय राजनैतिक चेतना का प्रथम स्पन्दन

भारतीय सुशिक्षित जनता अंग्रेजो से किसी तरह भी कम प्रतिभाशाली नही थी। अंग्रेजो की अधीनता में काम करना, उनके भी गौरव के विरुद्ध था। इसलिए मन के भीतर अंग्रेजो के विरुद्ध एक भावना तो रहती ही थी। उधर भारतीय धर्म, दर्शन, गणित, विद्या आदि का पश्चिम मे जो स्वागत और सम्मान हुआ, स्थापत्य, गणित विद्या, कलाओ आदि ने यूरोप मे जो कीर्ति-लाभ किया, उससे इस सुशिक्षित मध्य-वर्ग मे नया आत्म-गौरव और नया आत्मविश्वास उत्पन्न हुआ।

किन्तु भारत की मूर्तिमान वास्तविकता यह थी कि भारत पराधीन हो गया था। अंग्रेज डिप्टी कलेक्टर 'राजा' हो गया था। उसकी अधीनता मे काम करने के बजाय, सुशिक्षित वर्ग मे से बहुतेरे लोग वकील-बैरिस्टर, डॉक्टर आदि बनना ज्यादा पसन्द करते थे। इसलिए कि ये लोग अपेक्षाकृत स्वाधीनता बरत सकते थे।

यह वर्ग अपने विचारो का प्रचार चाहता था। अंग्रेजो के जो अखबार थे, उन पर तो कोई पाबन्दी नही लगायी गयी थी, किन्तु देशी भाषाओ के पत्रो पर विशेष प्रतिबन्ध था। भारतीयो के विरुद्ध इस प्रकार के जो अनेकानेक प्रतिबन्ध थे उनके विरोध मे जनमत निर्माण करने के लिए सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने सन् 1876 मे कलकत्ते मे 'इण्डियन ऐसोसियशन' नामक संस्था बनायी। उसका उद्देश्य था—भारतीय युवको मे देश-सेवा का भाव निर्माण करना और देश के हितो के लिए कार्य करना। कुल मिलाकर, शासन-यन्त्र में भारतीयो को अधिकाधिक नौकरियाँ दिलाना और इस प्रकार उस शासन को भारतीय जनता के अधिक अनुकूल बनाना—यही इस संस्था का लक्ष्य था।

कांग्रेस की स्थापना

एक उदारवादी अंग्रेज सर ऑक्टेवियस ह्यूम तथा अन्य भारतीयो के प्रयत्नों से सन् 1885 मे 'भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस' की स्थापना हुई। इसकी सभाएँ, सामान्यत, बडे-बडे नगरो म होती। शिकायतो के आधार पर प्रस्ताव बनाये जाते। कांग्रेस का उद्देश्य था—विभिन्न जातियो और समुदायो मे राष्ट्रीय एकता की स्थापना करना, इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए, राजनैतिक, सामाजिक और नैतिक उन्नति और विकास के द्वारा, राष्ट्र मे पुनर्जागरण उत्पन्न करना, भारत तथा ब्रिटेन, इन दो देशो के बीच मैत्री स्थापित करके भारतीय हितो के विरुद्ध जानेवाली बातो को हटाना।

इन उद्देश्यो को पढकर यह स्पष्ट हो जाता है कि शुरू मे कांग्रेस सुधार-वादियो के हाथ मे थी। अभी उसमे कोई देशव्यापी आन्दोलन छेड़ने का साहस नही आ पाया था। फिर भी शुरू मे कांग्रेस के सदस्यो की संख्या जो सिर्फ 78 थी, वह बढते-बढते तीन वर्षो में ही 1848 हो गयी। इधर कांग्रेस गवर्नर जनरल की केन्द्रीय विधान-समिति मे भारतीय प्रतिनिधियो को स्थान दिलवाने का प्रयत्न करने लगी। लॉर्ड रिपन ने (1880-1884) देशी भाषाओ के समाचार-पत्रो

व्यय पर बहस करने की तथा महत्त्वपूर्ण घटनाओं पर वाद-विवाद करने की भी छूट दे दी गयी।

किन्तु इस बीच भारत में बढ़ते हुए जन-जागरण से घबराकर अंग्रेज शासक देश में फूट पैदा करने की तजवीज़ों पर विचार करने लगे। अब बात यह थी कि भारत में पहले राज्य-भोग किये हुए दो वर्ग थे—हिन्दू और मुसलमान। इन दोनों को एक-दूसरे से अलग करने की नीति का समर्थन करनेवाले अंग्रेज शासक मैदान में आये। लार्ड कर्ज़न ने सन् 1905 में, हिन्दू और मुस्लिम जनसंख्या के आधार पर, बंगाल के दो टुकड़े कर दिये।

बंग भंग के परिणाम

लेकिन लॉर्ड कर्ज़न को मुँह की खानी पड़ी। अभी भारत में हिन्दू-मुस्लिम एकता बाकी थी। बंग-भंग से बंगाल के आर्थिक हितों पर भी कुठाराघात होता था। इसलिए देश में बंग-भंग के विरुद्ध असन्तोष पैदा होने लगा। शीघ्र ही इस असन्तोष ने देशव्यापी राष्ट्रीय आन्दोलन का रूप धारण कर लिया। दक्षिण में, प्रसिद्ध लोक-नेता बाल गंगाधर तिलक ने बंग-भंग के विरोध में जबर्दस्त आन्दोलन किये। उधर पंजाब में लाला लाजपत राय ने जोर-शोर से बंग-भंग के विरुद्ध जनमत पैदा किया। यह आन्दोलन बंगाल, पंजाब और महाराष्ट्र के केन्द्रों से देशभर में फैल गया। इस आन्दोलन से भारतीय जनता में अपूर्व जागृति हुई। उदार-मतवादी नेता गोखले भी अब लॉर्ड कर्ज़न की तुलना औरंगज़ेब से करने लगे।

किन्तु अंग्रेज़ों ने एक न सुनी। इस बीच कुछ ऐसी घटनाएँ हो गयीं जिनसे भारतीय जनमत पर गहरा असर पड़ा। सन् 1905 में जापान जैसे छोटे एशियायी देश ने रूस जैसे बलशाली और विस्तृत देश को लड़ाई के मैदान में पछाड़ दिया। इसका निष्कर्ष यह निकाला गया कि ब्रिटिश साम्राज्य जैसी प्रचण्ड शक्ति भी भारत द्वारा नष्ट की जा सकती है।

इसी प्रकार, इटली के राष्ट्र-पुरुष मैज़िनी ने अपने देश को जब स्वतन्त्र कर दिया तो उसका भी प्रभाव भारत पर पड़ा। आयरलैण्ड के स्वाधीनता आन्दोलन से भी भारत ने प्रेरणा ग्रहण की। अब यह निश्चित माना जाने लगा कि भारत के अध:पतन और अवनति का मूल कारण अंग्रेज़ हैं। ब्रिटेन में लंकाशायर नगर के उद्योगपतियों के हित के लिए, भारतीय उद्योग-धन्धों पर लगायी गयी एक्साइज़ ड्यूटी, अफ्रीका के ब्रिटिश उपनिवेशों में गये हुए तथा उसी प्रकार मलाया गये हुए भारतीयों के प्रति अंग्रेज़ों का इसलिए दुर्व्यवहार कि वे काले हैं, इत्यादि बातों की ओर देश का ध्यान खिंच गया। फिर लार्ड कर्ज़न ने बंग-भंग रद्द करने के बजाय लोकमत को कुचलने की कोशिशें कीं। फलत: सन 1905 ई. में बनारस में गोखले की अध्यक्षता में जो कांग्रेस अधिवेशन हुआ, उसमें यह साफ़ दिखायी देने लगा कि अब सुधारवादी नरम नीति से काम नहीं चलेगा, वरन् उसके लिए दूसरे उपायों को खोजना ज़रूरी है। उधर बंगाल की जनता ने आगे बढ़कर विदेशी माल के बहिष्कार का एक विशाल आन्दोलन खड़ा कर दिया। उसके अगले साल के कांग्रेस अधिवेशन ने राष्ट्रीय आन्दोलन को मान्यता भी दी। यह अधिवेशन सन् 1906 में महर्षि दादाभाई नौरोजी की अध्यक्षता में हुआ था।

धीरे-धीरे अब कांग्रेस के भीतर दो दल सामने आये—एक नरम, दूसरा गरम।

गरम दल का नेतृत्व लोकमान्य तिलक कर रहे थे। नरम दल का नेतृत्व बैरिस्टर [illegible]

[illegible] कि जनता मे बड़े पैमाने पर सगठित रूप से आन्दोलन किया जाय, जिसमे ब्रिटिश माल के बहिष्कार को भी स्थान मिले। सन् 1907 मे सूरत मे कांग्रेस अधिवेशन हुआ। उसमे गरम और नरमदली लोगो के बीच न सिर्फ मतभेद हुआ, वरन् आपस मे झगड़ा हो गया। अधिवेशन भग हो गया। गरम दलवाले कांग्रेस से [illegible] मालवीय और फीरोजशाह मेहता [illegible] ध्येय की रूपरेखा निश्चित की। [illegible] ट्रमण्डल मे कैनाडा, आस्ट्रेलिया इत्यादि को डोमीनियन स्टेटस मिला हुआ है, उसी प्रकार ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत भारत को भी स्थान प्राप्त हो, तथा इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए वैधानिक पद्धति से कार्य किया जाय।

किन्तु, उधर तिलक ने देश को नारा दे दिया था—'स्वराज्य मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है'। देश का भविष्य तिलक के साथ था, यह बेचारे अंग्रेजो को क्या मालूम!

राष्ट्रीय चेतना का विकास : द्वितीय चरण

महात्मा गाँधी के महान् नेतृत्व मे राष्ट्रीय चेतना की लहरें अपार और दुर्निवार होने लगी। इस राष्ट्रपुरुष ने देश की आत्मा का प्रतिनिधित्व किया और अन्त मे स्वाधीनता दिलायी।

इस बीच अंग्रेज सरकार, एक ओर, जनता का भयानक दमन करती, तो दूसरी ओर, सम्प्रदायवादियो के जरिए देश म फूट फैलाती। आखिरकार देश को स्वाधीनता प्राप्त हुई। पाकिस्तान का निर्माण हुआ। इस प्रकार दक्षिण एशिया का एक बृहद भाग अंग्रेजो के पंजे से निकल गया।

तिलक के उग्रवादी रुख से चिढ़कर अंग्रेजो ने (उन्हे जेल मे तो कई बार डाला था) अब दूसरे तरीके इस्तेमाल किये। भारत का राष्ट्रवादी आन्दोलन अब तिलक से प्रेरणा पा रहा था। उधर लाला लाजपतराय शेरे पंजाब कहलाते थे। बंगाल में पाल महोदय का प्रभाव विस्तृत हो गया था। लाल-बाल-पाल गरमदली लोग थे, जो प्रथम अखिल भारतीय नेताओ के रूप मे सामान्य जनता में सम्मानित हुए।

महत्व की एक बात और है। प्राचीन भारतीय धर्म तथा दर्शन के व्यापक अध्ययन के फलस्वरूप, भारत अपने को प्राचीन सास्कृतिक गौरव से सम्बद्ध करने

लगा। उसी प्रकार मुस्लिम धर्म-दर्शन आदि के अध्ययन के फलस्वरूप, मुस्लिम विद्वान भी अपने को पूर्वतर इस्लामिक अभ्युत्थान से सम्बद्ध करने लगे। इस प्रकार हमारे राष्ट्रवाद में हिन्दू सस्पर्श और मुस्लिम सस्पर्श उत्पन्न हुआ।

यह सम्भव था कि ये पुनरुत्थानवादी प्रवृत्तियाँ हिन्दू और मुस्लिम रहते हुए भी परस्पर मैत्री के सूत्र में गुँथी-बिंधी रहती। परन्तु अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त युवक अंग्रेजों के बनाये इतिहास-ग्रन्थ पढ़ते थे। इन ग्रन्थों में हिन्दुओं और मुसलमानों की भावनाएँ एक दूसरे के विरुद्ध उभाड़ने की कोशिश की गयी थी। अंग्रेज़ों की नीति ही यह थी कि इन दोनों जातियों में कभी एकता न हो।

उन्होंने हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य का प्रचार करके दोनों जातियों में मनोमालिन्य बढ़ाने का प्रयत्न किया। किन्तु बंग-भंग विरोधी आन्दोलन ने हिन्दू-मुस्लिम एकता कायम कर दी थी। इसे तोड़ने के लिए ज़रूरी था कि कोई नयी संस्था कायम की जाय। फलतः अंग्रेजों ने अपने एक खास आदमी, सर आगाखान को चुना। उसके हाथों सन् 1906 में मुस्लिम लीग की स्थापना की गयी।

अंग्रेजों के विरुद्ध आन्दोलन बढ़ता ही गया और जनता में असन्तोष पैदा होने के नये-नये कारण सामने आने लगे। सरकार ने कुछ समाचार-पत्रों की उग्र भाषा देखकर उनके खिलाफ मामले चलाये। इस बीच रावलपिण्डी, लाहौर तथा पंजाब के अन्य स्थानों में सरकार के विरुद्ध उग्र प्रदर्शन हुए। सरकार ने लाला लाजपत राय और अजीत सिंह को जेल में डाल दिया। उधर बंगाल के मुजफ्फरपुर में बम का विस्फोट हुआ। इस विस्फोट के फलस्वरूप कुछ अंग्रेज मारे गये। भारत में वह पहला राजनैतिक बम विस्फोट था।

इस बम विस्फोट पर तिलक ने अपने साप्ताहिक पत्र केसरी में एक राजनैतिक लेख लिखा, जिसके फलस्वरूप उन पर राजद्रोह का मुकदमा चलाया गया। उन्हें छः साल के लिए माण्डले जेल भेज दिया गया। उधर, प्रेस एक्ट के द्वारा, सरकार की उग्र-आलोचना पर पाबन्दी लगा दी गयी। सभाओं पर भी प्रतिबन्ध लगाये गये।

इस प्रकार भारत में अंग्रेजों ने दमन द्वारा राष्ट्रीय आन्दोलन को कुचलना चाहा। लेकिन भीतर ही-भीतर आग सुलगती रही।

एक ओर दमन किया गया। किन्तु, दूसरी ओर, अंग्रेजों ने ऐसे भारतीयों को जो उनसे हाथ मिलाने के लिए तैयार हों, उन्हें अपने साथ लाने के लिए कुछ वैधानिक सुधार किये। मोर्ले मिण्टो सुधार के अन्तर्गत, प्रान्तीय विधान सभायें बनी, प्रान्तीय मन्त्रिमण्डल बनाने की व्यवस्था की गई। उसी प्रकार केन्द्र में एक लेजिस्लेटिव एसेम्बली तथा कौंसिल ऑफ स्टेट—राज्य परिषद—बनायी गयी। ये सुधार निःसार थे। सारी शक्ति गवर्नरों के और गवर्नर-जनरल (अब वह वाइसराय कहलाने लगा था) के हाथ में थी।

जलियाँवाला बाग

उधर ब्रिटिश सरकार ने डॉक्टर सत्यपाल और डॉक्टर सैफुद्दीन किचलू को गिरफ्तार करके प्रान्त से निकाल दिया था। इसके विरोध में अमृतसर में लोगों ने प्रदर्शन किया। दूसरे दिन, एक मेले में बहुत-से गाँव वाले जमा हुए। ब्रिटिश सरकार ने सभाओं पर प्रतिबन्ध लगा दिया था। किन्तु, बावजूद इसके

सभा हुई। ओ-डायर नाम के अंग्रेज जनरल ने मानव-हत्या का एक कलंकपूर्ण उदाहरण प्रस्तुत किया। उसने शान्तिपूर्ण जन-समूह पर 1605 गोलियाँ दागीं। सरकारी आँकड़ों के अनुसार, 378 लोग वहीं-के-वहीं मर गये, और 1200 के ऊपर बुरी तरह जख्मी हुए। जो जख्मी हुए उन्हें अस्पताल नहीं ले जाया गया। इस मानव-हत्या की अनुमति पंजाब सरकार ने दे रखी थी। ओ-डायर का बाल-बाँका नहीं हुआ। यही नहीं, जलियाँवाला बाग की घटना सुनकर, जब गुरुदासपुर के लोग उत्तेजित होकर सड़कों पर जमा होने लगे तो उस नगर पर और समीप-वर्ती गाँवों पर बम बरसाये गये और लगभग ढाई महीने मार्शल लॉ लगा दिया गया। यह घटना सन् 1920 की है।

खिलाफत आन्दोलन

सारे देश में, अंग्रेजों के विरुद्ध रोष छा गया। सब जगह उनका धिक्कार किया गया। इसी बीच देश में खिलाफत आन्दोलन चल पड़ा। तुर्किस्तान का बादशाह, इस्लाम के अन्तर्गत, 'खलीफा' (सर्वोच्च धर्माधिपति) भी था। सन् 1914 की लड़ाई में जर्मनी के साथ तुर्किस्तान भी हार गया था। इसलिए, अंग्रेजों ने तुर्किस्तान के बादशाह के अधिकार कम कर दिये थे। खिलाफत आन्दोलन भारतीय मुस्लिम भावनाओं के अनुकूल था। उसका उद्देश्य तुर्की के साथ किये गये ब्रिटिश दुर्व्यवहार का विरोध करना था। उसके नेता मुहम्मद अली और शौकत अली थे। महात्मा गाँधी, जो पहले दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों को वर्ण द्वेष के विरुद्ध मानवोचित अधिकार दिलाये जाने के सम्बन्ध में आन्दोलन कर रहे थे, अब भारत आ चुके थे। देश के महान् नेता लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक की (सन् 1920 में) मृत्यु हो चुकी थी। महात्मा गाँधी ने खिलाफत आन्दोलन का समर्थन किया। वे अब अली-बन्धुओं के साथ देश में घूम-घूमकर राष्ट्रीय प्रचार करने लगे। हिन्दू-मुस्लिम एकता स्थापित हुई और राष्ट्रीय चेतना की लहरें देश-भर में फैलने लगीं।

असहयोग और सत्याग्रह

इस आन्दोलन का ऐतिहासिक महत्त्व है। उसके दौरान में महात्मा गाँधी ने जनता के सामने तीन सिद्धान्त—(1) असहयोग, (2) सत्याग्रह और (3) अहिंसा—रखे। असहयोग का अर्थ है—अंग्रेजों की कोर्ट-कचहरियों, नौकरियों और शिक्षालयों को त्याग देना, प्रशासन कार्य में अंग्रेजों से कोई सहयोग न करना। यह असहयोग का सिद्धान्त था। अंग्रेजों को कर न देना, दमन का सामना शान्तिपूर्वक करते जाना—यह सत्याग्रह है। असहयोग और सत्याग्रह अहिंसात्मक पद्धति ही से होना चाहिए। उन दिनों बारडोली का सत्याग्रह बहुत गूँजा।

गाँधीजी का यह आन्दोलन सन् '20 का आन्दोलन कहलाता है। सारे देश में महात्मा गाँधी के नेतृत्व में यह आन्दोलन चला। किन्तु कुछ जगहों पर उसका रूप अहिंसात्मक न रह सका, विशेषकर, चौरीचौरा में। गाँधीजी ने अहिंसा-सिद्धान्त का पालन न होते देख उसे वापिस ले लिया।

अंग्रेज तो मौका देख ही रहे थे। आन्दोलन ढीला पड़ते ही उनकी प्रेरणा से स्थान-स्थान पर हिन्दू मुस्लिम दंगे करवाये गये (एक भयानक दंगा मलाबार में हुआ)। उधर राष्ट्रीय नेताओं को जेल में ठूँस दिया गया।

अंग्रेजो ने महात्मा गाँधी को गिरफ्तार कर छ साल के लिए जेल मे डाल दिया। मुहम्मद अली तथा शौकत अली को लम्बी सजा दी गयी। इधर एक राष्ट्रीय नेता चित्तरंजन दास कैद से छूटे। उन्होंने नयी बनायी गयी स्वराज्य पार्टी के द्वारा विधान-मण्डलो मे जाकर, जनता की आवाज बुलन्द करने की ठानी। सन 1924 म जेल मे महात्मा गाँधी बीमार पड गये, इसलिए उन्हें छोड दिया गया। उधर स्वराज्य पार्टी केन्द्रीय ऐसेम्बली मे जाकर जनता की भावनाएँ प्रकट करने लगी।

नेहरू कमेटी

कांग्रेस ने पण्डित जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व मे एक कमेटी कायम की थी, जिसका उद्देश्य स्वराज्य की रूपरेखा बनाना था। सन् 1929 म कांग्रेस ने घोषणा कर दी कि अगर भारत को एक साल के भीतर 'स्वराज्य' (डोमीनियन स्टेटस) नहीं दिया गया तो वह पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्ति का प्रस्ताव पास करेगी।

उन दिनो अंग्रेजो ने भारतीय स्वायत्तशासन-सम्बन्धी प्रस्तावों के बारे म जाँच-पडताल के लिए साइमन कमीशन नियुक्त किया था। वह सालो तक काम करता रहा, नतीजा कुछ न निकला। पंजाब की जनता ने साइमन कमीशन का बहिष्कार किया। उग्र प्रदर्शन हुए। लाठी-चार्ज हुआ। इसके फलस्वरूप पंजाब के वीर नेता लाला लाजपत राय बुरी तरह घायल हुए। शीघ्र ही उनका देहान्त हो गया। सारे देश का वातावरण गरम हो गया। आतंकवादी प्रवृत्तियाँ बढने लगी। इसी बीच किसी आतंकवादी ने केन्द्रीय एसेम्बली म पब्लिक गैलरी म से बम का गोला फेंक दिया।

इस उत्तेजित वातावरण पर ठण्डा पानी डालने के लिए, अंग्रेजो ने इंगलैण्ड म गोलमेज परिषद् आयोजित किये जाने का ऐलान किया। महात्मा गाँधी ने भी घोषित किया कि अगर सन् 30 के भीतर डोमीनियन स्टेटस नही दिया गया तो सत्याग्रह शुरू कर दिया जायेगा।

सविनय अवज्ञा

महात्मा गाँधी ने अब नमक सत्याग्रह शुरू किया। अंग्रेजो ने नमक पर कर लगाया था। नमक सम्बन्धी कानून को तोडने के लिए गाँधीजी स्वयंसेवको के एक दल के साथ दांडी गये और वहाँ जाकर कानून भंग किया। उस दिन से सरकारी कानून तोडने की एक मुहिम चल पडी। हजारो स्वयंसेवक देश-भर मे कानून तोडने लगे और जेल गये। उसके बाद जंगल सत्याग्रह शुरू हुआ। ब्रिटिश माल के बहिष्कार का आन्दोलन देशव्यापी हो गया। मद्य निषेध का आन्दोलन भी जोरो से चल पडा। उधर अंग्रेज सरकार ने जुलूस निकालने, सभा आयोजित करने, इत्यादि पर भी कई [illegible]

कारिणी ग़ैरकानूनी बना दी गयी। कांग्रेस के सदस्यो पर मुकदमे चला-चलाकर उन्हें जेल मे डाला जाने लगा।

उधर, इग्लैण्ड मे लेबर पार्टी के नेता मैक्डोनल्ड प्रधानमन्त्री थे। कुछ नेताओं तथा अग्रेजो की कोशिश से यह सुझाव सामने आया कि प्रान्तीय विधान-सभाओं तथा केन्द्रीय विधान-सभा को अधिक अधिकार दिय जाये और काग्रेस वैधानिक तरीके से काम करे। इसलिए, लन्दन मे एक गोलमेज परिषद बुलायी गयी। काग्रेस ने सत्याग्रह बन्द कर दिया और महात्मा गांधी आदि नेता गोलमेज परिषद् मे भाग लेने के लिए लन्दन गये। इस गोलमेज़ परिषद् को दूसरी गोलमेज परिषद् कहते हैं। इस परिषद मे महात्मा गांधी काग्रेस की तरफ से प्रतिनिधि थे।

अग्रेज तो सिर्फ समय चाहते थे जिसमे कि वे भारत म ऐसी शक्तियों को प्रोत्साहन दे सकें कि जो शक्तियां बढते हुए राष्ट्रीय आन्दोलन की प्रगति मे बाधा डाल दें। हुआ यही, गोलमेज परिषद मे हिन्दू प्रतिनिधित्व, मुस्लिम प्रतिनिधित्व का प्रश्न उठाया गया, यहां तक कि अस्पृश्यों को अलग प्रतिनिधित्व दिये जाने का प्रस्ताव भी रखा गया। भारत को अनेक विभेदों म डालकर, उसकी राजनैतिक एकता को छिन्न-भिन्न करने का यह तरीका था। गांधीजी निराश होकर गोलमेज परिषद से लौट आये। देश मे आते ही गाधीजी को जेल म डाल दिया गया। नेहरू को भी जेल दी गयी। सरकार अब विशेष आदेशों-अध्यादेशो के द्वारा राज करने लगी। लगभग 30 हजार नेता जेल पहुंचे। किन्तु धीरे-धीरे सत्याग्रह आन्दोलन शिथिल होता चला गया।

कारावास मे गांधीजी ने आत्मशुद्धि के लिए अनशन शुरू किया। इस भय स कि कही गांधीजी को कुछ हो गया तो जनता भडक उठेगी, उन्हे जल स रिहा कर दिया गया। गांधीजी ने बाहर आकर, कुछ दिनो बाद सामुदायिक सत्याग्रह बन्द करके व्यक्तिगत सत्याग्रह शुरू किया।

उधर, अग्रेज सरकार ने एक नया विधान लागू किया। अब भारत क सभी प्रान्तो मे विधान-सभाएँ बन गईं। उन्हे पहले से ज्यादा अधिकार दिय गय। इन प्रान्तो के ऊपर दो केन्द्रीय सभाएँ—विधान-सभा और राज्य-परिषद—बनी। उन्हे पहले से अधिक अधिकार दिय गये। यह प्रस्तावित हुआ कि संपूर्णत भारतीय मन्त्रिमण्डल बने जो विधान-सभा के प्रति उत्तरदायी रहे। किन्तु महत्त्व की बात यह है कि इन सभाओ को प्रतिरक्षा विभाग, विदेश विभाग ईसाई धर्म विभाग नही दिये गये, तथा विभिन्न देशी रियासतो के प्रश्नो पर विचार करने के अधिकार भी इन्हे नही दिये गये। दूसरी ओर, गवर्नर-जनरल के भी अधिकार बढा दिये गये। वह मन्त्रिमण्डल की सलाह को ठुकरा सकता था। ब्रिटिश कारखानो को नुकसान पहुँचानेवाले या उनके व्यापार मे बाधा डालनेवाले प्रस्ताव विधान-सभा ने पास किये तो गवर्नर-जनरल उन्हे नामजूर कर सकता था।

सिर्फ एक बात थी। प्रत्यक्ष मतदान पद्धति के स्थान पर अप्रत्यक्ष मतदान पद्धति अमल मे लायी गई। यह अच्छी बात थी, किन्तु वास्तविक अधिकार तो अग्रेजो के ही हाथ मे रहे आये। कुछ ऐसे विषय भारत को दे दिये गये, जिनका सम्बन्ध देश के भीतरी मामलो से था (ब्रिटिश व्यापार, देशी रियासतें आदि को छोडकर), जैसे शिक्षा, राजस्व इत्यादि। इसके अतिरिक्त, सारे ब्रिटिश स्वार्थों को लोक-प्रतिनिधियो के प्रभाव से मुक्त रखा गया था। उसी प्रकार, प्रान्तीय विधान-

सभाओं में मुसलमानों, अछूतों, सिक्खों, ईसाइयों, ऐंग्लो-इण्डियनों, यूरोपीयनों और स्त्रियों के लिए पहले ही से स्थान निश्चित कर दिये गये थे। अंग्रेज जातीय आधार पर निर्वाचन चाहते थे। वे सम्प्रदायवाद को अधिक-से-अधिक बढ़ावा देना चाहते थे, जिससे कि वे एक गुट को दूसरे गुट के खिलाफ करते हुए, अपना शासन कायम रख सकें।

कांग्रेस ने एक बार अपनी शक्ति नापने की सोची। प्रान्तीय विधान-सभाओं के लिए कांग्रेस ने चुनाव लड़े। भारत के लगभग सभी प्रान्तों में, यहाँ तक कि सीमा प्रान्त में भी, उसके मन्त्रिमण्डल बन गये। यह साबित हो गया कि मुस्लिम क्षेत्र में भी, सब जगह, मुस्लिम लीग मुसलमानों का प्रतिनिधित्व नहीं करती।

इधर कांग्रेस को शासन का भी कुछ अनुभव प्राप्त हो गया। राज-कर्मचारी अब कांग्रेसी मन्त्रियों को सलाम करने लगे। देश में एक नये वातावरण की सृष्टि हुई।

इसी बीच, देश में एक ओर मुस्लिम लीग के नेतृत्व में सम्प्रदायवाद खूब बढ़ा। राष्ट्रीय नेताओं ने लीगी नेता जिन्ना से बार-बार समझौता करना चाहा, लेकिन असफलता ही मिलती गयी।

फलतः, हिन्दू सम्प्रदायवाद भी बहुत बढ़ गया। अब मुस्लिम लीग ने पाकिस्तान का नारा लगाया। राष्ट्रीय आन्दोलन ने इस नारे का विरोध किया। जानबूझकर जगह-जगह साम्प्रदायिक दंगे कराने की कोशिश की गयी। इनमें अंग्रेज सरकार का अप्रत्यक्ष-सहयोग रहा आया।

अन्तर्राष्ट्रीय घटना-चक्र

कांग्रेस ने उन राष्ट्रों के प्रति अपनी सहानुभूति प्रकट की जो अपनी आजादी के लिए लड़ रहे थे। सैनिक तानाशाह फ्रैंको ने स्पेन की जनतन्त्रवादी सरकार के विरुद्ध विद्रोह किया। हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन ने जनतन्त्रवादी स्पेन का समर्थन किया। उसी प्रकार इटली के फासिस्ट तानाशाह मुसोलिनी ने अफ्रीका के एक छोटे देश अबीसीनिया पर हमला किया, उसी तरह जापान ने चीन पर हमला करके उससे मंचूरिया छीन लिया। अब जापान ने आगे चलकर खास चीन के दूसरे हिस्से भी कब्जे में कर लिये। कांग्रेस तथा पूरे राष्ट्रीय आन्दोलन की सहानुभूति चीन के साथ रही।

दूसरा विश्वयुद्ध

नात्सी तानाशाह हिटलर के नेतृत्व में जर्मनी ने, इटली और जापान के साथ एक होकर, यूरोप में जबर्दस्त लड़ाई छेड़ दी। फ्रांस तथा अन्य राष्ट्र उसके कब्जे में चले गये, ब्रिटेन पर भी हमला किया। बाद में रूस पर भी वह चढ़ दौड़ा। इस प्रकार, एक ओर, ब्रिटेन, अमरीका और रूस का एक पक्ष, तथा, दूसरी ओर, जर्मनी, जापान और इटली का दूसरा पक्ष—इन दो के बीच भयानक युद्ध शुरू हुआ। (यह घटना सन् 1939-45 की है)।

लड़ाई छिड़ती देखकर अंग्रेजों ने गवर्नर जनरल को अधिक अधिकार दे दिये। रही-सही ताकत भी जब अंग्रेजों के हाथ में आ गयी, तो कांग्रेस ने मन्त्रिमण्डल छोड़ दिये। उधर ब्रिटिश सरकार के एक प्रतिनिधि, सर स्टैफर्ड क्रिप्स, अंग्रेजों की

तरफ से एक नई योजना लेकर आये, जो यदि स्वीकृत की जाती तो हिन्दुस्तान के दो नही अनेक टुकडे हो जाते। कांग्रेस ने उसे अस्वीकार कर दिया।

भारत छोड़ो आन्दोलन

शीघ्र ही 'भारत छोडो' आन्दोलन शुरू हुआ। अंग्रेजो ने कांग्रेस को गैरकानूनी करार दिया। सब नेताओ को गिरफ्तार कर जेल मे डाल दिया। साम्प्रदायिक उत्तेजना का वातावरण बनाया गया। सिन्ध और सीमा प्रान्त म हिन्दू-मुस्लिम दगे कराये गये। इधर जनता एक होकर 'भारत छोडो' आन्दोलन चलाती जा रही थी। राष्ट्रीय आन्दोलन की उग्रता बढती ही जा रही थी। अंग्रेजो ने आन्दोलनकारियो को बहुत ही पशुतापूर्वक कुचला। आष्टी और चिमूर नामक गांवो में उन्होने अत्याचार की पराकाष्ठा कर दी।

बगाल का अकाल

इसी बीच बगाल म अकाल पडा। युद्ध के कारण भाव मँहगे हो गये थे। फसल खूब अच्छी हुई थी। किन्तु कीमतें इतनी बढ गयी थी कि गरीब किसानो के पास अनाज खरीदने के लिए पैसा नही रहा। शहरो और गांवों के गरीब मरने लगे। गरीब औरतें अपने बच्चे बेचने लगी। लाखो लोग भूख से मर गये। भारतीय जनता ने देश-भर म चन्दा करके उसे बगाल पहुँचाया। अंग्रेजो के विरुद्ध वातावरण अब और प्रक्षुब्ध हो उठा।

महात्मा गांधी के अनन्य सहचर महादेव देसाई और गांधीजी की पत्नी सौ कस्तूरबा जेल मे ही मर गयी। गांधीजी का स्वास्थ्य खराब हो गया। उन्हे जेल से रिहा कर दिया गया।

उधर जर्मनी रूस के भीतर तक घुस आया था। धीरे-धीरे रूसी सँभले, और उन्होने जर्मनी को पीछे ढकेलना शुरू किया। क्रमश', रूसी बर्लिन तक आने लगे। इधर पश्चिमी देशो की सेनाएँ फ्रास मे उतरी और अन्त मे धीरे-धीरे हिटलर के जर्मनी का खात्मा हो गया। इटली भी हार गया। जापान के दो नगरो, हिरोशिमा और नागासाकी पर अमरीका ने ऐटम बम डाला। जापान ने घुटने टेक दिये।

अब दुनिया मे दो देश सर्वाधिक बलिष्ठ दिखायी दिये—रूस और अमरीका। भारत मे अंग्रेजो के खिलाफ वातावरण बनता रहा। सुभाषचन्द्र बोस ने भारत के बाहर जाकर अपनी एक सेना बनायी थी, जिसे इण्डियन नेशनल आर्मी कहते है। युद्ध समाप्त होने पर सैनिको को पकड लिया गया और उन पर मुकद्दमे चलाये गये, जिसका परिणाम यह हुआ कि देश भर मे जोश छा गया। उधर बम्बई के पास की जहाजी सेनाओ के भारतीय अफसरो ने विद्रोह कर दिया, और उत्तर प्रदेश तथा बिहार की पुलिस ने हडताल कर दी।

जब फौज और पुलिस मे भी विद्रोहपूर्ण भावनाएँ फैलने लगी और भारत की उत्तरी सीमा पर रूस प्रबल हो उठा तब अंग्रेजो ने स्वाधीनता प्रदान की। स्वाधीनता प्रदान करने के पहले उन्होन देश के दो टुकडे कर दिये। कांग्रेस के कुछ नेताओ ने, जिनमे महात्मा गांधी और मौलाना अबुलकलाम आजाद थे, भारत-विभाजन का विरोध किया। किन्तु देश स्वतन्त्रता के लिए लालायित था। इसलिए पूरी परिस्थिति देखकर, भारत-विभाजन स्वीकार कर लिया गया। इस प्रकार

15 अगस्त 1947 के दिन भारत को स्वाधीनता प्राप्त हुई।

भारत से अंग्रेज़ी राज समाप्त हो गया। प्रथम केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल मे पण्डित जवाहरलाल नेहरू प्रधानमन्त्री बने।

पाकिस्तान बनने के कारण देश मे साम्प्रदायिक दगे हुए। उधर पाकिस्तान मे भी भयानक दगे हुए। वहाँ से लाखो हिन्दू भारत की तरफ भागे, और यहाँ से लाखो मुसलमान पाकिस्तान चले गये। इस भगदड मे असीम हानि हुई, बच्चे खो गये, औरतें लापता हो गयी, सम्पत्ति का नाश हुआ।

प्रथम मन्त्रिमण्डल को सबसे पहले शरणार्थियो की समस्या तथा देश मे शान्ति और सुव्यवस्था की समस्या का सामना करना पडा। उधर सरदार वल्लभभाई पटेल के नेतृत्व मे देशी राज्यो को भारत मे विलीन कर लिया गया। किन्तु पाकिस्तान काश्मीर को हथियाना चाहता था, इसलिए उसने काश्मीर के एक हिस्से को अपने कब्जे मे कर लिया। काश्मीर की बहुसख्यक जनता मुस्लिम होते हुए भी राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन के साथ रही आयी। वहाँ कभी भी मुस्लिम सम्प्रदायवाद का प्रभाव नही था।

इधर उत्तेजित होकर एक हिन्दू सम्प्रदायवादी ने प्रार्थना सभा मे जाते हुए महात्मा गाँधी को अपनी गोली का शिकार बनाया। परिणामस्वरूप, देश-भर म शोक छा गया, दुःख की काली छाया विस्तीर्ण हो उठी।

यह घटना 30 जनवरी 1948 की है।

जनवरी सन् 1950 मे भारत मे नया सविधान लागू हुआ। भारत एक सार्वभौम गणतन्त्र राज्य बन गया। भारत के इतिहास में एक महान् परिवर्तन हो गया।

राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी

महात्मा गाँधी ने देश की स्वाधीनता, विश्व की शान्ति और मैत्री तथा अन्याय के विरुद्ध अहिंसात्मक प्रतिरोध और मानव-हृदय को नैतिक बल प्रदान किया। उन्होंने देश और विश्व के बडे बडे मनीषियो के विचारो को अपने मे रग दिया, भारतीय जनता को नये आध्यात्मिक सस्कार प्रदान किये। देश की महत्तम विभूतियो म महात्मा गाँधी का नाम है।

राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी

हज़ारो वर्षों मे एकाध बार जो आदमी नजर आते हैं, उनमे महात्मा गाँधी का नाम आता है। क्यो? इसलिए कि उन्होने राजनैतिक उद्देश्यो की पूर्ति के लिए विशुद्ध नैतिक अस्त्रो का सफलतापूर्वक प्रयोग किया। 'अहिंसा तथा सत्याग्रह'— उनके ये दो प्रधान सिद्धान्त है, जिनके प्रयोग द्वारा उन्होने भारतीय स्वाधीनता

गाँधी ने ऐसी करारी चोट दी कि वह हिल गया।

महात्मा गाँधी ने अपने इस कार्य द्वारा विश्व-इतिहास मे एक महान् घटना उपस्थित कर दी। आज अमरीका और अफ्रीका की नीग्रो तथा अन्य पराधीन जातियाँ गाँधीजी के नैतिक अस्त्रो का प्रयोग करती है। महात्मा गाँधी के अहिंसा तथा सत्याग्रह के सिद्धान्त इतने सफल क्यो हुए?

महात्मा गाँधी न केवल अपने नैतिक सिद्धान्तो मे विश्वास करते थे, जनता की आध्यात्मिक और नैतिक शक्ति मे उनकी निष्ठा थी। उन्हे मालूम था कि जनता त्याग और बलिदान के उच्च आदर्शों का निर्वाह करते हुए एक-न-एक दिन भारत को स्वाधीन करायेगी ही। इसीलिए उन्होने निष्ठापूर्वक अपने को जनता का बना लिया। वे उसके अपने हो गये। वे झोपडियो में रहते, नगे पैर चलते, एक धोती-भर पहनते। जिस तरह भारत का दरिद्र-नारायण रहता है, उसी प्रकार उन्होने अपने को ढाल लिया।

हाँ, ढाल लिया! मोहनदास करमचन्द गाँधी के पितृश्री राजकोट रियासत के दीवान थे। उनके यहाँ सबकुछ था—धन, दौलत, पैसा, इज्जत और ताकत। गाँधीजी ने सबको ठुकरा दिया। अपनी आदतो को सुधारा, अपने आप पर काबू किया, स्वय को वशीभूत कर लिया। वे हृदय की शुद्धि के लिए अनशन करते। उपवास करते।

क्यो करते? इसलिए कि जब मन सुखेच्छाओ के वशीभूत रहता है तो कर्तव्य-कार्य करने के कठोर मार्ग पर नही चल सकता। इसीलिए, मन को वश मे रखना आवश्यक है। उसको मजबूत बनाने के लिए यह जरूरी है कि वह अपने सुख या दुख को न देखकर, दूसरो के दुख को देखे।

वैष्णव जन तो तेणे कहिए,
जे पीर पराई जाणे रे!

इस पराई पीर के पीछे, उन्होने अपना सबकुछ त्याग दिया। इसीलिए वे महात्मा थे। उनकी झोपडी मे हिन्दू, मुस्लिम, सिख, ईसाई सभी धर्मो के भजन और गीत, स्तोत्र और आयतें गूँजती रहती थी। सन् 1928 मे महात्मा गाँधी ने कहा था—'मैं इन निर्णयो पर आया हूँ: (1) सब धर्म सत्य हैं; (2) सब धर्मों मे कोई-न-कोई गलती है, (3) जैसा मुझे मेरा हिन्दू धर्म प्यारा है, वैसे ही मुझे सब धर्म प्यारे हैं।'

जिस समय महात्मा गाँधी राजनीति मे अवतीर्ण हुए उन दिनो देश की दशा क्या थी? जनता कष्ट मे डूबी हुई थी, लेकिन सिर ऊँचा नही कर सकती थी। शिक्षित मध्य-वर्ग को मालूम नही था कि वह किधर जाये। प्राचीन की ओर जाने मे उसकी आँखो से सामाजिक जीवन-लक्ष्य लुप्त हो जाता है। जो कुछ नवीन था, वह पश्चिम से मिला था, उसकी उस पर अटूट श्रद्धा न थी। सर्वोच्च रईस-ज़मीदार वर्ग अग्रेजो के आँचल मे दुबक गया था। उद्योगपति वर्ग अग्रेजो से नाराज था, लेकिन कर कुछ नही सकता था, क्योकि उसके प्रतिदिन के स्वार्थ अग्रेजो से लगे हुए थे। देश मे विफलता और उदासीनता का साम्राज्य था।

उस समय राजनीति दो ढंग की थी। या तो कांग्रेस-अधिवेशनों में प्रस्ताव पास करते रहिए और देश में भाषण देते जाइए, या आतंकवादी विस्फोट करते रहिए। दोनों प्रकार की राजनीति में सामान्य जनता को कहीं भी क्षेत्र नहीं मिलता था।

यद्यपि कांग्रेस जनतन्त्रात्मक संस्था थी, फिर भी वोट देने का अधिकार सीमित था और यह उच्चतर वर्गों के ही हाथ में था। महात्मा गांधी ने सबसे पहले कांग्रेस के विधान में संशोधन कर, उसे पूरी जनता के लिए, किसानों और मज़दूरों के लिए खुला कर दिया। उसमें किसान-ही-किसान आये, जिसमें मध्यवर्ग के लोग भी छिटके हुए दिखायी देते थे। कांग्रेस पर किसानों का प्रभाव बढ़ता चला गया। मज़दूर भी आये, किन्तु कम।

अब काम का नम्बर आया। आतंकवादी रास्तों का विरोध किया गया, पुराने शिकायती तरीके और उग्र भाषण छोड़कर, काम की एक नयी पद्धति अंगीकार की गयी। अंग्रेजों के प्रतिरोध के लिए, निर्भयता और सत्यनिष्ठा की बुनियाद पर, असहकार और सत्याग्रह का सिद्धान्त रखा गया।

कार्यक्रम दो प्रकार के थे : (1) शान्तिपूर्ण ढंग से, अहिंसात्मक पद्धति से, अंग्रेजों के आधिपत्य का प्रतिरोध, (2) समाज-सुधार तथा रचनात्मक कार्य—जैसे अस्पृश्यता का नाश, अल्पसंख्यकों की समस्याओं का समाधान, चर्खा चलाना तथा ग्रामीण उद्योगों को प्रोत्साहन देना इत्यादि।

उन दिनों सामान्य जनता पर अंग्रेजों की धाक थी, दबदबा था। विदेशी शासकों के कृपापात्र रहनेवालों का भी समाज पर खूब प्रभाव था। यह आवश्यक था कि जनता पर छायी हुई विदेशी धाक और दबदबे का, उसकी प्रतिष्ठा और साख का लोप हो, जनता के दिल खुलें, उसमें साहस उत्पन्न हो, वह निर्भय और सत्यपरायण बने। अंग्रेज सरकार की बुनियाद को खिसका देने के लिए ही महात्मा गांधी ने सबसे पहले विदेशी शासकों द्वारा दी गयी उपाधियों के त्याग का अनुरोध किया। लोग 'सर', 'रायबहादुर', 'खानबहादुर' और 'राय साहब' की उपाधियाँ एक के बाद एक छोड़ते चले गये। परिणाम यह हुआ कि जनता को यह प्रतीत हुआ कि ये उपाधियाँ नैतिक अधःपतन की, मानसिक दासता की, सूचक हैं। ये उपाधियाँ भद्देपन का लक्षण हैं, निर्लज्जता की निशानी हैं। जनता पर से अंग्रेजों की धाक उड़ गयी, उनकी प्रतिष्ठा जाती रही, लोग निर्भय होने लगे। जनता के अनुकूल एक नया वातावरण सामने आया। महात्मा गांधी के जीवन का अनुकरण करते हुए, खाते-पीते लोग सादगी से रहने लगे। धनी, सम्पन्न वर्ग के लोगों ने भी सादगी से रहना शुरू किया। और इस प्रकार से सामान्य जनता के समान दिखायी देने लगे। गांधीजी ने जीवन के नये आदर्श सामने रखे, पुराने मिट गये।

अब तक राजनीतिज्ञ शहरों में लम्बे-चौड़े भाषण देता था। किन्तु अब महात्मा गांधी ने बड़े-बड़े नेताओं को सादगी सिखाकर उन्हें गाँवों में भेजना शुरू किया, जिससे कि वे राष्ट्रीय मुक्ति का सन्देश गाँववालों को दे सकें। इस प्रकार ग़रीब जनता का प्रभाव कांग्रेस पर बढ़ता गया और उसके उत्थान को लक्ष्य में रखा गया। गाँवों और कस्बों में नया जीवन लहराने लगा।

भारत के सम्बन्ध में गांधीजी की कल्पना क्या थी? "मैं ऐसे भारत के लिए काम करूँगा जिसमें ग़रीब-से-ग़रीब यह महसूस करेगा कि यह उसका देश है और

जिसके निर्माण में उसका भी प्रभावशाली हाथ है। ऐसा भारत जिसमें न उच्च वर्ग है, न निम्न वर्ग, जिसमें अस्पृश्यता का अभिशाप अथवा उत्तेजक मद्यों या बूटियों के अभिशाप को कोई स्थान नहीं है, जहाँ स्त्रियों को वही अधिकार है जो पुरुषों को, यह मेरे स्वप्नों का भारत है।'

ऐसी स्थिति में, महात्मा गाँधी भारतीय जनता को एक चुम्बक की भाँति अपने पास खींच लेते, उन्हें मन्त्रमुग्ध कर देते। वे व्यक्ति को समाज से, प्राचीन को भविष्य से, जोड़ रहे थे। वे जनता को स्वावलम्बन, आत्मनिर्भरता, प्रेम, सद्भावना, मानव-एकता तथा सादगी सिखाते थे।

हाँ, धनी और अंग्रेजी तरीके से जिन्दगी बितानेवाले लोगों को गाँधीजी का रास्ता कठिन मालूम हुआ, लेकिन गरीब जनता को बहुत आसान लगा। महात्मा गाँधी ने जनता के साथ अपने को एकाकार कर लिया। जनता का उत्थान उनका प्रथम लक्ष्य हो गया, धर्म उससे गौण रहा।

महात्मा गाँधी ने कहा, 'आधी भूखी जनता कोई धर्म नहीं रख सकती न कोई कला, न कोई संगठन।' 'मेरे लेखे करोड़ों भूखे लोगों को जो उपयोगी दिखायी दे वह सुन्दर है, और सब जीवन का सारा सौन्दर्य और अलंकरण आप ही-आप अनुगत होगा। मैं ऐसी कला और साहित्य चाहता हूँ जो करोड़ों जनता से बोल सके।'

पहली बार, भारत के इतिहास में करोड़ों भूखे जनों को महत्त्व देनेवाला, इनका सगा बननेवाला, एक व्यक्ति सम्मुख आया, जिसने उसी गरीब दबी-कुचली जनता को नैतिक साहस प्रदान करके क्या-का-क्या बना दिया! उस नैतिकतापूर्ण जन-शक्ति के आघात से, ब्रिटिश साम्राज्य चूर-चूर हो गया। नये भारत के उस प्रणेता की मृत्यु भी उसी शहीदाना तरीके से हुई। बिस्तर पर मरने या चलते हुए हार्टफेल होने के बजाय, वह महान् आत्मा हमारा राष्ट्रपिता रामनाम का पाठ करते हुए एक तुच्छ हिन्दू सम्प्रदायवादी की गोली का शिकार हुआ!

भारत ही नहीं, विश्व-भर ने उसकी मृत्यु का शोक मनाया। भारत में तीस जनवरी उन्नीस सौ अड़तालीस का दिन काली छायाओं में डूब गया था।

भारत की स्वाधीनता का सूर्य

प्रधानमन्त्री पण्डित जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व में भारतीय जनतन्त्र की प्रतिष्ठा हुई। भारत उत्तरोत्तर प्रगति करता गया। आज हमारा देश विश्व में सम्मानित होता है और उसकी आवाज को ध्यान से सुना जाता है। इसका मूल कारण पण्डित नेहरू का महान् व्यक्तित्व और नेतृत्व है। पण्डित नेहरू की नीति विश्व में अधिकाधिक सद्भावना तथा मैत्री के प्रसार के लिए है। यह आवश्यक है, भय से विश्व मुक्त हो। शान्ति के वातावरण में रहकर ही, विश्व और भारत उन्नति कर सकता है। पण्डित नेहरू के पास देश का एक स्वप्न है। भारत शक्तिशाली

बने—आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर हो, सम्पन्न हो, जनता शिक्षित, सुसंस्कृत बने।

भारत की स्वाधीनता विश्व के इतिहास मे एक महान् घटना है। प्रचण्ड शक्तिशाली ब्रिटिश साम्राज्य भारत की चोट से तिलमिलाकर छिन्न-भिन्न होन लगा। शीघ्र ही, विश्व के अन्य राष्ट्र, ब्रिटिश, फ्रेंच, डच साम्राज्यो से मुक्ति पान लगे। भारत के स्वाधीनता-युद्धो से इन्हे भी प्रेरणा मिली। भारत के साथ ही, सीलोन और ब्रह्म देश भी स्वाधीन हो गया।

इधर, द्वितीय विश्व युद्ध के विजेता देश रूस और अमरीका के बीच प्रतिद्वन्द्विता उठ खडी हुई। यूरोप और एशिया म कई देश साम्यवादी हो गये। एक गुट रूस का हुआ। दूसरा, पश्चिमी शक्तियो का, जिसका नेतृत्व अमरीका करता था। दोनो ने अपनी-अपनी शक्ति का विकास करते हुए, अणुबम, हायड्रोजन बम, राकेट आदि का निर्माण किया।

अपने देश के हितो को ध्यान मे रखकर, दोनो प्रतिद्वन्द्वी देशो के बीच भारत ने तटस्थता की नीति बरती। साथ ही, विश्व शान्ति और नि शस्त्रीकरण की दिशा मे भारत ने प्रयत्न किया। भारत ने सयुक्त राष्ट्रसघ के हाथ मजबूत किये। इस प्रकार हमने विश्व मे युद्ध के वातावरण को घटाने के लिए, नैतिक वातावरण का सृजन करने का प्रयत्न किया। भारत ने 'पचशील' नामक सिद्धान्तो को विश्व के सम्मुख रखा, जिसके अन्तर्गत यह निश्चित किया गया कि एक देश दूसरे की स्वाधीनता का सम्मान करे और उसकी आन्तरिक राजनीति मे हस्तक्षेप न करे।

किन्तु, भारत तब तक अपनी शक्ति नही बढा सकता था, जब तब वह आर्थिक दृष्टि से भी आत्मनिर्भर नही हो जाये। कृषि तथा उद्योग के विकास के लिए, भारत-सरकार ने पचवर्षीय योजनाएँ कार्यान्वित की, जिसके फलस्वरूप देश म भिलाई, राउरकेला, दुर्गापुर, आदि स्थानो पर लोहे के कारखान स्थापित किये गये। हीराकुण्ड और भाखरा नांगल जैस बांध बनाये गये, जिनके उपयोग से सिंचाई तथा विद्युत् निर्माण किया जाने लगा। बिजली की भारी मशीनें बनाने, रेलवे इजन बनाने, पेनिसिलिन नामक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण औषधि बनाने, इत्यादि के कारखाने खुले। भारत का औद्योगिक विकास और विस्तार होने लगा।

उधर, नये-नये विश्वविद्यालय और कालेज खुले। भारत के लोग वैज्ञानिक तथा औद्योगिक प्रशिक्षण के लिए रूस और अमरीका जाने लगे। भारत की सही-सही विदेश नीति और सही-सही राष्ट्र-निर्माण नीति के फलस्वरूप, भारत की प्रतिष्ठा विश्व मे बढती गयी। रूस के सर्वोच्च नेता ख्रुश्चेव, बुलगैनिन तथा अमरीका के राष्ट्राध्यक्ष आइज़ेनहॉवर ने भारत की भेंट की, दौरा किया। वे भारत की प्रगति मे बहुत प्रभावित हुए।

सन् 1961 के दिसम्बर म भारत ने गोवा लिया, और इस प्रकार साढे चार सौ साल से चले आ रहे पुर्तगीज साम्राज्य का भारत से लोप हो गया। काश्मीर का एक भाग जो पाकिस्तान ने हथिया लिया, और काश्मीर का उत्तरी सीमान्त का कुछ हिस्सा जो चीन ने ले लिया—ये समस्याएँ अभी बची हुई हैं। धैर्य और शान्ति, सद्भावना और शक्ति, मैत्री और बल दोनो के प्रयोग से ये समस्याएँ भी

धीरे-धीरे सुलझ जायेंगी।

संयुक्त राष्ट्रसंघ के अन्तर्गत भारत की सेनाओं ने उत्तरी तथा दक्षिणी कोरिया के बीच शान्ति स्थापित की। भारत ने, दक्षिण-पूर्वी एशिया के उलझे हुए मामलों में हस्तक्षेप करके, शान्ति स्थापित करने का प्रयत्न किया। आज भारत विश्व के अन्यतम देशों में है। उसकी आवाज़ सब देशों को सुननी पड़ती है। उसकी सलाह में एक वज़न होता है।

इस सबका श्रेय विश्व के अन्यतम राजनीतिज्ञ पण्डित जवाहरलाल नेहरू को है। अगर कोई पूछे कि भारत के श्रेष्ठतम राजनैतिक पुरुष कौन हुए, जिनका नाम और काम दुनिया को जानना चाहिए, तो इसका उत्तर होगा, अशोक, अकबर, महात्मा गाँधी और पण्डित जवाहरलाल नेहरू!

अंग्रेज़ों की देन

अंग्रेज़ों ने जबर्दस्ती ही क्यों न सही, भारत को नवयुग में प्रवेश कराया। अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए (पढ़िए **डिसकवरी ऑफ इण्डिया**) अंग्रेज़ों ने भारत को खून से तर-ब-तर कर दिया फिर भी यह श्रेय उन्हें देना ही होगा कि भारत में आधुनिक सभ्यता का उदय अंग्रेज़ों के कारण हुआ। साथ ही, प्राचीन सामन्ती समाज-व्यवस्था भारत में हमेशा-हमेशा के लिए नष्ट हो गयी।

वैज्ञानिक संचार-साधनों तथा आवागमन के साधनों का जाल देश-भर में फैल जाने से जो घनिष्ट परस्पर-सम्पर्क स्थापित हुआ, उसके फलस्वरूप यह बोध उत्पन्न हुआ कि भारत एक राष्ट्र है, हम सब उसके अंग हैं। राष्ट्रवाद के अभ्युत्थान की आधार-भूमि अंग्रेज़ों ने, जाने-अनजाने ढंग से, तैयार की।

हमने उनसे राजनैतिक सामाजिक संस्थाएँ भी लीं, जैसे पार्लामेण्ट, कांग्रेस, निर्वाचन, कानून, यूनीवर्सिटी, सरकारी महकमे और उनकी कार्य-विधियाँ, इत्यादि। इनको प्राप्त करने के लिए हमें सर नहीं मारना पड़ा।

हमने पश्चिम से ब्रिटेन के जरिये औद्योगिक संगठन, वैज्ञानिक साधन, जैसे, बिजली, तार, मोटर, रेल-इंजन, जहाज, इत्यादि का शास्त्र प्राप्त किया। अंग्रेज़ी भाषा भी हमें उनसे मिली, जिसके माध्यम से हम विश्व के ज्ञान को भारत में ला सके। साथ ही, आधुनिक राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक विचारधाराएँ हमें अंग्रेज़ी से मिलीं।

ब्रिटेन ने हमारा नुकसान बहुत किया। हमारे देश के धन और सम्पत्ति के द्वारा, ब्रिटेन में औद्योगिक क्रान्ति हुई, औद्योगिक विकास और प्रसार हुआ। हमने कितना खोया यह इस बात से सिद्ध होगा कि जिन दिनों हमने स्वतन्त्रता खोई, उन्हीं दिनों ने आस-पास संयुक्त राज्य अमरीका ने (जो हमसे, उन दिनों में लिहाज से, बहुत पिछड़ा हुआ, निर्धन, तथा बहु-जातीय था) स्वाधीनता प्राप्त की। किन्तु डेढ़ सौ साल की विकास-प्रक्रिया के दौरान में वह विश्व के सर्वाधिक शक्तिशाली दो राष्ट्रों में से एक बन बैठा। और हम अपने हजारों सालों से चले आते हुए पिछड़ेपन को दूर करने के प्रारम्भिक प्रयत्न ही कर रहे हैं। किन्तु, प्रधानमन्त्री पण्डित जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व में भारत की उन्नति दिन दूनी रात चौगुनी हो रही है, यह हमी नहीं, सारी दुनिया कह रही है।

महानों का मन्वन्तर

भारतीय सांस्कृतिक पुनर्जागरण और राष्ट्रीय अभ्युत्थान में अनेकों महान् आत्माओं ने योगदान दिया। उनमें से कुछ पश्चिम की तरफ झुके, कुछ पूर्व की ओर, किन्तु सबने राष्ट्रीय चेतना के विकास-स्तर को ऊँचा उठाने का प्रयत्न किया। उनमें से कुछ के नाम अविस्मरणीय रहेंगे। उन्नीसवीं सदी के मध्य से बीसवीं सदी के मध्य तक ये महान् पुरुष हमारे सामने आये। इसलिए हम पिछले सौ सालों को 'महानों का मन्वन्तर' भी कह सकते हैं।

इन दिनों सुशिक्षित जनता में दुमुँही प्रवृत्ति थी। एक वह थे जो पश्चिम के ज्ञान को आत्मसात् कर भारत को रूढ़ि की दासता से मुक्त करना चाहते थे, एक वे थे जो हमें प्राचीन संस्कृति का भान करा रहे थे। इन दोनों के बीच संघर्ष होना भी स्वाभाविक था।

दयानन्द सरस्वती

उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में जिन उद्भट समाज-सुधारकों का जन्म हुआ उनमें दयानन्द सरस्वती प्रधान हैं—ऐतिहासिक दृष्टि से। आज के रूढ़िग्रस्त धर्म का विरोध करने के लिए उन्होंने पश्चिम की ओर नहीं देखा, वरन् प्राचीन वैदिक आर्य धर्म से उन्होंने प्रेरणा ग्रहण की। उसका पुनरुज्जीवन करने का उन्होंने प्रयत्न किया। वे स्वतन्त्र विचारवादी विद्वान चिन्तक थे। उन्होंने हिन्दुओं के धार्मिक अन्धविश्वासों पर कुठाराघात किया, किन्तु प्राचीन वैदिक विश्वासों और प्रणालियों का उन्होंने स्पष्टीकरण भी किया। उन्होंने अन्य धर्मावलम्बियों को हिन्दू बनाने का मार्ग खोल दिया। उन्हें 'शुद्ध' किया जाने लगा। फलत. आर्य-समाज की टक्कर उन धर्मों से हुई, जो स्वयं ही अपने में दूसरों को दीक्षित करते थे। बीसवीं सदी के प्रारम्भिक दशकों में पंजाब और उत्तर प्रदेश में आर्यसमाज का बड़ा स्थान था, जो अभी भी है।

विवेकानन्द

स्वामी रामकृष्ण परमहंस के शिष्य स्वामी विवेकानन्द का व्यक्तित्व अपने आप में एक मनोहर और उदात्त दर्शन था। मुखमण्डल पर अपूर्व तेज, सहज आत्मविश्वास, अपने मन और कार्य के औचित्य की स्वाभाविक भावना, प्रकृति-जात आत्म-सन्तुलन और कोमल आवेशमय दृष्टि सब ओर प्रेरणा के विद्युत्कण बिखेरती थी। उन्होंने विश्व को भारत का आध्यात्मिक सन्देश प्रदान किया—ऐसा आध्यात्मिक सन्देश, जिसमें कोई अन्धविश्वासपूर्ण रहस्यवाद नहीं था, या तर्क-वितर्कपूर्ण वितण्डा नहीं था, वरन् प्रखर विश्लेषण से युक्त समग्र-बोध था। वैज्ञानिक बुद्धि के द्वारा दार्शनिक तत्त्व-निरूपण करते हुए भी उनके वेदान्त में सृजनशील निष्ठा का आवेश था।

जाति, सम्प्रदाय और राष्ट्र की दीवारें तोड़कर, उसके परे सर्वजनहिताय

मात्र मानव-सेवा के लिए, विवेकानन्द ने रामकृष्ण मिशन की स्थापना की। आज यह मिशन भारत, पाकिस्तान, अमरीका, फिजी और दक्षिण अफ्रीका में निःस्वार्थ मानव-सेवा कर रहा है, और इस प्रकार, वह मानव-कल्याण का साक्षात् और ज्वलन्त उदाहरण सामने रखे हुए है।

विवेकानन्द स्वयं प्रभावशाली वक्ता और लेखक थे। सन् 1893 में उन्होंने अमरीका के शिकागो नगर में सर्व-धर्म-सम्मेलन (पार्लमिण्ट ऑफ रिलीजन्स) में

वे कहते थे कि मानव में ईश्वरीय आत्मा देखना ही धर्म है। मानव अन्तःकरण स्वयं ईश्वरीय गुणों का समुदाय है। केवल इन गुणों के सक्रिय होने की देर है। विवेकानन्द का दर्शन उदात्त मानव दर्शन था।

यद्यपि उन्होंने राजनीति में भाग नहीं लिया किन्तु उनके सामाजिक और राजनैतिक विचार सुस्पष्ट थे। वे बार-बार स्वाधीनता, समानता, जनता के उत्थान के कार्य पर जोर देते थे। वे कहते—'कार्य और विचारों की स्वाधीनता, जीवन विकास तथा कल्याण की मूल भूमि है। जहाँ उसका अस्तित्व नहीं है, वहाँ मनुष्य, मानव जाति और राष्ट्र नष्ट होनेवाले हैं।'

विवेकानन्द ने कहा, 'भारत की आशा का केन्द्र केवल जनता है, उच्चतर वर्ग मानसिक और नैतिक धरातल पर मृतवत् हो गये हैं।' उन्होंने कहा, 'मैं समाजवादी हूँ, इसलिए नहीं कि वह व्यवस्था सर्वगुणसम्पन्न है, वरन् इसलिए कि जहाँ रोटी ही नहीं है, वहाँ आधी रोटी अच्छी है। अन्य व्यवस्थाओं का प्रयोग किया जा चुका, और उनमें खामियाँ पायी गयीं। अब इसका प्रयोग किया जाय, अगर और किसी बात के लिए नहीं तो केवल उसकी नवीनता ही के लिए क्यों न सही।'

विवेकानन्द क्रमशः अन्तर्राष्ट्रीयतावादी होते गये। उन्होंने एक जगह कहा, 'भारत के पतन का मूल कारण है अपने घरौंदे में जाकर बैठ जाना और अन्य राष्ट्र से सम्पर्क तोड़ देना। फलतः, भारतीय सभ्यता मसाले से भरी शव-मूर्ति जैसी जड़ीभूत हो गयी।' उन्होंने एक जगह कहा, 'समाजशास्त्र और राजनीति में भी बीस साल पहले जो समस्याएँ केवल राष्ट्रीय थीं, वे आज केवल राष्ट्रीय आधार पर हल नहीं की जा सकतीं। आज उन्होंने बृहद् आकार और विशाल रूप धारण कर लिया है। वे तभी हल की जा सकती हैं जब उन्हें व्यापक दृष्टि से अन्तर्राष्ट्रीय आधार पर देखा जाये।'

भारतीय जनों को सम्बोधित करते हुए वे बार-बार कहते, 'निर्भय बनो, शक्तिमान बनो।'

'सत्य की कसौटी है—जो चीज तुम्हारे शरीर को, बुद्धि को, आत्मा को कमजोर बनाती है उसे जहर के समान निकालकर फेंक दो, क्योंकि उसमें कोई प्राण नहीं है। इस दर्शन को स्वी
है। इतनी सीधी और आसान
से जनता को आगाह किया, '
नास्तिक देखना पसन्द करूँगा,

आप कुछ कर सकते हैं। किन्तु यदि अन्धविश्वास आ जाय, तो दिमाग चला जाता है, दिमाग नरम पड़ने लगता है, और अध पतन जिन्दगी पर हावी हो जाता है।'

इस्लाम के सम्बन्ध मे उनके क्या खयाल थे ? वेदान्त उनके लिए सर्वोपरि था। किन्तु उस वेदान्त का व्यावहारिक रूप वे इस्लाम मे देखते थे, भले ही इस्लाम वेदान्त से अपरिचित रहे। पण्डित नेहरू ने अपनी **'डिस्कवरी ऑफ इण्डिया'** मे विवेकानन्द के वचन दिये हैं। क्यो ? इसलिए कि इस्लाम मे मानव समानता का व्यावहारिक रूप था। उन्होने कहा, 'दूसरी ओर, हमारा अनुभव है कि यदि किसी भी धर्म के अनुयायी अपने दैनिक जीवन के व्यावहारिक क्षेत्र मे इस समानता के पास पहुँचते हैं—वे ऐसे व्यवहार के गहरे अर्थ और सन्निहित सिद्धान्त जिन्हे हिन्दू भली-भाँति देखते हैं, स्वय भले ही न समझें—तो वह धर्म इस्लाम और केवल इस्लाम है। हमारे मातृत्व के लिए ही दो महान् व्यवस्था का सयोग—हिन्दू धर्म और इस्लाम, वेदान्त मस्तिष्क और इस्लाम शरीर—ही आशा केन्द्र है।' विवेकानन्द कहते हैं, 'मैं अपने मन की आँखो के सामने भविष्य के उस सर्वगुणान्वित पूर्ण भारत को, उस कीर्तिमान अपराजेय भारत को, देखता हूँ, जिसका देह इस्लाम है और मस्तिष्क वेदान्त है।' वे कहते थे, 'हमारा विश्वास है कि वेदान्त भविष्य की शानपूर्ण मानवता का धर्म है।'

विवेकानन्द ने भारत के दक्षिण कोण कुमारी अन्तरीप से भाषण देते हुए, गरजते हुए, उत्तर मे हिमालय तक की यात्रा की। उन्होने अपने को इतना क्षीण कर लिया कि वह भव्य देह और दिव्य आत्मा केवल उन्तालिस साल की अवस्था मे ही स्वर्ग सिधार गयी। यह घटना सन् 1902 की है।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

रवीन्द्रनाथ बगाल की महान् परम्परा के चरम उत्कर्ष के रूप मे सामने आते हैं। यह परम्परा एक ओर राजा राममोहन राय, केशव चन्द्र सेन से होती हुई, तो दूसरी ओर, रामकृष्ण परमहस और विवेकानन्द से प्रभावित होती हुई, और इन सबको समेटती हुई, रवीन्द्रनाथ ठाकुर के व्यक्तित्व और साहित्य मे फूट पड़ी। इस परम्परा मे, जो रवीन्द्र के रूप म सामने आयी, एक ओर, अथाह मानव प्रेम तथा तल्लीन सौन्दर्य भावना थी, उसमे झलकते हुए ईश्वर प्रेम की ज्योति मानव प्रेम मे रगीन हो उठी। उसी परम्परा मे, दूसरी ओर, मानव-उत्थान मे गहन अनुराग और मानव समानता और मानव एकता के आधार पर विश्वमैत्री का बोध झलक उठता था। उनके व्यक्तित्व और साहित्य मे पूर्व और पश्चिम का विलक्षण समन्वय था। उन्होंने अपने व्यक्तित्व और साहित्य द्वारा न केवल विभिन्न प्रान्तो के साहित्यिको को, वरन् यूरोप के साहित्यिको को भी, प्रभावित किया। आयरलैण्ड के विश्वविख्यात कवि डब्ल्यू बी यीट्स ने उनकी गीतांजलि का अग्रेजी मे अनुवाद किया। फ्रास के महामनीषी उपन्यासकार रोम्याँ रोलाँ ने उन पर पुस्तक लिखी।

उन्होंने बीसवीं सदी के प्रारम्भिक दशको मे स्वदेशी आन्दोलन मे भाग भी लिया। उन्होंने मानव व्यक्तित्व की सर्वांगीण उन्नति से प्रेरित होकर, शान्ति-निकेतन और श्रीनिकेतन नामक दो सस्थाएँ स्थापित की। श्रीनिकेतन मे कला, कारीगरी, तथा शान्तिनिकेतन मे विभिन्न भाषाएँ, साहित्य, दर्शन, चित्रकला,

सगीत, नृत्य आदि की पढाई होती थी। उन्होंने सगीत की एक नयी पद्धति चलायी, तथा चित्रकला मे भी मौलिक कार्य किया। शान्तिनिकेतन मे न केवल भारतीय विद्वान और कलाकार रहते थे, वरन् विभिन्न राष्ट्रो के विद्वान वहाँ आकर पढ़ाने मे गौरव समझते थे।

समय-समय पर रवीन्द्र स्वय राष्ट्रीय भावना से प्रेरित होकर, कदम बढाते थे। उन्होंने अपनी 'सर' नामक उपाधि अंग्रेजो को लौटा दी। उसी प्रकार देश-वासियो को तरह-तरह के खतरो से वे आगाह करते रहे। रवीन्द्रनाथ ने रूस-यात्रा की। मानव समानता की भावना, शिक्षा का स्तर आदि देखकर वे रूस से बहुत प्रभावित हुए। अपनी रूस यात्रा पर उन्होंने रसियार चिट्ठी नामक एक पुस्तक भी लिखी। उन्होंने किसानो और मजदूरो के सम्बन्ध मे कविताएँ भी लिखी।

अब तक यह देखा गया है कि मनुष्य ज्यो-ज्यो बूढा होता जाता है, वह कट्टर रूढिवादी और सकुचित विचार-धारावाला होता जाता है। इसके विपरीत, रवीन्द्रनाथ की उमर ज्यो ज्यो बढती गयी, उनके विचार अधिकाधिक रूढिविरोधी, मानव समानतामूलक, उदार और प्रखर होते चले गये। वे दलित-पीडित जनता के महान् समर्थक और अन्तर्राष्ट्रीय मैत्री के उपासक थे। उन्होंने भारतीय राष्ट्रवाद के आधार को व्यापक कर दिया। इस महान् मानवतावादी कलाकार की *स्मृति मे, यदि आज उस कवि का बनाया 'जन-गण मन' हमारा राष्ट्रगान हो* जाये तो यह स्वाभाविक ही है।

सैयद अहमद खाँ

गदर के बाद अंग्रेजो ने मुसलमानो को बहुत दबाया उनमे जबर्दस्त अंग्रेज विरोधी भावनाएँ फैली हुई थी। साथ ही साथ, भयानक रूढिवाद था। रूढिवादी प्रवृत्ति के कारण, वे अंग्रेजी तालीम भी नही लेते थे। जब सर सैयद अहमद मैदान मे आये तो उनके दो काम थे। एक, मुसलमानो की अंग्रेज-विरोधी भावनाएँ हटाना, दूसरे मुसलमानो को पश्चिमी शिक्षा दीक्षा के अन्तर्गत लाना। उन्हे विश्वास था कि जब तक अंग्रेज़-विरोधी भावनाएँ मुसलमानो के दिल से नही हटायी जाती, तब तक पश्चिमी शिक्षा का प्रचार उनमे नही हो सकता।

आवश्यकता इस बात की थी कि हिन्दुओ की भाँति ही पश्चिमी शिक्षा प्राप्त कर मुस्लिम मध्य वर्ग उत्पन्न हो इसके लिए, सर सैयद अहमद ने अलीगढ मे मोहमडन ओरियन्टल कॉलेज खोला। उसमे पुराने मुस्लिम विद्वानो के साथ ही, अंग्रेज प्रोफेसर भी पढाते। उसे आगे चलकर विश्वविद्यालय का रूप दिया गया।

उन्होंने खुद लिखा है कि धर्म कोई राजनैतिक या राष्ट्रीय महत्त्व नही रखता। उन्होंने कहा, 'क्या तुम एक ही देश मे नही रहते ? याद रखो कि हिन्दू और मुस्लिम ये दो शब्द अपना-अपना धरम बताने के लिए हैं। वैसे, सब लोग, चाहे वे हिन्दू हो या मुसलमान, या वे ईसाई जो भारत मे रहते है, वे सब इस विशेष दृष्टि से एक ही राष्ट्र के अग हैं।'

मौलाना अबुलकलाम आजाद

ये नौजवानी मे ही इस्लाम के धर्म दर्शन, साहित्य तथा अन्य विद्याओ मे पारगत

हो गये। मिस्र, बगदाद, कुस्तुनतुनिया के विद्वानों से उनका गहरा सम्पर्क था। वे अनेक राष्ट्रों के उत्थान और पतन का इतिहास जानते थे। वे धर्म-सूत्रों की गहन और मौलिक व्याख्या करते थे। इस्लाम धर्म को वे समझते थे। उनमें प्राचीन इस्लामिक परम्परा, बुद्धिवादी भाव, और आधुनिक ज्ञान दृष्टि थी। वे उत्तम लेखक थे। उनकी भाषा शैली अपनी थी। उन्होंने अपने विचारों से और भाषा से मुस्लिम जगत् में सनसनी पैदा कर दी। मौलाना अबुलकलाम आज़ाद ने उर्दू में अलहिलाल साप्ताहिक पत्र निकाला। उन दिनों उनकी उमर सिर्फ 24 साल की थी। उन्होंने अपने पत्र द्वारा नये भावों और विचारों का प्रसार-प्रचार आरम्भ किया। फलत, मुस्लिम लीग भी काग्रेस के समीप आती चली गयी। उधर, उन्हें **'दि कॉमरेड'** (अंग्रेजी) पत्र के सम्पादक के रूप में मौलाना मुहम्मद अली जैसा नेता मिला। मौलाना मुहम्मद अली एक साथ प्राचीन इस्लाम की परम्परा और ब्रिटेन के ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी की परम्परा आत्मसात् किये हुए थे। शुरू में, वे अलीगढ़ परम्परा के साथ में रहे, किन्तु ज्यो-ज्यो वे आगे बढ़ते गये उन्होंने अधिकाधिक ब्रिटिश विरोधी नीति अपनायी। उन्हें तथा उनके भाई शौकत अली को जेल में डाल दिया गया।

मुहम्मद अली ने महात्मा गाँधी के साथ एकता स्थापित करके खिलाफत आन्दोलन चलाया, जिसका उद्देश्य तुर्कों के साथ अंग्रेजो के कार्य-व्यवहार का विरोध करना था और भारत के हिन्दुओ-मुसलमानों में राष्ट्रीय चेतना उत्पन्न करना था। महात्मा गाँधी मुहम्मद अली के साथ देश-भर में घूमे। और उस समय उन्होंने अपने सविनय अवज्ञा आन्दोलन का प्रचार किया।

मुहम्मद अली ने युवक मुसलमान की विद्रोही मनोवृत्तियों को देखकर आन्दोलन चलाया था। मुहम्मद अली-शौकत अली ने काग्रेस की राष्ट्रीय राजनीति में हिस्सा लिया। किन्तु दुर्भाग्य से सन् 1930 में मुहम्मद अली की मृत्यु हो गयी।

उधर, अबुलकलाम आज़ाद, युवक होते हुए भी, ज्यों ही काग्रेस में प्रविष्ट हुए, उसके केन्द्रीय नेतृत्व में प्रवेश कर गये। यहाँ तक कि उनकी सलाह को उसी प्रकार सुना जाने लगा जिस प्रकार किसी बुजुर्ग से (यद्यपि वे तरुण थे) सुनी जाती है। इसका कारण उनका वह व्यक्तित्व था, जो अपने गम्भीर अध्यात्म, समान दृष्टि और राष्ट्रीय तेजस्विता का प्रतीक था। मुख्यत राष्ट्रीय सकटों के और उथल-पुथल के काल में ही, वे कई बार काग्रेस के अध्यक्ष (उन दिनों 'राष्ट्रपति') बने। काग्रेस तथा देश का सन् बयालीस का 'भारत छोड़ो' आन्दोलन, उन्ही के अध्यक्ष-पद के अन्तर्गत हुआ।

मुहम्मद इक़बाल

मुहम्मद इकबाल के काव्य में गम्भीर दर्शन के तत्त्व प्रकट हो उठे। इसमें खुद को (खुदी को) खुदा से जोड़ा गया था, आत्मा को परमात्मा से सम्बद्ध किया गया था, व्यक्तित्व को निर्भय, शक्तिमान और प्रखर बनाने का प्रयत्न किया गया था। उनके इसरारे ख़ुदी नामक काव्य में भारतीय तथा इस्लामी तत्त्वों का समन्वय है। वे काश्मीरी ब्राह्मणों के वशधर थे। उनके काव्य के अनुशीलनकर्त्ताओं को मालूम है कि वस्तुत. वे कितने अधिक भारतीय हैं, सास्कृतिक परम्परा की दृष्टि से। यही कारण है कि वे भारत में भी लोकप्रिय हैं।

मुहम्मद इकबाल की कविता मे सूफियाना रंग है। उन्होंने राष्ट्रीय देश-भक्ति पूर्ण कविताओ से कवि जीवन आरम्भ किया और वृद्धापकाल में वे अधिकाधिक समाजवादी होते गये। वे रूस से प्रभावित हुए। उन्होने किसानो मजदूरो पर कविताएँ लिखी।

पण्डित नहरू के लिए उनके हृदय मे बहुत सम्मान था। मृत्यु के पूर्व, जब वे बहुत बीमार थे, उन्होने जवाहरलाल जी से भेंट की थी। उनकी कविता—'सारे जहाँ से अच्छा, हिन्दोस्ताँ हमारा'—आज भी हमम जान डाल देती है।

तिलक

लोकमान्य बाल गगाधर तिलक ने भारतीय जनता की उदासीन जड़ता हटाकर, उसको वीर और साहसी बना दिया। तिलक एक महा-पण्डित थे। पाण्डित्य के तेज में कार्य की शक्ति थी। कार्य की शक्ति मे जनता म प्राण फूँक देने की ताकत थी। अग्रेज उनकी लेखनी स थर्राये थे। उनका साप्ताहिक पत्र केसरी (वह पुराना ज़माना था जब लोग अग्रेजो से डरते थे) अपनी अदम्य स्फूर्तिमय वाणी से प्राण-सचार करता था। तिलक निर्भीक थे, निडर थे। उन पर राजद्रोह का मुकदमा चलाया गया। वह मुकदमा देश-भर मे गूँज उठा। उनका प्रचण्ड व्यक्तित्व अदालत मे भारत का समर्थन कर रहा था। बग-भग आन्दोलन म उन्होने विशेष रूप से काम किया। वे महाराष्ट्रीय पण्डित थे, किन्तु उनका प्रभाव पजाब मे और बगाल म ऐसा महसूस किया गया मानो वे उनके सामने बोल रहे हो। वे अखिल भारतीय नेता थ। उन्होने भारतीय जनता को युद्ध (शस्त्रो से नही) का आह्वान किया था। उनकी मृत्यु सन् बीस मे हुई। बम्बई के मजदूरो ने आम हड़ताल कर दी। सुदूर रूस मे बैठे हुए लेनिन ने उसे देखा और कहा कि, 'यह भविष्य का सकेत है।'

बाल गगाधर तिलक समाज-सुधारक थे। गणेश उत्सव के सास्कृतिक समारोह उनके चलाये हैं। वे महान् पण्डित थे। उन्होंने गीता पर एक पाण्डित्यपूर्ण पुस्तक लिखी। कर्म योग के महत्त्व को प्रतिपादित करके उन्होने हम सकर्मक बनाया। उन्होने प्राचीन इतिहास तथा सस्कृति के क्षेत्र मे नयी-नयी खोजें की। उनमे ज्ञान और कर्म का विलक्षण समन्वय था।

०००

परिशिष्ट

परिशिष्ट-1

'भारत : इतिहास और संस्कृति' की प्रश्नावली

कुहरे में ढँका हुआ मानवेतिहास

1 पुरा-पाषाण-कालीन जीवन पर प्रकाश डालिये।
2 बताइये कि अग्नि के आविष्कार से आदिम मानव को कौन से लाभ हुए और आगे का विकास-पथ किस प्रकार प्रशस्त हुआ।
3 नव-पाषाण-कालीन मानव की प्रमुख उपलब्धियों का वर्णन कीजिए।
4 भारत में नव-पाषाण-काल तथा पुरा-पाषाण-काल के अस्त्र कहाँ-कहाँ पाये जाते हैं।
5 आदिमानव की धर्म सम्बन्धित कल्पनाओं का विशदीकरण कीजिए।
6 आदिमानव की कलाओं का वर्णन कीजिए।
7 मनुष्य-सभ्यता को आदि मानव की देन पर प्रकाश डालिये।
8 धातु-युग का सामान्य परिचय दीजिए।

सभ्यता का उष:काल

1 सिन्धु-सभ्यता के अन्तर्गत नगर-व्यवस्था पर प्रकाश डालिये।
2 तत्कालीन सभ्यता के सम्बन्ध में आप क्या जानते हैं?
3 सिन्धु सभ्यता तथा आर्य इन दोनों के संघर्ष से क्या परिणाम निकले।
4 सैन्धव कलाकौशल का विवरण दीजिए।
5 सैन्धव-वैदिक संघर्ष के मूल कारणों पर प्रकाश डालिये।
6 द्रविड जाति के सम्बन्ध में आप क्या जानते हैं?

आर्य-सभ्यता का आरम्भ

1. वैदिक आर्य-जीवन पर संक्षेप में प्रकाश डालिये।
2 वैदिक देवताओं के विषय में आप क्या जानते हैं?
3 वेद श्रुति क्यों कहे जाते हैं? वैदिक संहिता का क्या अर्थ है?

4 प्रारम्भिक युद्धो का वर्णन करते हुए बताइये कि आर्यों में जाति-व्यवस्था का उदय किस प्रकार हुआ ?
5 निम्नलिखित बातो म स किन्ही तीन पर सक्षिप्त टिप्पणी लिखिय दशराज्ञ युद्ध बादरायण वदव्यास, वरुण, अथर्ववेद।
6 ऋग्वेदकालीन नारी का सामाजिक नीति पर प्रकाश डालिये।

उत्तर वैदिक काल

1 भारतीय सस्कृति को आर्यों की देन के सम्बन्ध म एक सक्षिप्त निबन्ध लिखिए।
2 उत्तर वैदिक कालीन जाति व्यवस्था पर प्रकाश डालिये।
3 तत्कालीन राज्य व्यवस्था का विवरण दीजिय।
4 उस समय के धर्म क स्वरूप पर एक सक्षिप्त टिप्पणी लिखिय।
5 तत्कालीन नारी जीवन के बारे म आप क्या जानते है ?
6 तत्कालीन सामाजिक विशेषताओ का उल्लेख कीजिय।
7 सक्षिप्त टिप्पणी कीजिये।
(1) महाभारत, (2) न्याय वैशेषिक, (3) उपनिषद, (4) नास्तिक मत।

जैन तथा बौद्ध धर्म

1 भारतीय धर्मो के विकास म वर्ण सकर जातियो ने क्या योग दिया ?
2 पार्श्वनाथ पर सक्षिप्त टिप्पणी लिखिये।
3 महावीर वर्धमान क सिद्धान्तो पर प्रकाश डालिये।
4 वर्धमान के जीवन क सम्बन्ध म तुम क्या जानते हो ?
5 मध्यम मार्ग किस कहते हैं ?
6 गौतम बुद्ध की प्रेरणाओ पर एक निबन्ध लिखिय।
7 बौद्ध धम के सम्प्रदायो पर प्रकाश डालिये।

प्रथम साम्राज्य की स्थापना

1 भारत म विदेशी शक्तियो के आक्रमणो का विवरण दीजिए और उनके परिणामो पर प्रकाश डालिये।
2 उक्त काल की आर्थिक-सामाजिक विशेषताओ पर प्रकाश डालिये।
3 अजातशत्रु के स्वभाव का वणन कीजिए।
4 नद वश क सम्बन्ध म आप क्या जानते हैं ? विस्तार से लिखिए।
5 चन्द्रगुप्त मौर्य के शासन प्रबन्ध का वर्णन कीजिए।
6 चाणक्य पर एक सक्षिप्त निबन्ध लिखिए।
7 टिप्पणी कीजिए —
विम्बसार, युद्ध, प्रसनजित, खरोष्ठी, शिल्पि-सघ।

अशोक की धर्म विजय

1 अशोक के प्रारम्भिक जीवन पर प्रकाश डालिए।

2 'अशोक की धर्म-नीति ने मौर्य साम्राज्य का नाश कर डाला"—इस मत का विवेचन कीजिए।
3 अशोक के धर्म-प्रचार पर विस्तृत निबन्ध लिखिए।
4 देश स बाहर अशोक ने क्या-क्या काम किय ?
5 विश्व म अशोक को महान् क्यो माना जाता है ? उस पर अपने विचार प्रकट कीजिए ?
6 साम्प्रदायिक एकता के निर्वाह के लिए अशोक न क्या-क्या किया।
7 टिप्पणी लिखिए
सघमित्रा, खोतन, उपगुप्त, वाचा गुप्ति, बहुश्चुत।

भारत के स्वर्ण युग की रश्मियाँ

1 गुप्तकालीन कला की विशेपताओ पर प्रकाश डालिए।
2 गुप्त राजाओ की धर्म सम्बन्धी नीति पर एक छोटी सी टिप्पणी लिखिए।
3 तत्कालीन धार्मिक अवस्था का विवेचन कीजिए।
4 टिप्पणी लिखिए
असग, माध्यमिक और योगाचार, अजन्ता, चन्द्रगुप्त द्वितीय।

प्राचीन भारत के विश्वविद्यालय

1 नालदा विश्वविद्यालय पर एक सक्षिप्त लेख लिखिए।
2 भारत के सर्वाधिक प्राचीन विश्वविद्यालय की जानकारी दीजिए।
3 विक्रमशिला विश्वविद्यालय के महत्त्व पर प्रकाश डालिए।
4 तत्कालीन पाठ्य-क्रमो की जानकारी दीजिए।
5 उस समय की शिक्षा व्यवस्था का गुण दोष विवेचन कीजिए।
6 तत्कालीन विश्वविद्यालयो म कौन-कौन से विदेशी पण्डित अध्ययन के लिए आये और कौन-कौन से भारतीय पण्डित विदेशा म गये।
7 बताइये कि इन विश्वविद्यालया द्वारा विज्ञान का उत्तरोत्तर विकास क्या नही हो सका ?

मौर्यकालीन सामाजिक सास्कृतिक प्रक्रियाएँ

1 मौर्यकालीन राजतन्त्र पर सक्षिप्त निवन्ध लिखिए।
2 दास-प्रथा समाज म स्त्री की स्थिति और शूद्र जाति पर प्रकाश डालिए।
3 बताइये कि भारतीय सामान्य जनता राजनीति से क्यो उदासीन रही।
4 तत्कालीन व्यापार के बारे म आप क्या जानते हैं ?
5 ब्राह्मण धर्म और बौद्ध धर्म की तत्कालीन गतिविधिया पर प्रकाश डालिए।
6 टिप्पणी लिखिए
(1) अष्टाध्यायी, (2) धर्म-शास्त्र, (3) शिल्पी सघ

शुंग-सातवाहन काल

1 तत्कालीन जाति-व्यवस्था पर प्रकाश डालिए। बताइये कि उस काल मे नयी-नयी जातियाँ किस प्रकार बनी।

2 ब्राह्मण धर्म के पुनरुत्थान पर एक संक्षिप्त लेख लिखिए।
3 तत्कालीन बौद्ध विद्वानो के सम्बन्ध मे आप क्या जानते हैं।
4 बौद्ध तथा ब्राह्मण धर्म के आदान-प्रदान का विवेचन कीजिए।
5 टिप्पणी लिखिए
नागार्जुन, पतंजलि, अश्वघोष, नाट्यशास्त्र।

भारत का स्वर्ण-युग

(प्रश्नावली उपलब्ध नही)

हर्षवर्धन

1 भारत के सम्बन्ध मे हुएन साग के पत्रो पर प्रकाश डालिए। बताइये कि हुएन-साग कौन था ?
2 राज्यश्री की जीवन-कथा सक्षेप मे बताइए।
3 हर्षवर्धन की सैन्य शक्ति और युद्ध कार्य का वर्णन कीजिए।
4 पुर केशियन कौन था ? उसके सम्बन्ध मे आप क्या जानते है ?
5 हर्षवर्धन के व्यक्तित्व और कार्य पर प्रकाश डालिए।
6 प्रभाकर वर्धन के कार्य काल की सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटना का विवरण दीजिए।
7 राज्य वर्धन की जीवन-कथा सक्षेप मे लिखिए।

विन्ध्याचल के उस पार

1 उत्तर भारत म साम्राज्य विस्तार करनेवाले दक्षिण भारतीय राज्यो के सम्बन्ध मे आप क्या जानते हैं ?
2 दक्षिण के प्रमुख प्राचीन राज्यो का विवरण दीजिए।
3 सातवाहन वश के इतिहास की सक्षिप्त रूपरेखा प्रस्तुत कीजिए।
4 गौतमी पुत्र शातकर्णी को मुख्यत किस बात का श्रेय दिया जाता है ?
5 पल्लव राज्य क सम्बन्ध मे लेख लिखिए।
6 राज राजेन्द्र चोल के साहित्यिक महत्त्व पर प्रकाश डालिए।
7 टिप्पणी कीजिए
चाणक्य, शैलेन्द्र साम्राज्य सिहल, अगस्त्य, राष्ट्रकूट।

बृहत्तर भारत

1 मध्य एशिया तथा पूर्वी भारत के प्रधान भारतीय सास्कृतिक केन्द्रो का विवरण दीजिए।
2 तुरफान के बारे मे आप क्या जानते हैं ?
3 पूर्वी एशिया के बौद्ध धर्मावलम्बी देश कौन कौन से थे ?
4 कुमारजीव के जीवन तथा कार्य पर विस्तृत प्रकाश डालिए।
5 चम्पा राज्य का वृत्तान्त बताइए।
6 दक्षिण पूर्वी एशिया के प्रमुख राज्यो का विवरण दीजिए।

7 टिप्पणी लिखिए
गुण वर्मा श्रीविजय दक्षिण पूर्वी एशिया म भारतीय धर्म, वोनियो में भारतीय देव मूर्तिया।

मध्य युग का आरम्भ

1 सांबर के चौहाना का विस्तृत विवरण दीजिए।
2 पृथ्वीराज चोहान के सम्बन्ध म आप क्या जानत हैं?
3 तत्कालीन साहित्य विकास पर सक्षिप्त निबन्ध लिखिए।
4 राजपुत्रा की उत्पत्ति पर प्रकाश डालिए।
5 दक्षिण भारत म दार्शनिक अभ्युत्थान का विवरण दीजिए।
6 राजपूतो की जातीय विशेषताओ पर प्रकाश डालिए।
7 टिप्पणी लिखिए
प्रसिद्ध ज्ञान प्रमी राजपूत राजा पृथ्वीराज रासा राजपूत कालीन मूर्ति कला समाज म नारी की स्थिति।

भारत में इस्लाम का आगमन तथा दिल्ली सल्तनत

1 इस्लाम की सक्षिप्त रूपरेखा प्रस्तुत कीजिए।
2 इस्लाम न भारत मे प्रथमत कहां और कैसे प्रवश किया?
3 सिन्ध पर अरव आक्रमण का विवरण दीजिए।
4 दिल्ली सल्तनत के प्रधान राजवशो का परिचय दीजिए।
5 हिन्दू समाज आक्रान्ताओ को आत्मसात् क्यो नहीं कर सका?
6 टिप्पणी कीजिए मुहम्मद तुगलक, अलाउद्दीन खिलजी, बलबन।

मध्ययुगीन सास्कृतिक अभ्युत्थान तथा मानव सामजस्य की प्रक्रियाएँ

1 मुस्लिम शासन का भारतीयकरण किस प्रकार होता रहा?
2 मुस्लिम प्रान्तीय शासनो म हिन्दुआ की स्थिति क्या थी और भारतीय सास्कृतिक अभ्युत्थान म उन्होन क्या याग दिया?
3 आध्यात्मिक और सास्कृतिक क्षत्रो म किस प्रकार दोना जातियाँ एक दूसरे के सन्निकट आती गयी?
4 प्रारम्भ म तुर्क-अफगान आक्रान्ताओ के हिन्दू विरोधी कार्यों का विश्लेषण करते हुए उनकी जातीय-सामाजिक पृष्ठभूमि पर प्रकाश डालिए।
5 सामान्य मानव धम की प्रतिष्ठा का प्रश्न उन दिना क्यो उठ खडा हुआ? कारण स्पष्ट कीजिए।
6 उन दिनो की परस्पर विरोधी विशेष सामाजिक मनोवृत्तियो पर प्रकाश डालिए।
7 भक्ति-आन्दोलन क सामाजिक-सास्कृतिक महत्त्व का विवचन कीजिए।
8 तत्कालीन साहित्य क प्रमुख उद्गम कन्द्रो पर प्रकाश डालत हुए उनसे नि सृत साहित्य की परस्पर तुलना कीजिए।
9 टिप्पणी लिखिए
जैनुल आवदीन, सत्यपीर, ख्वाजा खिज्र, कीर्र और नाटक, कृत्तिवास।

भारत में मुगलों का आधिपत्य

1 भारत मे बाबर को किन प्रधान राजाओ का सामना करना पडा ?
2 हुमायूँ के युद्धो के बारे मे आप क्या जानते हैं ?
3 बाबर तथा हुमायूं के चरित्र पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
4 शेरशाह सूर के व्यक्तित्व और कार्य पर एक विस्तृत लेख लिखिए।
5 टिप्पणी कीजिए
राणा सागा, फरगाना।

अकबर महान

1 अकबर को आरम्भ मे किन कठिनाइयो का सामना करना पडा ?
2 अकबर की राजनैतिक सूझ बूझ पर एक लेख लिखिए।
3 धर्म के सम्बन्ध मे अकबर न क्या रुख अपनाया।
4 'अकबर ने राष्ट्रीय राजतन्त्र की स्थापना की', इस मत पर स्पष्टीकरण कीजिए।
5 हिन्दुओ के प्रति अकबर ने कौन सी नीति अगीकार की ? उदाहरण सहित उत्तर दीजिए।
6 अकबर ने अपने काल की किस प्रवृत्ति को अपनाया ?
7 अकबर के व्यक्तित्व पर एक लेख लिखिए।
8 राजपूत राजाओ ने मुस्लिम आधिपत्य स्वीकार कर देश की किन सास्कृतिक प्रवृत्तियो का प्रतिनिधित्व किया ?
9 क्या अकबर सचमुच कट्टर मुसलमान था ? अगर नही था तो कट्टर इस्लाम के प्रतिकूल उसन कौन से कार्य किय ?
10 तत्कालीन ऐस सम्प्रदायो का विवरण दीजिए, जिनम हिन्दू मुस्लिम एकता प्रतिपादित थी।
11 टिप्पणी कीजिए
जगद्गुरु अकबर, दर्शनिया सम्प्रदाय, नारायणी सम्प्रदाय, प्राणनाथ, टोडरमल।

अकबर के बाद

1 मुगल युग की विशेषताओ पर प्रकाश डालिए।
2 औरगजेब की राज्य नीति की विवेचना कीजिए।
3 शिवाजी के व्यक्तित्व और कार्य की रूपरेखा प्रस्तुत कीजिए।
4 सिख शक्ति के सम्बन्ध म आप क्या जानते है ?
5 अठारहवी सदी के मध्यम भारतीय राज्यो की जानकारी दीजिए।
6 तत्कालीन साहित्य विकास की रूपरेखा प्रस्तुत कीजिए।
7 टिप्पणी कीजिए
गुरु गोविन्दसिंह, चित्रकाल, ताजमहल, दाराशिकोह

सात समुन्दर पार के जहाज़

1 पुर्तगीज आधिपत्य के सम्बन्ध म आप क्या जानते हैं ? भारत ने यूरोप का ध्यान अपनी ओर कैस आकर्षित किया ?
2 कौन-कौन-सी यूरोपीय कम्पनिया भारत म आयी ? उनके परस्पर सम्बन्धो पर प्रकाश डालिए ।
3 प्लासी की लडाई के बारे म आप क्या जानते हैं ।
4 दक्षिण म किन राज्यो ने अग्रेजो का मुकाबला किया ?
5 टिप्पणी लिखिए
मीर सिराजुद्दौला हैदर अली, टीपू सुलतान, डूप्ले ।

झिलमिलाते दीप

1 सवाई जयसिंह कौन था ? वह किस अथ म अपने जमाने स आगे था ? उसके व्यक्तित्व और काय पर प्रकाश डालिए ।
2 हैदरअली म कौन सा एसा गुण था, जिसस यह सिद्ध होता है कि उसके पास एक व्यापक राजनैतिक स्वप्न था ?
3 महाराजा रणजीत सिंह के सम्बन्ध म आप क्या जानते है ?
4 टिप्पणी कीजिए
अहल्याबाई होलकर टीपू सुलतान नाना साहब पेशवा ।

कम्पनी राज और सन् सत्तावन का स्वतन्त्रता-युद्ध

1 कम्पनी राज म भारत की दुदशा का वर्णन कीजिए ।
2 पचायती ग्राम समाज का उन्मूलन क्यो किया गया ?
3 बगाल की लूट से ब्रिटेन को क्या फायदा हुआ ?
4 ब्रिटेन की औद्योगिक क्रान्ति का भारत मे क्या प्रभाव पडा ?
5 सन सत्तावन के स्वतन्त्रता युद्ध के सम्बन्ध म आप क्या जानते हैं ?
6 सन सत्तावन के गदर के बाद भारत म कौन-कौन से राजनैतिक परिवर्तन हुए ?
7 टिप्पणी कीजिए
तात्या टोपे, रानी लक्ष्मीबाई, परम्परागत भारतीय ग्राम-व्यवस्था ।

भारत की पराजय क्यों हुई ?

1 अग्रजो की राजनीतिक कुशलता पर प्रकाश डालिए ।
2 भारतीय नेतृत्व के गुण दोषो का विवेचन कीजिए ।
3 अपनी गुलामी से भारत की किस प्रकार की हानि हुई ?
4 कई टुकडो म बिखर जान की भारतीय राजनैतिक प्रवृत्ति का विश्लेषण कीजिए ।
5. भारत क तत्कालीन पिछडेपन के सम्बन्ध मे जानकारी दीजिए ।

भारत में आधुनिक युग का उदय काल

1 लार्ड डलहौजी को किस बात का श्रेय दिया जाना चाहिए ? वह कब हुआ था ? उसके कार्यों का क्या परिणाम हुआ ?
2 सन् 1857 के पहले आधुनिक सभ्यता विशेष रूप से कहाँ प्रकट हुई ?
3 अंग्रेजी शिक्षा की माँग करनेवाले कौन थे ?
4 प्राचीन भारतीय संस्कृति के योरोपीय तथा भारतीय विद्वानों के बारे में आप क्या जानते हैं ?
5 शिक्षित मध्य-वर्ग ने अंग्रेज सरकार के सामने कौन-सी माँगें रखीं ?
6 टिप्पणी लिखिए
राजा राममोहनराय, मैक्समूलर, भाषाशास्त्र।

राष्ट्रीय चेतना का विकास : प्रथम चरण

1 रानी विक्टोरिया के काल में भारत की दशा का वर्णन कीजिए।
2 राष्ट्रीय चेतना के प्रारम्भिक विकास पर प्रकाश डालिए। उन दिनों शिक्षित मध्यवर्ग की माँगें कौन-सी थीं ?
3 बंग भंग करने के पीछे अंग्रेजों की नीति क्या थी ? वह क्यों किया गया ?
4 बंग-भंग विरोधी आन्दोलन पर प्रकाश डालिए और बताइए कि उसने क्यों जोर पकड़ा।
5 तत्कालीन राष्ट्रीय राजनैतिक प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालिए।
6 भारत की शिक्षित जनता पर उन दिनों किन अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्व की घटनाओं का प्रभाव हुआ ?
7 टिप्पणी कीजिए
बाल गंगाधर तिलक, गोखले, लार्ड कर्जन, लार्ड रिपन।

राष्ट्रीय चेतना का विकास : द्वितीय चरण

1 महात्मा गांधी के कार्य-सिद्धान्तों की विवेचना कीजिए।
2 इस काल में राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रति अंग्रेजों की क्या नीति रही ?
3 दूसरी गोलमेज परिषद क्यों बुलाई गयी ?
4 राष्ट्रीय स्वाधीनता प्राप्ति के पहले की देश की स्थिति के बारे में आप क्या जानते हैं ?
5 इस समय के प्रधान नेताओं के बारे में अपनी जानकारी लिखिए।
6 इस काल की प्रधान घटनाओं पर प्रकाश डालिए।

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी

1 महात्मा गांधी की कार्य-नीति पर प्रकाश डालिए।
2 अहिंसा तथा सत्याग्रह के सिद्धान्तों का विवेचन कीजिए।
3 राष्ट्रीय आन्दोलन में गांधीजी की देन पर एक लेख लिखिए।
4 भारतीय संस्कृति में गांधीजी के योगदान की चर्चा कीजिए।
5. विश्व पर गांधीजी के प्रभाव के सम्बन्ध में आप क्या जानते हैं ?

6 भारत की दरिद्र जनता के उत्थान के लिए गाधीजी ने क्या किया ?
7 साहित्य तथा कला के सम्बन्ध मे गाधीजी के क्या विचार थे ?
8 धर्म के सम्बन्ध म गाधीजी के विचारो को स्पष्ट कीजिए।

भारत की स्वाधीनता का सूर्य

1 पण्डित नेहरू के नेतृत्व मे भारत न क्या तरक्की की ?
2 देश की औद्योगिक प्रगति के सम्बन्ध म आप क्या जानते हैं ?
3 अन्य राष्ट्रो की स्वाधीनता के लिए भारत ने क्या किया ?
4 सयुक्त राष्ट्र सघ मे भारत नि शस्त्रीकरण का समथन क्या करता है ?
5 पचशील के सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए।
6 पण्डित नेहरू के व्यक्तित्व और कार्य पर लेख लिखिए।
7 भविष्य के भारत का क्या कोई स्वप्न आपके पास है ? यदि है तो वह क्या है ? और यदि नही है तो क्या नही ? कारण सहित उत्तर दीजिए।

महानों का मन्वन्तर

1 विवेकानन्द के विचारो का स्पष्टीकरण कीजिए।
2 बाल गगाधर तिलक के व्यक्तित्व पर प्रकाश डालिए।
3 रवीन्द्रनाथ ठाकुर और इकबाल के सम्बन्ध म आप क्या जानते हैं ?
4 स्वामी दयानन्द सरस्वती के विचारो की जानकारी दीजिए।
5 टिप्पणी कीजिए

रामकृष्ण परमहस, अबुल कलाम आजाद।

Licensed to post without prepayment of postage
Licence No C C 49

पजी क्रमाक एन—533

मध्यप्रदेश शासन की सील

मध्यप्रदेश राजपत्र

(असाधारण)

प्राधिकार से प्रकाशित

कर्माक 154] भोपाल बुधवार, दिनाक 19 सितम्बर 1962
भाद्र 28 शके 1884

गृह विभाग
('क्ष' खण्ड)

Bhopal, the 19th September 1962—Bhadra 29, 1884

No 2845-I-X-62 – The following orders are hereby published for general information

R C MURAB, Secy.

ORDER

No 2843-I-X-62 —WHEREAS the State Government is satisfied that the bringing into sale, distribution or circulation of the book titled भारत इतिहास और सस्कृति ("Bharat Itihas aur Sanskriti) written by Shri Gajanan Muktibodh (hereinafter called the said book) or the printing or publication of the matter contained in the said book within the State of Madhya Pradesh is or will be prejudicial to the maintenance of public order and offends against decency and morality

Now, THEREFORE, in exercise of the powers conferred by sub-section (1) or section 12 of the Madhya Pradesh Public Security Act, 1959 (25 of 1959), the State Government is *pleased to order that the bringing into sale, distribution or* circulation, or the printing or publication of the said book within the State of Madhya Pradesh is prohibited absolutely

By order and in the name of
the Governor of Madhya Pradesh,
R C. MURAB, Secy.

परिशिष्ट-3

COPY OF ORDER

In the High Court of Madhya Pradesh at Jabalpur
Miscellaneous Civil Case No 297/62

Applicant : Sardar Jagjeet Singh Khanna Publishers, Kala Niketan Mandir Janaliganj, Lashkar, Gwalior

Versus

Respondent 1. The State of Madhya Pradesh

2. The Secretary, Home Department, State of Madhya Pradesh.

3. The Secretary, Text Books Committee, Bhopal, Madhya Pradesh

Application under section 12 (5) of the Madhya Pradesh Public Security Act 1959 for quashing State Government's order No 2843 I X-62 published in M P. Rajpatra dt 19th September 1962 prohibiting the bringing up to, sale, distribution or circulation or the printing or publication of the book *Bharat Itihas our Sanskriti*

Dated the 16th Day of April 1963

Presented

The Hon'ble Shri Chief Justice P.V. Dixit

AND

The Hon'ble Shri Justice K L. Pandey

ORDER

This application under section 12 (5) of the Madhya Pradesh Public Security Act, 1959 (hereinafter called the Act), is mainly directed against an order passed by the State Government on 19 September 1962 which is reproduced ;

"No. 2843-AI-X-62. Whereas the State Government is satisfied that the bringing into sale, distribution or circulation of the book entitled भारत : इतिहास और संस्कृति

("Bharat Itihas aur Sanskriti) written by Shri Gajanan Muktibodh (hereinafter called the said book) or the printing or publication of the matter contained in the said book within the State of Madhya Pradesh is or will be prejudicial to the maintenance of public order and offends against decency and morality ,

Now, THEREFORE in exercise of the powers conferred by sub section (1) of section 12 of the Madhya Pradesh Public Security Act 1959 (25 of 1959) the State Government is pleased to order that the bringing into sale distribution or circulation, or the printing or publication of the said book within the State of Madhya Pradesh is prohibited absolutely

dated 22 September
t Books Committee,
ame of the book be

2 The applicant is a publisher of books, including text books and carries on business under the name and style of *Kala Niketan Mandir* at Lashkar Gwalior There is a Text Books Committee constituted under section 18 of the Madhya Pradesh Secondary Education Act 1959 In the records of that

plicant has been entered as a
invitation of the Committee
भारत इतिहास और संस्कृति written
by Gajanan Muktibodh for being prescribed as a text book for study in the higher secondary schools The Committee re

agitation in the press and platform for proscribing it There upon, the two impugned orders were passed without giving to the petitioner any opportunity of being heard

3 The petitioner has challenged the two orders on the following grounds

(i) There was a violation of the principles of natural justice in that the petitioner was not given any opportunity of being heard before the two orders were passed

(ii) The passage said to be offensive are not really prejudicial to the maintenance of public order and do not also offend against decency and morality

(iii) The news expressed in the passages are more or less similar to those contained in other publications made by historians and men of letters

(iv) The impugned orders are arbitrary in that no reasons have been given for the view that the passages are prejudicial to the maintenance of public order and offensive to decency and morality

4 In the affidavit filed in support of the return, the State Government specified the following passages culled from the book as prejudicial to the maintenance of public order and offensive to decency and morality

1 किन्तु भविष्य के रक्त सम्मिश्रण का यह परिणाम था कि राम भी साँवले होने लगे और कृष्ण भी। गोरी तो राधा थी, या सीता, किन्तु वैदिक काल म उक्त सम्मिश्रण नही हुआ था। आर्यों को अपन रग रूप का बडा अभिमान था। उनमे वर्ण द्वेष था। [पृ 9]

2 जब सैन्धव जना की पराजय होने लगी तो उनम से बहुतेरे भाग निकले। आर्यों ने पूरा प्रतिशोध लिया। उनके सत्ता केन्द्रो को नष्ट भ्रष्ट कर दिया। उन्ह दास बनाया गया। इन दासो को रग द्वेष के आधार पर शूद्र बना लिया गया। वे शूद्र आर्यों की बस्तियो से दूर अलग रहते थे। दरिद्र परिस्थिति म अपन व्यवसाय करते थे। क्रमश आर्यों के विभिन्न कबीला के बीच सतत चलत रहने वाले युद्धा मे वे भाग भी लेते रहे। कुछ दासो ने अपन शिल्प व्यवसाय के कारण और कुछ दासों ने किसी आर्यगण वे पक्ष म हथियार उठाने के कारण, आर्यो के मन म अपना सम्मान भी बढा लिया। यद्यपि व रहे शूद्र ही, और इस अर्थ म, जाति रूप मे नीच ही रहे। किन्तु, व्यक्तिश, पवित्र ब्राह्मण भी उनकी पुत्रियो से अवैध सम्बन्ध स्थापित करने मे नही हिचकिचाये। सक्षेप मे, वर्णसकर जातियो का उद्भव हुआ, जिनम से कुछ लोग ब्राह्मणों की पाँत म बैठे गये। किन्तु कुछ ऐम भी थे, जिन्होन उनकी पाँत मे बैठने ही से इन्कार कर दिया। ये व्रात्य कहलाये, जो वैदिक मार्ग के विरोधी थे। इन व्रात्यों ने, आगे की सदिया मे, ऐसे धर्मों का विकास किया, जिनके आघातकारी प्रभाव से वैदिक धर्म का अपना रूप परिवर्तित करना पडा। [पृ 14]

3 व्रात्य वर्णसकर जातिया का प्रतिनिधित्व करते थे। बहुत से व्रात्यों ने वर्णसकर जातियो म ही रहना पसन्द किया। और वे अपनी स्वतन्त्र परम्परा चलाते रहे। व्रात्य वैदिक मार्ग के विरोधी थे। [पृ 20-21]

4. व्रात्यगण, जो स्वय वर्णसकर जातियो से उत्पन्न थे, ऐसे उग्र विचारो का प्रतिनिधित्व करने लगे। [पृ- 37]

5 पार्श्वनाथ ईसा पूर्व सन 759 के लगभग व्रात्यो की परम्परा मे पार्श्व नामक एक अर्हंत अथवा तीर्थंकर हुए [पृ 38]।

6 वर्धमान महावीर वर्धमान महावीर व्रात्या की परम्परा म पार्श्वनाथ के अनुयायी थे। [पृ 38]

7 कर्कल मे बाहुबलिन की विशाल दैत्याकार प्रतिमा जो गोमतेश्वर के नाम से विख्यात है जैन कला का अदभुत उदाहरण है। [पृ 41]

8 भागवत धर्म मे अभी राम भक्ति शुरू नही हुई थी। ईसा की छठी सदी के बाद कही उसका आरम्भ हुआ। वासुदेव कृष्ण ही परम देवता थे। वे विष्णु के अवतार थे। [पृ 61]

9 उसके दरबार म अनेक दार्शनिक तथा विज्ञान सम्बन्धी विषयो पर उपस्थित भारतीय तथा विदेशी विद्वाना मे बीच बहस हो जाती। इस वाद विवाद म मुहम्मद तुगलक जिस सब लोग पागल कहते थे (प्रधानमन्त्री पण्डित नेहरू ने भी एक महान भारतीय नेता ने मुहम्मद तुगलक कहा था) स्वय भाग लिया करता था। [पृ 101]

10 महात्मा गाँधी के अनन्य सहचर महादेव देसाई और उनकी पत्नी सी कस्तूरबा जेल म ही मर गयी। [पृ 140]

5 According to the respondents, these passages are offensive to the religious sentiments of Hindus and Jains They also offend against decency and morality There was, in conse- ' " ι situation " Appre the State Government passed the order dated 19 September 1962 The reasons which impelled the State Government to act in the manner it did are given in the order itself Section 12 (1) of the Act does not require that, before passing an order under that section, an opportunity for being heard should be afforded to the person concerned Finally, the order dated 22 September 1962 is not open to challenge in proceedings under section 12 (5) of the Act

6 We have heard the counsel at some length and we have formed the opinion tha this petition must be dismissed We would like to state at the very outset that the order, which the Secretary of the Text Books Committee passed on 22 September 1962, is not liable to be challenged under section 12 (1) of the Act As we pointed out in *Gulabchandra Jain* v *The State Government of Madhya Pradesh* (Miscellaneous petition No. 410 of 1962 dated 20 February 1963), when a person applies under section 12 (5) of the Act, what this Court has to see is whether, on the material that was before the State Government at the time of making the impugned order, the satisfaction of the Government with regard to the objectionable

character of the publication was real or illusory and whether that material affords any justification for confirming, varying or reversing the order of the State Government

7. Sub sections (1) and (5) of section 12 of the Act read as follows :—

"(1) If the State Government is satisfied that the bringing into, sale, distribution or circulation of any newspaper, periodical, book or document or the printing or publication of any matter in any newspaper periodical, book or document will undermine the security of the State or be prejudicial to the maintenance of public order or offend against decency or morality, it may be an order notified in the Gazette—

(i) prohibit either absolutely or for a specified period the bringing into, or sale or distribution or circulation within the State for any such newspaper, periodical, book or document as the case may be ,

(ii) prohibit, either absolutely or for a specified period the printing or publication of such matter , or,

(iii) prohibit or regulate the making or publishing of any document or class of documents in respect of such matter ,

Provided that no order made under this sub section solely for the purpose of maintenance of public order shall be operative for more than three months from the making thereof

(5) Any person aggrieved by an order under sub section (1) or sub section (3) may, within sixty days from the date of such order, apply to the High Court to set aside the order and upon such application the High Court may pass such order as it deems fit, confirming, varying or reversing the order of the State Government and may pass such consequential or incidental order as may be necessary "

The basis of an order under section 12 (1) is the satisfaction of the State Government whether the contents of the newspaper, periodical, book or document in question will either [illegible] State or be prejudicial to the [illegible] r offend against decency or [illegible] before passing the order, the [illegible] to the applicant an opportunity of being heard is grounded on the assumption that it

(State Government) had a duty to act in a quasi judicial manner We are of opinion that, at the stage when the State Government passed the order, there is no such duty In the first place, when immediate orders are required to be passed either for the security of the State or for the maintenance of public order or in the interests of decency and morality, a quasi judicial approach is not indicated Secondly, the opening words of section 12 (1) If the State Government is satisfied ' do not not imply a judge or a quasi judge and indicate a subjective approach *province of Bombay* v *K S Advani* (1950 S C R 621) Also there are no express words in section 12 or in any other provision of the Act which impose on the State Government a duty to determine this question judicially nor is there anything to compel us to hold that such a duty is implied Thirdly when a question is left to the subjective determination of an authority, the existence of a right to have the decision re examined by a superior tribunal is not enough to indicate that the primary authority is under an obligation to act judicially Finally, over where an executive authority has to form an opinion about an objective matter as a preliminary to the exercise, in its discretion, or acertain power, the determination of the objective matter as well as the exercise of the power thereon based are matters of an administrative character, *Shri Radheshyam Khare and another* v *The State of Madhya Pradesh and others* (1959 S C R 1440) In view of these considerations the order dated 19 September 1962 is not assailable on the ground that the applicant was not previously given an opportunity of being heard nor for the reason that the ground for the satisfaction of the State Government were not disclosed in the order

8 As we pointed out in *Gulabchandra Jain s case (supra)* neither the truth of the matters stated in the objectionable passages nor the consideration that similar matters were published in other books would take those passages out of the purview of section 12 (1) of the Act This is what we stated in the case just mentioned

> ' Again, the truth or falsity of the objectionable matter in the publication is immaterial for determination of the *question under section 12 (1) Indeed truth is too often* unpalatable to many who refuse to face it, and who, if they are hot headed are drawn to resort to violence and disorder when told the truth Equally irrelevant is the fact that the publication objected to contained matter more or less similar to the matter contained in other publications which are sold distributed and circulated freely in the State If the impugned matter is of the

character falling under section 12 (1) then its quality in that respect is not made better by examining other books and publications or by the fact that no action has been taken by the Government in regard to those other publications '

9. We had occasion to consider in *Gulabchandra Jain's case* (*supra*) the nature and scope of the powers exercisable under section 12 (5) of the Act We stated

> "When, therefore, a person applies to this Court under sub section (5) what this Court has to see is whether, on the material that was before the state Government at the time of the making of the impugned order the satisfaction of the Government with regard to the objectionable character of the publication was real or illusory and whether that material affords any justification for confirming, varying or reversing the order of the State Government "

We may only add that since the powers under section 12 (5) are undefined and not in any way limited, they should be regarded as co extensive with the powers of the primary authority *Nagendra Nath Bora v The Commissioner of Hills Division and Appeals, Assam, and others* (1958 S C R 1240)

10. This leads us to a consideration of the objectionable passages The learned Advocate General fairly conceded that, of the ten passages mentioned earlier, only those numbered 1,2,5, and 6 were really objectionable, being prejudicial to the maintenance of public order. We would, therefore, restrict our attention to these four passages In the first passage, it is stated that, in consequence of mixing of blood, Rama and Krishna were black In the second passage, it is said that even pure Brahmins did not hesitate to establish illegal connection with daughters of Shudras with the consequence that

while Rama and Krishna, who are regarded by Hindus as Gods, were derisively called persons descended from a mixture of blood between Aryans and non Aryans, the last two Jain Tirthankaras, who are universally regarded by Jains as

that by the word *"Varna Sanker"* the author merely sought to convey that there was an admixture of castes and also referred to the dictionary meaning of that word We consider it sufficient to say that the author made the sense, in which he used that word, clear in his own language when he stated that *Varna Sanker* castes came into existence when Brahmins established illegal connections with daughters of Shudras.

11 In our opinion, to call Rama and Krishna, who are regarded by Hindus as Gods as not pure breed and to castigate the greatest religious teachers of Jains as offsprings of illegal connection between Brahmins and Shudras amounts to holding them up to oblique and derision It would require a considerable amount of explanation to convince us that an attack of this character on such personalities is unlikely to affect the maintenance of public order and we think that such attacks inherently and definitely tend to disturb it We do not consider it necessary to recall the various occasions on which attacks on founders of religion led to a breach of the peace We may, however, point out that, prior to the enactment of section 295 A of the Indian Penal Code, it was held in the *Rangila Rasul case* that section 153 A was not meant to stop polemics against a deceased religious leader however scurrilous and in bad taste the attacks might be and no other provision of that Code covered such attacks *Raj Paul v. Emperor* (A I R 1927 Lahore 590) Thereupon, by the Criminal Law Amendment Act XXV of 192s, section 295 A was enacted to make deliberate and malicious attacks on religion or religious beliefs, including attacks on religious leaders, as specific

12 It is no doubt true that the objectionable nature of the ... tual reaction it
... section 12 (1)
... easure of pre-
... ven case agita
... for oth r pur-
... that there was,
as detailed in paragraph 9 (e) of the return, much agitation
... assages
... genui

... also made the
... ve been pres-
... be published

without those passages We agree with the Advocate General that the offending passages are so spread out in the book that

14 In the view we have taken of the objectionable pass ages we are of opinion that the action taken under section 12 (1) of the Act was merited and we must subject to what we have indicated at the end of the last paragraph confirm the order dated 19 September 1962

15 The result is that the application fails and is dismissed The applicant shall bear his own costs and pay out of the security amount those incurred by the non applicants for whom there will be only one sat of costs The remaining amount of security shall be refunded Hear ng fee Rs 200/

Sd/P V Dixit
CHIEF JUSTICE
16 4 1963

Sd/K L Pandey
JUDGE
16 4 1963

SCHEDULE OF COSTS

Particulars	Petitioner		Respondents	
	Rs	P	Rs	P
Court fee on memo of appeal and application & affidavit	3	60	—	—
Court fee on power of attorney	3	50	7	—
Court fee on exhibits	1	20	—	—
Court fee on processes	6	—	—	—
Counsel s fee fixed	200	—	200	—
Fee for preparation of paper book	—	—	—	—
Total	214	30	207	—